अंधेरे में उजाला

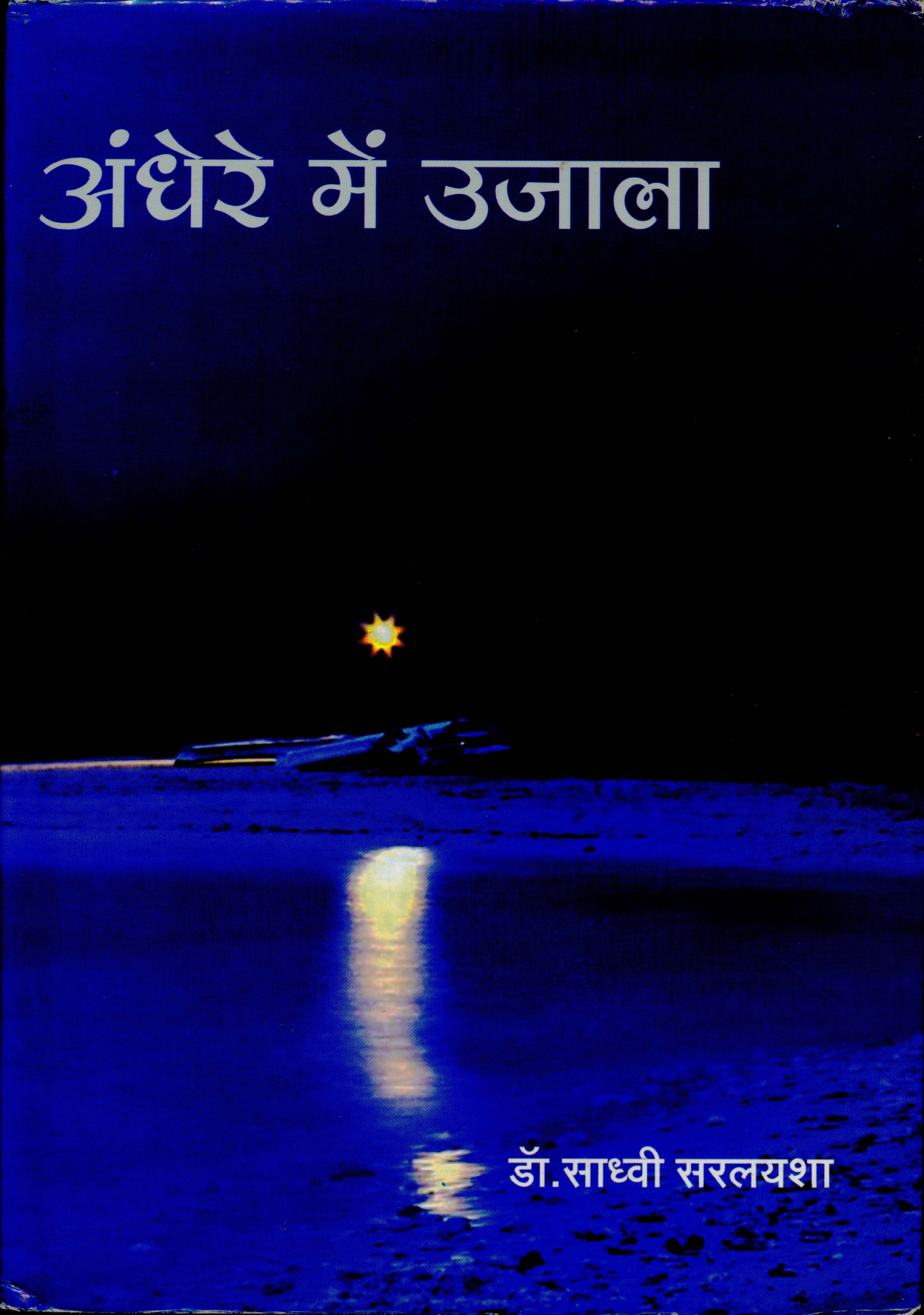

डॉ.साध्वी सरलयशा

बल, शस्त्र और पौद्गलिक शक्ति के सहारे पशुता का साम्राज्य स्थापित होता है और मनुष्य अपनी गुणवत्ता को भूलकर कर्तव्यच्युत हो जाता है। आधुनिक विश्व की यही समस्या है। समाधान के आलोक में मनीषियों की अहिंसा संकल्पना मौलिकता से संपृक्त है। मनुष्य का उज्ज्वलांश प्रदीप्त हो वह अहंकार, स्वार्थ, भौतिक आकांक्षा से ऊपर उठकर अपने व्यक्तित्व का विसर्जन विराट् के कल्याण में समर्पित करें। इस सत्य को अहिंसा के केनवास पर साबित करने का बीड़ा मनीषियों ने उठाया और सफलता की मिसाल कायम की। उसकी एक झलक 'अँधेरे में उजाला' में देखी जा सकती है।

अँधेरे में उजाला

आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन

अँधेरे में उजाला

आचार्य महाप्रज्ञ एवं महात्मा गाँधी का अहिंसा दर्शन (शोध)

डॉ. साध्वी सरलयशा

© आदर्श साहित्य संघ, नई दिल्ली

अँधेरे में उजाला

लेखक : डॉ. साध्वी सरलयशा

प्रकाशक : आदर्श साहित्य संघ
२१०, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग
नई दिल्ली-११०००२

प्रथम संस्करण : सन २०११

मूल्य : चार सौ रुपये

प्रकाशन सहयोग : स्वर्गीय मालचन्दजी धन्नीदेवी सेठिया एवं भंवरलालजी जंवरीमलजी सेठिया की पुण्यस्मृति में गुलाबचन्द सरोजदेवी सेठिया एवं सुजानमल मन्जूदेवी सेठिया, मोमासर निवासी, दलकोला (प.बं.) प्रवासी.

मुद्रक : आर-टेक आफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली-११००३२

ANDHERE MEIN UJALA
***by* Dr. Sadhvi Saralyasha** **Rs. 400.00**

आशीर्वचन

अहिंसा कल्याणकारी तत्व है। वह जीवन जीने का सुन्दर तरीका है। अहिंसा का विचार विभिन्न दर्शनों में प्राप्त होता है।

साध्वी सरलयशाजी ने इस विषय में सामग्री प्रस्तुत की है। वे साधना और साहित्य के क्षेत्र में विकास करती रहें। 'अँधेरे में उजाला' पाठकों के चित्त में उजाला भरे। शुभाशंसा।

–आचार्य महाश्रमण

संबोधि

30 जून, 2011

सादर समर्पित

अणुव्रत अनुशास्ता
पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी,
विश्व संत प्रज्ञा सुमेरु
आचार्य श्री महाप्रज्ञ
के
यशस्वी
उत्तराधिकारी
श्रमण संस्कृति के संवाहक
महातपस्वी
शांतिदूत
आचार्य श्री महाश्रमण को

—विनयावनत
साध्वी सरलयशा

स्वकथ्य

विश्व-मानव अस्तित्व संरक्षण की तलाश में है। जिसका अनुभव परमविज्ञाता ने बहुत पहले ही कर लिया। शाश्वत् समाधान की डगर पर मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई। अहिंसा उसका मौलिक घटक है। यह त्रैकालिक सच है। इसकी साधना में स्वयं को नियोजित करने वालों का स्वर्णिम इतिहास है उसमें राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी और आचार्य महाप्रज्ञ का नाम शामिल है। उभय मनीषियों ने अहिंसा को शक्ति, आलोक और समाधान के नजरिये से परखा और प्रयोगपूर्वक प्रतिष्ठित किया।

यद्यपि अहिंसा की शक्ति भारत के लिए कोई नया तत्व नहीं है। सच्चाई तो यह है कि अहिंसा का उपदेश भारत में इतनी बार दिया गया कि शेष विश्व भारत को अहिंसा और निवृत्ति का देश ही मान बैठा। मनीषीद्वय द्वारा इस सोच को नया परिवेश मिला। अहिंसा विचारात्मक गतिशील प्रक्रिया से, यथार्थ के धरातल पर समस्या-समाधान की कीमियांस्वरूप प्रतिष्ठित हुई।

बल, शस्त्र और पौद्गलिक शक्ति के सहारे पशुता का साम्राज्य स्थापित होता है और मनुष्य अपनी गुणवत्ता को भूलकर कर्तव्यच्युत हो जाता है। आधुनिक दिश्व की यही समस्या है। समाधान के आलोक में मनीषियों की अहिंसा संकल्पना मौलिकता से संपृक्त है। मनुष्य का उज्ज्वलांश प्रदीप्त हो वह अहंकार, स्वार्थ, भौतिक आकांक्षा से ऊपर उठकर अपने व्यक्तित्व का विसर्जन विराट् के कल्याण में समर्पित करें। इस सत्य को अहिंसा के केनवास पर साबित करने का बीड़ा मनीषियों ने उठाया और सफलता की मिसाल कायम की। उसकी एक झलक 'अँधेरे में उजाला' में देखी जा सकती है।

महात्मा महाप्रज्ञ और महात्मा गाँधी के विराट् अहिंसा दर्शन से कतिपय तथ्यों को एकत्रित करने का मेरा विनम्र प्रयत्न मात्र है। सीमित संसाधनों में संपादित कार्य की अपनी सीमा है। अहिंसा के क्षेत्र में कार्य करने वालों के समक्ष आधुनिक संदर्भ में प्रयोग-परीक्षण पूर्वक गाँधी एवं महाप्रज्ञ के दर्शन को उजागर करने में यह लेखन कार्य निमित्त बना तो श्रम की सार्थकता होगी।

विभिन्न संदर्भों में गुँफित अहिंसा दर्शन के कतिपय तथ्यों को यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत करने का सामर्थ्य मेरी अल्पमति में कहाँ से आया? एक मात्र गुरु-कृपा का ही चमत्कार मानती हूँ। पूज्य प्रवर की पारदर्शी शक्ति ने मेरी चेतना को झंकृत किया और कार्य संपादन अवरोधों के बावजूद सुगम बनता गया।

दिव्य विचारों के स्रष्टा पूज्यप्रवर ने सहर्ष अनुज्ञा प्रदान की और अपेक्षित संशोधनपूर्वक शोध

ाकार्य पुस्तकाकार निष्पन्न हुआ। जिज्ञासुओं तक कृति स्वरूप पहुंचाने की आत्मीयजनों की अनुशंसा भी योगभूत बनी।

महातपस्वी शांतिदूत आचार्यश्री महाश्रमण जी एवं संघ महानिदेशिका महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा श्री कनकप्रभा जी का मंगल आशीर्वाद, प्रोत्साहन प्रस्तुत कृति का उपधान है। प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से जिनका भी मुझे लेखन कार्य में सहयोग मिला, सभी के प्रति सदैव मेरा अहोभाव बना रहेगा।

शुभाशंसा के साथ मेरा यह आदिभूत प्रयत्न अहिंसा के क्षेत्र में काम करने वालों के लिए आशा किरण बनें। स्वात्म विकास की अभिनव राहें प्रशस्त बनाता रहे।

–डॉ. साध्वी सरलयशा

प्ररोचना

अहिंसा एक नैतिक शिरोमणि प्रत्यय है, जो धर्म और समाज दोनों को आलोकित करता है। अध्यात्म जगत में वैयक्तिक सर्वोच्च उपलब्धि (मुक्ति) में अहिंसा की अनन्य भूमिका स्वीकृत है। सामाजिक अमन-चैन एवं शांतिपूर्ण विकास में अहिंसा का योगदान नकारा नहीं जा सकता। अहिंसा का विविधोन्मुखी अन्वेषण और विकास आदि काल से गतिमान है। इसके विकास क्रम में विभिन्न दर्शनों में योगदर्शन, बौद्ध दर्शन एवं जैन दर्शन की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। ऋषि-महर्षियों, संत-महन्तों, आचार्यों ने जीवन में समरस बनाकर इसे प्राणवान् बनाया है। पाश्चात्य धर्म-दर्शन एवं विद्वानों की सोच अहिंसा सिद्धांत की स्वीकृति से रिक्त नहीं है।

'सव्वभूय खेमंकरी' अहिंसा का विराट् स्वरूप है। इसमें प्राणीमात्र के क्षेम-कुशल की अद्भुत शक्ति है। यह देश-काल की सीमाओं से मुक्त एक शाश्वत सत्य का प्रतीक है। अहिंसा की दिव्यता और विशिष्टता को सत्यापित करने वाली भगवान् महावीर की आर्ष वाणी आगमों में गुंफित है। प्रश्नव्याकरण सूत्र में अहिंसा को आधार और त्राण के रूप में स्वीकृति मिली—'एसा सा भगवई अहिंसा जा सा—

भीयाणं विव सरणं, पक्खीणं विव गमणं।
तिसियाणं विव सलिलं, खुद्दियाणं विव असणं।
समुद्दमज्झे व पोयवहणं, चउप्पयाणं व आसमपयं,
दुहट्टियाणं व ओसहिबलं, अडवीमज्झे व सत्थगमणं॥'

अहिंसा की शक्ति के रूप में प्रतिष्ठा एवं इसके मौलिक अर्थ की मीमांसा उजागर हुई। अहिंसा का अर्थ प्राणों का विच्छेद न करना, इतना ही नहीं, उसका अर्थ है—मानसिक, वाचिक और कायिक प्रवृत्तियों को शुद्ध रखना। अहिंसा के निषेधात्मक स्वरूप के साथ इसके विधेयात्मक स्वरूप को उजागर करना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हिंसा-अहिंसा किसी निर्धारित रूप और कृत्य के नाम नहीं है। मानव की गति और उसके विकास को यदि बर्बरता से सह अस्तित्व यानी हिंसा से अहिंसा की दिशा में न स्वीकारें तो मानवता का इतिहास शून्यता के गर्त में विलीन हो जायेगा। सर्वोच्च अहिंसा का स्वरूप अदृश्य होकर भी प्राणवान् सिद्ध होता है। जिसका प्रभाव पूरी दुनिया के लिए शकुन है।

बीसवीं-इक्कीसवीं सदी के शिखर पुरुष—महात्मा गांधी और आचार्य महाप्रज्ञ ने मंथन पूर्वक अहिंसा को आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत किया। अहिंसा के सनातन सिद्धांत को वैज्ञानिक कसौटी पर

व्यापकता प्रदान करने वाले राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और राष्ट्रसंत आचार्य महाप्रज्ञ का अहिंसा दर्शन मौलिकता और समाधायकता से युक्त है। विज्ञान की महत्त्वपूर्ण कसौटी है—प्रयोगधर्मिता। इस दृष्टि से अहिंसा और सत्य को प्रयोग पूर्वक प्रतिष्ठित करने वाले मनीषियों का अहिंसा दर्शन वैज्ञानिक है। वर्तमान के संदर्भ में समीक्षण पूर्वक समाचरण अनेक संभावनाओं को उजागर करता है।

गांधी और महाप्रज्ञ के अहिंसा दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता है कि उन्होंने अहिंसा का मूल्य और महत्त्व अपनी सफलता-विफलता से न जोड़कर शाश्वत शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया। अकेली अहिंसा ही विष को अमृत में बदलने की क्षमता रखती है। आज विश्व, शक्ति की खोज में है। शक्ति वह है जो स्थिति में परिवर्तन लाये। विश्व राजनीति में अस्त्र-शस्त्र, आणिवक शक्ति, भौतिक शक्ति को ही शक्ति का पर्याय माना गया है। गांधी और महाप्रज्ञ इसे वास्तविक शक्ति नहीं मानते। शक्ति की अवधारणा में इन मनीषियों ने आमूल-चूल परिवर्तन किया और कहा—नैतिक शक्ति ही वास्तविक शक्ति है। उनकी दृष्टि में अणु और परमाणु की तुलना में अहिंसा की शक्ति श्रेष्ठ और विशाल है। परमाणु बम, जैविक-रासायनिक शस्त्रों से सज्जित इस युग में शुद्ध अहिंसा ही ऐसी शक्ति है जो हिंसा की संपूर्ण चालों को विफल कर सकती है। अहिंसा सदैव सक्रिय रहने वाली अति सूक्ष्म अतुल शक्ति है। मनीषियों द्वारा किया गया अहिंसा अन्वेषण विश्व मानव के लिए प्रकाश स्तम्भ है। उन्होंने बताया अहिंसा मात्र परलोक प्रशस्ति का मार्ग नहीं है इसके द्वारा वर्तमान जीवन व्यापी विभिन्न समस्याओं का समाधान खोजा जा सकता है। वैश्विक समस्या समाधान की कमियों के रूप में अहिंसा की प्रतिष्ठा गांधी एवं महाप्रज्ञ की वैज्ञानिक सोच का सबूत है।

परतंत्रता और जड़ता की बेड़ियों में जकड़ा भारत-भू के लिए गांधी का जन्म एक वरदान था। भारतीय जनमानस एवं अफ्रीका प्रवासी भारतीय लोगों की चेतना झंकृत करने वाले राष्ट्रपिता का जीवन अहिंसा की प्रयोगशाला था। अपनी अलबेली अहिंसक जीवन शैली एवं चिंतन शैली की बदौलत विश्वभर में गांधी नाम का जादुई आकर्षण आज भी जीवंत है। आकर्षण का मौलिक आधार बना विराट् पैमाने पर अहिंसात्मक प्रयोग। गांधी का यह दृढ़ विश्वास था कि भारत यदि परतंत्रता की बेड़ियाँ तोड़ सकता है तो उसका एकमात्र साधन है—अहिंसा। उन्होंने कहा—'मैं ऐसा स्वप्न देख रहा हूँ कि मेरा देश अहिंसा द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करेगा और मैं अगणित बार संसार के समक्ष यह बात दुहरा देना चाहता हूँ कि अहिंसा को त्याग कर मैं अपने देश की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं करूँगा। अहिंसा के साथ मेरा परिणय इतना अविच्छिन्न है कि मैं अपनी इस स्थिति से विलग होने की अपेक्षा आत्महत्या कर लेना पसंद करूँगा।'

आचार्य महाप्रज्ञ का आजीवन अहिंसा महाव्रत भले ही व्यक्तिगत साधना का विषय था पर उन्होंने अहिंसा पर जो चहुँमुखी चिंतन किया वो निश्चित ही हिंसा-संकुल मानवता के लिए आशा दीप है। साधनामय जीवन की प्रयोग भूमि पर विकसित अहिंसा के विचार से हिंसा त्रस्त मानवता के लिए त्राण है। जीवनगत क्रियाओं का हिंसा-अहिंसा संबंधी न केवल सूक्ष्म विश्लेषण ही किया अपितु प्रभावी यौगिक प्रयोगों के द्वारा हिंसा पर नियंत्रण स्थापना का रहस्य भी बतलाया। आचार्य महाप्रज्ञ का मौलिक विश्लेषण है—'हमारे शरीर में बहुत प्रकार के एसिड बनते हैं उनकी मात्रा बढ़ती है तो सन्तुलन बिगड़ता है और आदमी की मनोवृत्ति बदल जाती है वह क्रोधी, अपराधी और हत्यारा तक बन सकता है। जब हमारे रक्त में, मस्तिष्क में, मूत्र में एमिनो एसिड की मात्रा बढ़ जाती है

तो आदमी हिंसक बन जाता है। मात्रा में एक सन्तुलन स्थापित करना योगासन के द्वारा संभव है।' इसे प्रयोग की भूमि पर साबित कर दिखाया है।

गांधी एवं महाप्रज्ञ ने अहिंसा के संबंध में जिन सूक्ष्म तथ्यों को खोजा एवं प्रस्तुति दी उनके तुलनात्मक प्रतिपादन का सार्थक प्रयत्न प्रस्तुत कृति में किया गया है।

मनीषियों के अहिंसा दर्शन में सूक्ष्मता, सामयिकता, समाधायकता और वैज्ञानिकता का निदर्शन है, उसका समन्वित प्रारूप चिंतन के नये क्षितिज उद्घाटित करने में समर्थ है। इस तथ्य के प्रकटीकरण का प्रयत्न भी इस कार्य का उद्देश्य रहा है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में हिंसा और तनावग्रस्त जन-जीवन का पथ-दर्शन करने में महापुरुषों की सोच और शैली आलम्बनभूत बन सकती है; इस तथ्य के प्रकाशन का प्रयत्न भी रहा है।

इस शोध निष्ठ कृति का लक्ष्य सच्चाई को यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत करना है। समाज को अहिंसा की जरूरत है, ताकि वह शांति के साथ जी सके, स्वस्थ रह सके। व्यावहारिक अहिंसा के आधार पर मानव ने अहिंसा की गरिमा का अनुभव किया किन्तु पारमार्थिक अहिंसा की ओर बहुत कम ध्यान दिया। मनीषियों ने इस संदर्भ में सूक्ष्मता से चिंतन किया है। यथाशक्य उसे विमर्श का विषय बनाया गया है ताकि सुधी पाठक उससे भी रूबरू हो सके।

गांधी व महाप्रज्ञ ने अहिंसा को जिस रूप में देखा-समझा और प्रयुक्त किया उसका यथार्थ समाकलन महत्त्वपूर्ण कसौटी है। दोनों मनीषियों के पूर्व अहिंसा के तत्वदर्शियों ने व्यक्तिगत चेतना को उदात्त बनाने हेतु एक साधन के रूप में अथवा परस्पर व्यवहारों को नियंत्रित करने वाले एक आचरण के रूप में इसे स्वीकार किया। अहिंसा कोई ऐसी अवधारणा नहीं, जिसे केवल व्यक्तिगत आचरण और चेतना की अवस्था तक ही सीमित रखा जाये। निश्चय ही ये अहिंसा के प्रकट तत्त्व हैं परन्तु इसके अतिरिक्त समाज व्यवस्थाओं में सन्निहित अहिंसा का विशाल क्षेत्र है जो अध्ययन और चिंतन की दृष्टि से अछूता रहा है यही कारण था कि अहिंसा हमारे सर्वांगीण जीवन की संस्कृति नहीं बन सकी। विश्व इतिहास में पहला व्यक्ति गांधी हुआ जिन्होंने इस सत्य को समझकर समाज संरचना में सन्निहित विविध प्रकार की हिंसाओं के विषय में शोधकर अहिंसा का एक सर्वांग दर्शन तथा अहिंसक जीवन पद्धति का विचार विश्व मानवता के सामने रखा।

दूसरी ओर आचार्य महाप्रज्ञ ने हिंसा के कारणों को खोज पूर्वक प्रस्तुति दी। उनकी दृष्टि में हिंसा का अगर वर्गीकरण किया जाए तो आर्थिक हिंसा, व्यवसायिक हिंसा, अनैतिक आचरण और भ्रष्टाचार आदि बहुत से रूपों में हिंसा को देखा जा सकता है। जो अहिंसा विकास की अर्गलाएँ हैं। अहिंसा के व्यक्तिगत अनुभव को व्यापक पैमाने पर सामाजिक, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय परिवेश में समस्या समाधान के उपचारात्मक प्रयोग स्वरूप में प्रस्तुत कर व्यक्ति परिवर्तन से राष्ट्र निर्माण की बात कही। अभिनव रूप में मनीषियों के चिंतन का सिंचन पा अहिंसा केवल संतों-पंथों एवं धर्मात्माओं के अध्ययन, चिंतन और आचरण में सीमित न रहकर इसका विस्तार अर्थनीति, राजनीति, समाजनीति एवं अंतर्राष्ट्रीय क्षितिज पर्यंत व्यापक बना।

हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक सद्भावना एवं शांति स्थापना में गांधी और महाप्रज्ञ ने अहिंसा की शक्ति का समान रूप से प्रयोग किया। बापू ने हिन्दू-मुस्लिम उपद्रवों से आतंकित नोआखली के वातावरण को मनोवैज्ञानिक तरीके से (हिन्दू-मुस्लिम बच्चों को एक साथ खिलवाकर.....) एक दूसरे

की हत्या नहीं करने की कसम उठवाई। इतना ही नहीं, 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता दिवस पर सरदार पटेल व नेहरू जी द्वारा दिल्ली आगमन के निमंत्रण को अस्वीकार करते हुए कहा—'जब बंगाल जल रहा है, हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे की हत्या कर रहे हैं और कलकता में फैले इस अंधकार में मुझे उनकी पीड़ा का आर्तनाद सुनाई दे रहा है, मैं रोशनियों से जगमगाती दिल्ली कैसे आ सकता हूँ।' स्पष्ट रूप से गांधी के लिए आजादी के उत्सव से अधिक महत्त्व था, हिन्दू-मुस्लिम सद्भावना की मिसाल को कायम करना।

इससे कुछ भिन्न हिन्दू-मुस्लिम एकता-सद्भावना के मौलिक प्रयत्न आचार्य महाप्रज्ञ ने किये। इसकी एक मिसाल है कि तमाम प्रतिक्रियाओं की परवाह किये बगैर आचार्य महाप्रज्ञ का गोधरा कांड से पीड़ित गुजरात प्रांत में जाने का निर्णय। अहिंसा यात्रा की उपयोगिता वहाँ साबित हुई। उन्होंने अहिंसक नीति से हिन्दू-मुस्लिम सभाओं को संबोधित किया और इस सच्चाई से अवगत करवाया—'हिंसा किसी समस्या का समाधान नहीं है। इससे किसी का भी भला नहीं होगा।' प्रभावी प्रयत्नों से दोनों समुदायों के बीच सौहार्द और समन्वय का वातावरण बना। दोनों मनीषियों के एकता-सद्भावना मूलक आदर्शों के आलोक में व्यापक रूप से सकारात्मक प्रयत्न किये जाये तो निश्चित रूप से अच्छे परिणाम निकल सकते हैं।

गांधी ने तत्कालीन परिस्थितियों को समझा और भारतीय संस्कृति के अनुरूप देश की आजादी का स्वप्न संजोया और सफलता का वरण किया। उन्होंने अपूर्ण अहिंसा को स्वीकार किया कि यदि हम पूर्ण रूपेण मन-वचन-कर्म से अहिंसक होते तो उसका प्रभाव विश्व व्यापी होता। पर हमारी आधी-अधूरी अहिंसा ने भी हमें मंजिल तक पहुंचाया है यह अहिंसा शक्ति का ही चमत्कार है। आचार्य महाप्रज्ञ के पारदर्शी चिंतन से अहिंसा की नव्य धारा प्रस्फुटित हुई। उन्होंने अहिंसा के चिंतन की पृष्ठभूमि में हिंसा के कारणों का उल्लेख किया—'भूख एक ऐसी समस्या है, जिससे व्यक्ति को उग्रवादी और अपराधी बनने का मौका मिलता है।... नक्सलवाद, उग्रवाद और अपराध का एक मुख्य कारण है भूख। जहाँ लाखों लोग वैभव का जीवन जीते हैं, जबकि करोड़ों लोगों को खाने को पूरी रोटी भी नसीब नहीं होती, वहाँ प्रतिक्रियात्मक हिंसा से बचा नहीं जा सकता।' इस यथार्थ आकलन पर लोगों का ध्यान केन्द्रित किया। बड़ी संख्या में आचार्य महाप्रज्ञ के अनुयायी वर्ग एवं राष्ट्रपति डॉ. अब्दुल कलाम जैसे वैज्ञानिक देश के प्रथम नागरिक ने फ्यूरेक (FUREC) के माध्यम से स्वरोजगार, आत्मनिर्भरता के कार्यों को बढ़ावा दिया और भूख की समस्या का सही समाधान खोजने के उपक्रम जारी कियें। अपेक्षा है इस क्षेत्र में समीक्षण पूर्वक बहुआयामी कार्यक्रमों को व्यापक बनाने की।

गांधी ने आत्मशुद्धि पूर्वक स्वस्थ समाज संरचना पर बल दिया। गांधी उपवास (अनशन) करते, तब भी उनका स्पष्ट नजरिया बना रहता कि मैं अपनी आत्म-शुद्धि करने के लिए ऐसा पुनीत कार्य कर रहा हूँ। आचार्य महाप्रज्ञ ने पूर्ण संयमी जीवन जीते हुए अहिंसा की जो साधना की, वह महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर प्रशिक्षण के जरिये सामाजिक धरातल पर अहिंसा के विकास की संभावनाओं को उजागर किया है। वर्तमान के संदर्भ में त्याग-बलिदान एवं साधना के समन्वयात्मक स्वरूप को आधुनिक परिवेश में प्रस्तुति दी जाये और उसका व्यापक प्रसार किया जाये, निश्चित रूप से उसके सकारात्मक परिणाम निकलेंगे। गांधी और महाप्रज्ञ की संयम प्रधान जीवन-शैली पर

अहिंसा के क्षेत्र में काम करने वाले व्यक्ति एवं संगठन विकसित किये जायें ताकि अहिंसा के रचनात्मक परिणाम घटित हो सके।

अहिंसा की दिव्य शक्ति का गांधी ने सामाजिक एवं राष्ट्रीय उत्थान हेतु प्रयोग किया और महाप्रज्ञ ने आध्यात्मिक अनुभव के आधार पर वैयक्तिक और सामाजिक शांति एवं स्वस्थ समाज, संस्कारक्षम समाज की पृष्ठभूमि में अहिंसा पर बल दिया। इन उभय धाराओं में अनुस्यूत अहिंसा के मौलिक रूप को आधुनिक संदर्भ में वैज्ञानिक प्रविधि के रूप में विकसित किया जाये ताकि प्रचंड हिंसा की समस्या पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकें।

व्यावहारिक धरातल पर अहिंसा को आसन मिले इस हेतु दोनों मनीषियों ने प्रयोग और प्रशिक्षण की बात पर बल दिया। अहिंसा के लिए मस्तिष्कीय प्रशिक्षण की एक प्रकल्पना, एक योजना आचार्य महाप्रज्ञ ने प्रस्तुत की। उन्होंने बताया बिना इसके निश्चित दिशा में आगे नहीं बढ़ा जा सकता। अहिंसा का पाठ सौ बार पढ़ लेने पर भी कोई अहिंसक नहीं बन जाता। पाठ प्रशिक्षण का एक अंग हो सकता है वह पूरा प्रशिक्षण नहीं है। उसके लिए अनेक तत्वों का समाहार अपेक्षित है। शस्त्र निर्माण, प्रयोग और प्रशिक्षण के लिए कितनी बड़ी-बड़ी योजनाएं और कार्यक्रम चल रहे हैं। इसीलिए हिंसा में विश्वास रखने वालों की एक बड़ी सेना तैयार है। हिंसा अपने आपमें निषेधात्मक है। वह स्वयं भयंकर है, उसके परिणाम भी भयंकर है। परिणाम की भयंकरता ने अहिंसा के स्वर को बुलंद किया है। अहिंसा स्वयं विधायक है, उसके परिणाम भी विधायक है पर उसके लिए हमारा मस्तिष्क तैयार नहीं हैं। क्या मस्तिष्क परिवर्तन की बात सोची जाएगी? क्या इस वैज्ञानिक और प्रायोगिक युग में अहिंसा को प्रयोग की भूमि प्राप्त होगी? इन प्रश्नों का समाधान मनीषियों की अहिंसा प्रधान चिंतन शैली में खोजने का प्रयत्न यथाशक्य कृति में किया गया है।

गांधी और महाप्रज्ञ की अहिंसा सोच और कार्य पद्धति में कितना साम्य और वैषम्य है? तथ्य प्रधान तुलनात्मक विमर्श के आधार पर सुधिजन, प्रबुद्ध पाठक स्वयं उसका निर्णय करें।

विषय वर्गीकरण

प्रस्तुत लेखन कार्य विषय वर्गीकरण की दृष्टि से पाँच अध्यायों में समायोजित है। अध्याय प्रारूप अपने आप में मौलिक है।

अहिंसा जीव का स्वभाव है और हिंसा विभाव। विभाव और स्वभाव का संघर्ष अनादि है। प्रश्न है स्वभाव के विकासात्मक स्वरूप का। अहिंसा के विकास का आदि बिन्दु खोज पाना कठिन है पर जब से मानव ने समूह में रहना प्रारंभ किया तभी से इसका श्रीगणेश हो गया। प्रारंभ में अहिंसा का स्वरूप त्याग (व्रत) रूप में प्रकट हुआ। कालांतर में अहिंसा का विविधोन्मुखी प्रयोग व्यापक बनता गया। विभिन्न नियमोपनियम, अनुशासनात्मक कारवाई, मर्यादा, व्यवहार में अहिंसा का स्वरूप प्रतिष्ठित हुआ।

प्रथम अध्याय 'अहिंसा : विकास क्रम' में अहिंसा के स्वरूप का ऐतिहासिक संदर्भ में मंथन किया गया है। आगम युग में प्रतिष्ठित अहिंसा का विशुद्ध स्वरूप वेद, उपनिषद् रामायण, महाभारत, गीता आदि में स्वतंत्र धारा के रूप में प्रवाहित हुआ। दर्शन के क्षेत्र में इसको मान्यता मिली। मध्य युग में अहिंसा का स्वरूप विभिन्न रूपों में विकसित होने के बावजूद मंद हुआ। मंद स्वर को पुनः मुखरित करने में महात्मा गांधी एवं आचार्य महाप्रज्ञ ने अपनी शक्ति को नियोजित किया।

मनीषियों ने अहिंसा को एक व्यापक स्वरूप प्रदान किया और विश्व के सामने अहिंसा की शक्ति को तेजस्वी रूप में प्रस्तुत किया। प्रस्तावित अध्याय में अहिंसा के अर्थ, स्वरूप, प्रकारों के साथ गांधी और महाप्रज्ञ के मौलिक अहिंसा निष्ठ मंतव्यों का विमर्श किया गया है।

महात्मा गांधी और आचार्य महाप्रज्ञ के 'प्रेरणास्रोत' द्वितीय अध्याय में उन प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष कारकों का विमर्श किया गया है जिनसे मनीषी द्वय ने अहिंसा का फौलादी पाठ पढ़ा। यद्यपि दोनों के भिन्न परिवेश एवं भिन्न प्रेरणा स्रोत बनें। जिसकी स्पष्ट झलक इन मनीषियों के कार्य क्षेत्र में देखी जाती है। गांधी की राजनीति अहिंसा का पर्याय बनी और महाप्रज्ञ का उच्च अहिंसा-निष्ठ जीवन जनमानस की अहिंसक चेतना को झंकृत करने में योगभूत बना है। व्यक्त-अव्यक्त कारकों से मिला अहिंसामृत पाठक की अहिंसक शक्ति को झंकृत करने में योग्य भूमिका अदा करने का सामर्थ्य रखता है।

मनीषियों के प्रेरणोत्सव में एक बहुत बड़े मौलिक तथ्य का समावेश है। वह है—गुणग्राहकता का निदर्शन। जहाँ भी, जिस रूप में मनीषियों को संस्कार निर्माण, अहिंसात्मक विचारों के संग्राहक सकारात्मक सूत्र मिलें उन्हें ग्राहक बुद्धि से संजोया। अपने जीवन को उच्च आदर्श तक पहुंचाने के उपक्रम में गांधी और महाप्रज्ञ ने अनेक आलोक सूत्रों का स्वात्म प्रेरणा से आलंबन लिया।

'अहिंसा का सैद्धांतिक स्वरूप' तृतीय अध्याय में गांधी और महाप्रज्ञ के अहिंसा प्रधान वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय विचारों का समाकलन है। हिंसा और अहिंसा से संकुल व्यवस्था का पृथक्करण निश्चित रूप से कठिन कार्य है, पर मनीषियों की विराट् सोच में गुंफित विचारों को सापेक्ष दृष्टि से अहिंसा के आलोक में खोजने का प्रयत्न किया गया है। हिंसा फूटती और फटती है, तब दिखती है और अहिंसा अलक्ष्य भाव से मानव की क्रियाओं में व्याप्त रहती है। इसका क्षीर-नीर विवेक प्रज्ञा सापेक्ष है। पर जिज्ञासा के आइने में सीमित साधन सामर्थ्य और सोच के केनवास पर हिंसा और अहिंसा के पृथक् भाव को प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयत्न मात्र है। गुणवत्ता का संग्रह अब भी अवशेष है।

अहिंसक व्यक्ति की संकल्पना गांधी और महाप्रज्ञ की स्वतंत्र परिलक्षित होती है। गांधी की दृष्टि में जो व्यक्ति निर्भय होकर जीवन की बलि चढ़ाकर बिना शस्त्र उठाये शस्त्र का मुकाबला करता है, वह अहं के मोह को छोड़कर सत्य के लिए अपने को समर्पित कर देता है। उस व्यक्ति की यह पद्धति विशुद्ध अहिंसक है। पर अपने प्राणों के व्यामोह से भय पूर्वक शस्त्र के सामने पलायन करने वाला यद्यपि हिंसा नहीं करता पर वह गांधी की दृष्टि में न केवल महान् कायर है, प्रत्युत सबसे बड़ा हिंसक है, क्योंकि उसे स्वयं के प्रति मोह और सत्य की उपेक्षा करके अपने अकिंचन प्राणों को बचाने की चाह है। महाप्रज्ञ की सोच में अहिंसक वह है जो देश, काल और परिस्थिति से ऊपर उठकर मन-वचन-कर्म से सदैव अहिंसा की राह पर चलता है।

गांधी के लिए स्वाधीनता केवल एक राजनैतिक तथ्यमात्र नहीं थी। एम. पाल रिचर्ड के शब्दों में—'गांधीजी भारत की स्वाधीनता के लिए नहीं बल्कि विश्व में अहिंसा की स्थापना के लिए काम कर रहे हैं।' यह एक सच्चाई भी थी। वो भारत को विदेशी शासन से नहीं, अपितु सामाजिक कुरीतियों और साम्प्रदायिक झगड़ों से भी मुक्ति दिलाने के लिए लड़े थे। उनका स्पष्ट उद्घोष था—'मैं एक ऐसे भारत के लिए काम करूँगा, जिसमें गरीब-से-गरीब भी यह महसूस करे कि यह देश उसका है और इसके निर्माण में उसकी सक्रिय भूमिका है। ऐसे भारत में ऊँच-नीच, वर्गों का भेद नहीं होगा,

जिसमें सभी जातियां मेल-मिलाप के साथ रहेगी, छुआछूत और नशेबाजी के लिए कोई स्थान नहीं होगा। स्त्रियों और पुरुषों के समान अधिकार होंगे।....' यह अहिंसक समाज का प्रारूप था जिसे गांधी ने आत्म निर्भर एवं मानवीय मूल्यों से युक्त बनाने का बीड़ा उठाया था।

आचार्य महाप्रज्ञ ने अहिंसक समाज की संकल्पना शोषण मुक्त, संस्कारक्षम, स्वस्थ समाज के रूप में प्रस्तुत की। विशेष रूप से समाज की संपन्नता पर बल दिया, अनुशासन की चेतना, चरित्रबल और साधन शुद्धि का विवेक महत्त्वपूर्ण है। जिस समाज के ये शक्ति स्रोत शून्य बिन्दु के आसपास चले जाते हैं अथवा शून्य हो जाते हैं, वह समाज शक्ति संपन्न नहीं हो सकता और जो शक्ति संपन्न नहीं होता, वह स्वस्थ नहीं हो सकता। उन्होंने कहा—अहिंसक समाज में नैतिक मूल्यों का स्थान सर्वोपरि होगा और जब अहिंसक व्यक्ति और समाज का निर्माण होगा तो अहिंसक राष्ट्र और अंतर्राष्ट्रीय क्षितिज पर इसकी विशिष्ट पहचान होगी।

गांधी और महाप्रज्ञ के लिए अहिंसा मात्र सामयिक नीति नहीं अपितु वह अखंड सिद्धांत थी। यथार्थ के धरातल पर जब अहिंसा सिद्धांत बनकर समाज में पसरती है तब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शोषण नहीं करेगा, धोखा नहीं देगा और उसके जीवन में न्याय बढ़ेगा और समाज का उद्यात्तीकरण होगा।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गांधी चिंतन सामयिकता लिये हुए है। वे भारतीय समाज को सच्चे अर्थ में स्वतंत्र बनाना चाहते थे, इसीलिए अपने रचनात्मक कार्यक्रम में चरखा, अस्पृश्यता निवारण और साम्प्रदायिक एकता को प्रमुखता दी। स्वतंत्रता उस समय तक केवल मजाक है, जब तक कि लोग भूखे मरें, नंगे रहें और असह्य पीड़ा से जूझते रहें। चरखा जन-साधारण की समस्याओं का उद्धारक बने ऐसी अपेक्षा आज भी है।

आचार्य महाप्रज्ञ ने आह्वान किया कि सामाजिक और राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने के तरीकों पर भी चिंतन करना होगा। हिंसा समस्या का समाधान है, यह धारणा बनी हुई है। जबकि जरूरत इस धारणा को विकसित करने की है कि अहिंसा से बहुत समस्याओं का समाधान हो सकता है। राष्ट्रीय एकता के लिए अहिंसा का विकास नितांत अपेक्षित है। अहिंसा के बिना शांति स्थापित नहीं हो सकती और आर्थिक विकास भी शांति के बिना संभव नहीं है। शांति के बिना गरीबी का निदान नहीं हो सकता और न ही रोटी और मक्खन की सहजता से व्यवस्था की जा सकती है। सामाजिक स्वास्थ्य के लिए शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की जरूरत है। जो अहिंसात्मक समाज की अभिन्न कड़ी है। 'सैद्धांतिक स्वरूप' में गांधी एवं महाप्रज्ञ द्वारा निर्दिष्ट, उपदिष्ट व्यक्ति से अंतर्राष्ट्रीय पर्यंत विभिन्न तथ्यों का विमर्श अहिंसा के आलोक में किया गया है। इस विमर्श से अहिंसा के विकास एवं प्रतिष्ठा की नई संभावनाएं उजागर हुई हैं।

'अहिंसाः प्रायोगिक स्वरूप' चतुर्थ अध्याय में गांधी एवं महाप्रज्ञ द्वारा निर्दिष्ट अहिंसा प्रधान प्रयोगों का विमर्श किया गया है। अहिंसा की स्थापना विभिन्न अहिंसा निष्ठ प्रयोग के द्वारा सुगमता से की जा सकती है। इस सच्चाई को दोनों मनीषियों ने यथार्थ के धरातल पर परखा और पाया कि जगत में अब तक पशुता का पशुता से, हिंसा का हिंसा से, शस्त्र का शस्त्र से ही सामना किया गया है। फलतः निर्बल पर सबल की पकड़ सघन बनी। गांधी ने प्रतिस्रोत का मार्ग प्रशस्त कर अहिंसा के प्रयोग को व्यापकता प्रदान की और मिसाल कायम की। **जिराल्ड हर्डने** के शब्दों में—'गांधीजी

के प्रयोग में सारे जगत को दिलचस्पी है और उसका महत्त्व युगों तक कायम रहेगा। इसका कारण यह है कि उन्होंने समूह को लेकर या राष्ट्रीय पैमाने पर उसका प्रयोग करने की कोशिश की है।'

गांधी के अहिंसक प्रयोग की सशक्त कड़ी है—अहिंसक आंदोलन। असहयोग, कानूनों का सविनय भंग और सत्याग्रह—इन उपक्रमों के जरिये गांधी ने स्वराज्य का रास्ता तय किया। 'शांतिपूर्ण बदलाव के एक साधन के रूप में अहिंसात्मक विधि से दबाव डालने की ताकत में उनका विश्वास आज भी विश्व भर में उतना ही न्याय संगत है जितना महात्मा गांधी के काल में भारत में था।' यू. थांट के इस कथन में गांधी के प्रयोगों की प्रासंगिकता उजागर हुई है। गांधी ने हृदय परिवर्तन की भूमिका पर अहिंसा की प्रतिष्ठा को स्वीकार किया। आचार्य महाप्रज्ञ ने इसे प्रयोग की कसौटी पर साबित किया कि अहिंसक प्रयोगों के द्वारा व्यक्ति परिवर्तन का दुरूह कार्य संपादित किया जा सकता है। अहिंसा प्रशिक्षण की सार्वभौम प्रक्रिया के द्वारा महाप्रज्ञ ने अहिंसक प्रयोगों को प्रतिष्ठित किया। वैयक्तिक चेतना के परिष्कार एवं पवित्रता को सामुदायिक चेतना का आधार बतलाते हुए प्रयोग की व्यापकता पर बल दिया। अहिंसा की गतिशील प्रक्रिया को 'अणुव्रत-आंदोलन' के जरिये प्रस्तुत कर व्यक्ति, समाज, राष्ट्रव्यापी समस्याओं का निदान अहिंसक रीति में सुझाया। जिसका महत्त्वपूर्ण उद्घोष है—**'सुधरे व्यक्ति-समाज व्यक्ति से, राष्ट्र स्वयं सुधरेगा।'** इस सुधार प्रक्रिया का आधरभूत सूत्र है—प्रशिक्षण।

अहिंसक चेतना के निर्माण में भाव परिष्कार हेतु आचार्य महाप्रज्ञ ने मस्तिष्कीय प्रशिक्षण अथवा हृदय परिवर्तन की प्रविधियों पर विशेष रूप से प्रकाश डाला। प्रशिक्षण के बहुआयामी स्वरूप को प्रस्तुत किया—

- निषेधात्मक भाव से मुक्ति पाने के लिए जरूरी है संवेग नियंत्रण का प्रशिक्षण।
- अमीरी की समस्या से मुक्ति पाने के लिए जरूरी है संयम प्रधान जीवन शैली का प्रशिक्षण।
- गरीबी की समस्या से मुक्ति पाने के लिए जरूरी है संविभाग की चेतना का प्रशिक्षण।
- संविभाग की चेतना को जगाने के लिए संवेग नियंत्रण और संयम की चेतना के जागरण का प्रशिक्षण जरूरी है।

अहिंसा के प्रायोगिक स्वरूप को अहिंसा समवाय, अहिंसा सार्वभौम, अहिंसा प्रशिक्षण, प्रेक्षाध्यान, यौगिक प्रयोगों के रूप में प्रतिष्ठित कर आचार्य महाप्रज्ञ ने परिवर्तन की महत्त्वपूर्ण प्रविधि का सूत्रपात किया। तथ्यों के आलोक में महात्मा गांधी एवं आचार्य महाप्रज्ञ ने अहिंसा को प्रयोगभूमि पर प्रयुक्तकर उसकी व्यापकता को उजागर किया है। चतुर्थ अध्याय प्रयोग प्रविधि की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। जिसमें अहिंसा विकास की नूतन संभावनाएं उजागर हुई हैं।

अहिंसा संबंधी विचारों में 'भेद, अभेद एवं समन्वय' का विमर्श पँचम अध्याय में किया गया है। महात्मा गांधी एवं आचार्य महाप्रज्ञ के विचारों के तुलनात्मक अनुशीलन पर इसका प्रारूप तैयार किया गया है। इस खण्ड़ की संपूर्ण रूपरेखा अपने आप में मौलिक है। जिसका इस लेखन कार्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। गांधी और महाप्रज्ञ दोनों भिन्न धाराओं के होने के बावजूद उनके वैचारिक प्रवाह में अद्भुत साम्यता का निदर्शन है। मानों दोनों एक दूसरे से प्रभावित हों। यद्यपि साक्षात् रूप से गांधी और महाप्रज्ञ का मिलन नहीं हुआ पर दोनों ने एक दूसरे के साहित्य पठन से संपर्क साधा। ऐसा साहित्य मंथन के आधार पर पुष्ट होता है।

भेद में गांधी और महाप्रज्ञ के अहिंसा संबंधी उन विचारों का विमर्श किया गया है जो वैशिष्ट्य से युक्त है। सर्वथा भेद प्रधान होने से स्वतंत्र शैली में वेष्टित हैं।

अभेद में समानधारा में गतिशील विचारों का समाकलन किया गया है। यद्यपि अभेद प्रधान विचारों की दिशा दोनों की स्वतंत्र है फिर भी उनमें साम्यता का समावेश है। उदाहरण के तौर पर साध्य-साधन की पवित्रता गांधी और महाप्रज्ञ दोनों को इष्ट थी। पवित्र लक्ष्य के लिए पवित्र साधन और पवित्र पथ का वरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मनीषियों की अहिंसा निर्जीव नहीं सजीव रूप में व्यक्त हुई। हिंसा का सामना करने के लिए अहिंसा प्रचण्ड शक्ति के रूप में मान्य बनीं, ऐसी शक्ति जिसके सम्मुख जगत की समस्त पशुता और शस्त्रबल अकिंचित् कर ठहरता है।

समन्वय की दिशा में मनीषियों के उन मौलिक विचारों का समावेश है जो एक दूसरे से नत्थि होकर वर्तमान की वैश्विक समस्याओं का अहिंसक नीति से समाधान निकालने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। समन्वय की शैली पर उजागर होने वाली भावी संभावनाओं का आकलन एवं निष्पक्ष प्रस्तुति के संकल्प का अनुशीलन किया गया है। संपूर्ण पंचम् अध्याय में इस तथ्य को उजागर करने का प्रयत्न किया गया है कि गांधी और महाप्रज्ञ के अहिंसा विषयक चिंतन में अद्भुत समानता, मौलिकता और सामयिकता का समावेश है, अपेक्षा है व्यापक प्रयोगभूमि पर प्रतिष्ठापन की।

प्रेरणा-प्रोत्साहन

प्रस्तुत कृति (पी.एच-डी. शोध प्रबंध) निष्ठ है। इसके आदि प्रेरणा स्रोत बनें भारत ज्योति युगप्रधान आचार्य श्री महाप्रज्ञ। आचार्य महाप्रज्ञ योग्यता के निर्मापक थे। आपश्री की अवितथ प्रेरणा और प्रोत्साहन ने मुझमें शोध जैसे गुरुत्तर कार्य से जुड़ने का आत्मविश्वास पैदा किया। आचार्य महाप्रज्ञ की प्राणवान् प्रेरणा ने मेरी संकल्पना को आकार दिया। प्रसंग राजगढ़ में पूज्य गुरूदेव के अल्पकालीन प्रवास का था। प्रातराश के पश्चात् मैं आचार्य महाप्रज्ञ की उपासना में बैठी थी। सहसा गुरूदेव ने मुख्य नियोजिका साध्वी श्री विश्रुत विभा जी को इंगित करते हुए मेरे लिए पूछा—'ये क्या अध्ययन कर रही है।' मैंने सहज भाव से निवेदन किया कि व्यवस्थित रूप से तो कुछ भी नहीं चल रहा है। गुरूदेव से आशीर्वाद मिला—तुम पी.एच.डी. कर सकती हो। मैंने अहोभाव से गुरू इंगित को प्रसन्नतापूर्वक शिरोधार्य किया। डॉ. दयानंद भार्गव जी से विषय चयन एवं डॉ. बच्छराज जी दूगड़, विभागाध्यक्ष अहिंसा एवं शांतिशोध, जैन विश्व भारती संस्थान के निर्देशन एवं अनन्य सहयोग से शोधकार्य सम्पन्न किया। उस सेतुभूत सहयोग के लिए कृतज्ञता ज्ञापन शब्द भी बौना रह जाता है, मैं सदैव आभारी रहूँगी। प्रणत हूँ प्रेरणा और पौरुष के आस्थान श्रद्धेय महामना आचार्य श्री महाश्रमणजी के प्रति जिनकी प्राणवान् करुणा ने मेरे कार्य को कृतार्थ बनाया।

नतमस्तक हूँ, अहर्निश सारस्वत समुपासना में तल्लीन ममता की मूरत आदरणीय महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा श्री कनकप्रभा जी के प्रति, जिन्होंने बहुत पहले ही मेरे पी-एच.डी. कार्य की मंगलकामना प्रदान कर मेरे कृतिकार्य को समुचित परिवेश दिया। डॉ. साध्वी श्री शुभप्रभा जी के फाईनल प्रूफ रीडिंग में उदारमना समय नियोजन के लिए आभारी हूँ। केशर फग्रेंस इन्स्टीट्यूट, गंगाशहर की डायरेक्टर डॉ. सुधा सोनी के आत्मीय सहयोग ने कार्य को गतिशील बनाया, उसके लिए साधुवाद।

इस कृति को देख कर मेरे संसार पक्षीय माताजी श्रीमती शांतिदेवी एवं अग्रजभ्राता श्री गुलाबचंद जी, सुजानमल जी सेठिया सह पारिवारिक सदस्यों को सात्विक गर्व और गौरव की अनुभूति हो रही है।

मन को कितना सुकून मिलता काश! मुझे प्रस्तुत कृति को करुणा के महास्त्रोत आचार्य श्री महाप्रज्ञ जी के चरणों में उपहृत करने का सौभाग्य मिलता, जिनकी उर्ज्जस्वल प्रेरणा ने मुझे यत्किंचित कार्य करने के लिये प्रोत्साहित किया।

लेखन कार्य में शताधिक ग्रन्थों का उपयोग किया गया। अतः उन सभी लेखक-संपादक समूह के प्रति हार्दिक अहोभाव सदैव समर्पित रहेगा। सपरिशिष्ट पांच अध्यायों में समायोजित कृति में रही त्रुटियों को पाठकवर्ग क्षम्य कर अपने मौलिक सुझावों से अनुग्रहीत करें। अहोभावपूर्वक सादर प्रणति चार पंक्तियों के साथ–

महात्मा गांधी और महाप्रज्ञ ने दिया उड़ने को अनंत आकाश,
जन-जन के मन में प्रतिष्ठित किया अहिंसा के प्रति विश्वास।
मेरे में कहां उस अनंत आकाश में उड़ने की ताकत?
पर, मैंने इस विषय में किया है, छोटा-सा प्रयास।

डॉ. साध्वी सरलयशा
एम.ए. गोल्ड मेडेलिस्ट,

अनुक्रम

अध्याय - 1

अहिंसा : विकास क्रम

पूर्ववृत्त 27

अहिंसा का ऐतिहासिक स्वरूप 28

विभिन्न दर्शनों में अहिंसा 47

अहिंसा एक : संदर्भ अनेक 55

महात्मा गांधी का अहिंसा में योगदान 79

आचार्य महाप्रज्ञ का अहिंसा में योगदान 92

अध्याय - 2

प्रेरणा स्रोत

पूर्ववृत्त 127

संस्कारों की मूल ईकाई 128

सांस्कृतिक मूल्य 135

आध्यात्मिक-नैतिक बोध पाठ 142

एक और स्रोत 148

महाप्रज्ञ के प्रेरणा स्रोत 153

अमूल्य बोध पाठ 155

परिवर्तन एवं नव निर्माण 161

सृजनात्मक कड़ियाँ बनाम आस्था 169

योग स्फुरणा : आदि स्रोत 175

जीवन के रहस्य : बनाम सफलता सूत्र 178

अध्याय - 3

अहिंसा : सैद्धांतिक स्वरूप

पूर्ववृत्त 187

अहिंसा की मूल इकाई : व्यक्ति 188

अहिंसा की प्रयोगशाला-परिवार 214

अहिंसक समाज : एक प्रारूप 221

अहिंसा का राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप 250

अध्याय - 4

अहिंसा : प्रायोगिक स्वरूप

पूर्ववृत्त 271

अहिंसा का आंदोलनात्मक स्वरूप 272

अहिंसा का संगठनात्मक स्वरूप 300

अहिंसा की तकनीक : अहिंसा प्रशिक्षण 309

हृदय परिवर्तन : एक विमर्श 326

परिवर्तन की सशक्त कड़ी : मूल्य बोध 337

अध्याय - 5

वैचारिक भेद और अभेद

पूर्ववृत्त 349

भेद दृष्टि के आधारभूत मानक 351

अभेद तुला : एक विमर्श 373

समन्वय की दिशा : एक चिंतन 399

परिशिष्ट

अहिंसा के साठ नाम 411

गांधी के उपवास 413

शिक्षा का आश्रमी आदर्श 415

अणुव्रत : आचार संहिता 417

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची 419

अध्याय-1

अहिंसा : विकास क्रम

पूर्ववृत्त

अहिंसा एक मंथर गति का पौधा है जो द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव के संयोग से कुंद और मुकुंद होता है। इतिहास के क्षितिज पर इसके आरोह-अवरोह के पदचिह्न अंकित है। अहिंसा धरती का व्यास है जिसका आदि-मध्य एवं अंतिम छोर पाना असंभव है। इसके ज्ञाता-ध्याता महापुरुषों ने इसके स्वर एवं शौर्य को समय-समय पर बुलंद किया और इसे प्राणोत्सर्ग के बदले भी प्राणवान् बनाये रखा।

अहिंसा के विकासात्मक स्वरूप में अहिंसा के विकास का चित्रण यह द्योतित करता है कि ग्रंथों-महाग्रंथों में इसकी कैसी भूमिका रही है? महापुरुषों ने इसे अपनाकर किस रूप में, कैसे प्राणवान् बनाया है? इत्यादि जिज्ञासाओं का समीचीन समाधान प्रस्तुत लेखन में खोजा जा सकता है। अहिंसा का विशद् विवेचन आगमों में गुंफित है जिसकी एक झलक पाठक के लिए सुलभ है। एक ओर वेद-उपनिषद् आदि आर्य ग्रंथों में अहिंसा को स्वीकृति मिली तो दूसरी ओर ऐतिहासिक थातिनुमा रचनाएँ-महाभारत, गीतादि में भी इसको स्थान मिला है जिसकी चर्चा प्रसंगतः की गयी है।

विभिन्न रूपों में, भिन्न संबोधनों से अहिंसा को जो प्रस्तुति मिली उसे विमर्श का विषय बनाया गया है। विशेष रूप से अहिंसा के विकास का स्रोत महात्मागांधी के समय में एक नया प्रवाहरूप धारण कर भारत की आजादी का अजेय-शस्त्र बना और पूरी दुनिया में उसकी द्यूत फैली। आधुनिक सुकरात-विवेकानंद की ख्याति प्राप्त आचार्य महाप्रज्ञ ने संपूर्ण भारत भ्रमण के दौरान व्यापक जन संपर्क के आधार पर न केवल अहिंसा विकास की बात कही अपितु हिंसा के मूल कारणों की खोज की। तथ्यों के आधार पर उन्होंने बतलाया कि गरीबी और रोटी का अभाव आदमी को हिंसा के लिए प्रेरित करता है। नक्सलवाद, आतंकवाद, उग्रवाद इसी गरीबी और शोषण की आग से निकली चिंगारियाँ हैं जो स्वतंत्र भारत के कई राज्यों को अपनी लपेट में ले रही हैं। समीक्षण पूर्वक उन्होंने प्रयोग और प्रशिक्षण प्रक्रिया को प्रस्तुत कर, अहिंसा के विकास की नई संभावनाओं को उजागर किया है।

अहिंसा का ऐतिहासिक स्वरूप

अहिंसा उत्स : एक दृष्टि

भारतीय संस्कृति का प्राण तत्त्व है—अहिंसा। बगैर इसके जैविक अस्तित्व की परिकल्पना धुंधली-सी प्रतीत होती है। मानव संस्कृति का जो विकस्वर स्वरूप आज हम देख रहे हैं उसकी पृष्ठभूमि में अहिंसा का सत्त्व निहित है। जीव जगत् की जिजीविषा एवं दुःखमुक्त परमावस्था की अभिप्सा से अनुस्यूत अहिंसा की अमीय स्रोतस्विनी कालचक्र के नाना अवरोह-आरोह के बावजूद अनादिकाल से गतिमान है। इतिहास के क्षितिज पर इसके उन्मेष-निमेष का अन्वेषण जिज्ञासु के लिए रहस्यमय है। मानव अस्तित्व से जुड़े संप्रत्यय का आदि बिंदु पाना अपने आप में जटिल पहेली है। अहिंसा की भावना कब और क्यों उत्पन्न हुई? अहिंसा शब्द का प्रयोग कब से होने लगा? ये महत्त्वपूर्ण अन्वेषणीय प्रश्न हैं। इनका सही-सही इतिहास जानना कठिन है। प्राक् ऐतिहासिक काल की ओर दृष्टिपात करने पर 'अहिंसा' जैसे शब्द का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। इससे संबंधित कुछ जानकारी साहित्य और कल्पना के आधार पर मिलती है।

यौगलिक युग के आरंभ काल में 'अहिंसा' शब्द की उत्पत्ति का प्रश्न ही नहीं उठा। वर्तमान अवसर्पिणी काल के प्रथम मूर्धाभिषिक्त राजा ऋषभ ने सामाजिक, राजनैतिक व्यवस्थाओं का सूत्रपात किया उसमें भी अहिंसा का कोई रूप सामने नहीं आया। कर्मयुग के प्रवर्तनांतर भगवान् ऋषभ आत्म साधना के पथ पर चल पड़े। साधना का प्रारंभ 'सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि—आज से मैं सर्व सपाप प्रवृत्तियों को त्यागता हूं। इस भावना के साथ किया। इसका आधार जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में मिलता है।'[1] उन्होंने जो साधना का पक्ष स्वीकार किया, वह अहिंसामय था। ऋषभ देव ने सर्व प्राणातिपात का विरमण किया। यहीं से अहिंसा का स्रोत बहा। उपदेश लब्ध धर्म का प्रवर्तन हुआ। संभव है प्राथमिक तौर पर अहिंसा के लिए प्राणातिपात विरति (प्राण वध का त्याग) शब्द प्रयोग में आया और अहिंसा का उसके बाद में। कल्पना की दृष्टि से भी यह संगत लगता है। सर्वप्रथम जब दूसरों को न मारने की भावना उत्पन्न हुई, तब उसकी अभिव्यक्ति के लिए 'प्राणातिपात विरति' शब्द ही पर्याप्त था। पश्चात्-प्राणातिपात की भावना विकसित होते-होते चतुरूप बन गई—

1-2 पर-प्राणवध जैसे पाप है, वैसे स्व-प्राणवध भी पाप है।

3-4 पर के आत्मगुण का विनाश करना जैसे पाप है, वैसे अपने आत्म-गुण का विनाश करना भी पाप है। 'प्राणातिपात विरमण' के विस्तृत अर्थ को संक्षेप में रखने की आवश्यकता के साथ ही यह अनुभव में आया कि प्राण-वध के बिना भी प्रवृत्तियां सदोष देखी जाती है। अतः एक ऐसे शब्द

की अपेक्षा हुई, जो केवल प्राण-वध का अभिव्यंजक न होकर सदोष-प्रवृत्ति मात्र (आत्मा की विभाव परिणतिमात्र) का व्यंजक हो। इस खोज की निष्पत्ति में 'अहिंसा' शब्द का प्रादुर्भाव हुआ। अहिंसा का संबंध केवल प्राण-वध से न होकर असत्-प्रवृत्ति मात्र से होता है। इस कल्पना को साहित्य का आधार भी उपलब्ध है।[2] अहिंसा विषयक गहन अध्ययन-मनन से उपजा महाप्रज्ञ का अहिंसा उत्स संबंधी चिंतन मौलिक है फिर भी इसके निर्णायक स्वरूप की प्रस्तुति जिज्ञासु के लिए खोज का अवकाश रखती है।

अहिंसा : अर्थ स्वरूप

अहिंसा के अथाह समुद्र में अवगाहन से पूर्व शब्द मीमांसा का अर्थबोध जरूरी है। 'अहिंसा (संस्कृत, स्त्रीलिंग शब्द) अर्थात् अद्रोह, किसी प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट न देना।' अहिंसा का व्योत्पत्तिक अर्थ है—'न हिंसा, अहिंसा' अर्थात् हिंसा का न होना। 'अहिंसा अहिंसनं प्राणिनाम् अपीड़नम्' हिंसा न करना, किसी को दुःख या कष्ट न देना अहिंसा है।[3] इस व्योत्पत्तिकी व्याख्या के अनुसार अहिंसा का अर्थ निषेधात्मक ही निकलता है पर इसकी परिभाषा में जितना व्यापक नकारात्मक अर्थ ध्वनित है उतना ही व्यापक विधेयात्मक भी। यथा किसी को न मारना, न सताना, अहिंसा की परिभाषा के अभिधेय है, उसी प्रकार सबके साथ मैत्री और बन्धुता का बर्ताव करना भी उसका वाच्यार्थ है।

'अहिंसा' शब्द में व्यापक अर्थ छिपा है। पृष्ठभूमि में हिंसा का अर्थ बोध जरूरी है। हिंसा शब्द हननार्थक 'हिंसि' धातु से बना है। हिन्दी कोश में—स्व व पर के अन्तरंग व बाह्य प्राणों का हनन करना हिंसा है—रागादि स्व हिंसा है और षट्कायजीवों को मारना या कष्ट देना पर हिंसा है। पर हिंसा भी स्व हिंसा पूर्वक होने के कारण परमार्थ से स्व हिंसा ही है।[4] दीपिकाकार के अनुसार—'असद् प्रवृत्ति या असद् प्रवृत्ति पूर्वक किसी प्राणी का प्राण-वियोजन हिंसा है।' महावीर की भाषा में हिंसा का अर्थ है—असंयम एवं प्रमाद। प्रमाद कषाय आदि के वशीभूत होकर किसी प्राणी के प्राणों का व्यपरोपण करना हिंसा है।[5] हिंसा के स्थूल रूप को सूक्ष्म प्रस्तुति दी गई। 'हिंसा' शब्द केवल एक संकेत मात्र है। इससे समस्त सावद्य योग का ग्रहण किया गया है।[6] पुरुषार्थ सिद्धयुपाय के अनुसार 'कषाय योग अथवा प्रमत्त योग से किया गया द्रव्य-भाव प्राणवध हिंसा है।' इस कथन का अभ्युपगम है कि हिंसा का मूल कारण कषाय है। कषाय की तीव्रता और मंदता के कारण हिंसा की क्रिया में तरतमता देखी जाती है। एतद् रूप कषाय संकुल जितनी अवस्थायें हैं हिंसा के उतने ही कारण हैं। भाव हिंसा परोक्ष है पर आत्मा को कलुषित बनाने में इसकी अहं भूमिका है। हिंसा को अद्वैतानुभूति के स्तर पर प्रस्तुत किया—'आत्मा ही हिंसा है और वही अहिंसा है, ऐसा जिनागम में निश्चय किया है। अप्रमत्त को अहिंसक और प्रमत्त को हिंसक कहते है।'[7] हिंसा को समझने के लिए इसके दो रूप महत्त्वपूर्ण हैं—द्रव्य हिंसा और भाव हिंसा। प्राण व्यपरोपण द्रव्य हिंसा है और प्राण व्यपरोपण का मानसिक विचार भाव हिंसा है।

हिंसा को अधिक गहराई से समझने के लिए जैनाचार्यों ने इसका वर्गीकरण चार रूपों में किया है—

1. **संकल्पी हिंसा**—केवल निर्दय परिणाम ही हेतु है जिसमें ऐसे संकल्प पूर्वक किया गया प्राणघात।
2. **उद्योगी हिंसा**—व्यापारादि कार्यों में सावधानी बरतते हुए भी होने वाली हिंसा।
3. **आरंभी हिंसा**—गृहस्थी के आरंभादि कार्यों में सावधानी रखते हुए भी होने वाली हिंसा।

4. विरोधी हिंसा–अपने तथा अपने परिवार, धर्मायतन, समाज देशादि पर किये गये आक्रमण से रक्षा के लिए अनिच्छापूर्वक की गई हिंसा।[8]

इस चतुःरूप में हिंसा के समग्र संदर्भों का संस्पर्श है। हिंसा की विभिन्न परिभाषाएँ, व्याख्याएं, प्रकार अहिंसा के सूक्ष्म अन्वेषण की पृष्ठभूमि में महत्त्वपूर्ण हैं।

आधार भित्ति

अहिंसा के थाह को पाने हेतु इसकी आधार भित्ति का अन्वेषण अत्यन्त अपेक्षित है। अहिंसा मात्र काल्पनिक है अथवा इसे ठोस धरातल भी प्राप्त है? इस जिज्ञासा के संदर्भ में एक नूतन आलोक अनुभूति के स्तर पर खोजा जा सकता है। विराट् स्वरूपा अहिंसा का प्रणयन किसने किया? इसका सटीक समाधान प्रश्न व्याकरण सूत्र में किया गया है–'यह भगवती अहिंसा वह है जो अपरिमित-अनन्त केवल ज्ञान-दर्शन को धारण करने वाले, शीलरूपगुण, विनय, तप और संयम के नायक तीर्थ की स्थापना करने वाले, जगत् के समस्त जीवों के प्रति वात्सल्य धारण करने वाले, त्रिलोक पूजित जिनवरों द्वारा अपने केवल ज्ञान-दर्शन द्वारा सम्यक् रूप में स्वरूप, कारण और कार्य के दृष्टिकोण से निश्चित की एवं उसका आचरण किया।'[9] प्रकट रूप से जिन्होंने अहिंसा का प्रतिपादन किया उन तीर्थंकरों ने स्वयं आचरण भी किया।

आचरणशून्य आलेख (उपदेश) अरण्य प्रलापवत् निष्फल होता है। आचरणात्मक पक्ष से परिपुष्ट अहिंसा का उल्लेख–'मैं कहता हूँ–जो अर्हत् अतीत में हुए हैं; वर्तमान में हैं और भविष्य में होंगे–वे सब अहिंसा का उग्र निरूपण करते हैं, किया है एवं करेंगे।'[10] इससे यह स्पष्ट है कि अहिंसा एक ऐसा आलोकिक तत्त्व है जिसका सभी अर्हत समान रूप से प्रवचन और आचरण करते हैं। एतद् विषयक अहिंसा की त्रैकालिकता और विज्ञता का निदर्शन कराने वाला हृदयग्राही तथ्य आचारांग सूत्र में उपलब्ध है–'यह अहिंसा धर्म जो कहा जा रहा है, वह दृष्ट, श्रुत, मत और विज्ञात है।'[11] इसका संवादी सूत्र भी इसी में है–'यह अहिंसा धर्म शुद्ध, नित्य और शाश्वत है। आत्मज्ञ अर्हतों ने लोक (जीव-समूह) को जानकर इसका प्रतिपादन किया।'[12] आचार्य महाप्रज्ञ ने आचारांग भाष्य में लिखा–'जो धर्म आत्मज्ञ व्यक्तियों द्वारा प्ररूपित होता है वह तात्त्विक रूप से एक होता है। जो तात्त्विक रूप से एक नहीं होता वह आत्मज्ञ व्यक्तियों द्वारा प्ररूपित नहीं होता।'[13] यथार्थतः अहिंसामृत वीतराग चेतना से उद्भूत तत्त्व चिंतामणी है जिसका दिव्यालोक हर स्थिति में प्रकाशमान रहता है।

अहिंसा का एक और आधारभूत स्तम्भ है–जिजीविषा। 'जीवन की आशंसा जैसे मुझमें है वैसे ही दूसरों में है। सब प्राणियों को अपना जीवन प्रिय है--इस सत्य को देखकर भय और वैर से उपरत पुरुष प्राणियों के प्राणों का घात न करें।'[14] इस संदर्भ में तीन महत्त्वपूर्ण तथ्य उजागर होते हैं–

1. सभी जीवों में अपने-अपने जीवन की प्रियता होती है।
2. भय हिंसा का कारण है।
3. हिंसा से वैर की परंपरा वृद्धिंगत होती है।

जीवन की प्रियता सभी प्राणियों में समान रूप से विद्यमान है फिर चाहे वह किसी भी स्थिति में क्यों न हो? इस आशय को महत्त्व देते हुए निर्ग्रन्थ के लिए विशेषरूप से दसवेंआलियम् सूत्र में विधान किया गया–'सब जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता, इसलिए निर्ग्रन्थ प्राणीवध का वर्जन करते हैं।' प्राणी जगत् की आशंसा के संरक्षण का यह महत्त्वपूर्ण विधान है जिसे निर्ग्रन्थ जीवनपर्यंत व्रत स्वरूप धारण करता है। आचारांग सूत्र में जैविक आशंसा को अधिक स्पष्टता एवं

विस्तार के साथ प्रस्तुत किया गया—'सभी प्राणियों को अपनी-अपनी आयु प्रिय है, सुख अनुकूल है, दुःख प्रतिकूल है। वध सबको अप्रिय है, जीना सबको प्रिय है। सब जीव लम्बे जीने की कामना करते हैं। सभी को जीवन प्रिय लगता है।'[15] संक्षेप में देखें तो जीव जगत् की जिजीविषा को त्राण देने वाला तत्त्व है—अहिंसा।

यथार्थ की भूमिका पर अहिंसा की आधार भित्ति के दो महत्त्वपूर्ण स्तम्भ हैं—अर्हत् अनुभूति से आचरित, उद्गिरित अहिंसा एवं प्राणीमात्र में पाने वाला जिजीविषाभाव।

आचरण पक्ष

अहिंसाव्रती का प्रथम संकल्प समस्त हिंसात्मक क्रियाओं के परित्याग का है। आचारांग सूत्र में उल्लेख है—'मैं अहिंसा धर्म में दीक्षित होकर हिंसा नहीं करूँगा।'[16] प्रव्रज्या के समय मुनि षड्जीवनिकाय के संयम हेतु समुत्थित होता है, इसलिए वह बार-बार इस संकल्प को दोहराता है—'अब मैं मुनि हो गया हूँ ,षड्जीवनिकाय के संयम के लिए उठ चुका हूँ, इसलिए गृहस्थावस्था में मैंने जो वनस्पत्यादि जीवों का आरंभ किया है, उसे अब नहीं करूँगा। पूर्व जीवन की आलोचना पूर्वक साधक संयम साधना में उद्यत होता है। षड्जीवनिकाय के संयम पर बल देने का आशय है अहिंसा के सूक्ष्म रहस्य को पाना। षड्जीवनिकाय का उल्लेख आगमिक है—'संसारी जीवों के छह निकाय (समुदाय) कहे गये हैं।'[17] यथा पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय एवं त्रस काय।

अहिंसा की अखंड साधना के लिए समर्पित व्यक्ति ही कर्म समारंभ से दूर रहता है—'मेधावी उस कर्म-समारम्भ का विवेक कर इन सूक्ष्म जीव-कायों के प्रति स्वयं दंड का प्रयोग न करें, दूसरों से न करवाए और करने वालों का अनुमोदन न करे।'[18] हिंसा के लिए 'दंड' शब्द का प्रयोग इसके सूक्ष्मतर अंश का ग्राही है। भाष्यकार के अभिमत में—'मुनि अहिंसा महाव्रत की साधना के लिए समर्पित होता है। उसने तीन करण और तीन योग से कर्म-समारंभ का परित्याग किया है। ऐसी साधना अहिंसा के प्रति पूर्ण समर्पित व्यक्ति के लिए ही संभव है, दूसरे के लिए नहीं।'[19] तीन करण और तीन योग का अर्थ है, वह मन से वचन एवं काया से न स्वयं करता है, न दूसरों से करवाता है, न ही करने वाले की हिंसा का अनुमोदन करता है।

मुनि अहिंसा का पर्याय है। समणसुत्तं के अनुसार—'जो ज्ञानी कर्म क्षय के लिए उद्यत हुआ है, हिंसा के लिए नहीं; वह निश्छलभाव से अहिंसा के लिए प्रयत्नशील रहता है। वह अप्रमत्त मुनि अहिंसक होता है।'[20] अहिंसा प्रधान जीवन शैली के आधार पर समण का निर्युक्त किया गया—'जो स्वयं न हनन करता है, न करवाता है और न करने वाले का अनुमोदन करता है, वह समण होता है।'[21] अपने इन गुणों के कारण ही समण को षड्जीवनिकाय का पीहर कहा गया है क्योंकि उससे समस्त प्राणियों को अभयदान मिलता है। भाष्य में स्पष्ट किया गया। 'आत्मरमण का पहला लक्षण है—अहिंसा। वह महान् अहिंसक व्यक्ति आत्मा में रमण करता हुआ किसी भी प्राणी की न स्वयं हिंसा करता है, न दूसरों से कराता है और न हिंसा करने वाले का अनुमोदन करता है।'[22]

अहिंसा का मर्मज्ञ कौन?—'जो बन्ध से मुक्त होने की खोज करता है वह मेधावी अहिंसा के मर्म को जान लेता है।'[23] अहिंसा के सूक्ष्म स्वरूप को जानने वाला ही उसकी अखंड आराधना का अधिकारी बन सकता है। हेतु, तर्क और तथ्यों के आधार पर समग्ररूप से अहिंसा को जानने वाला ही उसका ठीक-ठीक पालन करने में सफल हो सकता है।

आगम के आलोक में

आगम साक्षात् द्रष्टा की सत्यानुभूति का आलोक है। आगमों का माहात्म्य असीम है। वैदिक परंपरा में जो स्थान वेदों का, बौद्ध परंपरा में जो स्थान त्रिपिटक का, ईसाई मत में जो स्थान बाइबिल का और इस्लाम में जो स्थान कुरान का है वही स्थान जैन परंपरा में आगमों का है। इनमें अहिंसा का प्रतिपादन आत्मानुभूति के आधार पर किया गया है। अहिंसा के विराट् रूवरूप को प्रकट करने वाली अनेकशः परिभाषाएं आगमों में अंकित है। उनमें अहिंसा का विविधोन्मुखी स्वरूप प्रकट हुआ है। संयम, समता, आत्मतुला, मोक्षव्याप्ति, अणुव्रत, महाव्रत, आदर्श समाज-व्यवस्था के सूत्र इनमें प्रमुख हैं। प्रस्तुत संदर्भ में कतिपय परिभाषाओं का मनन अभीष्ट है।

सभी जीवों के प्रति संयमपूर्ण जीवन-व्यवहार ही अहिंसा है।[24] यह अहिंसा के उच्च स्वरूप का निदर्शन है। इसमें सामान्य रूप से उठाई जाने वाली आपत्ति—'जैन लोग जितना प्राणी को न मारने पर बल देते हैं उतना मानसिक हिंसा या अहिंसा पर नहीं देते' का निरसन हुआ है। इसका स्पष्ट आशय है—वीतराग वाणी में हिंसा का अर्थ है—असंयम, अहिंसा का अर्थ है—संयम। हिंसा का अर्थ है—प्रमाद, अहिंसा का अर्थ है—अप्रमाद। संयम ही अहिंसा है, अप्रमाद ही अहिंसा है। इस विवेचन में मानसिक अहिंसा व हिंसा का समावेश स्पष्ट है। संयम का अर्थ है—निग्रह करना। अठारह पापों का निग्रह, प्रत्याख्यान। इस परिभाषा में अहिंसा का मूल हृदय समाविष्ट है। स्थूल दृष्टि व्यक्ति सूक्ष्मता को कम पकड़ पाता है। इसलिए अहिंसा के संदर्भ में यह निर्देश दिया गया—किसी को मारो मत। मत मारो—यह कहकर मनुष्य के मन में करुणा का भाव पैदा किया गया, अनुकंपा पैदा की गई। जब करुणा का विकास होता है तब वह न मारने तक ही सीमित नहीं रहता, उसमें प्रेम का भाव भी बढ़ता है। जिस व्यक्ति में प्रेम और मैत्री का भाव विकसित है, वह प्राणीमात्र के लिए मैत्री का विकास करेगा—यही संयम की फलश्रुति है।

'प्राणातिपात विरति ही अहिंसा है।' प्राणीमात्र की हिंसा न करने का दृढ़ संकल्पी ही अहिंसा महाव्रती होता है, जीवमात्र का रक्षक होता है। उसकी सर्व प्राणातिपात विरति की प्रतिज्ञा इसका पुष्ट प्रमाण है। शास्त्रकारों ने स्थान-स्थान पर मुनि को षड्जीवनिकाय का संरक्षक कहा है। उसका प्रयोजन—'सव्वजग्गजीवरक्खणदयठयारा पावायण भगवया सुकहिअ' भी चरितार्थ होता है जो कि भगवान महावीर ने अहिंसा की प्रवृत्ति करने के लिए किया। अहिंसा में सब जीवों की रक्षा या दया अपने-आप समाविष्ट है। जो अपने लिए अहिंसक यानी पूर्ण आत्मसंयमी है, वही दूसरों के लिए रक्षा या दया है। महावीर ने प्रवचन के विस्तार में अहिंसा का अनेक रूपों में प्रतिपादन किया है।

अहिंसा की सूक्ष्म मीमांसा—'मन, वचन और काया—इनमें से किसी एक के द्वारा भी किसी प्रकार के भी जीवों की हिंसा न हो—ऐसा व्यवहार ही संयम जीवन है। इस जीवन का निरंतर धारण ही अहिंसा है।'[25] अहिंसा के विकास की उच्च स्थिति में इसका पूर्ण पालन संभव होता है। अप्रमत्त मुनि ही इस कोटि की अहिंसा साध सकता है।

अहिंसा अणुव्रत को परिभाषित किया-मन, वचन और काय से तथा कृतकारित और अनुमोदन से त्रस जीवों की सांकल्पिक हिंसा का परित्याग करने को अहिंसा अणुव्रत कहते हैं।[26] श्रावक अहिंसा की इस कोटि का साधना करता है। उसे लक्षित करके अहिंसा अणुव्रत का प्रतिपादन किया गया है।

भावनात्मक स्तर पर रागादि भावों की अनुद्भूति या अनुत्पत्ति को अहिंसा कहते हैं। इसमें

हिंसा के मूल बीज रागादि भावों का चित्रण है, वह इस बात का द्योतक है कि जब तक भावनात्मक स्तर पर राग-द्वेष का अस्तित्व विद्यमान रहेगा तब तक अहिंसा की उच्च स्थिति का विकास संभव नहीं होगा। अहिंसा का शाश्वत सिद्धांत है—राग-द्वेष-मुक्त क्षण में जीना। 'शत्रु अथवा मित्र सभी प्राणियों पर समभाव की दृष्टि रखना ही अहिंसा है।'[27] इस कथन में मैत्री का संदेश ध्वनित है। इसे विधेयात्मक अहिंसा का स्वरूप भी कहा जा सकता है। इससे प्रकट होता है कि अहिंसा में मैत्री है, सद्भावना है, सौहार्द है, एकता है। इसका संवादी कथन है—'मेत्तिं भूएसु कप्पए'। प्राणी मात्र के प्रति मैत्री का बर्ताव करो। इसमें सह-अस्तित्व का सिद्धांत समाया हुआ है। सह-अस्तित्व का भाव विश्व-शांति की समस्या का बहुत बड़ा समाधान है। सह-अस्तित्व का सिद्धांत अहिंसा का प्राणभूत तत्त्व है। कथन में अतिरंजना न होगी कि सह-अस्तित्व के बिना अहिंसा सफल नहीं, अहिंसा के बिना सह-अस्तित्व सफल नहीं। दोनों को बांटा नहीं जा सकता।

जैविक, वैयक्तिक, सामाजिक परिवेश को आप्यायित करने वाली महत्त्वपूर्ण अहिंसा की परिभाषा आचारांग सूत्र में मिलती है—'सब प्राणियों को मत मारो, उन पर अनुशासन मत करो, उनका परिग्रह (ममकार) मत करो, उनको परितापित मत करो, उनका प्राण वियोजन मत करो, यह (अहिंसा) धर्म ध्रुव, नित्य और शाश्वत है।[28] इस संदर्भ में जीववाची चार शब्दों—प्राण, भूत, जीव और सत्त्व का संज्ञान महत्त्वपूर्ण है। आचारांग भाष्य के अनुसार—

प्राण—जो आन, अपान, उच्छ्वास और निःश्वास से युक्त हैं—वे प्राण कहलाते हैं।
भूत—जो थे, हैं और रहेंगे—वे भूत कहलाते हैं।
जीव—जिससे जीव जीता है, जो जीवत्व और आयुष्य कर्म का उपजीवी है—वह जीव है।
सत्त्व—जिसमें शुभ-अशुभ कर्मों की सत्ता है—वह सत्त्व है।

प्रस्तुत अहिंसा सूत्र में पाँच आदेश हैं—

1. उनका हनन नहीं करना चाहिए—दंड, चाबुक आदि साधनों से।
2. उनका हनन नहीं करना चाहिए तथा उन पर शासन नहीं करना चाहिए—बल पूर्वक आदेश देकर।
3. उनका परिग्रह नहीं करना चाहिए—ये मेरे भृत्य, दास-दासी हैं—इस प्रकार ममकार के द्वारा।
4. उन्हें परिताप नहीं देना चाहिए—शारीरिक और मानसिक पीड़ा उत्पन्न कर।
5. उनका उद्द्रवण नहीं करना चाहिए—प्राण वियोजन के द्वारा।[29]

आचार्य महाप्रज्ञ ने आशय स्पष्ट किया—भगवान महावीर का यह संदेश है कि—किसी को मत मारो, मत सताओ, पीड़ा मत दो, दास-दासी बना हुकूमत मत करो, बलात् किसी को अपने अधीन मत करो। जो अपनी वेदना को समझता है, वही दूसरों की वेदना को समझता है। जो व्यक्ति धर्म, अर्थ और काम के लिए जन्म मृत्यु से मुक्त होने के लिए मान, प्रतिष्ठा और बड़प्पन के लिए दूसरे जीवों को मारते हैं, वह उनके हित के लिए नहीं होता। हिंसा कायरता है। जो सत्त्वहीन होता है, वही दूसरों को मारता है। अहिंसा वीर धर्म है।

भगवत् वाणी में अहिंसा अनेक रूपों में प्रकट हुई—'प्राणीमात्र को दुःख न देना, शोक उत्पन्न न करना, न रुलाना, न अश्रुपात करना, न उन जगज्जीवों को ताड़न-तर्जन देना।'[30] इसमें जगज्जीव शब्द विशेष रूप से मननीय है। इसका आशय सूत्रकृतांग सूत्र के मोक्ष मार्ग में अधिक स्पष्ट हुआ

है—'पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय—ये षट्कायिक जीव संसार में हैं। इनके अतिरिक्त कोई जीव निकाय नहीं है। बुद्धिमान पुरुष इन षट्कायिक जीवों में 'सबको दुःख अप्रिय है'—ऐसा सम्यक् प्रकार से समझकर, सबके प्रति अहिंसा करें। ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक् दिशा में जो भी त्रस और स्थावर प्राणी हैं, उनकी हिंसा से निवृत्ति को ही निर्वाण कहा गया है।'[31] अहिंसा की इतनी सूक्ष्म प्रतिपत्ति वीतराग वाणी में ही संभव है। स्थूल दृष्टिवान को जगज्जीवों के अस्तित्व को भी स्वीकारने में कठिनाई होती है फिर इनके प्रति अहिंसा का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता।

अहिंसा का उच्च आदर्श एवं इसकी पूर्णता को प्रकट करने वाला स्वर 'आत्मतुला' के रूप में मुखरित है—'प्राणीमात्र को आत्म-तुल्य समझो।' विशेष कथन—'छह जीव निकाय को अपनी आत्मा के समान समझो।'[32] 'एवं तुलमन्नेसिं' आदि सूक्त प्राणीमात्र के साथ समता का अन्वेषण करने की प्रेरणा देते हैं। भगवान महावीर की वाणी से इस प्रकार समता का स्वर निकला। आत्मौपम्य चेतना का अनुभव एकात्मवाद का फलित है। प्रश्न हो सकता है—ऐक्यबुद्धि-अभेदबुद्धि में कैसी अहिंसा? प्रतिप्रश्न उठता है—आत्मैक्य के बिना कैसी अहिंसा? अहिंसा या दया आत्मनिष्ठ है, आत्मगुण है। वह आत्मा से उपजती है, समानता की भावना से पुष्ट होती है। तात्पर्य की भाषा में अहिंसा का अर्थ है—अपना बचाव। उसमें दूसरों की रक्षा या दया, जो भी कहें—अपने-आप हो जाता है।

आत्मानुभूति के आलोक में अहिंसा का सिद्धांत है—जो तुम स्वयं नहीं चाहते, दूसरों के लिए भी वैसा मत करो। तुम्हें सुख प्रिय है और दुःख अप्रिय तो दूसरों को भी तुम दुःख मत दो, कष्ट मत दो, मत सताओ। सूत्रकृतांग सूत्र में इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति है—जैसे मेरे लिए यह अप्रिय होता है, (यदि)—डंडे, हड्डी, मुट्ठी, ढेले या खप्पर से मुझे कोई पीटे-मारे, तर्जना और ताड़ना दे, परितप्त और क्लांत करे, प्राण से वियोजित करे और यहां तक कि रोम उखाड़ने-मात्र से भी हिंसा-कारक दुःख और भय का प्रतिसंवेदन करता हूं—ऐसा तुम जानो। इसी तरह किसी अन्य के प्राण, भूत, जीव और सत्त्व को डंडे से, अस्थि से, मुट्ठी से, ढेले से या खप्पर से कोई पीटे-मारे, तर्जना और ताड़ना दे, परितप्त और क्लांत करे, प्राण से वियोजित करे तब यहां तक कि रोम उखाड़ने-मात्र से भी हिंसाकारक दुःख और भय का प्रतिसंवेदन करते हैं। (आत्मतुला से) ऐसा जानकर किसी भी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व को न मारे, न अधीन बनाए, न दास बनाए, न परिताप दे और न प्राण से वियोजित करे। यह धर्म ध्रुव, नित्य और शाश्वत है।'[33] इसका व्यापक दृष्टिकोण ध्वनित होता है—प्रत्येक आत्मा समान है। जैसे मुझे सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है वैसे ही एक छोटे-से पौधे को भी दुःखानुभूति होती है।

आचारांग सूत्र का संदेश है—'मतिमान् पुरुष जीवों के अस्तित्व का मननकर—सब जीव अभय चाहते हैं, इस आत्मतुला को समझकर—किसी की भी हिंसा नहीं करता।'[34] आत्मतुला की अनुभूति से भावित साधु पूर्ण अहिंसक जीवन जीने के संकल्प से छह जीवनिकाय की हिंसा का परित्याग करता है। जब आत्मतुला का विकास हुआ तब यही आत्मतुला अद्वैत के स्वर में मुखरित हुई। अहिंसा के संदर्भ में अद्वैत की प्रस्तुति है। 'जिसे तू हनन-योग्य मानता है, वह तू ही है। जिसे तू आज्ञा में रखने योग्य मानता है, वह तू ही है, जिसे तू परिताप देने योग्य मानता है, वह तू ही है। जिसे तू दास बनाने योग्य मानता है, वह तू ही है। जिसे तू मारने योग्य मानता है, वह तू ही है।'[35] इसके आशय को महाप्रज्ञ ने भाष्य में स्पष्ट किया—जिसे तू हनन-योग्य मानता है, वह तू ही है। इस वाक्य

में आत्म का अद्वैत प्रतिपादित है। जिसको तू मारना चाहता है, वह तेरे से भिन्न नहीं है। क्या तू उसकी घात करता हुआ स्वयं की घात नहीं कर रहा है? इस अद्वैत की अनुभूति से हिंसा से सहज विरति हो जाती है। जहाँ द्वैत की या पर की अनुभूति होती है, वहां हनन आदि का प्रसंग आता है। इसलिए यहाँ आत्मा के अद्वैत स्वरूप का उपदेश दिया गया है। प्रकट रूप से आचारांग अद्वैत के निर्वचन का ग्रंथ है। इसमें केवल इतना ही नहीं बताया गया—किसी जीव को मत मारो, किंतु यह निर्देश भी दिया गया कि प्रत्येक प्राणी के साथ अद्वैत स्थापित करो। प्रत्येक प्राणी के साथ अद्वैत की अनुभूति अहिंसा का महान् प्रयोग है। जब तक यह अनुभूति जागृत नहीं होती तब तक कोई पूर्ण अहिंसक बन नहीं सकता। जब तक प्रत्येक प्राणी के साथ एकात्मकता की अनुभूति नहीं जागती तब तक हिंसा का संस्कार टूटता नहीं है।

अद्वैतानुभूति के स्तर पर हिंसा-विरति का भाव पुष्ट बनता है। इस कथन को स्थापित करने वाली वीतराग वाणी 'सब आत्माएं समान हैं'—यह जानकर पुरुष समूचे जीवलोक की हिंसा से उपरत हो जाए। इस सूत्रात्मक कथन को भाष्यकार ने गहराई में निमज्जन करके व्याख्यायित किया। 'लोक' का अर्थ है—जीव समूह। 'सभी प्राणियों की आत्मा समान है' यह जानकर मुनि हिंसा से उपरत हो जाता है। जिन-जिन हेतुओं से जीवों का वध होता है, वे सारे हेतु शस्त्र कहलाते हैं। अहिंसक और अपरिग्रही व्यक्ति सभी शस्त्रों से उपरत होता है। यहां अहिंसा के संदर्भ में समता का अर्थ है—आत्मतुला, सभी प्राणियों को अपनी आत्मा के समान समझना और अपरिग्रह के संदर्भ में समता का अर्थ है—लाभ, अलाभ आदि द्वंद्वों में समभाव रखना।[36] हिंसा विरत मुनि का महत्त्वपूर्ण विशेषण दण्ड-भीरु (हिंसा-भीरु) भी मिलता है। जिसका स्पष्ट आशय है कि कर्म-समारंम्भ का विवेक कर मुनि सर्व हिंसा से उपरत बनें।

प्रश्नव्याकरण सूत्र में हिंसा-अहिंसा की जो प्रस्तुति विस्तृत रूप से हुई वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। अहिंसा की सूक्ष्मता में जानने हेतु हिंसा के विषय में प्रकाश डाला गया- 'प्राणवध रूप हिंसा के विविध आयामों के प्रतिपादक गुणवाचक यथा—प्राणवध, अविश्वास, हिंस्य-विहिंसा, अकृत्य, घात, मारण, वधना, उपद्रव, अतिपातना.....गुणों की विराधना इत्यादि तीस नाम हिंसा के हैं।'[37] इस वर्णन में हिंसा का सूक्ष्म स्वरूप ज्ञातव्य है। अधिकांशतया हिंसा को मात्र प्राणवध की दृष्टि से ही देखा जाता हैं। स्थूल दृष्टि वालों के लिए इसका अतिसूक्ष्म रूप—अविश्वास, अकृत्य, उपद्रव भी हिंसा है, वास्तव में मननीय है।

हिंसा के सूक्ष्म उल्लेख के साथ अहिंसा को अधिक विस्तार पूर्वक प्रस्तुति दी। पंच संवर द्वार में प्रथम अहिंसा है। प्रश्न व्याकरण सूत्र में अहिंसा के साठ नामों का उल्लेख है।* गुणनिष्पन्न साठ नामों के अतिरिक्त अन्य नाम भी हैं। जिन्हें चार श्रेणियों में रख सकते हैं:—

- मुमुक्षु के सात्विक भावों की परिचायक, यथा—निर्माण, निवृत्ति, समाधि, तृप्ति, क्षान्ति, बोद्धि, धृति, विशुद्धि आदि।
- संपूर्ण प्राणी जगत् के प्रति दया—करुणा से भावित, परपीड़ा जनक कार्य से दूर, यतनाचार समिति की कोटि में गृहित, यथा—दया, रक्षा, समिति, अमाघात आदि।
- अहिंसा की पवित्रता के प्रकाशक ये नाम—कीर्ति, क्रान्ति, रति, चोक्षा, पवित्रा, शुचि, पूता आदि।

---

* परिशिष्ट : 1

- अहिंसा की आराधना के फल को दर्शाने वाले ये नाम—नन्दा, भद्रा, कल्याण, मंगल, प्रमोद, निर्वाण आदि हैं।[38]

अहिंसा को संकीर्ण अर्थ में ग्रहण करने वालों के लिए प्रश्न-व्याकरण सूत्र में वर्णित अहिंसा के साठ नामों का मनन महत्त्वपूर्ण है। इन नामों के आधार पर अहिंसा के विराट् स्वरूप की परिकल्पना स्वतः स्फूर्त होती है।

आगमोक्त परिभाषाओं के आलोक में अहिंसा का बहुआयामी स्वरूप प्रकट हुआ वहीं चिंतन के कतिपय मौलिक बिंदु भी उजागर हुए हैं—

अहिंसा का मुख्य आधार है समता—सब जीवों के प्रति समता की अनुभूति। सभी जीव—शरीर, जाति, वर्ण आदि नानात्व में विभक्त हैं। विभक्त में अविभक्त को खोजना अहिंसा का मुख्य आधार है। समतावादी दृष्टि का विकास हुए बिना यह खोज संभव नहीं।

शक्ति-संतुलन के बिना अहिंसा का विकास संभव नहीं—एक व्यक्ति या वर्ग शक्ति का प्रदर्शन कर दूसरे व्यक्ति या वर्ग को अधीन रखना चाहता है। अधीनीकृत व्यक्ति या वर्ग के मन में इस हिंसा की प्रतिक्रिया होती है। इस असंतुलित शक्ति के कारण हिंसा की आग भभक उठती है। अनुभूति के क्षण में भगवान महावीर ने कहा था—'न अज्झवे यव्वा'—किसी भी मनुष्य पर हुकूमत मत करो, उसे अपने अधीन बनाकर मत रखो। यह अहिंसा का मूलमंत्र है। इसकी वेदी पर ही अहिंसा की प्रतिमा प्रतिष्ठित हो सकती है।

विराट् प्रेम ही अहिंसा है, जिसकी गहराई सर्वभूत साम्य की भावना से उत्पन्न होती है और आत्मौपम्य की सीमा में फिर विलीन हो जाती है। आत्मौपम्य शब्द के प्रयोग से अहिंसा के मौलिक स्वरूप एवं औचित्य को और अधिक स्पष्टता मिलती है।

आगमों में वर्णित अहिंसा के विमर्श से यह कहा जा सकता है कि जहाँ अहिंसा मोक्ष-प्रदायिनी सिद्ध है, वहीं स्वस्थ समाज-व्यवस्था के सूत्र भी उसमें निबद्ध हैं। अहिंसा को मात्र निषेधात्मक वृत्ति समझना बड़ी भूल होगी। यह जितनी निवृत्तिमूलक प्रतीत होती है उससे अधिक इसका स्वरूप विधेयात्मक है।

जिज्ञासा हो सकती है कि अहिंसा की आधार भित्ति, आगमों में अहिंसा एवं अहिंसा का आचरण पक्ष तीनों का विमर्श भिन्न क्यों रखा गया? अहिंसा संबंधी अध्ययन से अनुभव हुआ कि इस विषय पर विद्वानों की लेखनी उदारता से चली। अहिंसा के पक्षों का मिश्रण इस कदर होता गया कि वर्तमान में इन तीनों को विभेद पूर्वक समझना कठिन हो गया। प्रस्तुत भेद संदर्भ में इनकी भेद-रेखा खोजने का सार्थक प्रयत्न किया गया है।

वेदों में अहिंसा

वैदिक संस्कृति का आधार स्तूप वेद हैं। वेदोक्त ज्ञान नित्य व ईश्वरीय प्रेरणा से प्रेरित ज्ञानी पुरुषों द्वारा प्रणीत कहा गया है। आत्मदर्शन की भूमिका से निष्पन्न ज्ञान संपूर्ण सृष्टि के कल्याण एवं सुख की भावना से आप्लावित है। वेद विहित नियम स्वाभाविक और प्राकृतिक कहलाने से समादरणीय हैं। वेदों का विषय सृष्टि-विज्ञान या सृष्टि विद्या है।

अहिंसा के विषय में वेद मुखरित हैं या मौन? इस संदर्भ में कई महत्त्वपूर्ण तथ्य उजागर होते हैं। प्राणी जगत् की जिजीविषा का उत्सूत्र ऋग्वेद के तृतीय-खण्ड में उपलब्ध है—'पश्येम शरदः शतं

जीवेम शरदः शतम्।'[39] इसका संवादी कथन यजुर्वेद में—'इस लोक में कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीवित रहने की कामना कर। इस प्रकार निष्काम कर्म करने से तू कर्मों से लिप्त नहीं होगा। मुक्ति के लिए इससे अन्य कोई भी मार्ग नहीं है।'[40] सुस्पष्ट है जिजीविषा के साथ निष्काम कर्म ही मुक्ति का प्रमुख हेतु माना गया है।

वेदों में पशुबलि के रूप में हिंसा का विधान किया गया है ऐसी सामान्य धारणा है। इसका स्पष्टीकरण है—'अनेक लोग वेदों में पशुहिंसा होने का आक्षेप करते हैं। कुछ भाष्यकारों ने वैदिक सूक्तों का अर्थ करते हुए, पशुओं के मांस आदि से आहुति देने की बात लिखी है। मूल संहिताओं के मनन पर ज्ञात होता है कि वेदों ने तो हिंसा के बजाय अहिंसा का ही उपदेश दिया है और असहाय प्राणियों , पशुओं की रक्षा को परम धर्म माना है।' इसका संवादी मन्तव्य है—'पशुओं की रक्षा करो, गाय को मत मारो, बकरी को मत मारो, दो पैर वाले (मनुष्य पशु आदि) को मत मारो, एक खुर वाले पशुओं (घोड़ा, गधा आदि) को मत मारो, किसी भी प्राणी की हिंसा मत करो।'[41] स्पष्टतया हिंसा की प्रवृत्ति बढ़ी तब हिंसा न करने पर बल दिया गया।

कार्य कारण की अपेक्षा से देखें तो अहिंसा और अहिंसक एक ही है। इस दृष्टि से अहिंसक मित्र का उल्लेख 'अहिंसा' की अपेक्षा से मननीय है। स्पष्ट उल्लेख है—'हम अभी चलें। मित्र द्वारा दिखाए गए मार्ग पर हम चलें। अहिंसक मित्र का श्रेष्ठ कल्याण हमको घर में प्राप्त हो।'[42] अहिंसक मित्र से अभिप्राय अहिंसात्मक आचरण से है या व्यक्ति विशेष से, चिंतन का विषय है। पर इतना तो स्पष्ट है अहिंसा शब्द ऋग्वेद का विषय बना है। इसका विकासात्मक स्वरूप भी विद्यमान है—'जो आत्म ज्ञानी सब प्राणियों को आत्मा में ही देखता है, तथा सब प्राणियों में ही स्वयं को देखता है, वह संदिग्धावस्था में नहीं पड़ता।' इस आत्मानुभूति के भाव से जाहिर होता है कि चैतन्य की समान अनुभूति वाले व्यक्ति के लिए मोह-शोक का अवकाश ही नहीं रहता। इस तथ्य को व्यक्त करने वाला कथन यजुर्वेद में मिलता है—'जब आत्मज्ञानी सब प्राणियों को एक ही जान लेता है, तब उस एकात्मक भाव के दृष्टा को मोह और शोक क्या है? अर्थात् कुछ भी नहीं।'[43] एकात्मभाव की अनभूति का अर्थ है—अहिंसा का सात्मीकरण होना, अहिंसामय बन जाना। निश्चित रूप से पूर्ण अहिंसक चेतना में मोह-शोक जैसे विकार भाव समाप्त हो जाते हैं।

वेदों में अहिंसा का विकास शांति सूक्तों में देख सकते हैं। ऋग्वेद में स्थान-स्थान पर प्राकृतिक तत्त्वों की शांति हेतु अनेक सूक्तों का निर्माण किया गया है। अथर्ववेद में अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा आदि को मंत्रोचार पूर्वक कार्य सिद्धि के लिए आह्वान किया गया है।[44] जाहिर है उनमें चैतन्य की स्वीकृति के साथ मैत्री भाव भी साधा जो अहिंसा का ही पर्याय है। इसी में (अथर्ववेद) विभिन्न प्रकृति के अंगों से रक्षा की प्रार्थना सूक्त बद्ध शैली में की है।

वेदों में जहाँ पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र को पूज्या भाव से देखा व अर्चा की वहीं सृष्टि के प्राणियों को प्रेम पूर्वक साथ रहने की प्रेरणा दी। ऐसा अहिंसा के विकास बिना असंभव है। परस्पर प्रेम भाव का विकास होगा तो अहिंसा को फलने-फूलने का अवसर मिलेगा। प्रेमपूर्वक साथ में रहने की प्रेरणा दी—'सब मनुष्य भली प्रकार मिलकर रहें, प्रेम पूर्वक आपस में वार्तालाप करें, सब के मनों में एक भाव हो।'[45] ऋग्वेद की इस ऋचा में अहिंसा के विषय का जो अव्यक्त बोध करवाया, महत्त्वपूर्ण है। इसमें स्वस्थ समाज रचना के मूलभूत तथ्यों का चित्रण है। विशेष रूप से समन्वय सूत्र बना—सब लोग एकमत हों, प्रतिकूल बातें करने वाले भी परस्पर अनुकूल हों। अपने-

पराये का भाव छोड़कर सभी सत्कर्म एक साथ करें। यह सह विकास की भावना अहिंसा के विकासात्मक स्वरूप को प्रकट करती है।

वेदों में विहित अनेक सूक्त एवं आख्यान परस्पर सौहार्द भाव विकसित करने की प्रेरणा देते हैं। प्राकृतिक तत्त्वों को अनुकूल प्रवृत्ति के लिए आह्वान करते हैं। चर-अचर देवों की पूजा-अर्चा कर उनसे सहयोग की कामना करते हैं। ये सभी प्राणी जगत् की सुख-शांति हेतु किये गये प्रयत्न सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर अहिंसा भावना से अनुस्यूत प्रतीत होते हैं। जिज्ञासु के लिए वेदों में अहिंसा के विकास सूत्र अन्वेषणीय है।

उपनिषद् में अहिंसा

उपनिषद् ऋषि-महर्षियों की अनुभव चेतना का ज्ञान कोश है। इसमें अध्यात्म विकास के अनेक बीजमंत्र अंकित हैं। विविध मंत्रों के प्रयोग अहिंसा की साधना को विकसित करने में सक्षम हैं। अहिंसा का सूक्ष्म अर्थबोध इस कथन में खोजा जा सकता है—'जो समस्त भूतों को आत्मतुल्य समझता है और सभी भूतों में स्वयं को देखता है वह किसी से घृणा नहीं करता।'[46] यह अहिंसा के विकास का महत्त्वपूर्ण आलंबन सूत्र है। समस्त भूत जगत् को आत्मानुभूति के आलोक में देखने वाला उनके प्रति नैसर्गिक रूप से अहिंसक बन जाता है। जब व्यक्ति एक से राग और दूसरे से द्वेष रखता है तब हिंसा का भाव पैदा होता है। हिंसा के भाव पैदा न हों इस हेतु समानानुभूति का सिद्धांत सशक्त उपाय है। कथन में सूक्ष्म अहिंसा का भाव प्रकट हुआ है क्योंकि यहां मात्र मनुष्य लोक की ही नहीं संपूर्ण जीवलोक की चर्चा की गयी है।

जाबालदर्शनोपनिषद् में अहिंसा का ग्रहण 'यम' में किया गया है—'यम के दश भेदों में प्रथम स्थान अहिंसा का है।' अहिंसा को 'यम' में प्रमुख स्थान देने का अर्थ है इसकी उदग्र साधना का स्वीकरण। विशेष रूप से इसी उपनिषद् में श्रेष्ठ बुद्धि को श्रेष्ठ अहिंसा बतलाते हुए कहा—'हे मुने! यह भाव रखना चाहिए कि आत्म तत्त्व सर्वत्र व्याप्त है, शस्त्र आदि के द्वारा वह नष्ट नहीं हो सकता। हाथों या अन्य इन्द्रियों के द्वारा भी आत्मा का ग्रहण होना असंभव ही है। अतः इस तरह से जो श्रेष्ठ बुद्धि है, उसे ही वेदांत के मर्मज्ञ विद्वानों ने श्रेष्ठ अहिंसा कहा है।'[47] इसमें आत्मा की सर्वव्यापकता एवं अमरता का बोध करवाने वाली बुद्धि को श्रेष्ठ अहिंसा कहा है।

नारद परिव्राजकोपनिषद् में 'परिव्राजकों (संन्यासियों) के लिए श्रेष्ठ धर्म के रूप में अहिंसा को स्वीकारा है।'[48] अहिंसा अपने आप में श्रेष्ठ है फिर चाहे उसका आसेवन कोई भी क्यों न करे। इसे अनेक संदर्भों में प्रस्तुति मिली—'नियमों के अंतर्गत अहिंसा प्रधान है।' त्रय गुणों की चर्चा में सत्त्वगुण श्रेष्ठता का प्रतीक है। सात्विक गुणों के संचार में अहिंसा की भूमिका को स्वीकार किया गया—'अहिंसा को सत्तोभाववृद्धि के रूप में अंगीकार किया गया है।' वेदों में दया का जो स्वरूप बतलाया गया है उसे अहिंसा का ही विकासात्मक रूप कह सकते हैं—'समस्त भूतप्राणियों को अपनी ही भांति जानकर उनके प्रति मन, वचन एवं शरीर द्वारा आत्मीयता का अनुभव करना (अर्थात् अपनी ही तरह उनके दुःखों को दूर करने तथा अधिक से अधिक सुख पहुंचाने का प्रयास करना) ही वेदवेत्ता विद्वज्जनों के द्वारा 'दया' बताई गयी है।'[49] दया अहिंसा का ही पर्याय है।

प्राणीमात्र में एकत्व का अनुभव करने वाले का चैतसिक भाव भिन्न होता है,—'जो सभी भूतों को आत्मवत् जानता है उसे कैसा मोह, कैसा शोक?' भेद बुद्धि के चलते, अपने-पराये भाव के कारण

ही ममत्व और शोक के विचार पैदा होते हैं। राग-द्वेष भावनात्मक बंधन हैं। ये बंधन कब टूटते हैं? इसका समाधान अहिंसा दर्शन को ध्वनित करता है। 'हृदय की सब गांठें (भाव बंधन) टूट जाती हैं; मस्तिष्क में सब संशय छिन्न-भिन्न हो जाते हैं, मनुष्य जिन नाना कर्मों में व्याकुलता से भागा फिरता है वे छूट जाते हैं, जब उसका पर और अपर ओर-छोर दिख जाता है।'[50] जिस क्षण राग-द्वेष की सूक्ष्म ऊर्मियों का साक्षात्कार व क्षयिकरण हो जायेगा उस दिन समत्व के शिखर पर आरूढ़ चेतना आत्मस्वरूपावस्था को प्राप्त कर, समस्त जन्म-मरण की परंपरा से मुक्त हो जायेगी। समता रूपी अहिंसा की इस सर्वोच्च भूमिका पर ही परमात्म-साक्षात्कार घटित होगा।

प्रकृति पर आधारित 'ब्रह्मचक्र' की परिकल्पना उपनिषद् की स्वोपज्ञ सोच है। इसके प्रारूप में अहिंसा तत्त्व भी विद्यमान है। 'ब्रह्मचक्र के पचास आरे हैं—पाँच विपर्यय, अट्ठाईस आशक्तियां, नौ तुष्टि तथा आठ सिद्धियां।' 'तुष्टि' के नौ भेदों में अहिंसा एक है।[51] इससे प्रमाणित होता है कि उपनिषद् भी अहिंसा के विकास में तत्पर रहे हैं।

अहिंसा के विविधोन्मुखी स्वरूप का विमर्श उपनिषद् में अंकित हैं। इसका संबंध अपरिग्रह से भी है। परिग्रह की पकड़ जहाँ सघन होती है वहाँ अहिंसा विकसित नहीं हो पाती। अहिंसा के विकास की पृष्ठभूमि में ईशावास्योपनिषत् के आदि श्लोक में त्याग-पूर्वक भोग की प्रेरणा के साथ दूसरे के धन की आकांक्षा न करने की बात कही—'जगत् प्रवाह-मात्र है, प्रवाह के अतिरिक्त यह कुछ नहीं, यह संपूर्ण प्रवाह पर-ब्रह्म से अनुप्राणित है। पदार्थ का भोग त्याग पूर्वक (अनासक्ति) करें।'[52] अर्थात् संग्रह वृत्ति न हो, वस्तु के उपभोग में केवल आवश्यकता पूर्ति का दृष्टिकोण रहे, मूर्च्छा का भाव, पदार्थ प्रतिबद्धता न हो।

अहिंसा का उल्लेख छान्दोग्य उपनिषद् में उपलब्ध है। आत्मज्ञान प्राप्ति के प्रसंग में अहिंसा को इसकी दक्षिणा कहा गया है।

अहिंसात्मक भावना के विकास का सूत्र कठोपनिषत् के शांतिपाठ में खोजा जा सकता है। ईर्ष्या-डाह-क्लेश से दूर रहकर पारस्परिक संबंधों को प्रेमपूर्ण बनाये रखने की गुरु-शिष्य आशंसा आदरणीय है। परस्पर में स्नेहसिक्त मंगल कामना का स्वर एक साथ मुखरित हुआ—'दोनों की साथ-साथ सब प्रकार से रक्षा करे। साथ-साथ समुचित रूप से पालन-पोषण करें। साथ-साथ सब प्रकार से बल प्राप्त करें। हम दोनों की अध्ययन की हुई विद्या तेजपूर्ण हो। हमारे अंदर परस्पर कभी द्वेष न हो।'[53] इसमें अहिंसा की अखंड साधना का स्वर मुखरित है। गुरु-शिष्य का सहप्रार्थना स्वर व्यक्तिवादी, स्वार्थपूर्ण मनोवृत्ति के लिए प्रेरणा-पाथेय है। इस शांतिपाठ का अभिधेय है—सौहार्दपूर्ण पारस्परिक संबंधों का विकास। अहिंसा के बिना ऐसा कदापि संभव नहीं बन सकता। अहिंसा के विकास की उच्च भूमिका पर ही शांतिपाठ के चरितार्थ होने की संकल्पना साकार हो सकती है। वेदों और उपनिषदों के अनेक सूक्त, श्लोक समान भाव-भाषा में अंकित है। उपनिषदों में उल्लेखित अहिंसा संबंधी कतिपय तथ्यों के आधार पर यह जाहिर है कि उपनिषद् अहिंसा विकास की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

रामायण में अहिंसा

भारतीय संस्कृति का आदर्श दस्तावेज़ श्रीराम चरित् मानस बनाम 'रामायण' महाग्रंथ है। इसके आलोक में श्रद्धा, समर्पण, अनुशासन और त्याग-वैराग्य की शिक्षा मिलती है। तुलसीदासजी की प्रौढ़ रचनाओं

में श्रीरामचरित् मानस का स्थान सर्वोपरि है। श्रद्धा-भक्ति और भावनाओं का सजीव चित्रण इस रचना में दुर्लभ संयोग है। चित्रकूट वन भ्रमण में स्वप्न एवं झाँकी को आकार देने का दुरूह कार्य रामकृपा से तुलसीदासजी ने संपन्न किया। तुलसीदासजी ने मनुष्यों का चरित न लिखने का अपना प्रण बखूबी निभाया।

रामचरित् मानस ग्रंथरत्न का पारायण 'अहिंसा' के आलोक में किया गया तो टीका सहित अष्ट काण्डों में 'अहिंसा' शब्द का प्रयोग अलभ्य रहा। संभव है रचयिता ने इसमें अहिंसा का शाब्दिक प्रयोग न करके अर्थात्मा को महत्त्व दिया है। इस रचना में अहिंसा का भावात्मक प्रयोग अनेक संदर्भों में ग्रहीत है। अहिंसा के अपर पर्याय व्रत, दया, सत्य, नियम, योगादि शब्दों का प्रयोग अनेक संदर्भों में हुआ है। उन्हें अहिंसा के रूप में स्वीकारा जा सकता है। वैसे दया अहिंसा का ही पर्याय है।

श्री राम के वनवास जाने पर अवध को अनाथ जानकर पुनः लौटने की प्रार्थना पर श्री राम ने धर्म और सत्य का एक साथ प्रयोग किया। सत्य के बराबर दूसरा धर्म नहीं है। यह वेद, शास्त्र और पुराणों में भी कहा गया है, मैंने उसी धर्म को सुलभ रीति से पाया है, उसे छोड़ने से तीनों लोक में अपयश छा जायेगा।[54] अतः राम पुनः लौटकर नहीं आये। वनवासी श्री राम का भारद्वाज मुनि ने आतिथ्य कर अहोधन्यता का अनुभव किया। अहिंसा के पर्याय श्री राम-लक्ष्मण सीता को देख कर उन्होंने कहा—आज हमारा तप, तीर्थ, यज्ञ सफल हुआ है। आज हमारा योग, वैराग्य सफल हुआ, हे राम! आज आपका दर्शन करते ही सब शुभ साधनों का समूह सफल हो गया। मनुष्य की बात क्या वन के पशु-पक्षी श्री राम के वनवासी जीवन का संग पाकर बदल गये। हाथी, सिंह, सूकर और हरिण आदि सब वैर छोड़कर एक संग विहार करते रहे।[55] जाहिर है श्री राम का जीवन अहिंसा के आलोक से आलोकित था। उनकी रश्मियों से हिंस्र पशु भी निर्वैर बन मैत्री-प्रेम रस से आप्लावित बन जातें। एक अहिंसक पुरुष का ऐसा ही आभामंडल होता है जिसका संस्पर्श पा वातावरण प्रेममय बन जाता है।

भरत ने जो अपनी आत्म निंदा की है वह अहिंसक व्यक्तित्व का प्रतीक है। अहिंसकचेता ही स्वदर्शन की भूमिका पर आत्मनिंदा कर सकता है।

जब श्री राम से वनवास में अयोध्यावासी मिलने गये तब उन्होंने पाया वनवासी लोग बिना प्रेरणा के ही संयमी बन गये—दूध का आहार, फल, भोजन सिर्फ एक बार रात को करने लगे। आभूषण और भोग छोड़ श्री रामजी के निमित्त नेम और व्रत करने लगे। यह सब अहिंसक चेतना का ही चमत्कार था कि भोग चेतना त्यागमय बन गयी। भरतजी ने राम के वनवासी प्रभाव को मार्मिक शब्दों में चित्रित किया। वन अपनी सम्पत्ति से ऐसा शोभायमान हुआ जैसे अच्छे राजा को पाकर प्रजा सुखी होती है। यहाँ मंत्री वैराग्य, राजा ज्ञान तथा सुहावना वन पवित्र देश है। संयम-नियम उस ज्ञान-रूपी राजा के योद्धा है, पर्वत राजधानी है, शांति, सुमति और पवित्रता ये तीनों सुन्दर रूप वाली रानी है। वह ज्ञान-रूपी राजा सब अंगों से परिपूर्ण और रामचन्द्रजी के चरणों के सहारे से उसके चित्त में चाव, आनन्द रहता है।[56] वह वन वैर विगत हो गया। इसका उल्लेख अनेक संदर्भों में किया गया।

वन में रहने वाले भील, स्वभाव से विनम्र और सेवाभावी, आतिथ्य निपुण बन गयें। इसका उदाहरण भरत सहित अयोध्यावासी वन में आये तब प्रस्तुत हुआ। अतिथियों का हृदय से सत्कार-सम्मान कर भीलों ने अहोभाग्यता का अनुभव किया। भीलों ने सरल मन से यह भी स्वीकारा कि हम सब जड़ जीवों को मारने वाले खोटे, कुचाली, खोटी बुद्धि वाले कुजाती हैं। रात-दिन पाप करते जाते हैं। कमर में वस्त्र नहीं, पेटभर भोजन नहीं, सपने में भी धर्म बुद्धि किसी की किस भाँति हो,

पर जब से प्रभु के चरण-कमल को देखा, तब से हमारे कठिन दुःख और दोष (पाप) दूर हो गये। भीलों के ये वचन सुन अयोध्यावासी प्रेममग्न हो गये।[57] यह भीलों का आत्म निवेदन उनके हृदय-परिवर्तन का प्रतीक है।

श्रीराम की सन्निधि पाने वाले पुरुष ताप-शाप मुक्ति का अनुभव करते। जब भरत शोकमग्न थे तब वन में श्री राम से मिले तो उन्होंने भी दुःख मुक्ति का अनुभव किया। श्रीराम का प्रभाव अचिंत्य था। उनके प्रसाद से चित्रकूट पर्वत कामनाओं को देने वाला हो गया, देखते ही शोक को हर लेता था। सरोवर, नदी, वन और भूमि के विभाग में मानो प्रेम का समुद्र उमड़ रहा है। बेलि और वृक्ष सब फल से लद गये। पक्षी, पशु और भौंरे समय के अनुसार बोली बोलने लगे। उस समय वन अधिक आनन्द दायक हो गया। सबको सुख देने वाली तीनों प्रकार की (शीतल, मन्द और सुगन्धित) वायु बहने लगी।[58]

रामचरित् मानस के उत्तरकाण्ड में श्री राम के वनवास जीवन के चौदह वर्ष पूर्ण होने पर पुनः आगमन और राम-राज्य संचालन का वर्णन है। राम भक्त भरत को राम के आगमन की सूचना देने आये तब भरत का जीवन चरित्र देखकर भाव विभोर हो उठे और राम के सन्मुख भरत के बड़े प्रेम से शील, स्नेह तथा व्रत का वर्णन करने लगे।[59] यहाँ व्रत शब्द का प्रयोग भरत की नियमादि शील चर्या एवं सत्य अहिंसादि आचरण हेतु किया गया है। परन्तु स्वतंत्र रूप से अहिंसा शब्द का प्रयोग यहां भी नहीं मिलता। सामान्यतया 'व्रत' में अहिंसादि व्रतों को ही ग्रहण किया जाता है। उत्तरकाण्ड में इस बात का उल्लेख किया गया कि श्री राम के आलोकिक जीवन चरित्र का स्मरण करने वाले के सारे कष्ट दूर हो जाते हैं। इससे भी द्योतित होता है कि श्री राम अहिंसा के पर्याय थे उनका नाम स्मरण मात्र रोग, लोभ, घमण्ड, मद, विपत्ति भंजक होता है।

श्री राम के राज-सिंहासन पर आरूढ़ होने पर अयोध्या में जो शुभ घटित हुआ उसका सांगोपांग चित्रण रामायण के उत्तरकाण्ड में है। रामराज्य को अहिंसक राज्य कहा जाये तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। उल्लेख है राम के राज्यारोहण से तीनों लोक प्रसन्न हो गये और उनके सब दुःख दूर हो गये। कोई किसी से वैर नहीं करता। उनके प्रभाव से सबके मन की विषमता दूर हो गई। सभी लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म में तत्पर है। किसी को भय, शोक और रोग नहीं है। राम-राज्य में किसी को दैहिक, दैविक और भौतिक ताप नहीं व्यापता। सब लोग आपस में प्रेम करते और वेद रीति से अपने धर्म में मन लगाकर चलते हैं। संसार में धर्म के चारों चरण पूर्ण रीति से विद्यमान हैं। पाप तो स्वप्न में भी नहीं है। सब नर-नारी श्री राम की भक्ति मन से करते हैं और सभी मुक्ति के अधिकारी हैं। इससे यह बहुत स्पष्ट होता है कि धर्म और मोक्ष की आराधना करने वाले अहिंसा का आचरण अवश्यमेव करते हैं।

रामराज्य में न तो अकाल मृत्यु ही होती है और न कोई पीड़ा ही होती है। सब लोग सुन्दर और आरोग्य शरीर वाले हैं। न कोई दरिद्र है, न कोई दीन दुःखी है, न कोई अज्ञानी है और न शुभ लक्षणों से हीन है। सब पाखंड रहित, धर्म में रत व पुण्यात्मा है। पुरुष और स्त्री सभी चतुर और सुकर्मी हैं। सभी गुणी, पंडित, ज्ञानी तथा कृतज्ञ हैं। कपट और धूर्तता किसी में नहीं है। हे गरुड़जी! सुनो, संसार भर में राम-राज्य में काल, कर्म, स्वभाव तथा गुणों में उत्पन्न दुःख कभी किसी को नहीं होता। राम-राज्य के सुख और सम्पत्ति को शेषजी और सरस्वती भी नहीं कह सकते।

वन में वृक्ष सदा फूलते-फलते हैं। हाथी और सिंह एक साथ रहते हैं। पशु-पक्षी स्वाभाविक

वैर भूल गये और सभी ने आपस में प्रीति बढ़ा ली है। पशु-पक्षियों के झुण्ड वन में निर्भय घूमते हैं। लता और वृक्ष मांगने पर मधु टपका देते हैं, गायें मन-चाहा दूध देती हैं। पृथ्वी सदैव खेती से हरी-भरी रहती है। उस समय सत्ययुग की बातें त्रेता में हो गई। समुद्र अपनी मर्यादा में रहते हैं, वे अपने किनारों पर रत्न डाल देते हैं। उन्हें मनुष्य पा जाते हैं। सब तालाब कमलों से भरे हैं, दसों दिशाओं के विभाग बहुत ही प्रसन्न हैं। राम-राज्य में चन्द्रमा अपनी शीतल किरणों से पृथ्वी को पूर्ण रखता है। सूर्य उतना ही तपता है, जितने से काम बनता है तथा मेघ मांगने पर जल बरसा देते हैं।[60] तथ्यतः राम-राज्य का यह वर्णन अहिंसा के विकास का द्योतक है।

संपूर्ण राम चरित् मानस के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसमें अहिंसा की अर्थात्मा का प्रयोग यत्र-तत्र निबद्ध है जो अहिंसा के विकासात्मक स्वरूप का द्योतक है। यद्यपि यह तो स्पष्ट ही है कि रामायण के रचनाकाल तक अहिंसा शब्द रूढ़ नहीं बना होगा अथवा तुलसीदासजी ने इसका साक्षात् प्रयोग करने की अपेक्षा भावात्मक स्वरूप को महत्त्व दिया हो। कुछ भी कारण हो सकता है। पर, रामायण में अहिंसा के सूक्ष्म स्वरूप का दर्शन अन्वेषक के लिए सुलभ बन सकता है।

महाभारत में अहिंसा

अहिंसा की विभिन्न परिभाषाओं, व्याख्याओं से इसके व्यापक स्वरूप का निदर्शन होता है। महाभारत में इसका परमधर्म के रूप में सौंदर्य निखरा है। गागर में सागर कथन को चरितार्थ करने वाला सुप्रसिद्ध मन्तव्य—'अहिंसा परम धर्म है। अहिंसा परम तप है। अहिंसा ही परम सत्य है और अहिंसा ही धर्म का प्रवर्तन करने वाली है। यही संयम है, यही दान है, परम ज्ञान है और यही दान का फल है। जीव के लिये अहिंसा से बढ़कर हितकारी, मित्र और सुख देने वाला दूसरा कोई नहीं है।'[61] यह अहिंसा का दिव्य रूप है। जिसमें अनेक कार्य क्षेत्रों की एक साथ प्रस्तुति हुई है। इस तथ्य को पुष्ट करने वाला एक और वचन-अहिंसा परम धर्म है। इसका अर्थ है हिंसा न करना। सब जीवों को मनुष्यों और पशुओं को दुःख देना या सताना हिंसा है। यह अहिंसा का सूक्ष्म रूप है जो जैन अहिंसा से मिलता-जुलता है। धर्म ही नहीं, श्रेष्ठ धर्म के रूप में अहिंसा का प्रतिपादन ग्रंथ की गुरुता का द्योतक है। यद्यपि महाभारत में अहिंसा पर विस्तृत चर्चा नहीं मिलती फिर भी हिन्दू धर्म के प्रतिनिधि इस महाग्रंथ में स्वल्प ही पर, अहिंसा का सूक्ष्मता से जो विमर्श हुआ वह महत्त्वपूर्ण है। अनुशासन पर्व में—'मन, वाणी और कर्म से किसी की हिंसा न करना अहिंसा है।'[62] इसकी व्याख्या में स्पष्टीकरण किया गया कि सर्व प्रथम मानसिक हिंसा को त्यागें फिर वाचिक एवं कायिक।

अहिंसा का उल्लेख—'देवताओं और अतिथियों की सेवा, धर्म की सतत् आराधना, वेदों का अध्ययन, यज्ञ, तप, दान, गुरु और आचार्य की सेवा तथा तीर्थों की यात्रा, ये सब मिलकर अहिंसा की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं है। अहिंसा इन सबसे श्रेष्ठ है।'[63] अहिंसा की श्रेष्ठता का यह एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ है। शांतिपर्व में हिंसा को सबसे बड़ा अधर्म और अहिंसा को सबसे बड़ा धर्म बताया गया है। उसी प्रसंग में उल्लेख है कि—'जीवों के लिये अहिंसा से बड़ा कोई धर्म नहीं है क्योंकि इसके द्वारा प्राणियों की रक्षा होती है और किसी को भी कोई कष्ट नहीं होता।'[64] यह कथन अहिंसा के विराट् स्वरूप को प्रकट करता है। अहिंसा को व्यावहारिक धरातल महाभारत काल में मिला या नहीं यह खोज का विषय है। पर, इसे लोक जीवन में प्रतिष्ठित करने का सार्थक प्रयत्न हुआ। ऐसा अनेक संदर्भों से ज्ञात होता है। व्यक्ति को निवास कहां करना चाहिए? इस संदर्भ

में शांतिपर्व का अभिमत है—'अध्ययन, यज्ञ, तप, सत्य, इन्द्रिय-संयम एवं अहिंसा-धर्म का पालन जिस क्षेत्र में होता हो, वहीं व्यक्ति को निवास करना चाहिये।'

अहिंसा के विभिन्न पर्यायवाची शब्दों का ग्रहण शांतिपर्व में सत्य के तेरह भेदों में किया गया है—'समता, दम, मत्सरता का अभाव, क्षमा, लज्जा, तितिक्षा, (सहनशीलता) दूसरों के दोष न देखना, त्याग, ध्यान, आर्यता (श्रेष्ठ आचरण), धैर्य, अहिंसा और दया—ये सत्य के स्वरूप हैं।' सत्य में अहिंसा का समाहार, अहिंसा के स्वरूप का ही द्योतक है। आर्हती दृष्टि से देखें तो—समता, दम, क्षमता, तितिक्षा, त्याग, दयादि अहिंसा के ही पर्यायवाची हैं।

दम (संयम) की शक्ति अदम्भ है। महामात्य विदुर इससे भलीभांति परिचित थे। उन्होंने दम का उपदेश कौरवों को दिया एवं पांडवों की विजय श्री का अनुमान भी उनकी दमशक्ति में ही आंका। दुर्योधन आदि के समक्ष विदुर ने दमनशील का चित्रण किया—'जिस पुरुष में क्षमा, धृति, अहिंसा, समता, सत्य, सरलता, इन्द्रियनिग्रह, धैर्य, मृदुलता, लज्जा, अचंचलता, अदीनता, अक्रोध, संतोष और श्रद्धा—इतने गुण हो, वह दांत (दमन युक्त) कहा जाता है।.....जो पुरुष लोलुपता रहित, भोगों के चिंतन से विमुख और समुद्र के समान गंभीर होता है, वह दमनशील कहा जाता है।' यह अहिंसक जीवन शैली का प्रतीक है। इससे स्पष्ट होता है कि महाभारत काल के जन-जीवन में अहिंसा का विकास उच्च कोटि का था।

हिंसा और परिग्रह का, अहिंसा और अपरिग्रह का संबंध है। इस तथ्य को महाभारत कालीन युद्ध में खोजा जा सकता है। जगजाहिर है कि परिग्रह की पकड़ ने हिंसा का तांडव नृत्य कर इतिहास की थाति को एक बार फिर धूमिल कर डाला। पर, यह नियति का प्राबल्य ही था कि उग्र सत्य-अहिंसा प्रेमियों का उपदेश कौरवों की मूर्च्छित भावनाओं को बदल न सका। मूर्च्छित व्यक्ति की हिताहित बुद्धि कुंठित हो जाती है। परिग्रह की गहरी पकड़ जीवन लीला को कैसे लील जाती है इसका जीवंत उदाहरण विदुर ने धृतराष्ट्र से निवेदन किया था—एक बार कई भील और ब्राह्मणों के साथ मैं (विदुर) गन्धमार्दन पर्वत पर गया था। वहाँ एक शहद से भरा हुआ छत्ता देखा। अनेकों विषधर सर्प उसकी रक्षा कर रहे थे। वह ऐसा गुणयुक्त था कि यदि कोई पुरुष उसे पा ले तो अमर हो जाये। यह रहस्य विदुर ने रसायनविद् ब्राह्मणों से सुना था। भील लोग उसे प्राप्त करने का लोभ संवरण न कर सकें और उस सर्पोंवाली गुफा में जाकर नष्ट हो गयें। इसी प्रकार आपका पुत्र दुर्योधन अकेला ही सारी पृथ्वी को भोगना चाहता है। इसे मोहवश शहद तो दिख रहा है किंतु अपने नाश का सामान दिखाई नहीं देता। याद रखिये, जिस प्रकार अग्नि सब वस्तुओं को जला डालती है वैसे ही द्रुपद, विराट् और क्रोध में भरा हुआ अर्जुन—ये संग्राम में किसी को भी जीता नहीं छोड़ेंगे। इसलिए राजन् (धृतराष्ट्र) आप महाराज युधिष्ठर को भी अपनी गोद में स्थान दीजिये, नहीं तो इन दोनों का युद्ध होने पर किसकी जीत होगी—यह निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता।[65]

अहिंसा की विराट् भावना का महत्त्व बताते हुए वेद व्यास ने कहा—धर्म और अर्थ दोनों ही पुरुषार्थों से अहिंसा उच्च कोटि की है। पिता द्वारा प्रदत्त अहिंसा उपदेश व्यासपुत्र शुकदेव के वैराग्य का कारण बना। पिता की शिक्षा थी—'बेटा! तुम सर्वदा जितेन्द्रिय रहकर धर्म का सवेन करो; गर्मी-सर्दी, भूख-प्यास को सहन करते हुए प्राणों पर विजय प्राप्त करो; सत्य, सरलता, अक्रोध, अदोषदर्शन, जितेन्द्रियता, तपस्या, अहिंसा और अक्रूरता आदि धर्मों का विधिवत् पालन करो..।'[66] इस उपदेशामृत में अहिंसा के पालन का स्पष्ट उल्लेख है।

विमर्शतः महाभारत के अनुशासन पर्व, शांतिपर्व आदि में अहिंसा का जो विशुद्ध रूप प्रकट हुआ है उसमें अहिंसा के नैतिक और धार्मिक उभय पक्षों का समाहार है। एक ओर जहाँ अहिंसा को परम धर्म बतलाया वहीं इसे परम मित्र भी बतलाया। अहिंसा पथगामी की तपस्या अक्षय कही गयी। अहिंसा के आचरण पर विशेष बल दिया गया। इससे अनुमित होता है कि महाभारत के रचनाकाल तक अहिंसा की स्थिति विकासमान थी।

श्रीमद्भगवत् गीता में अहिंसा

गीता भारतीय जनमानस का समादरणीय ग्रंथ है। इसमें अनेक विषयों का प्रतिपादन है। विभिन्न विषयों पर प्रकाश डालने के बावजूद आमधारणा है कि गीता अनासक्त कर्म योग का प्रतिपादक ग्रंथ है। प्रश्न है गीताकार ने अनासक्त कर्मयोग पर इतना बल क्यों दिया? यह अपने आप में रहस्यपूर्ण तथ्य है। संभव है कर्म बंधन की परंपरा का उच्छेद करने के लिये ही ऐसा प्रतिपादन किया गया है। कर्म बंधन के मुख्य दो कारण—राग और द्वेष ही हैं। इन दोनों से मुक्त रहकर समतामय आचरण हेतु ऐसी प्रस्तुति प्रमुख रूप से की गयी है। ये अहिंसा के विकास में बाधक तत्त्व हैं। गीता का सर्वोच्च आदर्श है—ईश्वर। उसके स्वरूप में नानाभावों का समावेश स्वीकृत है। स्वरूप प्रतिपादक श्लोक में प्रथम स्थान अहिंसा को मिला।[67] भाष्यकार ने इसे व्याख्यायित किया—'अहिंसा अपीड़ा प्राणिनाम्'—प्राणियों को किसी प्रकार पीड़ा न पहुँचाना अहिंसा है। ईश्वर के स्वरूप चिंतन में अहिंसा का प्रथम स्थान गीता में इसके महत्त्वपूर्ण स्थान का द्योतक है।

ईश्वर से अभिन्न भूतों की (प्राणी मात्र) परिकल्पना अहिंसा के विकास का द्योतक है। इष्ट में समस्त प्राणियों की परिकल्पना जीव जगत् के साथ तादात्म्य विकसित करने की प्रक्रिया है। स्थूल दृष्टया अहिंसा का स्वतंत्र प्रतिपादन विमर्श्य ग्रंथ में भले नजर न आये पर, अहिंसक के लक्षणों का प्रतिपादन अनेक संदर्भों में हुआ है। कार्य-कारण भाव की दृष्टि से अहिंसक का वर्णन अहिंसा का ही प्रतिपादन है। 'ज्ञान निष्ठ व्यक्ति के गुण समुदाय में तीसरा गुणसमुदाय अहिंसा को कहा है।' ब्रह्म स्वरूपावस्था हेतु अहिंसा का जो विधान किया गया उसमें आत्मतुला का अहोभाव छुपा हुआ है। इसका प्रतिपादक कथ्य है—'जिस समय भूतों के अलग-अलग भावों को, उनकी पृथक्ता को एक आत्मा में ही स्थित देखता है तथा समस्त विस्तार आत्मा से ही निर्मित निहारता है, वह ब्रह्मरूप ही हो जाता है।'[68] अपनी आत्मा में ही सर्वभूतों के समाहार का आशय है किसी जीव को कष्ट नहीं पहुंचाना, क्योंकि अपनी आत्मा को कोई कष्ट पहुंचाना नहीं चाहता। जब कष्ट देना ही मान्य नहीं उस स्थिति में उसके प्राणाघात का तो प्रश्न ही नहीं उठता। अहिंसा के विकास का यह महत्त्वपूर्ण कथन गीता में इसके गौरवपूर्ण स्थान का द्योतक है।

गीता में त्रय प्रकृतियों—देवी, आसुरी और राक्षसी का विस्तार से वर्णन किया गया है। स्वरूप विमर्श में—'अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, अपैशुन, भूतों पर दया, अलोलुपता, कोमलता, लज्जा, अचपलता आदि देवी प्रकृति के लक्षण हैं।'[69] इन लक्षणों का मनन करने पर ऐसा प्रतीत होता है मानो स्वयं अहिंसा भगवती का ही स्वरूप निर्धारित हुआ है। देवी स्वरूप के अनेक लक्षण अहिंसा के ही पर्यायवाची हैं। देवी प्रकृति का स्वरूप उच्चकोटि की अहिंसा एवं अहिंसक के स्वरूप को एक साथ प्रस्तुत करता है।

त्रिविध तप में 'शारीरिक तप के वर्णन में अहिंसा का ग्रहण है।' क्षमा भारतीय जन-मानस

का उच्च आचार है। इसकी चर्चा अनेक प्रौढ़ ग्रंथों में मिलती है। गीता में क्षमावान् का चित्रण है—'जो सब भूतों में द्वेष नहीं करता, सबके साथ मित्रभाव रखता है और जो करुणामय है, जो ममता और अहंकार से रहित है, सुख और दुःख में सम है।'[70] भाष्यकार ने 'अद्वेष्टा सर्वभूतानां' शब्दों की व्याख्या करते हुए लिखा—'सर्वाणिभूतानि आत्मत्वेन हि पश्यति' अर्थात् समस्त भूतों को आत्मारूप से ही देखता है। इसमें आत्म तुला का भाव मुखर है। आशय की पुष्टि की गई—'जो सब प्राणियों में अपने समान ही सुख और दुःख को तुल्यभाव से अनुकूल और प्रतिकूल देखता है, किसी के भी प्रतिकूल आचरण नहीं करता वह अहिंसक है। इस प्रकार अहिंसक पुरुष पूर्णज्ञान में स्थित है वह परम योगी है।' सच्चायोगी पुरुष समता का पर्याय होता है उसका चित्रण किया गया—'योगी समदृष्टिवान् होता है जो सभी भूतों में अपनी आत्मा को स्थित देखता है तथा अपनी आत्मा में समस्तभूतों को देखता है।'[71] जिसकी अहिंसक चेतना जागृत हो जाती है उसमें प्राणी मात्र के प्रति अद्वैतभाव—समता भाव का संचार हो जाता है। वह स्वार्थ मनोवृत्ति से ऊपर उठकर 'सर्वभूतहितेरताः' के आदर्श को चरितार्थ करता है। एक आदर्शवान् अथवा विशिष्ट योगी पुरुष में अहिंसा का जो स्वरूप गीता में प्रकट हुआ वह अहिंसा के विकासात्मक रूप का द्योतक है।

अनासक्त कर्मयोग के साथ अहिंसा के संबंध में जो विशिष्ट अध्याय गीता में जुड़ा है, उससे यह स्पष्ट है कि अहिंसा के विकास में गीता का अपना अपूर्व योगदान है। समग्र दृष्टि से देखा जाये तो अहिंसा की जो सूक्ष्म मीमांसा परोक्ष रूप से गीताकार ने की वह मौलिक है। विमर्शतः गीता का अनासक्त कर्मयोग अहिंसा के विकासात्मक पक्ष की सबल कड़ी है।

पुराणों में अहिंसा

पुराण ज्ञान के भंडार हैं। इनमें सतयुग, त्रेता, द्वापर एवं कलयुग का विस्तार से वर्णन है। तत्त्व के सुगम बोधार्थ अनेक उपाख्यानों का प्रयोग किया गया है। पुराणों में अहिंसा की चर्चा बहुत विस्तार से नहीं मिलती, फिर भी उसके स्फूलिंग देखे जा सकते हैं। दान के विभिन्न रूप—ज्ञानदान, संयतिदान, द्रव्यदान (धन-धान्य), अभयदान में अन्तिम को सर्वश्रेष्ठ दान बताया गया है। पद्मपुराण के गौ-व्याघ्र संवाद में अभय दान का जो चित्रण है, वह अहिंसा का अभिव्यंजक है। गाय के मुख से निसृत वचन व्याघ्र के हृदय को आंदोलित करने वाले हैं—'भाई बाघ! विद्वान् सतयुग में तप की प्रशंसा करते हैं, त्रेता में ज्ञान और कर्म की, द्वापर में यज्ञ की परन्तु कलियुग में एकमात्र दान ही श्रेष्ठ माना गया है। संपूर्ण दानों में एक ही दान सर्वोत्तम है, वह है संपूर्ण भूतों को अभय दान। इससे बढ़कर कोई दूसरा दान नहीं है।'[72] कथन का स्पष्ट आशय है कि अभयदान ही सर्वश्रेष्ठ है। इस दान को इतर धर्मदर्शनों में एक जैन धर्म ने भी मुख्य रूप से स्वीकार किया है। सूत्रकृतांग में इसकी स्पष्ट प्रस्तुति है—'सब दानों में अभय दान श्रेष्ठ है।'[73] इसकी श्रेष्ठता इसलिए है क्योंकि इससे समस्त प्राणियों की जिजीविषा को आश्वासन मिलता है। अतः अभयदान का तात्पर्य है जीवों की हिंसा से उपरत होना।

अभय दान की व्यापकता का उल्लेख किया—'जो समस्त चराचर प्राणियों को अभयदान देता है वह सर्व प्रकार के भय से मुक्त होकर परब्रह्म को प्राप्त होता है।' इससे दो महत्त्वपूर्ण तथ्य उजागर होते हैं— 1.जो दूसरों को अपनी ओर से अभय बनाता है, वही सबकी ओर से अभय रह सकता है। 2. परब्रह्म की विशिष्ट उपलब्धि हेतु सूक्ष्म अहिंसा का पालन अनिवार्य है। साधक का सर्वोच्च लक्ष्य आदिपरब्रह्म का साक्षात्कार है तो अहिंसा का आचरण उसके लिए अनिवार्य है।

विष्णु के उष्ट प्रति पुष्पों में अहिंसा का स्थान पहला है। इसकी अद्वितीयता को प्रकट किया—'अहिंसा के समान न कोई दान है, न कोई तपस्या।'[74] इस कथन में अहिंसा के महात्म्य का स्पष्ट निदर्शन है। सभी धर्मों के स्वरूप की अवगति अहिंसा ज्ञान में समाहित है। इसे उपमालंकार में प्रस्तुत दी—'जैसे हाथी के पदचिन्ह में अन्य सब प्राणियों के पदचिन्ह समा जाते हैं, उसी प्रकार सभी धर्म अहिंसा से प्राप्त हो जाते हैं।' अर्थात किसी भी धार्मिक अवबोध हेतु अहिंसा का आचरण अनिवार्य है।

अहिंसा की शक्ति को सर्व कामनापूर्णा बतलाया—'हे राजन्! वह अहिंसा सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली तथा पापों से छुड़ाने वाली है।'[75] इससे अनुमित होता है कि अहिंसा को पुराणों में कितना ऊँचा स्थान प्राप्त था। वैशिष्ट्य इस बात का है कि इसे कर्म बंधन मुक्ति का सशक्त साधन बतलाया गया है—'मन, वचन और काया से जो पूरी तरह अहिंसक रहते हैं और जो शत्रु और मित्र दोनों को समान दृष्टि से देखते हैं, वे कर्म-बन्धन से छूट जाते हैं। सभी जीवों पर दया करने वाले, सभी जीवों में आत्मा का दर्शन करने वाले और मन से भी किसी जीव की हिंसा न करने वाले स्वर्गों के सुख भोगते हैं।'[76] जाहिर है अखंड अहिंसा का अनुपालक, समतादृष्टिवान् कर्मबंधन की प्रक्रिया का उच्छेदकर सुख प्राप्ति के मार्ग को प्रशस्त करता है।

पुराणों में नाना प्रकार के उत्पात और उनकी शान्ति के उपाय वर्णित हैं—अठारह प्रकार की शान्तियों में समस्त उत्पातों का उपसंहार करने वाली अमृता, अभया और सौम्या—ये तीन सर्वोत्तम हैं। यहाँ अभया अहिंसा का द्योतक शांतिमंत्र प्रतीत होता है।

श्रीमद्भागवत् महापुराण, शिवपुराण, श्री नरसिंहपुराण, संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्त्त पुराणों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उनमें अहिंसा का स्पष्ट-रूप से कोई उल्लेख नहीं है पर विविध तरह के प्राकृतिक प्रकोपों की, ग्रहनक्षत्रों की शांति हेतु नाना मंत्रों का उल्लेख किया गया है, जिसे हम अहिंसा का विधिरूप-विकासात्मक रूप कह सकते हैं। अहिंसा की विकस्वर फुलवारी को देखकर ही भारत भूमि की गौरवपूर्ण गाथा का गुणानुवाद श्री विष्णुपुराण में किया गया—'देवगण निरंतर गान करते हैं कि जिन्होंने स्वर्ग और अपवर्ग के मार्गभूत भारतवर्ष में जन्म लिया वो धन्य है।'[77] वास्तव में स्वर्ग और मोक्ष प्रदायक अहिंसाधर्म के कारण ही भारत भूमि का देवों द्वारा गुणगान हुआ।

तथ्यतः शांति मंत्रों द्वारा प्राकृतिक संपदाओं से मैत्री, ग्रह-नक्षत्रों की अनुकूल दृष्टि की कामना अहिंसा के क्षेत्र में किये गये सार्थक उपक्रम हैं। विविध उपाख्यानों के माध्यम से, व्याघ्र जैसे हिंसक प्राणी के सन्मुख गौ के उपदेशामृत की संकल्पना अपने आप में मौलिक है। इसके माध्यम से चराचर सूक्ष्म प्राणी जगत् के अभयदान का जो चित्राँकन हुआ है, इसे पुराणों में अहिंसा के विकास का साक्ष्य माना जा सकता है।

अहिंसा के ऐतिहासिक स्वरूप में कतिपय महत्त्वपूर्ण प्रतिष्ठित ग्रंथों-पंथों के आधार पर अहिंसा के सूत्र एवं विकासात्मक तथ्यों को अन्वेषणपूर्वक रखा गया है। अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अहिंसा के विकास में न्यूनाधिक्य दृष्टि गोचर होता है। पर यह सच है कि इसका अस्तित्व ध्रुवरूप से सदैव कायम रहा है।

विभिन्न दर्शनों में अहिंसा

दार्शनिक विचारधारा का बीजारोपण अंगोपांग, वेदादिमूल ग्रंथों में हुआ। उपनिषद्, रामायण, महाभारत, गीता, भाष्य-टीकाओं में निरंतर विकसित होते हुए चिंतन की चरम परिणति स्वरूप भारतीय दर्शन की प्रतिष्ठा हुई। अनुभूति से आप्लावित जीवन को सार्थकता प्रदान करने वाला आध्यात्मिक चिंतन 'दर्शन' कहलाया। इसमें अध्यात्म विद्या या मोक्ष शास्त्र तथा ज्ञान मीमांसा-प्रमाण शास्त्र पर व्यापक एवं गंभीर विचार हुआ। भारतीय दर्शन की अनेक विशेषताएँ हैं, जिनमें पारलौकिक सर्वोच्च सुख (मोक्ष) की प्राप्ति सर्वोत्कृष्ट है। एक आदर्श व्यक्तित्व की परिकल्पना में—'मानव के सर्वतोमुखी विकास को दृष्टि में रखकर ही भारतीय आचार्यों ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्ट्य की सिद्धि में ही मानव कर्त्तव्य की इति श्री समझी।' दर्शन के आलोक में चरम परिणति-मोक्ष की प्राप्ति हेतु शुभ कर्म, तप-त्याग, संयम रूप अहिंसा की आराधना स्वीकृत हुई। इस रूप में अहिंसा भारतीय दर्शन का प्राण तत्त्व बनी।

अहिंसा भारतीय मनीषा की महत्त्वपूर्ण खोज है। डॉ. रामजीसिंह के अनुसार अहिंसा को केवल जैनों ने ही नहीं, बल्कि बौद्ध एवं वैदिक दर्शनों ने भी स्वीकार किया है। भारतीय चिंतन धारा की यह विशेषता है कि अहिंसा का क्षितिज केवल मानवों के लिए ही नहीं, मानवेत्तर प्राणियों के लिए खोल दिया। अभी भी जैनों के अलावा हिंदू-वैष्णव आदि कई समाज के लोग निरामिष हैं। अहिंसा का पर्यायवाची शांति तो वैदिक सभ्यता का प्राण है और वही शांति की भावना मानव और पशु-पक्षियों से भी आगे वृक्षों एवं जल आदि तक विस्तृत है। 'द्यो शान्ति' से लेकर 'आपः शांति', 'अंतरिक्ष शांति' आदि मंत्र है।[78] विभिन्न संदर्भों में अहिंसा की सूक्ष्म मीमांसा भारतीय दर्शन का विमर्श्य बिन्दु रहा है।

जैन-दर्शन में अहिंसा

अहिंसा के विराट् स्वरूप की परिकल्पना में 'जैन-दर्शन' अग्रणी है। 'जैन' शब्द मात्र से अहिंसा साकार हो उठती है। जैन-दर्शन एवं अहिंसा एक दूसरे के पर्यायवाची जैसे प्रतीत होते हैं। अहिंसा की अर्थात्मा 'जैन' शब्द के साथ इस प्रकार घुल-मिल गयी है कि इसका विभाजन नहीं किया जा सकता। वस्तुतः धर्म मात्र अहिंसा को आगे किये चलते हैं। कोई भी धर्म ऐसा नहीं, जिसका मूल या प्रथम तत्त्व अहिंसा न हो। फिर जैन धर्म के साथ अहिंसा का ऐसा तादात्म्य क्यों? समाधान में कुछ नये तथ्य उजागर होते हैं। यथा—

- षड्जीव निकाय का सूक्ष्म अनुभूति परक निरूपण।
- अहिंसा का शक्ति सापेक्ष प्रतिपाद—अणुव्रत-महाव्रत रूप।

- अहिंसा का दृढ़ता से पालन।
- लक्ष्य प्राप्ति के सर्वोच्च साधन रूप में स्वीकृति।
- चेतना की समान अनुभूति-आत्मतुला का बोध, आदि।

अहिंसा जैन धर्म का प्रमुख सिद्धांत है, यह निर्विवाद सच है। इसे परमधर्म रूप में स्वीकृति लब्ध है। किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से यह ज्ञातव्य है कि महावीर का मूल सिद्धांत समता है या अहिंसा? मंथन से उजागर होता है कि भगवान् महावीर का मूल सिद्धांत समता है और अहिंसा उसका एक अंग है। प्राकृत का 'सम' शब्द संस्कृत में तीन रूपों में व्याख्यायित हुआ है—सम-समता, शम-शांति, श्रम-तपस्या, स्वावलंबन और आत्म निर्भरता। भगवान् महावीर का मुख्य सिद्धांत यह त्रिपदात्मक 'सम' है। कालक्रम से यह घटित हुआ कि समता पृष्ठभूमि में चली गई और अहिंसा उभरकर सामने आ गयी, पर क्या उपरोक्त त्रिपदी के बिना अहिंसा की कल्पना की जा सकती है? आचरणात्मक पक्ष से भी यह पुष्ट होता है। 'समण' शब्द 'सम' शब्द से व्युत्पन्न है—'सममणई तेण सो समणो' जो सब जीवों को तुल्य मानता है वह 'समण' है। जैसे मुझे दुःख प्रिय नहीं, उसी प्रकार सब जीवों को दुःख प्रिय नहीं है—इस समता की दृष्टि से जो किसी भी प्राणी का वध न करता है, न करवाता है, वह अपनी समगति के कारण 'समण' कहलाता है। इस समता की साधना में एक विशिष्ट वर्ग प्रतिष्ठित हुआ जिसे आम भाषा में साधु-संत कहते हैं।

समता का प्रायोगिक पक्ष बहुत प्रखर बना जिसके आधार पर ही भिक्षु संघ में सब वर्गों के व्यक्ति दीक्षित होते थे। प्रमुख श्रमणों में चारों वर्णों से दीक्षित मुनि थे। आचार्य महाप्रज्ञ ने बताया—'नमिराजर्षि, संजय, मृगापुत्रादि क्षत्रिय थे। कपिल, जयघोष, विजयघोष, भृगुआदि ब्राह्मण थे। अनाथी, समुद्रपाल आदि वैश्य थे। हरिकेशबल, चित्र-संभूति आदि चाण्डाल थे। श्रमणों की यह समता अहिंसा पर आधारित थी। इस प्रकार समता और अहिंसा ये दोनों तत्त्व समण (या श्रमण) संस्कृति के मूल बीज थे।'[79]

मौलिक तथ्य के रूप में अहिंसा के इतिहास में तेबीसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म का अध्याय अपूर्व कोटि का माना जाता है। यह भी अब निर्विवादसा होता जा रहा है कि भगवान् महावीर और भगवान् बुद्ध की सुविकसित अहिंसा का मूल उद्गम पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म ही है।[80] यह कथन अहिंसा की ऐतिहासिकता का स्पष्ट प्रमाण है।

भगवान् महावीर अहिंसा के प्रखर प्रवक्ता एवं उदग्र प्रयोक्ता थे। उनका युग अहिंसा की पराकाष्ठा का युग माना जाता है। महावीर की अहिंसा जितनी विस्तृत थी उतनी ही गम्भीर थी। प्रश्न है उस समय की अहिंसा का स्वरूप क्या था? वह निषेध प्रधान थी या विधि-प्रधान? उसका आशय आत्मोन्नयन से था या पुद्गल पोषण से? उद्देश्य श्रेयोऽवाप्ति था या लौकिक अभ्युदय? इत्यादि प्रश्नों का समाधान जैन दर्शन की अहिंसा में खोजा जा सकता है। जैन दर्शन में अहिंसा की सूक्ष्म मीमांसा की गई—'आत्मा में राग-द्वेष-मोहादि भावों की उत्पत्ति होना ही हिंसा है और इन भावों का आत्मा में उत्पन्न नहीं होना ही अहिंसा है।'[81] वस्तुतः हिंसा-अहिंसा का संबंध दूसरे जीवों के जीवन-मरण, सुख-दुःख से न होकर आत्मा में उत्पन्न होने वाले राग-द्वेष जनित परिणामों से है।

मारने का भाव तो हिंसा है ही किंतु बचाने का व्यामोह भी हिंसा ही है क्योंकि वह भी राग भाव है और राग भाव मात्र हिंसा है। राग को अग्नि की उपमा दी जाती है। आग चाहे नीम की हो या चंदन की दोनों ही जलायेगी। राग भाव कैसा भी क्यों न हो आखिर वह हिंसा ही है। इसके

ठीक विपरीत वीतराग परिणति का नाम अहिंसा है। हिंसा-अहिंसा का प्रायः संबंध दूसरों से जोड़ा जाता है। दूसरों की हिंसा न करे, बस यही अहिंसा है, इस आम धारणा से परे जैन धर्म ने यहाँ तक कहा कि व्यक्ति अपनी हिंसा भी करता है। आत्म-हत्या ही नहीं, दूषित विचार मात्र हिंसा है।

अहिंसा की परिभाषा का उत्तरोत्तर विकास हुआ है। किसी जीव को मत मारो—यह अहिंसा है। यहाँ से अहिंसा का सिद्धांत चला और विकसित होते-होते अनेक गहराइयों को पार करते हुए राग-द्वेष मुक्त क्षण की भूमिका पर आरूढ़ हो समता के शिखर को छू गया। ऐतिहासिक विश्लेषण से स्पष्ट है कि अहिंसा की परिभाषा का क्रमशः विकास हुआ है। जैन साहित्य में अहिंसा की अनेक परिभाषाएं अंकित हैं। वे सभी अहिंसा की सूक्ष्म प्रतिपादना हेतु विनिर्मित हुईं। अहिंसा को धर्म का पर्याय बतलाया—'अहिंसा का पालन करना धर्म है, करवाना धर्म है और उसके पालन का अनुमोदन करना भी धर्म है।' धर्म की आराधना में अहिंसा की अपरिहार्यता बतलाकर एक नया अध्याय जोड़ा।

भगवान् महावीर अहिंसा दर्शन के प्रणेता हैं। उनकी अहिंसा के हृदय को छू पाना सुगम नहीं है। जैन भिक्षु की अहिंसा पृथ्वी, पानी, वनस्पति, वायु और अग्नि पर्यंत अनिवार्य बनी। निशीथ में पृथ्वी-पानी आदि की हिंसा संबंधी अनेक मासिक तथा चातुर्मासिक प्रायश्चित्त के विधान मिलते हैं। प्राणी मात्र को आत्मतुला से तौलना भगवान् महावीर का अहिंसा वैशिष्ट्य ही कहा जायेगा। उन्होंने कहा—'लोक में विद्यमान छोटे-बड़े सभी प्राणियों को जो आत्मा के समान देखता है वो ही अहिंसा है।'[82] इसका आधारभूत वचन है—'जैसे मुझे दुःख प्रिय नहीं है, वैसे ही सभी छोटे-बड़े प्राणियों को दुःख प्रिय नहीं है।' ये कथन आत्म-तुल्यता को प्रमाणित करते हैं।

जो व्यक्ति सभी प्राणियों को आत्मा के समान देखता है, जिस चैतन्य प्रमाण वाली मेरी आत्मा है, उसी परिणाम वाली आत्मा सबकी है। हाथी और कुंथु की आत्मा भी समान परिमाण वाली है। इस समता भाव से मध्यस्थ भाव फलित हुआ—'समूचे जगत् को समता की दृष्टि से देखने वाला किसी का भी प्रिय-अप्रिय न करें—मध्यस्थ रहे।' समता की धुरी पर आत्मतुला का सिद्धांत प्रतिष्ठित कर भगवान् महावीर ने अभिनव अहिंसा का सूत्रपात किया। उनका आत्मतुला की चेतना का विकास बहुत विशाल था, जिसमें षड्जीव निकाय की आत्मानुभूति समाहित थी। इसका प्रमाण गौतम स्वामी के जिज्ञासा-समाधान में खोजा जा सकता है। गौतम ने भगवान् महावीर से पूछा—'भंते! पृथ्वीकायिक जीव आक्रांत होने पर किस प्रकार की वेदना का अनुभव करते हैं? भगवान् ने कहा—गौतम! जैसे एक तरुण और शक्तिशाली मनुष्य दुर्बल और जर्जरित मनुष्य के मस्तक पर मुष्ठि से जोर का प्रहार करता है, उस समय वह कैसी वेदना का अनुभव करता है?' भंते! वह अनिष्ट वेदना का अनुभव करता है?

गौतम! जैसे वह जर्जरित मनुष्य अनिष्ट वेदना का अनुभव करता है, उससे भी अनिष्टत्तर वेदना का अनुभव पृथ्वीकायिक जीव आहत होने पर करता है। इसी प्रकार सभी जीव ऐसी ही घोर वेदना का अनुभव करते हैं।'[83] स्पष्ट रूप से किसी भी मान्यता, अवधारणा से सर्वथा अप्रभावित प्राणीमात्र के स्वतंत्र अस्तित्व की स्वीकृति जैन दर्शन की जगत् को मौलिक देन है। भगवान् महावीर का प्रतिपादन था—'पुढोसत्ता' यानी प्रत्येक प्राणी का स्वतंत्र अस्तित्व है। तुम्हें दूसरे की स्वंतत्रता को कुचलने का कोई अधिकार नहीं है। अहिंसा के विश्लेषण में यह स्पष्ट हुआ-यह संसरणशील प्राणी अनेक बार महान् बन चुका है और अनेक बार साधारण। कौन छोटा है और कौन बड़ा? सब छोटे हैं और सब बड़े। जाति, कुल, बल, रूप के आधार पर ऊँच-नीच की कल्पना मिथ्या है।

भगवान् महावीर अहिंसा के उग्र निरूपक एवं प्रखर समीक्षक थे। जिसकी पृष्ठभूमि में हिंसामयी क्रूरता का ताण्डव नृत्य प्रतिबिम्बित था। क्रूर हिंसा के साथ-साथ क्रूर दंड देने की प्रवृत्ति बढ़ रही थी। सामान्य अपराधी को भी विशेष दंड दिया जाता। रोमांचक दंड दिये जाने का वर्णन मिलता है—'अपने समाश्रित दास, प्रेष्य, भृतक, धार्मिक, कर्मकर और भोग पुरुष आदि के किसी छोटे अपराध होने पर मालिक स्वयं उन्हें दंडित करता था। वह कहता—इसे दंडित करो, मुंडित करो और इसका तिरस्कार करके इसको मारो। इसको बेड़ी, जंजीर और सांकल आदि से काष्ठादि पर बाँध दो। इसके प्रत्येक अंग को संकुचित कर डालो। इसके हाथ, पैर, नाक, ओष्ठ, शिर, मुख और जननेन्द्रिय का छेदन करो। इसके हृदय, नेत्र, दाँत, वदन, जिह्वा और वृषणों का उत्पाटन करो। इसे वृक्ष से लटका दो। इसे भूमि पर रगड़ दो। इसके शरीर को शूल से टुकड़े-टुकड़े कर डालो। इसके घावों पर नमक छिड़का दो। इसको अग्नि ज्वाला से जला दो। इसके मांस को कोड़ी के सदृश बनाकर इसी को खिलाने का प्रबन्ध करो। इसके भक्त-पान का विच्छेद कर दो। इसको यावज्जीवन बंधन में रखो। इसे बेमौत मार डालो।'[84] इस प्रकार की क्रूर दंड परंपरा के प्रतिकार में भगवान् महावीर ने अहिंसात्मक उचित न्याय विधि का प्रवर्तन किया। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि अल्प दंडनीय को अधिक दंड देने वाला प्रत्युत स्वयं दंड का भागी बनता है। दंड देने का अधिकारी वही है जिसे सम्यक् दंड व्यवस्था का बोध हो।

तात्कालीन हिंसामयी विषम प्रवृत्तियाँ देखकर भगवान् महावीर का हृदय द्रवित हो उठा। उस समय हिंसा का बोलबाला था। चारों ओर हिंसक क्रियाकाण्डों की धूम मची थी। यज्ञों में मूक प्राणियों की बलि दी जाती थी, साथ ही सामाजिक विषमता का साम्राज्य था। मनुष्य-मनुष्य में भेदरेखा खींची हुई थी। ऐसे ही हृदय द्रावक दृश्य देखकर भगवान् महावीर का हृदय कांप उठा। उन्होंने इस प्रकार के हिंसक वातावरण को बदलने का प्रण किया। निर्भय होकर अहिंसक क्रांति की। उन्होंने उच्च स्वर में कहा—'याज्ञिकी हिंसा हिंसा न भवति' यह सिद्धांत गलत है। हिंसा हर अवस्था में हिंसा ही रहती है। वह किसी भी उद्देश्य से की जाए, उसका हिंसापन मिट नहीं जाता। जातिवाद का खंडन किया और कहा—त्याग और तपस्या ही विशेष है, कोई जाति विशेष से नहीं। उद्घोषणा की—'सब मनुष्य समान हैं, कोई अतिरिक्त अथवा हीन नहीं।' अपने कथन की पुष्टि में उन्होंने अहिंसात्मक यज्ञ की प्ररूपणा की। जातिवाद का प्रतिकार कर हरिकेशबल मुनि को अपने संघ में महत्त्व दिया। मानव मात्र की एकता पर बल दिया।

द्रव्य-भाव की अपेक्षा से अहिंसा की सूक्ष्म मीमांसा जैन-दर्शन की मौलिक स्फुरणा है। एतद्विषयक अहिंसा के चार विकल्प बतलाये—

- 'द्रव्यतः अहिंसा भावतः अहिंसा।
- द्रव्यतः अहिंसा भावतः हिंसा।
- द्रव्यतः हिंसा भावतः अहिंसा।
- द्रव्यतः हिंसा भावतः हिंसा।'[85]

द्रव्यतः और भावतः अहिंसा के प्रतिपादन से इसका सूक्ष्म रूप प्रकट हुआ जो अहिंसा के विकास का प्रतीक है। अहिंसा का दिखाऊ विस्तार तो स्वल्प प्रयत्न से ही हो जाता है, किंतु यथार्थ में उसका विकास होना प्रयत्नजन्य उपलब्धि है।

जैन दर्शन में अहिंसा का प्रतिपादन अनेक दृष्टियों से हुआ है उसमें प्रमुख हैं—निश्चय और

व्यवहार दृष्टि। इसमें मूलभूत आत्म परिणामों को लक्षित करके अहिंसा के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। प्रतिपादन की यह गूढ़ अभिधा हर किसी के लिए समझ का सरल विषय नहीं है। पर, तत्त्व की गुरुता का जो निदर्शन इस दृष्टि में होता है वह अपने आपमें मौलिक है। 'निश्चय-दृष्टि से आत्मा ही अहिंसा है और वही हिंसा! अप्रमत्त आत्मा अहिंसक है और जो प्रमत्त है वह हिंसक है।'[86] हिंसा और अहिंसा का मूल स्रोत आत्मा की प्रमत्त-अप्रमत्त आंतरिक अवस्था विशेष का नाम है। अथवा हिंसा और अहिंसा का मूल स्रोत आत्मा की असत् और सत् प्रवृत्ति मात्र है। जीव घात या जीव रक्षा उसकी मूल कसौटी नहीं है। यह तो मात्र उपचार है अथवा व्यवहार दृष्टि है। उभय दृष्टि का एक साथ चित्रण करते हुए कहा गया है—'जहां प्रवृत्ति असत् होती है और जीवघात भी होता है, वहाँ व्यवहार और निश्चय दोनों दृष्टियों से हिंसा होती है। जहाँ प्रवृत्ति सत् होती है और जीव-घात भी नहीं होता, वहाँ व्यवहार और निश्चय दोनों दृष्टियों से अहिंसा होती है। प्रवृत्ति सत् होती है और जीव-घात हो जाता है, वहाँ निश्चय-दृष्टि से अहिंसा और व्यवहार-दृष्टि से हिंसा होती है। प्रवृत्ति असत् होती है और जीव-घात नहीं होता, वहाँ निश्चय-दृष्टि से हिंसा होती है।'[87] इस चतुरभंगी में हिंसा-अहिंसा के मूल आशय को प्रकट किया गया है। इसका मंथन पूर्वक अनुशीलन ही अहिंसा विकास का मूल आधार है।

वीतराग वाणी में अहिंसा का जो नैश्चयिक स्वरूप प्रकट हुआ वह बड़ा सूक्ष्म है। चूँकि यथार्थ की अनुभूति से जो तत्त्व प्रतिपादित होता है उसका रहस्य मर्म-स्पर्शी होता है। निवृत्ति मूलक अहिंसा की प्रतिपादना का मूल अव्यक्त ही रहता है। वह तो आत्म प्रदेशों में ही अनुभूति का विषय बनता है। इस तथ्य की प्रस्तुति वीतराग वाणी में हुई—'राग आदि की अनुत्पत्ति अहिंसा है और उनकी उत्पत्ति हिंसा है।' इससे प्रकट होता है कि हिंसा-अहिंसा का सीधा संबंध आत्मपरिणामों से है। वे दोनों आत्मा के ही विकारी-अविकारी परिणाम है। वस्तुतः चिद्विकार ही हिंसा है, झूठ, चोरी आदि चिद्विकार हैं अतः हिंसा है। अध्यवसाय की प्रशस्त और अप्रशस्त, पवित्र और अपवित्र स्थिति ही हिंसा-अहिंसा की कारक है। निश्चय दृष्टि से—'अध्यवसाय से ही कर्म का बंध होता है, फिर कोई जीव मरे या न मरे। निश्चय के अनुसार संक्षेप में जीवों के कर्म-बंध का यही स्वरूप है।'[88] हिंसा का यह अतिसूक्ष्म रूप अनेक उदाहरणों में मिलता है—प्रसन्नचन्द्र राजर्षि, तन्दुलमत्स्यादि। भगवान् महावीर ने इसी आशय से मानसिक अहिंसा को सर्वोपरि स्थान दिया, क्योंकि हिंसा की मूल भित्ति मानसिक हिंसा ही कहलाती है।

जैन धर्म में अहिंसा के विकास का आधारभूत तत्व है—संयम। जर्मन विद्वान अलबर्ट स्वेजर ने अपने ग्रंथ 'इंडियन वाट एण्ड इट्स डेवलपमेंट' में इस तत्व को बड़ी गम्भीरता से प्रतिपादित किया है। उनके मतानुसार—'यदि अहिंसा के उपदेश का आधार सचमुच ही करुणा होती तो यह समझना कठिन हो जाता कि उसमें न मारने, कष्ट न देने की ही सीमाएँ कैसे बंध सकी और दूसरों को सहायता प्रदान करने की प्रेरणा से वह कैसे विलग रह सकी है।'[89] उनकी दृष्टि जैन अहिंसा की सूक्ष्म मीमांसा को समझने में पैनी थी। यथार्थ के धरातल पर जैन दर्शन में अहिंसा का आधार संयम है।

अहिंसा का बहुआयामी प्रतिपादन जैन दर्शन की मौलिक विशेषता है। हिंसा-अहिंसा का स्वरूप इस दर्शन में बहुत व्यापक है। मानसिक अहिंसा के दृष्टिकोण से विचारों का यथार्थ प्रतिपादन अनेकांत दर्शन, वाचिक अहिंसा हेतु समस्त पक्षों को अपने में समाहित कर लेने वाली स्याद्वादमयी वाणी, कायिक अहिंसा के लिए गृहचारी के लिए अणुव्रत एवं मुनियों के लिए महाव्रत का आचरण व्यपदिष्ट हैं।

सूक्ष्म दृष्टि से अनेकांत, स्याद्वाद और अपरिग्रह अहिंसा के ही रूपान्तर है। डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल ने लिखा–'अहिंसा की ही दिव्य ज्योति, विचार के क्षेत्र में अनेकांत, वचन व्यवहार के क्षेत्र में स्याद्वाद और सामाजिक तथा आत्मशांति के क्षेत्र में अल्प परिग्रह या अपरिग्रह के रूप में प्रकट होती है। ये सब परस्पर अंतः संबद्ध है।'[90] प्रस्तुत मंतव्य में जैन दर्शन के मौलिक सिद्धांतों का समावेश है। जैन धर्म के मुख्य सिद्धांत–अहिंसा, अनेकांत और अपरिग्रह है।

जैन ग्रंथों में अहिंसा के आन्तरिक विकास की चार विधियां बतलायी जिन्हें भावनाओं के नाम से अभिहित किया गया। मैत्री, प्रमोद (मुदिता), कारूण्य (करुणा) और माध्यस्थ्य (उपेक्षा)। इनकी अहिंसा के विकास में क्या भूमिका रहती है, यह विमर्शनीय है।

प्रमोद भावना–का अर्थ है–जिन व्यक्तियों में जो अच्छाइयाँ हैं, जो सद्गुण हैं और जो योग्यताएँ हैं उन्हें देखकर प्रसन्न होना। मन में प्रमोद की अनुभूति करना।

कारुण्य भावना–अहिंसा के विकास हेतु, 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के तत्त्व की पहचान हो। इसके लिए कारुण्य भावना मनुष्य में सहानुभूति और आत्मीयता को विकसित करती है। जो व्यक्ति अज्ञानी है, व्यसनग्रस्त है, दुःख और दारिद्रय से क्लांत है, उनके दुःख को दूर करने की अभिलाषा कारुण्य भावना कहलाती है।

माध्यस्थ भावना–का दर्शन है उपेक्षा भाव का विकास। अपने आप पर संयम रखना अहिंसा का प्रथम अंग है। विकट समय में भी जो संतुलित रह सकता है वही अहिंसा के मर्म को पहचानता है।[91] सामाजिक धरातल पर भी इसका अपना महत्त्व है।

ये भावनाएं अहिंसा के विकास में योगभूत बनती हैं। इनका विकास सामाजिक परिवेश को पवित्र बनाने में महत्वपूर्ण है।

जैन दर्शन की अहिंसा से यह ज्ञात होता है कि इसमें कठोरता और सुगमता का अपूर्व संगम है। यद्यपि जैन अहिंसा को आम धारणा में कठोर माना जाता है पर वास्तविकता इससे भिन्न है। जैन धर्म साक्षात् द्रष्टा द्वारा प्रतिपादित धर्म होने से उसमें हिंसा-अहिंसा का सूक्ष्म विवेक किया गया है। साथ ही जैन धर्मावलंबी साधक का सर्वोच्च ध्येय 'मुक्ति' का वरण होने से उसकी प्राप्ति हेतु अखंड (सूक्ष्म) अहिंसा की साधना अनिवार्य बतलाई गयी है।

बौद्ध दर्शन में अहिंसा

अहिंसा का प्रतिपादन आस्तिक दर्शन की धुरा है। सभी आस्तिक दर्शन इसे अपने-अपने चिंतन से परिभाषित एवं व्याख्यायित करते हैं। बौद्धदर्शन में-दस कुशल धर्म स्वीकृत हैं उनमें अहिंसा का प्रथम स्थान है। यद्यपि बौद्ध धर्म करुणा के लिए प्रसिद्ध है, पर अहिंसा का विमर्श उसमें बिल्कुल ही न हो ऐसा नहीं है। भगवान बुद्ध ने अहिंसा को परिभाषित करते हुए लिखा–'त्रस और स्थावर सबकी घात न करना अहिंसा है, वही आर्यता है।' स्पष्टतया बौद्ध अहिंसा में प्राणवध का निषेध प्रतिपादित है। साथ ही आर्यता का लक्षण भी अहिंसा ही बनी। भगवान् बुद्ध ने कहा–'जंगम और स्थावर प्राणियों का प्राणवध न स्वयं करें, न किसी अन्य से करवाएं और न किसी करने वाले का अनुमोदन करें।'[92] यह अहिंसा की सूक्ष्म मीमांसा का साक्षी है। इसमें कृत, कारित और अनुमोदन की क्रिया रूप अहिंसा का प्रतिपादन है।

भगवान बुद्ध ने अहिंसा के विकास हेतु नाना प्रकार के उपदेश प्राणीजगत् में दिये। उन्होंने कहा–'जिसके हृदय में दया नहीं उसे शूद्र ही समझना चाहिए। चाहे वह किसी भी कुल में उत्पन्न

क्यों न हो।' दया से तात्पर्य अहिंसा-करुणा की भावना से है। जिसके हृदय में वह नहीं है वह उच्च कुल में पैदा होने पर भी शुद्र ही कहलायेगा। स्पष्ट रूप से मनुष्य दया के परिणामों से महान् बनता है न कि किसी जाति विशेष में जन्म लेने से। बुद्ध की दृष्टि में 'संसार में नाम-गोत्र कल्पित है व व्यवहार मात्र है।' इस संदर्भ में भगवान् बुद्ध के हृदय में व्याप्त असीम प्राणीजगत् के प्रेम भाव को जान सकते हैं। नाम-गोत्र के आधार पर किसी को श्रेष्ठ या हीन मानना भूल है। ये तो मात्र उपचार हैं। ऊपरी तौर पर बौद्ध दर्शन में अहिंसा का सूक्ष्म स्वरूप नजर नहीं आता पर, ऐसी बात नहीं है। भगवान् बुद्ध ने प्राणीजगत् में व्याप्त दंड एवं मौत की भय संज्ञा को जाना और उसी के आधार पर अहिंसा का प्रतिपादन किया--'दण्ड से सब डरते हैं, मृत्यु से सब भय करते हैं। दूसरों को अपनी तरह जानकर, मनुष्य किसी दूसरे को न मारे, न मरवाए।'[93] प्रस्तुत मंतव्य से स्पष्ट है कि पर-प्राण व्यपरोपण का निषेध आत्मतुला के धरातल पर हुआ है।

बौद्ध दर्शन में अहिंसा की पहुँच-पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति तक पहुँची या नहीं कहना कठिन है। पर विनयपिटक में यह स्पष्ट उल्लेख है—जान बूझकर प्राणि-युक्त (अनछाने) पानी पीने वाले भिक्षु को 'पाचित्तिय' दोष लगता है।[94] यह निर्देश बौद्ध दर्शन में अहिंसा के सूक्ष्म रूप को प्रकट करता है।

जन्म-मृत्यु के चक्रव्यूह से निकलने हेतु भगवान् बुद्ध ने तपस्या रूप साधना को अपनाया। उनका ज्ञान चार आर्य सत्यों में निहित है—1. दुःख है। 2. दुःख का कारण है, 3. दुःख का निरोध है। 4. दुःख निरोधगामिनी प्रतिपद अर्थात् साधन है। उन्होंने जगत् के दुःखों से छूटने के लिए अष्टांगमार्ग का प्रतिपादन किया है। बुद्ध की दृष्टि में अहिंसा की चर्चा उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है जितनी की दुःख मुक्ति का विषय है। भगवान् बुद्ध ने जिस अहिंसा का प्रतिपादन किया उसका स्वरूप करुणा व मैत्री प्रधान है। महाप्रज्ञ ने लिखा—'गौतम बुद्ध के अनुसार मैत्री और करुणा अर्थात् प्राणीमात्र के प्रति प्रेम और सभी जीवों के प्रति दया का भाव ही अहिंसा है। उन्होंने अहिंसात्मक कर्म को सम्यक् कर्म बतलाया है तथा अहिंसा के मार्ग में बाधक शस्त्र, प्राणी, मांस, मदिरा और विष के व्यापार को त्याज्य कहा है।'[95] विमर्शतः बौद्ध दर्शन की अहिंसा का आधारभूत तत्त्व मैत्री और करुणा है। अतः जितना विश्लेषण करुणा का हुआ उतना अहिंसा का नहीं हो सका। किंतु अहिंसा एवं करूणा को कभी पृथक् नहीं किया जा सकता।

बौद्ध दर्शन में अहिंसा का उपदेश करुणा की भावना से निष्पन्न प्रतीत होता है। अहिंसा स्वतंत्र न होकर करुणा की भावना से अनुस्यूत होने का मुख्य कारण व्यवहारिक होना भी लगता है। वर्तमान की समस्याओं से निपटने के लिए सामाजिक धरातल पर अहिंसा को उतारने में करूणा का अवलम्बन महत्त्वपूर्ण है।

योग दर्शन में अहिंसा

विभिन्न दर्शनों में अहिंसा की परिभाषा, व्याख्या-विश्लेषण अपने-अपने अभिमत के अनुरूप की गई है। पर इसका मूल आशय प्रायः मिलता जुलता है। पातंजल योग दर्शन में 'सब प्रकार से सब कालों में सब प्राणियों के प्रति अनभिद्रोह यानी अवैर अहिंसा है।'[96] इस परिभाषा में अहिंसा की व्याख्या अनभिद्रोह के आधार पर की गई। द्रोह का निबंध या अभाव ही अहिंसा है। द्रोह का अर्थ है—दूसरों का अहित चिंतन, प्रतिहिंसा का भाव, वैर, द्वेष, अपराध या जान से मारना। इसके विपरीत दूसरों का अहित न करना, बदले की भावना न रखना, शत्रुता-विद्वेष नहीं रखना, पर के प्रति अपराध नहीं करना तथा उनका प्राण हरण नहीं करना अहिंसा है।

'सर्वथा' का अर्थ सब प्रकार से अहिंसा का पालन करना यानी मन, वचन, कर्म-सभी प्रकार से दूसरों की हिंसा नहीं करना। इसका अभिप्राय है जीवन के सभी पहलुओं—व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय, आर्थिक, शैक्षणिक इत्यादि संदर्भों में अहिंसा का पालन किया जाय।

'सर्वदा' काल सूचक पद है। इसका अभिप्राय है अहिंसा का पालन बिना किसी अपवाद के सदैव वांछनीय है।

योग दर्शन के प्रणेता महर्षि पतंजलि ने अहिंसा के क्रियात्मक स्वरूप पर प्रकाश डाला—'अहिंसा प्रतिष्ठित व्यक्ति की सन्निधि में सब प्राणी वैरविहीन बन जाते हैं।'[147] यह अहिंसा का ही माहात्म्य है कि इसको धारण करने वाले व्यक्ति, महापुरुष का आभामंडल इतना पवित्र एवं मैत्री की तरंगों से आप्लावित हो जाता है कि उसके प्रभाव क्षेत्र में बैठने वाले जन्मजात वैरी भी निर्वैर बन जाते हैं। इसका आगमिक उदाहरण है—भगवान् महावीर की देशना सुनने सभी हिंसक-अहिंसक सिंह और बकरी आदि का एक साथ बैठना।

अहिंसा का स्वरूप विभिन्न रूपों में मिलता है। योग दृष्टि समुच्चय में मित्रा दृष्टि के अन्तर्गत यम का उल्लेख किया गया है जिसमें हिंसा-अहिंसा का तात्त्विक स्वरूप समझने के लिए उसके तीन प्रकार बतलाये गये—'हेतु अहिंसा, स्वरूप अहिंसा, अनुबंध अहिंसा।

- **हेतु अहिंसा**-जीव की यतना एवं जयणा करना, बचाने की ताकत रखना।
- **स्वरूप अहिंसा**-जीव की घात न करना, प्राणों का हरण न करना।
- **अनुबंध अहिंसा**-जो अहिंसा फल रूप में परिणत होती है वह अनुबंध अहिंसा है। इसी से अहिंसा की परंपरा चलती है।[97] पातंजल योग सूत्र के भाष्यकार की दृष्टि में अहिंसक और दयालु में कोई भेद नहीं है—'जो अहिंसक है, वही दयालु है और जो दयालु है वही अहिंसक है। अहिंसात्मक दया का ही भगवत्-प्राप्ति रूप फल होता है।' आशय रूप में अहिंसा का पूर्ण पालन स्वरूप प्राप्ति, आत्म दर्शन का कारक होता है।

योग दर्शन में अहिंसा के विकासात्मक स्वरूप का विस्तृत विवेचन नहीं मिलता। उसमें दुःखों की परंपरा के अंत हेतु पंच क्लेश पर विजय प्राप्ति का उल्लेख नितांत अहिंसात्मक है। अहिंसा की उत्कृष्ट साधना के बिना क्लेश मुक्ति संभव नहीं है। यद्यपि भाष्यकार ने अहिंसा का प्रत्यक्ष रूप से कोई उल्लेख नहीं किया पर इसका भावार्थ यही ज्ञापित करता है।

विभिन्न दर्शनों में अहिंसा के स्वरूप पर अपना अभिमत प्रकट करते हुए कोशकार श्रीमद् विजय राजेन्द्र सूरीश्वर ने कहा—'अहिंसा का स्वरूप अन्य दर्शनों में वैसा नहीं जैसा जैन दर्शन में है। सांख्य दर्शन में अहिंसा मोक्ष प्राप्ति का प्रधान अंग रही है फिर भी पँच यमों के रूप में अहिंसा को स्वीकारा है। शाक्य दर्शन में दस कुशल धर्म में अहिंसा का प्रतिपादन किया गया है। वैशैषिक एवं वैदिक धर्म में अहिंसा का सूक्ष्म स्वरूप नहीं मिलता।'[98] इसके आधार पर विभिन्न धर्मों में अहिंसा के स्वरूप को जान सकते हैं।

विभिन्न दर्शनों में अहिंसा का जो स्वरूप है वह अपने आप में मौलिक है। दार्शनिकों की अहिंसा संबंधी सोच विराट् है। विराट्ता का हेतु है—प्राणी जगत् के प्रति करुणा, मैत्री और आत्मौपम्य का बोध। अतः अहिंसा के प्रतिपादन की शैली भिन्न-भिन्न होने पर भी मूल तत्त्व 'न मारना' सभी को इष्ट है। विमर्शतः सभी आस्तिक दर्शनों ने अहिंसा को साधना, सोच एवं आचरण पक्ष में स्थान देकर इसके विकासात्मक स्वरूप को प्रशस्त किया है।

अहिंसा एक : संदर्भ अनेक

अहिंसा विराट् स्वरूपा है। इसका अस्तित्व अनेक रूपों में विभिन्न संदर्भों में विद्यमान है। शब्द से मात्र 'न+हिंसा-अहिंसा' अति सुगम प्रतीत होता है। पर, इसका वाच्यार्थ बहुत व्यापक है। अहिंसा की अवधारणा में इसके विविध आयाम समाये हुये हैं। प्रस्तुत संदर्भ में मौलिक बिन्दुओं का विमर्श अभीष्ट है।

अहिंसा और दया

आगमों में अहिंसा के लिए अथवा इसके पर्यायवाची के तौर पर 'दया' शब्द का प्रयोग किया गया है। अहिंसा और दया दोनों एक हैं। शब्द उत्पत्ति की दृष्टि से दोनों में भेद जान पड़ता है। अर्थ की दृष्टि से पाप से बचने या बचाने की जो वृत्ति है, वही अहिंसा है और वही दया है। यदि इनको पृथक् करना चाहें तो 'निवृत्यात्मक अहिंसा' को अहिंसा एवं सत्प्रवृत्यात्मक अहिंसा को दया कह सकते हैं। टीकाकार मलयगिरि ने दया का अर्थ—'दया-देहि-रक्षा' देहधारी जीवों की रक्षा करना किया है। यह उचित भी है क्योंकि अहिंसा (प्राणातिपात्-विरमण) में जीव-रक्षा अपने आप होती है।[99]

आचार्य भिक्षु ने लिखा—'तीन करण, तीन योग से षट्कायिक जीवों को मारने का शुद्ध मन से त्याग करना, यही पूर्ण दया भगवान् ने कही है, इससे पाप-आगमन के द्वार रुकते हैं।'[100] यह अहिंसा का विशुद्ध स्वरूप है। अहिंसा और दया का अंतर संबंध है, एक के बिना दूसरी अपूर्ण है। प्राणी मात्र के प्रति जो संयम है, वह अहिंसा है। प्राणिमात्र के प्रति जो मैत्रीभाव है, उन्हें पीड़ित करने का प्रसंग आते ही हृदय में एक कंपन होता है, वह दया है। दया के बिना अहिंसा टिक नहीं सकती और अहिंसा के बिना दया हो नहीं सकती। इन दोनों में अविनाभाव संबंध है। धर्म का मूल अहिंसा है क्योंकि वह दयामय्-प्रवृत्तिरूप होता है। यह अहिंसा और दया की अभिन्नता का दिग्दर्शन है। दोनों का संबंध एक ही बिन्दु से जुड़ा हुआ है, वह लक्ष्य है—वृत्ति परिवर्तन। 'अहिंसा और दया का संबंध वृत्ति परिवर्तन से है।' हिंसामयी आंतरिक वृत्ति का परिवर्तन दोनों का समान लक्ष्य है।

करुणा और दयाद्र मानस ही अहिंसा की अनुपालना में सफल बनता है। 'अहिंसा का पालन वही कर सकता है, जिसका मन दया से भीगा हुआ हो। पर साधन की विकृति से दया भी विकृत बन जाती है। एक आदमी मूली खा रहा है। दूसरे के मन में मूली के जीवों के प्रति दया उत्पन्न हुई। उसने बल प्रयोग किया और जो मूली खा रहा था उसके हाथ से वह छीन ली। दया का यह शुद्ध साधन नहीं है।'[101] स्पष्ट रूप से हिंसक वही होता है जो हिंसा करे, जिसके मन में हिंसा का

भाव हो; और अहिंसक भी वही होता है जो अहिंसा का पालन करे, जिसके मन में अहिंसा का भाव हो। बलात् किसी को हिंसक या अहिंसक नहीं बनाया जा सकता। दया आंतरिक अनुभूति है थोपा हुआ सिद्धांत नहीं।

आचार्य भिक्षु ने कहा—'अहिंसा महाव्रत है, दया उसमें समाई हुई है। अहिंसा से अलग दया नहीं है।' अर्थात् मुनि पूर्ण अहिंसा के संवाहक है अतः उनकी दया का क्षेत्र विस्तृत है। मुनि के लिए यहाँ तक उल्लेख है कि सब जीवों की दया के निमित्त मुनि अपने लिये बनाया हुआ भोजन भी न ले। इस प्रकार सूक्ष्म हिंसा से बचने का निर्देश अहिंसा की अखंड आराधना हेतु ही किया गया है।

दया के दो रूप हैं—लौकिक और लोकोत्तर। लौकिक दया का संबंध कर्त्तव्य से है। सामाजिक प्राणी का जो कर्त्तव्य समाज के प्रति है उसे अहिंसा और धर्म की कोटि में नहीं रखा जा सकता वह लौकिक दया की कोटि में आ सकता है। लौकिक दया के साथ अहिंसा की व्याप्ति नहीं है, इसलिए अहिंसा और लौकिक दया भिन्न-भिन्न हैं। लोकोत्तर दया और अहिंसा की निश्चित व्याप्ति है—जहाँ दया है वहाँ अहिंसा है और जहाँ अहिंसा है वहाँ दया है। इस दृष्टि से अहिंसा और दया एक है। लोकोत्तर दया का स्वरूप इस रूप में जान सकते हैं—'एक व्यक्ति पाप का आचरण कर रहा हो, उसे कोई समझाए, उसका हृदय बदल दे, वह जन्म-मरण के कुएं में गिरने से बचता है। यह दया का आध्यात्मिक स्वरूप है।' अर्थात् अहिंसा की दृष्टि में मारने वाला पाप से बचे, उसकी हिंसा छूटे, मारने वाला हिंसा के पाप से बच जाए, ऐसी करुणा या दया ही अहिंसा है।

लौकिक दया और उपकार के संबंध को प्रकट करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने बताया—जिसमें संयम और असंयम का विचार प्रधान न हो, किंतु करुणा ही प्रधान हो, वह लौकिक दया है। जहां करुणा संयम से अनुप्राणित हो, वह लोकोत्तर दया है। अग्नि में जलते हुए को किसी ने बचाया, कुएं में गिरते हुए को किसी ने उबारा—वह लौकिक उपकार है।[102] स्पष्ट रूप से लौकिक दया और उपकार का संबंध है पर लोकोत्तर का संबंध इन दोनों से नहीं है। लोकोत्तर दया का आचरण विशुद्ध आध्यात्मिक दृष्टि पर ही केंद्रित है। इसकी पूर्ण आराधना कर मुमुक्षु अपनी मंजिल का वरण कर लेता है। इसका उदाहरण उत्तराध्ययन सूत्र में मिलता है—'सागर चक्रवर्ती सागर पर्यंत भारतवर्ष और पूर्ण ऐश्वर्य को छोड़ अहिंसा की आराधना कर मुक्त हुआ।'[103] यहां अहिंसा दया के अर्थ में प्रयुक्त हुई है। अहिंसा युक्त दया के अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनमें प्रमुख है—हाथी के भव में मेघकुमार द्वारा की गई दया, नेमिकुमार का विवाह प्रसंग से प्राणियों पर दया कर वापिस अविवाहित मुड़ जाना, गजसुकुमाल द्वारा अग्निकाय के जीवों पर दयाद्र होकर निष्प्रकंप खड़े रहना आदि। विशुद्ध अहिंसा निष्ठ दया के अनेक उदाहरण भरे हैं। लौकिक दया के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं उसमें—छद्मस्थ अवस्था में महावीर द्वारा गोशालक की तेजोलेश्या से रक्षा करना भी सम्मिलित है।[104] जिसका प्रसंग सावद्य अनुकंपा से जुड़ा हुआ है।

गांधी ने अहिंसा के लिए 'दया' शब्द का प्रयोग यदा-कदा किया है। उनकी दृष्टि में अहिंसा और दया में नितांत भेद नहीं है। 'अहिंसा और दया में उतना ही भेद है जितना सोने में और सोने के गहनों में, बीज में और वृक्ष में। जहां दया नहीं वहां अहिंसा नहीं। अतः यों कह सकते हैं कि जिसमें जितनी दया है उतनी ही अहिंसा है।'[105] स्पष्ट है कि दयाशून्य अहिंसा और अहिंसा शून्य दया कभी नहीं हो सकती। दोनों का परस्पर आंतरिक संबंध है। आक्रमणकारी का डरकर सामना न करना अहिंसा नहीं है अपितु दया-भाव से ज्ञानपूर्वक न मारने में ही अहिंसा है।

निष्क्रिय-सक्रिय अहिंसा

इसका स्वरूप विधि एवं निषेध प्रधान है। निषेधात्मक अहिंसा में केवल हिंसा का वर्जन होता है, विधेयात्मक अहिंसा में सत् क्रियात्मक सक्रियता होती है। सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो हिंसा न करने वाला यदि आन्तरिक प्रवृत्तियों को शुद्ध न करे तो, वह अहिंसा न होगी। इसलिए निषेधात्मक अहिंसा में सत्प्रवृत्ति की अपेक्षा बनी रहती है। सत् प्रवृत्यात्मक अहिंसा में हिंसा का निषेध होना आवश्यक है। इसलिए बिना कोई प्रवृत्ति सत् या अहिंसा नहीं हो सकती, यह निश्चय दृष्टि की बात है। व्यवहार में निषेधात्मक अहिंसा को निष्क्रिय अहिंसा और विधेयात्मक अहिंसा को सक्रिय अहिंसा कहा जाता है। भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित अहिंसा में विधि और निषेध उभय रूप प्रकट होते हैं—'महावीर ने प्रवृत्ति रूप अहिंसा का भी विधान किया है, किंतु सब प्रवृत्ति अहिंसा नहीं होती। चारित्र में जो प्रवृत्ति है वही अहिंसा है। अहिंसा के क्षेत्र में आत्मलक्षी प्रवृत्ति का विधान है और संसार लक्षी या पर पदार्थ-लक्षी-प्रवृत्ति का निषेध। ये दोनों क्रमशः विधि रूप अहिंसा और निषेध रूप अहिंसा बनते हैं।'[106] इसका समन्वित प्रयोग—'सब जीवों को अपने समान समझो और किसी को हानि मत पहुँचाओ'—इन शब्दों में अहिंसा का द्वयर्थी सिद्धांत-विधेयात्मक और निषेधात्मक सन्निहित है। विधेयात्मक में एकता का संदेश है—'सब में अपने आपको देखो।' निषेधात्मक उससे ध्वनित होता है—'किसी को भी हानि मत पहुंचाओ सब में अपने आपको देखने का अर्थ है—सबको हानि पहुंचाने से बचना।'

राग-द्वेषात्मक प्रवृत्ति न करना, प्राणवध न करना या प्रवृत्ति मात्र का निषेध करना निषेधात्मक अहिंसा है। सत् प्रवृत्ति करना, स्वाध्याय, अध्यात्म-सेवा, उपदेश, ज्ञान चर्चा आदि आत्म हितकारी क्रिया करना विधेयात्मक अहिंसा है। निषेधात्मक अहिंसा में केवल हिंसा का वर्जन होता है, विधेयात्मक अहिंसा में सत्-क्रियात्मक सक्रियता होती है। स्पष्टतया—'अहिंसा का आचरण, यह विधेयात्मक वृत्ति है। हिंसा का वर्जन, यह निषेधात्मक वृत्ति है।' इससे जाहिर है कि मात्र निवृत्ति ही अहिंसा नहीं है, प्रवृत्ति भी अहिंसा होती है। उत्तराध्ययन सूत्र के टिप्पण में उल्लेख है कि 'मनोगुप्ति मानसिक अहिंसा का, वचन गुप्ति वाचिक अहिंसा का और कायगुप्ति कायिक अहिंसा का प्रायोगिक रूप है।' अहिंसा का निष्क्रिय और सक्रिय स्वरूप विभिन्न दृष्टि से निष्पन्न है।

नैश्चयिक और व्यावहारिक

अहिंसा के ये दोनों महत्त्वपूर्ण पक्ष है। 'नैश्चयिक अहिंसा केवल व्यक्ति की अन्तःचेतना से संबंध रखती है। वह नितांत वैयक्तिक होती है। व्यावहारिक अहिंसा की साधना समाज के संदर्भ में होती है। हजारों-हजारों आदमी एक साथ रहें और दूसरों को क्षति न पहुँचाएं-यह व्यावहारिक अहिंसा है। यह समाज की आधार भित्ति है।'[107] नैश्चयिक अहिंसा का जितना विकास होगा व्यक्ति उतना ही मैत्री-करुणामय बनेगा। व्यावहारिक अहिंसा का विकास सामाजिक स्तर पर जितना होगा समाज में समरसता बढ़ेगी। दूसरों के आँसुओं पर अपनी स्निग्धता को न बढ़ाने का संकल्प समाज की रोग प्रतिरोधक शक्ति है। इसका विकास निश्चयनिष्ट होकर व्यवहार के धरातल पर कार्यकारी बनता है।

अर्थ हिंसा अनर्थ हिंसा

अहिंसा के क्षेत्र में 'अल्प हिंसा करो' ऐसा निर्देश नहीं मिलता। भगवान् महावीर ने हिंसा के दो विभाग किये हैं—अर्थ हिंसा अनर्थ हिंसा। आशय स्वरूप अनर्थ हिंसा से अवश्य बचो। अर्थ हिंसा से जिस अंश तक बचना संभव हो बचो। इसका संवादी महात्मा गांधी का कथन—'हिंसा करने से जिस अंश तक बचना संभव हो उस अंश तक बचना सबका धर्म है।'[108] इस प्रकार अर्थ और अनर्थ हिंसा का संबंध जीवन की अनिवार्यता एवं सुविधा भोग से जुड़ा हुआ है। अतः जिसके बिना जीवन चल ही न सके ऐसी अवस्था का विकल्प अर्थ हिंसा में निहित है पर अनर्थ से जितना हो सके बचना महत्त्वपूर्ण है।

पारमार्थिक एवं व्यावहारिक अहिंसा

अहिंसा की सूक्ष्म समझ हेतु विभिन्न भेदों का ज्ञान आवश्यक है। पारमार्थिक अहिंसा, वास्तविक अहिंसा से प्रभावित नहीं होगी तब तक समाज में चल रही हिंसा को कम नहीं किया जा सकता। पारमार्थिक अहिंसा क्या है? वास्तविक अहिंसा क्या है? महाप्रज्ञ के शब्दों में—'पारमार्थिक अहिंसा का आधार है आत्मा। सब आत्माओं की समानता, जैसी मेरी आत्मा है वैसी ही अन्य प्राणी की आत्मा। न केवल मनुष्य की आत्मा पर हर प्राणी की आत्मा वैसी है जैसी की मेरी। यह आत्मा की समानता का सिद्धांत ही पारमार्थिक अहिंसा का आधार है। जैसी सुख-दुःख की अनुभूति मेरी है वैसी ही सब प्राणियों की है।' इस चेतनानुभूति से भावित आत्मा का प्रशस्त चिंतन बनता है—मुझे किसी भी प्राणी को दुःख नहीं देना चाहिए, सताना नहीं चाहिए, किसी का अधिकार नहीं छीनना चाहिए और किसी को मारना नहीं चाहिए। इस अनुभूति के अभाव में पारमार्थिक अहिंसा का विकास असंभव है। जब तक उस अहिंसा का विकास नहीं होता तब तक समाज में जो विषमता छीना-झपटी, लूट-खसौट, मार-धाड़, चल रही है, एक दूसरे पर प्रहार और कष्ट देने का व्यवहार चल रहा है उसे न बंद किया जा सकता है न ही कम किया जा सकता है।

महत्त्वपूर्ण प्रश्न है पारमार्थिक अहिंसा के विकास का? इसे कैसे विकसित किया जाये? आचार्य महाप्रज्ञ का मंतव्य है—'पारमार्थिक अहिंसा की खोज वैज्ञानिक उपकरणों के आधार पर नहीं हो सकती, इतिहास के आधार पर भी नहीं हो सकती। वह हो सकती है अपनी अन्तरात्मा के अनुसंधान से। मैं क्या हूं? मेरे भीतर क्या है?' इस अंतर दिशा का अवलोकन करने वाला उभरने वाली वृत्तियों को जान लेता है, उसके लिए यह रहस्य नहीं रह पाता कि कौन-कौनसी वृत्तियां हिंसा को उभार रही हैं। क्या इन वृत्तियों का शमन किया जा सकता है? जब तक आध्यात्मिक विश्लेषण नहीं होगा समस्या बनी रहेगी। हिंसा और अहिंसा का प्रश्न हमारे अंतःकरण से जुड़ा हुआ है तो बाहर से भी जुड़ा हुआ है।

जहाँ स्वार्थ, लोभ, उपयोगिता का प्रश्न प्रबल होता है वहाँ अप्रिय घटनाएं घटित होती हैं। आज सारे समाज की जीवन शैली व्यावहारिक अहिंसा से प्रभावित जीवन शैली है। इसलिए जब कभी हिंसा भड़क उठती है, समाज, जाति, संप्रदाय एवं परिवार में जहां तहां हिंसा की चिनगारियाँ उछलती नजर आती है। हमारी जीवन शैली जब तक व्यावहारिक अहिंसा से प्रभावित रहेगी तब तक ऐसा होता रहेगा।[109] तथ्यतः जिस दिन व्यावहारिक अहिंसा और पारमार्थिक अहिंसा—इन दोनों

का संतुलन बनेगा उस दिन समाधान मिलेगा कि मनुष्य में हिंसा का जन्म कैसे हुआ और उसमें अहिंसा का कितना विकास संभव है?

संकल्प और सिद्धि

अहिंसा की दो अवस्थाएँ—संकल्प एवं सिद्धि बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। दोनों में भूमिका भेद स्पष्ट है। इस अंतर को स्पष्ट करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा—एक व्यक्ति एक दिन का दीक्षित साधु है। उसने अहिंसा का संकल्प लिया है। हम नहीं कह सकते कि उसकी अहिंसा तेजस्वी हो गई, उसकी साधना तेजस्वी हो गई या उससे संघ या शासन तेजस्वी हो गया। जो एक, दस या बीस वर्ष का दीक्षित साधु है जिसने अपनी अहिंसा को अनुकूलता, प्रतिकूलता, सर्दी-गर्मी आदि सब प्रकार के विरोधी द्वन्द्वों की आग में पका-पकाकर सिद्ध कर लिया है, उसके लिए हम कह सकते हैं कि वह स्वयं तेजस्वी बनता है, संघ तेजस्वी बनता है और शासन तेजस्वी बनता है।[110] यदि भूमिका भेद की बात को भुलाकर, साधु को मात्र साधु मान लें, साधना को मात्र साधना ही मान लें तो भ्रम पैदा होगा। उसके कालक्रम से होने वाली परिणाम शुद्धि के आधार पर भूमिका भेद से आने वाले परिणामों पर ध्यान दिये बगैर कोई निर्णय लेना भूल है। इस प्रकार संकल्प और सिद्धि की अहिंसा में भूमिका भेद समझ कर ही, इनके आधार पर अहिंसा का पूर्ण विकास किया जा सकता है।

अहिंसा बनाम : आत्मयज्ञ

अहिंसा को आत्म-यज्ञ की संज्ञा क्यों और कब दी गयी? ऐतिहासिक दृष्टि से यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। समाधान की खोज में कई तथ्य उजागर होते हैं। भगवान् नेमिनाथ के समय में अहिंसा धर्म का बहुत प्रचार हुआ। वासुदेव कृष्ण अहिंसा प्रधान जीवन जीने की दृष्टि से, सूक्ष्म जीव और वनस्पति जीवों की हिंसा से बचने के विचार से चातुर्मास में राज्य-सभा का आयोजन भी नहीं करते थे। छान्दोग्य-उपनिषद् के अनुसार—'घोर आंगिरस ऋषि कृष्ण के आध्यात्मिक गुरु थे। उन्होंने कृष्ण को आत्म-यज्ञ की शिक्षा दी। उस यज्ञ की दक्षिणा है—तपश्चर्या, दान ऋजुभाव, अहिंसा और सत्य वचन।'[111] इसके आधार पर यह कल्पना बनती है कि घोर आंगिरस भगवान् नेमिनाथ का ही नाम होगा। चूंकि 'घोर' शब्द जैन मुनियों के आचार और तपस्या का प्रतीक है।

आत्म-यज्ञ की प्रेरणा का प्रसंग क्यों पैदा हुआ? इसकी पृष्ठभूमि में पायेंगे कि उस समय यज्ञ प्रक्रिया धर्माराधना का एक प्रमुख अंग बन गयी। उपनिषद् में धर्मानुष्ठान के तीन स्कंध की चर्चा मिलती है, जिसमें—'प्रथम स्कंध यज्ञ, दूसरा स्कंध स्वाध्याय और तीसरा दान बतलाया है। यज्ञ विहित हिंसा भी अहिंसा में समाहित होने लगी।' संभव है उस हिंसा में लिप्त जनमानस को प्रतिबोध देते हुए अहिंसा यज्ञ की प्रेरणा दी गई।

भगवान् महावीर के समय भी यज्ञ की परंपरा जीवित थी। यज्ञ में होने वाली घोर हिंसा व बर्बर नृशंसता से भगवान् महावीर के शुद्ध हृदय में आत्म संवेदन का एक सघन ज्वार फूट पड़ा। उनकी अहिंसात्मक वाणी ने बड़े-बड़े यज्ञनिष्ठ ब्राह्मणों को अहिंसा के पथ पर समारूढ़ कर नई क्रांति मचा दी। इन्द्रभूति आदि ग्यारह यज्ञविद् प्रकांड विद्वानों का एक-एक कर महावीर का शिष्यत्व स्वीकारना दीक्षित होना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

यज्ञानुष्ठान से उपरत हरिकेशबल मुनि के तपोबल से आकृष्ट अनेक ब्राह्मण कुमारों ने आत्मयज्ञ

के स्वरूप की जिज्ञासा प्रकट की। ''हे क्षमाश्रमण हम ऐसा कौन-सा यज्ञ अदा करें जिससे हमारे क्लिष्ट कर्म दूर हों। हे यज्ञ पूजित मुनि! विज्ञ मानव किसे श्रेष्ठ (यज्ञ) कहते हैं उसी सत्पथ का निर्देश करें?' सोमदेव की इस जिज्ञासा का समाधान किया—'मन और इन्द्रियों का दमन करने वाले छः जीव निकाय की हिंसा नहीं करते, महाव्रती हैं, मान-माया त्यागी हैं, संवर युक्त असंयमी जीवन की इच्छा नहीं करते, जो शुचि हैं और देह के ममत्व त्यागी हैं, वह यज्ञों में श्रेष्ठ महायज्ञ करते हैं।' महायज्ञ का ऐसा स्वरूप सुनकर सोमदेव के मन में यज्ञ में काम आने वाली वस्तुओं के विषय में जिज्ञासा पैदा हुई।

प्रश्न किया—'भिक्षो! तुम्हारी ज्योति-अग्नि कौनसी है? ज्योति-स्थान (अग्नि स्थान) कौनसा है? घी डालने की करछियाँ कौनसी हैं? अग्नि को जलाने के कण्डे कौनसे हैं? ईंधन और शांतिपाठ कौनसे हैं? और किस होम से तुम ज्योति को हुत (प्रीणित) करते हो?' इस जिज्ञासा को समाहित करते हुए मुनि ने अहिंसक यज्ञ में काम आनेवाली सामग्री का चित्रण किया—'तप ज्योति है। जीव ज्योति स्थान है। योग (मन, वचन और काया की सत् प्रवृत्ति) घी डालने की करछियाँ हैं। शरीर अग्नि जलाने के कण्डे हैं। कर्म ईंधन है। संयम की प्रवृत्ति शांति पाठ है। इस प्रकार मैं ऋषि-प्रशस्त (अहिंसक) होम करता हूँ।'[112] हरिकेशबल मुनि के मुख से अहिंसक महायज्ञ का चित्रण सुनकर ब्राह्मण कुमार हिंसक यज्ञ से विमुख होकर अहिंसा के राजपथ पर चल पड़े। यह हिंसा पर अहिंसा की सर्वतोमुखी विजय थी। घोर हिंसा सर्वथा अहिंसा में बदल गयी। इस प्रकार हिंसक यज्ञ के उन्मूलन में अहिंसक यज्ञ की स्थापना हुई। संभव है कि इस प्ररूपणा के आधार पर अहिंसा का अपर नाम आत्मयज्ञ पड़ा हो।

अहिंसा और ब्रह्मचर्य

जीवन में अहिंसा को प्रतिष्ठित करने के अनेक मार्ग हैं, उनमें एक है ब्रह्मचर्य का अनुशीलन। अहिंसा का संबंध ब्रह्मचर्य से कैसे है इसे स्पष्ट करते हुए कहा—'अहिंसा और ब्रह्मचर्य—ये दोनों साधना के आधारभूत तत्त्व हैं। अहिंसा अवैर-साधना है। ब्रह्मचर्य जीवन की पवित्रता है। अवैर भाव के बिना आत्म साम्य की अनुभूति और पवित्रता के बिना विकास का मार्ग दर्शन नहीं हो सकता।' ब्रह्मचर्य का अर्थ है मन और इन्द्रिय का संयम। ब्रह्मचर्य का एक व्यापक अर्थ रहा है कि ब्रह्म में जिनका चरण होता है, वह है ब्रह्मचर्य। ब्रह्म का अर्थ ज्ञान, परमात्मा और गुरुकुलवास में भी होता है। अहिंसा में ब्रह्मचर्य की व्यापकता का चित्रण महाप्रज्ञ ने किया—'मैं अहिंसक हूँ, अहिंसा मेरा साधन है, अभेद मेरा साध्य है। अहिंसा सत्य में व्याप्त है, सत्य अहिंसा से। ब्रह्मचर्य दोनों में व्याप्त है। ब्रह्मचर्य में मेरी श्रद्धा दृढ़ होती है तो अहिंसा और सत्य का विकास होता है।' जाहिर है कि ब्रह्मचर्य की शिथिलता सत्य और अहिंसा को खंडित कर देती है। अतः ब्रह्मचर्य को समझे बिना व्यक्ति न सत्य-निष्ठ बन सकता है न ही अहिंसक।

वासना की शुद्धि अहिंसा से होती है। अहिंसा यानि समता। समता यानि आत्म-दर्शन। ब्रह्मचर्य से अहिंसा आती है और अहिंसा से ब्रह्मचर्य। दोनों एक ही साध्य के दो पार्श्व है। इनमें पौर्वापर्य नहीं है।

ब्रह्मचर्य का संबंध भोजन से भी है। अतः भोजन का विवेक करना अहिंसा और ब्रह्मचर्य—इन दोनों दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। जीव हिंसा का हेतुभूत आहार जैसे सदोष होता है। वैसे ही ब्रह्मचर्य में बाधा डालने वाला आहार भी सदोष है।

ब्रह्मचर्य एवं अहिंसा के संबंध को गांधी ने मात्र स्वीकारा ही नहीं जीवन में भी अपनाया। उनकी अहिंसा ब्रह्मचर्य की साधना से निष्पन्न हुई। उन्होंने अहिंसा की साधना हेतु ब्रह्मचर्य के अनेक प्रयोग किये। गांधी के ब्रह्मचर्य संबंधी विचित्र प्रयोगों को देखकर आचार्य कृपलानी ने लिखा—'गांधी जी ऐसे विचित्र प्रयोग कर रहे हैं। मेरा ऐसा विश्वास है कि मैं अगर गांधी को अनाचार करता हुआ देख भी लूँ तो एक बार सोचूंगा मेरी आँखें मुझे धोखा गई। वे ऐसा नहीं कर सकते।'[113] जाहिर है गांधी ने अहिंसा के विकास की पृष्ठभूमि में ब्रह्मचर्य की साधना स्वीकार की। ब्रह्मचर्य के द्वारा धृति एवं मनोबल का विकास होता है। लोग आश्चर्य करते हैं कि गांधी का एक मुट्ठीभर हड्डी का शरीर था। इतना दुबला-पतला, सुन्दर भी नहीं थे। चमकता हुआ चेहरा भी नहीं था। किंतु मनोबल इतना था कि बड़ी-से-बड़ी सत्ता के सामने कभी झुकने या डरने की बात नहीं आती थी। जहाँ मरने की बात होती—सबसे आगे होते। कभी मन में भय नहीं होता कि मैं मारा जाऊँगा। ब्रह्मचर्य से आत्म-विश्वास, मनोबल पैदा होता है। यह सूक्ष्म शक्ति ब्रह्मचर्य की है। इसके द्वारा आंतरिक शक्तियों का विकास होता है।

अहिंसा और अपरिग्रह की व्याप्ति

'अहिंसा परमो धर्मः अहिंसा परमं दानम्' यह घोष बहुत पुराना है। आज एक नये घोष की जरूरत है। आचार्य महाप्रज्ञ की दृष्टि में वह घोष है—'अपरिग्रहःपरमो धर्मः।' यह परम धर्म की व्याख्या सामयिक है। अहिंसा और अपरिग्रह दोनों को अलग-अलग देखने से पूरी बात समझ में नहीं आयेगी। अपरिग्रह के बिना अहिंसा को नहीं समझा जा सकता। अहिंसा को समझने के लिए अपरिग्रह को समझना जरूरी है और अपरिग्रह को समझने के लिये अहिंसा को समझना जरूरी है। 'अहिंसा और अपरिग्रह का एक जोड़ा है, उसे काट दिया गया। उसे वापिस जोड़कर ही हम समाधान की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं। जिस दिन 'अपरिग्रह परमो धर्मः' स्वर बुलंद होगा, आर्थिक समस्या का समाधान उपलब्ध हो जाएगा।'[114] इस कथन में बहुत बड़े सत्य का निदर्शन है।

अहिंसा और अपरिग्रह की एकात्मकता को भूलाने का परिणाम निकला—अहिंसा न मारने के सिद्धांत में सिमट गयी। अपरिग्रह उसकी आत्मा है; इसकी विस्मृति हो गई। अहिंसा अपरिग्रह से मुक्त हो गई और अपरिग्रह अहिंसा से विमुक्त हो गया। परिग्रह और हिंसा की एकात्मकता है वैसे ही अपरिग्रह और अहिंसा की एकात्मकता है। महाप्रज्ञ के शब्दों में—'अपरिग्रह के बिना अहिंसा असंभव है अहिंसा के बिना अपरिग्रह असंभव है। भगवान् महावीर की क्रांन्ति का मुख्य सूत्र है—अपरिग्रह और अहिंसा की एक आसन पर एक साथ उपस्थिति।' महावीर ने हिंसा के मूल को पकड़ा। हिंसा होती है परिग्रह के लिए। परिग्रह के बिना हिंसा का कोई प्रयोजन नहीं होता। परिग्रह के लिए हिंसा है, हिंसा के लिए परिग्रह नहीं है। प्रकटतया हिंसा का मुख्य कारण है परिग्रह। कोई अहिंसा करना चाहे और अपरिग्रह करना न चाहे, यह कभी संभव नहीं है।

इच्छा, हिंसा और परिग्रह—तीनों में परस्पर संबंध है। आर्थिक विषमता के चलते समाज में हिंसा बढ़ेगी। आर्थिक समानता रहेगी तो समाज में हिंसा कम होगी, अहिंसा का विकास होगा। एक और साम्यवादी विचारधारा के प्रवर्तक मार्क्स ने इस बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित किया तो दूसरी ओर अहिंसा के प्रबल समर्थक महात्मा गांधी ने भी इस विषय पर चिंतन-मंथन किया। मार्क्स अहिंसा की दृष्टि से मुख्य विचारक नहीं थे। गांधी के पास अहिंसा के चिंतन के अलावा कोई विकल्प नहीं

था। किंतु दोनों का चिंतन बिन्दु एक रहा और वह है आर्थिक समानता। इस बिन्दु पर गांधी व मार्क्स दोनों ने विचार किया, आर्थिक समानता की प्रणालियां प्रस्तुत हो गई।

लोभ और क्रूरता में घनिष्ठ संबंध है। आत्मानुभूति के बिना क्रूरता नहीं मिटती, करुणा का विकास नहीं होता। विश्व शांति की राह में आर्थिक समस्या एक बहुत बड़ी बाधा है। उसका समीकरण कैसे किया जा सकता है? यह एक जटिल प्रश्न है। चूंकि प्रत्येक राष्ट्र की अपनी आकाँक्षा-इच्छा है। इसे शब्दों में प्रकट करते हुए मैकेंजी ने एक पुस्तक लिखी—'यूनिवर्स ऑफ डिजायर—इच्छा का जगत्। इच्छा का एक जगत् है और वह अनंत है। कभी उसका अन्त नहीं होता। उसका आर पार नहीं पाया जा सकता। हर क्षण, हर व्यक्ति में अलग-अलग इच्छाएं पैदा होती रहती हैं।'[115] सामयिक संदर्भ में असीम इच्छा, असीम आवश्यकता, और असीम पदार्थ—इस चिंतन के रंग में रंगा हुआ है वर्तमान का मानस। इसी ने जन्म दिया है—पदार्थ प्रधान संस्कृति और 'थ्रो अवे' की जीवन शैली को। बनाओ, भोगो और फेंको। इस समस्या के मूल को पकड़कर एक सुन्दर समाधान दिया—इच्छा का परिमाण करो। इच्छा, अपरिग्रह और आरंभ का एक चक्र है। इच्छा अल्प होगी तो परिग्रह और आरंभ अल्प होगा। जब तक इच्छा को नहीं पकड़ेंगे तब तक न व्यक्तिगत स्वामित्व के सीमाकरण की बात सफल होगी, न ट्रस्टीशिप की बात सफल होगी। इसकी सफलता तभी संभव है, जब इनकी पृष्ठभूमि में इच्छा के सीमाकरण का सूत्र हो।

वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में परिग्रह और अपरिग्रह, आर्थिक समानता और विषमता का प्रश्न बहुत उलझा हुआ है। धर्म के पास समाधान की एक शक्तिशाली रेखा है—इच्छा परिमाण। इच्छा का परिमाण करो, सीमा करो। इच्छा परिमाण का अर्थ है—परिग्रह का परिमाण। आर्थिक स्वामित्व के सीमांकन का यह सूत्र अध्यात्म के क्षेत्र से उद्भूत हुआ है।

अहिंसा के विभिन्न आयामों के सम्यक् ज्ञान पूर्वक ही अहिंसा के राजमार्ग पर बढ़ा जा सकता है। इन आयामों का विमर्श आवश्यक है वर्तमान समय की जो प्रवृत्तियाँ हैं उनसे उपजी जो समस्याएँ हैं उनका अहिंसक समाधान तभी संभव है जब हम अहिंसा के आयामों को और अधिक व्यापकता दें।

युद्ध और निःशस्त्रीकरण

वैज्ञानिक युग का मानव अस्तित्व रक्षा के लिए बेचैन है, प्रतिपल भयाक्रांत है। इसका मूल कारण—अस्त्र-शस्त्रों का अत्याधुनिक जखीरा है। जैविक रासायनिक अस्त्र-शस्त्र के निर्माण ने मानव की नियति को एक बार फिर संशय के घेरे में धकेला है। युद्ध का मूल है—शस्त्रीकरण। शस्त्रीकरण की कल्पना से युद्ध और युद्ध की कल्पना से शस्त्रीकरण का ग्रहण गम्य है। युद्ध और शस्त्र दोनों ही अति प्राचीन काल से अस्तित्ववान् हैं। प्रश्न है क्या युद्ध और शस्त्रीकरण की गति को अहिंसा के द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है? क्या अहिंसा की शक्ति इस क्षेत्र में कामयाब हो सकती है? इनका समाधान ऐतिहासिक दृष्टि से भी ज्ञातव्य है।

युद्ध का उद्गम स्थल है—मानव मस्तिष्क। संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट में यह कथन उद्धृत किया गया—'युद्ध पहले मस्तिष्क में होता है फिर समर भूमि में लड़ा जाता है।'[116] कथन के आलोक में युद्ध का इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानव का अपना इतिहास। इतिहास पर दृष्टिपात करें तो पायेंगे कि जितने भी युद्ध हुए हैं वे जर, जोरू और जमीन के कारण हुए हैं। इनके प्रति

द्वेष के कारण नहीं, बल्कि इनके प्रति राग के कारण ही युद्ध हुए हैं। रामायण और महाभारत के युद्ध इसके ऐतिहासिक प्रमाण हैं।

राम-रावण का युद्ध दैविक और आसुरी शक्ति के संघर्ष स्वरूप प्रसिद्ध है। राम चरितमानस के पष्ठ सोपान लङ्काकाण्ड में राम-रावण के युद्ध का विस्तार से वर्णन है। युद्ध संबंधी नैतिक नियमों की झलक इस पंक्ति में पाते हैं—'संध्या होने पर दोनों ओर की सेनाएं लौट पड़ीं ; सेनापति अपनी-अपनी सेनाएं संभालने लगे।' दूसरी ओर राम का रावण के साथ युद्ध असीम मनोबल का सबूत है। बिना युद्ध सामग्री के भी युद्ध सामग्री संपन्न किसी भी समुदाय, व्यक्ति या राष्ट्र से लड़ना अपने आपमें अतुल आत्मशक्ति का परिचायक है। शस्त्र युक्त एवं वियुक्त द्वैध देखकर किसी भी व्यक्ति के मन में संदेह पैदा होना स्वाभाविक है। ऐसा ही संदेह रामपक्ष को देखकर विभीषण के मन में पैदा हुआ था—'रावण को रथारूढ़ एवं रधुवीर को बिना रथ के देखकर विभीषण अधीर हो गये, मन संदेह से भर गया और बोल पड़े—हे नाथ! आपके न रथ है, न रक्षा करने वाला कवच है और न जूते ही हैं। वह बलवीर रावण किस प्रकार जीता जायेगा?'[117] यह सुन राम ने विभीषण की मानसिक व्यथा का निराकरण करते हुए गूढ़ तथ्य का उद्‌घाटन किया जो उनकी जीवंत अहिंसा आस्था का सबूत है।

राम की दृष्टि में विजयश्री प्रदान करवाने वाले रथ का स्वरूप था—शौर्य और धैर्य उस रथ के पहिये हैं। सत्य और शील (सदाचार) उसकी मजबूत ध्वजा और पताका है। बल, विवेक, दम (इन्द्रियों का वश में होना) और परोपकार—ये चार उसके घोड़े हैं। जो क्षमा, दया और समतारूपी डोरी से रथ में जोड़े हुए हैं। ईश्वर का भजन ही (उस रथ को चलाने वाला) चतुर सारथी है। वैराग्य ढाल है और संतोष तलवार है। दान फरसा है, बुद्धि प्रचंड शक्ति है, श्रेष्ठ विज्ञान कठिन धनुष है। निर्मल (पाप रहित) और अचल स्थिर मन तरकस के समान है। शम (मन का वश में होना) (अहिंसादि) यम और शौचादि नियम ये बहुत से बाण, ब्राह्मणों और गुरु का पूजन अभेद्य कवच है। इसके समान विजय का दूसरा उपाय नहीं है। हे सखे! ऐसा धर्ममय रथ जिसके हो उसके लिये जीतने को कहीं शत्रु ही नहीं है। जिसके पास ऐसा दृढ़ रथ हो, वह वीर संसार (जन्म-मृत्यु) रूपी महान् दुर्जय शत्रु को भी जीत सकता है। (रावण की तो बात ही क्या है।)[118] राम ने पाश्विक बल पर आत्मिक बल से विजय पायी। राम की विजय कहानी अनैतिकता की ताकत के बीच नैतिकता की विजय पताका की साक्षी है।

प्राचीन काल में कुछ लोग युद्ध को प्रोत्साहन देते थे। संस्कृत साहित्य में इस विषय के अनेक सूक्त आज भी उपलब्ध हैं—

'जिते च लभ्यते लक्ष्मी, मृते चापि सुरांगना।
क्षणभंगुरको देहः, का चिन्ता मरणे रणे॥'

अर्थात् युद्ध में मरने वाला स्वर्ग में जाता है। इस मान्यता को बहुत व्यापक रूप दिया गया। भगवान् महावीर ने उक्त मान्यता का खंडन किया। उन्होंने युद्ध के मूल कारणों पर विचार किया और उसकी जड़ को सिंचन न मिले वैसी विधियों का निर्देश दिया। भगवान् महावीर इस संसार में अहिंसा के सबसे बड़े प्रवर्त्तक हुए हैं। उन्होंने अहिंसा को जितना मूल्य दिया, उतना महत्त्व किसी को नहीं दिया। महावीर युद्ध की भाषा में बोले, लड़ाई की भाषा में बोले, जय और पराजय की

भाषा में बोले? एक ओर अहिंसा का सूक्ष्म विवेचन, दूसरी ओर युद्ध की भाषा का प्रयोग। इन दोनों में संगति कहाँ है? मनोवैज्ञानिक बतलाते हैं—युद्ध एक मौलिक मनोवृत्ति है। मनोविज्ञान में चौदह मौलिक मनोवृत्तियाँ मानी गई है। उनमें एक है युद्ध। क्या फिर ये माना जाए-महावीर में भी यह मौलिक मनोवृत्ति विद्यमान थी।[119] महावीर में युद्ध की मौलिक मनोवृत्ति स्वीकारने पर भी उसकी मौलिकता आम सोच से भिन्न है। महावीर ने दूसरे के साथ लड़ने की बात नहीं कही। उन्होंने अपने साथ युद्ध की बात कही जिसका उल्लेख उत्तराध्ययन सूत्र में मिलता है—'आत्मा के साथ युद्ध कर, बाहरी युद्ध से तुझे क्या लाभ? आत्मा को आत्मा के द्वारा ही जीत कर, मनुष्य सुख पाता है।'[120] महावीर की दृष्टि में बाहरी युद्ध से अधिक महत्त्वपूर्ण है अपनी आत्मा से युद्ध करना और स्वयं पर विजय पाना ही सच्ची जीत है। आत्मयुद्ध के प्रसंग में इन्द्रिय, मन और कषायआत्मा से लड़ना एवं उन पर आत्म-नियंत्रण स्थापित करना ही वास्तविक विजयश्री का वरण करना है।

अध्यात्म में बुराई से निवृत्त होने के अनेक उपाय निर्दिष्ट हैं जिसका चित्रण महाप्रज्ञ की भाषा में—

'संकल्पः शमनं, ज्ञातृद्रष्टभाव विभावनम्।
स्मरणं प्रतिक्रमणं, युद्धं पंचविधं स्मृतम्॥'[121]

आत्मयुद्ध के पांच प्रकार हैं—संकल्प, शमन, ज्ञाता-द्रष्टा-भाव, स्मरण, प्रतिक्रमण।

आत्मयुद्ध की ओर इंगित करते हुए महावीर ने कहा—'जुद्धारिहं खलु दुल्लहं— युद्ध का क्षण दुर्लभ है। कोई-कोई क्षण ऐसा होता है, जो युद्ध का क्षण होता है। किसी भाग्यशाली को ही युद्ध का क्षण उपलब्ध होता है। महावीर जैसे अहिंसा के प्रवक्ता हैं वैसे ही युद्ध के प्रवक्ता भी हैं।' युद्ध से महावीर का तात्पर्य था आत्म रिपुओं चेतना से भिन्न विजातीय पुद्गलों के साथ युद्ध करना। ऐसा करना सचमुच दुर्लभ क्षणों का द्योतक है। भगवान् महावीर ने साक्षात् देखा कि समरभूमि में लड़े जाने वाले युद्ध से स्थायी समाधान नहीं निकल सकता उसका स्थायी समाधान अध्यात्म भूमिका पर ही हो सकता है।

लोहा लोहे को काटता है यह व्यावहारिक सच्चाई है पर युद्ध से युद्ध का अंत हो जायेगा, भविष्य में युद्ध की स्थिति नहीं आयेगी ऐसा कदापि नहीं हुआ। इतिहास इसका साक्षी है। द्वितीय विश्व युद्ध खत्म होने से भी दुनिया में शांति नहीं आई। इसके पश्चात् भी अनेक क्षेत्रीय और गृहयुद्ध होते रहे हैं जो अपनी हिंसक आक्रामकता और क्रूरता में कम नहीं कहे जा सकते। दक्षिण-पूर्व एशिया के सभी देशों में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद युद्धों का सिलसिला जारी रहा, जिनमें परोक्ष रूप से रूस एवं चीन और प्रत्यक्ष रूप से अमेरिका की पूरी भागीदारी रही। इनमें वियतनाम का युद्ध तो अपनी तकनीकी बारीकियों और ध्वंसात्मक प्रभावों में द्वितीय विश्व युद्ध से भी अधिक भयानक था। युद्ध के विस्तृत अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि युद्ध मानव मस्तिष्क से उपजा अभिशाप है। जिससे ग्रसित मानवता संत्रस्त है। इन नाजुक परिस्थितियों में भगवान् महावीर का 'आत्मनाः युद्धस्व' प्रतिबोध मानव के लिए दिव्य संदेश है।

युद्ध की भयावहता अस्त्र-शस्त्रों की प्रविधि से जुड़ी हुई है। जिस दिन मानव ने शस्त्र का प्रयोग अथवा निर्माण किया उसी दिन युद्ध की चेतना ने जन्म ले लिया। यह भी संभव है जिस दिन युद्ध की भावना पैदा हुई उसी दिन से अस्त्र-शस्त्र का बीजारोपण हो गया। दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।

शस्त्रीकरण ऐतिहासिक संदर्भ

निःशस्त्रीकरण के विमर्श से पूर्व शस्त्रीकरण के ऐतिहासिक संदर्भ पर दृष्टिपात अपेक्षित है। अपनी-अपनी सीमा सुरक्षा हेतु अधिकारीवर्ग सदैव शस्त्रीकरण के प्रति सजग रहा है। अध्यात्म रामायण का प्रसंग है। जब भरत माताओं को लेकर राम से पुनः आगमन की प्रार्थना करने जा रहे थे उस समय राजा गुह को शंका हुई कि भरत बड़ी सेना लेकर आ रहे हैं। कहीं मेरा राज्य न छीन लें। आदेश जारी किया—'मेरे जातिवाले अस्त्र-शस्त्र लेकर सावधानी से सब ओर देखते हुए चौकस रहें और सब नावों को खींचकर गंगा के बीच में खड़ी कर दें।'[122] जब भरत का राम मिलन आशय ज्ञात हुआ तब गुह निश्चिंत हो गये और सेना को जाने की सहर्ष अनुमति दे दी। इससे स्पष्ट होता है कि राज्य सुरक्षा हेतु अस्त्र-शस्त्र का उपयोग प्राचीन काल से होता रहा है आतंक फैलाने के लिए नहीं।

अध्यात्म रामायण में उल्लेख मिलता है कि शस्त्ररहित राम को स्वयं देवेन्द्र ने रावण के साथ लड़ने हेतु हरे रंग के घोड़े, रथ, देव सारथि मातलि, ऐन्द्र धनुष, अभेद्य कवच, खड्ग और दो दिव्य तूणीर भेजें।[123] जब राम-रावण ने आमने-सामने मोर्चा संभाला उस समय महात्मा राम और बुद्धिमान् रावण का महाभयानक और रोमांचकारी घोर युद्ध होने लगा। रावण के आग्नेयास्त्र को आग्नेयास्त्र से और देवास्त्र को देवास्त्र से काटा। युद्ध में प्रयुक्त अस्त्र-शस्त्र की प्रचण्डता का एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा—रावण के धनुष से छूटे हुए बाण, जो स्वर्णमय पंख से भासमान हो रहे थे, महाविषधर सर्प होकर रधुनाथ के चारों ओर गिरने लगे। जिनके मुख से अग्नि की लपटें निकल रही थीं। रावण के उन सर्पमुख-बाणों से उस समय सम्पूर्ण दिशा-विदिशाएं व्याप्त हो गयी। राम ने जब रणभूमि में सब ओर सर्पों को व्याप्त देखा तो महाभयंकर गरुड़ाशस्त्र छोड़ा। बाण सर्पों के शत्रु गरुड़ होकर जहाँ-तहाँ सर्परूप बाणों को काटने लगे।[124] इससे पुष्ट होता है कि प्राचीन काल से ही अस्त्र-शस्त्रों की प्रचंडता बरकरार है। पर इतना तो स्पष्ट है कि वे अस्त्र-शस्त्र निरपराध का नुकसान सहसा नहीं करते थे। परंतु आधुनिक अस्त्र-शस्त्र हित-अहित के विवेक से विकल अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हैं।

पाषाण-युग से अणुयुग तक जितने भी उत्पीड़क और मारक शस्त्रों का आविष्कार हुआ है, वे निष्क्रिय-शस्त्र (द्रव्य-शस्त्र) हैं। उनमें स्वतः प्रेरित घातक-शक्ति नहीं है। भगवान् ने कहा—गौतम! सक्रिय-शस्त्र (भाव-शस्त्र) असंयम है। इसी का संवादी—'द्रव्य शस्त्र के तीन प्रकार हैं—किंचित् स्वकाय शस्त्र, किंचित् परकायशस्त्र और किंचित् उभयकायशस्त्र। असंयम भावशस्त्र है।'[125] विध्वंस का मूल वही है। निष्क्रिय-शस्त्रों में प्राण फूंकने वाला भी वही है। आचार्य महाप्रज्ञ लिखते हैं—वास्तविक शस्त्र है भाव-शस्त्र और वह है असंयम। प्राणीमात्र के अन्तःकरण में जो असंयम है, वही वास्तविक शस्त्र है और वही इन सारे शस्त्रों का निर्माण कर रहा है। आज निःशस्त्रीकरण का प्रश्न बलवान बना हुआ है। शक्ति संपन्न देश प्रक्षेपास्त्रों को कम करें, दूर या लघुमार करने वाले प्रक्षेपास्त्रों को कम करें, टेकों को समाप्त करें, यह चर्चा का विषय बना हुआ है। पर इन सबके पीछे जो चर्चा होनी चाहिए वह नहीं हो रही है। इन सबके मूल में असंयम है। और उसे कम करने की चर्चा बहुत कम चलती है। असंयम कम होगा तो बन्दूकें, तोपें, तलवारें मनुष्य के लिए खतरनाक नहीं बनेगीं।[126] असंयम से उपजी आकांक्षा और विस्तारवादी मनोवृत्ति के कारण ही एक देश दूसरे देश के विरोध में शस्त्र सज्जित होता है।

शस्त्रीकरण के हेतु को मार्मिक प्रस्तुति भगवान् महावीर ने दी—'यह मनुष्य चिरकाल तक जीने के लिए, प्रतिष्ठा, सम्मान और प्रशंसा के लिए, जन्म-मृत्यु से मुक्त होने के लिए, दुःख मुक्ति के लिए—शस्त्रीकरण करता है।'[127] निश्चित रूपेण ये शस्त्रीकरण की अन्तहीन परंपरा के प्रमुख कारण हैं।

समग्र दृष्टि से शस्त्र को ग्रहण करते हुए ठाणं सूत्र में इसके दस प्रकार बतलाये गये हैं—अग्नि, विष, लोण, चिकनाई, क्षार, दुष्प्रयुक्त मन, वचन, काया, भाव एवं अविरति। इन प्रकारों में द्रव्य और भावशस्त्र का समान प्रतिशत है। जितने प्रतिशत में भौतिक पदार्थ शस्त्र बनने की क्षमतावाले हैं उतने ही व्यक्ति के भीतर शस्त्र निर्मिति के कारण विद्यमान हैं।

निःशस्त्रीकरण ऐतिहासिक संदर्भ

आज का युग अणु-परमाणु युग है। अणु अस्त्रों का युग है। इनके प्रायोगिक परिणामों से मानव मन आतंकित है। अपने अस्तित्त्व की रक्षा हेतु अहिंसा की खोज कर रहा है, उसका मूल्यांकन कर रहा है। एक ओर अणु-परमाणु अस्त्रों का युग है तो दूसरी ओर अहिंसा का युग।

निःशस्त्रीकरण का सर्व प्रथम भगवान् महावीर का स्वर मुखर हुआ। श्रावक की आचार संहिता में विधान किया—'मैं शस्त्र का निर्माण नहीं करूंगा, उसका आदान-प्रदान नहीं करूँगा। शस्त्र के पुर्जों का संयोजन नहीं करूंगा।'[128] आचारांग के शस्त्र-परिज्ञा अध्ययन में निःशस्त्रीकरण के सूक्ष्म सिद्धांतों की प्ररूपणा की गई है। जिसका स्पष्ट प्रतिपाद्य है कि शस्त्रीकरण मनुष्य जाति के लिए संहार का कारण बन सकता है। अतः मानव जाति के संरक्षण हेतु निःशस्त्रीकरण का मूल्य आंके, उसे समझे और जीवन में अधिक-से-अधिक अपनाये। निःशस्त्र के प्रयोग का अर्थ है—संयम की चेतना का विकास। यह मानव जाति के लिए कल्याण का हेतु है, विकास का सेतु है। निःशस्त्रीकरण के द्वारा ही मानव जाति सुख और शांति से रह सकती है।

शस्त्र शक्ति के संबंध में गांधी के विचार सर्वथा मौलिक थे। उनकी दृष्टि में अहिंसा एक ऐसा शस्त्र है जिसका प्रयोग कभी निरर्थक नहीं जाता। इसमें अनन्त शक्ति है गांधी के शब्दों में—'जिसके हाथ में अहिंसा रूपी शस्त्र है वह कभी निःशस्त्र नहीं। उसके पास पाश्विक शस्त्र भले ही न हों किन्तु दिव्य शस्त्र हैं। अहिंसा ब्रह्मास्त्र है और उसका प्रतिकार करने वाला शस्त्र विधाता ने न तो आजतक बनाया है, न कभी बना सकेगा।'[129] यह गांधी की अटूट अहिंसा आस्था का प्रतीक है। उन्होंने इस तथ्य पर बल दिया—'अहिंसा तो एक अनुपम अद्वितीय शक्ति है। संसार में इसके मुकाबले की कोई शक्ति नहीं है। यदि दुनिया के सारे अस्त्र-शस्त्रों को तराजू के एक पलड़े पर रख दिया जाय और अहिंसा को दूसरे पर, तो अहिंसा का ही पलड़ा भारी होगा।' पुष्ट होता है कि गांधी के विचारों में अहिंसा स्वयं सर्वश्रेष्ठ शक्तिमान् है।

शस्त्रशक्ति की सीमा और बुराइयाँ देखते हुए गांधी ने इसकी निरर्थकता को खुले आम प्रकट किया—मैं यहां पर अहिंसा संबंधी पचास वर्ष के अनुभव के बल पर यह बताना चाहता हूँ कि पाश्विक शक्ति के समक्ष यह (अहिंसा) निश्चित रूप से एक ऊँची शक्ति है। सशस्त्र सैनिक की शक्ति का मुख्य आधार तो उसके शस्त्रों पर होता है। उसके शस्त्र, उसकी बन्दूक अथवा तलवार ले लो, तो सामान्य रूप से वह असहाय हो जाता है।....किन्तु जिस व्यक्ति ने अहिंसा के सिद्धान्त को सच्चे अर्थों में समझ लिया है, उसका शस्त्र ईश्वर प्रदत्त शक्ति होती है। इसका मुकाबला संसार में और कोई शक्ति नहीं कर सकती।[130] अणुबम और अहिंसा दो शक्तियों के चुनाव में गांधी ने सदैव अहिंसा

को श्रेष्ठ माना। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि जिस कौम या गिरोह ने हमेशा के लिए अहिंसा का रास्ता अपना लिया है, उसे अणुबम से भी गुलाम नहीं रखा जा सकता।

प्रथम बार जब अणुबम का प्रयोग नागासाकी और हिरोशिमा पर हुआ तब भी गांधी ने यही कहा था 'हिरोशिमा पर अणुबम गिरने और उसके बरबाद होने की खबर पाकर मैं जरा भी विचलित नहीं हुआ। उल्टे मैंने अपने मन से यही कहा कि यदि दुनिया अब भी अहिंसा को नहीं अपनाती है तो मानव जाति आत्महत्या से नहीं बचेगी।' पूरी दुनिया के लिए उनका संदेश था—अणुबम की इस बेहद दर्दनाक कहानी से हमें सबक तो यह सीखना है कि जिस तरह हिंसा-से-हिंसा को नहीं मिटाया जा सकता उसी तरह एक बम को दूसरे बम से नहीं मिटाया जा सकता। इंसान सिर्फ अहिंसा के द्वारा ही हिंसा के गढ़ से निकल सकता है। घृणा दिखाने से वह और भी फैलती है और गहरी होती है।[131] इस कथन के पीछे भी गांधी की अहिंसा आस्था बोल रही है।

गांधी का दृढ़ विश्वास था कि शूरवीरों की अहिंसा का शस्त्र धारण करने वाला अकेला भी सारे संसार की प्रबल शक्तियों का एक साथ सामना कर सकता है। 'अहिंसा के हथियार से एक स्त्री या बालक भी हर किसी हथियारधारी दानव का सामना कर सकता है।' निःशस्त्र अहिंसा की शक्ति हर समय शस्त्रबल की अपेक्षा बहुत ऊँची है। इस प्रकार के निःशस्त्रीकरण संबंधी गांधी के मौलिक विचारों का समर्थन विनोबाभावे ने भी किया। सन् 1962 को जून में नयी दिल्ली में समस्त संसार की अणुअस्त्र विरोधी परिषद् के समायोजन में विनोबाजी ने अपने संदेश में लिखा था—'अणुअस्त्र तो समाप्त होने ही चाहिए। परन्तु परंपरागत शस्त्र भी कम भयंकर नहीं हैं। अणुअस्त्र तो हमें अहिंसा के नजदीक आने की प्रेरणा देते हैं। क्योंकि वे मनुष्य के विचार-विवेक को जागृत करते हैं। परन्तु पिस्तौल और छूरे तो अहिंसा को धक्का देकर दूर हटाते हैं। ये हथियार दिखने में छोटे हैं, परन्तु यही अणुअस्त्रों के जनक-बाप है।'[132] उनकी दृष्टि में अणुअस्त्रों ने संसार के सामने एक चुनौती पेश की है—या तो अहिंसा को स्वीकार करो या मानव जाति के निर्मूलन के लिये तैयार हो जाए। अतः मानव जाति की सुरक्षा का सर्वोच्च साधन अहिंसा ही बन सकती है शस्त्रास्त्र का भंडार नहीं।

अहिंसा के सामने बड़ी चुनौती है। इसका मार्मिक चित्रण आचार्य महाप्रज्ञ के शब्दों में—'पौराणिक कहानियों में कहा गया है कि शंकर प्रलय करते हैं। अणुबम तो महाशंकर बन गया, जिसने इतना बड़ा प्रलय कर डाला। जो अहिंसा में विश्वास रखने वाले थे, उन लोगों ने विश्वशांति का अभियान शुरू किया। शांति के लिए प्रयत्न, निःशस्त्रीकरण के लिए प्रयत्न, युद्ध वर्जना के लिए प्रयत्न किए, किंतु शस्त्रों का निर्माण और अधिक बढ़ गया। वैसे शस्त्रों का निर्माण, जो महाप्रलयंकारी है।'[133] शस्त्रों की इस अंधी दौड़ में केवल अणुशस्त्र ही नहीं, उससे भी भयंकर अस्त्रों का निर्माण शुरू हो गया। स्टारवार की योजना प्रचंड हुई, नक्षत्रीय युद्ध, आकाशीय युद्ध की कल्पना सामने आ गई। अस्त्रों के निर्माण का विकास होता गया। एक ओर अस्त्रों के निर्माण की चर्चा बहुत तेज है तो दूसरी ओर अहिंसा की चर्चा भी बहुत तेज है। इसका मनोवैज्ञानिक कारण है—मनुष्य की जिजीविषा। चूँकि खतरा मानव के लिए ही सर्वाधिक गहराया है।

शस्त्र निर्माण प्रविधि से जुड़े हुए लोग 'सामूहिक नर-संहार के लिए जीवाणु हथियारों को आदर्श हथियार मानने लगे हैं क्योंकि पहले तो वह सबसे सस्ता है, दूसरे, इसके भंडार को आसानी से छिपाया जा सकता है और तीसरे, इसके प्रयोग से आदमी, पशु आदि प्राणधारी तो मरेंगे पर सम्पत्ति नष्ट नहीं होगी।'[134] इन कारणों से जीवाणु हथियारों को अच्छा माना जाता है। पर यदि हम मानवीय

दृष्टि से विचार करें तो समझ में आ जायेगा कि शस्त्रों के इस आविष्कार ने मनुष्य को कितना निर्दयी बना दिया है। चूँकि शस्त्र और हिंसा पर्यायवाची बन चुके हैं। दोनों ही ऊँचाइयों के क्षितिज छूने जा रहे हैं। प्रस्तर युग में पाषाण अस्त्र बनें-विकास होते-होते अणुबम और हाइड्रोजन बम का युग आया, अणु-शस्त्र बनें, बनते चले जा रहे हैं। शस्त्रीकरण का यह दौर आज जैविक-रासायनिक, किटान्विक प्रक्रिया तक पहुंच चुका है। इसका अगला रूप क्या होगा, कुछ भी कहना कठिन है। आणविक युद्धों की विभीषिका से आज सारा संसार अशांत और व्याकुल है। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक अलबर्ट आइंस्टीन ने अपनी मृत्यु के कुछ ही दिन पूर्व कहा था—'आणविक-युद्धों में विश्व का सार्वभौम नाश निश्चित है।' विज्ञान अब तक इन ध्वंसात्मक अस्त्रों का प्रतिकार नहीं दे सका है।

एक-से-एक अधिक भयानक शस्त्रों का निर्माण दुनिया का प्रमुख 'उद्योग' तथा रोजगार का साधन बनता जा रहा है। आज जिस तरह से छोटे-बड़े सब देश हजारों-लाखों की स्थाई सेना (स्टेन्डिंग आर्मी) रखने लगे हैं वह तीन-चार सौ वर्ष पहले तक आम बात नहीं थी। इन सबसे होने वाले दुष्परिणामों की ओर ध्यान केन्द्रित करते हुए महाप्रज्ञ ने लिखा—'आज युद्ध और स्थाई सेनाओं के कारण प्राकृतिक संसाधनों का घोर अपव्यय हो रहा है। जो संसाधन और श्रम गरीबी अभाव आदि दूर करने में लगते वे लोगों को मारने की तैयारी में लग रहे हैं। युद्ध और शस्त्रों की होड़ दुनिया में गरीबी और अभाव बढ़ने का एक प्रमुख कारण है।'

शस्त्रीकरण आज की ज्वलंत समस्या है। सौ वर्ष पूर्व किसी ने यह सोचा भी नहीं होगा कि राजनीतिक लोग कभी निःशस्त्रीकरण शब्द का उच्चारण करेंगे, जनता निःशस्त्रीकरण की बात पर आंदोलन करेगी।.....महावीर का निःशस्त्रीकरण का विचार 20वीं 21वीं शताब्दी में स्वतः बलवान् बन रहा है। निःशस्त्रीकरण का स्वर शस्त्रीकरण की परिणति के कारण शक्तिशाली होता जा रहा है। अगर अणुशस्त्रों के भंडार पर ध्यान नहीं दिया गया तो शायद एक समय ऐसा भी आएगा, सारी की सारी मानव सभ्यता नष्ट हो जायेगी। संभावना का आकलन महाप्रज्ञ के शब्दों में—'दुनिया वापस प्रस्तर युग में चली जाए। महाभारत के युद्ध के बाद हिन्दुस्तान की सभ्यता, संस्कृति और विद्या का ह्रास हुआ है उससे यह संभावना बलवती बनी है अणुशस्त्रों के युद्ध के बाद शायद मनुष्य यह प्रार्थना करेगा—'हे भगवन्! हमें वही बना दो जो हम पहले थे।'[135] यदि इस स्थिति से उबरना है, शस्त्रों के प्रसार को रोकना है तो इस आर्ष वचन पर ध्यान देना होगा—'नत्थि असत्यं परेण परं'—अशस्त्र में कोई परम्परा नहीं है। शस्त्रों के विकास से होने वाले महाविनाश से बचने का एक मात्र उपाय अहिंसा ही है।

महापुरुषों का अशांत भयाक्रांत विश्व के लिए निशस्त्रीकरण का संदेश सामयिक एवं प्राणवान् है। शस्त्राशस्त्र के वैज्ञानिक विकास के सामने अहिंसा की शक्ति को प्रतिष्ठित करना अदभ्य साहस का सबूत है।

पर्यावरण और अहिंसा

विज्ञान अर्वाचीन है, अहिंसा का सिद्धांत बहुत प्राचीन है। प्राचीन और अर्वाचीनता के बावजूद भी दोनों में अभिन्नता है। धर्म जहाँ प्राण विनाश की दृष्टि से अहिंसा पर विचार करता है, विज्ञान उस पर प्रदूषण की दृष्टि से विचार कर रहा है। धर्म जहाँ प्राणीमात्र की दृष्टि से अहिंसा पर विचार करता है वहाँ विज्ञान केवल मनुष्य की दृष्टि से विचार करता है। परिणाम की दृष्टि से दोनों का

केन्द्र बिन्दु समान है। सृष्टि के संतुलन का प्रश्न आज विज्ञान वार्ता का अहम् मुद्दा है।

आज का प्रबुद्ध मानस इस विषय में चिंतित है कि पर्यावरणीय संतुलन कैसे साधा जाये? संतुलन का अर्थ है—अहिंसा। अहिंसा का अर्थ है—संतुलन। अध्यात्म जगत् में संतुलन पर महत्त्वपूर्ण खोजें हो चुकी हैं। विज्ञान ने अब इस पर खोजें प्रारंभ की है। वैज्ञानिकों ने इस बात पर ध्यान दिया कि प्रकृति का यदि कोई भी अंश अस्त-व्यस्त रहता है तो प्रकृति का सारा चक्र ही अस्त-व्यस्त हो जाता है। क्योंकि प्रकृति का प्रत्येक अंश प्रत्येक अवयव उसका महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। कहीं कोई एक इकाई टूटती है तो समूचा सृष्टि संतुलन ही बिगड़ सकता है। 'इकोलॉजी ने एक नया आयाम खोल दिया। यह बात मान्य हो गई कि प्रकृति का छोटा-मोटा प्रत्येक अवयव उपयोगी है, अनिवार्य है।'[136] प्रकृति का प्रत्येक घटक एक-दूसरे को प्रभावित करता है। यह आधुनिक विज्ञान का मन्तव्य है।

अध्यात्म के चिंतकों ने बहुत पहले ही कह दिया था कि प्रत्येक तत्त्व एक दूसरे से प्रभावित होते हैं। एक की हिंसा दूसरे को कैसे प्रभावित करती है इसकी विस्तृत चर्चा आचारांग सूत्र में की गई है। पृथ्वीकाय की अहिंसा के बारे में भगवान् महावीर ने कहा—'मेधावी पुरुष हिंसा के परिणाम को जानकर स्वयं पृथ्वी शस्त्र का समारंभ न करे, दूसरों से उसका समारंभ न करवायें, उसका समारंभ करने वालों का अनुमोदन न करें।.....नाना प्रकार के शस्त्रों से पृथ्वी संबंधी क्रियाओं में व्यापृत होकर पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा करने वाला व्यक्ति (न केवल उन पृथ्वीकायिक जीवों की ही हिंसा करता है, अपितु) नाना प्रकार के अन्य जीवों की भी हिंसा करता है।'[137] आज अहिंसा का अर्थ, केवल पारलौकिक ही नहीं रह गया है अपितु विज्ञान की कसौटी पर भी सत्यापित हो रहा है। भगवान् महावीर ने अहिंसा को अनेक पहलुओं से देखा और प्रस्तुति दी। उन्होंने कहा था—

- एस खलु गंथे—हिंसा ग्रन्थि है।
- एस खलु मोहे—यह मोह है।
- एस खलु मारे—यह मृत्यु है।
- एस खलु णारए—यह नर्क है।
- तं से अहियाए—हिंसा मनुष्य के लिए हितकर नहीं है।
- तं से अबोहीए—वह बोधि का विनाश करने वाली है।

इस स्वर का उदात्तीकरण ही पर्यावरण प्रदूषण में उलझे समाज में एक नया प्रकंपन पैदा कर सकेगा।[138]

गांधी भले ही पर्यावरण-विज्ञ नहीं थे पर एतद् संबंधी ज्ञान उनका बड़ा सूक्ष्म एवं आत्मानुभूति से जुड़ा हुआ था। उन्होंने लिखा—एक पौधे को उखाड़ना भी बुरा है और किसी खूबसूरत गुलाब के फूल को तोड़ते हुए किसे वेदना नहीं होती? किसी घास-पात को तोड़ते समय हमें वेदना नहीं होती। इससे यही सूचित होता है कि हमें पता नहीं है कि प्रकृति में घास-पात का क्या स्थान है। अतएव किसी भी प्रकार की हानि पहुँचाना अहिंसा सिद्धांत का उल्लंघन करना है।[139] जाहिर है कि गांधी ने पर्यावरण को अहिंसा की तुला पर तोलकर ही अपनाया था। उनका पदार्थ संयम इस बात का द्योतक है।

अहिंसा का सिद्धांत आत्मशुद्धि का है, साथ ही वह पर्यावरण शुद्धि का भी है। पदार्थ सीमित है, उपभोक्ता अधिक है और इच्छा असीम है। अहिंसा का सिद्धांत है—इच्छा का संयम करना, उसकी

काट-छांट करना। जो इच्छा पैदा हो उसे उसी रूप में स्वीकार न करना, किंतु उसका परिष्कार करना।

आज की प्रमुख समस्या है उपभोक्तावादी मनोवृत्ति। पर्यावरण का पहला सूत्र है—पदार्थ कम है इसलिए प्रयोग कम करो। आज उपभोक्तावाद बढ़ रहा है, उपभोगवाद बढ़ रहा है। वह मनुष्य की वृत्तियों को उभार रहा है, मनुष्य को आक्रामक बना रहा है। इस स्थिति से निजात पाने के लिए सभी उत्सुक हैं। पर यह कैसे संभव है पर्यावरण का प्रदूषण भी न रहे, उपभोक्तावाद भी बढ़ता रहे और विश्व शांति की चर्चा भी करते रहे। इस विरोधाभासी दृष्टिकोण के पलते समस्या घटती नहीं, बढ़ती ही जाती है।

पर्यावरण विज्ञान आज किसी एक व्यक्ति, समूह, समाज, राज्य या राष्ट्र तक सीमित नहीं है इसका संबंध पूरे विश्व से जुड़ा हुआ है। यह पूरे विश्व को प्रभावित कर रहा है। इसकी अपनी प्रविधि है, प्रक्रिया और सिद्धांत भी हैं। इसके प्रमुख सिद्धांत निम्न हैं—

- जीव और पदार्थ एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।
- भौतिक वातावरण जीवों पर और जीव भौतिक वातावरण पर आश्रित है।
- एक कड़ी का परिवर्तन शेष कड़ियों में परिवर्तन ला देता है। भूमि, पानी, हवा, ईंधन ये सब इस अखिल जगत् की कड़ियां हैं।
- एक निश्चित तापमान में ही जीव जी सकता है। आज एक खतरा पैदा हो गया। ओजोन की परत टूटती जा रही है। यदि पराबैंगनी किरणें सीधी धरती पर पड़नी शुरू हो गई तो जीव का जीवित रहना मुश्किल है। तापमान से जलस्तर इतना बढ़ जायेगा कि बड़े-बड़े नगर समुद्र बन जाएंगे। प्रकृति का संतुलन न बिगड़े कोई भी तत्त्व असंतुलन की अवस्था को प्राप्त न हो जाए।[140]

पर्यावरण विज्ञान के ये सिद्धांत महावीर वाणी का पुनरुच्चारण है। सिद्धांतों के संदर्भ में अहिंसा पर चिंतन करें तो अहिंसा का भी यही सिद्धांत है। अकेला कोई नहीं जी सकता। एक शाश्वत नियम बना 'द्रव्य निमित्त हि संसारिणां वीर्यमुपजायते'—हमारी सारी वीर्य-शक्ति द्रव्य के निमित्त से पैदा होती है, पर्यावरण के निमित्त से पैदा होती है। यदि पर्यावरण बिगड़ गया तो हमारा सारा वीर्य समाप्त हो जायगा। सचमुच पर्यावरण विज्ञान का अध्ययन अहिंसा विज्ञान का अध्ययन है। सरल शब्दों में पर्यावरण का प्रदूषण हिंसा है। पर्यावरण का संतुलन रहेगा तो मनुष्य भी जीयेगा, पशु-पक्षी भी जीएंगे, भौतिक वातावरण भी शुद्ध रहेगा। सभी प्राणी मिलकर जीते हैं तो वातावरण शुद्ध रहता है, पर्यावरण प्रदूषित नहीं होता। पर्यावरण के संतुलन में सबका योग है। मकड़ी बहुत सारे विषैले कीटाणुओं को नष्ट कर देती है। आचार्य महाप्रज्ञ ने बताया—'जितने जीव हैं, पदार्थ हैं, वे सब प्रकृति के संतुलन को बनाए हुए हैं। संतुलन का एक व्यवस्थित क्रम बना हुआ है। मनुष्य ने हस्तक्षेप किया और सबको नष्ट करना शुरू कर दिया। इसका अर्थ है, मनुष्य ने पर्यावरण को प्रदूषित करने का जिम्मा ले लिया।'[141] वास्तव में देखा जाये तो प्रदूषण का मूल कारण मनुष्य है।

पर्यावरण की समस्या अनर्थहिंसा से उपजी समस्या है। प्राचीन काल में कहा गया—पन्द्रह कर्मादान का त्याग करो। श्रावकों के लिए ऐसी आचार संहिता निर्मित की गयी जो निग्रह प्रधान थी। यह आंदोलन भी चला-बड़े कारखाने मत खोलो, लघु उद्योगों को प्रोत्साहन दो। बड़े-बड़े कारखाने बहुत खतरे का कारण बनेंगे। महात्मा गांधी ने विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था और विकेन्द्रित शासन सत्ता पर बल दिया, वह कर्मादान-निषेध या पर्यावरण-विज्ञान का महत्त्वपूर्ण फार्मूला बन सकता है।

पर्यावरण-विज्ञान का एक सूत्र है—लिमिटेशन। पदार्थ की सीमा है। कोई भी पदार्थ असीम नहीं है। क्या पदार्थ की सीमा का यह सूत्र संयम का सूत्र नहीं है? पर्यावरण-विज्ञान का दूसरा महत्त्वपूर्ण सूत्र है—पदार्थ सीमित है; इसलिए उपभोग कम करो। धर्म का दृष्टिकोण है पदार्थ का अपव्यय मत करो, संयम करो। पर्यावरण विज्ञान की भाषा है—पदार्थ कम है, उपभोक्ता अधिक है, इसलिए उपभोग की सीमा करो। महावीर ने भोगोपभोग के संयम का जो व्रत दिया वह पर्यावरण-विज्ञान का महत्त्वपूर्ण सूत्र है। आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं—पदार्थ ज्यादा काम में मत लो, अनावश्यक चीज को काम में मत लो, यह है संयम और इसी का नाम अहिंसा है, पर्यावरण विज्ञान है। इस संदर्भ में अणुव्रत का संयम घोष महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है। आज की अपेक्षा है—हम पर्यावरण, अहिंसा और संयम का मूल्य आंकें।

पर्यावरणविद् पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन को लेकर चिंतित हैं। पेड़ पर्यावरण के प्रदूषण को कम करते हैं। इस दृष्टि से पार्कों और वनस्थलियों का बहुत महत्त्व है। पर आचार्य महाप्रज्ञ समस्या के मूल पर ध्यान केन्द्रित कर कहते हैं—प्रदूषण के स्रोत निरंतर बढ़ रहे हैं और वे बढ़ते ही चले जाएंगे तो बेचारे पेड़ कब तक प्रदूषण को कम करेंगे। मूल समस्या है प्रदूषण कम करने वाली मनोरचना की। समाज की मनोरचना है प्रदूषण बढ़ाने वाली और बात है उसे घटाने की। आज का आदमी केवल शारीरिक स्वास्थ्य की ही उपेक्षा नहीं कर रहा है वह मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य की उपेक्षा कर रहा है। शरीर स्वस्थ तो मन स्वस्थ। यह सत्य को देखने का एक पहलू है, मन स्वस्थ तो शरीर स्वस्थ। शरीर और मन दोनों का स्वास्थ्य आध्यात्मिक स्वास्थ्य का हेतु बनता है। पदार्थ की भाषा को समझने वाला आदमी क्या अहिंसा की इस भाषा को समझने का प्रयत्न करेगा?[142] यह यथार्थ का चित्रांकन है। पर प्रयोग की भूमिका पर मुक्त मानसिकता और मुक्त भोग के वातावरण में संयम के सूत्र का अर्थ समझे बिना हम पर्यावरण के प्रदूषण को कम कैसे कर सकते हैं?

पर्यावरण संबंधी गांधी के विचार मौलिक हैं। उन्होंने अपने जीवन में जो संयम साधा, मानो 'लिमिटेशन' सूत्र का ही जीवंत प्रयोगात्मक पक्ष था। पर्यावरण के प्रति उनकी आत्मानुभूति कितनी गहरी थी इसका अंदाजा एक उदाहरण से लगाया जा सकता है। जब मीराबेन ने रात्रि के समय पेड़ की पत्तियां मंगवाई। बहिन ने पत्तियों को सिकुड़कर सोया हुआ पाया तब बापू के कमरे में जाकर बोली—'देखो बापू, छोटी पत्तियां नींद में कैसे सिकुड़ी हुई है।' बापू ने छोटी पत्तियों की तरफ नजर डालते हुए क्रोध तथा दया से कहा—'पेड़ भी हमारी ही तरह जीव है। वे सांस लेते हैं, वे हमारी तरह खाते-पीते भी हैं और हमारी ही तरह उन्हें नींद की जरूरत होती है। पेड़ रात में आराम करते हैं। यह ठीक नहीं, रात में इनकी पत्तियों को नहीं तोड़ना चाहिए। इसके अलावा तुमने इतनी अधिक पत्तियाँ क्यों तोड़ ली? थोड़ी-सी पत्तियों से काम चल जाता। तुमने सुना होगा मैंने कल सभा में क्या कहा। मैंने इस पर दुख प्रकट किया था कि लोग कोमल फूलों की जगह हाथ से बने हुए सूत की माला भेंट करें तो मुझे ज्यादा खुशी होगी।' गांधी ने मीरा बेन से फिर कहा—'यह तुम्हारी नासमझी थी कि तुमने रात को स्वयं सेवक को पत्तियां तोड़ने भेजा। उसने कोमल पत्तियों को सोते में तोड़कर पेड़ को दर्द पहुँचाया। हमें प्रकृति के साथ ऐसा संबंध रखना चाहिए जैसे जीवित प्राणियों के साथ।'[143] इस कथन से प्रकट होता है कि गांधी पर्यावरण के प्रति कितने सजग थे। उनकी दृष्टि में पेड़-पौधों का महत्त्वपूर्ण स्थान था। उनके इस 'संयम और करुणा' प्रधान विचार को अपनाया जाए तो पर्यावरण प्रदूषण की समस्या का काफी हदतक समाधान हो सकता है।

प्रदूषण का खतरा मनुष्य के अपने असंयम के कारण पैदा हुआ है। असंयम की बढ़ती समस्या और गांधी के संयम का चित्रण करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने लिखा—'आज प्रत्येक बात में असंयम है। विदेशी महिला बड़ी टहनी तोड़कर ले आई। महात्मा गांधी ने उसे डांटते हुए कहा—जो काम छोटी टहनी से हो सकता है उसके लिए बड़ी टहनी क्यों तोड़ी? यह अपव्यय है।' संयम के अभाव में पर्यावरण शुद्धि की कल्पना साकार नहीं हो सकती। प्रश्न है क्रियान्विति का? भगवान महावीर ने पर्यावरण का मात्र आधार ही नहीं दिया। उसकी क्रियान्विति का मार्ग सुझाते हुए कहा—'जिन जीवों की हिंसा के बिना तुम्हारी जीवन यात्रा चल सकती है, उसकी हिंसा मत करो। जीवन-यात्रा के लिए जिनका उपभोग अनिवार्य है, उनकी भी अनावश्यक हिंसा मत करो। पदार्थ का भी अनावश्यक उपभोग मत करो।'[144] इस रूप में महावीर का संदेश पर्यावरण विशुद्धि हेतु आदर्श अभिलेख कहा जा सकता है।

आज के पर्यावरण-विशेषज्ञ चिंतित हैं कि प्राकृतिक संपदा की सुरक्षा कैसे की जाये? हाल ही में पर्यावरण-विशेषज्ञों ने आंकड़े प्रस्तुत करते हुए बताया—'आज वनस्पति की बीस हजार उपजातियां उपलब्ध हैं। यदि उनकी सुरक्षा नहीं की गई तो बहुत बड़ी निधियाँ समाप्त हो जाएंगी।'[145] अपेक्षा है समय रहते मानव के भीतर पर्यावरण चेतना जागे। अहिंसा की चेतना जागे। अहिंसा के सिद्धांत की उपेक्षा कर पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को समाहित नहीं किया जा सकता।

अहिंसा का सिद्धांत केवल न मारने से ही नहीं जुड़ा है, निमित्तों से भी जुड़ा हुआ है। महाप्रज्ञ के शब्दों में—'यह निमित्त विज्ञान का अध्ययन ही पर्यावरण विज्ञान है।'[146] पर्यावरण को समझना अहिंसा के विकास हेतु अनिवार्य है। दूसरी ओर अहिंसा को समग्रता से जानने के लिए पर्यावरण-विज्ञान का अध्ययन जरूरी है। अहिंसा का अर्थ इतना ही नहीं है कि किसी जीव को मत मारो। उसका आशय है—मारने की स्थिति भी पैदा मत करो। अहिंसा और पर्यावरण-विज्ञान परस्पर इतने जुड़े हुए हैं कि एक के विकास हेतु दूसरे को अपनाना अनिवार्य है। दोनों महापुरुषों के पर्यावरण संबंधी विचार मौलिक एवं सामयिकता-सह अहिंसा विकास की भूमिका पर प्राणवान् साबित होते हैं।

बौद्धिक अहिंसा बनाम : अनेकांत

अनेकांत मात्र बौद्धिक व्यायाम नहीं जीवन का अखंड दर्शन है। इस दर्शन का स्रोत वीतराग चेतना है। भगवान् महावीर ने तत्त्व की स्थापना के लिए तर्क को एक सापेक्ष आलंबन के रूप में स्वीकृति प्रदान की है। अपने अभ्युपगम की स्थापना और परकीय अभ्युपगम के निरसन के लिए तर्क का उपयोग करना हो तो उस सीमा में ही किया जाए जहाँ अहिंसा बनी रहे। आचार्य महाप्रज्ञ ने बतलाया—'अपने विचार की पृष्टि अहिंसा की पुष्टि के लिए है। अहिंसा का खण्डन कर दूसरे के अभ्युपगम का खंडन करना वास्तव में अपने अभ्युपगम का ही खण्डन हैं।' इस कथन के आलोक में अनेकांत के अहिंसात्मक स्वरूप को समझा जा सकता है।

सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो यह बहुत स्पष्ट होगा कि जीव-घात और मनोमालिन्य जैसे हिंसा है, उसी तरह एकांत दृष्टि अथवा मिथ्या आग्रह भी हिंसा का रूप है। साधु अहिंसा महाव्रत के धारक होते हैं अतः उनसे अखंड अहिंसा की अपेक्षा की जाती है। साधु समुदाय के बारे में अहिंसा संबंधी गांधी टिप्पणी को रामधारी सिंह दिनकर ने उद्धृत करते हुए लिखा—'भारत में अहिंसा के सबसे बड़े प्रयोक्ता जैन मुनि हुए हैं, जिन्होंने मनुष्य को केवल वाणी और कर्म से ही नहीं प्रत्युत विचारों से

भी अहिंसक बनाने का प्रयत्न किया। किसी भी बात पर यह मानकर अड़ जाना कि यही सत्य है, तथा बाकी लोग जो कुछ कहते हैं, वह सबका सब झूठ और निराधार है, विचारों की सबसे भयानक हिंसा है। मनुष्यों को इस हिंसा के पाप से बचाने के लिए ही जैन मुनियों ने अनेकांतवाद का सिद्धांत निकाला।'[147] गांधी ने इस सिद्धांत को मंथन पूर्वक अपनाया।

अनेकांतवाद से परस्पर विरोधी बातों के बीच सामंजस्य स्थापित होता है तथा विरोधियों के प्रति भी आदर की वृद्धि होती है इसलिए यह सिद्धान्त गांधी को अत्यंत प्रिय था। उन्होंने लिखा है; मेरा अनुभव है कि अपनी दृष्टि से मैं सदा सत्य ही होता हूँ किंतु मेरे ईमानदार आलोचक तब भी मुझ में गलती देखते हैं। पहले मैं अपने को सही और उन्हें अज्ञानी मान लेता था। किन्तु, अब मैं मानता हूं कि अपनी-अपनी जगह हम दोनों ठीक हैं। कई अंधों ने हाथी को अलग-अलग टटोल कर उसका जो वर्णन दिया था, वह दृष्टांत अनेकांतवाद का सबसे अच्छा उदाहरण है। इसी सिद्धांत ने मुझे यह बतलाया कि मुसलमान की जांच मुस्लिम दृष्टिकोण से तथा ईसाई की परीक्षा ईसाई दृष्टिकोण से की जानी चाहिये। पहले मैं मानता था कि मेरे विरोधी अज्ञान में हैं। आज मैं विरोधियों को प्यार करता हूँ क्योंकि अब मैं अपने को विरोधियों की दृष्टि से भी देख सकता हूँ। मेरा अनेकांतवाद सत्य और अहिंसा, इन युगल सिद्धांतों का परिणाम है।[148] गांधी के विचारों में अनेकांत की स्वीकृति का स्पष्ट निदर्शन है।

प्रतिपक्ष का मत भी ठीक हो, ये अनेकांतवादी का लक्षण हैं। गांधी पर ये सभी लक्षण घटित होते हैं क्योंकि उनकी अहिंसा कायिक और वाचिक होने के साथ-साथ बौद्धिक भी थी और इसी बौद्धिक अहिंसा ने उन्हें समझौतावादी और विरोधियों के प्रति दयालु बना दिया था। जब गांधी 'भारत छोड़ों' आंदोलन की योजना बना रहे थे, सुप्रसिद्ध अमेरिकी पत्रकार लुई फिशर ने उनसे पूछा—'आपके इस कार्य से युद्ध में बाधा पड़ेगी और अमेरिकी जनता को आपका यह आंदोलन पसंद नहीं आयेगा। अजब नहीं कि लोग आपको मित्र-राष्ट्रों का शत्रु समझने लगें।' गांधी ने कहा, 'फिशर, तुम अपने राष्ट्रपति से कहो कि वे मुझे आंदोलन छेड़ने से रोक दें। मैं तो, मुख्यतः समझौतावादी मनुष्य हूँ, क्योंकि मुझे कभी भी यह नहीं लगता कि मैं ठीक पर ही हूं।'[149] इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि गांधी ने अनेकांत को न केवल समझा ही बल्कि अपने जीवन की प्रयोगशाला में भी उतारा।

जैनधर्म अहिंसा का पर्याय बना इसमें 'अनेकांत दृष्टि' का बहुत बड़ा योगदान है। अहिंसा का विचार अनेक भूमिकाओं पर विकसित हुआ है। कायिक, वाचिक और मानसिक अहिंसा के बारे में अनेक धर्मों में विभिन्न धाराएं मिलती हैं, किन्तु बौद्धिक अहिंसा के क्षेत्र में भगवान् महावीर से जो अनेकांत दृष्टि मिली, वही मुख्य कारण बना जैन धर्म के साथ अहिंसा का अविच्छिन्न संबंध स्वीकृति का। उन्होंने देखा कि हिंसा की जड़ विचारों की विप्रतिपत्ति है। जड़ पदार्थ में हिंसा-अहिंसा के भाव नहीं हो सकते। इनकी उद्भव-भूमि मानसिक चेतना है। उसकी भूमिकाएं अनंत हैं। प्रत्येक वस्तु के धर्म भी अनंत हैं। वस्तुतः वस्तु के अनंत धर्मों की सापेक्ष अभिव्यक्ति का उलझा प्रश्न वीतराग वाणी में समाहित हुआ।

आचार्य महाप्रज्ञ ने लिखा—मनुष्य जो कुछ कहता है, उसमें वस्तु के किसी एक पहलू का निरूपण होता है। एक से अनेक के संबंध जुड़ते हैं, सत्य या असत्य के प्रश्न खड़े होने लगते हैं। बस यहीं से विचारों का स्रोत दो धाराओं में बह चलता है—अनेकांत या सत्-एकांत दृष्टि-अहिंसा, असत्-एकांत दृष्टि-हिंसा। इसीलिए भगवान् महावीर ने बताया प्रत्येक धर्म को अपेक्षा से ग्रहण करो। सत्य सापेक्ष

होता है। एक सत्यांश के साथ लगे अनेक सत्यांश को ठुकराकर कोई उसे पकड़ना चाहे तो वह सत्यांश भी उसके सामने असत्यांश बनकर आता है। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि दूसरों के प्रति ही नहीं किंतु अपने विचारों के प्रति भी अन्याय मत करो। अपने को समझने के साथ-साथ दूसरों को भी समझने की भी चेष्टा करो। यही है अनेकांत दृष्टि, यही है अपेक्षावाद और इसी का नाम है—बौद्धिक अहिंसा।[150]

अनेकांत दृष्टि और अहिंसा में पूर्ण अभिन्नता है। इसीलिए अनेकांत को आधुनिक विचारक बौद्धिक अहिंसा कहते हैं। जैन दर्शन ने उसकी गहराइयों में जाने का प्रयत्न किया। बौद्धिक अहिंसा या अनेकांत नयी दिशा का उद्घाटन है। सर्वथा नवीन और मौलिक आयाम है। यह व्यावहारिक और तात्त्विक दोनों क्षेत्रों में आनेवाली समस्याओं का समाधान है। इस संबंध में आचार्य महाप्रज्ञ के विचार मौलिक एवं वैज्ञानिक हैं। डॉ. रामन्ना की अनेकांत संबंधी जिज्ञासा का समाधान करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने बताया—जैसे आज विज्ञान में कण और प्रतिकण, मेटर और एण्टीमेटर, परमाणु और प्रति परमाणु का सिद्धांत है, एक दूसरे के अस्तित्व की सिद्धि के लिए प्रतिपक्ष को नियामक माना जाता है वैसे ही आचार्यों ने 'यत् सत् तत् सप्रतिपक्ष' कहकर वस्तु के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए विरोधी धर्म की सत्ता को स्वीकार किया हैं। दो विरोधी धर्म साथ रह सकते हैं, यह एक सार्वभौम नियम है। इसके लिए दूसरा नियम है सापेक्षता का। विरोधी धर्म साथ में रहते हैं, इसीलिए कि उनमें सापेक्षता है। निरपेक्ष धर्म एक साथ रह ही नहीं सकते।[151] इसी सापेक्षता के सिद्धांत पर अनेकांत का विकास हुआ है। अतः अनेकांत अभिनिवेश और आग्रह से मुक्त होने का प्रयोग कहा जा सकता है। इसके मूल सिद्धांत पाँच हैं—

1. सप्रतिपक्ष
2. सह-अस्तित्व
3. स्वतंत्रता
4. सापेक्षता
5. समन्वय [152]

अनेकांत के उपर्युक्त पाँच सिद्धांतों के सहारे अनेक सिद्धांत विकसित हो सकते हैं। इन्हीं के आधार पर अहिंसा और मैत्री के सिद्धांत का विकास हुआ। अहिंसा और मैत्री का सिद्धांत साहचर्य से आया। सब द्रव्य एक साथ रहते हैं कहीं कोई विरोध नहीं, टकराव नहीं। एक साथ में रहना और अपने-अपने अस्तित्व को स्वतंत्र बनाए रखना। महाप्रज्ञ कहते—'अहिंसा का यह अर्थ नहीं कि हम अपने अस्तित्व को समाप्त कर दें। अपना अस्तित्व स्वतंत्र रहे, एक साथ रहे। स्वतंत्रता और सह-अस्तित्व दोनों का इतना सुन्दर प्रतिपादन हुआ है कि तुम स्वतंत्र भी हो और सह-अस्तित्व वाले भी हो।' इस प्रकार अनेकांत ने मानव के भीतर विराट् दृष्टि का सृजन किया है। इसे खुले दिमाग का सिद्धांत भी कहा जा सकता है।

अनेकांत सिद्धांत का वैशिष्ट्य है कि उसने दर्शन के क्षेत्र में, दूसरे के विचारों को समझने की क्षमता प्रदान की। इसने किसी विषय में एकपक्षीय स्वरूप के दुराग्रह का विरोध किया जो सारे वैमनस्यों का मूल है। मुझे यह बताने की आवश्यकता नहीं कि 'खुला दिमाग' हमारे में उदारता तथा विचारों का संतुलन पैदा करता है। इस प्रकार अनेकांत तथा इसके उपसिद्धांत 'नयवाद' और स्याद्वाद' ने एक आवश्यक मूलाधार हमें दिया है, जो राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय तनावों को कम करने तथा

व्यक्ति में बौद्धिक ईमानदारी की भावना का विकास करने में समर्थ होगा।[153] अतः दृष्टिकोण को आलोकित करने वाले 'अनेकांत' को व्यापक बनाया जाये तो स्थूल तथा सूक्ष्म रूपों में प्रवृत्त बर्बरता, शोषण, उद्दण्डता तथा शीतयुद्ध समाप्त हो सकते हैं। अनेकांत दर्शन का वैशिष्ट्य इस बात में है कि वह मनुष्य को दुराग्रही बनने से बचाता है। इसका संदेश है कि तुम्हीं ठीक हो ऐसी बात नहीं, शायद सामने वाला व्यक्ति भी सत्य ही कह रहा है, भले वह विरोधी भी क्यों न कहे। भाषा की दृष्टि से अनेकांतवादी व्यक्ति स्याद्वादी होता है। चूँकि उसका भाषा प्रयोग 'यही सत्य है' न होकर, 'शायद यह सत्य हो' की तर्ज पर होता है।

स्याद्वाद अहिंसा का एक अंग है। जैन दर्शन में द्रव्य हिंसा की अपेक्षा भावहिंसा को भी बंध का कारण माना है। अर्थात् किसी प्राणी को ऐसा वचन न कहा जाए जिससे कि उसे दुःख पहुँचे। स्याद्वाद बौद्धिक अहिंसा है। वास्तव में धर्म नाम पर होने वाले सांप्रदायिक संघर्षों का मूल कारण एकांतवाद का आग्रह है। स्याद्वाद में विश्व शांति की क्षमता का जिक्र करते हुए भारतीय संस्कृति के विशेषज्ञ मनीषी डॉ. रामधारीसिंह दिनकर ने लिखा—'स्याद्वाद का अनुसंधान भारत की अहिंसा साधना का चरम उत्कर्ष है और सारा संसार इसे जितना शीघ्र अपनाएगा, विश्व में शांति उतनी ही शीघ्र स्थापित होगी।'

विविधता में एकता और एकता में विविधता का समाहार स्याद्वाद का वचन विषयक मौलिक आश्रयण है। जैन दर्शन ने विश्व को यह नवीन दृष्टि प्रदान की। वर्तमान के संघर्ष संकुल युग में स्याद्वाद जैसा सिद्धांत ही सत्य और अहिंसा के बल पर समस्त प्राणियों में मेल-मिलाप करने की क्षमता रखता है।

परम सत्य पर पहुँचा प्रबुद्ध चेता मिथ्या अभिमान या दावा न करे। महाप्रज्ञ के शब्दों में अधिकांशतया भेदभाव, मनोमालिन्य और साम्प्रदायिक अभिनिवेश बढ़ते हैं, वे शब्दों की पकड़ के कारण ही बढ़ते हैं। विवेक की सफलता इसी में है कि बौद्धिक अहिंसा अधिक-से अधिक विकासशील बनें। इसके विकास की प्रमुख बाधाएँ राग-द्वेष हैं। जब तक इनकी प्रधानता रहती है मानसिक अहिंसा का समाचरण भी नहीं होता है, तब बौद्धिक अहिंसा का विकास कैसे हो सकता है? जैसे-जैसे राग-द्वेष क्षीण होता है, वैसे-वैसे अनेकांत दृष्टि विकसित होती है, जैसे-जैसे अनेकांतदृष्टि विकसित होती है वैसे-वैसे राग-द्वेष क्षीण होता है। ये दोनों परस्पर जुड़े हुए हैं।

विमर्शतः अहिंसा के उच्च शिखर से अनेकांत दर्शन का उद्भव हुआ है। वैचारिक सहिष्णुता पर इसका विकास और व्यवहार के धरातल पर प्रतिष्ठा मिली। भारतीय साधकों की अहिंसा भावना स्याद्वाद के रूप में अपने चरम उत्कर्ष पर पहुंची, क्योंकि यह दर्शन मनुष्य के भीतर बौद्धिक अहिंसा को प्रतिष्ठित करता है। संसार में जो अनेक मतवाद फँसांद हैं, उनके भीतर सामंजस्य को जन्म देता है। साथ ही वैचारिक भूमि पर पलने वाली कटुता का निरसन कर स्वस्थ मानसिकता को उत्पन्न करता है। अतः अहिंसा के विकास में अनेकांत की अनन्य भूमिका है और रहेगी।

अहिंसा का व्यवहार पक्ष

अहिंसा एक सुगम शब्द है, जिसकी अर्थात्मा अनेक दुर्गम घाटियों को फाँदती हुई अविरल गति से आगे बढ़ती है। इसकी ऐसी खासियत है कि, जिस कोण से देखो उसी में यह बखूबी नजर आने लगती है। अहिंसा का विचार आधार से आरंभ होता है और फलितार्थ पर्यंत व्यापृत होता जाता

है। अहिंसा के विचारकों, विद्वानों और साधकों ने इसे अपनी सोच और साधना से प्राणवान बनाया है। इसी कारण शब्द से अर्थात्मा की यात्रा में अनेक पहलू समाविष्ट हैं।

सृष्टि का प्रत्येक प्राणी जीना चाहता है, मरना नहीं। सुख चाहता है दुःख नहीं। न चाहने पर भी प्राणी दुःखी क्यों होता है? सुखी कैसे बन सकता है? ऐसी जिज्ञासा इन्द्रभूति गौतम ने भगवान् महावीर के समक्ष रखी। प्रश्न था—'भगवान्! जीवों के सात वेदनीय कर्म का बंध कैसे होता है?' 'प्राण, भूत, जीव और सत्त्व की अनुकंपा करने से, दुःख न देने से, शोक नहीं उपजाने से, खेद उत्पन्न नहीं करने से, वेदना न देने से, न मारने से परिताप न देने से जीव सातवेदनीय कर्म का बन्ध करते हैं।'[154] प्राणी जगत् में व्याप्त सुख की चाह अहिंसा की आधारभित्ति है। सुख पाने के लिए हिंसात्मक प्रवृत्तियों से उपरत होने से ही सुख का मार्ग प्रशस्त होगा।

अहिंसा का आचरण क्यों किया जाये? समाधान होगा-समान चेतनानुभूति का आस्थान। गीता की भाषा में इसलिए अहिंसा प्रतिष्ठित होनी चाहिये क्योंकि सभी प्राणियों में एक ही परब्रह्म परमेश्वर समान रूप से व्याप्त है। अतः परमात्मा की श्रेष्ठतम भक्ति यही होगी—सभी प्राणियों के प्रति आत्मवत् प्रेम रखा जाये अर्थात् सबके प्रति अहिंसा का बर्ताव किया जाये। गीता में स्थान-स्थान पर इसे बहुत महत्त्व मिला है। जिसका संवादी कथन है—'हे अर्जुन! योगी तो वही सर्वश्रेष्ठ माना जाता है जो चाहे तो दुःख में चाहे सुख में सर्वत्र ऐसी दृष्टि रखता हो मानो दूसरा व्यक्ति जो भी सुख या दुख भोग रहा है, वह कोई दूसरा नहीं, बल्कि वह स्वयं ही भोग रहा है।'[155] जैन दर्शन एवं गीता के आत्मौपम्य एवं समस्त प्राणियों में परमात्मा/आत्मदर्शन की उदात्त भावना को अपेक्षातः अहिंसा की आधारशिला कहा जा सकता है।

जिस दिन मनुष्य समाज के रूप में संगठित रहने लगा, आपसी सहयोग, विनिमय व व्यवस्था के अनुरूप जीवन बिताने लगा, तब उसे सहिष्णु बनने की आवश्यकता हुई। दूसरे मनुष्य को न मारने, न सताने और कष्ट न देने की वृत्ति बनी। जिसे अहिंसा के व्यवहारिक आधार की संज्ञा दी गयी। महाप्रज्ञ के शब्दों में—प्रारंभ में अपने-अपने परिवार के मनुष्य को न मारने की वृत्ति रही होगी। फिर क्रमशः अपने पड़ौसी को, अपने ग्रामवासी को, अपने राष्ट्रवासी को होते-होते किसी भी मनुष्य को न मारने की चेतना बन गई। मनुष्य के बाद अपने उपयोगी जानवरों व पक्षियों को भी न मारने की वृत्ति बन गई।... दूसरी ओर उसका विकास हुआ—समाज-निरपेक्ष भूमिका एवं आत्म-विकास की भित्ति पर। उसका लक्ष्य था देह मुक्ति। इसलिए वह प्राणी मात्र को न मारने की मर्यादा से भी आगे बढ़ी। सूक्ष्म विचारणा में अविरति और क्रिया के सिद्धांत तक पहुंच गई।[156] अहिंसा की यह भावना सामाजिक जीवन के साथ-साथ ही प्रारंभ हुई और उपयोगिता के साथ विकसित होती गई। एक बिंदु पर उपयोगिता की बात भी छूट गई और देह मुक्ति का परम लक्ष्य प्रमुख बन गया।

अहिंसा का लक्ष्य

अहिंसा विराट् लक्ष्य के साथ गतिशील बनी। जिसका विचार समाज की भूमिका से ऊपर शरीर को एक बाजू रखकर केवल आत्म-स्वरूप की भित्ति पर हुआ है, प्रकट रूप से उसका लक्ष्य आत्म शुद्धि या देह-मुक्ति ही है। इस संदर्भ में अहिंसा का लक्ष्य आत्म- शोधन-देह-मुक्ति कहा जा सकता है। चूँकि मोक्ष का स्वरूप विदेह है, आत्यन्तिक निवृत्ति, शरीर से भी निवृत्ति। इसकी सिद्धि में एक सीमा तक प्रवृत्ति मान्य है किंतु वही जो संयममय हो। अहिंसा संबंधी सामाजिक दृष्टिकोण इस बिंदु पर

भिन्न पड़ जाता है क्योंकि सामाजिक दृष्टि में प्रवृत्ति का महत्त्व है। धार्मिक एवं सामाजिक दृष्टिभेद का उल्लेख महाप्रज्ञ ने किया—धर्म का प्रवर्तन आत्मशुद्धि के लिये हुआ—ऐसे विचार वालों के लिए अहिंसा अमर्यादित धर्म है। वे अहिंसा को उपयोगिता या आवश्यकता के बाटों से नहीं तौलते। वे उसे संयम की तुला से तौलते हैं। सचमुच ही अहिंसा समाज के अभ्युदय के लिये ही प्रवृत्त हुई होती तो उसकी मर्यादाएँ इतनी सूक्ष्म नहीं बनती। समाज निरपेक्ष बनकर भी वह विकसित नहीं होती।[157] इस मंतव्य से स्पष्ट होता है कि अहिंसा का लक्ष्य विशुद्ध आध्यात्मिक विकास रहा और गौण रूप से सामाजिक अभ्युदय स्वतः होता रहा।

अहिंसा का विराट् क्षेत्र

अहिंसा के विराट् क्षेत्र का आशय है इसकी पहुँच कहाँ तक जाती है? प्रश्नव्याकरण सूत्र में कहा गया—'अहिंसा सब प्राणियों के लिए कल्याणकारी है।' यह जितनी कल्याणकारी है, उतनी ही विराट् है। इसकी विराट्ता की पुष्टि में महाप्रज्ञ ने आर्ष वाणी को उद्धृत किया—'अहिंसाभूतानं ब्रह्म परमं'-अहिंसा प्राणियों के लिए ब्रह्म है। अहिंसा कल्याणकारी भी है, विराट् भी है और शाश्वत भी है। 'एस धम्मे धुए नियए सासए'-अहिंसा धर्म ध्रुव, नित्य और शाश्वत है। शाश्वत के विषय में मीमांसा करना कठिन होता है। अहिंसा शब्द व्यापकता का प्रतीक है। इस शब्द में संपूर्ण संसार का हित समाहित है। इसका प्रभाव किसी व्यक्ति या वर्ग विशेष पर नहीं बल्कि संपूर्ण संसार पर है।

अहिंसा की विराट्ता का उल्लेख करते हुए गांधी ने लिखा—अहिंसा जगत् का एक महान् सिद्धांत है। उसे कोई मिटा नहीं सकता। मेरे जैसे हजारों के उस पर अमल करते-करते मर जाने से वह सिद्धांत मिट नहीं सकता। मर कर ही अहिंसा का प्रचार बढ़ेगा।[158] इस कथन में अहिंसा की ध्रुवता का निदर्शन है।

अहिंसा की मर्यादा

अहिंसा का मार्ग प्रतिस्रोत गामी है एवं गति ऊर्ध्वारोही है। इसकी पुष्टि गांधी के कथन से होती है। उन्होंने कहा बुराई का बदला भलाई से चुकाना चाहिए। अहिंसा की तालीम लेनी होती है और उसे बढ़ाना पड़ता है। उसकी गति ऊपर को होती है इसलिए उसको ऊँची से ऊँची चोटी तक पहुँचने में बड़ी मेहनत करनी पड़ती है। अहिंसा अनुभव से मंजे हुए आदमी को ही चुनती है।[159] अपने कथन का स्पष्टीकरण किया—अहिंसा तो एक सर्वदेशीय सिद्धान्त है। प्रतिकूल परिस्थिति उसकी क्रिया को किसी सीमा के अन्दर बांध नहीं सकती। विरोध में और विरोध के होते हुए भी वह अपना काम करती रहती है।

क्षेत्र विशाल होने पर भी अहिंसा की अपनी कुछ सीमाएं-मर्यादाएँ भी हैं। येन-केन प्रकारेण अहिंसा को लागू नहीं किया जा सकता। इसमें बल-प्रयोग को कहीं स्थान ही नहीं है। जहाँ भी अहिंसा में भय या प्रलोभन आ गया, वहाँ एक नया व्यापार शुरू हो गया। अतः इस बात पर विशेष बल दिया गया कि—'प्रलोभन न दे—एक व्यक्ति ने कहा—बकरे को मत मारो, पचास रुपये दूँगा। उस व्यक्ति ने उसे न मारना स्वीकार कर लिया। उसे पचास रुपये मिल गए। अब वह रोज ज्यादा बकरे लाने लगा। यह एक नया व्यापार हो गया।' इस कथन से प्रकट होता है कि जहाँ भी भय-प्रलोभन का प्रयोग होता है, वहाँ हिंसा के नये-नये रूप दिखाई देते हैं। अहिंसा की मुख्य तीन मर्यादाओं का

जिक्र महाप्रज्ञ ने किया—1. उपदेश हृदय-परिवर्तन, 2. मौन 3. एकांत में चले जाना।[160] हिंसा और अहिंसा के संदर्भ में यह बहुत उपयुक्त कथन है। अहिंसा का विकास इसकी मर्यादा में रहकर ही किया जा सकता है।

अहिंसा के फलितार्थ

जिस प्रवृत्ति से अहिंसा का विकास हो, परिणाम नजर आये वही प्रक्रिया अहिंसा के फलितार्थ की द्योतक बनती है। गांधी के शब्दों में जहाँ अहिंसा है, वहाँ अपार धीरज, भीतरी शान्ति, भले-बुरे का ज्ञान, आत्म त्याग और सच्ची जानकारी भी है।[161] इस संदर्भ में अहिंसा के फलितार्थ का जो उल्लेख आचार्य महाप्रज्ञ ने किया ज्ञातव्य है—

- अहिंसा का अर्थ प्राणों का विच्छेद न करना—इतना ही नहीं, उसका अर्थ है—मानसिक, वाचिक एवं कायिक प्रवृत्तियों को शुद्ध रखना।
- जीव नहीं मरे, बच गए यह व्यवहारिक अहिंसा है, अहिंसा का प्रासंगिक परिणाम है। हिंसा के दोष से हिंसक की आत्मा बची—यह वास्तविक अहिंसा है।
- हिंसा और अहिंसा का संबंध हिंसक और अहिंसक से होता है, मारे जाने वाले और न मारे जाने वाले प्राणी से नहीं।
- निवृत्ति अहिंसा है।
- प्रवृत्ति दो प्रकार की होती है, उनमें जो राग-द्वेष रहित होती है, वह अहिंसा और राग-द्वेष युक्त होती है, वह हिंसा है।
- अहिंसा का संबंध जीवित रहने से नहीं, उसका संबंध तो दुष्प्रवृत्ति की निवृत्ति से है, निवृत्ति एकांतरूप में अहिंसा है—यह तो निर्विवाद विषय है पर राग, द्वेष, मोह, प्रमाद आदि दोषों से रहित प्रवृत्ति भी अहिंसात्मक है।[162]

निर्दोष प्रवृत्ति का मार्गदर्शन शिष्य की जिज्ञासु चेतना का प्रतीक है—'प्रभो! कृपा करके आप बताएँ कि हम कैसे चलें, कैसे खड़े हों, किस तरह बैठें, किस तरह लेटें, कैसे खाएँ और किस तरह बोले, जिससे पाप-कर्म का बंधन न हो। इसे समाहित करते हुए गुरु ने कहा—'आयुष्यमान! यतना पूर्वक चलने से, यतनापूर्वक खड़े होने से, यतनापूर्वक बैठने से, यतनापूर्वक लेटने से, यतनापूर्वक भोजन करने से और यतनापूर्वक बोलने से पाप कर्म का बंध नहीं होता।'[163] सारांशतः सत्पुरुषों का खाना, पीना, चलना, बैठना आदि जीवन क्रियाएँ जो अहिंसा पालन की दृष्टि से सजगतया की जाती है; वे सब अहिंसात्मक ही हैं।

अहिंसा की फलश्रुति का नवनीत है—आत्म-तुला का विस्तार। सर्व प्रथम व्यक्ति पारिवारिक सदस्य को अपने समान समझने लगा। क्रमशः अपनी जाति, समाज, प्रान्त और राष्ट्र के व्यक्तियों को। अगले चरण में मानव-मानव भाई-भाई का स्वर गूँजा। अन्तिम चरण में प्राणीमात्र समान हैं, यह बुद्धि में समा गया।

अहिंसा एवः संदर्भ अनेक में विभिन्न विषयों का विमर्श अहिंसा के अर्थगाम्भीर्य को व्यापक स्तर पर, विभिन्न कोणों से समझने हेतु किया गया आयास है।

महात्मा गांधी का अहिंसा में योगदान

गांधी के मन-वचन-कर्म से जुड़कर अहिंसा सिद्धांत नूतन प्राण प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ। उनसे पूर्व अहिंसा से व्यक्ति अथवा समुदाय लाभान्वित होते रहें, उस क्रम में परिवर्तन घटित हुआ। गांधी ने अहिंसा को विश्व व्यापी बनाने का श्रेय पाया। प्रश्न है गांधी ने अहिंसा को किस रूप में प्रसिद्ध किया? अहिंसा के पुजारी बनकर? अहिंसा के प्रायोजक बनकर? अहिंसा के उपदेष्टा बनकर? अहिंसा के साधक बनकर? किसी एक प्रश्न के उत्तर में गांधी की अहिंसा को झांकना असंभव है। इन सभी का सकारात्मक समाचरण ही गांधी अहिंसा का प्रारूप हो सकता है। उन्होंने अहिंसा की अदम्य शक्ति से वह कर दिखाया जो असंभव माना जाता था। अहिंसा को व्यक्तिगत मुक्ति का कारण संत-महंत-महापुरुष मानते और आचरते आये हैं। पर, किसी राष्ट्र को परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त करने हेतु अहिंसा का प्रयोग इतिहास का अपूर्व स्वर्णिम दस्तावेज़ है।

'अपनी मुक्ति अपने ही हाथों में है' यह बोधपाठ गांधी ने कमजोर-से कमजोर मुल्क को भी अहिंसा के जरिये भारतीय उदाहरण से पढ़ाया। गांधी न कोई संसदीय दार्शनिक थे और न ही तर्क शास्त्री। अध्ययन और मनन के आधार पर कहा जा सकता है वास्तव में वे एक कर्मयोगी थे और अपनी अनुभूतियों को सीधे-सरल भाषा में प्रकट करने के आदी थे। शास्त्रीय दृष्टि से अहिंसा की परिभाषा की उम्मीद उनसे नहीं की जा सकती। शास्त्रीय दृष्टि से किसी भी परिभाषा में उस पद की संपूर्ण गुणवाचकता का वर्णन होता है। चूँकि संपूर्ण गुणवाचकता का समावेश एक दुष्कर कार्य है जो तर्कशास्त्री ही कर सकते हैं। अतः गांधी द्वारा अहिंसा संबंधी जो भी विचार-व्यवहार प्रकट हुआ वही उनका अहिंसा दर्शन बनता गया।

अहिंसा का अर्थ

गांधी की दृष्टि में अहिंसा का अर्थ बहुत व्यापक है। अंग्रेजी का 'नान वायलेंस' शब्द उसके लिए बिल्कुल अपर्याप्त है। अहिंसा शब्द जिन सब अर्थों में प्रयुक्त होता है, उसको सूचित करने के लिए वह अधूरा है। इससे अधिक उपयुक्त शब्द तो शायद प्रेम अथवा सद्भाव होगा, क्योंकि हिंसा का मुकाबला तो सद्भाव से ही करना पड़ेगा। स्पष्ट रूप से गांधी की अहिंसा अवधारणा प्रचलित मान्यताओं के साथ कुछ और जोड़कर आगे बढ़ी। उन्होंने अपने विचारों की अहिंसा का चित्रण किया—'अहिंसा प्रत्येक प्राणी के विरुद्ध द्वेष का अभाव है। यह प्रगतिशील दशा है। इसका अर्थ चेतन रूप से कष्ट भोगना है। अहिंसा अपने सक्रिय रूप में जीवन के प्रति सद्भावना है। यह शुद्ध प्रेम है। प्रेम के

रूप में अहिंसा जगत् में सर्वाधिक कार्यकारी शक्ति है।'[164] उनके हृदय में अहिंसा का जो विराट् स्वरूप था वह अद्वितीय है। उनकी अहिंसा सारे जगत् के प्रति प्रेम का आह्वान करती है।

गांधी ने लिखा—'अहिंसा का क्रियात्मक रूप क्या है? प्राणीमात्र के प्रति सद्भाव। यही शुद्ध प्रेम है। क्या हिन्दू शास्त्रों, क्या बाईविल और क्या कुरान, सब जगह मुझे तो यही दिखाई देता है।' प्रेम के रूप में अहिंसा की अवधारणा को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो अहिंसा को उन्होंने द्वेष का अभाव माना है किसी भी प्राणी के प्रति चाहे वह छोटा हो या बड़ा उसके प्रति द्वेषभाव रखना हिंसा है। भावात्मक शब्दों में प्रेम ही अहिंसा है। यह मनोवैज्ञानिक दशा जब हमारे व्यवहारों और क्रियाओं में प्रकट होती है तब वह प्रेम और द्वेष रहित अवस्था आत्मपीड़न में प्रकट हो जाती है। अहिंसा का साधक दूसरे की रक्षा के लिए उसके प्रति सद्भावना के लिए स्वयं सभी प्रकार के कष्ट भोगने के लिए तैयार रहता है और आवश्यकता पड़ने पर वह अपने प्राणों को भी न्यौछावर कर देता है। इसलिए गांधी ने क्रियाशील अवस्था में अहिंसा को सभी जीवों के प्रति सद्भावना और प्रेम का पर्याय माना है। उनके शब्दों में 'दूसरों के लिए प्राणार्पण करना भी प्रेम की पराकाष्ठा है और उसका शास्त्रीय नाम अहिंसा है। अर्थात् यों कह सकते हैं कि अहिंसा ही सेवा है।'[165] ये विचार मौलिकता के प्रतीक हैं। अपनी पृष्ठभूमि में उनका हिंसा संबंधी विचार बड़ा सूक्ष्म था।

जीवन के व्यवहार पक्ष में घटित होने वाली हिंसा के बारे में उनका चिंतन था—किसी को गाली देना, उसका बुरा चाहना, उसका ताड़न करना, उसे कष्ट पहुंचाना सभी कुछ हिंसा है। जो मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए दूसरों को कष्ट पहुंचाता है, उनके नाक-कान काटता है, उसे भरपेट खाने को नहीं देता और अन्य उपाय से उसका अपमान करता है, वह मृत्युदण्ड देने वाले की अपेक्षा वहाँ अधिक निर्दयता दिखलाता है। उनकी विशाल दृष्टि में 'तमाम खराब विचार हिंसा है। द्वेष-वैर-डाह हिंसा है। किसी का बुरा चाहना हिंसा है। जिसकी जगत् को जरूरत है, उस पर कब्जा रखना भी हिंसा है।' अन्यायी कानून खुद एक किस्म की हिंसा है। हिंसा की यह सूक्ष्म मीमांसा अहिंसा की ओर गतिशील बनने के लिए महत्वपूर्ण है।

अहिंसा क्या है?

अहिंसा का जो अर्थ गांधी ने किया उसमें मौलिकता को खोजना नामुमकिन है। 'अहिंसा का धर्म केवल इतना ही नहीं है कि 'जीव न मारो'। क्रोध अथवा स्वार्थ के वश होकर किसी व्यक्ति का अनिष्ट करने के इरादे से उसे दुख देना या उसके देह का नाश करने का नाम हिंसा है। ऐसा न करना ही अहिंसा है।'[166] यह अहिंसा की सूक्ष्म परिभाषा है। इसमें हिंसा करने वाले व्यक्ति का प्रमत्त भाव प्रकट हुआ है। अतः हिंसा के मूल का संस्पर्श करने से इस परिभाषा को आदर्श अहिंसा की कोटि में रखा जा सकता है। अहिंसा विराट् स्वरूपा है उसकी भावनात्मक स्थिति का चित्रण किया। अहिंसा का अर्थ है प्रेम का समुद्र, वैरभाव का सर्वथा त्याग। अहिंसा में दीनता, भीरूता न हो। डरकर भागना भी न हो। अहिंसा में दृढ़ता, वीरता, निश्छलता होनी चाहिए।.....अहिंसा लूले-लंगड़े प्राणियों को न मारने में ही समाप्त नहीं होती। प्रकटतया गांधी की अहिंसा आत्मनिष्ट एवं नैतिक उसूलों से जुड़ी हुई थी।

अहिंसा के माने पूर्ण निर्दोषिता ही है। अर्थात् 'पूर्ण अहिंसा का अर्थ है प्राणीमात्र के प्रति दुर्भावना का अभाव।' यह मनःस्थिति केवल मनुष्य जाति तक ही सीमित न रहे इसका क्षेत्र हिंस्र

पशुओं को अपनाने तक व्यापें। इस दृष्टि से अहिंसा एक पूर्ण मानसिक स्थिति है। सारी मनुष्य जाति इस लक्ष्य की ओर संभवतः, अनजान में जा रही है। प्रत्येक प्राणी के प्रति आत्मानुभूति की स्थिति में ही अहिंसा फलती-फूलती है। प्राणीमात्र के प्रति जब तक समान अनुभूति नहीं जागती तब तक समभाव भी घटित नहीं होता और बिना समभाव के अहिंसा मात्र आदर्श रहती है जीवन का व्यवहार नहीं बन पाती। अहिंसा के सूक्ष्म स्वरूप का प्रतिपादन मौलिक है—'अहिसा के माने सूक्ष्म जन्तुओं से लेकर मनुष्य तक सभी जीवों के प्रति समभाव।' यह समतामूलक अहिंसा का स्वरूप है। ऐसी विकसित अहिंसा ही व्यक्ति-व्यक्ति के बीच, समाज और राष्ट्रों के बीच जो दुराव बढ़ रहा है, विषमताएं सघन बनती जा रही हैं उसे समानता-एकता का पाठ पढ़ाने में समर्थ होती है।

मानसिक स्तर पर अहिंसा की चर्चा करते हुए गांधी ने कहा—'अहिंसा चित्त की वृत्ति भी है और तज्जात कर्म भी है, अहिंसा का अर्थ है—औरों को तकलीफ न देना।' इस निवृत्ति मूलक परिभाषा के साथ अहिंसा का सकारात्मक स्वरूप भी बतलाया 'अहिंसा अहानिकारकता की सिर्फ एक नकारात्मक स्थिति ही नहीं है बल्कि यह स्नेह की सकारात्मक स्थिति है और एक ऐसी स्थिति है जिसमें बुरा करने वालों के साथ भी अच्छा किया जाता है।'[167] उनकी यह अटूट आस्था थी कि बुराई पर विजय भलाई से ही पाई जा सकती है। गांधी के शब्दों में प्यार करने वाले से प्यार करना अहिंसा नहीं। अहिंसा उसे कहते है जब नफरत करने वाले के साथ प्यार किया जाए। वे इस प्यार के कानून को मानने और उसके साथ चलने की कठिनाई से भी वाकिफ थे। नफरत करने वाले से प्यार करना सबसे कठिन है। पर ईश्वर कृपा से इस कठिन कार्य को भी संपादित किया जा सकता है। यह उनकी अनुभूत सच्चाई थी।

सामान्यतया अहिंसा का अर्थ किसी को न मारना किया जाता है या किसी को चोट न पहुँचाना माना जाता है पर गांधी की अहिंसा इससे भी आगे है। वे कहते—'सजीव चीजों को चोट न पहुँचाना अहिंसा का एक हिस्सा जरूर है। पर इसे बहुत कम अभिव्यक्त किया गया कि अहिंसा का सिद्धांत अनिष्ट सोच, अनुचित शीघ्रता, नफरत और दूसरों का बुरा ग्रहण नहीं करता।'[168] अहिंसा का सिद्धांत नैतिक पतन, व्यवहारिक विद्रुपता और आध्यात्मिक हानि को बर्दास्त नहीं करता।

अहिंसा क्या है? इस प्रश्न के समाधान में गांधी के विविध विचार है। जिनमें नवीनता, मौलिकता और उच्चता के दर्शन होते हैं उनकी दृष्टि में 'अहिंसा प्रचंड शक्ति है। उसका पूरा तेज हम न देख सकते न माप सकते हैं। हममें से किसी-किसी को ही उसकी झांकी भर मिल जाती है।' इसकी झांकी पाने वाले साक्षात्द्रष्टा तपस्वी ने चारों और फैली हुई हिंसा में से अहिंसा देवी को संसार के सामने प्रकट करके कहा—हिंसा मिथ्या है, माया है, अहिंसा ही सत्य वस्तु है। ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह भी अहिंसा के लिए ही है। अहिंसा सत्य का प्राण हैं। उनकी दृष्टि में पूर्ण सत्य और पूर्ण अहिंसा में भेद नहीं; सत्य और अहिंसा—सिक्के की दो पीठों की भाँति एक ही सनातन वस्तु के दो पहलुओं के समान है। समकोण सब जगह एक ही प्रकार का होता है। दूसरे कोण अगणित हैं। अहिंसा और सत्य ये सब धर्मों के समकोण हैं।

विराट् अहिंसा परिकल्पना को प्रस्तुति दी—'अहिंसा एक महाव्रत है। तलवार की धार पर चलने से भी कठिन है। देहधारी के लिए उसका सोलह आना पालन असंभव है। उसके पालन के लिए घोर तपश्चर्या की आवश्यकता है। तपश्चर्या का यहाँ अर्थ त्याग और ज्ञान करना चाहिए।'[169] अहिंसा संबंधी यह सोच गांधी की अपनी निराली है। आम लोग अनुभव करते है कि अहिंसा का पूर्ण पालन

दुष्कर कार्य है। जिसकी त्याग चेतना और ज्ञान चेतना का जागरण हो गया है वही व्यक्ति इस मार्ग पर आगे बढ़ सकता है।

गांधी का स्पष्ट घोष था 'अहिंसा क्षत्रिय का गुण है।' कायर उसका पालन नहीं कर सकता। दया तो शूरवीर ही दिखा सकते हैं। जिस कार्य में जिस अंश तक दया है उस कार्य में उसी अंश तक अहिंसा हो सकता है। इसलिए दया में ज्ञान की आवश्यकता है। अंध प्रेम को अहिंसा नहीं कहते। अंध प्रेम के अधीन जो माता अपने बालक को अनेक तरह से दुलारती है वह अहिंसा नहीं, अज्ञान-जात हिंसा है। मैं चाहता हूं कि खाने-पीने की मर्यादाओं को महत्त्व न देकर लोग उसका पालन करते हुए भी अहिंसा के विराट् रूप को, उसकी सूक्ष्मता को, उसके मर्म को समझे।[170] तथ्यतः क्षात्र धर्म अहिंसा और क्षमा प्रधान था इसके अनुपालक बड़े शूरवीर थे। महावीर क्षत्रिय थे। बुद्ध क्षत्रिय थे। वे अहिंसा के अवतार पुरुष कहलाये।

अहिंसा हृदय की उच्चतम भावना है। जब तक हमारा आपसी व्यवहार शुद्ध नहीं है तब तक यह स्वीकारना होगा कि अहिंसा-भाव का स्पर्श तक नहीं हुआ है। गांधी के शब्दों में—'अहिंसा हृदय का गुण है।' इसका खुलासा था कि खाद्या-खाद्य में ही अहिंसा की परिसमाप्ति नहीं होती सूक्ष्म दृष्टि से इन वस्तुओं का ख्याल रखना स्तुत्य है। परन्तु जो अहिंसा परम धर्म है, वह इस अहिंसा से कहीं बढ़कर है। यह परम धर्म मानव का स्वभाव है। अहिंसा मनुष्य जाति का सर्वोच्च स्वभाव है। यदि वह धर्म है तो बड़ी-से-बड़ी बाधाओं का मुकाबला करके भी अपना रास्ता साफ करेगी। अहिंसा को सिद्धांत रूप में प्रस्तुति मिली—'अहिंसा एक अविचल सिद्धांत है।' इसके जरिये मानव सृष्टि का विकास हुआ है। जो इस सिद्धांत पर जितनी श्रद्धा और भक्ति से अमल करेगा उतना ही आनंद भोग कर सकेगा।

अहिंसा परमो धर्मः

यदि हम अहिंसा की साधना करना चाहते हैं तो हमें अहिंसा शब्द के अर्थ समुद्र में कूद पड़ना ही पड़ेगा। अपने पूर्वजों की जमा की हुई पूँजी में वृद्धि करना ही हमारा धर्म है। 'अहिंसा परमोधर्मः' नामक सूत्र को हम नहीं सुधार सकते परन्तु यदि हमें उस पूँजी के वारिस बने रहना है तो हमें वर्तमान में उसकी अमित शक्ति की खोज करते रहना चाहिए।[171] यह मंतव्य गांधी की सघन आस्था का द्योतक है। व्यावहारिक स्तर पर उनकी दृष्टि में इस सूत्र से बढ़कर कोई आचार नहीं है। यदि मनुष्य अहिंसा का ठीक-ठीक तात्पर्य समझ ले और जीवन के कार्यों में उसका उचित रूप से उपयोग करने लगे तो वह महात्मा और वीर हो जाता है। यदि उसका ठीक-ठीक तात्पर्य न समझा जाय और उचित उपयोग न किया जाय तो मनुष्य कायर, निर्जीव, नीच और वाहियात हो जाता है। अतः अहिंसा को परम धर्म अंगीकार कर लेने से लोक-जीवन की यह आवश्यकता अनायास सिद्ध हो जाती है।

अहिंसा विषयक सूक्ष्म सोच को शब्दों का लिबास देते हुए कहा—'अहिंसा का भाव दिखाई देनेवाले में ही नहीं है बल्कि अंतःकरण की राग-द्वेष रहित स्थिति में है। चूँकि अहिंसा आचरण का स्थूल नियम मात्र नहीं है, बल्कि मन की वृत्ति है। जिस वृत्ति में द्वेष की गंध तक न हो वह अहिंसा है' इस रूप में गांधी की अहिंसा विविध विषयी होते हुए भी बड़ी सूक्ष्म और विशाल थी। उनकी अहिंसा केवल अनाघात का ही पर्याय नहीं है, प्रत्युत वह जीवों के प्रति आंतरिक भक्ति और प्रेम को भी अभिव्यक्त करती है।

गांधी अपने को स्वप्नदर्शी नहीं एक व्यावहारिक आदर्शवादी होने का दावा करते थे। उन्होंने कहा—अहिंसा का धर्म केवल ऋषियों और महात्माओं के लिए नहीं, वह जन साधारण के लिए भी है। जिस तरह से हिंसा पशुओं का जीवन-धर्म है, उसी तरह से अहिंसा हम मानवों का।.....जिन ऋषियों ने हिंसा के बीच अहिंसा के सिद्धांत का पता लगाया, वे न्यूटन से भी अधिक सम्पन्न थे। वे वेलिंगटन से भी बड़े योद्धा थे। शस्त्रों के प्रयोग को स्वयं जानकर भी उन्होंने उनकी निरर्थकता को समझा और इस थके हुए संसार को सिखाया कि मुक्ति हिंसा के द्वारा नहीं, बल्कि अहिंसा के द्वारा ही मिल सकती है।[172] यह गांधी की अहिंसा आस्था का स्तम्भ है। कुविचार मात्र हिंसा है। मिथ्या भाषण हिंसा है। स्पष्ट है कि गांधी की अहिंसा में वैचारिक पवित्रता भी नितांत आवश्यक है, वाणी और संवेगों को भी नियंत्रित रखना अनिवार्य है। गांधी की अहिंसा अवधारणा मन, वचन और कर्म से संबद्ध है।

अहिंसा के विभिन्न रूप

गांधीवाद चिंतन में अहिंसा के मुख्य तीन प्रकार मिलते हैं—

1 निरपेक्ष अहिंसा एवं सापेक्ष अहिंसा।

2 नकारात्मक अहिंसा एवं सकारात्मक अहिंसा।

3 प्रयोगकर्त्ताओं के प्रसंग में अहिंसा के प्रकार।

निरपेक्ष अहिंसा (AbsoluteAhinsa) हिंसा का पूर्ण अभाव तथा समस्त जड़-चेतन व दृश्य-अदृश्य सृष्टि के प्रति पूर्ण प्रेम की अवस्था है। यह अहिंसा का पूर्ण विकसित रूप है जिसे सृष्टि की निरन्तर सक्रिय-सृजनात्मक आध्यात्मिक शक्ति भी कहा जा सकता है। वस्तुतः निरपेक्ष अहिंसा आत्म प्रतिष्ठित चेतना का ही लक्षण है।

मानव द्वारा केवल सापेक्ष अहिंसा (RelativeAhinsa) का पालन ही संभव है। सापेक्ष अहिंसा देश, काल एवं स्थिति के प्रसंग में मानव द्वारा अपनाने योग्य व्यावहारिक अहिंसा है। इसमें मानव अपने अथवा समाज के अस्तित्व की रक्षा की दृष्टि से हिंसा करने को मजबूर हो सकता है, किन्तु इस स्थिति में भी हिंसा कम-से-कम करने का लक्ष्य बना रहे। सापेक्ष अहिंसा की धारणा के अनुसार मानव जीवित रहते हुए न्यूनतम हिंसा से छुटकारा नहीं पा सकता है। उसके लिए सापेक्ष अहिंसा एक संभव व व्यावहारिक आदर्श है और यदि कोई व्यक्ति न्यूनतम हिंसा की मर्यादा का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करता है, तो यह माना जाना चाहिए कि वह अहिंसा-व्रत का पालन कर रहा है।[173]

नकारात्मक अहिंसा (NegativeAhinsa) के अपर नाम हैं—निषेधात्मक अहिंसा, अभावात्मक अहिंसा अथवा निष्क्रिय अहिंसा। यह सिद्धांत रूप में निरपेक्ष अहिंसा के समान हिंसा के पूर्ण निषेध में विश्वास करती है, किन्तु व्यवहार में यह सापेक्ष अहिंसा की तरह जीवन की रक्षा के लिए न्यूनतम हिंसा की मजबूरी को भी स्वीकारती है। यह उल्लेखनीय है कि सापेक्ष अहिंसा की तुलना में नकारात्मक अहिंसा में 'न्यूनतम हिंसा' के सिद्धांत का अधिक कठोरता से पालन किया जाता है। नकारात्मक अहिंसा का अनुयायी फसल की हानिकारक कीटों से रक्षा के लिए अथवा सर्प, बिच्छू आदि विषैले जन्तुओं से अपने जीवन की रक्षा के लिए अथवा मच्छरों से अपने स्वास्थ्य की रक्षा के लिए इन सबको वध के स्थान पर अन्य रक्षात्मक उपायों को अपनाना पसंद करता है।

सकारात्मक अहिंसा (PositiveAhinsa) के अन्य नाम हैं—भावात्मक अहिंसा, विधेयात्मक अहिंसा

अथवा सक्रिय अहिंसा। सकारात्मक अहिंसा का मूल लक्षण प्राणी मात्र के प्रति सक्रिय प्रेम की भावना है। 'सक्रिय प्रेम' का अर्थ है अपने से अधिक दूसरों को प्रेम करना। गांधी के शब्दों में—'वास्तविक प्रेम उन व्यक्तियों से प्रेम करना है जो तुमसे घृणा करते हों, अपने उस पड़ौसी से प्रेम करना, जिस पर तुम्हें भले ही विश्वास नहीं हो.....।[174] उन्होनें सकारात्मक अहिंसा को 'प्रेम की पराकाष्ठा' माना है।'

गांधी के अनुसार अहिंसा सर्वोच्च नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति की प्रतीक है उसके प्रमुख तीन रूप हैं।

1. जागृत अहिंसा-Enlightend Non-violence
2. औचित्यपूर्ण अहिंसा-Reasonable Non-violence
3. भीरूओं की अहिंसा-Non-violence of cowards[175]

जागृत अहिंसा वह है जो व्यक्ति में अन्तर्रात्मा की पुकार पर स्वाभाविक रूप से अपनाई जाती है इसे व्यक्ति अपने आंतरिक विचारों की उत्कृष्टता अथवा नैतिकता के कारण स्वीकार करता है। इस प्रकार की अहिंसा में असम्भव को भी संभव में बदल देने की अपार शक्ति निहित होती है। औचित्य पूर्ण अहिंसा वह है जो जीवन के किसी क्षेत्र में विशेष आवश्यकता पड़ने पर औचित्यानुसार एक नीति के रूप में अपनाई जाए। यद्यपि यह अहिंसा दुर्बल व्यक्तियों की है, पर यदि इसका पालन ईमानदारी और दृढ़ता से किया जाए तो काफी शक्तिशाली और लाभदायक सिद्ध हो सकती है। 'भीरूओं की अहिंसा डरपोक और कायरों की अहिंसा है। कायरता और अहिंसा, पानी तथा आग की भांति एक साथ नहीं रह सकते।'[305] गांधी ने कायरता को हिंसा से भी बुरा माना। वे कहते यदि मुझे दोनों में से एक को चुनना हुआ तो मैं निश्चित ही हिंसा को चुनूँगा।

अहिंसा गांधी का साध्य थी पर इसकी अखंड प्राप्ति मानव जीवन में संभव नहीं है अतः अधिकाधिक अहिंसा का पालन ही मानव-जीवन का लक्ष्य है। भावात्मक शुद्धता के आधार पर अहिंसा की त्रिपदी महत्वपूर्ण हैं—

वीरों की अहिंसा—इसे नैतिक आस्था के आधार पर अपनाया जाता है न कि अपनी असहाय अवस्था के कारण। यह अहिंसा का सर्वाधिक शक्तिशाली रूप है। यह अपने अनुयायियों में सभी प्रकार की विपदाओं का सामना करने का साहस उत्पन्न कर देती है। ऐसी अहिंसा का धारक अकेला ही सारे संसार को चुनौती दे सकता है तथा उसमें परिवर्तन ला सकता है।

नीतिगत अहिंसा-अहिंसा को नीति (Policy) का विषय मानकर व्यावहारिकता की दृष्टि से अपनाये जाने पर 'नीतिगत अहिंसा' कहा जाता है। इसे 'दुर्बलों की अहिंसा' अथवा 'निष्क्रिय प्रतिरोध' भी कहा जाता है। इसमें विरोधी पर हिंसा का प्रयोग स्वयं की दुर्बलता के कारण नहीं किया जाता, किन्तु अनुकूल अवसर होने पर हिंसा का प्रयोग किया जा सकता है। 1946-1947 में हिन्दू-मुस्लिम दंगों को देखकर गांधी ने भारत की अहिंसा को इस प्रकार का बतलाया था।

कायरों की अहिंसा—यह अहिंसा का निकृष्ट प्रकार है और वस्तुतः छिपे हुए रूप में हिंसा ही है। कायर लोग अपने शत्रु से घृणा करते हैं और उसे अधिकतम हानि पहुँचाना चाहते हैं, परन्तु अपने शत्रु पर हिंसात्मक प्रहार करने का साहस ही नहीं रखते। वे ऐसी निष्क्रिय हिंसा या कायरतापूर्ण अहिंसा को अपनाते हैं।[177] अहिंसा के ये रूप प्रगतिशीलता के द्योतक हैं। उनमें अहिंसा विचार को आदर्श और परिस्थिति के अनुरूप प्रकट करने की अद्‌भुत शक्ति थी। वे अहिंसा को मात्र सिद्धांतवादी

होकर नहीं व्यवहारिक होकर अपनाते थे। 'मेरी अहिंसा कोई किताबी सिद्धांत नहीं है जो अनुकूल अवसर देखकर बतलायी जाय। यह वैसा सिद्धांत है, जिसे मैं सभी कार्यक्षेत्रों में लाने का प्रयत्न अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में कर रहा हूं।' उनका यह प्रयत्न सबके लिए प्रेरणा बनता गया।

अहिंसा के विभिन्न प्रयोग उनकी जीवनशाला के पर्याय बनें। परिणाम स्वरूप नया दर्शन प्रस्फुटित हुआ, जिसकी झलक—अहिंसा के प्रयोग से मैं यह सीखा हूं कि असली अहिंसा का अर्थ सब लोगों का शरीर श्रम है। एक रूसी दार्शनिक वोर्ड रेफ ने इसे रोटी के लिए श्रम कहा है। इसका परिणाम यह होगा कि लोगों में आपस में गहरे से गहरा सहयोग हो.....चौंतीस साल के सत्य और अहिंसा के लगातार प्रयोग और अनुभव से मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है कि यदि अहिंसा का ज्ञानपूर्वक शरीर श्रम के साथ संबंध न होगा और हमारे पड़ोसियों के साथ रोजमर्रा के व्यवहार में उसका परिचय न मिलेगा तो अहिंसा टिक नहीं सकेगी।[178] यह रचनात्मक कार्यक्रम का रहस्य भी था।

अहिंसा की शक्ति

अणु ओर परमाणु की तुलना में अहिंसा की शक्ति श्रेष्ठ और विशाल है—'एटम बम के युग में शुद्ध अहिंसा ही ऐसी शक्ति है जो हिंसा की संपूर्ण चालों को विफल कर सकती है।' विराट् सामर्थ्य के कारण ही गांधी ने अहिंसा को प्रचण्ड शक्ति के रूप में स्वीकार किया और महाप्रचण्ड शक्ति का दर्जा दिया। उनका अभिमत था कि अहिंसा की शक्ति का कोई माप नहीं, जिसमें धीरज होगा वह जरूर उसका रस लूटेगा।

अहिंसा की अजेय शक्ति में उनका दृढ़ विश्वास था—अहिंसा और शायद अकेली अहिंसा ही विष को अमृत में बदलने की शक्ति रखती है। बहुत से लोग यह स्वीकार करते हैं कि आज के चारों ओर फैले विष को अमृत में बदलने का एक मात्र मार्ग अहिंसा ही है किन्तु उनमें इस स्वर्णिम मार्ग को अपनाने का साहस नहीं है। मैं डंके की चोट से कह सकता हूँ कि अहिंसा कभी असफल नहीं रही। लोग बेशक अहिंसा की ऊँचाई तक नहीं पहुँच सके।[179] स्पष्टतया उनकी सोच में यह दुनिया की सबसे बड़ी शक्ति है जिसका कोई विकल्प नहीं।

अहिंसा सदैव सक्रिय रहने वाली अति सूक्ष्म शक्ति है जिसकी तुलना रेडियम की शक्ति से की है। आत्मा और शरीर के भेद की उपमा के आधार पर गांधी ने अहिंसा और हिंसा शक्ति में अंतर किया है। अहिंसा सक्रिय रेडियम धातु की तरह है। उसका अति सूक्ष्म कण भी, चाहे उसे कितना ही दबाकर रखा गया हो, परोक्ष रीति से निरन्तर अपना कार्य करता रहेगा। वह समस्त मल और रोग को आरोग्यदायी वस्तु में परिणत कर देगा। इसी प्रकार थोड़ी-सी सच्ची अहिंसा भी मूक, सूक्ष्म और परोक्ष रीति से काम करती है। वह समस्त समाज में खमीर की भाँति व्याप्त हो जाती है।[180] इस अपेक्षा से अहिंसा स्वयं सक्रिय है। आत्मा मृत्यु के पश्चात् भी बनी रहती है। जिस प्रकार उसका अस्तित्व शरीर के आधार पर नहीं टिका है, उसी प्रकार अहिंसा अथवा आत्म शक्ति भी अपने विस्तार को शारीरिक या भौतिक आधारों पर अवलम्बित नहीं करती। वह स्वतंत्र रीति से काम करती है। वह देश और काल को लांघ जाती है। अहिंसा यदि एक स्थान पर भी सफलता के साथ खिल सके; तो उसकी सुगंध चारों ओर फैल जायेगी। गांधी ने अपने मंतव्य को कई बार दोहराया कि मेरी धारणा के अनुरूप तो अहिंसा किसी भी रूप या अर्थ में निष्क्रिय वृत्ति है ही नहीं।

वैज्ञानिक प्रयोगों की आश्चर्य-जनकता को पार करने वाली अद्भुत शक्ति अहिंसा में है। गांधी

के अनुसार—'प्राकृतिक नियमों के प्रयोग द्वारा आश्चर्यजनक बातें उत्पन्न करने वाले वैज्ञानिक की भांति कोई व्यक्ति प्रेम का वैज्ञानिक यथार्थ के साथ प्रयोग करें तो वह इससे अधिक आश्चर्यजनक बातें उत्पन्न कर सकेगा क्योंकि अहिंसा की शक्ति विद्युत् आदि प्राकृतिक शक्तियों से कहीं अधिक अनन्त और सूक्ष्म है।'[181] अहिंसा की अपरिमेय शक्ति में गांधी की अटूट श्रद्धा थी। वे इस संबंधी संकुचित दृष्टि का प्रतिकार कड़े शब्दों में करते 'यह समझना एक जबर्दस्त भूल है कि अहिंसा केवल व्यक्तियों के लिए ही लाभदायक है, जन-समूह के लिए नहीं। जितना वह व्यक्ति के लिए धर्म है उतना ही वह राष्ट्रों के लिए भी धर्म है।' उन्होंने राष्ट्रीय पैमाने पर अहिंसा धर्म को अपनाकर इसकी विराट् शक्ति का प्रदर्शन दुनिया के समक्ष प्रस्तुत किया।

अहिंसा धर्म और नैतिकता का पर्याय है। उसके दिव्य स्वरूप को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कैसे लाया जाए? पहल कौन करे? इन्हीं प्रश्नों के बीच युग बीते, सदियां बीती पर समाधान न मिला। गांधी एक ऐसा साहसी एवं फौलादी व्यक्ति था जिसने अहिंसा की चिरपोषित आकांक्षा को आकार दिया। विश्व इतिहास में अहिंसा का एक अभूतपूर्व अध्याय रचकर भावी पीढ़ियों का अहिंसक-नैतिक पथ दर्शन किया। सच्ची आजादी का अहिंसा ही एकमात्र ब्रह्मास्त्र है, इसे प्रयोग की भूमिका पर प्रतिष्ठित किया।

अहिंसा पर अचल आस्था

भारत की आजादी में अहिंसा की अहम् भूमिका जग जाहिर है। गांधी का यह दृढ़ विश्वास था कि भारत यदि किसी शर्त पर परतंत्रता की बेड़ियाँ तोड़ सकता है तो वह एक मात्र साधन है—अहिंसा। बल पूर्वक कहा—मैं ऐसा स्वप्न देख रहा हूँ कि मेरा देश अहिंसा द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करेगा और मैं अगणित बार संसार के समक्ष यह बात दुहरा देना चाहता हूँ कि अहिंसा का त्याग कर मैं अपने देश की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं करूँगा। अहिंसा के साथ मेरा परिणय इतना अविच्छिन्न है कि मैं अपनी इस स्थिति से विलग होने की अपेक्षा आत्महत्या कर लेना पसंद करूँगा।[182] वे अपने इस प्रण पर डटे रहे। नाना अवरोधों के बावजूद उनका यह विचार क्षणभर के लिए भी पलटा नहीं।

अहिंसा से ऊंची ताकत उनकी दृष्टि में दूसरी थी ही नहीं। उनकी अन्तर आत्मा भारत की स्वतंत्रता इस मार्ग से ही देखती थी। उनके शब्दों में 'अहिंसा से बड़ी शक्ति मनुष्य जाति को मालूम नहीं है। इसकी शक्ति या प्रभावशीलता में मेरा विश्वास अटल है और उसी भांति मेरा यह विश्वास भी अटल है कि केवल अहिंसा के ही जरिये स्वतंत्र होने की शक्ति हिन्दुस्तान में है।'[183] उनका विचार दिन में उजाले की भाँति स्पष्ट था। उन्होंने देश वासियों के समक्ष अपनी बात स्पष्ट रूप से रखी थी भारत के पास अपनी आजादी के सिर्फ दो रास्ते हैं। या तो अपनी आजादी के लिए और उस दर्जे तक, सिर्फ अहिंसात्मक साधनों का अवलंबन करे, या हिंसा के पश्चिमी साधनों को तथा उससे जो-जो बातें गृहीत होती हैं; उन सबको बढ़ाने का प्रयत्न करे। पर इस सच्चाई को न भूले कि शस्त्रीकरण की दौड़ में शामिल होना हिन्दुस्तान के लिए अपना आत्मघात करना है।

गांधी ने बलपूर्वक कहा—'भारत अगर अहिंसा को गँवा देता है तो संसार की अन्तिम आशा पर पानी फिर जाता है। जिस सिद्धान्त का गत आधी सदी से मैं दावा करता आ रहा हूँ उस पर मैं जरूर अमल करूँगा और आखिरी साँस तक मैं यह आशा रखूँगा कि हिन्दुस्तान अहिंसा को एक दिन अपना जीवन सिद्धांत बनायेगा, मानव जाति के गौरव की रक्षा करेगा।' एक ओर मानव जाति

के गौरव का प्रश्न था तो दूसरी तरफ अहिंसक लड़ाई के जरिये आजादी हासिल कर दुनिया के समक्ष एक मिसाल पेश करने की हार्दिक तमन्ना। इसी आशय से गांधी ने कहा था—'हिन्दुस्तान के पास इन मुल्कों को भेजने के लिए सिवाय अहिंसा के और कुछ नहीं है। लेकिन जैसा कि मैं कह चुका हूँ, यह अभी तक भेजने के लायक चीज नहीं हुई है; वह ऐसी तब होगी, जब हिन्दुस्तान अहिंसा के जरिये आजादी कर लेगा।'[184] अहिंसा से ही आजादी तय हो उसके पीछे उनकी मानसिकता यह भी थी कि सबसे कमजोर और छोटे मनुष्य के लिए भी स्वतंत्रता सुरक्षित रहे और यह तभी संभव है जब अहिंसा से हम स्वतंत्रता प्राप्त करें।

गांधी का यह स्पष्ट अभिमत रहा कि 'अहिंसा को केवल नीति के बजाय एक जीवित शक्ति याने अटूट ध्येय के रूप में स्वीकार न कर लिया जाय, तब तक मुझ जैसों के लिए, जो अहिंसा के हामी हैं, वैधानिक और लोकतंत्रीय शासन का दूर का स्वप्न ही है। जबकि मैं विश्वव्यापी अहिंसा का हामी हूँ, मेरा प्रयोग हिन्दुस्तान तक ही सीमित है। यहाँ उसे सफलता मिली, तो संसार बिना किसी प्रयत्न के उसे स्वीकार कर लेगा। गांधी के इस विचार को समर्थन मिला। भारत के स्वराज्य और भारत के भविष्य के संबंध में गांधी की दृष्टि तात्कालिक ही नहीं, वह दूर-दृष्टि थी। उस दूरदर्शिता को श्रद्धा के आधार पर ही थामे रखा जा सकता है। चूँकि अंग्रेजों की मानसिकता बदले इस हेतु गांधी ने सहयोगात्मक रवैया भी अपनाया पर उसके जो परिणाम निकले वे बड़े निराशा जनक थे। गांधी ने स्वीकारा—पिछली लड़ाई में हिन्दुस्तान की ओर से सर्वाधिक सहायता मिलने के बावजूद ब्रिटेन की वृत्ति रोलट एक्ट और ऐसे ही रूपों में प्रकट हुई। अंग्रेजी रूपी खतरे का मुकाबला करने के लिए कांग्रेस ने असहयोग को स्वीकार किया। जलियांवाला बाग, साइमन कमीशन, गोलमेज कांफ्रेंस और थोड़े-से लोगों की शयरत के लिए सारे बंगाल को कुचलना ये अंग्रेजी सरकार के वे कारनामे थे जिनसे भारतीय जनता का धैर्य टूटता नजर आया।

आजादी के अहिंसक आंदोलन में दूषित भावों का समावेश करने की मंशा का उदाहरण है कि लोकमान्य तिलक का कहना था कि स्वाधीनता आंदोलन में थोड़ी हिंसा हुई तो हर्ज नहीं, देश का कल्याण होना चाहिए। पर बापू इससे कभी सहमत नहीं हुए। उनका मानना था कि अहिंसा से ही देश का कल्याण हो सकता है और वे इस सिद्धांत पर डटे रहे। उनके समक्ष चुनौतीपूर्ण विचार थे कि दक्षिण अफ्रीका में बहुसंख्यक परदेशी लोगों के बीच आपकी अहिंसा चल सकती थी वहां अहिंसा ठीक थी, परन्तु भारत जैसे विशाल देश में अंग्रेजों का राज्य हटाने के लिये सब तरह के साधन काम में आ सकते हैं। अतः अहिंसा-हिंसा दोनों से काम करें। कोई माडरेट भी हो, कोई एक्स्ट्रीमिस्ट भी हो, और क्रांतिकारी भी हो, गांधी ने ऐसे अनेकशः विचारों का प्रतिकार करते हुए कहा था—जो भारत की सशस्त्र रक्षा की आवश्यकता में विश्वास करते हैं तो इसका अर्थ हुआ कि गत बीस वर्ष यों ही चले गये, कांग्रेसवादियों ने निशस्त्र युद्ध विज्ञान सीखने के प्राथमिक कर्तव्य के प्रति भारी उपेक्षा दिखायी और कहा मुझे भय है कि इतिहास मुझे ही लड़ाई के सेनापति के रूप में दुःखजनक बात के लिए जिम्मेवार ठहरायेगा। भविष्य का इतिहास कहेगा कि यह तो मुझे पहले ही देख लेना चाहिये था कि राष्ट्र बलवान की अहिंसा नहीं बल्कि केवल निर्बल का अहिंसात्मक निष्क्रिय प्रतिरोध सीख रहा है और इसलिये, इतिहासकार के कथनानुसार, कांग्रेसजनों के लिए सैनिक शिक्षा मुझे मुहैया कर देनी चाहिए थी।'[185] उनके इस आत्म निवेदन से स्पष्ट है कि स्वराज बापू की दृष्टि में कीमती चीज जरूर था मगर अन्तिम आदर्श की चीज वह नहीं थी।

स्वतंत्र और उन्नत होने के लिए एक ही मार्ग उन्नत और श्रेष्ठ था वह था सत्य और अहिंसा। गांधी अपने विश्वास को प्रकट करते मैं अहिंसा की दुहाई इसलिए देता हूं कि मैं जानता हूँ अकेले उसी के बल पर ही मनुष्य जाति सर्वश्रेष्ठ श्रेय को पहुंचती है—अगले जन्म में ही नहीं इस जन्म में भी। मैं हिंसा पर आक्षेप इसलिए करता हूँ कि जब उससे हित होता हुआ दिखायी देता है तब तो वह अस्थायी होता है, पर उससे जो बुराई होती है वह स्थायी होती हे। मैं नहीं मानता कि एक भी अंग्रेज का खून करने से भारतवर्ष का जरा भी लाभ होगा।

देश की आजादी का अंतरंग माहौल बनाने के लिए व्यक्ति-व्यक्ति में अहिंसा की निष्ठा पैदा करने के लिए गांधी ने रचनात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत किये। भारत गाँवों का देश है इसका प्रत्येक गाँव आत्म निर्भर बनें यह रचनात्मक कार्यक्रम का उद्देश्य था। जन चेतना जागृति हेतु उन्होंने गाँवों की यात्राएँ की, यद्यपि अंग्रेज इस बात से वाकीफ थे कि गांधी बड़ा चालाक व्यक्ति है और वह अहिंसा की आड़ में आजादी की तैयारी कर रहा है। पर गांधी का विशुद्ध लक्ष्य था अहिंसक चेतना का जागरण। रचनात्मक कार्य और अहिंसा के बीच तादात्म्य संबंध को जोड़ते हुए हिन्दू-मुस्लिम एकता, सर्वधर्म समन्वय, अस्पृश्यता निराकरण आदि कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। 1920 से चरखे का संबंध अहिंसा और स्वतंत्रता के साथ जोड़ा।

आजादी का मनोवैज्ञानिक तरीका अपनाते हुए दांडी कूच के समय उन्होंने पूर्ण स्वराज्य की अपनी माँग को कम करके सिर्फ ग्यारह माँगों का प्रस्ताव रखा। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि ये मांगें पूरी होगी तो आजादी हमारा दरवाजा खटखटाने लगेगी। आजादी के चक्रव्यूह को अनेक तरह से निर्मित करते हुए अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण का दुरूह कार्य अपने हाथों में लिया। उनका यह विश्वास था कि एक भी व्यक्ति में अहिंसा का पर्याप्त विकास हो गया, तो वह अपने क्षेत्र में हिंसा के बहुत व्यापक और उग्र रूप का भी मुकाबला करने का साधन ढूँढ़ सकता है।

आजादी के संघर्ष में अनेक अहिंसक आंदोलन अपनाये गये। अनेक बार गांधी ने आत्मशुद्धि हेतु उपवास किये। अनेक बार प्रमुख नेताओं सहित गांधी जेल में कैदी बनाये गये। इन प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद गांधी का अहिंसा मंत्र कभी मंद न हुआ वे प्रत्येक घटना को अहिंसा व धैर्य पूर्वक झेलते रहे। इस तथ्य को समझने हेतु एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। 'भारत छोड़ो' आंदोलन के तहत गांधी, जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आजाद, सरदार पटेल आदि कांग्रेस की कार्य—समिति के सदस्यों को 9 अगस्त 1942 को गिरफ्तार कर लिया गया तब गाड़ी में जवाहरलाल ने गांधी से प्रश्न किया—'अहिंसा में गुप्त नीति को स्थान है? उत्तर था 'नहीं।' मेरी सरदारी पूरी हुई। अब जिसे जो ठीक लगे सो करे। इतना जरूर है कि अहिंसा की चारदीवारी में रहकर जो लोग बाहर हैं, वे अपनी मति के अनुसार चलते रहें। मैं समझता हूँ कि तोड़-फोड़ का तरीका हमारे लिए नहीं है। अहिंसा के नाम पर यह सब चले तो ठीक नहीं।' जाहिर है उन्होंने छिपी नीति का कभी समर्थन नहीं किया और एक समय ऐसा भी आया जब गांधी को लगा कि कांग्रेस-समिति और मेरी नीति में फर्क आ रहा है तब उन्होंने समिति से अपना संबंध विच्छेद की घोषणा इस मंतव्य के साथ की—मेरे लिए तो अहिंसा धर्म है। मुझे उस पर अमल करना ही है, भले ही मैं अकेला रह जाऊँ। अहिंसा का प्रचार मेरे जीवन का ध्येय है, सो मुझे हर एक परिस्थिति में उसके पीछे लगे ही रहना है।

मैंने देखा कि आज ईश्वर और मनुष्य के सामने मेरी श्रद्धा की परीक्षा का मौका है इसलिए कमेटी के कार्य की जिम्मेदारी से मैंने मुक्ति मांगी। आज तक कांग्रेस की नीति के संचालन की

जिम्मेदारी मुझ पर रही है। मगर अब, जबकि उनमें और मुझमें मौलिक अंतर पाये गये, मैं ऐसा नहीं कर सकता था।[185] बापू का यह निर्णय सुनकर कांग्रेस कार्य समिति के सदस्य अपने को बेसहारा महसूस करने लगे। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की ओर से पंडित जवाहरलाल ने प्रस्ताव पेश किया। प्रस्ताव में यह लिखा गया—'भारत की स्वाधीनता के अटल अधिकारी का समर्थन करने के उद्देश्य से अहिंसात्मक तरीके से, और देशव्यापी पैमाने पर विशाल संघर्ष चालू करने की स्वीकृति देने का निश्चय करती है, जिससे देश में गत बाईस वर्षों के शांति पूर्ण संग्राम में संचित की गयी समस्त अहिंसात्मक शक्ति का उपयोग हो सके। यह संग्राम गांधीजी के नेतृत्व में होगा। यह कमेटी उनसे प्रार्थना करती है कि वे प्रस्तावित कार्यवाहियों में राष्ट्र का नेतृत्व करें।'[187] गांधी ने इस जनादेश का सम्मान करते हुए आजादी की लड़ाई के नेतृत्व का सेवक बनकर बीड़ा उठाया। जनता से आग्रह किया कि कोई किसी के प्रति मन में वैर और द्वेष भाव न रखे, सभी के प्रति प्रेम और सहानुभूति पूर्ण बर्ताव करें। हमेशा सत्य मार्ग पर दृढ़ रहे। जो बीड़ा हमने उठाया है, उसे पूरी लगन के साथ पूरा करें, ताकि न केवल इस देश में, अपितु समस्त विश्व में शाश्वत शांति और न्याय की मिशाल कायम हो सके।

गांधी ने हर एक हिन्दुस्तानी से कहा वह अपने को आजाद समझे। लड़ाई छिड़ने पर संभवतः मार्गदर्शन के लिए कोई नेता बाहर नहीं रहेंगे। इसलिए उनको ही अपना नेता बनकर अपनी जिम्मेदारी को समझकर अपना कार्यक्रम बनाकर युद्ध को चलाना होगा। देश का वातावरण गरम हो गया। गांधी ने इस तथ्य को प्रकट किया कि अहिंसा को कांग्रेस ने आज तक चलाया है उससे अबकी अहिंसा बिल्कुल अलग किस्म की है। मगर यही सच्ची अहिंसा है, और यही जगत् को तबाही से बचा सकती है। अगर हिन्दुस्तान जगत् को अहिंसा का संदेश न दे सका तो यह तबाही आज या कल आने ही वाली है और कल के बदले आज इसके आने की सम्भावना अधिक है। जगत् युद्ध के शाप से बचना चाहता है पर कैसे बचे इसका उसे पता नहीं चलता। यह चाबी हिन्दुस्तान के हाथ में है। अपनी आन्तरिक आस्था को प्रकट किया—जिसने शूरवीर की अहिंसा का शस्त्र लिया है वह अकेले सारे दुनिया की जबरदस्त-से-जबरदस्त ताकतों का एक साथ मुकाबला कर सकता है।

हर एक कांग्रेस वालों को अपने दिल से पूछना चाहिए कि क्या उनमें शूरवीर की अहिंसा को अपनाने की हिम्मत है? आदर्श स्थिति को पाने के लिए किसी चीज की जरूरत नहीं है सिवाय इसके कि अपने ध्येय के खातिर अपना तन-मन-धन खतरे में डालने की उनकी तैयारी हो। उन्होंने देश वासियों को स्वच्छ मानसिकता के निर्माण हेतु आगाह किया कि अगर कोई अकल्पित बात हुई तो अहिंसा के लिए दो मार्ग खुले हैं। एक, आक्रमणकारी का अधिकार हो जाने देना, किन्तु उसके साथ सहयोग न करना। इस प्रकार फर्ज कीजिए कि निरोका आधुनिक प्रतिरूप भारत पर आक्रमण करे, जो राज्य के प्रतिनिधि उसे अन्दर आ जाने देंगे, लेकिन उससे कह देंगे कि जनता से उसे किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलेगी। वह आत्म समर्पण के बजाय मर जाना पंसद करेगी। दूसरा तरीका यह है कि जिन लोगों ने अहिंसा की पद्धति से शिक्षा पाई है, उनके द्वारा अहिंसात्मक मुकाबला किया जाता है। वे निहत्थे ही आगे आकर आक्रमणकारी की तोपों की खाद्य सामग्री बनेंगे।

आत्म विश्वास के साथ गांधी ने कहा—मेरी आज भी वही ज्वलंत श्रद्धा है कि संसार के समस्त देशों में भारत ही एक ऐसा देश है जो अहिंसा की कला सीख सकता है और अब भी वह इस कसौटी पर कसा जाये तो संभवतः ऐसे हजारों स्त्री पुरुष मिल जायेंगे, जो अपने उत्पीड़कों के प्रति

बगैर कोई द्वेष भाव रखे खुशी से मरने के लिए तैयार हो जायेंगे। मैंने हजारों की उपस्थिति में बार-बार जोर देकर कहा है कि बहुत संभव है कि उन्हें ज्यादा से ज्यादा तकलीफें झेलनी पड़े। यहां तक कि गोलियों का शिकार होना पड़े। नमक सत्याग्रह के दिनों में क्या हजारों पुरुषों और स्त्रियों ने किसी भी सेना के सैनिकों के ही समान बहादुरी के साथ तरह-तरह की मुसीबतें नहीं झेली थीं? हिन्दुस्तान में जो सैनिक योग्यता अहिंसात्मक लड़ाई में लोग दिखा चुके हैं उससे भिन्न प्रकार की योग्यता किसी भी आक्रमणकारी से लड़ने के खिलाफ आवश्यक नहीं है—सिर्फ उसका प्रयोग एक वृहत्तर पैमाने पर करना होगा।[188] उनका यह अटल विश्वास था कि हिन्दुस्तान शुद्ध अहिंसा की नीति को अपनाये, उसे नुकसान पहुँच ही नहीं सकता। हिंसा के सहारे स्थायी समाधान निकल ही नहीं सकता।

उन्होंने यह घोषणा कि—मेरा विश्वास है कि कैबिनेट मिशन ने जिस स्टेट पेपर का एलान किया है, उसके बनाने वाले यह चाहते हैं कि हिन्दुस्तान की हुकूमत की बागडोर शान्ति से हिन्दुस्तान के नुमाइन्दों के हाथ सौंप दी जाय। लेकिन अगर हमें ब्रिटिश संगीनों और मशीनगनों के इस्तेमाल की जरूरत महसूस होती है, तो अंग्रेज यहां से जाने वाले नहीं। और अगर वे चले भी गये, तो उनकी जगह कोई दूसरी विदेशी हुकूमत ले लेगी।[189] अतः अहिंसा ही एक मात्र परतंत्रता की बेडिया तोड़ने का निरापद मार्ग है। उनका दृढ़ विश्वास था यदि हम अहिंसा द्वारा ब्रिटिश शासन से निबट सकें तो केवल हिटलर-शाही क्या स्वेच्छाधारी शासन मात्र का संसार से अंत कर सकेंगें। अपनी आस्था को बनाये रखा कि 'तलवार से ली हुई चीज उसी तरह चली भी जाती है।' क्षणभर के लिए भी गांधी का यह विश्वास धूमिल न हुआ और उन्होंने भारत की आजादी अहिंसा के बल पर हासिल कर दुनिया के समक्ष एक मिसाल पेश की।

जनतंत्र और अहिंसा

जनतंत्र और अहिंसा में अन्योन्याश्रय संबंध है। जनतंत्र के बिना न तो अहिंसा पनप सकती और न अहिंसा के बिना जनतंत्र की स्थापना हो सकती है। जनतंत्र की अपेक्षा है विचार स्वातंत्र्य। अहिंसा की अपेक्षा है सभी प्रकार के शोषण और दबाव से मुक्ति। इस दृष्टि से अहिंसा और जनतंत्र दोनों एक दूसरे के पर्याय हो जाते हैं। गांधी ने इस तथ्य का गहराई से अनुभव किया—हिंसा के द्वारा न तो स्वराज्य की स्थापना की जा सकती है और न सच्चे प्रजातंत्र की, क्योंकि हिंसा के द्वारा विरोधियों का दमन होता है या उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है जो व्यक्ति की स्वतंत्रता का अपमान है। यदि व्यक्ति की स्वतंत्रता प्रजातंत्र का सार है तो इसकी सुरक्षा और पूर्ण विकास अहिंसा में ही संभव है।[190]

संघर्ष, युद्ध और खून खराबे से प्राप्त होने वाले प्रजातंत्र को गांधी ने कभी मान्य नहीं किया। वो जानते थे जो तोप की नोक पर प्राप्त किया जाता है वह उसी बल पर छीन भी लिया जाता है। इसीलिए उन्होंने अहिंसा के द्वारा जनतंत्र प्राप्त करने का निर्णय लिया। उनका कहना था...युद्ध का विज्ञान शुद्ध और स्पष्ट अधिनायकत्व की ओर ले जाता है। एक मात्र अहिंसा का विज्ञान ही शुद्ध प्रजातंत्र की ओर ले जाने वाला है।[191] अपनी आस्था को प्रतिष्ठित कर गांधी ने दुनिया के सामने आदर्श उपस्थित किया।

अपने दो दशक के विदेशी प्रवास एवं अहिंसा की प्रायोगिक सफलता के साथ अफ्रीका से

वापस आने पर जब गांधी ने भारतीयों को पस्त अभिमान, भूख, क्लेश और पतन से पीड़ित पाया तो भीतर तक चेतना झंकृत हो उठी। उन्होंने अपने वतन के मुक्ति-कार्य को एक चुनौती और सुयोग समझकर तत्काल हाथ में लिया। साधिक तीन दशक (32 वर्ष) की कठोर अहिंसक साधना के जरिये प्रतिस्रोत में चलकर देश के सामर्थ्य और गौरव के अनुरूप नेतृत्व प्रदान कर मंजिल को पाया। आंतरिक और बाह्य संघर्ष के बावजूद आजादी का अचूक हथियार अहिंसा को ही बनाये रखना गांधी की अदम्य आत्मशक्ति का प्रतीक है, जिसकी झलक इन पंक्तियों में अंकित है—'अंग्रेज चाहते हैं कि हम अपने संघर्ष को मशीनगनों के स्तर पर लायें। परन्तु उनके पास शस्त्र हैं, हमारे पास नहीं है। उनके हिसाब से हम उन्हें तभी हरा सकते हैं, जब हम ऐसे स्तर पर बने रहें, जहाँ हमारे पास हथियार हों और उनके पास न हों।' यह मनोवैज्ञानिक तथ्य था जिसका हार्द पाना गांधी की संवेदनशील चेतना एवं पारदर्शी मेधा का विषय बना।

तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि गांधी का अहिंसा के क्षेत्र में अपूर्व योगदान है। उनकी अहिंसा साधना व्यक्तिगत आस्था से आरंभ हुई और भारत की आजादी के सफल प्रयोग से निष्पन्न हुई। इतना ही नहीं, इससे आगे अहिंसा की अनुगूँज विश्व क्षितिज पर उन्हीं की बदौलत प्रश्रित हुई। भारत को एक बार फिर से अहिंसा का देश कहलाने का गौरव मिला।

आचार्य महाप्रज्ञ का अहिंसा में योगदान

अहिंसा के सनातन सिद्धांत को मानने, जानने, अपनाने और व्याख्यायित करने वालों की एक संतति है। विभिन्न मतों, पंथों एवं परंपराओं में पोषित मनीषियों ने इसे अपनी समझ और सोच के आइने में जो प्रस्तुति दी वही उस परंपरा अथवा व्यक्ति विशेष का 'अहिंसा दर्शन' कहलाया। आचार्य महाप्रज्ञ जैन धर्म-तेरापंथ संप्रदाय से जुड़े हुए है। अहिंसा संबंधी विचार जैन मान्यतानुरूप होना स्वाभाविक है। पर, वैशिष्ट्य इस बात का है कि महाप्रज्ञ ने परंपरा को अक्षुण्ण रखते हुए अहिंसा को सामाजिक परिवेश में आधुनिक प्रस्तुति दी। उन्होंने बताया यह केवल परलोक को संवारने की प्रक्रिया नहीं है अपितु वर्तमान जीवन को सुखी और आनंदमय बनाने की कीमियां है। लक्ष्यानुगत मौलिक अहिंसा की स्थापना एवं विकासात्मक प्रक्रिया को प्रस्तुत कर नवीनता प्रदान की है। अहिंसक चेतना जागरण की नई प्रविधि का सूत्रपात कर मानव का शांतिपथ प्रशस्त किया है। आचार्य महाप्रज्ञ ने स्वतंत्र भारतीय परिवेश में अहिंसा को अनेक रूपों में सम-सामयिक प्रस्तुति देकर राष्ट्रोत्थान की विकासमूलक नई संभावनाओं को उजागर किया है।

आचार्य महाप्रज्ञ के विराट् अहिंसा दर्शन के अथाह सागर की थाह पाना एक श्रमसाध्य कार्य है। तथापि चंचुपात के रूप में एक प्रयत्न किया गया, जिसकी प्रस्तुति 'आचार्य महाप्रज्ञ का अहिंसा में योगदान' में गुंफित है।

हिंसा एक विमर्श

अहिंसा प्रतिष्ठा की पृष्ठभूमि में अनुशास्ता ने हिंसा पर पर्याप्त प्रकाश डाला। बगैर उसे जाने अहिंसा की चर्चा अपूर्ण होगी। अतः सर्वप्रथम हिंसा को विमर्श का विषय बनाया गया है। व्यापक रूप से हिंसा का अर्थ प्राण व्यपरोण-प्राण विच्छेद से गम्य किया गया है। इसका सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने बताया—किसी जीव को मारना ही हिंसा नहीं है। एक आदमी भयंकर गुस्सा करता है, वह भी हिंसा है। क्रोध करना भी हिंसा है, अहंकार भी हिंसा है।.....दूसरा कोई न हो फिर भी आदमी अपनी हिंसा तो करता ही है। इसलिए अध्यात्म के आचार्यों ने लिखा—'आया चेव हिंसा'-आत्मा ही हिंसा है। निश्चय नय की दृष्टि से आत्मा ही हिंसा है। चाहे क्रोध का संवेग हो, चाहे अहंकार की उत्तेजना हो, चाहे लोभ की उत्तेजना हो, चाहे भय की उत्तेजना हो, कोई भी उत्तेजना हो वह दिमाग में है तो हिंसा हो रही है।[192] यह हिंसा का सूक्ष्म आकलन है।

हिंसा की उन्नत परिभाषा है कि 'जो स्वयं के लिए हानिकार हो और दूसरों को भी पीड़ा

और दुःख पहुंचाए, वह हिंसा है।' ईर्ष्या बहुत बड़ी हिंसा है। हिंसा का अर्थ केवल किसी को मारना ही नहीं है। अपितु गहरे अर्थ में परिग्रह भी हिंसा है।

लोभ, ईर्ष्या, क्रोध आदि के आवेश में भी व्यक्ति दूसरों के अहित की ठान लेता है। नाना प्रकार के आविष्ट लोग समस्या पैदा करते हैं। कोई भी अनैतिक आचरण या बुराई व्यक्ति स्वतंत्र चेतना से नहीं अविष्ट चेतना से करता है। जब व्यक्ति गोली या बम की भाषा से ही समाधान की बात सोचता है तो अहिंसा की बात समझाना बहुत कठिन है। किसी अनपेक्षित कार्य की प्रतिक्रिया में यदि कहीं उग्र टिप्पणी की जाती है तो वह भी हिंसा है। महाप्रज्ञ के प्रस्तुत मंतव्य के संदर्भ में त्रैकालिक सच्चाई का निदर्शन है।

हिंसा के विभिन्न रूप

हिंसा की प्रकृति को समझने के लिए उसके विभिन्न रूपों का संज्ञान जरूरी है। हिंसा के तीन प्रकार है। एक हिंसा है आरंभजा हिंसा। खेती आदि के रूप में जो आवश्यक हिंसा की जाती है, वह आरंभजा हिंसा है। सामान्य आदमी उससे बच नहीं सकता। दूसरी हिंसा है प्रतिरोधजा हिंसा। जब कोई आक्रमण करता है तो आदमी को उसका प्रतिरोध करना पड़ता है। सामान्य आदमी उससे भी नहीं बच सकता। पर तीसरी हिंसा है संकल्पजा हिंसा। वह हिंसा निरर्थक है। दूसरे पर आक्रमण करना, किसी को कष्ट देना यह संकल्पजा हिंसा है। इससे सामान्य आदमी भी बच सकता है। यदि संकल्पजा हिंसा से भी बचा जा सके तो भी दुनिया की बहुत सारी समस्याएं समाप्त हो जाती है।[193] इस मंतव्य की पुष्टि आचार्य महाप्रज्ञ के इन विचारों से होती है।

एक हिंसा वह है जो रोजगार के लिए की जाती हैं मछली या पक्षियों को पकड़कर रोजी-रोटी कमाने वाले आदमी के लिए यह छोड़ना कठिन है। उसके लिए यह रोजी-रोटी का प्रश्न है। दूसरी हिंसा है स्वरक्षा के लिए होने वाली हिंसा, उसमें स्वयं की जिन्दगी का प्रश्न होता है। और तीसरे प्रकार की हिंसा है आक्रामक हिंसा। मेरी (महाप्रज्ञ) दृष्टि में यह तीसरे प्रकार की हिंसा को रोकना जरूरी है। मेरा प्रयास है कि आक्रामक हिंसा की विचारधारा लोगों में न हो। लोगों को ऐसा प्रशिक्षण दिया जाए, उनकी संतानों का लालन-पालन इस तरह हो कि उनके मन में आक्रामक भाव का उद्भव ही न हो।[194] यह अहिंसा के प्रस्थान की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

शरीर, वाणी, मन ये तीन हिंसा के साधन हैं। इनमें क्रमशः सूक्ष्मता होती है। इस तथ्य को उपाख्यान की शैली में प्रस्तुति देते हुए महाप्रज्ञ ने कहा—मानसिक हिंसा शेर नहीं करता, आदमी ज्यादा करता है। कहीं विस्फोट करना है, सुरंग बिछाना है, हत्या करनी है यह सब मानसिक हिंसा है। मन प्राणी के विकास की भूमिका है। जिसके पास मन है वह विकसित प्राणी है। पर आज आदमी उसका ठीक उपयोग नहीं कर रहा है। मनुष्य चलते-चलते ही पौधे की टहनी तोड़ देता है, रास्ते में पड़े जीव को कुचल देता है। व्यापार में भी धोखा-धड़ी, प्रवंचना करता है। यह सारी मानसिक हिंसा है। मनुष्य वाचिक हिंसा से अधिक मानसिक हिंसा करता है। फिर वह मानसिक तनाव में चला जाता है। मानसिक हिंसा का सबसे अधिक प्रभाव व्यक्ति के मस्तिष्क पर पड़ता है। फिर दिमाग शून्य बन जाता है। इसलिए मन की हिंसा शरीर की हिंसा से भी ज्यादा खतरनाक है। मन की हिंसा के कारण व्यक्तिगत जीवन व परिवार भी अस्त-व्यस्त बन जाता है।

हिंसा का अदृश्य रूप है मानसिक हिंसा। किसी का अनिष्ट सोचना, किसी का बुरा सोचना,

किसी के प्रति दुर्भावना रखना, यह मानसिक हिंसा है। मानसिक हिंसा आज बहुत बढ़ रही है। कायिक हिंसा तो प्रत्यक्ष दिखाई दे रही है, किंतु मानसिक हिंसा इतनी ज्यादा है कि उसकी लपट ही कायिक हिंसा के रूप में देखी जा रही है। आज जो प्रत्यक्ष हिंसा देखने में आ रही है, वह मानसिक हिंसा का ही परिणाम है, उसी का रिजल्ट है। किसी की प्रगति, किसी का विकास, किसी की समृद्धि देखकर मन में जलन पैदा होती है। जो व्यक्ति के भीतर विषैले रसायन का निर्माण कर उसे बीमार बनाते हैं। यह मानसिक हिंसा प्रमुख रूप से दुःख की नियामिका है।

वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने बताया कि आज वाचिक हिंसा की प्रबलता बढ़ रही है। दूसरों को सुख से जीने देना चाहते हैं तो वाचिक हिंसा का परिहार करना सबके लिए आवश्यक है।[195] कटु शब्दों का प्रयोग, व्यंग्यात्मक भाषा, गाली-गलौज ये वाचिक हिंसा के रूप हैं। वाचिक हिंसा मानवीय संबंधों में जहर घोलती है।

सामयिक प्रस्तुति देते हुए महाप्रज्ञ ने बताया हिंसा आज तीन रूपों में उभर रही है। एक आतंकवादी हिंसा, दूसरी साम्प्रदायिक हिंसा तथा तीसरी जातीय हिंसा। आज आंतकवादी हिंसा प्रबल है। जाहिर है यह वर्तमान व्यापी हिंसा किसी न किसी रूप से हर एक को प्रभावित कर रही है।

हिंसा के कारण

हिंसा की समस्या वैश्विक है। इसे समाहित करने की भावभूमि पर उसके व्यापक कारणों का अन्वेषण महत्त्वपूर्ण है। हिंसा के कारणों की लम्बी शृंखला है। कुछ अहंभूत का विमर्श अभिष्ट है। हिंसा बढ़ रही है, यह हमारे सामने है। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार इसके तीन प्रमुख कारण हैं–

1. हिंसा की रणनीति है।
2. हिंसा का नेटवर्क है।
3. हिंसा के प्रशिक्षण की व्यवस्था है।[196]

सारे प्रयत्न हिंसा को बढ़ावा देने वाले हो रहे है। हिंसा के लिए शस्त्रों का निर्माण, हिंसा का प्रशिक्षण। जब जापान में अणुशस्त्रों का प्रयोग हुआ तो सारा संसार हिंसा के महाप्रलय से भयभीत और आतंकित हो गया। यह घटना अहिंसा की और ध्यान केन्द्रीकरण का प्रमुख कारण बनीं। प्रश्न है क्या अहिंसा विकास की पृष्ठभूमि में यथार्थ का अन्वेषण हुआ या नहीं?[197] इस मन्थन के संदर्भ में आचार्य महाप्रज्ञ का सबसे बड़ा योगदान है हिंसा के कारणों की खोज। अहिंसा विकास पर तब तक प्रश्न चिह्न लगा रहेगा जब तक इसके कारणों की विद्यमानता रहेगी। उनका मानना था कि अहिंसा तो परोक्ष रूप से सामने आती है। 'मेरा टारगेट तो हिंसा है। मैं हिंसा की समाप्ति के लिए काम कर रहा हूँ।'

बहुत से ऐसे लोग हैं जो वैसे तो चींटी को मारने से भी डरते हैं, किन्तु अर्थ का इतना दुरूपयोग करते हैं कि जाने-अनजाने हजारों आदमियों को हिंसा की प्रेरणा देते हैं। इसलिए हिंसा के कारणों पर समग्रता से विचार बहुत जरूरी है।[198] महाप्रज्ञ ने हिंसा के कारणों की व्यापक मीमांसा की।

समय-समय पर उद्दीप्त होने वाली हिंसा को तात्विक रूप से समझने और उसे प्रस्तुति देने में महाप्रज्ञ का मौलिक योगदान है। उनके अभिमत में हमारे मस्तिष्क में दो प्रणालियाँ हैं। उसमें एक है–औदयिक प्रणाली। जब-जब मोह का उदय होता है, हिंसा उभर आती है। यह हिंसा का अपने आप में वैज्ञानिक विश्लेषण है।

हिंसा के कारणों की खोज में उन्होंने बतलाया कि 'नेगेट्विं थिंकिंग हिंसा का बहुत बड़ा कारण है। घृणा, ईर्ष्या, भय, कामवासना—ये निषेधात्मक दृष्टिकोण हैं।' ये हिंसा के अदृश्य रूप भले ही हैं पर इनका प्रभाव कम नहीं है।

जिस व्यक्ति का आहार शुद्ध नहीं होता, उसका चिंतन कभी शुद्ध नहीं हो सकता, सात्विक नहीं हो सकता। उसमें उतेजना, आवेश, भय, हिंसा आदि अप्रशस्त विचार आते रहेंगे। जो वैचारिक हिंसा के जनक है। वैचारिक हिंसा भयंकर है उसको मिटाने के तीव्र प्रयत्न जरूरी है।

कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न खड़े कियें। आदमी हिंसक क्यों बनता है? अपराध की गली में प्रवेश क्यों करता है? वे कौनसी परिस्थितियां है जो आदमी को हिंसा के लिए प्रेरित करती है? इत्यादि प्रश्नों के संदर्भ में हिंसा और अपराध वृद्धि के कारणों की मीमांसा की। प्रस्तुत कृति में हिंसा के विभिन्न कारणों की चर्चा प्रसंगतः की गई है। पर प्रस्तुत संदर्भ में महाप्रज्ञ के द्वारा निर्दिष्ट सूत्ररूप में हिंसा जनक कारणों का उल्लेख प्रासंगिक होगा—

- पारिवारिक शांत सहवास का अभाव।
- भूख और गरीबी-भूखा आदमी, चोर-लुटेरा, कातिल, आतंकवादी कुछ भी बन सकता है।
- धर्म की आड़ में जातीय और साम्प्रदायिक दंगे।
- आवेग या इमोशन की प्रबलता।

आवेश हिंसा का प्रमुख कारण है। आवेश से अविष्ट आदमी निरपराध की हत्या करता है, आक्रमण करता है और प्रतिशोध की अग्नि को प्रज्वलित करता है। परिणामतः तनाव में चला जाता है। निरंतर तनाव का जीवन जीने वाला व्यक्ति हिंसा में प्रवृत होता है। तनाव से अंतःस्त्रावी ग्रंथि तंत्र एवं नाड़ी तंत्र विकृत होता है, उससे हिंसा का जन्म होता है। तनाव, हिंसा एवं स्वास्थ्य का गहरा संबंध है।[199] जाहिर है महाप्रज्ञ ने हिंसा को व्यापक क्षेत्र में प्रस्तुति देकर जिज्ञासु का ध्यान केन्द्रित किया है।

हिंसा को नहीं चाहते फिर भी उसका विकास हो रहा है। अहिंसा को चाहते है फिर भी उसका विकास बाधित है। इस पहेली को कैसे सुलझाया जाए? हिंसा विकास और अहिंसा के विकास में विघ्न उपस्थित हो रहा है। आचार्य महाप्रज्ञ ने सात प्रमुख विघ्नों का उल्लेख किया है—

1. हिंसा का संस्कार 2. कर्म संस्कार या जीन 3. परिस्थिति या वातावरण
4. शरीरगत रसायन 5. अनास्था 6. अप्रयत्न 7. प्रशिक्षण और अनुसंधान की कमी।[200]

हिंसा के कारणभूत, अहिंसा विकास के विघ्नों का बारीकी से, मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादन किया गया है। इस संदर्भ में हिंसा वृद्धि के तथ्यों का आकलन जरूरी है। जीनवाद, मौलिक मनोवृत्तिवाद, परिवेशवाद और कर्मवाद इन चारों के समन्वय और समवाय से निष्कर्ष निकलता है कि सर्वाधिक ध्यान देने योग्य घटक है परिवेशवाद। एक बच्चे को सिनेमा, टी.वी., समाचार पत्र आदि के जरिये हिंसा को उत्तेजना देने वाले नाना दृश्य देखने, पढ़ने और सुनने को मिलते हैं, क्या उसके बारे में कल्पना की जा सकती है कि वह अहिंसा का विकास करेगा। इस तथ्य को सामयिक प्रस्तुति देते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने लिखा—हिंसा क्यों बढ़ रही है? आंतक क्यों बढ़ रहा है? अगर कारण खोजा जाए तो बहुत साफ है कि मनुष्य को जितनी हिंसा की घटनाएं, चर्चाएं और वार्ताएं सुनने को मिलती हैं उसकी तुलना में अहिंसा का एक अंश भी देखने-सुनने को नहीं मिलता।

वर्तमान में चारों ओर हिंसा के स्वर प्रबलता से सुनाई दे रहे हैं। संचार माध्यमों में हिंसा की

चर्चा, बाजार में हिंसा की चर्चा, ऐसा लगता है जैसे सारा वातावरण हिंसा के प्रकम्पनों से प्रभावित हो रहा है।

आज हिंसा के साधक तत्त्व ज्यादा हैं। काम, क्रोध, लोभ, भय, संदेह ये सब हिंसा के साधक तत्त्व हैं। हिंसा का एक मात्र बाधक तत्त्व है अध्यात्म। आत्मा का ज्ञान, आत्मानुभूति, समानानुभूति उस पर हमारा ध्यान कम जाता है। साधक तत्त्व चारों ओर बिखरे पड़े हैं।[201] इस चिंतन के आलोक में हिंसा उपरति का तत्त्व समझा जा सकता है।

पदयात्रा महाप्रज्ञ का जीवन व्रत था। अनुसंचरण के दौरान हुई तथ्यानुभूति को शब्दों में तब्दील करते हुए उन्होंने बताया—गाँव-गाँव की पदयात्रा के दौरान आम जन से मिलने से मुझे अहसास हुआ कि बेरोजगारी एवं गरीबी की समस्या दूर नहीं होने तक हिंसा का समाधान नहीं हो सकता। सामाजिक एवं आर्थिक कारणों के साथ-साथ मन के भीतर भी हिंसा के कारण हैं। अच्छे धनवान एवं समृद्ध व्यक्ति भी हिंसक अपराध करते हैं। गरीबी की अपेक्षा अमीरी ज्यादा बड़ी समस्या है। इसका मुख्य कारण मन के अंदर होने वाला आवेश है।

आवेश के चलते लड़ाई-झगड़े व अशांति के वातावरण में विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। जब व्यक्ति के पास खाने को रोटी नहीं रहता ह तो वह अपराध की ओर अग्रसर होता है। एतद् रूप हिंसा के कारणों को समझे बिना अहिंसा को समझना कठिन है।[202] इसकी पुष्टि में उन्होंने बताया—समस्या को मिटाने के लिए समस्या की जड़ तक पहुंचना होगा। आज जो हिंसा हो रही है उसके कारणों को खोजा जाए तो पता चलेगा कि हिंसा होने का मूल कारण है बेरोजगारी। हिंसा के उद्भव के लिए दो बातें जिम्मेदार है धन का अभाव और धन का प्रभाव। जिस दिन हिन्दुस्तान में कोई आदमी रोटी के लिए मोहताज नहीं होगा, सबको काम मिलेगा, काम के अनुपात में वेतन मिलेगा और मुफ्तखोरी की भावना नहीं रहेगी, उस दिन हिंसा भी अदृश्य हो जाएगी। यह यथार्थ का चित्रांकन है।

इस बात को बलपूर्वक कहा कि हिंसा से समाज में समरसता नहीं आ सकती। कुछ लोग हिंसा से सामाजिक विषमता की खाई को पाटना चाहते हैं। उग्रवादी हिंसा उसी विचार की उपज है। आचार्य महाप्रज्ञ ने उग्रवादियों को एक संदेश में कहा था कि कुछ लोगों को मारने से समाज-व्यवस्था नहीं बदल सकती। कुछ आदमियों को मार दिया गया या धन ऐंठ लिया गया इससे समाज व्यवस्था नहीं बदल सकती। आतंकवाद से भय फैल सकता है पर समाज नहीं बदल सकता। उससे घृणा फैलती है।[203] इस संदेश में समुचित समाधान की प्रतिध्वनि है जो समाज की हर इकाई को सोचने के लिए प्रेरित करती है।

अहिंसा को गतिशील बनाने में अहंभूमिका रखने वाले तथ्यों की अभिनव खोज 'हिंसा के व्यापक कारणों की' आचार्य महाप्रज्ञ की सर्वथा मौलिक है। जो उन्हें महान् अहिंसा प्रणेता सावित करती है।

अहिंसा अर्थ-स्वरूप विमर्श

आचार्य महाप्रज्ञ की अहिंसा अर्थ, स्वरूप और प्रयोग की दृष्टि से विशाल है। विशालता का हेतु है आगमोक्त आहंसा का मंथन, पूर्व के मनीषियों के विचारों का स्वीकरण और स्वानुभूति के आलोक नये-नये प्रयोगों का समाचरण एवं उनकी प्रस्थापना। उनके शब्दों में अहिंसा का सिद्धांत बहुत व्यापक है। इसका दर्शन बहुत बड़ा दर्शन है। लोग अहिंसा को केवल 'मत मारो' तक ही सीमित कर देते

हैं। मैंने बार-बार इस बात को कहा है कि अहिंसा को संकुचित अर्थों में न लें। उसके व्यापक स्वरूप को देखने और समझने का प्रयत्न करें। मानवोचित कर्म अहिंसा है, जिससे स्वयं का और दूसरों का कल्याण हों, ऐसा हर कार्य अहिंसा है।[204] इस प्रस्तुति के आलोक में उनकी विराट् अहिंसा सोच का अनुमान किया जा सकता है।

अहिंसा अमूर्त है उसे देखा नहीं जा सकता, पर आदमी के व्यवहार से उसका स्पर्श किया जा सकता है। जहाँ करुणा, अभय और प्रेम का भाव है वहाँ अहिंसा है। अहिंसा का असीम स्वरूप प्रेम का पुरस्कार है। प्रेम और अहिंसा में अद्वैत भाव है जैसा कि आचार्य महाप्रज्ञ ने लिखा—'प्रेम ही विराट् अहिंसा है, जो सर्वभूत-साम्य की भावना से उत्पन्न होता है और आत्मौपम्य की सीमा में फिर विलीन हो जाता है।'[205] अहिंसा का यह विशिष्ट रूप है। अहिंसा के व्यापक संदर्भ को प्रकट करने वाला आचार्य महाप्रज्ञ का मंतव्य है—आज के युग में मानव जाति केवल प्राणियों के प्रति ही हिंसक नहीं हो रही है बल्कि वनस्पति एवं पृथ्वी, जल, आकाश एवं हवा के प्रति भी हिंसक हो रही है। अतः आज की अहिंसा को केवल जीवदया तक सीमित नहीं रहना है, बल्कि पृथ्वी, जल, आकाश, हवा के प्रति भी अहिंसक होना है। इसलिए 'सब प्राणियों' तक ही सीमित अहिंसा के पालन के बजाय अब हमें 'सर्वत्र' अहिंसा के व्यापक पालन पर ध्यान देना होगा। कथन के संदर्भ में अहिंसा की अनंत गहराई और ऊँचाई का अवबोध है।

अहिंसा की सीधी-सी परिभाषा बतलायी—जब आदमी अपने प्रति जागता है तब ममत्व का धागा टूटता है, परिणाम स्वरूप प्राणीमात्र के प्रति प्रेम का भाव पुष्ट होता है। यही इसका आधार भूत तथ्य है। प्रकटतया अपने प्रति जागने का अर्थ है अहिंसा।

न मारना—अहिंसा है, किंतु यह अहिंसा की समग्र परिभाषा नहीं हे। अहिंसा की पृष्ठभूमि में दया, करुणा, मैत्री, समत्व सह आत्मा की अनुभूति है। इस भूमिका से अहिंसा धर्म का प्राण है। उच्चतम कक्षा में प्रवेश कर जाने के बाद अहिंसा सहज रूप में स्वीकृत हो जाती है।

सामान्यतया अहिंसा की व्याख्या विधि और निषेध रूपों में की जाती है। बुराइयों से बचाव करना, असत्यप्रवृत्ति न करना, यह निषेध रूप है। स्वाध्याय, ध्यान, उपदेश, कायिक, वाचिक, मानसिक सत्प्रवृत्तियां, प्राणीमात्र के साथ बंधुत्व भावना, आत्म शुद्धि का सहयोग करना विधि रूप है। विधि और निषेध की सीमाओं से पार महाप्रज्ञ ने कहा—'अहिंसा दुनिया का सबसे बड़ा ब्रह्मास्त्र है।' जिसका प्रयोग कभी निष्फल नहीं होता। यही वजह है आचार्य महाप्रज्ञ हर समस्या का स्थायी समाधान अहिंसा में आंकते।

साधना की उच्च भूमिका पर अहिंसा के विराट् स्वरूप को अनुभव के आलोक में प्रस्तुति मिली—'अहिंसा का अर्थ है—निर्विकार-दशा।' जब-जब चेतना में विकारभाव की तरंगे तरंगित होती है बिना प्रवृत्ति के भी हिंसा हो जाती है। इस सच्चाई का संज्ञान बड़ा कठिन है पर महाप्रज्ञ ने अनुभूति के स्तर पर अहिंसा का जो स्वरूप प्रकट किया वैशिष्ट्यवान् है। उनकी दृष्टि में अहिंसा का अर्थ है—संयम, अहिंसा का अर्थ है—अप्रमाद। जब संयम ही अहिंसा है, अप्रमाद ही अहिंसा है तब कौन-सी मानसिक हिंसा बचती है? कौन-सा बुरा भाव बचता है? संयम का अर्थ है निग्रह करना। अठारह पाप का प्रत्याख्यान करने का अर्थ है संयम।[206] प्रस्तुत मंतव्य अहिंसा के सूक्ष्म स्वरूप का निदर्शन है। जो विशेष साधना से संपृक्त भावितात्मा की चेतना को भी भावित बनाने वाला है। साथ ही जन साधारण को भी अहिंसा की दिशा में प्रेरित करने वाला है।

अहिंसा का प्रयोजन

अहिंसा की सही समझ पैदा हो यह समय का तकाजा है। अहिंसा का प्रयोजन क्या है? इसे समाहित करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा कि दूसरे को न मारना, किसी को कष्ट न देना—यह अहिंसा का एक क्षेत्र है, पूर्ण नहीं अधूरी समझ है। अहिंसा का मुख्य उद्देश्य है—अपनी आत्मा का पतन न हो। कोई किसी को मारता है। व्यवहार की भाषा में कहा जाता है कि उसने उसको मार दिया। पर आध्यात्म की भाषा में जो मारने वाला है वह स्वयं मर गया। स्वयं मरे बिना कोई किसी को नहीं मार सकता। सताने वाला स्वयं संतप्त होता है। हम अहिंसा की चर्चा दूसरों के लिए नहीं, अपने आप के लिए करें। किसी भी हिंसा प्रसंग में हिंसा करने वाले का अहित ज्यादा होता है। आत्मा, कर्म व पुनर्जन्म को सामने रखकर कोई भी निर्णय करें। इन्हें भूलने से भ्रांति पैदा होती है। व्यक्ति सही निर्णय नहीं ले सकता।

प्रतिक्रियात्मक जीवन अहिंसा को मान्य नहीं है। स्वतंत्रता के लिए व स्वस्थता के लिए जरूरी है अपने आचार व व्यवहार का सम्यक् परीक्षण करें। अहिंसा हमारा स्वभाव है। अहिंसा की दिशा में प्रस्थान के लिए हम अपने मन, वाणी व शरीर को संयत करें। अहिंसा से पहले संयम की बात करें।[207] मंतव्य के आशय स्वरूप आत्मोत्थान एवं संयम चेतना का विकास मुख्यतया अहिंसा की साधना का प्रयोजन है।

अहिंसा तेजस्वी कैसे बनें?

अहिंसा शक्ति का स्रोत है। पर, इसे पहचानने की दृष्टि पैदा हो तभी उससे लाभ उठाया जा सकता है। आचार्य महाप्रज्ञ ने बताया—'अहिंसा की ताकत हिंसा से अधिक है। अहिंसा को कहीं बाहर ढूंढने नहीं जाना है। वह हमारे अंदर ही है। बस हमें उसे पहचानना है।' जिसने भी इसकी शक्ति को पहचाना उसने अपनी अर्हता को ऊँचाईयाँ प्रदान की है। महात्मा गांधी का नाम इस दृष्टि से अग्रणी है। उन्होंने अहिंसा की शक्ति के बदौलत भारत को आजादी का वरदान नसीब करवाया।

अहिंसा की शक्ति तेजस्वी कैसे बनें? इस और ध्यान केन्द्रित करते हुए महाप्रज्ञ ने बताया—तह में जाकर देखें तो ज्ञात होगा कि हिंसा और अहिंसा का असंतुलन अन्तर्राष्ट्रीय जगत् पैदा कर रहा है। हिंसा की संहारक शक्ति बहुत बढ़ गई है। अहिंसा के छोटे-छोटे प्रयत्न उसे कम कर सकें यह संभव नहीं है। इस विषय में पुनर्विचार की आवश्यकता है। उसका कार्यक्रम आधुनिक समस्याओं के संदर्भ में आयोजित हो। शस्त्रीकरण जैसी भयंकर समस्या के प्रति विश्व चेतना को जागृत करना, आर्थिक व्यवस्था की विषमता से होने वाली हिंसा के प्रति जनता का ध्यान आकर्षित करना, मानसिक तनाव और अपराध मनोवृत्ति के मूल में पनपने वाली हिंसा का अनुसंधान करना और उनकी रोकथाम के लिए उपाय सुझाना आदि अहिंसा को तेजस्वी बनाने के उपाय हैं। अहिंसा के लिए संवेदनशीलता का विकास जरूरी है, पर आज केवल उसी के आधार पर अहिंसा को व्यापक और शक्तिशाली नहीं बनाया जा सकता है। विकास की पृष्ठभूमि में आने वाले विघ्नों को समझकर ही अहिंसा का नया आयाम उद्घाटित किया जा सकता है।[208] यह अहिंसा के क्षेत्र में कार्य करने वालों के लिए सात्विक संबल है।

अपने व्यापक अनुभव को बांटते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने यह भी बताया कि जब तक मानवीय

मस्तिष्क का परिष्कार नहीं किया जाता, दृष्टिकोण परिवर्तन का अभ्यास नहीं किया जाता, जीवन शैली का परिवर्तन नहीं किया जाता, और जीवन की प्राथमिक आवश्यकता रोटी की पूर्ति नहीं की जा सकती तब तक अहिंसा तेजस्वी बनें अथवा अहिंसा का प्रवाह निरंतर चलता रहे, यह कम संभव लगता है।[209] यह मंतव्य अहिंसा की तेजस्विता के बाबत एक स्पष्ट दृष्टि प्रदान करता है। जिसका अनुशीलन कर अहिंसा की शक्ति का वांछित विकास किया जा सकता है।

अहिंसा का विकास कैसे हो

अहिंसा एक सर्वोच्च मूल्य है। इसका विकास व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व की समृद्धि का मूल है। इसके विकास की भूमिका कितनी महत्त्वपूर्ण है। पर, जन साधारण इससे बेखबर है। इस तथ्य को प्रस्तुति देते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा—किस प्रकार अहिंसा का विकास किया जाये? आज अहिंसा के विषय पर चर्चा करने वाले भी इस बात को नहीं जानते कि अहिंसा की प्रकृति क्या है? अहिंसा कैसे काम करती है? जब तक अहिंसा के क्षेत्र में काम करने की शैली से परिचित नहीं होंगे, अहिंसा का विकास कैसे कर पाएंगे? अहिंसा कब और कैसे काम करती है? प्रश्न कर्त्ताओं का अनुभव भी इस बात के लिए गवाह देता है कि इस विषय पर जितना शोध होना चाहिए, उसका अंशमात्र भी नहीं हो रहा है? अहिंसा का सबसे ज्यादा विकास भारतवर्ष में हुआ था। गुप्तयुग हिन्दुस्तान का स्वर्णयुग रहा है।

ऊपरी तौर से अहिंसा को देखने वालों का यह स्वर था कि अहिंसा ने देश को परतंत्र बनाया। इस बात का खंडन करते हुए महाप्रज्ञ ने कहा—'भारत देश हिंसा से पराधीन बना है। आपसी ईर्ष्या, घृणा और फूट ने देश की आत्मा को छिन्न-भिन्न कर दिया। उस स्थिति में वह बाहरी आक्रमणों से परास्त हो गया।' फिर से राष्ट्र पिता महात्मा गांधी ने अहिंसा का अपराजेय शस्त्र जन साधारण के दिलों-दिमाग में थमाया। उसके सकारात्मक परिणाम निकले। तथ्यतः जहां अहिंसा पुष्ट होगी वहां परस्परता का भाव प्रबल होगा। वैसी स्थिति में देश की जनता में राष्ट्रीयता और बन्धुत्व का विकास होगा फिर किसी राष्ट्र की ताकत नहीं कि उस देश को परतंत्र बना सकें। अपेक्षा इस बात की है कि अहिंसा का सम्यक् विकास हो। नये संदर्भ में यह चिंतन होना चाहिए कि अहिंसा को कैसे सफल बनाया जाए?

अहिंसा विकास के लिए सामुदायिक चेतना का विकास जरूरी है। बिना इसके हिंसा संबंधी समस्या बढ़ती है। एतद् आशय की अभिव्यक्ति आचार्य महाप्रज्ञ के शब्दों में देखी जा सकती है। अहिंसा के विकास हेतु व्यक्तिगत स्वामित्व का सीमाकरण करें। जब तक परिग्रह की समस्या का समाधान नहीं होगा। आर्थिक नीति की सफलता नहीं होगी, गरीबी, बेरोजगारी एवं हिंसा को नहीं मिटाया जा सकता।

अहिंसा की दिशा में विकास करने हेतु संग्रह एवं उपयोग का संयम करें। व्यसनपरक चेतना का विकास न हो। नए दृष्टिकोण का निर्माण करें। आज धार्मिक आदमी दान, पुण्य तो करता है, किन्तु लोभ के कारण व्यापार में मिलावट, झूठा तोल-माप, धोखाधड़ी करके अनैतिक आचरण को बढ़ावा दे रहा है। अनैतिकता हिंसा है। इस कथन का स्पष्ट निदर्शन लोभवृत्ति के परिष्कार का है। जब तक ऐसा नहीं हो पाता अहिंसा का विकास प्रश्नायित बना रहेगा।

संघर्ष क्यों होता है? इसे सामयिक प्रस्तुति देते हुए महाप्रज्ञ ने कहा—जाति, वर्ग, समाज एवं

राष्ट्र में होने वाले संघर्ष का मूल कारण है—व्यक्ति का बहिर्बोध। जब तक व्यक्ति अंतर्बोध को जागृत नहीं करेगा तब तक अहिंसा का विकास नहीं होगा तथा समस्या का समाधान भी संभव नहीं होगा। अन्तर्बोध से ही व्यक्ति के भीतर विवेक चेतना का जागरण होगा।[210] इस तथ्य का संपोषक चिंतन रहा कि अहिंसा के विकास की दृष्टि से चिंतन और चर्चाएं बहुत चलती है। पर उससे कोई स्थाई निष्पति नहीं आती, अहिंसा के संस्कार स्थाई बनें। इसके लिए प्रयोग और प्रशिक्षण बहुत जरूरी है।

अहिंसा विकास के तीन प्रमुख आधार हैं—

1. ज्ञान का विकास।
2. आनंद अथवा सुख का विकास।
3. शक्ति का विकास।

हम बाहरी ज्ञान, बाहरी सुख और बाहरी शक्ति के विकास की आंतरिक ज्ञान, सुख और शक्ति के साथ तुलना करें। यदि अंतर का ज्ञान, सुख और शक्ति प्रकट हो जाए तो हिंसा की जरूरत ही नहीं रहेगी। अहिंसा का विकास अपने आप होगा।[211]

'अहिंसा सर्वव्यापी जातिगत नियम है।' इस प्रस्थापना के साथ आचार्य महाप्रज्ञ ने इसे व्यापक संदर्भों में प्रस्तुति दी। अहिंसा विकास की दृष्टि से कतिपय महत्त्वपूर्ण संदर्भों की ओर ध्यान केन्द्रित किया। इस बात पर बल दिया कि हिंसा मुक्त समाज की रचना करनी है, समाज में समरसता लानी है, तो मानसिक हिंसा से बचें। किसी के प्रति अन्यथा भाव न रखें। किसी के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण और नकारात्मक भाव न बनाएं। अगर इस मानसिक हिंसा को कम करने में सफल रहे तो अहिंसा अपने आप फलिता हो जाएगी।

उन्होंने बताया—मानसिक हिंसा से बचने का सबसे अच्छा सूत्र है सकारात्मक दृष्टिकोण। परिवार में एक दूसरे के प्रति मानसिक अहिंसा का व्यवहार रहे तो शायद इस धरती पर स्वर्ग का अवतरण हो जाए।[212] इस मंतव्य के आलोक में मानसिक अहिंसा का विकास अत्यंत उपयोगी है।

अहिंसा विकास के संदर्भ में अनुशास्ता की सोच बहु आयामी है। अहिंसा को केवल मारने तक सीमित न करें। अगर हम सुख चाहते हैं, शांति चाहते हैं, परस्पर में मैत्री और अच्छे संबंध चाहते हैं तो वाणी की अहिंसा का विकास करें। किसी के लिए कटु शब्द न निकले, किसी के मर्म पर अँगुली न टिकाएं, किसी पर आपेक्ष न करें, यह होगी हमारी वाचिक अहिंसा, जिसकी आज जरूरत है। ऐसा लगता है कि अभी भी भारतीय मानस में वाचिक अहिंसा का समुचित विकास नहीं हुआ है।

वाचिक अहिंसा मानवीय संबंधों में मधुरिमा भरती है। महाप्रज्ञ ने आह्वान किया— वाणी की अहिंसा पर विचार करें और नित्यप्रति जीवन में उसे महत्व दें। कुछ दिन प्रयोग और परीक्षण करके देखें तो आप पाएंगे कि दूसरों की दृष्टि में आपके प्रति कितना परिवर्तन आ रहा है। कायिक हिंसा वाणी के कारण होती है। वाणी की अहिंसा के द्वारा स्वयं अशांत नहीं बनेंगे, न दूसरों की शांति भंग होने का कारण बनेंगे।[213] इस संदर्भ में वाणी का संयम भी महत्त्वपूर्ण है। कायिक, वाचिक, और मानसिक हिंसा-अहिंसा में अन्तः संबंध है। किसी एक की अनुपालना में अन्य का संयम जरूरी है। ये अहिंसा विकास के सहकारी घटक है जो वैयक्तिक और सामूहिक उभय पथ को प्रभावित करते हैं।

दया अहिंसा का एक बहुत व्यावहारिक प्रयोग है। जिस व्यक्ति में दया आ गई वह दूसरों को सता नहीं सकता, कष्ट नहीं दे सकता। दूसरे का कष्ट सहन भी नहीं कर सकता। अधिकांश समस्याएं निर्दयता के कारण पैदा होती हैं। जिस व्यक्ति के मन में दया नहीं है, वह समस्या पैदा कर रहा है। अगर एक दया का विकास हो जाए, फिर बहुत सारी समस्याएं समाप्त हो जाएगी।[214] यह अहिंसा विकास की महत्वपूर्ण कड़ी है जो वैयक्तिक और सामाजिक उभय पथ को प्रशस्त बनाती है।

अहिंसा के विकास की प्रक्रिया अनुभव के आलोक में विकसित की गयी है। इसके विकास की पहली शर्त है—हृदय परिवर्तन। प्राचीन काल से लेकर आज तक हृदय-परिवर्तन का अपना मूल्य है। हिंसा में विश्वास करने वाले लोग भी इस बात पर बहुत बल देते हैं। जब तक 'ब्रेनवाश' नहीं किया जाता, तब तक आदमी को बदला नहीं जा सकता। महाप्रज्ञ के शब्दों में-हृदय-परिवर्तन समाधान है। मस्तिष्क की धुलाई, मस्तिष्क का परिवर्तन नितांत अपेक्षित है। इसके साथ साधन शुद्धि में विश्वास के माहात्म्य को भी भुलाया नहीं जा सकता। अहिंसा के विकास का दूसरा घटक है—अभय। जब तक अभय का विकास नहीं होगा तव तक अहिंसा की चर्चा ही व्यर्थ है। जो व्यक्ति डरता है, वह कभी अहिंसा को तेजस्वी नहीं बना सकता।[215] अहिंसा का विकास अभयावस्था में ही संभव है। अहिंसा विकास के अवान्तर कारणों में सहिष्णुता, क्षमा, परस्परता का विकास भी जरूरी है। ध्यान का प्रयोग अहिंसा विकास का मौलिक घटक बतलाया। महावीर की भाषा में 'अहिंसा के विकास का एक सशक्त साधन है—धर्म ध्यान।' जीवन में उसकी संगति अनेक विसंगतियों का उपचार है। व्यापक संदर्भों में की गई अहिंसा विकास की चर्चा जिज्ञासु के लिए आलोक पथ बन सकती है। अपेक्षा एकमात्र सक्रिय संकल्प एवं अभ्यास की है।

जीवन की कला बनामः अहिंसा

अहिंसा जीवन की प्रयोगशाला में प्रतिष्ठित हो। इस संदर्भ के आचार्य महाप्रज्ञ के व्यापक प्रयत्न मानवता के लिए अनमोल उपहार है। समग्र जीवन की कला के रूप में अहिंसा का आकलन मौलिक है—'अहिंसा प्रेमपूर्ण, शांतिमय और सरल जीवन जीने की कला है।' अहिंसा वर्तमान में शान्त जीवन जीने की प्रेरणा है। जो जीवन को आलोकित करने वाला अक्षय स्रोत है। पर जिसका अपने क्रोध पर, अहं पर, अपने छल-कपट पर, लोभ पर, भय पर, वासना आदि पर नियंत्रण नहीं होता, वह जीने की कला नहीं जान सकता। वह स्वयं दुःखी जीवन जीता है और दूसरों को भी दुःखी बनाता है। हम अपने संवेगों पर नियंत्रण कर सकें, उन्हें बेकाबू न होने दें तो समस्या कभी पैदा नहीं होगी। यह नियंत्रण का अभाव ही सारी समस्या की जड़ है। जीने की कला का सबसे अच्छा सूत्र अहिंसा और मैत्री का भाव है।[216] इसे आत्मसात् करने वाला व्यक्ति जीवन की पवित्रता को पा लेता है।

अहिंसा जीवन के हर पड़ाव में उपयोगी है। अहिंसा नहीं होती है तभी तनाव पैदा होते है, तभी पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याएं खड़ी होती है। शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के लिए इन्द्रिय निग्रह आवश्यक है। आज धार्मिक लोग आत्मा, परमात्मा, ईश्वरीय चेतना, मोक्ष आदि की वड़ी-बड़ी बातें तो करते हैं पर अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण नहीं होता है तो आदमी अपने तनावों से मुक्त नहीं हो पाता है।[217] विमर्श के संदर्भ में तनाव मुक्त, शांतिपूर्ण जीवन जीने के लिए अहिंसा जीवन में समरस बनें, यह अत्यंत जरूरी है।

जीवन व्यापी समस्याओं के समाधान की और ध्यान केन्द्रित करते हुए महाप्रज्ञ ने दिशा दर्शन दिया—'अहिंसा हमारे दैनिक जीवन में आने वाली समस्याओं को सुलझाने का सबसे सरल और सबसे शक्तिशाली उपाय है।' प्रकटतया उन्होंने धर्म के संकुचित दायरे में सिमटी अहिंसा को व्यापक क्षेत्र में प्रतिष्ठित किया है। जो अहिंसा मात्र परलोक शुद्धि के लिए अथवा आध्यात्मिक क्षेत्र में मान्य थी उसे जीवन के व्यवहार पक्ष से जोड़कर आम जनता की अहिंसा संबंधी सोच को प्रभावित किया है।

अहिंसा और शांति

कलापूर्ण जीवन में शांति का प्रतिष्ठान होता है। अहिंसा और शांति दोनों में तादात्म्य संबंध है। इसके बाबत आचार्य महाप्रज्ञ के महत्त्वपूर्ण विचार है। उन्होंने बतलाया—'मनुष्य के भावों में जब तक अहिंसा का प्रवेश नहीं होगा तब तक शांति का जन्म नहीं हो सकता। अहिंसा को पढ़ाया नहीं जाता उसे जीना पड़ता है। अहिंसा का जीवन जीने वाला ही शांति को उपलब्ध कर सकता है।' इस मंतव्य को व्यापक संदर्भ में प्रस्तुति मिली। हम मानवीय एकता में विश्वास रखते हैं क्योंकि सच्चाई तो वास्तव में एक ही है। मानव धर्म भी एक है। देश और काल की परिस्थिति से पूजा-उपासना में अन्तर आ सकता है। पर धर्म के मौलिक तत्त्व, आत्मा की पवित्रता एक ही है। यदि आदमी शांति चाहता है तो इसके सिवाय और कोई विकल्प नहीं है कि सबकी भावना का आदर करे।

मानवता एक बाजार है। उसमें हिन्दू और मुसलमान दुकानों के समान हैं। जैसे बाजार में कोई भी व्यक्ति हिन्दू की दुकान या मुसलमान की दुकान को नहीं देखता, सुलभ और सही माल को देखता है, उसी प्रकार हमें भी जातियों-संप्रदायों को नहीं देखना है अपितु अच्छे भाव को देखना है। जब भाव अच्छा होता है तभी आदमी में धर्म अवतरित होता है। तभी शांति स्थापित होती है। शांति नहीं होती है तो अर्थ-व्यवस्था भी बिगड़ जाती है। अनुशास्ता ने प्रसंग विशेष पर यह बतलाया कि अगर विकास करना है तो शांति आवश्यक है। शांति के बिना रोटी भी नहीं मिलती। जब अशांति होती है तो ज्यादा नुकसान तो गरीब लोगों को ही होता है।[218] इस मंतव्य के परिप्रेक्ष्य में जान सकते हैं कि महाप्रज्ञ ने शांतिदूत बनकर जन-जन का शांतिपथ प्रशस्त किया, वो अहिंसा के क्षेत्र में कार्य करने वालों के लिए एक मिशाल है जो सदियों तक आलोकित करती रहेगी।

अहिंसा की नीति

अहिंसा को धर्म के चोखटे से बाहर निकाल कर व्यापक रूप में प्रतिष्ठित करने वालों में महात्मा गांधी का नाम अग्रणी है, उसी कड़ी में अहिंसा यात्रा प्रणेता आचार्य महाप्रज्ञ का नाम भी शुमार है। उन्होंने अहिंसा को 'नीति नियामिका' के रूप में प्रस्तुत कर हर वर्ग के व्यक्ति का उचित पथदर्शन किया है। अहिंसा एक सर्वोत्तम दीर्घकालीन स्वस्थ नीति है। अहिंसा धर्म है। अहिंसा एक नीति है और उससे आगे वह एक कूटनीति है।

धर्म के संदर्भ में विचार करें तो कहना होगा—अहिंसा धर्म है। परिग्रह और संग्रह की चेतना से विरत व्यक्ति के लिए अर्थात एक मुनि के लिए अहिंसा धर्म है। आत्मधर्म मानकर मुनि अहिंसा की सर्वोच्च भूमिका पर आरूढ़ होने का सतत् अभ्यास करता है।

जो समाज और शासन का मुखिया है, उसके लिए अहिंसा एक नीति है। जहाँ अनेक संस्कृतियों,

जातियों के लोग रहते हैं, वहाँ कोई सर्वाधिक सफल नीति हो सकती है तो वह है—अहिंसा नीति। समाज में सहानवस्थान इसी से फलीभूत होता है।

राजनैतिक और वैश्विक संदर्भ में देखे तो अहिंसा एक नीति है, कूटनीति भी है। किसी भी राष्ट्र का अथवा विश्व का कुशलतापूर्ण ढ़ग से नेतृत्व करने के लिए अहिंसा की नीति को समझना जरूरी है। महाप्रज्ञ ने राजनैतिक दलों को परामर्श देते हुए कहा—'देश में जितनी राजनीतिक पार्टियां हैं वे अपनी नीति के साथ शब्द जोड़ दें कि अहिंसा की नीति का अनुसरण करेंगे। यदि यह अहिंसा की नीति जुड़ जाये तो काफी विग्रह समाप्त हो सकता है।' उन्होंने दृढ़ता के साथ कहा जब तक राजनीति के साथ अहिंसा का समावेश नहीं होगा, तब तक राष्ट्र का भला नहीं हो सकता। अहिंसा से व्यक्ति, समाज, राजनीति और राजनीतिक व्यवस्था प्रभावित होनी चाहिए। जब अहिंसा का इन पर प्रभाव होगा, तब बुराइयाँ अपने आप समाप्त होंगी। महाप्रज्ञ का यह मंतव्य मौलिकता से सराबोर है।

अपने व्यक्तिगत अनुभव को बटोरते हुए महाप्रज्ञ ने बताया—'जब राजनेता मुझे कहते हैं कि Honesty is the best policy तो मैं उन्हें कहता हूँ Non Voilence is the best policy अहिंसा ही सर्वोत्तम नीति है, जिसका अनुशीलन सुखी एवं समृद्ध राष्ट्र की परिकल्पना को साकार बना सकता है।'

अहिंसा कूटनीति है शासक वर्ग के लिए। जो विभिन्न विचारधाराओं, विभिन्न जातियों और सम्प्रदाय के लोगों में सामंजस्य करता है, वह दीर्घकालीन नीति से सफल हो सकता है। महात्मा गांधी ने अहिंसा का कूटनीति के रूप में प्रयोग कर राष्ट्र को नई दिशा प्रदान की थी। कूटनीति की दृष्टि से विचार करें तो महात्मा गांधी को इन शताब्दियों का सबसे बड़ा कूटनीतिज्ञ कहा जा सकता है। अहिंसा की कूटनीति के आधार पर ही वे अंग्रेजी सत्ता को समाप्त करने में सफल हुए। विभिन्न नीतियों का सम्यक् समाचरण अहिंसा विकास की नई संभावनाओं को उजागर करता है।

साम्प्रदायिक सौहार्द की भावभूमि पर महाप्रज्ञ ने नीति नियामकता की बात कही। हिन्दुओं के प्रमुख नेताओं से कहा था साम्प्रदायिकता के संबंध में हमें शब्दों के उत्तेजक प्रयोग से बचना चाहिए। भारत में जो मुसलमान हैं उन्हें बाहर नहीं निकाला जा सकता। वे भारत में ही रहेंगे। इस संदर्भ में हमें नीति से काम लेना चाहिए। बोलकर किसी बात को नहीं बिगाड़ना चहिए।[219] साम्प्रदायिक सौहार्द की प्रेरणा उन्नत राष्ट्र की धरोहर है। इसे समझने की कोशिश करें।

आचार्य महाप्रज्ञ ने इस बात पर बल दिया कि आज समग्रता से अहिंसात्मक नीति को अपनाया जाए तो बहुत बड़ा काम हो सकता है। इस संदर्भ में उन्होंने पंचसूत्री चिंतन दिया—

- अहिंसात्मक नीति का पहला सूत्र है—अनेकता में भी एकता का दर्शन। अनेकता को कभी मिटाया नहीं जा सकता। जहाँ नानात्व है, संघर्ष अनिवार्य है।
- अहिंसात्मक नीति का दूसरा सूत्र होगा उपभोग सामग्री का समीकरण। जहाँ सम्पूर्ण विश्व की 40% सामग्री को भोगा जा रहा है। तो ऐसे देश भी है, जहाँ 5% भी उपभोग सामग्री काम में नहीं ली जाती। यह असंतुलन हिंसा को भड़काता है।
- अहिंसात्मक नीति का तीसरा सूत्र होगा—व्यक्तिगत स्वामित्व का सीमाकरण।
- चौथा सूत्र होगा—सहिष्णुता।
- अहिंसात्मक नीति का पाँचवा सूत्र होगा—प्रवृत्ति और निवृत्ति का संतुलन।[220]

प्रस्तुत पंचसूत्री के अलावा भी अहिंसा की नीति को सूत्र रूप में प्रस्तुति मिली। अहिंसा की नीति का मौलिक घटक है—शांति और सामंजस्य की चेतना का विकास। अहिंसा और शान्ति दोनों

एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। विकास के लिए शान्ति एक अनिवार्य शर्त है। अहिंसा नीति का दूसरा सूत्र है—सापेक्षता। सापेक्षता के द्वारा विरोधी विचारों और धर्मों के व्यक्तियों को निकट लाया जा सकता है। जन-जीवन को आतंक से मुक्त बनाया जा सकता है।

अहिंसा विकास हेतु आचार्य महाप्रज्ञ कोरे कल्पनावादी नहीं, उनकी सोच यथार्थ परक थी। हिंसा से निपटने एवं अहिंसा के विकास के लिए दो प्रकार की नीतियों का निपात किया—अल्पकालिक नीति और दीर्घकालिक नीति।

अल्पकालिक नीति यह है कि सभी सम्प्रदाय के प्रमुख लोगों से बात करें, शांति का वातावरण बनाएँ। परस्पर वार्ता एवं समझौता करवाएं। दीर्घकालिक नीति यह है कि जो हिंसा का भाव है, उसे समाप्त करना होगा। अहिंसा का विकास श्रमसाध्य कार्य है। उसके लिए प्रशिक्षण की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि सरकार अहिंसा के प्रशिक्षण की कोई व्यवस्था करे तो अहिंसा के विकास की संभावना की जा सकती है। हिंसा की समस्या का स्थायी समाधान हो सकता है।....अहिंसा प्रशिक्षण की जो विधि विकसित की है वह आध्यात्मिक भी है और वैज्ञानिक भी। अहिंसा प्रशिक्षण के अनेक शिविरों में इस विधि का प्रयोग किया जा चुका है और उसके अच्छे परिणाम सामने आ रहे हैं।[221] मंथन पूर्वक प्रतिपादित ये नीतियां हिंसा के बढ़ते दावानल को नियंत्रित करने एवं अहिंसात्मक चेतना के विकास में अहं भूमिका रखती है। अपेक्षा है विराट् स्तर पर इन्हें अपनाने की।

संक्षेप में अहिंसा के साथ नीति नियामकता की मीमांसा आचार्य महाप्रज्ञ की मौलिक चैतसिक स्फुरणा का द्योतक है।

आचार्य महाप्रज्ञ ने अहिंसा को विराट् संदर्भों में सभी कोणों से प्रस्तुति देकर अहिंसा के विकास की नूतन संभावनाओं को उद्घाटित किया है। आचार्य महाप्रज्ञ के कालजयी कर्तृत्व से अहिंसा के स्वर्णिम पृष्ठों की संयोजना का संज्ञान तब तक अधूरा है, जब तक उनके द्वारा जीवन के अंतिम दशक में निष्पादित अहिंसानिष्ठ व्यापक कार्यों का जिक्र न किया जाए। इस तथ्य के आलोक में अहिंसा यात्रा के मौलिक संदर्भों की संक्षिप्त चर्चा समीचीन होगी।

सक्रिय उपक्रमः अहिंसा यात्रा

अध्यात्म की दिव्य संस्कृति के बदौलत भारत-भू को जगत् गुरू बनने का सौभाग्य मिला। उस धरा पर हिंसा के बादल मंडराने लगे। गांधी के गुजरात में साम्प्रदायिक दंगों का भूचाल मच गया। उस वक्त गुरू वशिष्ठ, विश्वामित्र, वाल्मीकि के आदर्श को भूलकर समस्यागत राष्ट्र के संत-महंत अपने-अपने खोहों, कुटीरों, आश्रमों, भवनों में सुस्ता रहे थे। संप्रेक्षापूर्वक राष्ट्रसंत आचार्य महाप्रज्ञ उस समय अपने पूरे संघ की शक्ति के साथ सर्वात्मना अहिंसा की प्राणप्रतिष्ठा में जुट गये।

विश्वभर में हो रहे आतंककारी हमले, साम्प्रदायिक झगड़े और आपसी मतभेदों के बीच आचार्य महाप्रज्ञ ने 5 दिसम्बर 2001 को राजस्थान के सुजानगढ़ से अहिंसा यात्रा का सूत्रपात किया। अहिंसा यात्रा गुजरात से महाराष्ट्र, दमन, मध्यप्रदेश, हरियाणा, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, पंजाब व चंड़ीगढ़ के कुछ इलाकों में होते हुए 4 जनवरी 2009 को उसी स्थान पर आकर समाप्त हुई, जहाँ से यह शुरू हुई थी। अहिंसा यात्रा ने देशभर के 87 जिलों के 2400 गांवों-कस्बो में जाकर लोगों को अहिंसा का संदेश दिया।[222] जिसकी एक झलक अहिंसा यात्रा 'नक्शे' में देखी जा सकती है।

गांवों-कस्बो की नामाँकन सूची भी जिज्ञासु 'अहिंसाः यात्रा पथ' में देख सकते हैं।

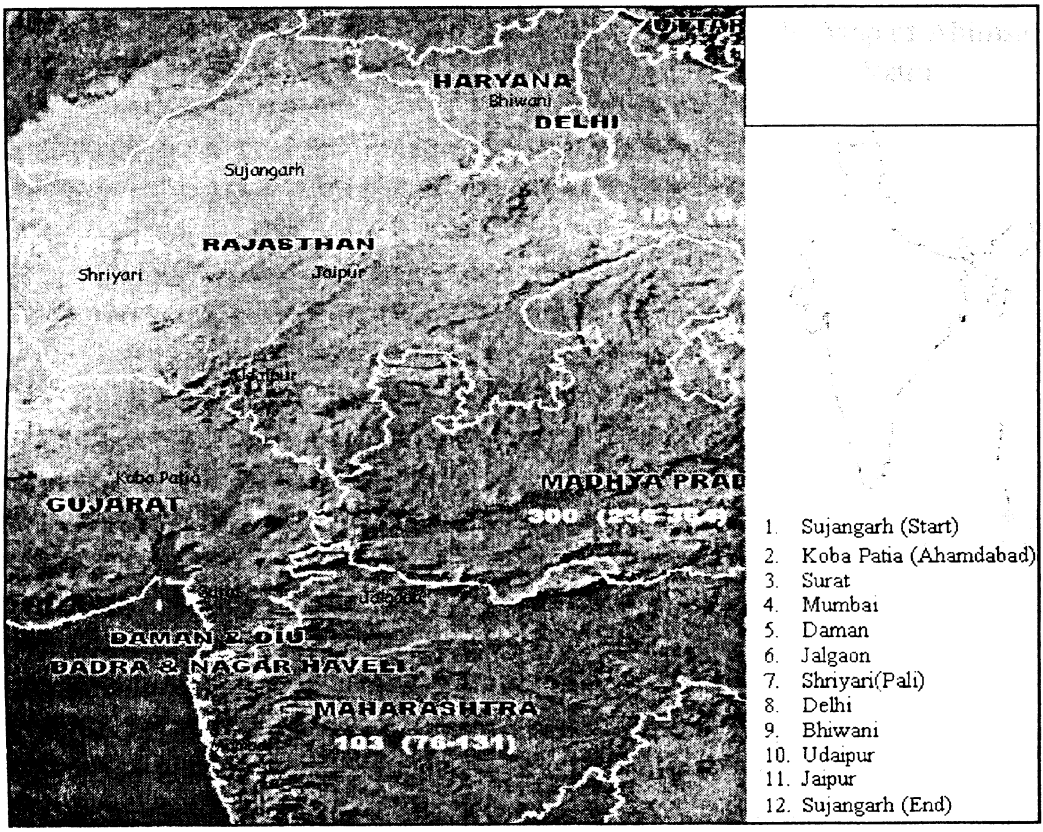

अहिंसा यात्रा के दौरान आचार्य महाप्रज्ञ ने किसानों, गरीबों, राष्ट्रनेता से लेकर आम आदमी से संपर्क साधा।

अहिंसा यात्रा के प्रथम चरण में ही सकारात्मक परिणाम आने लगे। जिसका एक नजारा 'अहिंसा यात्रा' के आगमन एवं गुजरात में भड़के साम्प्रदायिक दंगों के संदर्भ में बालोतरा (राज.) में देखा गया। सभी जाति एवं सम्प्रदायों के लोगों की रैली निकली जिसमें अहिंसा परमो धर्म, जीओ और जीने दो, हिन्दु-मुस्लिम-सिक्ख-ईसाई आपस में सब भाई-भाई आदि नारों की तख्तियां, साम्प्रदायिक सौहार्द को प्रकट कर रही थी। अनुशास्ता ने सभी को पारस्परिक प्रेम, सौहार्द, भाई चारे का संदेश दिया।

गुजरात के माहौल को देखकर यात्रापथ परिवर्तन का लोगों ने निवेदन किया। इस पर टिप्पणी करते हुए कहा—'इस समय ही गुजरात को अहिंसा यात्रा की जरूरत है।' आचार्य महाप्रज्ञ के निर्णय को साधुवाद देते हुए विभिन्न राजनैतिक लोगों ने कहा—'आचार्य महाप्रज्ञ की गुजरात यात्रा हिंसा में झुलस रही जनता की शान्तिपूर्ण जीवन जीने की अभिलाषा को सार्थक करेगी।' बालोतरा से अहमदाबाद यात्रा पथ मेन रोड़ को छोड़कर छोटे-छोटे गाँवों की लिंक रोड़ को चुना गया। प्रश्न था ऐसा क्यों किया गया? अनुशास्ता का आशय था कि ग्रामीण लोगों से भेंट हो सके और अहिंसा यात्रा पर यात्रायित सदस्यों की कसौटी भी।

अहिंसा यात्रा के पथिकों को अनुशास्ता ने सहिष्णुता और प्रवर संयम का संकल्प करवाया। सड़क के मार्ग ने सहिष्णुता की परीक्षा कर ही ली। महाप्रज्ञ के ये बोल इसके साक्षीभूत है। 'बाड़मेर से गुढ़ामालाणी तक वे एक ऊबड़-खाबड़ मार्ग को पार कर आए हैं लेकिन मार्ग इतना कष्टकारी नहीं होता जितना कष्टकारी आदमी का ऊबड़-खाबड़ दिमाग। आदमी के ऊबड़-खाबड़ दिमाग ने जातिवाद के बखेड़ खड़े किये हैं।' प्रेरक संबोध पाकर यात्रियों का उत्साह शतगुणित हो उठा, पथ की व्यथा को भूल गये।

मार्गवर्ती सैंकड़ों गाँवों के लोग आचार्य महाप्रज्ञ में साक्षात् भगवत् शक्ति का दर्शन पाकर धन्यता का अनुभव करते। अपनी दुविधा, व्यथा अथवा समस्या को सरल भाव से निवेदित करते। प्रसंग 21 जून, 2002 का है—आचार्य महाप्रज्ञ आजोल पधारे। मार्ग में कल्याणपुरा और आनंदपुरा गांव से होकर यात्रा आगे बढ़ी। ज्ञात होते ही गाँव के लोग झुंड़ के झुंड हाथ में चावल और रोली लेकर खड़े हो गए। ज्योंहि यात्रा नायक महाप्रज्ञ पधारे, उन्होंने चावल चरणों में बिखेर दिए। उन्हें समझाया गया। उन ग्रामीण लोगों ने कहा—'गुरूजी आशीर्वाद दें—वर्षा नहीं हो रही है। बिना वर्षा के फसल कैसे उग पाएगी?' गुरूदेव ने फरमाया—'अहिंसा में आस्था रखो। नैतिक मूल्यों में विश्वास रखो। सब कठिनाइयाँ दूर हो जाएगी। यही आशीर्वाद हैं।[223] ऐसे अनेक प्रसंगों से यह प्रकट होता है कि गुजरात की धरती में अध्यात्म के संस्कार, संतो के प्रति आस्था, आदर का भाव आज भी जीवित है।

अहिंसा यात्रा के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए अनुशास्ता ने बतलाया—'किसी को मत मारो' इतनी सामान्य-सी बात कहने के लिए अहिंसा यात्रा का आयोजन नहीं हुआ है। अहिंसा यात्रा का उद्देश्य है—हिंसा के मूल कारण क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, भय आदि को दूर करना। मनुष्य के मन से ही ये सभी निकल जाएं, आत्म निरीक्षण के द्वारा भाव विशुद्धि हो इस दृष्टि से अहिंसा का प्रशिक्षण देना यह अहिंसा यात्रा का लक्ष्य है। 'हमारी अहिंसा यात्रा का उद्देश्य यही है कि हिंसा की चेतना का रूपांतरण हो जाए। इससे तनाव भी कम होगा। तनाव की स्थिति में सही निर्णय नहीं किया जा सकता।' अस्सी वर्ष की उम्र के पार आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा सोद्देश्य संपादित अहिंसा यात्रा के आशातीत परिणाम निकले।

आंकड़े बोलते हैं—अहिंसा यात्रा में 80 लाख लोगों ने सहभागिता दर्ज की एवं अहिंसा को प्रतिष्ठित करने में एकजुटता का परिचय दिया। अहिंसा यात्रा ने लगभग बीस हजार किलोमीटर की दूरी नापी। यह यात्रा चूंकि पद-यात्रा थी अतः इसमें बड़े शहर तो कम आए, छोटे-छोटे गाँव अधिक आए। यात्रा नायक आचार्य महाप्रज्ञ ने जब इन गाँवों में जाकर लाखों लोगों के दुर्व्यसन छुड़वाए तो लगा कि महात्मा गांधी भारत में दुबारा प्रकट हो गए हैं।[224] अहिंसा यात्रा का यह जादुई प्रभाव था।

अहिंसक समाज निर्माण का एक सक्रिय प्रयोग बनी अहिंसा यात्रा। जिसकी सफलता का राज था—यात्रा नायक द्वारा आत्मीय संबोध पूर्वक जन-जन की संकल्प चेतना का जागरण। आचार्य महाप्रज्ञ ने व्यापक तौर पर आह्वान किया, अहिंसा यात्रा में प्रत्येक व्यक्ति संकल्प करें—

- आज मैं पूरा दिन अहिंसा का जीवन जीऊँगा।
- लड़ाई संघर्ष नहीं करूँगा।
- कटु शब्द का प्रयोग नहीं करूँगा एवं वैर विरोध नहीं करूँगा।

- श्रम प्रधान जीवन शैली एवं भावधारा की निर्मलता पर ही अहिंसा की समझ को परिपूर्ण बतलाया।

प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन संकल्प करें—मुझे शांति के साथ जीवन जीना है एवं भीतर में बदलने की जिज्ञासा को जागृत रखना है। संकल्प के साथ जीने वाला ही अहिंसा यात्रा का अधिकारी हो सकता है।[225] प्रस्तुत संकल्प चेतना की बदौलत लाखों लोगों ने अपनी जीवन की धारा को मोड़ा।

अहिंसा यात्रा के माध्यम से जनता को अहिंसा का स्वर सुनने को मिला। यह यात्रा जहाँ से गुजरी, सौहार्द का वातावरण देखने को मिला। अनुशास्ता ने चाहा कि हर व्यक्ति तीन संकल्प ग्रहण करें—

1. मैं अनावश्यक हिंसा नहीं करूँगा।
2. मैं निरपराध प्राणी की हत्या नहीं करूँगा।
3. मैं उपभोग सामग्री का संयम करूँगा।[226]

आचार्य महाप्रज्ञ के आह्वान पर सैंकड़ों लोगों ने इस संकल्पत्रयी को स्वीकार किया। बहुविध रचनात्मक कार्यों को निष्पादित करते हुए अहिंसा-यात्रा प्रगतिशील बनती गई। अहिंसा की अनुगूँज फिर से विश्वव्यापी बनीं।

अहिंसा यात्रा की गूँज—अहमदाबाद में

अहिंसा के पुनरूद्धारक आचार्य महाप्रज्ञ गुजरात की धरा पर उस समय अहिंसा-यात्रा का काफिला लेकर पहुँचे, जिस समय पूरा गुजरात साम्प्रदायिक विद्वेष की लपटों में झुलस रहा था। इस नाजुक स्थिति में आचार्य महाप्रज्ञ ने शांति स्थापन की वल्गा अपने हाथों थामी। व्यापक जन संपर्क के जरिये हर व्यक्ति के दिलों-दिमाग में प्रेम, सौहार्द, भाईचारे की आस्था कायम कर सकारात्मक सोच पूर्वक अहिंसा की शक्ति से परिचित किया।

अहिंसा यात्रा के अहमदाबाद आगमन पर मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, सिन्धी आदि विभिन्न धर्मों से जुड़े लोगों के साथ गणमान्य नेता सह अहमदाबाद के महापौर श्री हिम्मत भाई पटेल ने स्वागत पूर्वक अहिंसा यात्रा की प्रासंगिकता व्यक्त की। अमन-चैन और शांति की आकांक्षा संजोए महापौर ने 'की ऑफ सिटी' आचार्य महाप्रज्ञ के चरणों में समर्पित की। मुख्यमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने कहा—'गुजरात की धरती पर पूर्ण मनोयोग से स्वागत करता हूँ। आपके प्रवास से गुजरात को नई शक्ति मिलेगी, नया विश्वास पैदा होगा। अहिंसा यात्रा की विचार क्रांति से गुजरात की विचारधारा में बदलाव आएगा।' स्वागत समारोह में उपस्थित सभी चिंतनशील लोगों ने अहिंसा-यात्रा आगमन को शांति का वरदान माना। इस अवसर पर अहिंसा यात्रा नायक आचार्य महाप्रज्ञ ने सभी की चेतना को झनझनाते हुए, कुछ स्मरण करवाते हुए नई प्रेरणा का संचार किया।

उन्होंने कहा—'आचार्य हेमचंद्र और महात्मा गांधी ने गुर्जर भूमि पर संवेदनशीलता की लहर पैदा की थी, गुजरात की पावन भूमि पर पुनः समता, संवेदनशीलता की चेतना जागे। गुजरात अहिंसा का निर्यात कर सकने की क्षमता प्राप्त करें। जिससे धर्म संस्कृति और मानव जाति का कल्याण हो सके।'[227] महाप्रज्ञ ने अहमदाबाद आगमन के लक्ष्य को स्पष्ट करते हुए हिंसा के कारणों की खोज एवं उचित समाधान में अपनी शक्ति को नियोजित किया।

गुजरात में हुए दंगों के संबंध में अहिंसा यात्रा प्रचेता ने टिप्पणी करते हुए समझाया—अगर

हिन्दू और मुसलमान भाई आपस में लड़ते रहेंगे तो वे सदा गरीब ही होंगे। साथ ही देश को भी आर्थिक रूप से नुकसान होगा। विकास के लिए शांति आवश्यक है। दोनों कौमों के बीच शांति स्थापित करने हेतु प्रत्येक सम्प्रदाय के लोग एक-दूसरे सम्प्रदाय के लोगों के उत्सवों में विघ्न न डालें। शांतिपूर्ण सह अस्तित्व के माहौल में ही धर्म का उदय होता है। लड़ाई-झगड़े में धर्म का विकास नहीं होता। शांतिपूर्ण जीवन का सूत्र है मानव का मानव के प्रति प्रेम।[228] इस आत्मीय निवेदन को सभी ने स्वीकार किया।

अहिंसा-शांति के मिशन को साकार करने हेतु आचार्य महाप्रज्ञ ने अहमदाबाद के दंगाग्रस्त क्षेत्रों का भ्रमण कर सांप्रदायिक सौहार्द और सद्भाव को प्राणवान बनाया। उन्हीं प्रयत्नों की बदौलत जगन्नाथ यात्रा और मोहर्रम व ईद के पर्व पूर्ण शांति, सौहार्द और सहयोग के माहौल में मनाये गये। जो अहिंसा यात्रा के अहमदाबाद प्रवास के स्वर्णिम आलेख बन चुके हैं।

अहिंसा यात्रा के दौरान किसी भी प्रेरक अवसर पर प्रदत्त आचार्य महाप्रज्ञ का मार्मिक उद्बोधन श्रोता के अन्तर्मन को हिलाकर रख देता। इसका उदाहरण है—प्रेक्षा विश्व भारती (कोबा) में समायोजित 15 अगस्त का स्वतंत्रता दिवस। आचार्य महाप्रज्ञ ने अपने प्रेरक उद्बोधन में कहा—'पंद्रह अगस्त का दिन स्वतंत्रता प्राप्ति का दिन है। हर्ष और उल्लास का दिन है। इस दिन को हमें यदि अधिक मूल्यवान बनाना है तो उसका उपाय है—आत्मनिरीक्षण। व्यक्ति दूसरे को ज्यादा देखता है, अपने आप को बहुत कम देखता है। प्रश्न होगा कि पचपन वर्षों में हमने क्या किया? जहाँ थे, वहीं है, या आगे बढ़े हैं? कुछ अर्थों में कहा जा सकता है कि हम जहाँ थे वहीं हैं। बल्कि और पीछे हटे हैं। गरीबी हमारे राष्ट्र की बड़ी समस्या है। गरीबी का ग्राफ ऊपर उठा है। आज समस्या के संदर्भ में चिन्तन तो होता है, पर जो दीर्घकालीन प्रयास होना चाहिए, वह नहीं हो पाता। किसी भी समस्या को एकाग्रता, संकल्पशक्ति और नीति मत्ता के आधार पर सुलझाया जा सकता है तथा अहिंसक चेतना का विकास किया जा सकता है।[229] इस मंतव्य के आलोक में अनुशास्ता के प्रेरणाप्रबोध को, राष्ट्रव्यापी समस्या-समाधान स्वरूप को परखा जा सकता है।

मानवता के मसीहा आचार्य महाप्रज्ञ ने अहिंसा-यात्रा के माध्यम से साम्प्रदायिक सौहार्द की जो अलख जगाई उसकी आवाज विश्व व्यापी बनी। इस उपक्रम की प्राणवान उपलब्धियों का आकलन सुधी पाठक एक घटना प्रसंग से स्वयं कर सकते हैं। अनुशास्ता के शब्दों में—'अभी अहमदाबाद में हमने देखा, वहाँ दंगा हुआ तो उसके परिणाम गरीब लोगों को ही भोगने पड़े। अहमदाबाद में कोलकाता से हवाई जहाज से एक भाई दर्शनार्थ आये। जब वे हवाई अड्डे से टैक्सी में बैठकर कोबा आने लगे तो रास्ते में टैक्सी ड्राइवर ने जो मुसलमान था, पूछा—आप कहाँ जायेंगे? भाई ने बताया कि हम कोबा में हमारे गुरूजी के दर्शन करने के लिए जा रहे हैं। ड्राइवर भाव विह्वल होकर बोला—कोबा वाले महाराज ने तो हमें बचा दिया। वो नहीं आते और शांति नहीं होती तो हम तो घर पर बैठे-बैठे ही भूखे मर जाते। बड़े लोगों ने तो अशांति फैला दी। हमें ही उसका परिणाम भोगना पड़ा।'[230]

प्रेक्षा विश्व भारती-कोबा में 28 अगस्त को कांग्रेस अध्यक्ष श्रीमति सोनिया गांधी ने अहिंसा यात्रा प्रणेता आचार्य महाप्रज्ञ के दर्शन कर प्रसन्नता व्यक्त की—'आधुनिक काल में अहिंसा के सबसे बड़े पुजारी महात्मा गांधी की जन्मभूमि में शामिल होने का मौका मिला।' उन्होनें अपने संभाषण में कहा—'....समाज में अहिंसा के मूल्यों की स्थापना, सांप्रदायिक सद्भावना राष्ट्रीय एकता और

आपसी भाईचारे की बात फैलाने की दृष्टि से आज इस अहिंसा यात्रा का महत्त्व बहुत ज्यादा है। मुझे पूरा विश्वास है कि महाप्रज्ञ जी के प्रयास के जरिये समाज को सही दिशा में चलाने में निश्चित रूप से सहायता मिलेगी।' सोनिया जी ने इस अवसर पर अपने भावपूर्ण शब्दों में विस्तृत विचार रखें।

आचार्य प्रवर ने कहा—'अहिंसा यात्रा की जरूरत केवल महाप्रज्ञ को ही नहीं है। उसकी जरूरत पूरे राष्ट्र और विश्व को है। आज जिस प्रकार हिंसा बढ़ रही है, उससे पूरा राष्ट्र चिंतित है। यदि पूरे राष्ट्र में अहिंसा की यात्रा चले तो पूरा राष्ट्र फलफूल सकता है।' अहिंसा के प्राण प्रतिष्ठापक आचार्य महाप्रज्ञ ने यह भी कहा—'केवल दंडनीति के सहारे राष्ट्र अच्छा नहीं चल सकता। उसके साथ हृदय-परिवर्तन दोनों का समन्वय हो जाए तो राष्ट्र बहुत अच्छा चलेगा।'

अहिंसा यात्रा के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए आचार्य प्रवर ने कहा—'आज जिस प्रकार हिंसा बढ़ रही है, अहिंसा यात्रा की प्रासंगिकता सिद्ध हो रही है। इस बढ़ती हिंसा में भावी पीढ़ी का कल्याण कैसे हो? उसके लिए अहिंसा यात्रा जरूरी है। इसलिए मैं कहना चाहता हूँ कि अहिंसा यात्रा की जितनी जरूरत महाप्रज्ञ को है, उतनी ही जरूरत कांग्रेस अध्यक्षा सोनिया गांधी को है, पूरे राष्ट्र को है। इसके विना राष्ट्र का कल्याण नहीं हो सकता, राष्ट्र आगे नहीं बढ़ सकता।'[231] इस अवसर पर विस्तार पूर्वक विचार रखें। धर्म नेता और राजनेता ने समान रूप से अहिंसा को उपादेय बतलाया।

गुजरात का सुप्रसिद्ध अक्षरधाम, स्वामीनारायण के मंदिर में 24 सितम्बर को हुए आतंकवादी हमले में भव्य मंदिर मौत का मंजर बन गया। बेगुनाह लोगों को गन की गोलियों ने भून डाला। गुजरात में रहने वाले मुसलमानों में एक भय व्याप्त हो गया। गोधरा कांड का दर्दनाक दृश्य उनकी आंखों के सामने तैरने लगा। उन्हें भय था कि इस बार साम्प्रदायिक हिंसा फैली तो हमें दर-दर भटकना पड़ेगा, जीना दुभर हो जायेगा। एक मुस्लिम महिला ने कहा—'यह आतंकवादी हमला ऐसे वक्त हुआ है जब हम सबसे बुरे वक्त से गुजर रहे हैं।' पूरे गुजरात में एक दहशत फैल गई। अवसर पर आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने अपना एक संदेश दिया—

'अक्षरधाम पर आतंककारियों ने जो नर संहार किया। वह बहुत लोमहर्षक घटना है, ...समाज के हर वर्ग को इस घड़ी शांति और सौहार्द बनाये रखना आवश्यक है। इस घटना को साम्प्रदायिकता का रूप न दिया जाए। परस्पर शांति, सद्भाव बना रहे।' इस संदेश की आत्मा ने मंत्र शक्तिवत् चमत्कार किया। गुजरात की धरती पर कोई अमानवीय घटना घटित नहीं हुई। पारस्परिक सौहार्द और सद्भाव में न्यूनता की बजाय उत्कर्ष देखा गया। आचार्य महाप्रज्ञ के प्राणवान अहिंसक प्रयत्नों का ही परिणाम था कि मुस्लिम समाज ने स्थान-स्थान पर ऐसे बैनर लगाए जिसमें इस घटना की निन्दा की। सौहार्द व देशभक्ति को उजागर करने वाले बैनर मुस्लिम समाज ने लगाये, उनपर लिखा था—

'मजहब नहीं सिखाता आपस में वैर रखना।
हिन्दी है हम वतन है हिन्दुस्तां हमारा।।'

मुस्लिम समाज के प्रमुख लोग मिलकर प्रमुख स्वामी नारायण के पास गए। इस घटना की निंदा की।

इस कठिन समय में लोगों ने इस सच्चाई का अनुभव किया कि आतंकवादी की कोई जाति नहीं होती। न उसका कोई धर्म होता है। हिंसात्मक घटनाओं को जन्म देने वाले कुछ अपराधी तत्त्व होते हैं। कोई भी पूरी जाति उसकी जिम्मेदार नहीं होती।

अपूर्व शांतिमय माहौल के निर्माण में अहिंसा यात्रा भी एक निमित बनी। अहिंसा यात्रा का उद्देश्य भी यही है व्यक्ति के भीतर अहिंसक चेतना को जगाना, नैतिक मूल्यों की निष्ठा पैदा करना। जनता का स्वर था—'गांधी के बाद गुजरात की धरती पर पुनः अहिंसा के स्वरों को बुलन्दी देने वाले ये दूसरे महापुरूष हैं।'

इस अवसर पर अहिंसा यात्रा प्रणेता आचार्य महाप्रज्ञ ने एक संदेश स्वामीनारायण मन्दिर के प्रमुख को 24.09.2000 को दिया—

आदरणीय श्री प्रमुख स्वामी महाराज,

'अक्षरधाम जैसे पवित्र स्थल पर जो हुआ, उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता, उसकी वेदना का ही अनुभव किया जा सकता है। आपने इस अवसर पर शांति बनाये रखने का जनता से अनुरोध किया। यह आपकी महानता व क्षमाशीलता का सूचक है। इस प्रकार की घटनायें हमें महसूस कराती हैं कि अहिंसा की शक्ति का विश्वास होना चाहिए और अहिंसा जन-जन में प्रतिष्ठित होनी चाहिए। पूर्ण सहानुभूति के साथ'—

प्रस्तुत संदेश के प्रति कृतज्ञता भरे शब्दों में शा.नारायण स्वरूपदास (प्रमुख स्वामी महाराज) ने प्रत्युत्तर संदेश भेजा। इस पूरे घटना चक्र की प्रतिक्रिया में अहिंसा की जो सकारात्मक भूमिका रही उसकी सौरभ विश्वभर में फैली। एक बार फिर महाप्रज्ञ के रूप में गांधी को याद किया गया।

प्रेक्षा विश्वभारती, कोबा प्रवास में अनुशास्ता के हर उच्छवास और शब्द में अहिंसा की अनुगूँज अनुभव की गई। जिसका निदर्शन दीपावली पर प्रदत्त उनके संभाषण में भी मुखरित हुआ—'दीपावली मनाने का अधिकारी कौन? जो सब प्राणियों को अपनी आत्मा के समान समझता है। वह व्यक्ति ही भीतर के प्रकाश को जागृत कर सकता है। भीतर का अंधकार है अन्याय, शोषण, हिंसा, और मूर्च्छा। इन्हें तोड़कर ही भीतर के प्रकाश को प्रकट किया जा सकता है।'[232] वहाँ उपस्थित बड़ी संख्या में श्रद्धालुओं को अहिंसक चेतना जागरण का सक्रिय बोध पाठ मिला।

यह भी जाने, अहमदाबाद-कोबा में अहिंसा यात्रा प्रणेता का चातुर्मासिक प्रवास उपलब्धियों भरा आशातीत रहा। गांधी के मिशन को नया बल मिला। देश के गणमान्य नेता वर्ग—राष्ट्रपति डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम, उप प्रधानमंत्री श्री लालकृष्ण आडवाणी, कांग्रेस अध्यक्षा सोनिया गांधी, अंतर्राष्ट्रीय लॉयन्स क्लब के अध्यक्ष कुमार पाल भाई देसाई। इसी तरह ख्याति लब्ध राजनेता, धर्म नेता, मीडिया से जुड़े व्यक्तियों, सम्प्रदाय विशेष के व्यक्तियों ने आचार्य महाप्रज्ञ से समयोचित मार्गदर्शन प्राप्त किया।

अहिंसा के कार्य को स्थायित्व प्रदान करने की दृष्टि से सैंकड़ों मौलिक कार्यक्रम संपादित हुए। यथा—कन्या प्रशिक्षण शिविर, व्यक्तित्व विकास का प्रशिक्षण, प्रेक्षा ध्यान शिविर, उपासक श्रेणी शिविर, अहिंसा समवाय सेमीनार, दस दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय प्रेक्षा ध्यान शिविर, मानवीय एकता सम्मेलन आदि। एक वाक्य में अनुशास्ता आचार्य महाप्रज्ञ ने गांधी के गुजरात में अहिंसा की लहर पैदा की।

अहिंसा की अलख मुंबई में—

करुणा, मैत्री और सद्भावना की मशाल थामे, अहिंसा-यात्रा का परचम फहराते हुए आचार्य महाप्रज्ञ देश की प्रथम महानगरी मुंबई पहुंचे। 25 जनवरी से 13 मई, तक का प्रवास संपूर्ण मुंबई 'अहिंसक चेतना जागरण' अभियान के रूप में रहा। इस उपक्रम से सरसब्ज हुए महत्त्वपूर्ण क्षेत्र-कुर्ला, कांदिवली,

कालबादेवी रोड़, गोरे गांव, घाटकोपर, चेम्बूर, चर्चगेट, ठाणे, डोंबीबिली, दादर, दहीसर, बड़ाला, बोरिवली, वडाला-माटुंगा, भांडुप, मलाड, मुलुंड, वर्ली शांताक्रुज, अंधेरी, उल्लासनगर, नई मुंबई आदि। प्रवास के दौरान वैचारिक दृष्टि से अहिंसा की अपूर्व क्रांति घटित हुई। 'मोहमयी नगरी' के फिल्मी स्टार लोगों से लेकर राजनीति पर्यंत के लोग एवं विभिन्न संप्रदायों से जुड़ें महानुभाव अहिंसा यात्रा के अभियान से ने केवल परिचित हुए अपितु इसके साथ जुड़कर नई चेतना का अनुभव किया।

व्यस्त जिंदगी के बावजूद लोगों ने अपने समय का नियोजन पूर्वक अहिंसा यात्रा नायक के सान्निध्य का भरपूर लाभ उठाया। अहिंसा और शांति की आवाज झुग्गी झोंपड़ियों से लेकर गगनचुम्बी अट्टालिकाओं तक पहुँची। विशेष समारोह में मुंबई वासियों को अभिप्रेरित करते हुए अनुशास्ता ने कहा—'पूरे धर्म संघ के साथ मेरा मुंबई आने का उद्देश्य यही है कि दुनिया अनुशासन, व्यवस्था व मर्यादा के मूल्य को समझे। इसके बिना कभी अहिंसा का विकास नहीं हो सकता। जब सहन करने की शक्ति जागेगी तभी अहिंसा की बात संभव बन पायेगी।'[233] यह संदेश सभी के हृदय को छूने वाला, आत्मानुशासन की प्रेरणा देने वाला साबित हुआ।

मुंबई प्रवास में महामहिम राष्ट्रपति श्री ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने आचार्य महाप्रज्ञ के दर्शन 14 फरवरी रात्रि के लगभग नौ बजे किये। विशेष वार्तालाप में राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के साथ-साथ अध्यात्म, विज्ञान, पर्यावरण, शिक्षा, अहिंसा, शांति आदि विषयों पर गंभीर मंत्रणा हुई। संतों से भेंट की। बाहर निकलते ही मीडिया के लोगों ने घेर लिया। पत्रकारों का सवाल था—आपको यहाँ क्या मिला? राष्ट्रपति जी का उत्तर था—Enlightenment and New Energy 'नया प्रकाश और नई ऊर्जा।' तीर्थंकर तुल्य सन्निधि का अनुभव कराने वाला आचार्य महाप्रज्ञ का अहिंसा-शांति का पर्याय व्यक्तित्व ही कुछ ऐसा था जो देश के प्रथम नागरिक को भी अभिप्रेरित करता।

15 फरवरी को आचार्य महाप्रज्ञ और राष्ट्रपति जी के बीच वार्तालाप 65 मिनट तक चला। राष्ट्रपति जी ने महत्वपूर्ण जिज्ञासाओं का समाधान महाप्रज्ञ से किया। इस दो दिवसीय वार्तालाप को प्रतिष्ठित समाचार पत्रों ने 'अध्यात्म और विज्ञान का शिखर सम्मेलन' शीर्षक से सचित्र प्रकाशित किया।

'शिक्षा में नैतिक मूल्य' विषयक सेमिनार के उद्घाटन पर डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने आचार्यवर के साथ हुई विस्तृत चर्चा का उल्लेख करते हुए कहा—'जागरूक, नैतिक एवं सुसंस्कृत मानव के निर्माण हेतु मैंने आचार्य श्री जी से मार्ग दर्शन प्राप्त किया। उन्होंने आचार्य महाप्रज्ञ के कथन को उद्धृत किया—'घृणा विहीन, हिंसा रहित और शांतिपूर्ण मस्तिष्क के विकास के लिए नए वातावरण का निर्माण जरूरी है।'[234] चर्चा में अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय पर ध्यान केन्द्रित किया गया। अहिंसा विकास की राहें एक बार फिर से उजागर हुई आध्यात्मिक और राजनैतिक सर्वोच्च मनीषियों के सह-संवाद से।

विभिन्न सम्प्रदायों के महत्त्वपूर्ण लोगों ने आचार्य महाप्रज्ञ के अहिंसानिष्ट प्रयत्नों की मूल्यवत्ता को आंका। अपनी विशेष रूचि प्रकट की। इसका अंदाजा इस प्रसंग से लगाया जा सकता है। राज्य मंत्री नसीम खान के साथ प्रमुख मुस्लिम संगठनों के पदाधिकारियों ने आचार्य महाप्रज्ञ से मुलाकात करके अहिंसा के उनके मिशन में शामिल होने की इच्छा व्यक्त की।

ऑल इंडिया जमायते उमेला हिन्द के साथ विभिन्न संगठनों के पदाधिकारी उत्तर मुंबई-मलाड पहुँचे। अहिंसा यात्रा प्रचेता ने प्रेरक उद्बोधन में कहा—संवाद की कमी की वजह से धार्मिक समुदायों

में तनाव पैदा हो रहा है। लगभग सभी ने एक स्वर से हिंसा के लिए असमाजिक तत्वों और समाज को बांटकर राजनीति करने वाले नेताओं को जिम्मेदार बतलाया। ऐतिहासिक बैठक में यह आशा व्यक्त की गई कि राजनीति ने जो खाई पैदा की है, धार्मिक विद्वान उसे पाटेंगे और अमन चैन, खुशहाली व उन्नति का मार्ग दिखाएंगे।

मुफ्ती सलीम अख्तर ने आचार्य महाप्रज्ञ से आह्वान किया कि वे हिन्दू और मुस्लिम समुदायों के प्रमुख नेताओं से चर्चा करें और गलतफहमियों को दूर करने का प्रयास करें।

मुस्लिम कौन्सिल ऑफ इंडिया के अध्यक्ष इब्राहिम ताई, युसुफ पंजाबी, नवी अख्तर आदि अनेक मुस्लिम बंधुओं ने साम्प्रदायिक सौहार्द पर वार्तालाप किया। आचार्य महाप्रज्ञ ने बताया कि साम्प्रदायिक सौहार्द के बिना कोई भी देश प्रगति नहीं कर सकता। आज आवश्यकता है कि हिन्दुओं और मुस्लिमों में सौहार्द का भाव जागे। उपद्रव करने वाले तत्त्व तो बहुत थोड़े होते हैं, पर उसका परिणाम अनेक लोगों को भुगतना पड़ता है। आवश्यकता है कि सभी जगह साम्प्रदायिक सौहार्द का विकास किया जाए।

नजफिया हाऊस के प्रिंसिपल मौलाना अहमद आबिदी ने आचार्य महाप्रज्ञ से भेंट की और शांति के प्रयत्नों की बार-बार प्रशंसा करते हुए अपने इस विश्वास को दोहराया कि आज जो हालात हैं वे अवश्य बदलेंगे और अवश्य ही आदमी सन्मार्ग पर आएगा। अहिंसा यात्रा के महा अभियान से प्रबुद्ध मानस में परिवर्तन की आशा जगी।

बालकेश्वर स्थित मुस्लिम बोहरा समाज के सर्वोच्च धर्म गुरू डॉ. सय्यदना मोहम्मद साहब के सैफी महल में बोहरा समाज के आग्रह पर आचार्य महाप्रज्ञ पधारे। वहाँ 52वें धर्मगुरू डायलमुतलक डॉ. सय्यदन मोहम्मद बुर्रहानुद्दीन साहब से मुलाकात हुई। अहिंसा यात्रा नायक ने प्रसन्नतापूर्वक कहा कि अमन चैन की बहाली में बोहरा समाज का बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान है। 52वें धर्मगुरू ने आचार्य श्री की अहिंसा यात्रा की कामयाबी के लिए तहेदिल से तारीफ करते हुए दुआ की।

दोनों धर्मगुरूओं ने एक स्वर से स्वीकार किया कि 'झमेला, झंझट, दंगा-फसाद से देश की तरक्की रुकती है और व्यवसाय में विघ्न पड़ता है। लड़ाने वाले तो बड़े लोग होते हैं, लेकिन बेचारा गरीब ही मारा जाता है। झगड़े का बड़ा कारण मौजूदा राजनीति है। महज कुर्सी के लिए मारकाट और हायतौबा मची है। सभी धर्म गुरूओं को एक होकर अमन का कार्य करना चाहिए। अत्यंत सौहार्दपूर्ण मिलन से सभी को अहिंसा शांति के लिए कार्य करने की प्रेरणा मिली।

महाप्रज्ञ विद्या विहार प्रांगण में महाराष्ट्र युनाईटेड नेशन्स की ओर से 'ईराक युद्ध के संदर्भ में' धर्माचार्यों की एक परिचर्चा के समायोजन में आचार्य महाप्रज्ञ ने मुस्लिम, सिक्ख, पारसी समाज के प्रतिनिधि धर्माचार्यों व प्रमुख लोगों के बीच कहा 'उपासना पद्धति भिन्न-भिन्न हो सकती है लेकिन मानवीय एकता के प्रति संवेदना जरूरी है। भगवान महावीर ने कहा था एक दूसरे को सहन करो। परस्पर सौहार्द एवं भाई चारा रहे।'

सभी ने आचार्य महाप्रज्ञ के विचारों का स्वागत किया। अपनी-अपनी बात कही। मौलाना मुस्ताफ हमन आजमी ने कहा 'आप जैसे धर्म गुरू जो रोशनी दे रहे हैं, वह हमारे लिए चिराग है। अगर ऐसे महात्मा लुप्त हो जाए तो दुनिया शैतानों की बस्ती बन जाए।' मानवता के लिए इस उम्र में (तैयांसी के पार) आचार्य महाप्रज्ञ की अहिंसा यात्रा को उपहार स्वरूप बतलाया।

अहिंसा यात्रा प्रणेता आचार्य महाप्रज्ञ के भिंडी बाजार आगमन पर, मुस्लिम बंधुओं ने न केवल

मस्जिद के सामने मंच बनाकर आचार्य श्री का स्वागत किया अपितु कुरान की प्रति भी भेंट की। मुसलमानों का उत्साह मूर्तिमान हो रहा था। आचार्य श्री ने उस उत्साह को देखकर कहा—'अहिंसा और समझौते की वृत्ति रहे तो भारत विकास की दिशा में छलांग भर सकता है।' मुस्लिम बंधुओं द्वारा संपादित स्वागत-भेंट अहिंसा यात्रा की ऐतिहासिक घटना है।[235]

मुंबई-ठाणे अहिंसा यात्रा के आगमन पर महाराष्ट्र सरकार के मंत्री राजेन्द्र दर्डा अहिंसा ध्वज हाथों में उठाये जुलूस की अगवानी कर रहे थे। मुसलमान लोगों की खासी संख्या देखकर उन्होंने बड़े आश्चर्य के साथ कहा—'जैन आचार्य के स्वागत में मुसलमान इतनी बड़ी संख्या में कैसे उपस्थित हो रहे हैं?' आचार्य श्री ने बताया कि 'अहिंसा यात्रा में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। राजस्थान से लेकर यहाँ पहुँचने तक हजारों-हजारों मुसलमान हमारे संपर्क में आये हैं। हम भी मुसलमानों की दरगाहों और संस्थानों में जाते रहे हैं।' यह साम्प्रदायिक सौहार्द अहिंसा यात्रा की अनुपम उपलब्धि रही है।

मुम्ब्रा में दरगाह के स्थानीय मुस्लिम बंधुओं ने अहिंसा यात्रा का स्वागत किया। उन्होंने इस उपक्रम को मानव-मानव के बीच सौहार्द स्थापन का एक महत्वपूर्ण प्रयत्न बतलाया। इस अवसर पर आचार्य महाप्रज्ञ ने सभी बंधुओं को यह सामूहिक प्रतिज्ञा करवाई कि 'मैं जाति सम्प्रदाय के नाम पर लड़ाई दंगा नहीं करूँगा।' सभी ने संकल्प के साथ अपने आप को शक्तिशाली अनुभव किया।

अहिंसा यात्रा के मुंबई प्रवास से साम्प्रदायिक सौहार्द का वातावरण बना। हिंदू और मुसलमानों में संवाद बना, परस्परता की दूरी पटी, कड़ी जुड़ी। हर स्थान पर पहुँच कर आचार्य महाप्रज्ञ ने प्रेम, अहिंसा और भाईचारे का संदेश दिया। सचमुच गांधी का नोआखली का हिंदू-मस्लिम एकता दृश्य आचार्य महाप्रज्ञ के मार्फत मुंबई में साकार हो उठा। गृह राज्यमंत्री कृपाशंकर के शब्दों में—'मुंबई में आचार्य श्री महाप्रज्ञ जी के प्रवास के कारण पूरी तरह शांति बनी रही।'[236] यह उनका व्यक्तिशः और सामूहिक अनुभव रहा।

अहिंसा यात्रा के स्थायी प्रभाव की दृष्टि से अहिंसा निष्ठ आयोजनों की मुंबई में झड़ी लग गयी। जिनमें प्रमुख है—अहिंसा संवाय मंच सेमिनार (1-3 मार्च), आचार्य तुलसी महाप्रज्ञ विचार मंच, संस्कृति संगम की ओर से-पंच दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन का समापन महाप्रज्ञ सभागार में आयोजित-40 देशों के 210 प्रतिनिधियों ने आचार्य महाप्रज्ञ के विचारों को प्रेरणा पाथेय के रूप में स्वीकारा। 'शिक्षा के नैतिक मूल्य' सेमिनार, प्रेक्षाध्यान शिविर पंचदिवसीय, त्रिदिवसीय राष्ट्रीय अहिंसा समवाय सम्मेलन, अहिंसा प्रशिक्षण केन्द्र का उद्घाटन, पंच दिवसीय प्रेक्षाध्यान शिविर में प्रबुद्ध वर्ग का संगम—जज, बैंक मैनेजर, डॉक्टर, वकील, चार्टेड एकाउंटेट, ग्रेजुएट विशेष रूप से। सर्वांगीण विकास के परिप्रेक्ष्य में 'समग्र विकास के मूलवर्ती प्रयोग'-त्रिदिवसीय परिसंवाद। गुरूकुल के 200 शिक्षक-शिक्षिकाओं का त्रिदिवसीय जीवन विज्ञान शिक्षण-प्रशिक्षिण में चार सौ से अधिक शिक्षकों ने अपनी सहभागिता दर्ज की। चार्टेड एकाउंटेट्स की संगोष्ठी। डाक्टर्स संगोष्ठी, मुंबई पुलिस उच्च अधिकारियों के बीच पुलिस प्रशासन में 'तनाव प्रबंधन' विषय पर चर्चा, जिसमें चौबीस पुलिस स्टेशनूस के लगभग 150 पुलिस अधिकारियों ने भाग लिया। पुलिस जवानों का प्रेक्षाध्यान प्रयोग, 'सर्व धर्म सद्भाव सम्मेलन' आदि विभिन्न आयोजनों के साथ छोटे-मोटे अनेक कार्यक्रम अहिंसा यात्रा के बेनर तले सम्पादित हुए। जो आचार्य महाप्रज्ञ की प्राणवान अहिंसा की समय-समय पर हामी भरते रहेंगें। अहिंसा-शांति और साम्प्रदायिक सौहार्द की दृष्टि से मुंबई में अहिंसा यात्रा ने कीर्तिमान कायम किया।

अहिंसा यात्रा नायक ने मुंबई आने का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा—'भ्रष्टाचार को मिटाना सरकार का काम है। हमारा एकमात्र काम तो भीतर की चेतना को जगाने का है। हम परिवर्तन की बात नहीं करते, रूपांतरण की बात करते हैं। भ्रष्टाचार को मिटाने लिए केवल ऊपर-ऊपर काम करने से नहीं चलेगा। अपितु जड़ तक जाना पड़ेगा। चेतना को परिवर्तन करने का काम जड़ का काम है।'[237] इसकी संपूर्ति में आचार्य महाप्रज्ञ ने विभिन्न क्षेत्रों के पदाधिकारियों से वार्तालाप किया, संपर्क साधा। नामों की लम्बी सूचि है। अनेक महानुभावों ने अहिंसा यात्रा मिशन को समझा, मानवता के नाम कुछ नया करने का संकल्प भी संजोया। एक वाक्य में देश की आर्थिक महानगरी में अहिंसा यात्रा के प्रवास से मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा को बल मिला। विमलमूर्ति युवाचार्य महाश्रमण (आचार्य महाश्रमण) जी ने मुंबई के अनेक क्षेत्रों में स्वतंत्र विहरण कर अहिंसा यात्रा की कड़ी से संपूर्ण मुंबई को जोड़ा।

सूरत (गुजरात) में अहिंसा यात्रा

अहिंसा-शांति, सांप्रदायिक सद्भावना की मिसाल कायम करते हुए अहिंसा यात्रा का कारवाँ हीरों की नगरी सूरत पहुँचा। हीरों की चमक में चुंधियाये मानव को आंतरिक चमक का एहसास कैसे हो? इस सत्य को समझाने में आचार्य महाप्रज्ञ ने अपनी शक्ति को नियोजित कर व्यापक प्रयत्न किया। जिसके सकारात्मक परिणाम अहमदाबाद, मुंबई में अनुभव किये गये। सूरत एक महानगर है। इसमें अनेक उपनगर हैं। एक-एक उपनगर ही अपने आपमें नगर जैसी प्रतीति करवाते हैं। इस विशाल नगर में अहिंसा की रश्मियों को फैलाने का महान संकल्प संजोकर ही अनुशास्ता पधारे।

सूरत की सीमा में प्रवेश करते ही प्रथम उद्बोधन में ही आचार्य महाप्रज्ञ ने लोगों की चेतना को जगाते हुए कहा—हमारी भक्ति में आप जितना उत्साह दिखाते हैं इतना और ऐसा ही उत्साह अपने दैनिक जीवन, खानपान, आजीविका तथा दिनचर्या में भी दिखाएं तो जीवन का कयाकल्प हो सकता है। ध्यान रहे—धर्म की कसौटी धर्म स्थान नहीं बाजार, दुकान और ऑफिस में होती है। मैं धर्म की उपासना को महत्व देता हूँ, किन्तु नैतिकता शून्य धर्म की उपासना को महत्व नहीं देता।

बहुत सारे लोग मुझसे आशीर्वाद चाहते हैं। पर केवल आशीर्वाद चाहने से क्या होगा जबकि आत्मशुद्धि नहीं। आत्मशुद्धि के अभाव में आशीर्वाद भी फलदायी नहीं होता। सूरत के प्रवेश द्वार पर मैं सबसे यही कहना चाहूँगा कि इस शहर से अनैतिकता की सफाई कर दी जाए। अनैतिकता का कचरा कहीं रह न जाए। आज सफाई की दृष्टि से सूरत की मिशाल दी जाती है। पर यहाँ नैतिक मूल्यों का इतना विकास हो कि लोगों में किसी प्रकार की अप्रमाणिकता, हिंसा आतंक न रहे। इसी में हमारे चातुर्मास की सफलता है।[238]

इस अवसर पर यह भी कहा—'सूरत केवल व्यापार के लिए ही प्रसिद्धि नहीं पाये अपितु ईमानदारी के लिए भी प्रसिद्धि पाये, केवल बाहरी स्वच्छता के लिए ही प्रसिद्धि नहीं पाये आंतरिक स्वच्छता के लिए भी प्रसिद्धि पाये, केवल बड़ी-बड़ी इमारतों का शहर ही नहीं बनें अपितु यहाँ की झोंपड़ पट्टी में भी विकास की ज्योति जले।' इस भावना के अनुरूप अणुव्रत समिति सूरत के कार्यकर्ताओं ने पोश लोगों की बस्ती सिटी लाइट में भव्य तेरापंथ भवन के पास बसी पनास झोपड़पट्टी के विकास की योजना बनाई। स्वच्छता, स्वस्थता, शिक्षा, व्यसनमुक्ति तथा रोजगार की दृष्टि से उन्नति पर ध्यान दिया गया। अपनी सीमा में कार्य गतिशील बना।

पनास बस्ती में अणुव्रत समिति सूरत तथा निर्मल जनरल हॉस्पिटल की ओर से श्रमजीवियों के लिए मेडीकल शिविर आयोजित किया गया। दक्ष डॉक्टरों की टीम ने न केवल सैंकड़ों लोगों के शरीर का परीक्षण ही किया अपितु दवाईयाँ भी प्रदान की। आँखों की बीमारी वाले लोगों को चश्में प्रदान किए तथा उनके ऑपरेशन की भी व्यवस्था की गई।

बस्ती के लोगों को स्वावलंबी बनाने के लिए रजनीकांत भाई द्वारा बस्ती में स्वरोजगार के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। अणुव्रत विश्व भारती की ओर से चार सिलाई मशीनें देने की घोषणा की गई। सैकड़ों भाई-बहन विभिन्न प्रकार के स्वरोजगारों का प्रशिक्षण ले रहें हैं। आंशिक अहिंसा प्रशिक्षण की व्यवस्था, सफाई प्रशिक्षण के साथ सुसंस्कार भरने का पुनीत कार्य भी जारी है।

मानव सेवा समिति के अध्यक्ष जयलाल जी ने सूरत के 25 झोंपड़पट्टी विस्तारों के 64000 परिवारों में स्वच्छता अभियान पुरस्कार समारोह का आयोजन तेरापंथ सभा भवन में किया। इस स्वच्छता अभियान से 3 लाख लोग लाभान्वित हुए। आचार्य महाप्रज्ञ ने समारोह में अंतर की सफाई पर भी बल दिया।[239] सचमुच जरूरत मंद लोगों ने अहिंसा यात्रा प्रणेता को जीवन का उद्धार करने वाला भगवान ही माना। उनकी प्रेरणा से ही यह चमत्कारनुमा कार्य घटित हुआ। हमने ईसा को नहीं देखा पर जरूरत मंद के लिए आचार्य महाप्रज्ञ ईसा से कम नहीं थे। अपनी सीमा में रहकर जितना संभव था उन्होंने संपादित किया। आचार्य महाप्रज्ञ की गतिशील अहिंसा का ही प्रभाव था कि उनकी दृष्टि में राजनेता और दीनहीन, अमीर और गरीब सभी के लिए उचित स्थान था। अपितु यह भी अनुभव किया गया कि वे असहाय के प्रति बहुत संवेदनशील थे। उनकी संवेदनशीलता का ही सबूत है स्वयं राष्ट्रपति महोदय उनके पास राष्ट्रव्यापी समस्याओं का समाधान पाने उपस्थित हुए।

आचार्य महाप्रज्ञ की पुष्कल चेतना से अभिभूत होकर राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम महोदय अपना 73 वाँ जन्मदिन मनाने के लिए उनकी सन्निधि में सूरत पहुँचे। देश की धार्मिक सद्भावना को मजबूती देने के लिए 15 अक्टूबर 2003 को सूरत में आचार्य महाप्रज्ञ के नेतृत्व में एक शीर्ष धर्म गुरूओं का सम्मेलन मानसिक एकता (यूनिटी ऑफ माइंड) आयोजित हुआ। तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम दो दिवसीय सम्मेलन के अध्यक्ष थे। इस सम्मेलन में हुई चर्चा को सूरत आध्यात्मिक घोषणा (एसएसडी) के नाम से जाना जाता है। जिसके तहत पाँच सूत्रीय कार्य योजना बनाई गई। पँचसूत्री कार्य योजना का संक्षिप्त रूप निम्न रूपों में जाना जा सकता है–

- शांति प्रार्थना एवं विभिन्न धर्मों से संबंधित मौलिक सत्यों के मूलभूत संदेशों को प्रसारित करने के लिए प्रति मास भारत के सभी हिस्सों में नाना धार्मिक मतों के सम्मेलन आयोजित करेंगे।
- शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल तथा व्यवसाय और रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के लिए भी अनेक कार्यक्रम धार्मिक परियोजना के रूप में प्रारंभ करेंगे, जिससे गरीबों को सहयोग मिले।
- धार्मिक समुदायों द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं में, अन्य संप्रदायों के बच्चों के लिए कुछ प्रतिशत अंश रखा जाए तथा उन्हें धार्मिक सहिष्णुता, सदाचार के साथ मूल्यपरक शिक्षा प्रदान की जाये।
- 'अंतः साम्प्रदायिक परिसंवाद' के अन्तर्गत विभिन्न धर्मगुरूओं, आध्यात्मिक आचार्यों तथा विद्वानों के बीच संपर्क बनें एवं समाज की ज्वलंत समस्याओं का समाधान खोजा जाए।

महत्वपूर्ण कार्यों को मीडिया द्वारा प्रसारित करें।

- एक राष्ट्रीय स्तर के स्वतंत्र एवं स्वायत्त संगठन संस्थान की स्थापना हो, जिसका प्रबंधन धार्मिक एवं आध्यात्मिक गुरूजनों, प्रबुद्ध नागरिकों द्वारा संयुक्त रूप से किया जाये।[240]

इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए 'फाउण्डेशन फॉर यूनिटी ऑफ रिलिजियस एण्ड एनलाइटेण्ड सिटीजनशिप (फ्यूरेक)' की स्थापना की गई। इस पर सभी धर्म गुरूओं ने अपनी सहमति जाहिर की। जिसका विधिवत संचार राष्ट्रपति कलाम ने आचार्य महाप्रज्ञ के जन्मदिन पर 15 जून 2004 को राष्ट्रपति भवन में शुरू किया।[241] इस मौलिक उपक्रम के द्वारा यह संभावना की गई कि भारत सन् 2020 तक एक विकसित राष्ट्र के रूप में उभर सकता है, जिसमें उसकी सांस्कृतिक विरासत एवं मूल्यपरक तंत्र समन्वय एवं शांति स्थापना का संदेश पूरे विश्व में प्रसारित कर सकेगा। इस विराट् परियोजना में आचार्य महाप्रज्ञ की अहंभूमिका रही, जो उनकी अहिंसा विकास की आकांक्षा के अनुरूप थी। सूरत घोषणा पत्र ने पूरी दुनिया का ध्यान केन्द्रित किया, विकास को नये संदर्भों में खोजने के लिये।

अहिंसक क्रांति के सूत्रधार आचार्य महाप्रज्ञ ने सूरत का आध्यात्मिक इतिहास रचने हेतु साम्प्रदायिक सद्भावना एवं शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की जो मिशाल कायम की। उसकी पृष्ठभूमि में उनका अथक परिश्रम बोलता है। इसकी पुष्टि में एक उदाहरण ही पर्याप्त है। लोगों के निवेदन पर पूज्यवर लिंबायत (उधना यार्ड) पहुँचे। विशेष रूप से मदीना मस्जिद के पास हजारों मुस्लिम भाईयों ने स्वागत द्वार, स्टेज बनाकर ससंघ आचार्यवर का स्वागत किया। इस अवसर पर आचार्य महाप्रज्ञ ने अपने प्रेरक उद्बोधन में कहा–

हमने सुना है कि यह क्षेत्र सूरत का संवेदनशील क्षेत्र है। आज हम मूल कार्यक्रम में परिवर्तन कर लगभग 10 किलोमीटर का चक्कर लेकर यहाँ पहुँचे हैं। हम मानवीय एकता के लिए ही काम कर रहे हैं और यदि शांति, सद्भावना एवं भाईचारे के वातावरण का निर्माण होता है दस तो क्या एक सौ दस किलोमीटर का चक्कर काटने में भी हमें तकलीफ नहीं होगी बल्कि खुशी होगी।[242]

इस अवसर पर उन्होंने यह भी कहा अहिंसा का जीवन, जीवन भर जीया जा सकता है। हिंसा का जीवन जीवनभर नहीं जीया जा सकता। साल के 365 दिनों में आदमी साम्प्रदायिक उन्माद में आकर क्रूर हिंसा केवल दो दिन करता है 363 दिन तो वह एक दूसरे के साथ हिल-मिलकर ही रहता है, पर ऐसे वातावरण का निर्माण करे, दो दिन हिंसा के देखने न पड़े। पारस्परिक प्रेम-सौहार्द पर बल देते हुए परिस्थिति सुधार के महत्वपूर्ण उपाय सुझाये।

अहिंसा विकास की दृष्टि से सूरत चातुर्मासिक प्रवास में आचार्य महाप्रज्ञ की पावन सन्निधि में विभिन्न रचनात्मक कार्यों की संयोजना हुई। उनमें से कुछ मुख्य रहे–दस दिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय प्रेक्षा-ध्यान शिविर, पुलिस जवानों का दस दिवसीय प्रशिक्षण शिविर, त्रिदिवसीय गुजरात स्तरीय शिविर, हिन्दू-मुस्लिम एकता शिविर, अणुव्रत प्रेक्षा परिवार का त्रिदिवसीय शिविर, पँच दिवसीय प्रेक्षा ध्यान शिविर, मानसिक एकता सम्मेलन, महासभा प्रतिनिधि सम्मेलन, महिला सम्मेलन, अणुव्रत समिति सूरत द्वारा स्वैच्छिक संस्था सम्मेलन, अखिल भारतीय स्तर पर कन्या अधिवेशन, सामंजस्य कार्यशाला, अहिंसा प्रशिक्षण कार्यशाला, स्वस्थ जीवन शैली कार्यशाला आचार्य महाप्रज्ञ चिंतन में वैज्ञानिक दृष्टियाँ-द्विदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी इत्यादि महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम परिसंपन्न हुये।

सूरत के प्रवास में आध्यात्मिक, धार्मिक, राजनीति से जुड़े प्रमुख महानुभावों ने आचार्य महाप्रज्ञ

से अहिंसा विकास का दिशा दर्शन प्राप्त किया। समग्र रूपेण अहिंसा यात्रा का सूरत प्रवास उपलब्धियों भरा रहा। जहाँ से अहिंसा की आवाज विश्व व्यापी पसरी।

अहिंसा के विकासात्मक स्वरूप विमर्श से यह स्पष्ट होता है कि अहिंसा की अमिट लौ को देश-काल और परिस्थितियों की हवाएं अस्तित्व शून्य न बना सकी। बनिस्पत इसकी ज्योति समय-समय पर प्रभास्वर बनकर जन-जीवन को आलोकित करती रही है ऐसा ऐतिहासिक संदर्भ से उजागर है। अहिंसा की जीवंत शक्ति महापुरुषों की प्राणधारा से जुड़कर सदैव वांछित प्रदात्री सिद्ध हुई। वर्तमान के संदर्भ में विशेषरूप से महात्मा गांधी की प्रयोग धर्मा अहिंसा ने नये इतिहास का सृजन किया और दुनिया के समक्ष मिशाल कायम की। उसे पुनः प्रज्ज्वलित करने में आचार्य महाप्रज्ञ का योगदान महत्त्वपूर्ण है। विश्व के शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की पृष्ठभूमि में उन्होंने अहिंसा को अनिवार्य बतलाया। इस बात को बलपूर्वक प्रस्तुत किया कि वैयक्तिक जीवन को आनन्दमय बनाने के लिए अहिंसा को जीवन की प्रयोगभूमि में उतारना होगा। इसके प्रायोगिक संचरण हेतु अनेक महत्त्वपूर्ण उपक्रम सुझाये हैं। अहिंसा के विकासक्रम का मंथन जिज्ञासु के लिए नये तथ्यों के समाकलन में योगभूत बनेगा और एतद् विषयक खोज को नया आयाम देगा।

संदर्भ

1. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्षस्कार, 2, 29-'मुंडे भविता अगाराओ अणगारियं पव्वइए णत्थिणं तस्स भगवंतस्स कत्थइ पडिबंधे।' युवाचार्य महाप्रज्ञ, अहिंसा तत्त्व दर्शन-7
2. युवाचार्य महाप्रज्ञ, अहिंसा तत्त्वदर्शन-7-8
3. पण्डित रामचन्द्र पाठक, आदर्श हिन्दी शब्दकोश. 49
4. क्षुलक जैनेन्द्रवर्णी, जेनेन्द्र सिद्धांतकोश 4. 53
5. उमास्वाति, तत्त्वार्थसूत्र-7.13-''प्रमत्तयोगात्प्राण व्यपरोपणं हिंसा।''
6. सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ, सूयगडो. 1.10.21, टिप्पण-71. 450
7. भगवती आराधनामूल, 803
8. सं. डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी; डॉ. प्रेम सुमन जैन. जैन विद्या का सांस्कृतिक अवदान-119
9. सं. युवाचार्य श्री मधुकर मुनि, प्रश्न व्याकरण-2.1.109-'एसा भगवई अहिंसा जा सा अपरिमिय-णाणदंसणधरेहिं सील-गुण-विणय-तव-संयम णायगेहिं तित्थयरेहिं सव्वजग जीववच्छलेहि.....अणुपालिया भगवई।'
10. सं. मुनि नथमल, आयारो. 4.1.1
11. आयारो, 4.1.9-'दिट्ठं सुयं मयं विण्णायं, जमेयं परिकहिज्जइ।'
12. आयारो, 4.1.2-'एस धम्मे सुद्धे णिइए सासए समिच्च लोयं खेयण्णेहिं पवेइए।'
13. भाष्यकार : आचार्य महाप्रज्ञ, आचारांगभाष्यम्. 208
14. उत्तरज्झयणाणि 6.6-'अज्झत्थं सव्वओ सव्वं, दिस्स पाणे पियायए।
न हणे पाणिणो पाणे, भयवेराओ उवरए।।'
15. आयारो, 1.2.3.63-64- 'सव्वे पाणा पियाउया, सुयसाया दुक्खपडिकूला,
अप्पियवहा, पियजीविणो....। सव्वेसिं जीविय.....।'
16. आयारो, 1.5.90-'तं णो करिस्सामि समुट्ठाए।'
17. सं. युवाचार्य महाप्रज्ञ, समवाओ, 6.2-'छ जीव निकाया पण्णत्ता,.....।'
18. आयारो, 8.1.18- 'तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं एतेहिं काएहिं दंडं समारंभेज्जा,
णेवण्णेहिं एतेहिं काएहिं दंडं समारंभावेज्जा.....।''
19. आचारांगभाष्यम्, 365
20. पं. कैलाशचन्द्र जी शास्त्री-मुनि श्री नथमलजी, समण सुत्तं 156. 50-

'णाणी कम्मस्स खयत्थ-मुट्ठिदो णो ट्ठिदो य हिंसाए।
अददि अमूढ़ं अहिंसत्थं, अप्पमत्तो अवधगो सो।।'

21. दसवैकालिक निर्युक्ति गाथा, 154-'न हणइ न हणावेइ य सममणई तेण सो समणो।'
22. आचारांगभाष्य, 180
23. आयारो, 2.6.181-'से मेहावी अणुग्घायणस्स खेयण्णे, जे य बंधप्पमोक्खमण्णेसी।'
24. दसवेआलियं, 6.8.-'अहिंसा निउणं दिट्ठा सव्वभूएसु संजमो।'
25. दसवेआलियं, 8.3-'तेसिं अच्छणजोएण निच्चं होयव्यं सिया।
मणसा कायवक्केण, एवं हवइ संजए।।'
26. बालचन्द्र सिद्धांतशास्त्री, जैन-लक्षणावली. 1.164
27. उत्तरज्झयणाणि,19.25-'समया सव्व भूएसु सत्तुमित्तेसु वा जगे।'
28. आयारो, 4.1.1-2- 'सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता न हन्तव्वा, न अज्जावेयव्वा, न
परितवेव्वा, न परितावेयव्वा, न उद्दवेयव्वा। एस धम्मे धुए, नियए सासए .....।'
29. आचारांगभाष्यम्, 207-8
30. आचार्य महाप्रज्ञ, पुरुषोत्तम महावीर. 40-41
31. सूयगडो, 1.3.80
32. दसवेआलियं, 10.5-'अत्तसमे मन्नेज्ज छिप्पकाये।'
33. सूयगडो, 1.56
34. आयारो, 1.5.91-'मंता मइयं अभयं विदित्ता।'
35. आयारो, 5.5.101-'तुमंसि नाम सच्चेव जं 'हंतव्वं' ति मन्नसि, तुमंसि नाम सच्चेव जं 'अज्जावेयव्वं' ति मनसि, तुमंसि नाम सच्चेव जं 'परितावेयव्वं' ति मन्नसि, तुमंसि नाम सच्चेव जं 'परिघेतव्वं' ति मनसि, तुमंसि नाम सच्चेव जं 'उद्दवेयव्वं' ति मन्नसि।'
36. आचारांगभाष्यम् 164
37. प्रश्नव्याकरण सू. 2.1.3- 'तस्य य णामाणि इयाणि गोण्णाणि होंति, तं जया-1. पाणवहं 2. उम्मूलणा सरीराओ 3. अवीसंभो.....तीसं पाणवहंस्स कडुयफल देसगाइं।'
38. प्रश्नव्याकरण सू. 2.1.107- 'तस्य पढ़मं अहिंसा जा सा सदेवमणुयासुरस्स लोयस्स भवइ दीवो ताणं सरणं गई पइट्ठा 1. णिव्वाणं 2. णिव्वुई 3. पयास य 60 णिम्मलयरत्ति एवमाईणि णिययगुणाणि न्मियाहं पज्जवणा... ।'
39. पं. श्री राम शर्मा आचार्य, ऋग्वेद. 3.4.16
40. पं. श्री राम शर्मा आचार्य, यजुर्वेद. 1.40.2-'कुर्वन्नेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।'
41. ऋग्वेद, 1. भूमिका-24-'पशुन् पाहि गां मा हिंसी, अजां मा हिंसी।
अविं मा हिंसी मा हिंसी द्विपादं पशुं।
मा हिंसीरेक शफं पशुं मा हिस्यात् सर्वाभूतानि।।'
42. ऋग्वेद, 2.5. 64-3-'यन्नून यश्यां गति मित्रस्य यायां पथा।
अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे।''
43. यजुर्वेद, 40.7-'यस्मिन्न सर्वाणि भूतान्यात्मवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक ऽएकत्व मनुपश्यतः।।
44. पं. श्री राम शर्मा आचार्य, अथर्ववेद, 1.4.19-22
45. ऋग्वेद, 10.19.1-2-'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्.....।'
46. डा. सुभाष वेदालंकार 'तनेजा'-एम.ए.पी.एच.डी साहित्याचार्य, ईशावास्योपनिषद्.6-
'यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।'

47. 108 उपनिषद् ब्रह्म विद्या खण्ड, 96. जाबालदर्शनोपनिषद्, 1.8
48. नारदपरिव्राजकोपनिषद्, 4.10.-'अहिंसा सत्यमस्ते.....।'
49. 108 उपनिषद्, जाबालदर्शनोपनिषद्, 1.15-'स्वात्मवत्सर्वभूतेषु कायेन मनसा गिरा।
अनुज्ञा या दया सैव प्रोक्ता वेदान्त वेदिभिः।।'
50. मुण्डकोपनिषद् 2.8- 'भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।'
51. प्रो. सत्यव्रत सिद्धांतालंकार, एकादसोपनिषद्. 592
52. ईशावास्योपनिषद्, 1- 'ऊँ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यांजगत।
तेन त्यक्तेन भुथ्श्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।''
53. कठोपनिषद्, 1- 'ऊँ सहनाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजंस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहे। ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्ति।'
54. श्री गोस्वामी तुलसीदासजी, रामचरित् मानस 92.93,377-
'धरम न दूसर सत्य समाना, आगम निगम पुराण बखाना।
मैं सोइ धरम सुलभ करिपावा, तजेतिहूं पुर अपजस छावा।।'
55. रामचरित् मानस, 133.1.405 'करि केहर कपि कोल कुरंगा, विगत बैर बिचरहिं इक संगा।'
56-58. रामचरित् मानस, 226, 3-4, 467,242, 477, 268.1-2.495
59-60. रामचरित् मानस, उत्तरकाण्ड, 16.2.857, 41-45, 870-72
61. जयदयाल गोयन्दका, संक्षिप्त महाभारत (प्रथम खंड), अनुशासन पर्व 23. 115, 28-29-116
'अहिंसा परमो धर्मः, अहिंसा परमो तपः। अहिंसा परमं सत्यं यतो धर्म प्रवर्तते।।'
'अहिंसा परमो धर्मः अहिंसा परमो दमः। अहिंसा परमं दानमहिंसा परंम तपः।'
'अहिंसा परमो यज्ञः अहिंसा परमो फलम्। अहिंसा परमं मित्र महिसा परमं सुखम्।।'
62. संक्षिप्त महाभारत-1. अनुशासन पर्व 3-176- 'कर्मणा न नरः कुर्वन् हिंसा पार्थिव सत्तम्।
वाचा च मनसा चैव ततो दुःखात् प्रमुच्यते।।
पूर्वं तु मनसा त्यक्त्वात्यजेद वाचाथ कर्मणा।'
63. संक्षिप्त महाभारत-1. अनुशासन पर्व 145 (मानवता की धुरी. 38)-
'देवतातिथि-सुश्रूषा सततं धर्मशीलता। वेदाध्ययन-यज्ञाश्च तपो दानं दमस्तथा।।
आचार्य-गुरू-सुश्रुषा-तीर्थाभि गमनं तथा। अहिंसाया वरारोहे कलां ना र्हन्ति षोऽशीम्।।'
64. जयदयाल गोयन्दका संक्षिप्त महाभारत (खण्ड द्वितीय) शान्ति पर्व 20-272, 30-262, मानवता की धुरी-39-
'अहिंसा सकला धर्मो हिंसाधर्मस्तथाहितः।
न भूतानामहिंसाया ज्यायान् धर्मोऽस्ति कश्चन।
यस्मान्नोद्विजते भूतं जातु किंचित् कथंचन।।'
65. संक्षिप्त महाभारत-1, 532-533
66. संक्षिप्त महाभारत-2, 1317
67. श्रीमद्भगवद्गीता, 10-5
'अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधा।'
68. श्री मद्भगवद्गीता, 13-30-'यदाभूतपृथग्भावमेकस्थ मनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा।।'
69. श्री मद्भगवद्गीता, 16.2- 'अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्
दयाभूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम।।'
70. श्री मद्भगवद्गीता, 12-13-'अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखीः क्षमी।।'

71. श्री मद्भगवद्गीता, 6-29- 'सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्रसम दर्शनः।।'
72. श्री मद्भगवद्गीता, 18.38.431-'तपः कृते प्रशंसन्ति, त्रेतायां ज्ञानकर्म च।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे।।'
'सर्वेषामपि दानानामिदमेवंकमुत्तमम्।
अभयं सर्वभूतानां, नास्ति दानमतः परम्।।'
73. सूयगडो, 1.6.23-'दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं।'
74. पद्म पुराण, 18.439, 440-'नास्त्यहिंसा समं दानं, नास्त्यहिंसा समं तपः।'
75. नारद पुराण, 16-22- 'अहिंसा सा नृपप्रोक्ता सर्वकामप्रदायिनी।
कर्म-कार्य-सहायत्वमकार्यं परिपन्थता।।'
76. ब्रह्म पुराण, 8.9.224-'कर्मणा-मनसा-वाचा ये न हिंसन्ति किंचन।
तुल्यद्वेष्य-प्रियादान्ता मुच्यन्ते कर्म बन्धनैः।।'
'सर्वभूतदयावन्तो विश्वास्था सर्वजन्तुषु।
त्यक्तहिंस-समाचारास्ते नराः स्वर्गगामिनः।।'
77. श्रीश्रीश्री मुनि लालगुप्ता, विष्णु पुराण. 22.45-
'गायन्ति देवाः किल गीतकानि, धन्यास्तु ते भारत भूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते, भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।।'
78. जैन भारती, 3-5. 2002.98
79. संस्कृति के दो प्रवाह, 59, सं. 1991
80. मुनि नगराज जी डी. लिट्, अहिंसा पर्यवेक्षण. 11
81. अमृतचन्द्राचार्य, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय. 44-
'अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषा मेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः।।'
82. सूयगडो, 1.12.18-'डहरे य पाणे पुड्ढे य पाणे, ते आततो पासइ सव्वलोगे।'
83. अंगसुत्ताणि-2 भगवई, 19.3.35-'पुढवि काइए णं भंते! अक्कंते समाणे केरिसियं वेदणं पच्चणुब्भवमाणे विहरइ? गोयमा! से जहानामए-केइ पुरिसे तरुणे बलवं.....वेदणं पच्चणुब्भवमाणे विहरइ।'
84. दशाश्रुत स्कन्ध, 6.195-'जाविय से वाहिरा परिसा भवति तं जहा दासेत्ति वा पेसेत्ति वा मिलएत्ति वा भाइल्लेत्ति वा अवराहंसि स्वयमेव गरुअं दंद वत्तेत्ति तं जहा-इमं दण्डेह, इमं मुंडेह, इमं तज्जेह.....।
85. वाचना प्रमुख : गणाधिपति तुलसी-प्रधान सं. आचार्य महाप्रज्ञ-संपादिका : समणी कुसुमप्रज्ञा, निर्युक्तिपंचक, दसवेकालिक निर्युक्ति-42.75-
'हिंसाए पडिवक्खो, होइ अहिंसा चउव्विहा
'साउ' दव्वे भावे य तहा, अहिंसऽजीवा इवाओ त्ति।।'
86. अनु. पं. कैलाशचन्द्र जी शास्त्री-मुनि श्री नथमलजी, समण सुत्तं. 157.50-
'अत्ता चेव अहिंसा, अत्ता हिंसति णिच्छओ समए।
जो होदि अप्पमत्तो, अहिंसगो हिंसगो इदरो।।'
87. आचार्य महाप्रज्ञ, भिक्षु विचार दर्शन. 126
88. समण सुत्तं, 153, 154.48
89. आचार्य महाप्रज्ञ, जैन परम्परा का इतिहास. 85 सं. 2002
90. डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी-डॉ. प्रेमसुमन जैन, जैन विद्या का सांस्कृतिक अवदान. 17-18
91. जैन दर्शन के परिपार्श्व में, 99-102
92. आचार्य महाप्रज्ञ, अहिंसा और अणुव्रत : सिद्धांत और प्रयोग. 12-13
सुत्तनिपात, धम्मिक सुत्त-'पाणे न हाने न च घातयेय, न चानुमन्या हनतं परेसं।

सव्वेसु भूतेसु निधाय दण्डं, ये थावरा ये च तसंति लोके।।'
93. धम्मपद-दण्डवर्ग, 1-'सव्वे तसंति दंडस्स सव्वे भायन्ति मुच्चुनो।
अत्तानं उपयं कत्वा न हनेय्य न घातये।।'
94. मुनि श्री नगराज जी डी. लिट्, आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन. 528
95. अहिंसा और अणुव्रत : सिद्धांत और प्रयोग, 11
96. अनु. रामाप्रसाद, एम.ए. पातंजल योगसूत्र भाष्य. 2-30-'तत्र अहिंसा सर्वदा सर्वभूतेषु अनभिद्रोहः।'
97. महर्षि श्री हरिभद्र आचार्य, योगदृष्टि समुच्चय-107
98. अभिधान राजेन्द्र कोश. 1.879
99. अहिंसा तत्त्व दर्शन, 133
100. मुनि श्री नगराज जी, डी. लिट्, अहिंसा विवेक. 214-15
101. युवाचार्य महाप्रज्ञ, भिक्षु विचार दर्शन, 87 (1979)
102. भिक्षु विचार दर्शन, 112-113 (1979)
103. उत्तरज्झयणाणि, 18.35-'सगरो वि सागरंतं भरहवासं नराहिवो।
इस्सरियं केवलं हिच्चा, दयाए परिनिव्वुडे।।'
104. अहिंसा विवेक, 141. अनुकम्पा की ढाल. 1.8
105-106. अहिंसा तत्त्वदर्शन, 19-21
107. आचार्य महाप्रज्ञ, अहिंसा और शांति, 63
108. अहिंसा, 57
109. अहिंसा के अछूते पहलु, 2-8
110. आचार्य महाप्रज्ञ, तेरापंथ : शासन अनुशासन. 109
111. अहिंसा विवेक, 11 छान्दोग्य उपनिषद् 3.17.4-'अतः यत् तपोदानमार्जव महिंसा
सत्यवचन मिति ता अस्य दक्षिणा।'
112. उत्तरज्झयणाणि, 12.40,44- 'कहं चरे? भिक्खु! वयं जयामो? पावाइ कम्माइ पणोल्लयामो?
अक्खाहि णे संजय! जक्खपूइया! कह सुजट्ठं कुसला वयंति।।'
'तवो जोइ जीवो जोइठाणं, जोगा सुया शरीरं कारिसंगं।
113. आचार्य महाप्रज्ञ, मुक्तभोग की समस्या और ब्रह्मचर्य, 38
114. आचार्य महाप्रज्ञ, अस्तित्व और अहिंसा, 63
115. अहिंसा के अछूते पहलु, 129
116. अहिंसा के अछूते पहलु, 43-44. आचार्य महाप्रज्ञ, स्वास्थ्य की त्रिवेणी, 31
117. रामचरित मानस, षष्ठ सोपान लङ्काकांड. 79.2 'नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना।
केहि बिधि जितब बीर बलवाना।'
118. रामचरित मानस, षष्ठ सोपान, लङ्काकाण्ड 79.3.4.5.6.80
'सोरज धीरज तेहिरथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।
बल बिबेक दम परहित धोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे।।'
'ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना।
दान परसु बुद्धिधि सक्ति प्रचंड। बार बिग्यान कठिन को दंड।।'
'अमल अचल मन गोण समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना।
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा। एहि समं बिजय उपाय न दूजा।।'
'सखा धर्ममय असरथ जाकें। जीतन कहं न कतहुंरिपु ताकें।'
'महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाकें असरथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर।।'
119. आचार्य महाप्रज्ञ, महावीर का पुनर्जन्म, 98

120. उत्तरज्झयणाणि 9.35 'अप्पाणमेव जुज्झाहिं, किं ते जुज्झेण बज्झओ।
अप्पाणमेव अप्पाणं, जइत्ता सुहमेहए।।'
121. आचार्य महाप्रज्ञ, मुक्त भोग की समस्या और ब्रह्मचर्य. 66
122. मुनिलाल, अध्यात्म रामायण. अयोध्याकाण्ड 'गङ्गां नोचेत्समाकृत्य नावतिष्ठन्तु सायुधाः।
ज्ञातयो मे समायत्ताः पश्यन्तः सर्वतोदिशम्।।'
123. अध्यात्म रामायण, युद्धकाण्ड. 11.26
124. अध्यात्म रामायण, 11.29.32. 'रावणस्य धनुर्मुक्ताः सर्पा भूत्वा महाविषाः।
शराः काञ्चन पुङ्खभा राघवं परितोऽपतन्।।
तैः शरैः सर्पवदनैर्वमद्भिरनलं मुखैः।
दिशश्च विदिशश्चैव व्याप्तास्त्र तदाभवन्।।
रामः सर्पास्ततो दृष्ट्वा समन्तात्परिपूरितान्।
सौपर्णमस्त्रं तद्घोरं पुरः प्रावर्तय द्रणे।।
125. निर्युक्ति पंचक, 91 दशवे. नि. गाथा-214-
'किंची सकायसत्थं, किची परकाय-तदुभयं किंचि।
एतं तु दव्वसत्थं, भावे य असंजयो सत्थं।।'
126. आचार्य महाप्रज्ञ, अध्यात्म का प्रथम सोपान : सामायिक, 143.
127. मुनि नथमल, जैन दर्शन के मौलिक तत्त्व, 2.358
128. आचार्य महाप्रज्ञ, नया मानव : नया विश्व, 46
129. हिन्दी नवजीवन, 7.5.31
130. हरिजन सेवक, 26.11.38
131. हरिजन सेवक, 7.7.46, 'अहिंसा चतुर्थ भाग, 103
132. श्री मन्नारायण, ऋषि विनोबा, 369
133. अहिंसा के अछूते पहलु, 47
134. मुनि सुखलाल, विज्ञान के संदर्भ में जैन धर्म; 10
135. अध्यात्म का प्रथम सोपान : सामायिक, 146
136. आचार्य महाप्रज्ञ, जैन योग, 82
137. विज्ञान के संदर्भ में जैन धर्म, 14. आचारांग 1-27.34
138. अहिंसा और शांति, 19
139. गांधीजी, अहिंसा प्रथम भाग. 20. हिन्दी नवजीवन-19-3-1925
140. आचार्य महाप्रज्ञ, लोकतंत्र : नया व्यक्ति नया समाज, 116
141. लोकतंत्र : नया व्यक्ति नया समाज, 79
142. पुरुषोत्तम महावीर, 98
143. यू.आर.राव, ऐसे थे बापू, 45
144. पुरुषोत्तम महावीर, 98-99
145. जैन योग, 82
146. लोकतंत्र : नया व्यक्ति नया समाज, 115
147-148. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय. 537, 538, हरिजन. 21 जुलाई 1946
149. लुईफिशरकृत 'ए वीक विद गांधी, संस्कृति के चार अध्याय 537-38
150. मुनि नथमल, जैन दर्शन : मनन और मीमांसा, 328-29
151. महाप्रज्ञ : जीवन-दर्शन, 55
152. लोकतंत्र : नया व्यक्ति नया समाज, 106-11
153. डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी, डॉ. प्रेमसुमन जैन, जैन विद्या का सांस्कृतिक अवदान. 21

154. आचार्य तुलसी-युवाचार्य महाप्रज्ञ, अहिंसा और अणुव्रत (सिद्धान्त और प्रयोग) 10
155. श्रीमद्भगवद्गीता, 6-20-'आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन!
सुखं वा यदि वा दुःखं सयोगी परमो मतः।।'
156. अहिंसा तत्त्व दर्शन, 4-6 (1988)
157. मुनि नथमल, अहिंसा तत्त्वदर्शन. 11 (1960)
158. गांधीजी, संपा. विश्वनाथ शर्मा.....अहिंसा-4 (गांधी वांड्गमय खण्ड दस)
159. अहिंसा भाग-4, 435
160. आचार्य महाप्रज्ञ, मंजिल के पड़ाव, 16
161. अहिंसा भाग-4, 431. 'हरिजन सेवक, 31.8.47
162. अहिंसा तत्त्व दर्शन, 93
163. दसवेआलियं, 4.7.8
164. यंग इंडिया, हिन्दी नवजीवन, 29.9.27
165-166. अहिंसा-1,5,113, 64 हिन्दी नवजीवन, 4.11.1926
167. The Selected works of M.G. Vol.IV. 153 The basic works.
168. The Selected works of M.G. Vol VI- 153. The voice of truth.
169-170. अहिंसा-1,32,'हिन्दी नवजीवन. 20.8.25/1,17
171. हरिजन सेवक, 9.4.38
172. गांधी विचार दोहन-16-17
173. हरिभाऊ उपाध्याय, बापू-कथा, 61
174. डॉ. श्री राम वर्मा, भारतीय राजनीतिक विचारक. 408-9
175. डॉ. अमरेश्वर अवस्थी-डॉ. रामकुमार अवस्थी, आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन-373
176. सर्वोदय तत्त्वदर्शन, 74
177. डॉ. एस.एल.वर्मा, डॉ. मधु मिश्रा, महात्मा गांधी एवं धर्मनिरपेक्षता, 60.
178. अहिंसा-3.302.3 'हरिजन सेवक. 27.1.40
179. हरिजन सेवक, 20.7.47
180. The Selected works of M.G. Vol-IV- 216 The basic works.
181. यंग इंडिया, 1.10.31
182. हिन्दी नवजीवन, 19.11.31
183. अहिंसा-1.95. हिन्दी नवजीवन, 1.3.28
184-186. अहिंसा-3-318. हरिजन सेवक, 4.5.40, 292, 335.
187. बापू-कथा, 179
188. अहिंसा-3,339-40.293
189. गांधीजी, अहिंसा-4.409. हरिजन सेवक, 25.8.46
190. डॉ. दशरथ सिंह, गांधीवाद को विनोबा की देन. 397
191. हरिजन सेवक, 15.10,38
192. सार्थकता मनुष्य होने की. 63
193. मुनि सुखलाल, अहिंसा यात्रा के अमिट पद चिह्न, भाग-1.150,48
194. साध्वी विमलप्रज्ञा, अहिंसा यात्राः इक्कीसवीं सदी का कालजयी आलेख, 73
195. अहिसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग-1.278-9
196. मुनि सुखलाल, अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग-2.222
197. अहिंसा के अछूते पहलु. 47 (1989)
198. महाप्रज्ञ ने कहा, भाग. 11.167

199. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग-1.230
200. आचार्य महाप्रज्ञ, आमंत्रण आरोग्य को, 106-113
201. अहिंसा के अछूते पहलु. 47 (15-16)
202. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग-2.102-3
203. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग-1.136-7, 80-81
204. महाप्रज्ञ ने कहा, भाग. 16.41-42
205. आचार्य महाप्रज्ञ, चिंतन का परिमल, 141
206. अस्तित्व और अहिंसा. 45-46
207. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग-1.100
208. युवाचार्य महाप्रज्ञ, मेरी दृष्टिः मेरी सृष्टि, 129
209-210. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग-1.30, 220, 217
211. अहिंसा यात्रा इक्कीसवीं सदी का कालजयी आलेख, 257
212. महाप्रज्ञ ने कहा, भाग 11.166-67, 171-72
213. महाप्रज्ञ ने कहा भाग-4.60-65
214. सार्थकता मनुष्य होने की, 18.19
215. मेरी दृष्टिः मेरी सृष्टि, 132
216. महाप्रज्ञ ने कहा, भाग.11.166
217. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न. भाग. 2.14
218-219. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग-1.71-72, 49, 282-83, 94, 89
220. अहिंसा यात्राः इक्कीसवीं सदी का कालजयी आलेख, 269
221. विज्ञप्ति, 23-28 जून, 2002.6-7
222. अणुव्रत पत्रिका, 1-5 जून 2010.8
223. अहिंसा यात्राः इक्कीसवीं सदी का कालजयी आलेख. 212,255
224. अणुव्रत, 1-5 जून 2010. 9-11
225. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग-2.225-26
226-27. अहिंसा यात्राः इक्कीसवीं सदी का कालजयी आलेख, 235, 261, 259
228. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग-2,242
229. अहिंसा यात्राः इक्कीसवीं सदी का कालजयी आलेख, 276-77
230. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग-1,72
231-32. अहिंसा यात्राः इक्कीसवीं सदी का कालजयी आलेख, 280-83, 296-98, 304
233-37. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग-1, 154, 177, 189, 280, 285, 235, 323-26, 149
238-40. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग-2, 23, 236-38, 224-26
241. राजस्थान पत्रिका, 10 मई 2010
242. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग-2, 287-88

अध्याय-2

प्रेरणास्रोत

पूर्ववृत्त

गांधी एवं महाप्रज्ञ के विराट् व्यक्तित्व में अहिंसा का तेज मुखर हुआ। इसके मूल उत्स को जानने के लिए संस्कार संपदा का परिज्ञान महत्वपूर्ण है। वे कारक जो दोंनो महापुरुषों के जीवन निर्माण में योगभूत बनें उनका विमर्श द्वितीय अध्याय में अभिप्रेत है। व्यक्तित्व निर्मापक घटकों में समानता-असमानता के रूप में मौलिकता का निदर्शन है। माता से मिला त्याग-नियम प्रधान संस्कार संपदा का सुयोग सह व्यक्ति विशेष की प्रेरणा महापुरूषों को समान रूप से मिली। वैसे मनीषियों के प्रेरणोत्स में काफी वैशिष्ट्य है। जिसके मुख्य घटक निम्नांकित हैं–

- गांधी के प्रेरणोत्स अधिकांश अव्यक्त है, महाप्रज्ञ के साथ ऐसा नहीं हैं।
- भिन्न शिक्षा परिवेश-उच्च शिक्षा पाने का सुयोग विदेशी भूमि पर मिला जो गांधी की भारत स्वतंत्रता चेतना जगाने में योगभूत बना, महाप्रज्ञ को शिक्षण-प्रशिक्षण हेतु गुरुकुल जैसा वातावरण धर्मसंघ में मिला।
- गांधी शिक्षा गुरु के वात्सल्य से वंचित रहे, महाप्रज्ञ दीक्षा-शिक्षा गुरु की परवरिश में पूर्ण निश्चिंत रहे।
- धर्म, दर्शन और राजनैतिक भिन्न माहौलः गांधी के दिल में हिन्दूधर्म एवं प्रकारान्तर से जैन धर्म के संस्कारों की छाप थी, महाप्रज्ञ में जैनत्व-मानवता के संस्कार घनीभूत बनें।
- गांधी को राज-काज संबंधी संस्कार पैतृक संपदा के बतौर मिलें, महाप्रज्ञ का पैतृक साया शैशव वय में ही उठ चुका था।
- भूमिका भेद से महापुरुषों के प्रेरणोत्स में काफी अंतर है।
- एक बड़ा अन्तर स्वनिर्धारित प्रेरणा प्रदीप में है। महाप्रज्ञ ने व्यक्तित्व निर्माण के मानक स्वयं निर्धारित कियें। ऐसा उल्लेख 'मेरे जीवन के रहस्य' आलेख में मिलता है। जिज्ञासु प्रेरणा संजोकर अपने व्यक्तित्व का वांछित निर्माण कर सकता है।

संस्कारों की मूल इकाई

'आनेवाली पीढियां शायद मुश्किल से ही विश्वास कर सकेंगी कि गांधी जी जैसा हाड़-मांस का पुतला कभी इस धरती पर हुआ होगा।' अल्बर्ट आइंस्टीन के कथन में विराट् शक्ति का इंगित है, जो आधिदैविक सत्ता का प्रतिनिधित्व करती है। उसका मानव होना और कालातिक्रांत समय की गति के साथ मानव रूप में स्वीकारना कठिन होगा। पर गांधी भारत के इतिहास की बहुत बड़ी उपलब्धि है। अतिमानवीय चेतना के धनी गांधी का निर्माण जिन फौलादी सत्-संस्कारों से हुआ वे कब, कहां और कैसे संघटित हुए, विहंगावलोकन अपेक्षित है। गतिशील व्यक्तित्व के निर्मापक कारकों का विमर्श महत्वपूर्ण है।

माँ पुतलीबा

गांधी का जीवन उनके शब्दों से बड़ा था, उनका आचरण विचारों से महान् और जीवन प्रक्रिया तर्क से अधिक सृजनात्मक थी। ऐसे महामानव को 2 अक्टूबर,1869 (वि.सं. 1925 की भाद्रपद कृष्णा द्वादशी) पोरबन्दर-सुदामा पुरी में जन्म देने का सौभाग्य माता पुतलीबा को मिला। माता केवल जन्मदात्री ही नहीं संस्कार प्रदात्री थी। गांधी ने अनेक बार इस तथ्य को अभिव्यक्ति दी—'मुझ में जो भी अच्छाई है वह सब मेरी माँ की बदौलत है।' मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि शिशु में संस्कारों का बीजवपन माँ के पेट में ही आरंभ हो जाता है। वहीं पर बच्चे के नाजुक बालमन की गहराइयों में कुछ इच्छाएँ पैठ जाती हैं। भविष्य में ये इच्छाएँ ही उसे तदनुरूप कर्म करने के लए उद्यत करती है। स्टीम इंजन के बॉयलर के प्रेशर की तरह ये इच्छाएं निरंतर एक दबाव बनाये रखती है और आदमी को संचालित करती है। गांधी के जीवन में झांकें तो माँ पुतलीबा की जीवनगत विशेषताएँ—श्रद्धा, भक्ति, सेवा, तपस्या- उपवास-सादगी के संस्कार ही उनमें प्रतिबिम्बित पायेंगे।

व्रतपरायण माता एकादशी, चातुर्मास, चन्द्रायण आदि के व्रत दृढ़ता पूर्वक करती थी। चातुर्मास में एक बार उन्होंने हर तीसरे दिन उपवास का व्रत लिया। लगातार दो-तीन उपवास उनके लिए मामूली बात थी। इस तथ्य की प्रस्तुति गांधी ने दी—मेरी माता के आन्तरिक जीवन का प्रतिघोष उनकी तपश्चर्या में पड़ता था। मुझ में कुछ पवित्रता देखते हो तो वह मेरे पिता की नहीं है, मेरी माता की है। मेरी माता का चालीस वर्ष की आयु में अवसान हुआ था, इसलिए मैंने उनकी भरी जवानी देखी है। किन्तु कभी भी उन्हें उच्छृंखल या टीपटाप वाली अथवा कुछ भी शौक या आडंबर

करने वाली मैंने नहीं देखा। उसकी पवित्रता की छाप ही सदा के लिए मुझ पर बनी हई है।[1] इससे अंदाज लगा सकते है कि पुतलीबा का आंतरिक सौंदर्य कितना उन्नत था।

उच्च शिक्षा प्राप्ति हेतु विदेश जाने के प्रसंग पर मां का मन किशोर पुत्र को विलायत भेजने में संकुचाया। कहीं मेरा बेटा पवित्रता के राजमार्ग से भटक न जाये। बेचरजी स्वामी के परामर्श पर भेजने का निर्णय लिया। बेचरजी स्वामी मोढ़ बनियों में से बने एक जैन साधु थे। उन्होंने समाधान किया। मैं इस लड़के मोहन को तीन चीजों के व्रत दिला दूंगा फिर इसे जाने देने में कोई हानि नहीं होगी। मोहन गांधी विदेश में उच्च शिक्षा पाने हेतु किसी भी प्रतिज्ञा को स्वीकारने के लिए तैयार थे। प्रतिज्ञा लिवायी—'मांस, मंदिरा तथा स्त्री-संगम से दूर रहना।'[2] प्रतिज्ञावान पुत्र को माता ने सहर्ष जाने की अनुमति दी। इंग्लैंड प्रवास के प्रथम तीन वर्षों में उनकी सबसे जटिल समस्या थी माता से की हुई प्रतिज्ञा को निभाना। पर व्रतों का फौलादी कवच एवं मन की दृढ़ता मांस, मदिरा और मायाविनी के प्रलोभनों से रक्षा करने में सफल रही। इस सफलता का सारा श्रेय माँ पुतलीबा को जाता है। गांधी को शाकाहार-अन्नाहार पर गुजर करते देखकर डॉक्टर मेहता ने उन्हें मांसाहार की आवश्यकता बताई। व्रतग्रहण का गांधी ने दृढ़ता से जिक्र किया। पर गांधी की दृढ़ता तथा उनके आहार के गुण दोषों का अध्ययन डॉ. मेहता के मांसाहार त्याग का निमित्त बन गया। साथ ही डॉ. मेहता ने पूर्ण निरामिष भोजन, खादी का परिधान, स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग और मातृ भाषा द्वारा शिक्षण में प्रचार-ये सभी गांधी मार्ग अपनाये। कालांतर में डॉ. मेहता ने अपनी आय का बड़ा हिस्सा गुजरात विद्यापीठ, आश्रम के मकान, गुरुकुल का मकान, राजकोट की राष्ट्रीय शाला आदि परमार्थ के कामों के लिए गांधी को दिया।[3] इसका सारा श्रेय गांधी ने माता पुतलीबा के प्रतिज्ञा प्रदान शिक्षण को दिया।

इंग्लैंड में शाकाहार को अपनाये रखा और इसे प्रतिष्ठित करते हुए 'वेजीटेरियन' (शाकाहारी) पत्रिका में नौ लेख, लिखकर उन्होंने पत्रकारिता की दिशा में पहला कदम उठाया। वो लंदन की शाकाहारी संस्था की कार्यकारिणी के सदस्य बन गये। उन्होंने शाकाहारी क्लब की स्थापना की। आहार के जो प्रयोग प्रतिज्ञा, स्वास्थ्य और मितव्ययिता की दृष्टि से शुरू किये थे, वे आगे चलकर उनके धार्मिक और आध्यात्मिक विकास के पर्याय बन गये। शाकाहार के विषय में अंग्रेजी पुस्तकों के विचार बड़े प्रेरणादायी लगे। उन्होंने धार्मिक, वैज्ञानिक, व्यवहारिक दृष्टि से छानबीन की।

नैतिक दृष्टि से मनुष्य को पशु-पक्षियों पर जो प्रभुत्व प्राप्त हुआ है, वह उन्हें मारकर खाने के लिए नहीं बल्कि उनकी रक्षा के लिए है। अथवा जिस प्रकार मनुष्य एक-दूसरे का उपयोग करते हैं, पर एक-दूसरे को खाते नहीं, उसी प्रकार पशु-पक्षी भी उपयोग के लिए हैं खाने के लिए नहीं। खाना भोग के लिए नहीं जीने के लिए है अतः न केवल मांस का निषेध अपितु अंडों और दूध का त्याग भी सुझाया। स्वयं ने प्रयोग भी किया। विज्ञान की दृष्टि से और मानव शरीर रचनानुसार पक्वफल खाने के लिए ही मनुष्य शरीर बना है। वैद्यक दृष्टि से सादा सुपाच्य-बिना मिर्च-मसाले का आहार व व्यावहारिक आर्थिक दृष्टि से कम खर्चीला आहार अन्नाहार ही हो सकता है।[4] गांधी इस निर्णय पर पहुंचे की स्वाद का सच्चा स्थान जीभ नहीं पर मन है। मन से स्वीकृत यह व्रत उनके लिए माता द्वारा प्रदत्त अनमोल उपहार बन गया।

'आप में सब देवताओं को खुश करने की खूबी है। जिस लेख में आप वाइसराय के भाषण की तारीफ करते हैं, उसी में जयप्रकाश और समाजवादियों के लिए भी कुछ मीठी बात कर डालते

हैं।' सरदार पटेल के इस विनोद पर गांधी ने मुस्कुराते हुए कहाः 'जरूर मेरी माँ ने मुझे यही सिखाया था। वह मुझे हवेली और शिवमंदिर—दोनों जगह जाने को कहती थी, और जब हमारा विवाह हुआ तो हमको पूजा के लिए सब हिन्दू मंदिरों में ही नहीं, बल्कि फकीर के तकिये पर भी ले जाया गया था।'[5] ऐसे समन्वयात्मक संस्कार उन्हें माता से मिले थे।

पुतलीबा का जीवन व्रतमय-तपमय था। माता के आदर्श जीवन से मिली प्रेरणा में उपवास उनके लिए संपूर्ण जीवन के दुःख दर्द मिटाने का सुदर्शन चक्र साबित हुआ। जो उपवास उन्होंने संयम, आरोग्य की दृष्टि से प्रारंभ किये थे वे कालांतर में आत्मशुद्धि, न्याय प्राप्ति एवं हृदय परिवर्तन के अमोघ अस्त्र सिद्ध हुए। जीवन के अनेक नाजुक क्षणों में उपवास का सहारा लिया और सफलता प्राप्त की। गांधी जीवन के उपवास की एक संक्षिप्त झाँकी का उल्लेख किया गया है।*

उपवासों में से यरवदा जेल में किया गया 'आमरण अनशन उपवास' सर्वाधिक प्रसिद्ध है जिसने हिन्दू समाज के स्थायी विघटन को रोका। उपवासों में एक ओर गांधी का आत्म-विश्वास आध्यात्मिक शक्ति तथा उनके विपक्षी के हृदय को प्रभावित या परिवर्तित करने की क्षमता का प्रदर्शन हुआ तो दूसरी ओर एक सर्वमान्य राजनेता के रूप में जनता पर उनका संतुलित प्रभाव पड़ा। भारतीय संदर्भ में वस्तुतः दोनों ही बातें सत्य है। गांधी ने अपने जीवन में लगभग 166 दिन उपवास किया।[6] उनके उपवासव्रत को कोई व्यक्ति किसी भी रूप में ग्रहण करें, पर यह सच्चाई है कि गांधी के उपवास अहिंसक शक्ति के प्रतीक एवं पाषाण-हृदय परिवर्तन के सबूत हैं।

तथ्यतः माता पुतलीबा का तपःपूत जीवन, दृढ़ आस्था और प्रचुर प्यार गांधी के हृदय-पटल पर सदा अंकित रहा। भविष्य के अपरिग्रही, मौन व्रत और उपवासों में संलग्न, घृणा का प्यार से जवाब देने वाले लुंगीधारी महात्मा के निर्माण में सबसे अधिक प्रभाव उनकी माता पुतलीबाई का ही था।

पारिवारिक-परिवेश

अहिंसा गांधी का जीवन व्रत बनीं। यह सूर्य के प्रकाश की भांति उनके जीवन का उजला पक्ष है। उन्होंने अहिंसा को आराधा-साधा और विराट् फल हस्तगत कियें। प्रश्न है गांधी ने अहिंसा की ऐसी तालीम कहां से पाई? इसका काल्पनिक उत्तर बेइमानी होगा। स्वयं जो दलील दी है वह सर्वथा प्रामाणिक है। उन्होंने कहा-मैंने तो खुद अपनी स्फूर्ति से अहिंसा को अपनाया था, मुझे बचपन में घर के वातावरण में ही इसकी तालीम मिली थी। इसमें हिंसा की अपेक्षा अधिक शक्ति समायी हुई है यह मैं दक्षिण-अफ्रीका में समझ सका। वहां मुझे सुसंगठित हिंसा और साम्प्रदायिक द्वेष का मुकाबला अहिंसा के जरिये करना पड़ा था। हिंसा की अपेक्षा अहिंसा का मार्ग श्रेष्ठ है यह दृढ़ प्रतीति लेकर मैं दक्षिण अफ्रीका से लौटा।[7] इस मंतव्य के आधार पर गांधी की अहिंसा स्फूर्णा का सम्यक् आकलन किया जा सकता है।

पारिवारिक प्यार से बचपन में प्यार भरे मोनिया के नाम से पुकारे जाने वाले मोहनदास भविष्य के भारत निर्माता बनेंगे, अहिंसा और शांति के प्रतीक बनेंगे यह कौन जानता था? पर अव्यक्त रूप से पारिवारिक परिवेश में उन्हें ऐसी ही खुराक मिली जो सद्गुणयुक्त जीवन जीने की स्थायी प्रेरणा

---

* परिशिष्ट : 2

बन गयी। कर्तव्य परायणता, सेवा-भाव, सत्यनिष्ठा, असीम धार्मिक आस्था, सर्वधर्म समभाव आदि के संस्कार अपने पारिवारिक वातावरण में प्राप्त हुए थे। अपनी आत्म कथा में लिखा—'राजकोट में मुझे सब संप्रदायों के प्रति समान भाव रखने की शिक्षा मिली। मैंने हिन्दू धर्म के प्रत्येक सम्प्रदाय का आदर करना सीखा, क्योंकि माता-पिता वैष्णव-मंदिर में, शिवालय में और राम-मन्दिर में भी जाते और हम भाइयों को भी साथ ले जाते या भेजते थे।

पिताजी के पास जैन धर्माचर्यों में से भी कोई न कोई हमेशा आते रहते थे। पिताजी उन्हें भिक्षा भी देते थे। वे उनके साथ धर्म और व्यवहार की बातें किया करते थे। इसके सिवा पिताजी के मुसलमान और पारसी मित्र भी थे।'[8] घर आँगन के समन्वयात्मक धार्मिक माहौल की छवि गांधी के जीवन में अंकित होती गयी। यह एक सुयोग ही था कि सौराष्ट्र के पोरबंदर शहर में उनका जन्म हुआ। वह मकान वैष्णव मंदिर से सटा, राम मंदिर के सामने और शिवालय के नजदीक बना हुआ मानो कोई आश्रम ही हो। परिवार के बड़े-बूढ़े लोगों के लिए राम मंदिर दिन की बैठक बनता। प्रातः सायं मंदिर में रामायण की कथा और भजन-कीर्तन होते थे। जिसका बालक मोहन रसिक था। इसका जिक्र गांधी ने आत्म कथा में किया—जिस चीज का मेरे मन पर गहरा असर पड़ा वह था रामायण का पारायण। मेरी उम्र तेरह साल की रही होगी, पर याद पड़ता है कि उनके पाठ में मुझे खूब रस आता था। यह रामायण श्रवण रामायण के प्रति मेरे अत्यधिक प्रेम की बुनियाद है। आज मैं तुलसीदास की रामायण को भक्तिमार्ग का सर्वोत्तम ग्रंथ मानता हूँ।

बाल्यकाल में ही 'राम-नाम' की महिमा से गांधी परिचित हो गये थे। इसका निमित्त प्रसंग था-बाल्यावस्था में उन्हें भूत प्रेत का डर लगता था और समय कुसमय अंधेरे में जाने से वे डरते थे। रम्भा नाम की नौकरानी ने बताया कि राम-नाम का जप करने से भूतप्रेत भाग जाते हैं तब से ही बालक गांधी ने राम-नाम को अपनाया। यही राम-नाम जीवन भर उनका मूल मंत्र रहा। मरते समय भी उन्होंने राम का ही नाम लिया।[9] प्रकट रूप से बचपन में ही उन्हें अपनी आस्था निर्माण के निमित्त मिलते रहें।

पिता सत्य प्रिय, शूर, उदार, शुद्ध न्याय प्रिय राजनैतिक व्यक्ति थे। उनके दादा तथा पिता तत्कालीन काठियावाड़ की रियासतों के दीवान, प्रधान रहे थे। वे राजभक्ति, कर्त्तव्यनिष्ठा, सदाचारिता एवं जनहित कल्याणकारी कार्यों के लिए प्रसिद्ध थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि पिता-दादा के ये संस्कार ही गांधी में अधिक सक्रियता से संचरित हुये। प्रबुद्ध चर्चा के रसिक पिता करमचंद बीमार होने पर हिन्दू पंडितों, जैन मुनियों, पारसी दरवेशों और मुस्लिम औलियों को घर बुलाकर उनसे धर्म चर्चा और वाद-विवाद सुना करते। बचपन में बीमार पिता की तीमारदारी के समय गांधी को भी उन चर्चाओं और बहसों को सुनने का मौका मिल जाया करता। उस समय उनको धर्म और अध्यात्म की ऊँची बातें भले ही समझ न पड़ी हो परंतु कई धर्मों के विद्वानों को एक साथ बैठकर मैत्रीपूर्ण ढंग से चर्चा करते देख धार्मिक सहिष्णुता की छाप बाल मानस पर अवश्य पड़ती थी।

जन्मदात्री, संस्कार निर्मात्री माता एवं राजनीति के पेचीदे सवाल हल करने की क्षमता भरने वाले पिता के प्रति गांधी का अपूर्व समर्पण था। अपने हृदय की भावुक प्रस्तुति में उन्होंने यहाँ तक कहा 'जगत् में माँ-बाप का प्रेम जैसा मैंने जाना है, ऐसा जगत् में कोई मुझसे अधिक माँ या बाप

को चाहता है तो मैं कहूँगा, उसको मेरे पास ले आओ मैं उसे देख लूँ। अपने माता-पिता को मैंने इसी से अपने वश में रखा था।' यह उनके समर्पण का सबूत है।

अन्य संस्कार

चलती-फिरती, फेरियोंवाली सिनेमा-चित्रावली से बालक मोहन के हृदय पर पितृभक्त श्रवण कुमार की अनोखी छाप छपी। इस घटना को पुस्तक में भी पढ़ा और जीवन में गढ़ा। इसका संवादी कथन उपलब्ध है। एक बार अपनी दिल्ली यात्रा में गांधी ने अपने पुत्र रामदास से कहा—'बस, तुम मेरी ही सेवा में लगे रहो, इससे ही तुमको सब कुछ मिल जायेगा। तुमको मैंने बताया तो है ही कि मैंने सब कुछ पितृ-भक्ति और पितृ-सेवा से ही पाया है।....बचपन में मैंने एक चित्र काँवर उठाकर चलने वाले श्रवण का देखा, मुझ पर उसका भारी प्रभाव पड़ा। .....माँ मुझ से ही पैर दबवाती थीं और मेरे बापू तो मेरे बिना और किसी से सेवा नहीं लेते थे।'[10] पिता के आखिरी दिन तक सेवा का क्रम उत्तरोत्तर बढ़ता गया। ये सेवा के संस्कार भविष्य में समष्टि भाव को प्राप्त हुए।

राजकोट में एक बार बालक मोहन ने सत्यवादी राजा 'हरिशचन्द्र' का नाटक देखा। सत्याचरण, सत्यनिष्ठा का गहरा प्रभाव उसके हृदय पर पड़ा। जीवन के अन्तिम क्षणों तक पत्थर में उत्कीर्ण आलेखवत् सत्य की छाप गांधी पर अंकित रही। कालांतर में गांधी ने अनुभव किया कि सत्य का मार्ग खांडे की धार के जैसा है पर वे कभी इससे च्युत न हुए। सत्य के संबंध में उनका अभिमत था 'सत्य एक विशाल वृक्ष है। उसकी ज्यों-ज्यों सेवा की जाती है त्यों-त्यों उसमें अनेक फल आते हुए दिखाई देते हैं। उनका अंत ही नहीं होता। ज्यों-ज्यों हम गहरे पैठते हैं, त्यों-त्यों उनमें से रत्न निकलते हैं सेवा के अवसर हाथ आते रहते हैं।'[11] बचपन में पड़ा सत्यबीज गांधी के जीवन में शतशाखी बनकर जीवन का ध्येय बना। अपनी आत्मकथा में लिखा-मैं पुजारी तो सत्यरूपी परमेश्वर का ही हूँ। वह एक ही सत्य है, और दूसरा सब मिथ्या है। यह सत्य मुझे मिला नहीं है, लेकिन मैं इसका शोधक हूं। इस शोध के लिए मैं अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु का त्याग करने को तैयार हूँ और मुझे यह विश्वास है कि इस शोधरूपी यज्ञ में इस शरीर को होमने की मेरी तैयारी है और शक्ति है। लेकिन जब तक मैं इस सत्य का साक्षात्कार न कर लूँ, तब तक मेरी अन्तरात्मा जिसे सत्य समझती है उस काल्पनिक सत्य को अपना आधार मानकर, अपना दीपस्तम्भ समझकर, उसके सहारे अपना जीवन व्यतीत करता हूँ।[12] जाहिर है गांधी के भीतर सत्य के संस्कार कितने गहरे और विराट् थे।

सहिष्णु कस्तूरबा

दांपत्य जीवन में अपनी अर्द्धांगिनी से मिली अहिंसा की प्रेरणा का जिक्र करते हुए गांधी ने जॉन एस. होईलैंड को बताया-पत्नी को अपनी इच्छा के आगे झुकाने की कोशिश में मैंने उनसे अहिंसा का पहला सबक सीखा। एक ओर तो वह मेरे विवेक हीन आदेशों का दृढ़ता से विरोध करतीं, दूसरी ओर मेरे अविचार से जो तकलीफ होती उसे चुपचाप सह लेती थीं। उनके इस आचरण से मुझे अपने-आप पर शर्म आने लगी और मैं इस मूर्खताभरे विचार से अपना पीछा छुड़ा सका कि पति होने के नाते मैं उन पर शासन करने के लिए जन्मा हूँ। इस तरह वह अहिंसा की शिक्षा देने वाली मेरी

गुरु बनीं।[13] कस्तूरबा के प्रति गांधी के हृदय में ऊँचा स्थान था। इससे यह भी स्पष्ट है कि वे अपनी पत्नी को अहिंसा का सबक सिखाने वाली प्रेरिका भी मानते थे।

भारतीय संस्कृति

भारतीय संस्कृति के उच्च आदर्शों में गांधी को पलने का सौभाग्य मिला। इस महान् संस्कृति के बदौलत ही उनमें दैविक गुणों का संचार हुआ। ये गुण ही प्रमुख रूप में आस्था एवं जीवन की सफलता के पर्याय बनें। सज़ीदगी, सहानुभूति, प्रेम, करुणा, मैत्री, अभय, सत् संस्कारों का बीजारोपण हिंदू संस्कृति के अंग हैं। 'प्राणी मात्र एक है, सभी जीव ईश्वर के अवतंस है'—हिंदू धर्म के इस प्रचलित विश्वास ने अहिंसा में उनकी आस्था को दृढ़ किया। हिंदू धर्म का मूल तत्त्व है : सत्य-स्वरूप ईश्वर की परमसत्ता में अडिग आस्था। जीव-मात्र के साथ एकत्व का बोध और ईश्वर साक्षात्कार के लिए प्रेम अर्थात् अहिंसा के मार्ग का अवलंबन। सनातन हिन्दू धर्म पुनर्जन्म और मोक्ष के सिद्धांतों को स्वीकार करता है और मोक्ष को अंतिम तथा श्रेष्ठ पुरुषार्थ समझता है।

इस धर्म के संबंध में गांधी ने कहा था हिंदू धर्म, जिस रूप में मैं उसे समझ सका हूं, मेरी आस्था को संतुष्ट और परिपूर्ण करने वाला है। क्योंकि हिंदू धर्म की यही तो खूबी है कि 'इसमें संसार के सभी पैगंबरों की पूजा के लिए स्थान है।....यह अपने-अपने विश्वास या मजहब के अनुसार ईश्वर की पूजा का सबको अधिकार देता है; इसीलिए उसका किसी भी धर्म से कोई विरोध नहीं है।'[14] इस प्रकार की विराट् भावना से अनुस्यूत हिंदू धर्म गांधी की एक मात्र आस्था का केंद्र था। उनके शब्दों में—मैंने बचपन से हिंदू धर्म का अभ्यास किया है। जब मैं छोटा था तो भूत-प्रेतों के डर से बचने के लिए मेरी दाई मुझे रामनाम लेने को कहती थी। बाद में ईसाईयों, मुसलमानों और दूसरे धर्म को मानने वाले लोगों के संपर्क में आया और अन्य धर्मों का पर्याप्त अध्ययन करने के बाद भी मैं हिंदू धर्म को अपनाये रहा। मेरा विश्वास है कि परमात्मा मुझे उस धर्म की रक्षा करने का साधन बनायेगा, जिसे मैं प्रेम करता हूँ, जिसका पालन करता हूँ और जिसका मैंने अभ्यास किया है।[15] आस्थानुरूप उन्होंने इस धर्म का स्थिरता से पालन किया और समय-समय पर प्रकट किया कि मेरा जीवन अहिंसा-धर्म द्वारा भारत की सेवा के लिए समर्पित है, जिसे मैं हिन्दू धर्म की बुनियाद मानता हूँ।

स्वयं को हिंदू क्यों मानते इसका स्पष्टीकरण था-मैंने कई दफा अपने को 'सनातनी हिन्दू' कहा है। 'सनातन शब्द का प्रयोग मैंने उसके स्वाभाविक अर्थ में किया है। मैं नीचे लिखे कारणों से अपने को 'सनातनी हिन्दू' कहता हूँ-

- मैं वेदों को, उपनिषदों को, पुराणों को और उन सब वस्तुओं को मानता हूँ, जो हिन्दू-शास्त्र के नाम से विख्यात है। इसलिए मैं अवतारों और पुनर्जन्म को भी मानता हूँ।
- मैं वर्णाश्रम-धर्म को मानता हूँ, परन्तु अपनी समझ के अनुसार ठीक वैदिक अर्थ में, आजकल के प्रचलित और अपूर्ण अर्थ में नहीं।
- मैं गौरक्षा को मानता हूँ परन्तु वर्तमान प्रचलित अर्थ से बहुत व्यापक अर्थ में-(गौरक्षा का अर्थ है-ईश्वर की संपूर्ण मूक सृष्टि की रक्षा।)
- मैं मूर्ति-पूजा में अविश्वास नहीं करता।[16]

अपनी आत्मकथा में इस आस्था को प्रस्तुति दी कि हिंदू धर्म में जो सूक्ष्म और गूढ़ विचार है, आत्मा का निरीक्षण है, दया है वह दूसरे धर्मों में नहीं है। दक्षिण अफ्रीका प्रवास के प्रथम वर्ष में गांधी के हिन्दू धर्म आस्था की कसौटी हुई। क्वेकर (ईसाइयों का एक संप्रदाय) लोगों ने गांधी को ईसाई बनाने की कोशिश की, लेकिन धर्म परिवर्तन के मामले में उन्होंने बिलकुल स्पष्ट कह दिया-अंतर से आवाज उठे बिना हिंदू धर्म का परित्याग एवं ईसाई-धर्म को अंगीकार मैं नहीं कर सकता। उन्होंने हिंदू धर्म के साथ-साथ दूसरे सभी धर्मों का अध्ययन-मनन किया और अंत में इस निर्णय तक पहुंचे कि 'धर्म सभी अच्छे हैं; लेकिन साथ ही अपूर्ण भी है, क्योंकि उनकी व्याख्या या तो ठीक से नहीं की गई या वेमन से की गई और अक्सर गलत भी की गई।' स्वयं को कट्टर हिंदू मानते हुए भी गांधी ने इस धर्म में व्याप्त जाति-व्यवस्था, छुआछूत को मानव जाति का अभिशाप बतलाया। स्पष्ट कहा-भगवान् ने इन्सान को किसी ऊँच नीच व्यवस्था के साथ पैदा नहीं किया है।

गांधी की अहिंसा का अर्थ है तमाम जीवों के लिए पूरा प्रेम। अतः अहिंसा की दृष्टि से भी छुआछूत-अस्पृश्यता का कोई औचित्य नहीं रह जाता। 'अछूतपन हिन्दू धर्म का अंग नहीं है, वह हिन्दू धर्म में पैठी हुई एक सड़न है, वहम है, पाप है; और उसे मिटाना हर एक हिंदू का धर्म है, उसका परम कर्तव्य है।'[17] उनकी दृष्टि में अस्पृश्यता के सर्प को मारे बिना हम कुछ नहीं कर सकते। अस्पृश्यता वह विष है, जो हिंदू-समाज के मर्म को खोखला कर रहा है। स्वराज्य की प्राप्ति में भी अछूतों की मुक्ति को अनिवार्य बतलाया। उनका स्पष्ट कथन था, यदि 'भारत की आबादी के पांचवें हिस्से को स्थायी गुलामी की हालत में रखते हुये स्वराज्य मिल भी मिल गया, तो स्वराज्य एक शब्द मात्र होगा।' ये शब्द गांधी के भीतर अस्पृश्यता निवारण की तड़फ को जाहिर करते हैं। मानवीय संवेदनशीलता के आधार पर उन्होंने इस प्रथा का विरोध किया, क्योंकि इस अमानवीय तत्त्व के कारण हिन्दू समाज की अपार हानि हुई है।

सांस्कृतिक मूल्य

हिंदू धर्म आस्था प्रधान धर्म है। इसके अनुयायी किसी-न-किसी इष्ट के प्रति समर्पित होते हैं। यह समर्पण ही उनकी साधना एवं सफलता का राज होता है।

ईश्वरीय-आस्था

हिन्दू धर्म में पलने के कारण गांधी की आस्था का केन्द्र-विंदु ईश्वर था। अपने इष्ट के प्रति उनके दिल में गहरी निष्ठा थी। इसी से उनमें तितिक्षा का अद्‌भुत विकास हुआ। अपनी आस्था के सहारे उन्होंने शारीरिक कष्ट, सामाजिक तिरस्कार एवं राजनैतिक विद्रोह सब कुछ सहज भाव से सहन किया। उनकी दृष्टि में ईश्वर स्वयं में परिपूर्ण तथा निर्द्वन्द्व अध्यात्मिक सत्ता है। ईश्वर के विषय में उनका मानना था 'ईश्वर तो गुण-दोष से परे है, उसका वर्णन नहीं हो सकता, वह तो औचित्य है, अप्रमेय है। ऐसे ईश्वर के बारे में जीती जागती श्रद्धा होने का अर्थ है मनुष्यमात्र को अपना बंधु मानना। इसका अर्थ यह भी है कि सब धर्म-मजहबों के विषय में एक-सा आदर भाव रखना।' वास्तव में गांधी का मानव-प्रेम, सर्वधर्म-समभाव इसी से संचालित था। उनका यह दावा था कि ईश्वर किसी तिजोरी में बंद नहीं है कि उसके पास केवल एक छोटे से छेद के जरिए ही पहुँचा जा सके। यदि हृदय पवित्र और मन अहंकार से शून्य है तो उसके पास पहुँचने के अरबों रास्ते खुले हुए हैं।

अहिंसा के विकास में ईश्वर की अनन्य भूमिका का जिक्र किया-अहिंसा की तालीम में पहली जरूरी चीज तो ईश्वर के बारे में जीती जागती श्रद्धा है। जिसमें ईश्वर विषयक पक्की श्रद्धा होगी वह जबान से ईश्वर का नाम लेते हुए कभी बुरा नहीं करेगा। वह तो तलवार नहीं, बल्कि एक ईश्वर पर अपना आधार रखेगा।....कायरता ईश्वर विषयक आस्तिकता का चिह्न नहीं। ईश्वर पर जो सच्ची आस्था रखता है उसमें तलवार को काम में लाने की ताकत होती है, पर वह उसे काम में लाता नहीं, क्योंकि वह जानता है कि हर एक आदमी ईश्वर की ही प्रतिमा है।

....अहिंसा की तालीम के लिए जो दूसरी जरूरी चीज है उस पर आता हूँ। इस्लाम का 'अल्लाह' ईसाईयों का 'गॉड' और हिन्दुओं का 'ईश्वर' असल में एक ही है।

तीसरी जरूरी चीज है सत्य और पवित्रता को स्वीकार करना, क्योंकि यह नहीं हो सकता कि मनुष्य ईश्वर के विषय में तो प्रबल आस्था रखने का दावा करे और वह पवित्र और सत्यनिष्ठ न हो।[18] इससे प्रकट होता है कि अहिंसा की तालीम में भी उन्होंने ईश्वरीय आस्था को महत्त्वपूर्ण माना। उनका यह मानना था कि अगर हम अहिंसा और सत्य के सच्चे भक्त हैं; तो ईश्वर हमें कठिन-

से-कठिन समस्याओं को हल करने की आवश्यक शक्ति दे देगा। एकदा जिज्ञासु का प्रश्न था-जहाज से नेटाल की धरती पर यदि भारतीयों को न उतरने दिया जायेगा तो आप क्या करेंगे? उत्तर था-'मुझे आशा है कि उन्हें माफ कर देने और उन पर मुकदमा न चलाने की हिम्मत और बुद्धि ईश्वर मुझे देगा। मुझे उन पर जरा भी गुस्सा नहीं है। उनकी नासमझी और तंगदिली पर अफसोस ही है।' ईश्वरीय आस्था गांधी की प्रत्येक समस्या का सकारात्मक हल थी। वे अपनी शक्ति का स्रोत सदैव ईश्वर को मानते थे। स्वयं के बारे में उनका अभिमत था जो ईश्वर मुझे देता है इसके अलावा मेरे पास कोई ताकत नहीं है। सिर्फ नैतिक प्रभाव के अलावा मेरी देशवासियों पर भी कोई सत्ता नहीं है।

इस समय संसार पर जिस भीषण हिंसा का साम्राज्य है उसकी जगह अहिंसा स्थापित करने के लिए ईश्वर मुझे शुद्ध अस्त्र समझता होगा तो वह मुझे बल भी देगा और रास्ता भी दिखायेगा। मेरा बड़े से बड़ा हथियार तो मूल प्रार्थना है। गांधी दृष्टि में शांति स्थापना का काम ईश्वर के समर्थ हाथों में है। उसके हुक्म के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता। उसका हुक्म उसके कानून की शकल में ही जारी होता है। वह कानून सदा वैसा ही रहता है कभी बदलता नहीं। उसमें और उसके कानून में कोई भेद भी नहीं है। हमें उसे और उसके कानून की जो हल्की सी झलक दिखायी देती है वह मेरे अन्तर को आनन्द, आशा और भविष्य में श्रद्धा से भर देने के लिए काफी है।[19] उनका श्रद्धालु चित्त आजादी की राहों पर आने वाली बाधाओं का पार भी ईश्वरीय शक्ति में खोजता एवं समाधान भी पाता।

यह सोच थी कि ईश्वर की कृपा से मैं कोई आधी सदी से जो काम कर रहा हूँ अगर उसके लिए मेरी और जरूरत न रही, तो शायद वह मुझे उठा लेगा। लेकिन मेरा ख्याल है कि मेरे करने को अभी बहुत काम है। ...अहिंसात्मक साधनों से भारत अपने लक्ष्य को पहुँच जायेगा फिर उसके लिए चाहे डांडी-कूच से भी ज्यादा उग्र लड़ाई लड़नी पड़े या उसके बगैर ही ऐसा हो जाये। मैं ईश्वर से उस प्रकाश की याचना कर रहा हूँ जो अंधकार का नाश कर देगा।

ईश्वर संबंधी गांधी के विचारों से यह प्रकट होता है कि उनकी श्रद्धा इष्ट के प्रति घनीभूत थी। हिन्दू संस्कृति का प्रभाव उनके हृदय में न केवल अंकित ही था अपितु पल्लवित एवं पुष्पित था। अतः जो शक्ति, जो प्रेरणा उन्होंने ईश्वरीय आस्था से पाई अन्यत्र दुर्लभ मिलेगी। आस्था कर्म का आधार बनीं यही गांधी की श्रद्धा का फलित है।

मनुष्य का ईश्वर के प्रति कर्तव्य का स्थान सबसे ऊँचा है। इस श्रद्धा के सहारे वे कार्य सिद्धि की कामना करते। उदाहरण स्वरूप 'ईश्वर हमारे भीतर और बाहर की सारी अपवित्रता दूर करे। ईश्वर करे, भारत को ऐसी शक्ति प्राप्त हो कि वह अगले 30 सितम्बर तक विदेशी वस्त्रों के पूर्ण बहिष्कार को सफल बना सके ओर इस प्रकार अपने पवित्र निश्चय को पूरा कर सके।'[20] जाहिर है एक ओर बापू सफलता का सुयोग ईश्वर में खोजते तो दूसरी ओर समय-समय पर ईश्वरीय कृपा की अनुभूति करते। फीनिक्स, टॉलस्टॉय फार्म और साबरमती-आश्रम तीनों जगहों में हिंसक जीवों को न मारने के नियम का यथाशक्ति पालन किया गया। तीनों जगहों में निर्जन जमीनें बसानी पड़ी थीं। तीनों स्थानों में सर्पादि का उपद्रव काफी था। तिस पर भी आज तक एक भी जान खोनी नहीं पड़ी। इसमें मेरे समान श्रद्धालु को तो ईश्वर के हाथ का, उसकी कृपा का ही दर्शन होता है।.. ..सर्पादि को न मारने पर भी आश्रम-समाज के पच्चीस वर्ष तक बचे रहने को संयोग मानने के बदले

ईश्वर की कृपा मानना यदि वहम हो, तो वह वहम भी बनाये रखने जैसा है।[21] सारी मानव जाति पर अपनी कृपा सदा बनाये रखने की प्रार्थना ईश्वर से करते।

ईश्वरीय कल्पना विकासात्मक थी। उसका एक पहलू व्रतमय ईश्वर भी है। गांधी की दृष्टि में ईश्वर खुद निश्चय की, व्रत की संपूर्ण मूर्ति है। उसके कायदे में से एक अणु, एक जरा भी हटे तो वह ईश्वर न रह जाय। सूरज बड़ा व्रतधारी है, इसलिए जगत् का काल तैयार होता है और शुद्ध पंचांग (जंत्री) बनाये जा सकते हैं। सूर्य ने ऐसी साख जमाई है कि वह हमेशा उगा है और हमेशा उगता रहेगा और इसीलिए हम अपने को सलामत मानते हैं। तमाम व्यापार का आधार एक टेक पर रहता है। व्यापारी एक-दूसरे से बंधे हुए न रहें तो व्यापार चले ही नहीं। यों व्रत सर्वव्यापक सब जगह फैली हुई चीज दिखाई देता है। तब फिर जहाँ अपना जीवन गढ़ने का सवाल हो, ईश्वर के दर्शन करने का प्रश्न हो, वहाँ व्रत के बगैर कैसे चल सकता है। इसलिए व्रत की जरूरत के बारे में हमारे दिल में कभी शक पैदा ही नहीं होना चाहिये।[22] प्रकट रूप से ईश्वर के साक्षात्कार हेतु उन्होंने व्रत के महत्त्व को स्वीकारा। अगर ईश्वर में भरोसा रखते हैं और उससे डरते हैं तो फिर हमें किसी से डरने की जरूरत नहीं-न राज-महाराजाओं से न वायसरायों से, और न बादशाह पंचम जॉर्ज से ही। स्पष्टतया गांधी की आस्था का सर्वोच्च केंद्र बिंदु ईश्वर बना।

मार्गदर्शिका गीता

हिंदू धर्म (वैष्णव पंथ) के संस्कार गांधी को पारिवारिक-परिवेश में मिलें, पर उनका स्थायित्व समझपूर्वक हुआ। इसका श्रेय श्रीमद्भगवत् गीता को जाता है। गीता हिन्दू धर्म का आदरास्पद ग्रंथ है। इसकी शाश्वत प्रेरणा गांधी-जीवन की पथदर्शिका थी। उन्हीं के शब्दों में-मेरे लिए तो गीता आचारण की एक अचूक मार्गदर्शिका बन गयी है। उसे मेरा धार्मिक कोष ही कहना चाहिए। अपरिचित अंग्रेजी शब्दों के हिज्जे या अर्थ देखने के लिए जिस तरह मैं अंग्रेजी कोश खोलता, उसी तरह आचार-संबंधी कठिनाइयों और उसकी अटपटी गुत्थियों को गीता के द्वारा सुलझाता। यह था गांधी का गीता के प्रति आदरास्पद भाव।

20 वर्ष की उम्र में, 1889 को गीता से गांधी का प्रथम परिचय हुआ। विलायत में रहते लगभग एक वर्ष हुआ। इस बीच दो थियॉसॉफिस्ट मित्रों से पहचान हुई। दोनों सगे भाई थे और अविवाहित थे। उन्होंने गांधी से गीता की चर्चा की। उनके साथ गीता अध्ययन प्रारंभ हुआ। गीता विषयक उस समय की अपनी सोच का चित्रण करते हुए लिखा 'मुझे लगा यह कोई ऐतिहासिक ग्रंथ नहीं हैं, परंन्तु भौतिक युद्ध के बहाने इसमें उस द्वन्द्व का वर्णन किया गया है, जो मानव-जाति के हृदय में सतत होता रहता है और भौतिक युद्ध केवल इसीलिए खड़ा किया गया है कि भीतरी द्वन्द्व का वर्णन अधिक आकर्षक हो जाय।'[23] इस तार्किक सोच से ऊपर उठकर गीता के रहस्य को पाने की कोशिश हुई। और दूसरे ही अध्याय में भौतिक युद्ध के नियम सिखाने के बजाय स्थितप्रज्ञ के लक्षण देखकर उनके हृदय में नया ऊहापोह खड़ा हुआ। और बहुत जल्दी ही विचारों का प्रवाह भक्ति-श्रद्धा के अनुरूप गीता को समझने के लिए क्षमतावान् बन गया। गहन गुत्थियाँ सुलझने लगी। भक्ति के बिना ज्ञान व्यर्थ है। इसलिए गीता कहती है, भक्ति होगी तो ज्ञान अपने आप आ जाएगा। यह भक्ति शाब्दिक पूजामात्र नहीं है, यह तो 'सिरका सौदा' है। इसीलिए गीताकार ने भक्त के लक्षण स्थितप्रज्ञ जैसे ही बतलाये हैं।

'ध्यायते विषयान्पुसःसंगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।
क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृति भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥'

इस श्लोक का मेरे मन पर गहरा असर पड़ा। उनकी भनक मेरे कान में गूँजती ही रही। उस समय मुझे लगा कि भगवद्गीता अमूल्य ग्रंथ है। यह मान्यता धीरे-धीरे बढ़ती गयी और आज तत्त्वज्ञान के लिए मैं उसे सर्वोत्तम ग्रन्थ मानता हूँ। निराशा के समय में इस ग्रंथ नें मेरी अमूल्य सहायता की है।[24] प्रकट रूप से बहुमूल्य संस्कार अंर्जित किये। उन्होंने यह स्वीकारा कि गीता अध्ययन से पहले अहिंसा धर्म को बहुत थोड़ा जानते, जीव दया की स्फुरणा नहीं थी। इसके पहले मैं देश में मांसाहार कर चुका था। मैं मानता था कि सर्पादिक का नाश करना धर्म है। मुझे याद है एक बिच्छू को भी मैंने मारा था। उस समय उनका मानना था कि हमें अंग्रेजों के साथ लड़ने की तैयारी करना है।

दक्षिण अफ्रीका में गीता का अभ्यास स्वयं द्वारा स्थापित 'जिज्ञासु-मण्डल' के साथ शुरू किया। इसी मंडल में स्वामी विवेकानन्द को, राजयोग को, पातंजल-योगदर्शन का पठन-पाठन भी चला। इस समय गीता को गहराई से मनन करने का अवसर मिला। केवल मनन ही नहीं किया, गीता के तेरह अध्याय तक कण्ठस्थ किये। ऐसा उल्लेख आत्मकथा में किया है। जोहान्सबर्ग में कोम की सेवा के संकल्प के साथ ही गीता को नये सिरे से पढ़ने पर अन्तर्दृष्टि बढ़ने लगी। इस तथ्य को बखूबी प्रस्तुति दी—उसके अपरिग्रह; 'समभाव' इत्यादि शब्दों ने तो मुझे जैसे पकड़ ही लिया। यही धुन रहती थी कि समभाव कैसे प्राप्त करूं। कैसे उसका पालन करूँ? हमारा अपमान करने वाला अधिकारी, रिश्वतखोर, चलते रास्ते विरोध करने वाले, कल जिनका साथ था, ऐसे साथी, उनमें और उन सज्जनों में जिन्होंने हम पर भारी उपकार किया है, क्या कोई भेद नहीं है? अपरिग्रह का पालन किस तरह संभव है? क्या यह हमारी देह ही हमारे लिए कम परिग्रह है? स्त्री पुरुष आदि यदि परिग्रह नहीं है तो फिर क्या है?[25] गांधी के भीतर विचारों का नया दौर शुरू हो गया। वे गीता के प्रत्येक निर्देश पर आचरण करने की पूरी-पूरी कोशिश करने लगे।

गांधी ने अपने लिए गीता की भूमिका का उल्लेख किया—'गीता मेरे लिए दुनिया के अन्यान्य धर्मग्रंथों की चाबी-जैसी बन गयी है। वह मेरे लिए उन ग्रंथों में पाये जाने वाले गहनतम रहस्यों को खोल देती है।' इससे यह अंदाजा किया जा सकता है कि उन्होंने गीता को कितनी सूक्ष्मता से पढ़ा होगा। विभिन्न जिज्ञासाओं का समाधान उसमें खोजा था। बड़ा जटिल प्रश्न है मनुष्य कर्म के बन्धन से अर्थात् पाप के दोष से मुक्त कैसे हो सकता है? गीता ने इस प्रश्न का उत्तर निश्चित भाषा में दिया है : 'निष्काम कर्म से' कर्मफल का त्याग करके। सब कर्मों को ईश्वरार्पण करने से अर्थात् अपने आपको शरीर और आत्मा के साथ ईश्वर को अर्पण कर देने से। यह गांधी के लिए केवल शब्दपाठ ही न रहा अपितु बोध पाठ बन गया। इसी निष्काम कर्म के आधार पर उन्होंने शारीरिक श्रम को भी महत्त्व दिया।

एक व्यक्ति का प्रश्न था—'बापू क्या आप श्रम की महत्ता पर अनावश्यक जोर नहीं दे रहे हैं?' बापू का उत्तर था—'बिल्कुल नहीं। काम को जितना महत्त्व दिया जाए, कम है। मैं तो केवल भगवद्गीता की ही शिक्षा दे रहा हूँ। भगवान् ने कहा, 'अगर मैं एक पल भी बिना सोए, सदा काम

में न लगा रहूँ तो संसार न चले। इसलिए मैं डाक्टरों, वकीलों आदि सफेदपोशों से भी कहता हूँ कि आप चर्खा चलाएँ।' इससे देशवासियों को उदाहरण मिलेगा।'[26] गांधी का यह आह्वान सुन अनेक प्रबुद्ध जन कर्म को अपना धर्म मानने लगे। स्वयं ने भी कठोर परिश्रम अपनाया जिसकी मिसाल है एक दिन में 20 घंटे तक कुछ न कुछ कर्म करना।

'ट्रस्टी' शब्द का अर्थ गीता अध्ययन की बदौलत अच्छी तरह समझ में आया, ऐसा गांधी का कहना था। 'ट्रस्टी' यों तो करोड़ों की सम्पत्ति रखते हैं, पर उसकी एक पाई पर उनका अधिकार नहीं होता। इसी तरह मुमुक्षु को अपना आचरण रखना चाहिए-यह पाठ मैंने गीता से सीखा। अपरिग्रही होने के लिए, समभाव रखने के लिए, हेतु का और हृदय का परिवर्तन आवश्यक है। यह बात मुझे दीपक की तरह स्पष्ट दिखाई देने लगी। केवल सैद्धांतिक पक्ष ही उनकी प्रेरणा का केन्द्र नहीं बना अपितु उन्होंने प्रायोगिक स्तर पर भी इसे अपनाया। उन्होंने लिखा-मैंने बम्बई में एक बीमा एजेंट के समझाने में आकर अपना दस हजार का बीमा करा लिया था। जब ये विचार मेरे मनमें उठें, तो तुरंत रेवाशंकर भाई को बम्बई लिखा कि बीमा की पॉलिसी रद्द कर दी जाय। कुछ रुपया वापिस मिल जाय तो ठीक, नहीं तो खेर। बाल-बच्चों और गृहिणी की रक्षा वह ईश्वर करेगा, जिसने उनको और हमको पैदा किया है। यह मेरे उस पत्र का आशय था।[27] तत्वतः गांधी की गीता समझ रचनात्मक बनीं।

गीता की भूमिका उनके लिए बेजोड़ थी। इसकी झलक 'मार्गदर्शिका', 'आचरण-संहिता', 'धर्म-कोश', 'आत्मिक प्रेरणा का स्रोत', और 'संकट में सच्चा मित्र और सहायक' इत्यादि अभिधाओं में मिलती है। वे कहते—'जब मुझे प्रकाश की एक किरण भी कहीं दिखाई नहीं देती, मैं उसे भगवद्गीता में खोजता हूँ और उसके किसी श्लोक में निहित आशा का संदेश मेरे भारी-से-भारी दुःख को चुटकियाँ बजाते दूर कर देता है। अनंत दुःख, कष्ट और आपदाओं से भरे अपने इस जीवन में जो स्थिर और अविचलित रह सका हूँ उसका सारा श्रेय भगवद्गीता को ही है।' जीवन को भक्ति और आंनद पूर्वक जीने की कला उन्हें इस महाग्रंथ से मिली। जीवन के प्रति सहज निस्पृह भाव का उदय भी शायद इसकी प्रेरणा से संभव बना था। उनकी मृत्यु की घटना इसका प्रबल प्रमाण है।

मृत्यु का पहला संकेत 20 जनवरी की शाम को बिड़ला भवन में अपनी प्रार्थना सभा को संबोधित करते समय तब मिला जब उन पर फेंका गया बम कुछ दूरी पर गिरा-विस्फोट हुआ पर वे शांति पूर्वक भाषण देते रहे। दूसरे दिन निरुद्वेग रहने पर बधाईयां दी गयी। तब उन्होंने कहा—'सच्ची बधाई के योग्य तो मैं तब हूँगा जब विस्फोट का शिकार होकर भी मुस्कराता रहूँ और हमला करने वाले के प्रति मेरे मन में जरा भी विद्वेष न हो।' सहज भाव से बम फेंकने वाले मदनलाल को 'गुमराह' कह कर क्षमा कर दिया। प्रार्थना सभा में आने वालों की तलाशी ली जाये यह बापू नहीं चाहते थे। उन्होंने स्पष्ट कहा—'अगर मरना ही बदा है तो मुझे प्रार्थना-सभा में ही मरने दो। और यह ख्याल बिलकुल गलत है कि आप मेरी रक्षा कर सकते हैं।'[28] उनका यह कथन सच निकला और वही प्रार्थना स्थल का मार्ग गांधी की अंतिम साँसों का साक्षी बना। 'हे राम...हे राम..हे राम।' कहते हुए गीता का अमर पुजारी, आजादी का स्रष्टा निष्प्राण हो गया।

विराट् भाव से गांधी ने गीता को पढ़ा, जीवन में गढ़ा और अंतिम साँसों तक कसौटी पर कसा ऐसा कहें तो अतिश्योक्ति न होगी।

रामायण

श्रीमद्भागवत्गीता के अनन्तर यदि कोई गांधी के लिए प्रेरणा स्रोत हिंदू ग्रंथ बना तो वह रामायण है। उन्होंने रामायण से मर्यादा एवं सदाचारपूर्ण जीवन तथा रामराज्य के आदर्श की प्रेरणा प्राप्त की। तुलसीदास की रामायण उनके लिए शाश्वत प्रेरणा का स्रोत थी और उनकी प्रार्थनाओं में उसे भगवद्गीता-जैसा ही स्थान प्राप्त था।

एक मंत्र उनकी जुबान पर रहता था, अतः उनका मंत्र कहा जाता है–

'जड़ चेतन गुण दोष मय, विश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि विकार॥'[29]

ऐसे ही रामायण के अनेक दोहे गांधी के लिए आदर्श थे। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा–'तुलसीदास की रामायण को मैं भक्तिमार्ग का सर्वोत्तम ग्रंथ मानता हूँ।'

रामायण के नायक श्री राम गांधी की दृष्टि में व्यक्ति नहीं अलौकिक दिव्य शक्ति के प्रतीक थे। उन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम को सदैव आदर्श के रूप में देखा। श्री राम उनके लिए श्रद्धा के प्रतीक थे। उसका साक्षी है 'राम' नाम का जप। 'बापू के पास एक माला हमेशा रहती थी। सोने के पूर्व लेटे-लेटे 'राम' नाम के साथ उसको भी फेर लेते थे। जप और भक्ति परम्परावश या आदतन राम की ही किया करते थे।'[30] इस प्रकार 'राम' और रामायण गांधी की भक्ति का आधार एवं प्रेरणा प्रदीप बनें।

प्रार्थना

श्रद्धा और भक्ति की अभिव्यक्ति का अमोघ साधन है प्रार्थना। इष्ट के गुणों का स्मरण-संकीर्तन दिव्य जीवन की प्रेरणा का आधार है। इससे प्रार्थी के भीतर यथेष्ट शक्ति का संचार होता है। गांधी प्रार्थना को बहुत महत्त्व देते थे, इसका संवादी कथन है–'प्रार्थना मेरे जीवन का ध्रुवतारा है। एक बार मैं भोजन करना छोड़ सकता हूँ, किंतु प्रार्थना नहीं। आत्मा को परमात्मा में लीन करने का एक मात्र साधन प्रार्थना है।' स्पष्टतया उनकी आत्मा, परमात्मा और भक्ति में अटूट आस्था थी। वे कुछ पदों का प्रतिदिन पाठ करते थे उसके प्रमुख अंश निम्न हैं–

'हरि ओम् ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चजगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥'

अर्थात् सब ईश्वर रूप है। उसका है। इसलिए तेरा कुछ नहीं है। और है भी। लेकिन इस झंझट में भी तू क्यों फंसता है? सब छोड़ तो सब तेरा ही है। अगर कुछ भी तेरा मानेगा, तो तेरे हाथ में कुछ भी नहीं रहेगा। किसी के धन की वासना न कर।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः।

परोपकार के काम करते-करते ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करनी चाहिए।

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजिगुप्सते॥

जो सब जीवों को अपने में और अपने को सब जीवों में देखता है, वह उनसे त्रास नहीं पाता।

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

न तो मैं राज्य की इच्छा करता हूँ, न स्वर्ग की। मोक्ष की भी मुझे इच्छा नहीं है। दुःखी जीवों का दुःख दूर हो, इतनी ही मेरी इच्छा है।

विपदो नैव विपदः संपदो नैव संपदः।
विपद्विस्मरणं विष्णोः संपन्नारायणस्मृति॥

जिसे हम दुःख समझते हैं वह दुःख नहीं है और जिसे हम सुख समझते हैं वह सुख नहीं है। दुःख तो यह है कि हम भगवान् को भूल जायें और सुख यह है कि हम भगवान् को साक्षी समझ कर सभी काम करें।'[31] इस तरह के अनेक आदर्श पद्य गांधी की प्रार्थना के बोल बनते थे।

भजन भी प्रार्थना के रूप में गाये जाते उनमें गांधी को प्रिय थे–

1. रघुपति राघव राजाराम,.....ईश्वर अल्लाह तेरे नाम, 2. वैष्णव जन तो तेने कहिये जो पीर पराई जाणे रे।

इत्यादि प्रेरणा के तौर पर प्रार्थना में गाये जाने वाले बोल उनकी अन्तर जगत् की अभिव्यक्ति के स्रोत हैं। उन्होंने आस्था एवं विश्वास के साथ कहा 'स्तुति, उपासना, प्रार्थना वहम नहीं है, बल्कि हमारा खाना-पीना, चलना-बैठना जितना सच है, उससे भी अधिक सच यह है। यह कहने में अतिश्योक्ति नहीं कि यही सच है, और सब झूठ है।

ऐसी उपासना, ऐसी प्रार्थना, निरा-वाणीविलास नहीं होती। उसका मूल कण्ठ नहीं, हृदय है। अतएव यदि हम हृदय की निर्मलता को पा लें, उसके तारों को सुसंगठित रखें तो उनमें से जो सुर निकलते हैं, वे गगन-गामी होते हैं।' उनकी दृष्टि में विकाररूपी मलों की शुद्धि के लिए हार्दिक उपासना एक रामबाण औषधि है। पर इस प्रसाद के लिए अखंड नम्रता भी जरूरी है।

प्रार्थना गांधी की दिनचर्या का अपरिहार्य अंग बनीं। आश्रम में ठीक प्रातः 4.20 के समय प्रार्थना शब्द से प्रार्थना शुरू होती। सुबह की प्रार्थना का क्रम था : 'जापानी बौद्ध मंत्र, दो मिनट की शांति, ईशावास्य मंत्र, प्रातः स्मरामि वाले आश्रम भजनावली के श्लोक, एकादश व्रत, कुरान शरीफ की आयत, पारसी प्रार्थना, भजन, धुन, गीता या गीताई पारायण जिससे की पूरी गीता एक सप्ताह में समाप्त हो सके, प्रसंगानुसार बाइबिल के अंश या अंग्रेजी भजन भी कभी-कभी सम्मिलित कर लेते थे। प्रार्थना करीब पांच बजे तक पूरी हो जाती।'[32] निश्चित रूप से प्रार्थना गांधी के आत्मा की खुराक थी, जिसके सहारे वे सदैव सहृद्य-सहज निश्छल नजर आते।

आध्यात्मिक-नैतिक बोध पाठ

यह संसार नीति पर टिका हुआ है। नीति मात्र का समावेश सत्य में है। सत्य के खोज की तमन्ना तीव्र हो गयी। नीति का एक छप्पय गांधी के दिल में बस गया। शत्रु को भी प्रेम से जीतना चाहिए। अपकार का बदला अपकार नहीं उपकार ही हो सकता है। यह एक जीवन का सूत्र बन गया। अपनी आत्मकथा में लिखा-उसने मुझ पर साम्राज्य चलाना शुरू कर दिया। अपकारी का भला चाहना और करना, इसका मैं अनुरागी बन गया। बचपन में इसे गुनगुनाता। इसके अनगिनत प्रयोग कियें। वह चमत्कारी छप्पय यह है–

'पाणी आपने पाय, भलुँ भोजन तो दीजे;
आवी नमाये शीश, दंडवत कोडे कीजे।
आपण घासे दाम, काम महोरोनुं कीरीए;
आप उगारे प्राण, ते तणा दुःखमां मरीए।
गुण केडे तो गुण दशगुणो, मन, वाचा, कर्मेकरी;
अवगुण केडे जो गुण करे, तो जगमां जीत्यो सही।'[33]

अर्थात् जो हमें पानी पिलाये, उसे हम अच्छा भोजन करायें। जो आकर हमारे सामने सिर नमाये, उसे हम दंडवत प्रणाम करें। जो हमारे लिए एक पैसा खर्च करे, उसका हम मुहरों की कीमत का काम करें। जो हमारे प्राण बचाये, उसका दुःख दूर करने के लिए हम अपने प्राण तक निछावर कर दें। जो हमारा उपकार करे उसको तो हमें मन, वचन और कर्म से दस गुना उपकार करना ही चाहिए। लेकिन जग में सच्चा और सार्थक जीना उसीका है, जो अपकार करने वाले के प्रति भी उपकार करता है।

जीवन को प्रभावित करने वालों में एक कड़ी छप्पय की है। इसके आदेशों को उन्होंने जीवन में उतारने की भरसक कोशिश की। इसे नीति के रूप में स्वीकार किया एवं सतत् जीवंत प्रेरणा संजोयी। नैतिक सामाजिक जीवन-जीने का यह छप्पय उनके लिए दिशासूचक की तरह पथदर्शन करता रहा।

गिरि-प्रवचन

गांधी का बाइबिल से प्रथम परिचय इंग्लैंड में हुआ। 'नये इकरार' (न्यूटेस्टामेंट) से वो बड़े प्रभावित हुए और खासतौर पर ।गरी-प्रवचन' (सरमन आन दि माउंट) तो उनके हृदय में ही पैठ गया। जो तेरा कुर्ता मांगे उसे अंगरखा भी दे दे, जो तेरे दाहिने गाल पर तमाचा मारे, बायां गाल भी उसके सामने कर दे; 'अपने दुश्मनों को भी प्यार कर और उनके लिए प्रार्थना कर, जिससे वे भी तेरे पिता

परमेश्वर की सच्ची संतान बन सकें'—आदि अंशों को जब मैंने पढ़ा तो मुझे बहुत ही ज्यादा खुशी हुई। बाइबिल में मेरे मन के भावों की गूंज सुनाई पड़ेगी, इसकी तो मुझे उम्मीद भी नहीं थी।[34] आत्मकथा में स्वीकारा कि ईसा के गिरि-प्रवचन का मुझ पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। उसे मैंने हृदय में बसा लिया। बुद्धि ने गीता के साथ उसकी तुलना की।

'बाइबिल' से गांधी ने न्याय के लिए अहिंसक संघर्ष की प्रेरणा प्राप्त की। आगे जाकर यह उनकी आजादी की लड़ाई का हथियार बन गया। 'बुराई को सदैव अच्छाई द्वारा जीतने' का अमर संदेश एवं शत्रु को भी प्रेम से जीतने का रहस्य गांधी को गिरि-प्रवचन में नजर आया।

इस वचन से दूसरे धर्माचार्यों को भी पढ़ने की भावना जगी। मित्र ने कार्लाइन की 'विभूतियाँ और विभूति-पूजा' (हीरोज-एण्ड हीरोवर्शिप) पढ़ने की सलाह दी। उसमें पैगम्बर (हजरत मुहम्मद) का प्रकरण पढ़ा जो वीरता-महानता का संदेश है। पारसी एवं इस्लाम धर्म का भी अध्ययन किया। बुद्ध-चरित्र एवं विभिन्न धर्मों का अध्ययन किया।

ईसाई संत लियो टॉल्स्टॉय

व्यक्तित्व निर्माण में अनेकानेक संघटक योगभूत बनते हैं। ये प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रहकर भी व्यक्ति को प्रभावित करते हैं। अत्यधिक प्रखर परोक्ष कारक भी विचार तरंगों को प्राणवान् बनाने में योगभूत बनते हैं। महात्मा गांधी पर टॉल्स्टॉय का प्रभूत प्रभाव पड़ा जिसकी प्रथम कड़ी निबंध बना। जात-मेहनत तमाम मनुष्यों के लिए लाजिमी है, यह बात सर्वप्रथम टॉल्स्टॉय का एक निबंध पढ़कर गांधी के मन में अंकित हो गयी। यद्यपि इससे पहले वे रस्किन का 'अनटू दिस लास्ट' सर्वोदय पढ़कर अपने जीवन का क्रम इस रूप में बदल चुके थे परन्तु जात-मेहनत अंग्रेजी शब्द 'ब्रेड लेवर' का अनुवाद है। 'ब्रेड लेवर' का शब्दात्मक अनुवाद है रोटी के लिए मजदूरी। रोटी के लिए हर एक मनुष्य को मजदूरी करनी चाहिए।

उनकी दृष्टि में यह मूल खोज टॉल्स्टॉय की नहीं है, लेकिन उनसे बहुत कम मशहूर रशियन लेखक बोन्दरेव्ह (T.M. Bondarev) की है। टॉल्स्टॉय ने उसे रोशन किया और अपनाया। इसकी झाँकी मेरी आंखें भगवद्गीता के तीसरे अध्याय में करती हैं। यज्ञ किये बिना जो खाता है वह चोरी का अन्न खाता है, ऐसा कठोर शाप यज्ञ नहीं करने वाले को दिया गया है। यहां यज्ञ का अर्थ जात-मेहनत या रोटी-मजदूरी ही शोभता है और मेरी राय में यही हो सकता है।[35] स्पष्ट है गांधी की दृष्टि तथ्य को ग्रहण करने में कुशाग्र थी। किस संदर्भ में शब्द का क्या सही अर्थ हो सकता यह कठिन कार्य वे बड़ी सुगमता से संपादित कर लेते। उनके अभिमत में जिसे अहिंसा का पालन करना है, सत्य की भक्ति करनी है, ब्रह्मचर्य को कुदरती बनाना है, उसके लिए तो जात-मेहनत रामबाण-सी हो जाती है।

टॉल्स्टॉय भारत-भू के सामाजिक, धार्मिक एवं दार्शनिक उत्थान तथा अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष में रुचि रखते थे। इस संबंध में उन्होंने 'ए लैटर टू हिन्दू' नाम की पत्रात्मक धारा में भारतीय क्रांतिकारियों को संबोधित करते हुए लिखा-'यदि भारतीय जनता हिंसा के द्वारा गुलाम बनी है, तो इसका अर्थ है कि उसने हिंसा में जीवन के शाश्वत नियम की पहचान नहीं की है।' इस पत्रात्मक प्रेरणा से गांधी अत्यन्त प्रभावित हुए तथा टॉल्स्टॉय के भावपूर्ण अक्षरांकित हृदयोद्गार से 'सामूहिक अवज्ञा' एवं अहिंसात्मक प्रतिरोध का सबक सीखा।

दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह आंदोलन के प्रारंभिक दिनों में गांधी ने पहला पत्र टॉल्स्टॉय को समस्या-समाधानार्थ परामर्श के बतौर लिखा। पत्रोत्तर ने उनके आंदोलन को प्रोत्साहित किया। 1910 ई. में गांधी ने अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' और 'होमरूल' टॉल्स्टॉय को भेजी जिसको टॉल्स्टॉय ने काफी महत्त्वपूर्ण बतलाया।

अगस्त 1915 ई. में गांधी ने पुनः टॉल्स्टाय को एक पत्र लिखा जिसका प्रत्युत्तर टॉल्स्टॉय ने विस्तार पूर्वक लिखा जो टॉल्स्टॉय की मृत्यु के कुछ सप्ताह पूर्व मिला, जिसका कुछ अंश है—मैंने एक लम्बी जिंदगी व्यतीत की और जब मृत्यु के अत्यंत निकट हूँ तब दूसरों को बताना चाहता हूं वह 'पेसिव रेसिन्टेन्स'। यह शांति पूर्ण प्रतिरोध प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह पत्र प्रेम है जो गलत व्याख्याओं से विस्तृत नहीं हुआ है, यह प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह प्रेम मानवीय एकता के लिए संघर्ष कर रहा है और इस संघर्ष के उद्देश्य से जो प्रयास किये जाते हैं वे ही कार्य और प्रयास मानव-जीवन के लिए उच्चतम और एक मात्र नियम हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी आत्मा की गहराई में जाने पर इसे महसूस करता है और जानता है।

...प्रेम व्याघातक रूप से समाजवाद, साम्यवाद, अराजकतावाद, मुक्तसेना, बढ़ते हुए अपराध, बेरोजगारी, धनिकों की विलास-प्रियता एवं गरीबों की दयनीयता आदि क्रांतिकारियों को जन्म देते हैं। प्रतिदिन हो रही हत्याएँ—ये सभी आंतरिक व्याघातक स्थितियों की द्योतक हैं। इसका समाधान प्रेम के नियम की जानकारी और हिंसा के त्याग द्वारा होना चाहिए। इसलिए आपकी 'ट्रासवाला' में घटी क्रियाएं विश्व में वास्तविक उद्देश्य की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है और अन्याय कार्य, जो विश्व में हो रहे हैं, उनसे उपयोगी हैं जिसमें मात्र ईसाई धर्म में व्यक्ति ही नहीं वरन संपूर्ण विश्व हिस्सा लेगा।....टॉल्स्टॉय के इस पत्र ने गांधी के भीतर शांति और अहिंसा के बीज सिंचित कर प्रेम रूपी फल प्रदान किया, जिससे गांधी ने शांति, अहिंसा, प्रेम तीनों को आधार बनाकर अपने जीवन के सारे प्रयोगों में उच्चकोटि की सफलता हासिल की।'[36]

पत्र व्यवहार में जहाँ गांधी ने श्रद्धा और कृतज्ञता निवेदित की है; वहीं मृत्यु के नजदीक खड़े वयोवृद्ध टॉल्स्टॉय ने अपने पत्रों में अत्यधिक हर्ष और प्रसन्नता प्रकट की है। कुछ भी हो, पर गांधी ने टॉल्स्टॉय से पत्र व्यवहार के जरिये अपूर्व प्रेरणा ग्रहण की और यह प्रकट भी किया कि मेरे जीवन को प्रेरित करने वालों में एक श्रद्धास्पद नाम विद्वान विचारक टॉल्स्टॉय का है।

श्रीमद् रायचन्द

गांधी इंसानों में एक चमत्कार थे। उनके चमत्कारी व्यक्तित्व सृजन में अनेक महापुरुषों, महाग्रंथों की प्रत्यक्ष-परोक्ष भूमिका रही है। गांधी का नैतिक-आध्यात्मिक व्यक्तित्व विराट्ता को उपलब्ध हुआ उसका अधिक श्रेय उन्होंने श्रीमद् रायचंद भाई को दिया। गांधी का उनसे प्रथम संपर्क बम्बई में डॉ. मेहता द्वारा करवाया गया। उस समय श्रीमद् की उम्र पचीस साल से अधिक न थी पर वे रेवाशंकर जगजीवन की जैन पेढ़ी के साझी तथा कर्ता-धर्ता थे। उनके व्यक्तित्व की छाप गांधी पर पड़ी। आत्मकथा में लिखा—'पहली ही मुलाकात में मैंने यह अनुभव किया था कि वे चरित्रवान् और ज्ञानी पुरुष हैं।' इस ज्ञानी पुरुष का वास्य व्यक्तित्व भी कितना प्रबुद्ध और निस्पृह था इसकी एक झलक कतिपय तथ्यों से होती है—

अवधान प्रयोग की सफलता पर जामनगर में उन्हें 'हिन्द का हीरा' उपनाम मिला था। 19

वर्ष की उम्र में उनको बम्बई की एक सार्वजनिक सभा में डॉ. पिटर्सन की अध्यक्षता में शतावधान के प्रयोग पर 'सुवर्णचन्द्रक' प्रदान किया और साक्षात् सरस्वती की उपाधि से सम्मानित किया गया।

बंबई हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश सर चार्ल्स सारजन्ट द्वारा यूरोप में जाकर अपनी शक्तियां दिखाने का अनुरोध भी श्रीमद् रायचंदजी ने अस्वीकृत कर दिया, उनकी निस्पृहता का यह भाव सघन बना, आत्मोन्नति में ऐसी प्रवृत्ति बाधक और सन्मार्ग रोधक जानकर बीस वर्ष की उम्र के पश्चात् उन्होंने अवधान प्रयोग कभी नहीं किये।

16 वर्ष की उम्र में 'मोक्षमाला' मात्र तीन दिन में लिख डाली। यह उनकी प्रबुद्धता का परिचायक है। श्रीमद् जी जाति के ओसवाल तथा जैन धर्म के मानने वाले, शादीशुदा पारिवारिक सह जवाहरात के व्यापारी थे। यह उनका ऊपरी परिचय है।

महात्मा गांधी श्रीमद् रायचंद के प्रति मंत्र मुग्ध हो गये। वे जिस शक्ति से प्रभावित हुए उसका उल्लेख किया-मैं कितने ही वर्षों से भारत में धार्मिक पुरुषों की शोध में हूँ। परन्तु मैंने ऐसा धार्मिक पुरुष अब तक नहीं देखा। यूरोप के तत्त्वज्ञानियों में मैं टॉल्स्टॉय को पहली श्रेणी का और रस्किन को दूसरी श्रेणी का विद्वान समझता हूं और इन दोनों के जीवन से भी मैंने बहुत कुछ सीखा है, पर श्रीमद् रायचन्द भाई का अनुभव इन दोनों से भी बढ़ाचढ़ा है। वे किसी बाड़ेबंदी के पुरुष नहीं हैं। उनका हृदय विशाल और उदार है।[37] प्रकटतः गांधी के दिल में श्रीमद्जी का महत्त्वपूर्ण स्थान था। उन्होंने स्वीकारा रायचन्दभाई ने अपने गाढ़ परिचय से मेरे हृदय में स्थान बनाया है। जब मुझे हिन्दूधर्म में शंका पैदा हुई उस समय उसके निवारण करने में मदद करने वाले रायचन्द भाई थे।

गांधी को अपनी ओर खींचने वाला श्रीमद् रायचन्द में जो कुछ था, वह था—'उनका व्यापक शास्त्रज्ञान, उनका शुद्ध चारित्र और आत्मदर्शन करने का उनका उत्कट उत्साह। बाद में मुझे (गांधी को) पता चला कि वे आत्मदर्शन के लिए ही अपना जीवन बिता रहे थे।

हसतां रमतां प्रकट हरि देखुं रे,
मारुं जीव्युं सफल तब लेखुं रे,
मुक्तानन्दनो नाथ विहारी रे,
मुक्तानन्दनो नाथ विहारी रे,
ओधा जीवन दोरी हमारी रे,

अर्थात् जब हंसते-खेलते हर काम में मुझे हरि के दर्शन हों तभी मैं अपने जीवन को सफल मानूंगा। मुक्तानन्द कहते हैं, मेरे स्वामी तो भगवान हैं और वे ही मेरे जीवन की जेर हैं। मुक्तानन्द का यह वचन उनकी जीभ पर तो था ही, पर वह उनके हृदय में भी अंकित था।' उन्होंने उनमें कुछ और भी पाया, उसको अपनी आत्मकथा में विस्तार से लिखा-वे स्वयं हजारों का व्यापार करते, हीरे-मोती की परख करते, व्यापार की समस्यायें सुलझाते, पर यह सब उनका विषय न था। उनका विषय-उनका पुरुषार्थ तो था आत्म-परिचय-हरिदर्शन। उनकी गद्दी पर दूसरी कोई चीज हो चाहे न हो पर कोई-न-कोई धर्म पुस्तक और डायरी तो अवश्य रहती थी। व्यापार की बात समाप्त होते ही धर्म पुस्तक खुलती अथवा उनकी डायरी खुलती थी।....जो मनुष्य लाखों के लेन-देन की बात करके तुरंत ही आत्म-ज्ञान की गूढ़ बातें लिखने बैठ जायें, उसकी जाति व्यापारी की नहीं, बल्कि शुद्ध ज्ञानी की है। उनका ऐसा अनुभव मुझे एक बार नहीं, कई बार हुआ था। मैंने कभी उन्हें मूर्च्छा

की स्थिति में नहीं पाया। मेरे साथ उनका कोई स्वार्थ नहीं था। मैं उनके बहुत निकट सम्पर्क में रहा हूँ। उस समय मैं एक भिखारी बारिस्टर था। पर जब भी मैं उनकी दुकान पर पहुंचता, वे मेरे साथ धर्म-चर्चा के सिवा दूसरी कोई बात ही न करते थे।

रायचन्द भाई की धर्म-चर्चा मैं रुचिपूर्वक सुनता था। उसके बाद मैं अनेक धर्माचार्यों के सम्पर्क में आया हूं। मैंने हर एक धर्म के आचार्यों से मिलने का प्रयत्न किया है। पर मुझ पर जो छाप रायचन्द भाई ने डाली, वैसी दूसरा कोई न डाल सका। उनके बहुतेरे वचन मेरे हृदय में सीधे उतर जाते थे। मैं उनकी बुद्धि का सम्मान करता था। उनकी प्रामाणिकता के लिए मेरे मन में उतना ही आदर था। इसलिए मैं जानता था कि वे मुझे जान-बूझकर गलत रास्ते नहीं ले जायेंगे और जो उनके मन में होगा वही कहेंगे। इस कारण अपने आध्यात्मिक संकट के समय मैं उनका अपने हृदय में स्थान दे सका।[38] ये उद्‌गार उनकी आत्मतृप्ति और सत्यानुभूति के साक्षी हैं। प्रश्न उठता है क्या श्रीमद्‌जी का जीवन-व्यवहार इतना उन्नत था, जिसे राष्ट्र पिता अपनी आस्था-अहोभाव समर्पित कर सके? उनके संपर्क में आने वालों का यह अनुभव रहा कि वे जवाहरात के व्यापारी भले ही थे पर उनका लक्ष्य आत्मा की ओर अधिक था।

श्रीमद्‌जी के भागीदार श्री माणेकलाल धेलाभाई ने लिखा—'व्यापार में अनेक प्रकार की कठिनाइयां आती थीं, उनके सामने श्रीमद्‌जी एक अडोल पर्वत के समान टिके रहते थे। मैंने उन्हें जड़ वस्तुओं की चिंता से चिंतातुर नहीं देखा। वे हमेशा शान्त और गम्भीर रहते थे।' ऐसी ही अनेक विशेषतायें उनके जीवन का उपहार बनीं। उनके करुणापूरित व्यवहार में अहिंसा की अनुगूँज थी। इसका एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा की कर्मक्षेत्र धर्मक्षेत्र कैसे बन सकता है? एक बार एक व्यापारी के साथ श्रीमद्‌जी ने हीरों का सौदा किया कि अमुक समय में निश्चित किये हुए भाव से वह व्यापारी श्रीमद्‌जी को अमुक हीरे दे। उस विषय का दस्तावेज़ भी हो गया। परंतु हुआ ऐसा कि मुद्दत के समय भाव बहुत बढ़ गये। श्रीमद् जी खुद उस व्यापारी के यहाँ जा पहुँचे और उसे चिंतामग्न देखकर वह दस्तावेज लेकर फाड़ डाला और बोले—'भाई, इस चिट्‌ठी (दस्तावेज) के कारण तुम्हारे हाथ-पाँव बंधे हुए थे। बाजार भाव बढ़ जाने से मेरे साठ-सत्तर हजार रुपये लेने निकलते हैं, परन्तु मैं तुम्हारी स्थिति समझ सकता हूँ। इतने अधिक रूपये मैं तुमसे ले लूँ तो तुम्हारी क्या दशा हो? रायचन्द्र दूध पी सकता है, खून नहीं।'[39] यह देख व्यापारी स्तब्ध रह गया। उसके पास कृतज्ञ भाव प्रकट करने के लिए शब्द ही न रहे। यह उदाहरण उनके आंतरिक सौदर्य का प्रतीक कहा जा सकता है।

महात्मा गांधी ने लिखा—'मैंने किसी को गुरु तो नहीं बनाया लेकिन मुझ पर अहिंसा का सबसे अधिक प्रभाव श्रीमद् रायचन्द का पड़ा है। वे आध्यात्मिक साधक थे। वे गृहस्थ थे। गृहस्थ जीवन में भी उनकी साधना इतनी उच्च थी कि कई साधु भी वहाँ तक नहीं पहुँच पाते। बड़े योगी, तपस्वी साधक थे।' गांधी पर उनके वैराग्य की जो छवि अंकित थी उसका अंदाजा इस कथन से लगाया जा सकता है—जो वैराग्य (अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे?) इस काव्य की कड़ियों में झलक रहा है वह मैंने उनके दो वर्ष के गाढ़ परिचय में प्रतिक्षण उनमें देखा है। उनके लेखों में एक असाधारणता यह है कि उन्होंने जो अनुभव किया वही लिखा है। उसमें कहीं भी कृत्रिमता नहीं है। दूसरे पर प्रभाव डालने के लिए एक पंक्ति भी लिखी हो ऐसा मैंने नहीं देखा।....खाते, बैठते, सोते, प्रत्येक क्रिया करते उनमें वैराग्य तो होता ही। किसी समय इस जगत् के किसी भी वैभव में उन्हें मोह हुआ हो ऐसा मैंने नहीं देखा। ....व्यवहार कुशलता और धर्मपरायणता का जितना उत्तम मेल मैंने

कवि में देखा उतना किसी अन्य में नहीं देखा। ये सारे बोल गांधी के हृदय से निकले, श्रीमद्जी के प्रति भक्ति के सुमन हैं। अनेक प्रसंगों पर स्वीकारा की उनके जीवन को अत्यधिक प्रभावित करने वाले एक मात्र श्रीमद् रायचन्द्र जी हैं।

'श्रीमद् राजचन्द्र जयन्ती' के प्रसंग पर ईस्वी सन् 1921 में गांधी ने कहा—'बहुत बार कह और लिख गया हूँ कि मैंने बहुतों के जीवन में से बहुत कुछ लिया है। परन्तु सबसे अधिक किसी के जीवन में से मैंने ग्रहण किया हो तो वह कवि (श्रीमद्जी) के जीवन में से है। दया धर्म भी मैंने उनके जीवन में से सीखा है।....खून करने वाले से भी प्रेम करना यह दया धर्म मुझे कवि ने सिखाया है।'[40] आंतरिक अहोभाव से निष्पन्न ये बोल श्रीमद्जी के प्रति गांधी की अटूट आस्था, समर्पण एवं विनय भाव के प्रतीक हैं।

किसी से कुछ ग्रहण करना एक बात है पर उसे अहोभाव से प्रकट करना सर्वथा भिन्न बात है। पर, गांधी सदैव उनके प्रति कृतज्ञ बनें रहे यह उनका अपना वैशिष्ट्य था। अहिंसा, अनुकंपा, करुणा, आत्म-साक्षात्कार के जो विशिष्ट गुण उनमें विकसित हुए, वह श्रीमद्जी का आध्यात्मिक प्रतिबिम्ब कहा जा सकता है। निश्चित रूप से गांधी के अहिंसा संबंधी विचार बहुत उन्नत थे और वे जैन अहिंसा से मिलते-जुलते भी थे। इसका एक कारण श्रीमद्जी का अहिंसा प्रधान जैन जीवन भी रहा होगा। स्वार्थ वृत्ति से ऊपरत करुणामय व्यवहार की छाप गांधी के हृदय पर सदैव अंकित रही इसके अनेक उदाहरण उनके जीवन में मिलते हैं।

एक और स्रोत

गांधी का जीवन आलोकमय आदर्श का प्रतीक है। वे जहां भी, जिस स्थिति से गुजरे प्रेरणा संजोते गये। फिर चाहे दर्शन का क्षेत्र हो, धर्म का विषय हो अथवा सामाजिक परिस्थिति का संदर्भ हो। उन्हें प्रत्येक क्षेत्र में सीखने के लिए, अपनाने के लिए यत् किंचित् मिल ही जाता।

साहित्य

गांधी के उन्नत विचारों की पृष्ठभूमि में जीवन संपदा को समृद्ध बनाने में साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। उनका साहित्य लगाव, स्वाध्याय प्रियता उन्नत विचारों को बनाने में योगभूत बना। इस युग में अच्छी पुस्तकें कुछ हद तक सत्संग की कमी पूरी करती हैं। जो व्यक्ति जीवन के प्रत्येक क्षण में सुखभोग करने की इच्छा रखते हों, उन्हें अच्छी पुस्तकें पढ़ने की आदत डालनी चाहिए। गांधी ने अपने जीवन में स्वाध्याय प्रेम से जो सीखा, प्रेरणाएँ संजोयी और हृदय में स्थान दिया, उसका दूसरा कोई शानी नहीं है।

स्वाध्यायशीलता का चित्रण करते हुए लिखा—'गांधीजी का ज्ञान पिपासु मन वेद, उपनिषद्, गीता, वेदांत तथा प्रौढ़ धार्मिक ग्रन्थों के स्वाध्याय में लीन हो जाता। उन्हें राम, तुलसी, सूर, मीरा, नरसी मेहता की युक्तिपूर्ण रचनाएं, ईसाई तथा मुस्लिम धर्म में भक्तिपूर्ण उपदेश अत्यन्त प्रिय थे।' विभिन्न भारतीय धर्म-दर्शनों का स्वाध्याय उनका प्रिय विषय था। स्वाध्याय समुद्र में गोता लगाते समय उनको अनेक प्रेरणास्पद विचार रूपी हीरे जवाहरात मिले जो उनके लिए पथदर्शक बनें। गांधी ने सघन-सक्रिय-स्वाध्याय क्रम दक्षिण अफ्रीका में प्रिटोरिया की जेल में बनाया उससे उनको बड़ी खुराक मिली। पुस्तकें-अंग्रेजी, हिन्दी, गुजराती, संस्कृत और तमिल भाषाओं की थी।

पाश्चात्य विद्वान

यूनानी विचारक सुकरात की सत्य खोज की प्रवृत्ति तथा सत्य के लिए प्राणोत्सर्ग की घटना से गांधी अत्यधिक प्रभावित थे। वे सुकरात को एक महान् सत्याग्रही मानते थे। साथ ही वे प्राचीन चीनी विचारक लाओत्से तथा कन्फ्यूशियस की नैतिक शिक्षाओं से भी प्रभावित थे।

गांधी के हृदय को आधुनिक युग के पाश्चात्य लेखक-विद्वानों ने भी प्रभावित किया। उदाहरण के तौर पर-

- जॉन रस्किन की 'अन्टू दिस लास्ट' (Unto This Last) से श्रम की सार्थकता-समानता का विचार ग्रहण किया।

- थोर्रा की 'ऑन सिविल डिसओबीडियेन्स' (On Civil Dis-obedience) से निष्क्रिय प्रतिरोध एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता के विचार प्रबल बनाये।
- टॉल्स्टॉय की पुस्तक 'बैकुंठ तुम्हारे हृदय में' (The Kingdom of God is within you) से अहिंसा संबंधी विचारधारा को पुष्ट बनाया। इसके अतिरिक्त 'गास्पिल्स इन ब्रीफ' (Gospils in Brief) संक्षिप्त दैवीय संदेश। व्हाट टू डू? (What to dow) आदि पुस्तकों का इतना प्रभाव पड़ा कि टॉल्स्टॉय की आश्रम-संस्कृति एवं जीवन-पद्धति का गांधी ने अनुकरण किया। प्रारंभ में दक्षिणी अफ्रीका और बाद में भारत में विभिन्न आश्रमों की स्थापना की।
- जुस्टकी 'रिटर्न टू नेचर' पढ़कर उन्होंने प्राकृतिक उपचार बीमारी की रोकथाम हेतु अपनाये, संपर्क में आने वालों को अपनाने की सलाह दी। मिट्टी का प्रयोग कब्ज से राहत पाने, फोड़े-फुंसी को ठीक करने एवं सख्त बुखार टाइफाइड में इसका प्रयोग करते। गांधी ने लिखा 'बिच्छू के डंक पर भी मैंने मिट्टी का खूब प्रयोग किया है। सेवाग्राम में बिच्छू का उपद्रव आये दिन की बात हो गयी है।'

क्युने द्वारा बतलाये गये पानी के उत्तम उपचार भी गांधी ने अपनाये। इससे प्रकट है कि उनमें दूसरों के विचारों और आदर्शों में समरस होने की कला थी जिसकी बदौलत उन्होंने अनेक विचारकों से भी सीखा। ऐसी अनेक रचनाएं एवं विचारक जिसकी छाप उन पर पड़ी। उन सब में प्रथम कोटि के प्रभाव का जिक्र भी किया जिसका स्वतंत्र रूप से उल्लेख किया गया है।

'अनटू दिस लास्ट'

अपनी आत्मकथा में लिखा-मेरे जीवन में तत्काल महत्त्व के रचनात्मक परिवर्तन कराये वह 'अनटू दिस लास्ट' ही कही जा सकती है। बाद में मैंने उसका गुजराती अनुवाद किया और वह 'सर्वोदय' के नाम से छपा। मेरा यह विश्वास है कि जो चीज मेरे अन्दर गहराइयों में छिपी पड़ी थी, रस्किन के ग्रंथरत्न में मैंने उसका स्पष्ट प्रतिबिंब देखा और इस कारण उसने मुझ पर अपना साम्राज्य जमाया और मुझसे उसमें दिये गए विचारों पर अमल करवाया।....गांधी के शब्दों में-मैं सर्वोदय के सिद्धान्तों को इस प्रकर समझा हूं–

- सबकी भलाई में हमारी भलाई निहित है।
- वकील और नाई दोनों के काम की कीमत एकसी होनी चाहिये, क्योंकि आजीविका का अधिकार सबको एक समान है।
- सादा-मेहनत-मजदूरी का, किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है।

पहली चीज मैं जानता था। दूसरी को मैं धुंधले रूप में देखता था। तीसरी का मैंने कभी विचार ही नहीं किया। 'सर्वोदय' ने मुझे दीये की तरह दिखा दिया कि पहली चीज में दूसरी दोनों चीजें समायी हुई हैं। सवेरा हुआ और मैं इन सिद्धांतों पर अमल करने के प्रयत्न में लगा।[41] जाहिर है इस रचना ने उनके जीवन पर जादुई क्रांतिकारी परिवर्तन घटित किया। मिस्टर पोलाक से मिली पुस्तक पूरी पढ़े बिना छोड़ न सके और रातभर क्रियान्विति के विचार में नींद नहीं आयी। वाकई में यह पुस्तक उनके जीवन का टर्निंग पॉइंट बनी। पुस्तकीय विचारों की क्रियान्विति का प्रत्यक्ष उदाहरण 'फिनिक्स संस्था' की स्थापना में देखा गया।

गांधी ने स्वीकारा, मैंने रस्किन की 'अनटू दिस लास्ट' से अतीव प्रेरणा प्राप्त की। सर्वोदय और अन्त्योदय की अवधारणाएं इसी विचार की निष्पत्ति है। रस्किन के विचारों की पुष्टि में उन्होंने कहा था-जब कभी भ्रम में पड़ जाएं और अहं व्यक्ति पर हावी हो जाए तो निष्पक्ष चिंतन से परखे, किसी ऐसे सबसे निर्धन और कमजोर व्यक्ति के चेहरे को याद कीजिए जिसे आपने शायद पहले देखा हो और फिर स्वयं से पूछिए कि आप जो कदम उठाने जा रहे हैं, क्या उससे उसका कुछ भला हो सकता है? क्या वह इससे कुछ प्राप्त कर सकेगा। क्या इससे वह स्वयं के अपने जीवन और भाग्य का नियंता बन सकेगा? दूसरे अर्थों में क्या इससे भूखों को और अध्यात्म शून्य लाखों लोगों को स्वराज मिल सकेगा। इस चिंतन की गहराई में पायेंगे कि भ्रम और अहं विलीन हो रहे हैं। इस प्रकार यह पुस्तक उनके भीतर चिंतन का नया प्रवाह पैदा करने में सफल रही। 'सर्वोदय' इस रचना की प्रतिछाया है जिसमें गांधी के विचारों का आलोक खोजा जा सकता है। यह सचाई है कि पुस्तक से वे इतने प्रभावित हुए कि नेटाल की राजधानी छोड़कर जूलूलैंड के जंगल में जा बसे। ऐच्छिक गरीबी को गले लगाया और सही अर्थों में पसीने की कमाई खाने का प्रयत्न करने लगे।

साहित्य लगाव के संबंध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि पुस्तक के विचारों से सहमत होते तो उन्हें आत्मसात् कर लेते और तदनुसार आचरण भी करते, असहमत होते तो उससे हमेशा के लिए अपना मन हटा लेते थे।

परिस्थितियाँ बनाम प्रेरणा

गुणग्राही व्यक्तित्व के पर्याय गांधी ने अपने जीवन में अनेक चेतन-अचेतन अभिप्रेरकों से प्रेरणाएं संजोयी। यह मात्र संकल्पना नहीं सच्चाई है। इसका साक्षी है उनका विराट् साहित्य, जिसमें उत्सूत्र रूप में यत्र-तत्र प्रेरकों की चर्चा की गई है। स्वदेश एवं विदेश में घटने वाली कुछ तात्कालिक परिस्थितियां गांधी ने देखी जो प्रत्यक्ष प्रेरणा न होते हुए भी अन्तर चेतना को झकझोरने वाली थीं। उन परिस्थितियों से प्रभावित हो उनके भीतर जो क्रांति के स्फुलिंग उठें, संकल्प जगा वही उनका कर्मक्षेत्र बनता गया। अनके प्रथायें,-घटनाएं, गांधी के आंदोलन का निमित्त बनीं अतः प्रस्तुत संदर्भ में उन्हें प्रेरणा स्रोत के रूप में देखा जा सकता है।

सेठ अब्दुल्ला के निमंत्रण पर गांधी एक साल के लिए दक्षिण अफ्रीका डरबन मई, 1893 में पहुँचे। वहाँ चालीस हजार पौंड के दीवानी दावे का काम था। डरबन अदालत में यूरोपियन मजिस्ट्रेट द्वारा गांधी को पगड़ी उतारने का हुक्म रंग-भेद का नमूना मात्र था। लेकिन डरबन से प्रिटोरिया जाते समय जो घटना घटी—गाड़ी मैरित्सबर्ग पहुँचने पर उन्हें पहले दर्जे का डिब्बा छोड़कर आखिरी दर्जे के डिब्बे में जाने का हुक्म मिला। इनकार करने पर धक्का मारकर बड़ी बेहूदगी से नीचे उतार दिया गया। ठंड से ठिठुरती रात उन्होंने मैरित्सबर्ग स्टेशन के अंधरे वेटिंग रूम में बैठे घटना पर चिंतन में बिताई। दक्षिण अफ्रिका में भारतीयों को जिन अपमान जनक परिस्थितियों में रहना पड़ रहा था, गांधी उससे वाकिफ नहीं थे। सहने की मानसिकता से आगे जाने का निश्चय किया।

चार्ल्सटाउन से स्टैंडरटन घोड़े की सिकरम से जाना होता था। गांधी को सिकरम के अंदर गौरे यात्रियों के साथ न बैठने देने पर प्रतिकार किया तो सिकरम कंपनी का गौरा नायक आगबबूला हो उन पर हाथ उठा दिया। उन्हें बुरी तरह पिटते देख कुछ गौरे यात्रियों ने बीच-बचाव किया। गांधी

ने मार खाना स्वीकार किया, परंतु जहाँ बैठे थे वहाँ से हटे नहीं। यह गौरे की उदंडता और पाश्विक शक्ति के खिलाफ शांति भरे साहस और मानवी गरिमा का दुर्लभ घटना प्रसंग था।

स्टैंडरटन में मिले भारतीय व्यापारियों ने गांधी को बताया जो कुछ आपके साथ गुजरा, वह तो ट्रांसवाल में भारतीयों के साथ रोज ही होता है।....जोहन्सबर्ग में ग्रांड नेशनल होटल में हिन्दुस्तानियों को न ठहराने की बात सुनी। प्रिटोरिया के लिए बड़ी मुश्किल से प्रथम दर्जे का रेल्वे टिकिट मिला। डरबन से प्रिटोरिया तक की पाँच दिन की यात्रा में गांधी दक्षिण अफ्रीका में भारतीय प्रवासियों की वास्तविक स्थिति से परिचित हो गये। इस सारे घटनाक्रम से पनपी मानसिकता का चित्रण करते हुए लिखा—'उसी क्षण से उन्होंने (गांधी) दक्षिण अफ्रीका के शासकीय और वर्ण-विद्वेषक सामाजिक अन्याय के खिलाफ कमर कस ली।.....एक क्षण के लिए भी उन्होंने रंग-भेद और जातीय औद्धत्य के आगे अपने हथियार नहीं डाले। चूँकि यह प्रश्न भारत देश और सारी मानव जाति के गौरव की रक्षा और स्थापना का था।'[42] गांधी ने अन्तर आत्मा से उठी आवाज पर भारतीय निवासियों की 'ट्रांसवाल' में आम सभा स्थिति संज्ञान हेतु आयोजित की। कारवाई के लिए संगठन पर बल दिया, अंग्रेजी सिखाने का काम शुरू किया।

जिस उद्देश्य से दक्षिण अफ्रीका आये दिवानी दावे का बारीकी से अध्ययन किया। अदालती लड़ाई में उभय पक्ष की तबाही देख आपस में झगड़ा निपटाने की सलाह दी। आखिर दोनों (अब्दुल्ला और तैयब) पंच फैसले के लिए राजी हुए। इसमें अब्दुल्ला की जीत हुई पर गांधी के अनुरोध पर तैयबजी को काफी लंबी मोहलत दे दी। इस प्रसंग पर अपना आत्म तोष प्रकट करते हुए लिखा—'मैंने सच्ची वकालत करना सीखा, मनुष्य-स्वभाव का उज्ज्वल पक्ष ढूँढ़ निकालना सीखा, मनुष्य-हृदय में पैठना सीखा। मुझे जान पड़ा कि वकील का कर्तव्य फरीकैन के बीच में खुदी हुई खाई को भरना है।'[43] यह कथन इस तथ्य को प्रकट करता है कि उन्हें समझौता का करीना उपलब्ध हो गया। इस प्रेरणा को उन्होंने ताजिंदगी संजोये रखा।

अफ्रीका से विदाई-भोज का आयोजन था। गांधी की निगाह 'नेटल मरकर' अखबार पर पड़ी 'इंडियन फ्रेंचाइज' (भारतीयों का मताधिकार) शीर्षक पढ़ा। दक्षिण अफ्रीका में बसे भारतीयों को मताधिकार से वंचित करने के लिए एक विधेयक नेटाल की विधान-सभा में पेश किया जा रहा था। भारतीय इससे बेखबर थे। गांधी से वही रुककर लड़ाई को लड़ने का आग्रह किया। समारोह विधेयक-विरोधी आन्दोलन की राजनैतिक समिति बन गया। तत्कालीन दक्षिण अफ्रीका में प्रचलित नस्लीय भेदभाव से पीड़ित भारतीय प्रवासियों की दुर्दशा ने तथा स्वयं एक 'कुली बेरिस्टर' रूप में अन्याय के प्रत्यक्ष अनुभव ने उनके आत्मबल को गंभीर चुनौती दी और उनमें सोया 'महापुरुष' जागृत हो गया। उनके नेतृत्व में प्रवासी भारतीयों का संगठन बना। सत्याग्रह का श्रीगणेश हुआ, गांधी कई बार जेल गये। तीन चार चरणों में होने वाले सत्याग्रह के आखिर सुपरिणाम निकले। दक्षिण अफ्रीका से विदाई लेते समय गांधी के मिशन की सफलता का जिक्र 'इंडियन ओपीनियन' ने किया। जो मुद्दे सरकार द्वारा मंजूर किये गये, वे थें—

1. गिरमिट मुक्त मजदूरों पर से तीन पौंड का कर उठा लिया गया।
2. भारतीय हिन्दू और मुस्लिम पद्धति में किये गए विवाहों की वैधता मान ली गई।
3. अंगूठे की छापवाले अधिवासी प्रमाण-पत्र को दक्षिण अफ्रीका में दाखिल होने और रहने पर परवाना मंजूर किया गया।[44]

सभी के प्रति हार्दिक कृतज्ञ भाव प्रकट करते हुए गांधी ने मंगलमय जीवन की कामना की और दक्षिण अफ्रीका से सत्याग्रह की नयी तालीम को संजोकर स्वदेश लौटे। अपने लंबे प्रवास में अहिंसक संघर्ष की जो प्रेरणा प्राप्त की वह उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गयी।

दक्षिण अफ्रीका से लौटकर तत्कालीन भारत की पतित सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर रचनात्मक कार्यक्रमों को अपनाया। जिसमें साम्प्रदायिक सद्भाव, नारी उत्थान, हरिजन-उद्धार, दरिद्रनारायण की सेवा, स्वदेशी, ग्रामोत्थान आदि को प्रमुखता दी गयी। भारत के राष्ट्रीय नेता तिलक से प्रभावित हो गांधी ने राजनीति में जन आन्दोलन की विधा को अपनाया। अपने 'राजनीतिक गुरु' के रूप में गोखले से राजनीति में आध्यात्मीकरण की प्रेरणा तथा साध्य के समान साधन की पवित्रता का आदर्श ग्रहण किया। जिसका पालन भारत के आजादी-अभियान में भी अक्षरशः किया गया।

प्रेरणा संग्रहण, गुण-ग्राहिता की प्रवृत्ति गांधी जीवन की विरल विशेषता थी। विभिन्न स्रोतों से सद्विचारों को ग्रहण किया। वे ही उनके अखंड व्यक्तित्व एवं अहिंसक जीवन निर्माण के घटक बनते गये। वे गुण सुमनों से जीवन हार सझाते गये। अति मानवीय चेतना का जागरण कर प्रतिस्त्रोत के पथ पर बढ़ते हुए दुनिया भर के लोगों को जीवंत संदेश दिया। वो संदेश आज भी वैश्विक समस्याओं के समाधान में अहं भूमिका रखता हैं। गांधी को अपने इर्द-गिर्द जो भी ग्रहण करने योग्य, प्रेरणामय प्रतीत हुआ उसे वे अपनाते गये। उनकी इस ग्राहकता का चित्रण वल्लभ भाई पटेल के शब्दों में 'उनका हृदय समुद्र जैसा था जो हजारों नदियों एवं जल-स्रोतों के जल को आत्मसात् कर लेता है और अपने सहायक प्रत्येक जल-स्रोतों से मिलने पर समान भावनात्मक उमंगों से विस्तार पाता है।'[45] यह कथन गांधी के विराट् व्यक्तित्व, विशाल हृदय की ऊँचाइयों का साक्षीभूत सबूत है।

महाप्रज्ञ के प्रेरणा स्रोत

'गगनं गगनाकारं सागरं सागरोपमम्' सूक्ति महाप्रज्ञ के जीवन चरित्र से कृतार्थ बनीं। 'आचार्य श्री महाप्रज्ञ की आज संपूर्ण विश्व को आवश्यकता है। उनका जीवन मानव कल्याण के लिए समर्पित है। वे बालक, युवा और वृद्धावस्था के समन्वयक हैं। आप साधु जरूर हैं पर जीवन की हर समस्या को जानते हैं और अपने आध्यात्मिक तेज से उनका समाधान प्रस्तुत करते हैं।' गुजरात विधानसभा के पूर्व अध्यक्ष श्री धीरूभाई शाह के कथन का संवादी मंतव्य—'आप हमारी भारतीय संस्कृति के प्राण हैं। आपके समान आज कोई दूसरा ऋषि-मुनि नहीं दिखलायी देता। आप न केवल आध्यात्मिक गुरू हैं, योगी हैं, अपितु कवि, दार्शनिक, वैज्ञानिक, ज्योतिर्विद आदि भी हैं। हजारों साल में ऐसी कोई महान-प्रतिभा जन्म लेती है। इसका लाभ सबको मिलना चाहिए। आपको भारतीय-ज्ञान विज्ञान को बढ़ाने के लिए विदेशों की यात्रा करनी चाहिए। आपने दुनिया को बहुत कुछ दिया है।'[46] योजना आयोग के सदस्य डॉ. दीनानाथ तिवारी का है। ऐसे अनेकानेक भावों को आलोकित करने वाले मानवता के मसीहा का निर्माण जिन फौलादी अभिप्रेरणाओं से हुआ उसका संज्ञान महत्वपूर्ण है।

दिव्य गुणों के संवाय का नाम है-आचार्य महाप्रज्ञ। समर्पण, सहिष्णुता, सरलता, सहृदयता, सहजता और साधना उनका स्वभाव था। अन्तर्दृष्टि एवं अतीन्द्रिय चेतना के स्वामी का पारदर्शी व्यक्तित्व और कर्तृत्व इक्कीसवीं सदी के नाम अभिनव आलेख है। उनके आध्यात्मिक सौंदर्य की एक झलक विधायक सोच, आदर्श साहित्य सृजन एवं दार्शनिक रहस्यों से अनुस्यूत सुगम प्रवचन शैली में अनगूँजित हुई। महाप्रज्ञ का जीवन निर्मल, निश्छल, पवित्र एवं समुज्ज्वलता का पर्याय रहा है। उनका आत्म परिचय उन्हीं के शब्दों में-

- मैं अकिंचन हूँ, इसलिए महान हूँ।
- मेरी कामनाएं सीमित हैं, इसलिए मैं सुखी हूँ।
- इंद्रियों पर नियंत्रण है, इसलिए मैं स्वतंत्र हूँ।
- कथनी-करनी में समानता है, इसलिए मैं ज्ञानी हूँ।
- बाहरी वस्तुएँ मुझे खींच नहीं सकती, इसलिए में सरस हूँ।
- अपनी कमजोरियों को देखता हूँ, इसलिए में पवित्र हूँ।
- सबको आत्मतुल्य समझता हूँ, इसलिए में अभय हूँ।[46]

इस मंतव्य में महाप्रज्ञ का विराट् व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित है। इस शिखरारोहण यात्रा में मूल्य उनका है जिसके सहारे उन्होंने मंजिल की मीनारों को छूआ।

महाप्रज्ञ ने अपनी निर्मल प्रज्ञा से वैश्विक समस्याओं का समाधान उन्मुक्त भाव से किया। अशांत विश्व को शांति का पाठ ताउम्र पढ़ाया। उनके चिंतन में सामयिकता एवं अलौकिकता का अपूर्व संगम था। महत्त्व है उनके ऐसे विराट् व्यक्तित्व निर्मापक कारकों का, प्रेरणा प्रदीपों का जिन्होंने हाडमांस की देह में दिव्यता का संसार किया। प्रस्तुत संदर्भ में योगभूत कारकों का संक्षिप्त सिंहावलोकन अभीष्ट है।

अमूल्य बोध पाठ

महाप्रज्ञ का जीवन उनके बाह्य व्यक्तित्व से कई गुणा महान् रहा है, क्योंकि उनका आलौकिक आचरण विचारों से संगत था। उनकी जीवन शैली में अध्यात्म और तर्क का संगम हुआ। ऐसे महामानव का जन्म असाधारण घटना के साथ शुभ नक्षत्रावेष्टित 14 जून 1920 को, वि. सं. 1966 आषाढ़पद कृष्णा त्रयोदशी के दिन मरुप्रदेश राजस्थान के टमकोर कस्बे में हुआ। एक प्रतिष्ठित साधारण-से चोरड़िया परिवार में असाधारण आत्मा का अवतरण हुआ। अवतरण पर ये पंक्तियाँ मुखर बनीं-

'हजारों साल बुलबुल अपनी बेनुरी पे रोती है।
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा।।'

शिशु का साभिप्राय नाम 'नथमल' रखा गया। बालक की भावि भवितव्यता-विराट्ता का संदेश जन्म प्रकिया के साथ उद्घाटित हुआ। आम शिशु चार दीवारी के बंद आकाश में पैदा होता है वहाँ आचार्य महाप्रज्ञ की शिशु आत्मा को अनन्त आकाश क्षितिज के खुले वितान (चौक) में जन्म लेने का सौभाग्य मिला। मानों यह घटना बालक के भावी अकूत विकास एवं विराट्ता का शकुन थी। विज्ञान सम्मत जैन मान्यतानुसार नवजात शिशु में व्यक्तित्व निर्मिति के कारक विद्यमान रहते हैं। जन्मजात शिशु में भले ही अदृश्य पर, वीर्य रूप में अनेक शक्तियां, संस्कार, कर्म स्पंदन विद्यमान रहते हैं, जिन्हें अनन्त-अनन्त की संख्या में ले जाया जा सकता है। व्यवहारिक जगत में अधिकांशतया ये 'योजकस्तत्र दुर्लभ' के योग में प्रसुप्त ही रह जाती हैं पर, महाप्रज्ञ इसके अपवाद बनें।

प्रबुद्ध शैशव

बालक नथमल का शैशव प्रबुद्ध जागृत ज्ञान चेतनामय था। इसका अंदाजा स्वयं महाप्रज्ञ के कथन से किया जा सकता है। 'मैं ढाई मास का था, पिता इस संसार से चल बसे। मेरी अन्तरात्मा कहती है-मैंने उन्हें देखा। उस समय का चित्र मेरी आँखों में अंकित है।'[48] क्या इतना नन्हा शिशु स्पष्ट रूप से कुछ जान सकता है? जिज्ञासा स्वाभाविक है। पर इसे काल्पनिक अथवा असंभव भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि 'कल्प सूत्र' में भगवान् महावीर के संबंध में स्पष्ट उल्लेख है। जन्म के साथ तीन ज्ञान सहित वे इस धरा पर अवतरित हुए। सुमेरू पर्वत पर एक सौ आठ कलशों से स्नान क्रिया के संबंध में देवेंद्रों द्वारा संदेह करने पर भ. महावीर के शिशु देह ने अपने पैर के अंगूष्ठ मात्र से सुमेरू पर्वत को हिला दिया। प्रत्यक्षतया यह शिशु की अनन्त शक्ति का उदाहरण भले ही भाषित हो पर इसकी पृष्ठभूमि में ज्ञान चेतना का स्पष्ट निदर्शन है।

महाप्रज्ञ द्वारा निर्दिष्ट घटना का संबंध चैतसिक निर्मलता और दिव्यता से है। इसे तर्क की तुला पर नहीं तौला जा सकता। यह स्पष्ट स्मृत्यांकित सच्चाई थी जो स्वयं दृष्टा के लिए भी रहस्यमय रही है। एतद् विषयक अभिव्यक्ति यदा-कदा महाप्रज्ञ करते भी—'मुझे याद है कि मेरा जन्म घर के पिछले भाग में हुआ था। मैं जब ढ़ाई मास का था तब मेरे पिताजी दिवंगत हो गये थे, यह भी मुझे याद है ये दोनों घटनाएँ मेरी स्मृति में क्यों हैं, इसकी में तर्क संगत व्याख्या नहीं दे सकता।'[49] कुछ शाश्वत तथ्य बिना व्याख्या-विश्लेषण के भी प्रतिष्ठित होते हैं। यह प्राकृतिक सच्चाई भी है। जब अविकसित प्राणी-पेड़-पौधे, पशु-पक्षी घटने वाली घटना को अवचेतन मन में संजो सकते हैं तो विकसित संज्ञी चेतना क्यों नहीं? यह बहुत संभव है कि बालक 'नथमल' की पवित्र चेतना में प्रारंभ से ही घटने वाली घटनाओं के चित्र अंकित होते रहें और अवचेतन मन की भूमिका पर ऊतर गये। कुछ भी हो ऐसी घटनाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण आज भी रहस्य बना हुआ है।

बाल्यावस्था में घटने वाली बालक 'नथमल' के जीवन की अनेक घटनाएँ उसके प्रबुद्ध विवेक को प्रमाणित करती है। संदर्भतः एक घटना का उल्लेख उचित होगा। घटना चक्र के समय बालक की उम्र नौ वर्ष की थी। प्रसंग था-चचेरी बहिन की शादी में शामिल होने 'मेमनसिंह' (वर्तमान बंगलादेश का कस्बा) में, माता और चाचा के साथ जाते वक्त कोलकाता ठहरने का। नथमल पारिवारिकजन सह कोलकाता में अपनी बुआ के यहाँ रुका हुआ था। चाचा और उनकी दुकान के कर्मचारी बाजार सामान खरीदने गये तब बालक 'नथमल' उनके साथ हो गया। वे दुकानों में सामान खरीदते रहे, बच्चा नये परिवेश को निहारता रहा। सहसा बालक रास्ते में कहीं दृश्य देखता रह गया। अभिभावक आगे बढ़ गये; एक-दूसरे का साथ छूट गया।

एकाकी बालक के मन में न कोई भय न चिंता न शोक। दृढ़ मनोभाव से एक ऐसा निर्णय लिया जिसकी कल्पना बड़े व्यक्ति भी बिछुड़न की स्थित में नहीं कर सकते। उन क्षणों में निर्णायक मनःस्थिति का उल्लेख स्वयं महाप्रज्ञ के शब्दों में-मैं अकेला रह गया। मुझे नहीं पता कि मुझे कहाँ जाना है। न कोठी का पता और न उसके नंबर का पता। पर, पता नहीं मेरी अन्तश्चेतना को इन सबका कैसे पता चला! मुझे जब यह लगा कि मैं अकेले रह गया हूँ तब मैंने सबसे पहले एक काम किया—मैंने अपने हाथ की घड़ी खोली, गले में से स्वर्णसूत्र को निकाला और दोनों को जेब में रख लिया। मैं पीछे मुड़ा और अज्ञात की ओर चल पड़ा। मुझे नहीं पता, कहाँ जाना है, कहाँ जा रहा हूँ। पर अन्तश्चेतना को कोई पता था, मैं ठीक स्थान पर पहुँच गया।[50] यह घटनाचक्र बालक की विकसित मानसिकता का द्योतक है। कोलकाता जैसे महानगर में परिजनों से बिछुड़कर भी बिना घबराये, अभ्रमित सीधे निर्धारित स्थान पर सकुशल लौट आना बालक 'नथमल' की जागृत प्रज्ञा का चमत्कार था। जो बाल जगत् के लिए एक बोध पाठ बन गया।

पुण्य श्लोका माँ बालू

'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'-जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से बड़ी है। कथन के पूर्वांश को सत्यापित करने वाली माता बालू विशेषताओं का संवाय थी। 'धर्म की गहरी श्रद्धा, संयम के प्रति जागरूकता, पाप भीरूता, धर्म संघ के प्रति समर्पण, दूरदर्शिता की सघन ज्योति का नाम है साध्वी बालूजी। समता, सहिष्णुता, वैराग्य सह उनकी आध्यात्मिक आस्था बेजोड़ थी।' ऐसी रत्नकुक्षि माता ने 'नथमल' के रूप में नई आस्था को जन्म दिया। माता केवल जन्म प्रदात्री नहीं संस्कार

निर्मात्री भी होती है, यह साबित कर दिखाया। महाप्रज्ञ ने अध्यात्म की जिन ऊँचाइयों को छूआ उसका मूल श्रेय माँ बालू को है। महाप्रज्ञ के शब्दों में—'मैं अपने जीवन निर्माण में संस्कारदात्री माता के योग को बहुत मूल्यवान मानता हूँ।' यह स्वीकृत सच है कि संतान के संस्कार निर्माण में माता का विशिष्ट योगदान होता है। वह संतान में वांछित संस्कार बीजों का वपन कर सकती है। माता बालू ने मन-वचन-कर्म से बालक 'नथमल' के अवचेतन मन में कुछ ऐसे अलौकिक अध्यात्मिक संस्कार प्रक्षिप्त कियें जिनका स्पष्ट प्रभाव महाप्रज्ञ के जीवन दर्शन में प्रतिबिम्बित था।

माता बालू धार्मिक संस्कारों से भिगी हुई कुशल गृहणी थी। नियति ने उसकी परीक्षा की—पति की अकस्मात मृत्यु हो गयी। मानों परिस्थितियों का पहाड़ टूट पड़ा। पति का वियोग, पुत्री का ससुराल में कष्टपूर्ण जीवन, छोटी पुत्री कुंवारी, पुत्र छोटा, पारिवारिक दबाव। इस सारी स्थितियों को उसने बड़े धैर्य और साहस के साथ झेला। अपना संतुलन कभी नहीं खोया। पारिवारिक जिम्मेदारियों का वहन करते हुए गृहकार्य से निवृत्त होने पर अपना सारा समय धर्माराधना में बिताती। ब्रह्ममुहूर्त में नियमित जल्दी 3-4 बजे उठकर सामायिक—स्वाध्याय, आत्म चिंतन किया करती थीं। माता के इस आध्यात्मिक अनुष्ठान का असर शिशु के बाल मानस में समाता गया। सोये हुए बालक में संस्कार संप्रेषण की यह अद्‌भुत कला सफल हुई। सुप्त, अर्ध जागृत और जागृत अवस्था में माता से मिलें ये अध्यात्मिक संस्कार बालक 'नथमल' के जीवन की अनमोल धरोहर बन गये। इसकी पुष्टि महाप्रज्ञ के कथन से होती है—'माता ने मुझे अध्यात्म के संस्कार दिये। बचपन की बात मुझे याद है, जब वे रात्रि के पिछले प्रहर में गाती थीं—'संत भीखणजी रो समरण कीजै।' चौबीसी-आराधना के बोल उनके द्वारा मेरे भीतर जमते गए।'[51] माता के प्रति अहोभाव भरे बोल, कृतज्ञता से उपरत महाप्रज्ञ सात्त्विक गर्व के साथ कहते-'मेरे निर्माण में मेरी माँ साध्वी बालूजी का बहुत बड़ा हाथ था।' एक बार महाप्रज्ञ का तार्किक मन जिज्ञासु बनकर उनसे (माता-साध्वी बालूजी) पूछ बैठा-'बचपन में मुझे क्या संस्कार दिये थे?' समाहित करते हुए साध्वी बालूजी ने बताया—

- प्रतिदिन साधु दर्शन की प्रेरणा देती थी, साधु-दर्शन के बिना कलेवा (नाश्ता) नहीं देती थी।
- सत्य बोलने पर बल देती थी।
- जाप करना सिखाती थी।

सुनकर महाप्रज्ञ का हृदय बोल उठा-इन्हीं संस्कारों के कारण मैं श्रद्धाशील बन गया। बालूजी का विवेक बहुत प्रखर था। उनकी विवेकशक्ति ने मुझे सदा स्वस्थ बनाए रखा। मेरे आहार-विहार का वे बहुत ध्यान रखती थी। स्पष्टीकरण में लिखा-'मैं एक छोटे-से गाँव में जन्मा। वहाँ विकास के साधन बहुत सीमित थे। माँ की विवेक-चेतना विकसित थी। वह सदा ध्यान रखती कि कब खाना चाहिए? क्या और कितना खाना चाहिए? किस समय खेलना चाहिए?'[52] इस मंतव्य में मातृ जगत् के उतरदायित्व एवं संतान के कृत्कृत्य भाव की युति है जो माता-पुत्र दोनों के चैतसिक वैशिष्ट्य का निदर्शन करती है।

पिता का साया बहुत पहले ही उठ चुका था पर प्रबुद्ध मातृत्व ने बालक 'नथमल' को उसकी कभी कमी न खलने दी। माता ने अपने दोहरे दायित्व का वहन बड़ी कुशलता से किया। पुत्र का पालन-पोषण, वात्सल्य और कर्तव्य भाव के साथ प्यार-दुलार से किया। पुष्टि में एक घटना प्रसंग का उल्लेख औचित्य पूर्ण होगा—

घर-आँगन में अपनी दूसरी बहिन की शादी थी। खुशी और उमंग का माहौल था। बाल लीला

में मग्न बालक 'नथमल' के मन में एक तरंग उठी और सहसा आँखों पर रूमाल बांधकर चलने लगा। दरवाजे के निकट पहुँचते-पहुँचते सिर भित्ति से टकराया और ठीक ललाट के मध्य भाग में चोट लगी। खून निकल आया। व्यस्त माहौल में किसी ने ध्यान नहीं दिया। जोर-जोर से रोते हुए बालक 'नथमल' अपनी माँ के पास पहुँचा। माता ने हाथ के कार्य को शीघ्र छोड़कर पुत्र के सिर पर उपचार पूर्वक पट्टी बाँधी और सहलाते हुए बोली—'आज तेरा भाग्य खुल गया, चिंता मत कर, रो मत। सब ठीक हो जायेगा।'[53] माँ के मुख से निकला वात्सल्य भरा आशीर्वाद बालक के लिए अमिट वरदान बन गया। वरदान फलित हुआ कि बालक 'नथमल' मात्र साढ़े दस वर्ष की अल्पायु में प्रतिस्रोतगामी बन शाश्वत सत्य की खोज में जुट गया। जो उम्र आम बच्चे के लिए खेल-कूद, मोज-मस्ती की होती है उस समय बालक नथमल ने आद्य शंकराचार्य का स्मरण करवाते हुए नये इतिहास का सृजन किया। गृहत्यागी कठोर व्रतधारी संयमी साधना मार्ग में दीक्षित हो गया। माता बालू ने पुत्र के साथ संयम मार्ग को अंगीकार किया।

दीक्षित के लिए गुरु दृष्टि की आराधना जीवन-निर्माण में योगभूत बनती है। समर्पित की संयम संपदा द्वीतिया के चाँद की कलावत् बढ़ती ही जाती है। गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण एवं कर्तव्य बोध की मौलिक शिक्षा साध्वी माता बालूजी अपने संन्यस्त बेटे बाल मुनि नथमल को यदा-कदा देती रहती थी। वे तीन बातों पर बल देती थी। 'गुरू के प्रति समर्पण, आचार- विचार में जागरूकता और अनुशासन एवं मर्यादा का सम्यक् पालन।' माता की सत् प्रेरणा ने पुत्र के संयमी जीवन को आदर्शवान् बनाने में अनन्य भूमिका निभाई। आचार्य महाप्रज्ञ माता के इस उपकार को बड़े अहोभाव से कहते-गुरुदेव के प्रति समर्पित रहने में माता ने पूरा योग दिया। वे हमेशा यही कहती—'गुरुदेव की दृष्टि को हमेशा ध्यान में रखना। गुरुदेव की दृष्टि के प्रतिकूल कभी कोई कार्य मत करना। हम पर आचार्य श्री का बहुत उपकार है। आपका निर्माण उनके हाथों हुआ है। उन्होंने आप पर बहुत श्रम किया है। उससे उऋण नहीं हुआ जा सकता। आपको सदा उनके प्रति कृतज्ञ रहना है।'[54] माता की इस नेक सीख से मुनि 'नथमल' के आन्तरिक विनय-समर्पण के संस्कार को सदैव पोषण मिलता रहा। इन संस्कारों की बदौलत ही एक सामान्य बुद्धि वाला मुनि महाप्रज्ञ की उच्च भूमिका पर आसीन हुआ।

साध्वी माता बालू के प्रति महाप्रज्ञ के प्रोन्नत विचार निश्चिय रूप से सन्तान वर्ग के लिए मननीय है। उन्होंने मातुश्री के प्रति यहाँ तक कह दिया—'मेरी माँ का मेरे पर बहुत बड़ा उपकार है। मेरी माँ वास्तव में माँ ही थी। ऐसा प्रबुद्ध मातृत्व किसी-किसी महिला में ही मिलता है।' ऐसा ही कथन गांधी ने अपने माता-पिता के स्नेह के संबंध में कहा था। महापुरूषों की यह महानता होती है कि वे अपने माता-पिता के उपकार को कभी विस्मृत नहीं करते हैं। माता-पिता के ऋण से संतान का उऋण होना दुष्कर है। पर महाप्रज्ञ को इस विषय का आत्मतोष था कि वे अपनी माता के ऋण से मुक्त बन पाये। कैसे? का समाधान महाप्रज्ञ के शब्दों में मिलता है-माता का ऋण बहुत था। उनका मेरे निर्माण में बहुत बड़ा हाथ था। पूज्य कालूगणी-मेरे दीक्षा गुरु ने उन्हें साध्वी बनाकर मुझे ऋणमुक्त कर दिया। गुरुदेव श्री तुलसी ने सेवा का अवसर दिलाकर मुझे ऋणमुक्त कर दिया। माता और गुरु से संबंधित दो महत्त्वपूर्ण सूत्रों का जिक्र महाप्रज्ञ ने इसी प्रसंग में किया। मेरे जीवन के दो ही सूत्र थे-

- मैं जो कुछ करूँ, उससे पहले सोचूँ कि इसका गुरुदेव के मन पर क्या असर होगा?
- मैं ऐसा कार्य न करूँ, जिससे साध्वी बालूजी के मन पर अन्यथा असर हो।

इन दो सूत्रों ने ही मुझे समय-समय पर आगे बढ़ने में योग दिया है। निश्चित रूप से गुरु एवं माता के प्रति सम्मान में बने इस लक्ष्य ने महाप्रज्ञ के लिए विकास का अनूठा द्वार उद्घाटित किया।

माता बालू की विवेक संपन्नता की छाप महाप्रज्ञ के हृदय में ताउम्र अँकित रही। तथ्य को प्रस्तुति मिली-'विवेक-चेतना का विकास निसर्ग से होता है। साध्वी श्री बालूजी साक्षर थीं। पढ़ाई की कोई उपाधि उनके पास नहीं थी पर विवेक-चेतना बहुत विकसित थी। उसी के आधार पर वे हिताहित का संज्ञान करती थीं। गृहस्थ का जीवन विवेक के साथ जीया। पति का वियोग हो जाने पर एक पुत्र और दो पुत्रियों का पालन-पोषण समझदारी के साथ किया। संयम का जीवन विवेक के साथ जीया। मैं प्रणत हूँ उस विवेक-चेतना के प्रति।' महाप्रज्ञ की जागृत प्रज्ञा का मूल आधार माता बालू का विवेक है। जिसने सदैव हितशिक्षा के द्वारा अपने पुत्र का पथ प्रशस्त किया।

महाप्रज्ञ को जन्म देने वाली मणिधर माता साध्वी बालूजी के संदर्भ में आचार्य तुलसी ने कहा—'साध्वी बालूजी की सब से बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने हमें एक ऐसे बालक को दिया है, जो अपनी प्रज्ञा और प्रतिभा से धर्म शासन की अच्छी सेवा कर रहा है। मुनि नथमल (महाप्रज्ञ) सचमुच भाग्यशाली हैं, जो अपनी माता के ऋण से मुक्त हो गये।' ये विचार आचार्य तुलसी ने साध्वी बालूजी के समाधिमय जीवन यात्रा की परिसम्पन्नता पर कहे थे।

महाप्रज्ञ के जीवन में जो वैशिष्ट्य था-व्यवस्थित दिनचर्या, पुष्कल मेधा, संकल्प की दृढ़ता, अंतर्दृष्टि जागरण इत्यादि। इन महनीयता के नियामक तत्त्वों का मूल उत्स माँ बालू के जीवनवृत में स्पष्ट परिलक्षित होता है। इसका पुख्ता प्रमाण है साध्वी बालूजी के संबंध में की गई महाप्रज्ञ की टिप्पणी—श्रद्धा का अर्थ क्या है? इसका बोध कराती थी उनकी जीवन चर्या। पुस्तकीय ज्ञान के अभाव में भी कितना जागृत होता है अन्तर्ज्ञान, अंतर्दृष्टि-इसका उदाहरण था उनका निर्मल मस्तिष्क।

संकल्पशक्ति और संयम एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यह प्रमाणित कर रहा था उनका समग्र जीवन।

मेरी माँ साध्वी बालूजी ने विशेषता का जीवन जीया। वह प्रेरक बना रहेगा।[55] इस कथन में औपचारिकता से उपरत एक सच्चाई का निदर्शन है। महाप्रज्ञ ने स्वीकारा है—'उनका जीवन मेरे लिए एक आलोक रश्मि रहा। वे सदा गंभीर चिन्तन करतीं। छिछलापन उन्हें कभी पसंद नहीं था।' यह महाप्रज्ञ के चिंतन-मंथन की मौलिक विशेषता भी रही है।

विदेह माता का सुखद साया पुत्र पर बरकरार रहा। इसकी अनुभूति महाप्रज्ञ जी को यदा-कदा होती भी थी। व्यवहार जगत में उनके शब्दों से प्रतीति की जा सकती है। महाप्रज्ञ ने लिखा है—विकास के अनेक कार्य उनके स्वर्गवास के बाद प्रारंभ हुए हैं। उनमें मातुश्री की परोक्ष साक्षी या सान्निध्य नहीं है, यह मैं नहीं मानता। अध्यात्म साधना केन्द्र, दिल्ली में घटित घटना आज भी मेरे लिए आश्चर्यपूर्ण प्रश्न बनी हुई है। मेरी माँ का जीवन मेरे लिए प्रेरक रहा है, रहेगा।

रहस्यविद् लोग कहते हैं-आपको अपनी माता का सान्निध्य मिला हुआ है। वे आती हैं आप उन्हें पहचान पाते हैं या नहीं यह पता नहीं। वे मेरे लिए अज्ञात नहीं हैं इसलिए साक्षात् है।[56] कथन इस बात का सबूत है कि जननी जगत की अमिट प्रेरणाएँ प्रत्यक्ष रूप से तो होती ही है, पर परोक्ष रूप से भी हो सकती है।

माता बालू का अपार वात्सल्य, अनवरत जागरूक व्यवहार, संघ और संघपति के प्रति सर्वात्मना समर्पण की जीवन्त प्रेरणा ने अबोध बालक को सुबोध बनाया। विशेष रूप से संस्कार घूँटी के बतौर

माता से मिले अध्यात्म के उन्नत संस्कार बालक 'नथमल' में सहस्रगुणित होकर निखरे। जिसका विराट् रूप धर्मचक्रवर्ती आचार्य महाप्रज्ञ की महनीय प्रज्ञा में देखा गया है।

छोटे से अविकसित गाँव में जन्मा बालक विपुल क्षमताओं के विकास का स्वामी बनेगा ऐसा कौन जानता था उस समय, पर यह सच्चाई है। आचार्य महाप्रज्ञ ने वैश्विक समस्याओं का अध्यात्म की गहराइयों में उपयुक्त समाधान किया। आदिभूत अध्यात्म का बीज वपन माँ बालू ने पुत्र के बाल मानस पर किया था। विभिन्न रूपों में माता की महनीय भूमिका महाप्रज्ञ निर्माण में मुखर हुई।

अनुपम भगिनी मालू

शासनश्री साध्वी मालूजी को आचार्य महाप्रज्ञ की बड़ी बहिन होने का सौभाग्य मिला। यद्यपि दीक्षा पर्याय में वो छोटी थीं, पर मुनि नथमल ने सदैव उनको आदरास्पद दृष्टि से देखा। 'साध्वी मालूजी का जीवन ऋजुता, तपस्या, जप, ध्यान और आत्मलीनता की ज्योति से उज्ज्वल और प्रकाशमान है। तुम्हारी संयम निष्ठा अध्यात्म-निष्ठा अनुकरणीय है। दिन-रात स्वाध्याय, ध्यान में लीन रहना बहुत बड़ी साधना है। भीतर की ज्योति हो तभी यह संभव है।' महाप्रज्ञ के इस कथन में यथार्थ का निदर्शन है। साध्वी मालूजी का आध्यात्मिक व्यक्तित्व निखरा हुआ था। मौन उनका स्वाभाविक व्रत था और कषाय सहज उपशान्त। उनका जीवन युगलियों की सहज स्मृति कराने वाला था। महाप्रज्ञ की भाषा में वो 'अनुपम' साध्वी थी। उनके नैसर्गिक गुणों ने स्वयं महाप्रज्ञ को प्रभावित और प्रेरित किया। इसका प्रमाण ये पंक्ति है-'उनकी करूणा मेरे भीतर सजीव है। उनकी मृदुता भी प्राणवान है।'[57]

आचार्य महाप्रज्ञ के विकास की मूक प्रेरिका साध्वी मालूजी के प्रति उनका अहोभाव कितना प्राणवान रहा इसके संदर्भ का यह कथन ही पर्याप्त है-'तुम मातुश्री बालू जी के स्थान पर रही हो। तुम्हारी निर्मल भावना और जप साधना ने मुझे बल दिया है।' आत्मतोष की साक्षीभूत इन पंक्तियों का विराट् संदर्भ प्रयोक्ता ही जाने। पर, यह सच्चाई है कि महाप्रज्ञ ने अपनी ज्येष्ठा भगिनी साध्वी मालूजी की अनेक विशेषताओं को स्थायी प्रेरणा के रूप में संजोया और उसे जीया है।

राग से विराग की ओर

आत्मा में अनन्त शक्ति की विद्यमानता अध्यात्म और विज्ञान द्वारा समान रूप से स्वीकृत है। मौलिक प्रश्न है उसके उद्घाटन का? सकारात्मक भाषा में चेतना के भीतर छिपी संभावनाओं को आकार दिया जा सकता है, पर उन्हें कुरेदन क्षमता का योग मिले तब। यह योग ही दुर्लभ है। बालक 'नथमल' की भव्यात्मा को सौभाग्य से अपनी क्षमताओं को जगाने का अवसर मिला। जीवन का एक दशक पूर्ण होते ही सुयोग बना कि मुनि छबीलजी एवं मुनि मूलचन्द जी ने बालक नथमल, प्यार का नाम 'नत्थू' को मुनि बनने की हल्की-सी प्रेरणा दी। प्रेरणा पाकर बालक के भीतर छिपे संयम के संस्कार आकार लेने के लिए उत्फुल्ल हो उठें। उस समय की मनःस्थिति का चित्रण करते हुए महाप्रज्ञ ने लिखा-'मुनि द्वय से मुनि बनने की प्रेरणा पाकर मेरा अन्तःकरण झंकृत-सा हो गया, जैसे कोई बीज अंकुरित होना चाहता हो उस पर पानी की फुहारें गिर जाए। जैसे मेरा अन्तर्मन मुनि बनना चाहता हो और उसको प्रेरणा की ही प्रतीक्षा हो।'[58] इस कथन में चैतसिक दशा का स्पष्ट प्रतिबिम्ब है कि उसकी सतह कितनी स्वच्छ-निर्मल थी। सहज रूप में मिली प्रेरणा से राग के संस्कारों का विराग में विलयन हो गया। बचपन से ही प्रकृतिभद्र सरल स्वभावी, छल प्रपञ्च से मुक्त बालक 'नत्थू' आत्मा का नाथ बनने के लिए समुद्यत हो गया।

परिवर्तन एवं नव निर्माण

अप्राप्य को पाने, अज्ञेय को ज्ञेय बनाने के लिए बालक की चेतना चंचल हो उठी। संन्यास स्वीकरण की भावना बलवती बन गई। सांसारिक दुःखों की शृंखलायें तोड़ने के लिए समुद्यत बालक 'नथमल' किशोरावस्था के ग्यारहवें बसंत (10½ वर्ष की उम्र) में जन्म प्रदात्री माता के साथ माघ शुक्ला दसमी, वि.सं0 1987 को पूज्यपाद अष्टमाचार्य कालूगणीराज के करकमलों से दीक्षित हो गया। संयम जीवन का वरदान मिलते ही अभिनव भाग्योदय का रवि उदित हो गया। पूज्यपाद-संयम प्रदाता के साथ जैसे ही नव दीक्षित बालमुनि स्थान पर आये, आदेश मिला—'तुम तुलसी के पास जाओ, वहीं तुम्हारी शिक्षा-दीक्षा होगी।' गुरु का यह आदेश मुनि 'नथमल' की संयम-यात्रा का शुभ शकुन था। निश्चित रूप से मुनि तुलसी की छत्रछाया में नव जीवन-यात्रा की शुरुआत भावी विकास की प्रतीक थी।

दीक्षा गुरू का वरद् हस्त

निर्माण की सरणी पर आरूढ़ जीवन नाना परिस्थितियों से गुजरता है। प्रत्येक स्थिति अपने पदचाप छोड़ जाती है। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि स्नेहिल वातावरण में बालक के क्षमता विकास की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। ताड़ना में क्षमताएँ कुंठित हो जाती हैं। ताड़ना परिस्थिति विशेष में होने वाली विवशता है। स्नेह मनुष्य का नैसर्गिक गुण है। स्नेह की भावना के साथ जल का सिंचन पा एक पौधा भी लहलहा उठता है तब मनुष्य की बात ही क्या! इस संदर्भ में महाप्रज्ञ ने खुद को कसौटी पर कसते हुए कहा-'मैंने ताड़ना बहुत कम पायी और स्नेह बहुत अधिक पाया। विकास का निमित्त पाने में मैं सचमुच सौभाग्यशाली हूँ।' विशेष रूप से आचार्य कालूगणी की करुणापूरित दृष्टि पाकर बाल मुनि का अनवरत विकास प्रशस्त होता गया।

महाप्रज्ञ ने इस तथ्य की पुष्टि की; 'पूज्य कालूगणी का मेरे पर असीम उपकार रहा है। उन्होंने संयम जीवन प्रदान किया। उनका वात्सल्य, स्नेह और कृपा मेरे जीवन निर्माण में महत्त्वपूर्ण रही है।' यह भी अनुभव रहा कि बिना ताड़ना-तर्जना, आंतरिक भावनाओं को समझते हुए बाल शिष्यों का सम्यक् निर्माण करना कालूगणीराज की विरल विशेषता थी। स्नेहिल-करुणादृष्टि से सुगम अनुशासन शैली में व्यक्तित्व का निर्माण करना अद्भुत कला है। मनोवैज्ञानिक तरीके से खामियों का परिष्कार करते हुए व्यक्तित्व का उचित निर्माण करना बड़ा दुरूह कार्य है पर, कालूगणीराज इसमें बड़े दक्ष थे। बाल सुलभ चपलतावश अकारण हास्य कोई बड़ी खामी नहीं पर जीवन निर्माण की दृष्टि से यह कमजोर पक्ष भी है। बाल मुनि 'नथमल' अपने संगी-साथी हमउम्र मुनियों के साथ यदा-कदा

अकारण ही हंस पड़ते। पूज्य कालूगणीराज ने इस अकारण हास्य वृत्ति पर नियंत्रण करने के लिए मनोवैज्ञानिक नुस्खा अपनाते हुए एक श्लोक सिखाया-

'बाल सखित्वमकारण हास्यं, स्त्रीषु विवादमसज्जनसेवा।
गर्दभयानमसंस्कृतवाणी, षट्सु नरो लघुतामुपयाति॥'

अर्थात् छोटे बच्चों को मित्र बनाना, बिना प्रयोजन हंसना, स्त्रियों के साथ विवाद करना, दुर्जन आदमी से संपर्क रखना, गधे की सवारी करना, असभ्य भाषा बोलना-ये बातें आदमी को लघु बनाती है। इस जादुई प्रशिक्षण पूर्वक अनुशासनात्मक कारवाई से बाल मुनि 'नथमल' के भीतर अकारण हास्य की वृत्ति पर विराम लग गया।

निर्मेय की प्रत्येक क्रिया पर सूक्ष्म नजर रखना निर्माता के कौशल का द्योतक है। प्रसंग था सुंदर हस्तलिपि का। आज से सात दशक पूर्व सुन्दर हस्तलिपि का मूल्य मात्र ज्ञान सुरक्षा के लिए था पर वर्तमान में हस्तलिपि व्यक्तित्व अंकन का पेरामीटर भी है। अक्षर विन्यास कला के आधार पर संपूर्ण व्यक्तित्व का विश्लेषण किया जाता है। कालूगणी ने सभी बाल-संतों को सुन्दर हस्तलिपि के लिए प्रेरित किया। एकदा सभी बाल-संतों की हस्तलिपि देखी। महाप्रज्ञ के समवयस्क एवं सहपाठी साधुओं की लिपि सुन्दर और सुघड़ थी। बाल मुनि 'नथमल' की हस्तलिपि को देखा, मस्कुराए, लेकिन कहा कुछ भी नहीं। पास में बैठे मंत्री मुनि मगनलाल जी ने टिप्पणी की—'नाथूजी के अक्षर तो छत पर सुखाने जैसे हैं।' उस समय छत पर उपले (गोबर के पोठे) सुखाये जाते थे, अक्षर भी वैसे ही टेढ़े-मेढ़े थे। इस घटना प्रसंग से बाल मुनि 'नथमल' का बौद्धिक तंत्र आंदोलित ही नहीं हुआ, संकल्पित बन गया। प्रयत्न शुरू हुआ-मैं किसी से पीछे नहीं रहूँगा। पुरुषार्थ का दीप प्रज्वलित हो उठा। कुछ वर्ष बाद पाली में 'पार्श्वनाथ स्तोत्र' की प्रतिलिपि की। पूज्य कालूगणी उसे देख प्रसन्नचित्त बोले-अब तुम्हारी लिपि ठीक हो गयी है। गुरू के श्रीमुख से यह सुनकर किशोर मुनि का मन विश्वस्त हो गया।[59] इस तरह बालमुनि के भीतर छिपी क्षमताओं को सकारात्मक प्रोत्साहन मिलने से विकास का मार्ग प्रशस्त बनता गया।

व्यस्त दिनचर्या में अवकाश के स्वल्प क्षणों का नियोजन पूज्य कालूगणी बाल संतों के व्यक्तित्व निर्माण में करते। उनका सुनहला स्वप्न था भावी पीढ़ी का उत्तम निर्माण। फुर्सत के क्षणों में वे बाल मुनियों को अपने पास बिठाकर उनसे विविध प्रकार के प्रश्न पूछते, तत्त्व समझाते, दोहा-सोरठा आदि भी सिखलाते। एकदा एक दोहा बाल मुनियों को कंठस्थ करवाया—

हर डर गुर डर गाम उर, डर करणी में सार।
तुलसी डरे सो ऊबरै, गाफिल खावै मार।।[60]

अर्थात् भगवान से डरो, गुरु से डरो, गांव से डरो। भय निकम्मा नहीं है। भय में बहुत सार है। जो डरता है, वह बच जाता है। जो नहीं डरता है, वह मार खाता है।

गोस्वामी तुलसीदासजी के नाम से अनभिज्ञ मुनि 'नथमल' एवं साथी मुनि 'बुद्धमल्ल' ने अपने तरीके से अर्थ निकाला-अध्यापक मुनि तुलसी से जो डरता है, वह अपना उद्धार करता है। इस दोहे को सीखने के पश्चात् दोनों मुनि अध्यापक मुनि तुलसीरामजी से ज्यादा डरने लगे। पूज्य कालूगणी द्वारा सहजभाव से सिखाये इस दोहे ने मुनि 'नथमल' के भीतर रचनात्मक भय रच डाला। परिणामतः

अनेक प्रकार के समाधान मिले, विकास का अभिनव मार्ग प्रशस्त हो गया। अनेक बुराइयों से बचना सुगम हो गया।

'बैला रा बाया मोती निपजै' उक्ति के अनुसार उचित समय पर बोया गया संस्कार-बीज व्यक्तित्व निर्माण में योगभूत बनता है। आचार्य कालूगणी ने कुछ ऐसे बीज समय पर मुनि 'नथमल' की जीवन भूमि पर बोये। उदाहरण के तौर पर एक प्रसंग का उल्लेख उपयुक्त होगा। एक दिन आचार्य कालूगणी ने किशोर मुनि 'नथमल' से पूछा—'धातुकोष सीखा या नहीं?' नकारात्मक 'नहीं' उत्तर सुनकर प्रेरित किया-'उसे सीखना अभी शुरू करो, और साथ-साथ प्राकृत का आठवां अध्याय भी प्रारंभ कर दो।' विनय भाव से गुरु का आदेश स्वीकृत कर लिया। धातु कोश का ज्ञान महाप्रज्ञ की ज्ञान चेतना को जगाने एवं आगमों की अनंत गहराइयों को छूने में योगभूत बना। कालांतर में गुरू के इस आदेश को महाप्रज्ञ ने आशीर्वाद के रूप में रेखांकित करते हुए कहा—'अगर उस समय प्राकृत का अध्ययन नहीं होता तो आज आगम का दुरूह कार्य हाथ में नहीं ले पाते।' गुरु के आदेश-इंगित को अहोभाव के साथ शिरोधार्य का वरदान मिला-अनवरत आगम बत्तीसी का संपादन।

मुनि 'नथमल' की व्यक्तित्व निरमापक प्रत्येक क्रिया-कलाप पर आचार्य कालूगणी ध्यान केंन्द्रित करते। गमन क्रिया बाह्य व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है। व्यक्ति की चाल-चलन से उसके व्यक्तित्व का रेखांकन किया जा सकता है। इस दृष्टि से बाल मुनि 'नथमल' की चाल (गति) समुचित न हो यह नजरअंदाज कैसे किया जाता? इस दिशा का प्रशिक्षण स्वयं कालूगणी ने किया। महाप्रज्ञ ने इस सच्चाई को स्वीकारा-मेरी गति व्यवस्थित नहीं थी। मैं चलता तो मेरे पैर इधर-उधर पड़ते। दोपहर के समय जब एकान्त होता, तब पूज्य कालूगणी कहते-तुम चलो। मैं चलता, तब उनका निर्देश मिलता-पैर ठीक ढंग से रखो। न जाने कितनी बार कालूगणी ने चलने का अभ्यास कराया। मैं मानता हूँ, यह मुझे गतिमान् बनाने का ही प्रयत्न था।[61] कथन के संदर्भ में उपलाक्षणिक तौर पर सम्यक् गतिमान चरणों ने लाखों लोगों को अध्यात्म के राजपथ पर गतिमान बनाया, यह उस गति प्रशिक्षण का सुपरिणाम है। गुरु से मिले वात्सल्य और करुणा के प्रसाद को मुनि नथमल ने श्रद्धा और समर्पण भाव से सहेजा और सतत् बढ़ते रहे। पूज्य कालूगणी ने मात्र संयम का संस्कार ही नहीं दिया अपितु जीवन के प्रत्येक क्षण को सार्थक करने की शक्ति भी दी। इस प्रेरणा-प्रोत्साहन के बदौलत एक अबोध बालक 'नथमल' में अनुपमेय व्यक्तित्व का निर्माण घटित हो गया। आचार्य महाप्रज्ञ का अनुपम-व्यक्तित्व विकास की अनंत संभावनाओं का साक्षी भूत उपनय साबित हुआ।

तुलसी का सुयोग

'गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु, गुरु साक्षात् महेश्वर' का साक्षात् अनुभव महाप्रज्ञ ने तुलसी की सन्निधि में किया। यह मात्र उपचार नहीं महाप्रज्ञ का भोगा हुआ सच था। मुनि नथमल को साधनामय जीवन का श्रीगणेश मुनि तुलसी के कुशल निर्देशन में करने का सौभाग्य मिला। सौभाग्य समय का संस्पर्श पाकर गुणित होता गया और एक दिन विकास के शिखर को छू गया। तलहटी से शिखरारोहण का श्रेय मुनि 'नथमल' ने आचार्य तुलसी को दिया। अनुशास्ता तुलसी के बिना महाप्रज्ञ के विराट् व्यक्तित्व की संकल्पना अधूरी होगी। आचार्य तुलसी का ही अपूर्व अनुशासन कौशल था जिसमें महाप्रज्ञ की महा-प्रतिमा का निर्माण निष्पन्न हुआ। कवि हृदय से निकली शेर की पंक्तियाँ सार्थक बनीं-

'बुतो! शाबाश है तुमको, तरक्की इसको कहते हैं,
अगर न तराशे तो पत्थर थे, तराशे तो खुदा ठहरे।'

देवयोग से निर्माता के अनुशासन कौशल में किस कदर महाप्रज्ञ की महा प्रतिभा का प्रस्फुटन हुआ, वर्णनातीत है। एतद् विषयक प्रस्तुति स्वयं महाप्रज्ञ भी शब्दातीत अनुभव करते। उनका यह मानना था—'निर्माण का फौलादी संकल्प मुनि तुलसी का था। कोई नियति का योग ही था कि एक ऐसा व्यक्ति हाथ में आ गया, जो गाँव में जन्मा हुआ, प्रकृति से सरल, जिसने कभी विद्यालय का दरवाजा नहीं देखा और जो अंतरिक्ष का जल ही पीता रहा। कितना कठिन था ऐसे अबोध बालक की प्रतिभा का निर्माण। ज्ञात-अज्ञात प्रेरणा से एक संकल्प बन गया कि यह कार्य भले ही कठिन है, फिर भी मुझे (तुलसी) करना है। कार्य प्रारंभ हो गया। कठिनाइयों के बावजूद निर्माण के हाथ अपनी छेनी चलाते रहे। आखिर एक दिन निर्माण कौशल जनता के समक्ष साकार हो गया। एक अबोध बालक को प्रबुद्धता के उच्चासन पर आसीन कर देना क्या विश्व का महान् आश्चर्य नहीं है।' इस आश्चर्य की पृष्ठभूमि में मुखर है—सर्वात्मना समर्पण। महाप्रज्ञ की सफलता का यही राज था। आचार्य महाप्रज्ञ कहा करते—'मैं मानता हूँ, मेरे जीवन की सफलता का एक सूत्र था-मैंने मुनि तुलसी और आचार्य तुलसी को गुरु रूप में स्वीकार किया। मैं वैसा कोई भी काम नहीं करूँगा? जिससे मुनि तुलसी और आचार्य तुलसी अप्रसन्न हों। इस सूत्र ने मुझे बार-बार उबारा और मेरा पथ प्रशस्त किया।'[62]

सर्वात्मना समर्पण की राहों में उठने वाले मनोद्वेग को मुनि नथमल अप्रभावी करते हुए लक्ष्य भेदी साधना में सतत् गतिमान बनें रहे। महाप्रज्ञ ने अखंड समर्पण को साधा और फिर से गीता के स्थितप्रज्ञ की याद दिलवायी। यह उनकी भावी भवितव्यता का महासेतु बन गया।

प्रशिक्षण के प्रारंभिक दिनों में प्रतिदिन दशवैकालिक सूत्र (जैन आगम) की दो-तीन गाथाएं बड़ी मुश्किल से कंठस्थ करने वाले बाल मुनि 'नथमल' के बारे में कोई कल्पना नहीं कर सकता कि इनमें क्षमताओं का अजस्र प्रवाह विद्यमान है? कुछ ही दिनों में विद्या गुरु तुलसी के प्रयत्न से यह संख्या 30-40 गाथाओं तक पहुँच गयी। समझ की अपरिपक्व स्थिति में मुनि 'नथमल' अध्यापक मुनि तुलसी के समक्ष विचित्र प्रश्न खड़ा कर देते। 'कालू कौमुदी' (संस्कृत व्याकरण ग्रंथ) की साधनिका में स्वराँत पुलिंग का 'जिन' एक शब्द है। उसकी प्रथमा विभक्ति के एकवचन में 'सि' प्रत्यय का योग करने पर 'जिन' रूप बनता है। यह बात मुनि 'नथमल' के समझ में नहीं आई। प्रश्न कर डाला-'जिन' शब्द के साथ 'सि' प्रत्यय ही क्यों जोड़ा जाए? 'ति' क्यो नहीं जोड़ सकते? ऐसा बेहुदा तर्क सुनकर मुनि तुलसी बोल उठे—'क्या तुम भी कभी समझ पाओगे?' मानो प्रशिक्षक के प्रतिप्रश्न ने मुनि 'नथमल' के भीतरी समझ में सिहरन पैदा कर दी। परिणामतः बौद्धिक समझ के साथ ही मानसिक समझ का द्वार खुल गया। यह एकमात्र श्रेष्ठ गुरू के संयोग का वरदान था।

अपने निर्माण से बेखबर मुनि 'नथमल' ने पूर्ण निश्चिंतता का जीवन जीया। इसकी पुष्टि उनके शब्दों में देखी जा सकती है—'मैंने कभी अपने जीवन में चिन्ता नहीं की। मुझे क्या करना है, क्या खाना है, कहाँ रहना है, कहाँ सोना है, इन सबकी मैंने कभी कोई चिन्ता नहीं की। जब चिंता करने वाला कोई दूसरा है तो मैं चिन्ता क्यों करूँ?' समर्पण के इस अलभ्य उदाहरण ने एकलव्य की स्मृति फिर से करवाई। अखंड समर्पण की धुरा पर चेतना पर आये आवरण को हटना पड़ा। मेधा का

प्रस्फुटन हुआ और एक दिन सभी सहपाठी साथियों में मुनि 'नथमल' अव्वल घोषित हो गये।

अनुशासन एक कला है। उसका शिल्पी यह जानता है कि कब कहा जाए और कब सहा जाए? सर्वत्र कहा ही जाए तो धागा टूट जाता है और सर्वत्र सहा ही जाए तो वह हाथ से छूट जाता है। बौद्धिक विकास के लिए एक संतुलित वातावरण चाहिए। अध्ययन काल में मुनि तुलसी का समुचित अनुशासन पाकर विद्यार्थी साधु गति से प्रगति की ओर बढ़ते। कोमलता और कठोरता के समन्वित प्रयोग से महाप्रज्ञ के भीतर छिपी शक्तियाँ प्रकट हुईं। जब कभी मुनि 'नथमल' अध्ययन के प्रति बे-परवाह बनते, प्रमाद करते तब-तब उन्हें कई प्रकार से अनुशाससित करने के प्रयोग अपनाये जाते। उनमें आधा घंटा खड़े रहने का दंड भी सम्मिलित था जो बाल मुनि के लिए असह्य-सा था। इससे अनेक प्रकार के विकल्प उठते। पर जीवन निर्माता के प्रति पूर्ण समर्पण भाव से अनुशासन कभी भार नहीं लगा बल्कि उपहार सिद्ध हुआ।

कालांतर में महाप्रज्ञ ने अपने अनुभव को बताया—शब्दों के उच्चारण काल में हम हंस पड़ते। तब हमारा पाठ बंद हो जाता। किशोरावस्था की कुछ जटिल आदतों को यदि मनोवैज्ञानिक ढंग से न सम्हाला जाता तो शायद हम बहुत नहीं पढ़ पाते।[63] इस कथन में सच्चाई का स्वीकरण है। जो बहुत कम लोग कर पाते हैं। महाप्रज्ञ ने सहृदय भाव विभोर होकर बतलाया- मैं यह सौभाग्य मानता हूँ कि हमारे प्रति शिक्षक का अन्यून वात्सल्य था और उनके प्रति हमारी अविकल भक्ति। कौन कृतज्ञ व्यक्ति भूल जाएगा कि महामुनि तुलसी अपने अमूल्य समय और आवश्यक कार्यकलापों की उपेक्षा कर हमारी शिक्षा के लिए अत्यधिक प्रयत्नशील रहते थे। हार्दिक भावना ही इसका कारण है; अन्यथा उन्हें क्या था? न कोई वेतन मिलता था और न कोई स्वार्थ सधता था।' परन्तु महान् व्यक्तियों की संपदा परोपकार के लिए होती है, मानो यह कृतार्थ हो गयी। तुलसी जैसे निरूपमेय निर्माता का योग किसी भाग्यशाली को ही मिल पाता है।

वास्तव में दूसरों के लिए तपना-खपना कठिन होता है। पर जिसने अपने साधनामय जीवन को मानवता की सेवा में समर्पित किया है, वही अपने से अन्य का निर्माण कर सकता है। इसके लिए समर्पित जिज्ञासु मुनि 'नथमल' जैसे सुपात्र का मिलना सोने में सुहागे का योग है। निर्मेय का निर्माता के प्रति अहोधन्यता का भाव अनेक प्रसंगों पर मुखरित हुआ। आचार्य महाप्रज्ञ यदा-कदा कहते—'मैं अपने आपको सौभाग्यशाली मानता हूँ कि मुझे एक ऐसा निर्माता मिला, जो व्यक्ति की सुप्त शक्ति को जगाना जानता है। हर व्यक्ति में शक्ति होती है। शक्ति होना एक बात और शक्ति को जगाने वाला देवता मिलना दूसरी बात है।' यह स्पष्ट है कि उपादान ने स्वयं को गौण और निमित्त को बहुत महत्त्वपूर्ण स्वीकारा है। पर निश्चय दृष्टि से देखा जाये तो शक्ति जागरण में जहाँ निमित्त का महत्त्व है वहाँ उपादान की भूमिका भी कम नहीं है। अनेक बार उपादान के अभाव में निमित्त ना कुछ साबित होता है।

आत्मानुशासित साधक के लिए अनुशासन का प्रश्न जटिल नहीं तो आसान भी नहीं होता। अनुशासन के नाजुक धागे पर चलना स्वभाव नहीं संकल्प एवं साधना गम्य होता है। फिर इसे हृदय से स्वीकार करना आसान नहीं, बड़ा कठिन होता है। इस कठिनाई का यदा-कदा अनुभव मुनि 'नथमल' ने भी किया। अपने इस अनुभव को प्रस्तुति महाप्रज्ञ ने तब दी जब आचार्य तुलसी ने कहा-'तुम बहुत कोमल हो।' इस कथन के संदर्भ में महाप्रज्ञ ने कहा—'मेरा रहन-सहन, शिक्षा-दीक्षा मुनि तुलसी के पास हुई। उनके अनुशासन में रहना कोई सरल बात नहीं थी। वे बड़े कठोर अनुशासक हैं।.

...मैं यह नहीं कह सकता कि आप बहुत कठोर हैं, पर वास्तव में हैं कठोर। आपका कठोर अनुशासन मेरे लिए वरदान बना। बचपन से ही मैंने अपने जीवन के दो सूत्र बनाये थे-

- मैं वैसा काम कभी नहीं करूँगा, जिससे मुनि तुलसी (आचार्य तुलसी) अप्रसन्न हों।
- मैं सदा अपने पर अधिक केन्द्रित होऊँगा, दूसरे पर नहीं।

इन दो सूत्रों ने मेरा निर्माण किया। मैं दिन-प्रतिदिन आगे बढ़ता ही गया।' कथन की पृष्ठभूमि में यथार्थ का निदर्शन है। मुनि नथमल की सरल चेतना में कठोर अनुशासन को पालने का दृढ़ संकल्प विकास का नियामक सेतु बन गया।

बौद्धिक धरातल पर अध्ययन-अध्यापन, तर्क-वितर्क की क्षमता का विकास बहुत बड़ी बात नहीं है। पर अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष बनाने की प्यास पैदा करना, उसके प्रति आस्था का भाव जगाना बहुत बड़ी बात है। महाप्रज्ञ का यह सौभाग्य था कि उन्हें आचार्य तुलसी जैसे विधाता मिले जिन्होंने स्थूल से सूक्ष्म की ओर गतिशील बनने की मात्र प्रेरणा ही नहीं शक्ति भी प्रदान की। इसे महाप्रज्ञ ने जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि बतलाते हुए कहा-मेरे गुरुवर आचार्य श्री तुलसी व्यक्ति-निर्माण में अधिक विश्वास करते हैं। उन्होंने मुझे शक्ति का मंत्र दिया। मैंने उसकी उपासना की। मुझे हर्ष है कि उपासना में मेरी तन्मयता कभी भंग नहीं हुई। मेरे गुरुवर ने मुझे विद्या-दान दिया, और भी जो प्राप्य थे, वे दिए पर मेरे लिए उनकी सबसे बड़ी देन है—अप्राप्य को प्राप्य बनाने की तन्मयता। उसीसे मैं अध्यात्म की गहराई में जाने को बार-बार प्रेरित हुआ हूँ। मेरी चैतन्य वीणा का हर तार इस गान से झंकृत है कि इससे बड़ा वरदान कोई नहीं है।[64] वाकई में सूक्ष्म सत्यों के अन्वेषण का ऐसा वरदान किसी प्रबल प्रतापी को ही मिल सकता है। वरदानों की शृंखला में महाप्रज्ञ वीर विक्रमादित्य से कम नहीं ठहरे। वरदान रूपी पिष्टि विरल एवं पात्र ही पचा सकता है। सामान्य व्यक्ति गुरुकृपा के कच्चे पारे को पचा ही नहीं सकता। पर महाप्रज्ञ ने असीम कृपा को पचाने का सामर्थ्य पाया।

समर्पण की भूमिका पर अद्वितीय घटित हुआ। इसकी पुष्टि उन्हीं के शब्दों में मिलती है—'जिस महान् गुरु ने मेरे जीवन का निर्माण किया, मुझे अपना विश्वास दिया और विश्वास तथा श्रद्धा ली, उस विश्वास को अब चरम बिन्दु पर सब लोगों के सामने प्रस्तुत कर दिया।.....अथवा यूँ कहूँ कि एक छोटे से बालक को, जिसे एक दिन अपने हाथों में लिया था, आज उसी को अपने बराबर बिठा दिया।' यह इतिहास की स्वर्णिम घटना है। किसी गुरु ने निर्माण का ऐसा नमूना प्रस्तुत किया हो, खोज का विषय है। महाप्रज्ञ स्वयं आश्चर्यचकित बनें-मैं क्या था क्या हो गया। कहाँ था और कहाँ पहुँचा दिया गया। मैंने कभी नहीं सोचा कि मैं 'निकाय सचिव' बनूँगा किन्तु बना। मैंने कभी नहीं सोचा कि मैं युवाचार्य बनूँगा किन्तु बन गया और मैंने कभी भी यह नहीं सोचा कि तेरापंथ धर्मसंघ जैसे विशाल धर्मसंघ का आचार्य बनूँगा। न चिंतन किया, न सोचा और न चाहा, न माँगा। इस कथन में महाप्रज्ञ की असीम निस्पृहता और प्रबल गुरु योग की युति है।

पंडित दलसुख भाई मालवणियां ने कहा था—आचार्यश्री तुलसी और महाप्रज्ञ का गुरु-शिष्य के रूप में जो अविच्छिन्न संबंध है, वह अतीत में कभी रहा या नहीं, यह सचमुच शोध का विषय है। पन्द्रह सौ वर्ष के जैन परंपरा के इतिहास में गुरु-शिष्य का ऐसा संबंध देखने में नहीं आया।[65]

श्रीडूँगरगढ़ चातुर्मास प्रवास के दौरान संस्कृत के एक प्रकांड विद्वान ने आचार्य तुलसी के दर्शन किये एवं प्रवचन के समय संस्कृत में धाराप्रवाह भाषण दिया। आचार्य तुलसी के मन में संस्कृत के विकास की तीव्र अभिलाषा जगी। आचार्य तुलसी ने महाप्रज्ञ आदि संतों को वेदना भरे स्वरों

में कहा-'आज पंडितजी संस्कृत में कितने अच्छे बोले! हमारे धर्मसंघ में संस्कृत में इस प्रकार बोलने वाला कोई नहीं है। क्या कभी हमारे साधु भी संस्कृत में इस प्रकार धाराप्रवाह बोल सकेंगे?' गुरु के वेदना भरे स्वरों से संतों के मानस में एक दृढ़ संकल्प पैदा हुआ। नथमल आदि अनेक मुनियों में संस्कृत भाषा का अभ्यास प्रारंभ हो गया। दो-तीन महीनों के सघन प्रयत्न-पुरुषार्थ के पश्चात् संस्कृत भाषण की दक्षता कसौटी पर स्वयं को कसने के लिए तैयार हो गये। आचार्य तुलसी ने कसौटी रखी-'एक महीने तक प्रतिदिन निर्धारित विषय पर संस्कृत भाषा में संभाषण करना। जिस मुनि के एक भी अशुद्धि नहीं आयेगी, उसे पुरस्कृत किया जाएगा। अभिप्रेरणा से सज्जित एक प्रतियोगिता में लगभग बीस साधुओं में से सर्वथा त्रुटि-मुक्त बोलने वाले एकमात्र मुनि थे-'नथमल'। संकल्प की सफलता पर महाप्रज्ञ को यथेष्ट पुरस्कार मिला और गुरु तुलसी को अपने शिष्य की प्रतिभा पर आत्मतोष।

महाप्रज्ञ अपने संकल्प, पुरुषार्थ और सतत् अभ्यास से संस्कृत भाषा के अधिकृत विद्वान बन गयें। साथ ही प्राकृत भाषा के वेत्ता भी बनें। इसकी पुष्टि तब हुई जब जर्मन विद्वान डॉ. नॉर्मन ब्राऊन की हार्दिक इच्छा पर आचार्य तुलसी के निर्देश से महाप्रज्ञ ने स्याद्वाद विषय पर बीस मिनट तक प्राकृत भाषा में धारा प्रवाह प्रवचन दिया। आचार्य तुलसी सहित उपस्थित सारी परिषद् भाव विभोर हो उठी। विशेष रूप से पेनस्लेविया यूनिवर्सिटी के संस्कृत विभागाध्यक्ष डॉ. नॉर्मन ब्राऊन ने आचार्य प्रवर के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए कहा-मेरी आज भारत यात्रा सफल हो गयी। मैं कृतार्थ हो गया अब मैं चाहे अभी मरूँ या बाद में मेरी अंतिम अभिलाषा पूरी हो गयी।[66] फौलादी संकल्प की चेतना से अभिभूत आचार्य महाप्रज्ञ ने संस्कृत-प्राकृत जैसी भाषाओं पर न केवल प्रभुत्व स्थापित किया अपितु इनकी समृद्धि हेतु साहित्य-कोश, व्याकरण आदि का निर्माण सुगम शैली में किया।

मंत्री मुनि की अनमोल शिक्षा

महाप्रज्ञ के आध्यात्मिक जीवन को सझाने-सँवारने में मंत्रीमुनि मगनलालजी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। वे अपनी विलक्षण सूझबूझ की बदौलत तेरापंथ धर्मसंघ में मंत्री पद से सुशोभित थे। उन्होंने अपने समय का नियोजन धर्म संघ के बाल मुनियों के संस्कार निर्माण में किया। उस कड़ी से जुड़ने का सौभाग्य मुनि नथमल को मिला। मुनि नथमल की विकास गति को वे सैदव प्रेरित करते रहे, संस्कार बीजों का वपन करते रहे। उस समय बोया गया संस्कार बीज, प्रेरणा कौशल महाप्रज्ञ के जीवन-दर्शन में ताजिंदगी अंकित रहा। महाप्रज्ञ ने इस तथ्य को प्रस्तुति दी—'इतना प्रबुद्ध, इतना चिंतक और इतना गंभीर व्यक्ति मैंने अभी तक दूसरा नहीं देखा। मेरे साथ वे जो कुछ बात करते, उससे मुझे ऐसा लगता, जैसे वे सचमुच कोई बीज बो रहें हैं।' उनके शिक्षापदों ने मुझे बहुत अवकाश दिया संभलने का। प्रेरणास्रोत की जीवंत विशेषताएँ महाप्रज्ञ के जीवन की अनमोल धरोहर बन गई। उनका बोया हुआ संस्कार बीज बरगद रूप में बदल गया। जहाँ तक शिक्षा पदों से संभलने का सवाल है-विकास के बाधक तत्त्वों से बचाव करना। साधक की साधना में अहंकार-ममकार विघ्न पैदा करने वाले मुख्य घटक हैं।

ज्ञान की अपूर्णता और साधना की अपरिपक्व स्थिति में ये मुमुक्षु पर हावी हो सकते हैं। पर इस संदर्भ में मुनि नथमल का सौभाग्य था जिन्हें मंत्री मुनि जैसे मजीठे साधकों का उचित मार्ग-

दर्शन समय-समय पर मिलता रहा। वे महाप्रज्ञ की अहंकार मुक्ति की साधना में विशेष रूप से प्रेरणास्रोत बनें। उनके शिक्षाप्रद बोल की अर्थात्मा थी—'विद्या का और गुरु-कृपा का अहंकार नहीं होना चाहिए। हम मुनि हैं। हम किस बात का अहंकार करें। माँगना बहुत छोटा काम है। हम रोटी के लिए दूसरों के सामने हाथ पसारते हैं, फिर अहंकार किस बात का? न जाने कितनी बार यह जीव बेर की गुठली बनकर पैरों में रौंदा जा चुका है। फिर अहंकार किस बात है?'[67] इन छोटे-छोटे बोलों ने मुनि नथमल की आभ्यन्तर चेतना को मात्र छूआ ही नहीं अभिमंत्रित भी किया। महाप्रज्ञ ने तहेदिल से स्वीकारा कि मेरी अहंकार-मुक्ति की साधना के प्रेरणास्रोत एक मात्र मंत्री मुनि बनें। इस संदर्भ में मंत्री मुनि की दूर दृष्टि एवं महाप्रज्ञ की निर्मल चेतना में संग्राहक भाव का अनूठा निदर्शन है। मंत्री मुनि के शिक्षामृत वचनों की छाप महाप्रज्ञ जीवन-दर्शन में अमिट बनीं। उस प्रेरणा की बदौलत महाप्रज्ञ उच्च कोटि की विद्वत्ता के शिखर पर भी उतने ही सहज-सरल और प्रणत चेता बने रहे।

सृजनात्मक कड़ियाँ बनाम आस्था

साहित्य सृजन

आचार्य महाप्रज्ञ का साहित्य आज जन-जन के लिए प्रेरणा पाथेय बन रहा है। मूल्य है उस साहित्य सृजन चेतना के सर्जक का। उनका साहित्य विभिन्न भाषाओं में प्रचुर संख्या में उपलब्ध है। जिसमें प्रबुद्ध-अप्रबुद्ध, बाल-युवा, प्रौढ़-वृद्ध सभी को समाहित करने की अद्‌भुत कला है। विश्व व्यापी समस्याओं का समाधान आचार्य महाप्रज्ञ ने अपने मौलिक चिंतन के द्वारा साहित्य के माध्यम से किया है। प्रश्न है इस प्रेरणा के मूल स्त्रोत का।

आचार्य महाप्रज्ञ मौलिक साहित्य के स्रष्टा रहे हैं। उनकी सृजन चेतना को जगाने वाले भी आचार्य तुलसी थे। प्रथम प्रसंग था—प्रो. हीरालाल रसिकदास कापड़िया अहिंसा के बारे में एक ग्रन्थ का संकलन कर रहे थे। आचार्य भिक्षु के अहिंसा संबंधी विचारों को संपादित ग्रन्थ में देने की भावना से आचार्य तुलसी से एक निबन्ध का निवेदन किया। आचार्य तुलसी उस समय चाड़वास (चुरू-राजस्थान) विराज रहे थे। उन्होंने मुनि नथमल (महाप्रज्ञ) को बुलाकर पूछा-'क्या तुम हिन्दी में निबंध लिख सकते हो?' (उस काल में राजस्थान के थली क्षेत्र में हिन्दी का प्रचलन ही नहीं था) स्वाभाविक उत्तर था-'लिख सकता हूँ।' गुरुदेव ने आदेश दिया—'अहिंसा के संबंध में आचार्य भिक्षु के विचारों पर एक निबंध लिखो।' हिन्दी में लिखा गया वह प्रथम निबंध 'अहिंसा' शीर्षक से एक लघु पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुआ।

साहित्य सृजन का शिल्यान्यास 'अहिंसा' लेखन के साथ हुआ। नियति का संयोग था कि सर्वप्रथम अहिंसा जैसे विराट् विषय पर कुछ लिखने का मुनि नथमल को सौभाग्य मिला। इसी विषय पर पुनः लेखन की प्रेरणा मिली। आचार्य तुलसी का चातुर्मासिक प्रवास (वि.सं0 2011) मुम्बई में था। परमानन्द कापड़िया ने तेरापंथ की अहिंसा विषयक दृष्टि पर एक समीक्षा लिखी। आलोचना स्तरीय थी। इससे पहले तेरापंथ के अहिंसा विषयक सिद्धांत की इस रूप में आलोचना नहीं निकली थी। गुजराती भाषा में छपे लेख का शीर्षक था—'अहिंसा की अधूरी समझ।' आचार्य तुलसी ने उस लेख को पढ़कर महाप्रज्ञ को निर्देश दिया—'अब तक हमने आलोचना का प्रत्युत्तर नहीं दिया। पहली बार यह स्तर की आलोचना निकली है, जिसमें गाली-गालौज नहीं किन्तु एक चिन्तन है। अब हमें इसका प्रत्युत्तर देना चाहिए। तुम एक लेख लिखो।' आदेश को आकार देते हुए महाप्रज्ञ ने एक लेख लिखा 'अहिंसा की सही समझ' 'जैन भारती' पत्रिका में दोनों लेख एक साथ छपे। कापड़िया ने 'प्रबुद्ध जीवन पत्रिका में लिखा-'मेरे लेख में कहीं-कहीं व्यंग्य भी है, कटूक्तियाँ भी हैं, किन्तु मुनि श्री नथमल जी ने जो लेख

लिखा है उसमें केवल समीक्षा है, न कोई व्यंग्य और न कोई कटूक्ति।' इससे मैं बहुत प्रभावित हुआ।[68] लेखन की प्रभावोत्पादकता का हेतु था अहिंसा की शब्दात्मा के साथ भावात्मकता का समन्वय। मुनि नथमल में अहिंसा का विकास इस कोटि का हो गया कि बिना कटाक्ष के तथ्य का प्रतिपादन संभव बना।

साहित्य लेखन का प्रारंभिक क्रम गति से प्रगति की ओर बढ़ता गया। कुछ ही वर्षों में महाप्रज्ञ की सृजन साधना सफल हुई और उनकी रचनायें विद्वत वर्ग में प्रतिष्ठित बनीं। स्थिति यहाँ तक पहुँची कि संपर्क में आने वाले साहित्य प्रेमी, जिज्ञासु पाठक का पहला प्रश्न होता—'आचार्य श्री आपने न पाठशाला की पढ़ाई की, न बाहर जाकर कोई डिग्री ली फिर आपने इतना अध्ययन कब और कैसे किया? आपका विशाल साहित्य, आगम संपादन कार्य प्रश्न पैदा करता है कि आपको इतना लिखने-सोचने का समय कब मिलता है? आपके मस्तिष्क में नये-नये चिन्तन कैसे प्रस्फुटित होते हैं?'

महाप्रज्ञ स्मितभाव से जिज्ञासु को समाहित करते-मेरा अध्ययन न कॉलेज में हुआ है, न पाठशाला में। मैंने जो कुछ भी प्राप्त किया है, उसका श्रेय गुरुदेव श्री तुलसी को है। मैं दिन भर में दो-चार से ज्यादा पृष्ठ नहीं पढ़ पाता।.....जहाँ तक लिखने का सवाल है, मैं बहुत ही कम लिखता हूँ। जब भी मैं लिखने बैठता हूँ, तब एक गति से लिखता चला जाता हूँ। जब भी लिखने में बाधा आती है या दिमाग में कोई स्फुरणा नहीं जागती है, तब मैं अपनी लेखनी को वहीं विश्राम दे देता हूँ।. .....वैसे जो भी बोलता हूँ, वह संपादित होकर जनता के सामने आ जाता है। नये चिन्तन की स्फुरणा का स्रोत है गंभीर ग्रंथों का अध्ययन-अध्यापन। हल्का-फुल्का साहित्य पढ़ने की रुचि नहीं रही। मैं वही साहित्य पढ़ना पसंद करता हूँ, जिससे मुझे कुछ सोचने के लिए बाध्य होना पड़े या जिसे समझने में मुझे कठिनाई होती है। दूसरा कारण है मैं ध्यान आदि के द्वारा मस्तिष्क को बहुत अधिक विश्राम देता हूँ, ताकि वह स्वतंत्रता, ताजगी और स्फूर्ति के साथ काम कर सके।[69] महाप्रज्ञ के इस स्वाभाविक मंतव्य से उनकी क्षमता का अंकन किया जा सकता है। कथन में अहं अथवा कर्तृत्व भाव का लवलेश भी नहीं है। यह उनकी निस्पृहता का द्योतक है।

वे जितने निस्पृह थे बौद्धिक क्षेत्र में उतने ही सक्रिय रहे। उनके साहित्य में मौलिकता और वैज्ञानिकता का समावेश है। वैज्ञानिक राष्ट्रपति डॉ. ए.पी. जे. अब्दुल कलाम ने आचार्य महाप्रज्ञ की कई पुस्तकें—द मिरर ऑफ सेल्फ, माइंड बियोण्ड माइंड, इकोनोमिक्स ऑफ महावीरा, आई एण्ड माइन, पढ़ी और टिप्पणी करते हुए कहा-इनमें आपका विषय-विश्लेषण बहुत ही वैज्ञानिक है। विस्मय भाव से पूछ बैठे—आचार्य जी! आप इतना कब लिखते हैं? राष्ट्रपति जी को समाहित करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा-मैं सोचता नहीं हूँ। अचिंतन की भूमिका में रहता हूँ। जो विचार प्रस्फुट होते हैं, वही लिख देता हूँ। मेरा विश्वास है-'यदि एकाग्रता हो तो आठ घंटे का काम तीन घंटे में किया जा सकता है।' राष्ट्रपति महोदय आचार्यप्रवर के इस कथन से पूर्ण सहमत हुए।[70] इस कथन में बहुत बड़े रहस्य का उद्घाटन हुआ है। जैसे अकर्म से निकला कर्म शक्तिशाली होता है वैसे ही अचिंतन से निकला चिंतन मौलिक और समाधायक होता है।

आचार्य तुलसी ने वैश्विक समस्याओं, स्थितियों को देखते हुए चिंतन किया क्यों नहीं नए मानव का मॉडल प्रस्तुत किया जाये? मानव नया होगा तो विश्व स्वतः नया हो जाएगा। 'नया मानव' सुधार या रूपान्तरण से नहीं बनेगा, उसका नए सिरे से निर्माण करना होगा। आचार्य महाप्रज्ञ को नए मानव का मॉडल प्रस्तुत करने के लिए निर्देश दिया। 'यथा नियोक्तोऽस्मि तथा करोमि' की तर्ज पर अति शीघ्र 'नया मानव : नया विश्व' पुस्तकाकार में गुरुचरणों में समर्पित कर धन्यता का अनुभव किया।

प्रस्तुत रचना महाप्रज्ञ की प्रज्ञा से निसृत मानवता के नाम अनुपम उपहार है। जिसमें नये मानव के निर्माण-सूत्र अंकित हैं। ऐसी अनेक महत्त्वपूर्ण कृतियाँ गुरु इंगित पर महाप्रज्ञ द्वारा निष्पन्न हुई।

आचार्य महाप्रज्ञ का बहुआयामी व्यक्तित्व गुरुदेव श्री तुलसी की प्रेरणा-प्रोत्साहन, अनुशासन, कृपा दृष्टि का प्रसाद कहा जा सकता है। इसकी पुष्टि महाप्रज्ञ के कथन 'मैंने जो कुछ भी प्राप्त किया है, उसका श्रेय पूज्य गुरुदेव को है' से होती है। उनका मानना था कि मेरे निर्माता ने मेरी प्रत्येक क्रिया को कुशलता और मौलिकता की कसौटी पर कसा फिर चाहे संदर्भ साहित्य सृजन का हो या प्रवचन शैली परिवर्तन का, प्रेक्षाध्यान की गहन अनुभूति में निमज्जन का हो या जीवन-विज्ञान के व्यावहारिक प्रयोग-परीक्षण का। अपने निर्माता के प्रति अटूट आस्था, अखंड समर्पण, अविकल श्रद्धा महाप्रज्ञ की विरल विशेषता रही है। किसी के योग से अपने जीवन का निर्माण करना एक बात है और उनके प्रति सदैव समर्पित रहना सर्वथा भिन्न बात है। पर, महाप्रज्ञ विद्यागुरु-व्यक्तित्व निर्माता आचार्य तुलसी के प्रति सदैव-सर्वात्मना प्रणत रहे हैं। सचमुच आध्यात्मिक गहराई, बौद्धिक दिव्यता, स्थितप्रज्ञता, असीम करुणा, मानवीय मूल्यों के संरक्षण की तड़फ, विश्व शांति के प्रयत्न रूप जो महाप्रज्ञ में विशिष्ट गुण विकसित हुए। यह गुरु तुलसी का अलौकिक प्रतिबिम्ब कहा जा सकता है। कथन में अत्योक्ति नहीं होगी कि गुरुदेव श्री तुलसी के कालजयी कर्तृत्व की सर्वोच्च उपलब्धि बना-आचार्य महाप्रज्ञ का विराट् जीवन-दर्शन।

आस्था का अभिराम : भिक्षु-दर्शन

आचार्य भिक्षु के अध्यात्मपदीय उच्च आदर्शों में महाप्रज्ञ को आत्म-साधना का सौभाग्य मिला। इस महापथ की बदौलत ही आध्यात्मिक दिव्य गुणों का संचार शतगुणित हुआ। आचार्य भिक्षु का धर्म दर्शन (तेरापंथ धर्म संघ) महाप्रज्ञ की श्रद्धा एवं सफलता का पर्याय बना। महाप्रज्ञ में समदृष्टि, करुणा, अभय, गतिशील अहिंसा, सत्य के प्रतिपादन की तार्किक क्षमता आदि गुणों का समवाय भिक्षु-दर्शन की आस्था से उपजा सच था। आस्था की कसौटी पर भिक्षु-दर्शन महाप्रज्ञ के लिए 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानं' की अनुभूति का निदर्शन बन गया।

तेरापंथ धर्मसंघ के आद्य प्रणेता आचार्य भिक्षु के प्रति महाप्रज्ञ की अटूट श्रद्धा कब पैदा हुई? कह पाना कठिन है। पर इस संदर्भ में महाप्रज्ञ का मन्तव्य 'मैं बचपन से ही भिक्षु स्वामी के प्रति ज्यादा श्रद्धाशील रहा हूं।'[71] इसे स्पष्ट करते हुए बताया-'इसका श्रेय माता बालूजी को है। मैंने सबसे पहले आचार्य भिक्षु को अपनी माँ से समझा। मैं छोटा था, सोया रहता। माँ जल्दी उठकर भिक्षु का स्मरण करती। वह गाती 'मंत्राक्षर सम नाम तुम्हारे,.....संत भीखणजी रो स्मरण कीजे।' मेरे कानों में ये शब्द पड़ते। संस्कार जमते गए। भिक्षु के प्रति मेरे अव्यक्त मन में एक श्रद्धा उत्पन्न हुई। मैं दीक्षित हुआ अपनी माँ के साथ। आठ-दस वर्ष तक मुझे आचार्य भिक्षु के बारे में समझने-सोचने का अवसर ही नहीं मिला। सहसा आचार्य तुलसी की विचारधारा ने मोड़ लिया, सोचा-तेरापंथ के संबंध में भ्रामक प्रचार, सन्देह पैदा किया जा रहा है, उनका निवारण अपेक्षित है। अन्यथा हमारे विकास में बाधाएँ आती रहेगीं। आचार्य श्री ने नए प्रकार से, आधुनिक संदर्भों में आचार्य भिक्षु के सिद्धाँतों की व्याख्या प्रस्तुत की। उस समय तक मैं बहुत नहीं जानता था। मैंने आचार्यश्री द्वारा प्रस्तुत तर्कों को पकड़ना प्रारम्भ किया। वि.सं0 2001 से 2008 तक यह सिलसिला चलता रहा। 'जैन सिद्धान्त दीपिका' की रचना हुई और मैं उन तर्कों की गहराई में उतरने का प्रयत्न करता रहा।

मैंने आचार्य भिक्षु को तर्क की कसौटी पर कसा और उन्हें समझने का प्रयास किया। पहले श्रद्धा से समझा, बाद में तर्क से समझा। अब मैं आचार्य भिक्षु को प्रतिबिम्बों में समझ रहा हूँ प्रतिक्रियाओं से समझ रहा हूँ।[72] महाप्रज्ञ ने माना कि बचपन में माता से मिला भिक्षु श्रद्धा का उपहार तर्क की कसौटी पर अधिक पुष्ट बना। आचार्य भिक्षु के सिद्धान्तों की गहराई में अवगाहन से महाप्रज्ञ की अहिंसक चेतना अधिक प्रखर बनीं। आचार्य भिक्षु ने एक सूत्र दिया था—'बड़े जीवों की रक्षा के लिए छोटे जीवों को मारना अहिंसा नहीं है। छोटे जीवों को मारकर बड़े जीवों का पोषण करना अहिंसा नहीं है। इस सूत्र ने मुझे बहुत आंदोलित किया।' विशेषरूप से आचार्य भिक्षु की क्रांतवाणी से उनका मानस अत्यधिक प्रभावित बना। क्योंकि भिक्षु ने उस समय सत्य पक्ष को उजागर किया जब बड़े जीवों की रक्षा के लिए छोटे जीवों के वध को पुण्य माना जाता था। अहिंसा के क्षेत्र में भी बल-प्रयोग मान्य था। पुण्य के लिए धर्म करना सम्मत था। अशुद्ध साधन के द्वारा शुद्ध साधन की प्राप्ति मानी जाती थी और दान मात्र को पुण्य माना जाता था। आचार्य भिक्षु ने इन मान्यताओं का अहिंसा के आलोक में खंडन किया। यह उनकी अहिंसक चेतना का पराक्रम था। आचार्य भिक्षु के इन मौलिक विचारों ने महाप्रज्ञ के हृदय में अभिनव प्रेरणा का संचार किया। अहिंसा पर कुछ विशेष विश्लेषण की चाह जगी।

महाप्रज्ञ की दृष्टि में आचार्य भिक्षु अहिंसा के मर्मज्ञ थे। उन्होंने अहिंसा को गहरी सूक्ष्म दृष्टि से देखा और उसकी समीक्षा की। भिक्षु की अहिंसक समीक्षा ने महाप्रज्ञ को आधुनिक संदर्भ में कुछ लिखने के लिए प्रेरित किया। जिसकी निष्पत्ति है—भिक्षु विचार दर्शन। इसमें आचार्य भिक्षु के सिद्धांतों को आधुनिक प्रस्तुति दी-जीव-जीव का जीवन है—यह प्राणी की विवशता है पर अहिंसा नहीं। बहुसंख्यकों के हित के लिए अल्पसंख्यकों का अहित क्षम्य है, यह जनतन्त्र का सिद्धांत है पर अहिंसा नहीं। बड़ों के लिए छोटों का बलिदान क्षम्य है, यह राजतन्त्र की मान्यता है पर अहिंसा नहीं है। इन सिद्धान्तों से आत्मौपम्य या सर्वभूतात्मभूतवाद की रीढ़ टूटी है। विवशता, बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक तथा छोटे और बड़े के प्रश्न सामाजिक क्षेत्र में उठते हैं। अहिंसा का स्वरूप इन सभी प्रश्नों से मुक्त है। इस मंतव्य ने महाप्रज्ञ के दिल पर गहरी छाप छोड़ी।

आचार्य भिक्षु द्वारा खींची गई हिंसा-अहिंसा की भेद रेखा—जीव जीता है, वह अहिंसा या दया नहीं है। कोई मरता है वह हिंसा नहीं है। मारने की प्रवृत्ति हिंसा है और मारने की प्रवृत्ति का संयम करना अहिंसा है। महाप्रज्ञ आचार्य भिक्षु के शुद्ध साध्य की सिद्धि के लिए शुद्ध साधन की अनिवार्यता के सिद्धांत से बहुत प्रभावित हुए। उनके अभिमत में इस सिद्धांत पर बल देने और तार्किक पद्धति से विश्लेषण करने वाले भारतीय मनीषियों में आचार्य भिक्षु और महात्मा गांधी का नाम अग्रणी है। इस विषय में महाप्रज्ञ ने दोनों मनीषियों के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया। प्रयोग पुरस्सर लेखनी का विषय भी बनाया।

आचार्य भिक्षु के सिद्धान्तों की गहराई में अवगाहन करते समय महाप्रज्ञ को अहिंसा संबंधी कुछ मौलिक तथ्य हृदयगंम हुए। आ. भिक्षु ने कहा भय, बल-प्रयोग और प्रलोभन से प्रतिक्रिया पैदा होती है। वह प्रतिक्रिया हिंसा को जन्म देती है। अतः हिंसा छुड़वाने के ये सारे साधन गलत है। ऐसे में प्रश्न उठा हिंसा क्यों छुड़ाएँ? क्यों नहीं छुड़ाएँ? छुड़ाना है तो कैसे छुड़ाएँ? हिंसा से आदमी को कैसे बचाएँ? आचार्य भिक्षु ने सूत्र दिया—अहिंसा का शुद्ध साधन है हृदय-परिवर्तन। हिंसा करने वाले का हृदय बदले। हिंसक का चैतन्य जागे तभी अहिंसा होगी। अहिंसा का और कोई भी उपाय नहीं है। एक मात्र उपाय है—हृदय-परिवर्तन। हिंसक का हृदय बदलने से ही अहिंसा सिद्ध होगी।[73]

आचार्य भिक्षु के इन मन्तव्यों ने महाप्रज्ञ की चेतना को झकझोरा। उनके सिद्धान्तों की गहराई में पैठने का भाव प्रबल बना। भिक्षु का अहिंसामृत शास्त्रों के विलोडन और प्रतिभा के प्रस्फोटन से निकला था। पर तात्कालिक परिस्थितियों के संदर्भ में अहिंसा का सिंहनाद भिक्षु के अहिंसा-प्रचेता का द्योतक है। वे मन, वाणी कर्म से अहिंसा के प्रतिस्रोत मार्गानुगामी बनें। महाप्रज्ञ भिक्षु के इस प्रसाद से अधिक आश्वस्त बनें और तेरांपथ के मौलिक सिद्धांतों का उन्होंने तलस्पर्शी ज्ञान ही नहीं किया अपितु अहिंसा के आलोक में आधुनिक प्रस्तुति भी दी। महाप्रज्ञ की शब्दात्मक प्रस्तुति में आचार्य भिक्षु ने एक आध्यात्मिक प्रासाद का निर्माण किया। जिसकी चार भूमिकाएँ हैं—

1. आचार और विचार की पवित्रता।
2. अहं और मम का विसर्जन।
3. अनुशासन।
4. विकास।[74]

आचार्य भिक्षु के जीवन दर्शन और तत्वविशलेषण की गहरी छाप महाप्रज्ञ की सोच और साधना में प्रतिबिम्बित बनीं। उनके दर्शन को जीने का संकल्प लिया और अहिंसा के क्षेत्र में विकास की ऊँचाइयों को छूआ। जिसकी सबल अभिव्यक्ति महाप्रज्ञ के जीवन व्यवहार के प्रत्येक संदर्भ में संपृक्त थी।

गांधी साहित्य का प्रभाव

महाप्रज्ञ की गतिशील दार्शनिक लेखनी को बदलने की प्रेरणा तब मिली जब राष्ट्र पिता महात्मा गांधी का साहित्य उनके हाथ लगा। उनका साहित्य प्रेम धर्म एवं सम्प्रदाय की सीमाओं से मुक्त-ऐतिहासिक, सम-सामायिक, दार्शनिक, राजनैतिक विचारों को पढ़ने और उसके मौलिकता की थाह लेने में कभी कुंठित्र नहीं हुआ। अपितु अध्ययन का अनन्य अंग बना। इसकी बदौलत महाप्रज्ञ की सृजन चेतना को नव आयाम मिला। जिसका एक घटक है गांधी साहित्य। इस साहित्य ने उनकी चिंतनधारा को मात्र अभिप्रेरित ही नहीं किया उसकी दिशा बदलने में भी अहं भूमिका निभाई।

महाप्रज्ञ के शब्दों में—'गांधी साहित्य से मुझे जैन धर्म को आधुनिक संदर्भ में पढ़ने की प्रेरणा मिली।' इस प्रेरणा का प्रभाव रचनाओं में स्पष्ट परिलक्षित हुआ। उदाहरण के तौर पर 'आँखें खोले' पुस्तक के पांच अध्यायों में एक अध्याय है—जातिवाद। आचार्य तुलसी ने उसे देखकर कहा-'यह पुस्तक बाहर आएगी तो समाज में बहुत चर्चा होगी। अभी इसे रहने दो।' फिर दो क्षण के चिंतन के बाद कहा-'यह तो वास्तविकता है। जैन धर्म में जातिवाद के लिए कोई स्थान नहीं है। फिर चर्चा से क्यों डरना चाहिए?' पुस्तक प्रकाशित हुई। ऊहापोह के बावजूद यथार्थ की प्रस्तुति से लेखक को आत्मतोष हुआ। इतना ही नहीं प्रेरणा का स्थायित्व इस कदर हुआ कि सदा-सदा के लिए लेखन की दिशा बदल गयी।

आचार्य महाप्रज्ञ ने यह भी लिखा-'गांधी साहित्य के माध्यम से मैंने रस्किन और टॉलस्टॉय को पढ़ा तो मुझे और अधिक व्यापक संदर्भ में चिंतन करने का अवसर मिला।'[75] गांधी के साहित्य में रस्किन और टॉलस्टॉय के बारे में पढ़ा तब महाप्रज्ञ के भीतर इन पाश्चात्य दार्शनिकों को पढ़ने की चाह जगी और स्वतंत्र रूप से इनके साहित्य को पढ़ा। साहित्य जनित प्रेरणा महाप्रज्ञ की रचना धर्मिता का आधार पाकर मुखर हो उठी। उसकी झलक उनके विशाल साहित्य सृजन में गम्य है।

महावीर दर्शन की अमिट छाप

भगवान महावीर का शासन (जैन धर्म) मुमुक्षुओं के लिए त्राण-शरण एवं द्वीप भूत है। लाखों नें इससे प्रेरणा पाकर सत्य का साक्षात्कार किया है। उसी शृंखला में आचार्य महाप्रज्ञ अद्वैत की भूमिका पर

अहिंसा की अखंड आराधना में निमग्न बनें। उनके प्रत्येक क्रिया-कर्म में 'खेमंकरी' की अनुगूंज थी। इसका मूल सेतु बना-महावीर का धर्म दर्शन। जीवन के बहुत प्रारंभ में ही बालक नथमल ने आत्मविकास के लिए जैन धर्म की कठोर संयम साधना स्वीकार की। संकल्प की पूर्णाहुति में महावीर की तत्त्व मीमांसा को आत्मसात् करने की प्रक्रिया में अनुभव किया अहिंसा और महावीर दो नहीं है। इस आस्था ने महाप्रज्ञ के भीतर नई चेतना का संचार किया। उसकी छाप महाप्रज्ञ की जीवन-शैली के प्रत्येक पहलू में देखी गई। विशेष रूप से वर्तमान की वैश्विक समस्याओं का समाधान उन्होंने अहिंसा की प्रतिष्ठा में खोजा।

महावीर ने अपने समय में पनपने वाली विषमताओं का समाधान अहिंसा के आलोक में किया। अतः अहिंसा के अग्रदूत कहलाये। पुरुषोत्तम महावीर में लिखा—'महावीर का अर्थ अहिंसा और अहिंसा का अर्थ महावीर हो गया। उनकी अहिंसा का आदि भाग था अभय, मध्य भाग था उपेक्षा और अन्तिम भाग था समता।' समता के महान प्रचेता भगवान् महावीर के जीवन की प्रत्येक धारा में 'अहिंसा' की ही गति थी। उन्होंने कुछ किया वह भी अहिंसा के लिए और नहीं किया वह भी अहिंसा के लिए। उनका आचार अहिंसा मूलक, विचार अनेकान्त-दृष्टिमूलक और भाषा स्याद्वाद मूलक थी। वस्तुतः सभी अहिंसा मूलक थे। मानसिक अहिंसा के लिए अनेकान्त-दृष्टि और वाचिक अहिंसा के लिए स्याद्वाद उनकी गतिविधि के स्रोत थे। इनका विशेष प्रयोग आचार्य महाप्रज्ञ की साधना का अभिन्न अंग था।

भगवान महावीर के प्राणवान् दर्शन की प्रासंगिकता वर्तमान के संदर्भ में स्वतः प्रमाणित है। चूँकि समता, अहिंसा, समानता और अपरिग्रह युग की मांग है। महावीर द्वारा दर्शित धर्म विशुद्ध रूपेण आध्यात्मिक है। उसका प्रारंभ बिन्दु है आत्मा का संज्ञान और चरम बिन्दु है आत्मौपलब्धि या आत्म साक्षात्कार। महाप्रज्ञ के भीतर आत्म साक्षात्कार की प्रेरणा प्रबल हुई। महावीर चेतना से उनका साक्षात्कार आकांक्षा पूर्ति की एक सबल कड़ी बना। इसका साक्षी है 'श्रमण महावीर' ग्रंथ जो महाप्रज्ञ की कृति है। महावीर की प्राणवान् प्रेरणा का प्रभाव महाप्रज्ञ द्वारा संपादित विशाल आगम-राशि से आंका जा सकता है। वीतराग वाणी की आधुनिक परिवेश में वैज्ञानिक संदर्भों के साथ प्रस्तुति उनकी स्थितप्रज्ञता का प्रमाण है।

महावीर की प्रयोग धर्मा अहिंसक चेतना का प्रभाव महाप्रज्ञ पर सघन रूप से अंकित था इसकी पुष्टि महाप्रज्ञ के कथन से होती है-महावीर अहिंसा के कोरे व्याख्याकार नहीं थे। वे प्रयोगकार थे। उन्होंने अपने जीवन में अहिंसा के संभवतः सर्वाधिक प्रयोग किये। अहिंसा के प्रयोगों से अपना पराक्रम और शौर्य-वीर्य प्रदर्शित किया।

हम सोचते हैं कि महावीर ने दीर्घकालीन तपस्याएँ की, शरीर को बहुत सताया। पर महावीर के लिए वह बहुत स्वाभाविक था। वह अहिंसा का पहला प्रयोग था। जो चेतना-केन्द्रित नहीं होता वह देह के प्रति अनासक्त नहीं हो सकता। जो देह के प्रति अनासक्त नहीं होता वह अहिंसक नहीं हो सकता।[76] व्यवहार के धरातल पर महावीर दर्शन का अनूठा रंग महाप्रज्ञ के मन-वचन-कर्म में समाया हुआ था। वे वीतराग गुणों की दिव्य मशाल को जन चेतना में प्रज्ज्वलित करने के लिए अहर्निश उद्यत रहे। इसकी छवि उनके सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक हृदय में अहिंसा की अभिनव स्फुलिंग पैदा करती थी। महावीर दर्शन का जीवंत भाव महाप्रज्ञ की समता दृष्टि, निर्मल चेतना व अहिंसा की अपूर्व उपासना में प्रतिबिम्बित था।

योग स्फुरणा : आदि स्रोत

प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति ने महाप्रज्ञ को योग साधना की ओर प्रेरित किया। इस बात पर सहसा विश्वास होना कठिन है पर यह सच्चाई है। महाप्रज्ञ उच्च कोटि के योगीराज थे। उनकी यौगिक चेतना का साक्षात् प्रभाव संपर्क में आने वाले को उर्जस्वल बनाये बगैर नहीं छोड़ता। 'अभिशाप बना वरदान' की जीवंत अनुभूति के आलोक में महाप्रज्ञ की योग चेतना के जागरण की अद्भुत घटना घटी। प्रथम दृष्ट्या अप्रिय लगने वाला घटना प्रसंग कभी-कभी विकास की नई दिशाओं का द्वार खोल देता है। पृष्टभूमि में जागृत विवेक की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। योग में नियोजित करने वाले प्रसंग का चित्रण महाप्रज्ञ के शब्दों में—'एक बार मुझे प्रतिश्याय हुआ और वह बिगड़ गया। एलोपैथी और आयुर्वेदिक इलाज कराए, पर कोई लाभ नहीं हुआ। स्थिति चिंतनीय बन गई। फिर प्राकृतिक चिकित्सा का योग मिला। मैं स्वस्थ हो गया। एक प्रेरणा जागी। लुई पूने को पढ़ा। प्राकृतिक चिकित्सा की बीसों पुस्तकें पढ़ीं। वहीं से मेरे योग जीवन का प्रारंभ हुआ। आसन और प्राणायाम के साथ-साथ ध्यान की रुचि भी जागृत हुई।' योग जीवन के आदि स्रोत की स्पष्ट प्रस्तुति महाप्रज्ञ की योगज उपलब्धि का सबूत है।

साधना गति से प्रगति की ओर बढ़ती गयी। इसके विभिन्न पहलू विकास के मानक बनते गये। जिसका उल्लेख महाप्रज्ञ ने किया—'मैंने ध्वनि चिकित्सा का भी प्रयोग किया। तीव्र स्वर में बीज मंत्रों की ध्वनि करने पर मैं कुछ हास्यापद भी बनता रहा। फिर भी कोई अन्तःप्रेरणा काम कर रही थी, मैं उस प्रयत्न को छोड़ नहीं सका।'[77] कालांतार में यह प्रयोग आचार्य महाप्रज्ञ की योग साधना का सेतु बन गया। एक घटना विशेष से जुड़ा प्रेरणा प्रसंग किस प्रकार विकसित होता गया और ताउम्र उसकी फलश्रुति से सभी को सराबोर बनता रहा है। योग संबंधी रहस्यों की खोज और निष्पत्तियाँ अध्यात्म जिज्ञासुओं का पथदर्शन युगों-युगों तक करती रहेगी। महाप्रज्ञ ने इस उपलब्धि का श्रेय प्राकृतिक चिकित्सा को दिया। उन्होंने माना है कि इस विधा के जरिये मुझे योग की गहराई में जाने का और अध्यात्म के आलोक से अभिस्नात होने का सौभाग्य मिला। योग के मौलिक प्रयोगों से चेतना पर आयी आवरण की पर्तें हटती गयी, अर्न्तदृष्टि का जागरण घटित हुआ।

अतीन्द्रिय चेतना के स्फुलिंग

अध्यात्म जगत् की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि अतीन्द्रिय चेतना का प्रबोध महाप्रज्ञ की आत्म संपदा बनी। जिसके द्वारा महाप्रज्ञ ने मानव जाति का शांतिपथ प्रशस्त किया। अनेक महत्त्वपूर्ण रहस्यों की खोज

की। इसकी पुष्टि उनके साहित्य से होती है। महाप्रज्ञ के व्यक्तित्व निर्माण में अतीन्द्रिय चेतना की अनन्य भूमिका रही है। इस अर्हता ने अन्तर्दृष्टि संपन्न बनाया। अन्तर्दृष्टि संपन्नता का कोई कारण पूछे तो बता पाना स्वयं महाप्रज्ञ के लिए कठिन था। अल्बर्ट आइंस्टीन से पूछा गया-आपने सापेक्षवाद का प्रणयन कैसे किया? आइंस्टीन ने कहा—'इट सो हेपेन्ड'-यह हो गया। कैसे हुआ, मैं नहीं कह सकता। महाप्रज्ञ के जीवन में कुछ ऐसी ही घटनाएँ घटित हुई जो उन्हें अन्तर्दृष्टि संपन्न सत्यापित करती है। उदाहरण स्वरूप दो-तीन प्रसंगों का उल्लेख प्रासंगिक होगा।

सन् 1978 में पारमार्थिक शिक्षण संस्था की मुमुक्षु बहनों का शिविर आयोजित हुआ। उस शिविर में महाप्रज्ञ ने ग्यारह चैतन्यकेन्द्रों की नई अभिधा निर्धारित कर प्रयोग करवाए। हठयोग में छह या सात चैतन्य केन्द्रों पर ध्यान का प्रयोग करवाया जाता है। महाप्रज्ञ ने नये नामकरण के साथ उसमें पाँच चैतन्यकेन्द्र और जोड़ दिए। प्रेक्षाध्यान का एक नया रूप सामने आ गया। एक साधक की जिज्ञासा थी-चैतन्यकेन्द्रों का नामकरण किस आधार पर किया गया? महाप्रज्ञ ने कहा-'आधार के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। क्यों किया, इस बारे में भी कुछ नहीं कहा जा सकता। यह अनायास हुआ। अपने आप आभास हुआ कि मणिपुर चक्र को तैजसकेन्द्र कहना ज्यादा संगत है। इससे तैजस शरीर की अधिक संगति है। अनाहत चक्र के लिए आनंदकेन्द्र नाम अधिक उपयुक्त है। यह संगति और उपयुक्तता बाद में सोची गई किन्तु नामकरण संगति या उपयुक्तता के आधार पर नहीं किया गया, बल्कि यह सहज और अन्तःस्फूर्तभाव से किया गया।' कथन के आलोक में अन्तर्दृष्टि संपन्नता की पुष्टि होती है।

इसका संवादी एक और प्रसंग-जैन विश्व भारती के प्रांगण में होली पर्व का प्रसंग था। शिविर में संभागी साधकों के भीतर ऊहापोह जगा आज हम होली कैसे मनायेंगे? भावनाएँ महाप्रज्ञ के समक्ष रखी गई। साधकों की इस भावना से एक नये प्रयोग का सूत्रपात हो गया। विभिन्न चैतन्य केन्द्रों पर लाल, गुलाबी, हरा, नीला और श्वेत-इन पाँच रंगों का प्रयोग करवाया। आध्यात्मिक प्रेम और पवित्रता से सराबोर इन रंगों से प्रत्येक साधक का अन्तर्मानस रंगीन बन गया। ध्यान की समाप्ति पर साधक झूम उठे-यह रंगों का प्रयोग सर्वथा नवीन है। इस प्रयोग के सामने बाहरी और कृत्रिम रंग कुछ भी नहीं हैं। क्या यह प्रयोग आपने पहली बार करवाया है?

महाप्रज्ञ का उत्तर था—मैंने हाल में प्रवेश के पूर्व इस सन्दर्भ में कुछ भी नहीं सोचा था। एकाएक अन्तःप्रेरणा जगी और रंगों का ध्यान करवा दिया। कालान्तर में यही प्रयोग लेश्याध्यान के नाम से प्रतिष्ठित हुआ। जैन विश्व भारती में प्रेक्षाध्यान शिविर प्रसंग में महाप्रज्ञ ने चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा प्रयोग के मध्य चक्राकार चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा का प्रयोग करवाया। समस्त चैतन्य केन्द्रों की एक साथ यात्रा का प्रयोग प्रत्येक साधक को रोमांचित बना रहा था। प्रयोग की संपन्नता पर रहस्य खुला। प्रथम बार महाप्रज्ञ ने आन्तरिक स्फुरणा से अभिनव प्रयोग करवाया। निश्चित रूप से अन्तर्दृष्टि से निष्पन्न इन प्रयोगों से योग की परंपरा अधिक समृद्ध बनी है। ऐसे ही अन्य प्रयोग यथा-अन्तर्यात्रा, मंगलभावना, कायोत्सर्ग-प्रतिमा (जो विशेष रूप से समण श्रेणी के साधकों के लिए बनाई गई) आदि उनकी अंत चेतना के स्फुलिंग है। अन्तर्दृष्टि संपन्न महाप्रज्ञ ने न केवल स्वयं को आलोकित किया अपितु प्रयोगभूमि से गुजरने वाले लोगों को भी प्रकाशवान बनाया।

यह सच्चाई है कि महाप्रज्ञ की ज्ञान चेतना अन्तर्दृष्टि से प्रखर बनी। अनेक मौलिक तथ्यों का प्रतिपादन इसका प्रमाण है। आचारांग के सूत्रार्थ की गहरी पकड़ को देखकर गुरुदेव श्री तुलसी

ने 10 जून 1969 को कहा था-'नथमल में जो विकास हुआ है, वह पढ़ने से नहीं, साधना से हुआ है। मन की निर्मलता सत्य तक पहुँचा सकती है, अक्षर ज्ञान नहीं'[78] महाप्रज्ञ की अन्तर्दृष्टि ने विकास के नये क्षितिज उद्घाटित किये और मानवता को उपकृत करने में अहं भूमिका निभाई है। महाप्रज्ञ के अकूत विकास में अन्तर्दृष्टि की अनन्य भूमिका रही है। इससे प्रेरित हो अनेक साधकों ने स्वभूमिका पर आत्मशक्ति जागरण की दिशा को प्रशस्त बनाया है।

जीवन के रहस्य : बनाम सफलता सूत्र

'अप्प दीवो भव' को आत्मसात् कर जन-जन की चेतना को आलोकित करने वाले विरल होते हैं। महाप्रज्ञ का नाम उस श्रृंखला में स्वर्णांकित है। पृष्ठभूमि में बोलता है महाप्रज्ञ के फौलादी संकल्प का बल। इसके सहारे उन्होंने व्यक्तित्व निर्माण की अभिनव ऊँचाइयों को छुआ। उसका राज महाप्रज्ञ के शब्दों में-मैं बचपन में ही दीक्षित हो गया। इसे मैं एक नियति मानता हूँ। दीक्षा ग्रहण करने के बाद मेरे मन में सदा एक जिज्ञासा रही—

- जो भी अज्ञात है, उसे मैं ज्ञात करना चाहता हूँ।
- जो रहस्यपूर्ण है, उसको अनावृत करना चाहता हूँ।
- जो नहीं हूँ, वह होना चाहता हूँ।

इन तीनो संकल्पों के आधार पर मैंने मुनि का जीवन जीया है।[79] इसकी व्यापक भूमिका आलेख में बहुत पहले प्रकट हुई, उन्होंने लिखा-

- मैं मुनि हूँ। आचार्य श्री तुलसी का वरदहस्त मुझे प्राप्त है। मेरा मुनि-धर्म जड़ क्रिया - कांड से अनुस्यूत नहीं है। मेरी आस्था उस मुनित्व में है, जो बुझी हुई ज्योति ना हो। मेरी आस्था उस मुनित्व में है, जहाँ अनन्त का सागर हिलोरें भर रहा हो। मेरी आस्था उस मुनित्व में है, जहां शक्ति का स्त्रोत सतत प्रवाही हो।

मैं एक परंपरा का अनुगमन करता हूँ, किंतु उसके गतिशील तत्वों को स्थितिशील नहीं मानता। मैं शास्त्रों से लाभान्वित होता हूँ, किन्तु उनका भार ढाने में विश्वास नहीं करता।

मुझे जो दृष्टि प्राप्त हुई है, उसमें अतीत और वर्तमान का वियोग नहीं है, योग है। मुझे जो चेतना प्राप्त हुई है, वह तन-मन के भेद से प्रतिबद्ध नहीं है, मुक्त है। मुझे जो साधना मिली है, वह सत्य की पूजा नहीं करती, शल्य चिकित्सा करती है।

सत्य की निरंकुश जिज्ञासा ही मेरा जीवन-धर्म है वही मेरा मुनित्व है। मैं उसे चादर की भाँति ओढ़े हुए नहीं हूँ। वह बीज की भांति मेरे अंतस्तल से अंकुरित हो रहा है।

एक दिन भारतीय लोग प्रत्यक्षानुभूति की दिशा में गतिशील थे। अब वह वेग अवरूद्ध हो गया है। आज का भारतीय मानस परोक्षानुभूति से प्रताड़ित है। वह बाहर से अर्थ का ऋण ही नहीं ले रहा है, चिंतन का ऋण भी ले रहा है। उसकी शक्तिहीनता का यह स्वतः स्फूर्त साक्ष्य है। मेरी आदिम, मध्यम और अंतिम आकाँक्षा यही है कि मैं आज के भारत को परोक्षनुभूति की प्रताड़ना से बचाने और प्रत्यक्षानुभूति की और ले जानें में अपना योग दूँ।' आचार्य महाप्रज्ञ दुनिया की दृष्टि

में इससे भी कई गुना महानतर थे। उनकी महानता को इजहार करने की आकाँक्षा से लोगों व संस्थाओं ने उनको अनेक उपाधियों, सम्मान-संबोधनों से नवाजा है।

आचार्य श्री महाप्रज्ञ को उपहृत अलंकरण व सम्मान की संक्षिप्त झलक-

	नाम	सन्	द्वारा
1.	महाप्रज्ञ अलंकरण	1978	आचार्य तुलसी
2.	जैन योग के पुनरुद्धारक	1986	आचार्य तुलसी
3.	प्राकृत के परम्परागत पंडित	1989	U.G.C. (Government of India, Delhi)
4.	Man of the year	1998	American Biographical Institute
5.	D. Lit	1999	Netherland Inter-cultural open university
6.	Diwali Ben progressive ReligiousAward	2003	Diwali Ben Mohan lal Mehta charitable Trust, Mumbai
7.	लोक महर्षि	2003	नई मुम्बई नगरपालिका
8.	Ambasdor for peace	2003	Inter-religious and International Federation for world peace, London
9.	इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार	2003	Indira Gandhi NationalAward Committee, New Delhi
10.	महात्मा	2004	चैतन्य कश्यप फाउंडेशन
11.	धर्म चक्रवर्ती	2004	कर्नाटक के विभिन्न धर्मगुरू
12.	Communal HarmonyAward	2005	Ministry for HomeAffairs, Govt.of India, New Delhi
13.	Mother TeresaAward	2005	Inter-faith Harmony Foundation of India, New Delhi
14.	World peace Messenger	2008	कर्नाटक के विभिन्न धर्मगुरू
15.	AhinsaAward	2008	Institute of Jainology, London[80]

समर्पित सम्मान-संबोधनों, उपाधियों के परिप्रेक्ष्य में यह बहुत स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य महाप्रज्ञ के पारदर्शी व्यक्तित्व और कालजयी कर्तृत्व की अमिट छाप विश्व व्यापी बनीं। विभिन्न सम्मान, अलंकरण आत्म नचिकेता महायोगी के लिए कोई महत्व नहीं रखते पर उनका सम्मान भारतीय संस्कृति की गौरवशाली अध्यात्म परंपरा का है जिसने समाज और राष्ट्र को एक बार फिर से गौरवान्वित बनाया है।

सफलता के नियामक, जीवन को आलोकित करने वाले आचार्य महाप्रज्ञ के चयनित सूत्र थे-

- मैं ऐसा कोई काम नहीं करूँगा, जो मेरे विद्यागुरु को अप्रिय लगे।
- मैं ऐसा कोई काम नहीं करूँगा, जिससे मेरे विद्यागुरु को यह सोचना पड़े की मैंने जिस व्यक्ति को तैयार किया, वह मेरी धारणा के अनुरूप नहीं बन सका।
- मैं किसी भी व्यक्ति का अनिष्ट नहीं करूँगा।

इन सफलता सूत्रों के साथ इस तथ्य को प्रकट किया कि 'सरलता मुझे प्रिय थी। कपट, प्रपंच, छलना और प्रवंचना से मुझे बहुत घृणा थी। मैं सबके प्रति निश्छल व्यवहार करना पसंद करता था।

मैं अपने प्रति, अपने हितों के प्रति सतत जागरूक था।' इस संकल्पना में बोलता है मुनि नथमल का जागृत विवेक जो सदैव साधना पथ को आलोकित करता रहा। संकल्प स्रष्टा ने आत्मसाक्षी से, अहोभाव पूर्वक स्वनिर्धारित सूत्रों का पालन कर विकास की मंजिलें तय की।

विभिन्न सूत्रों के साथ दैनिक जीवन में घटने वाली छोटी-छोटी बातों की महत्त्वपूर्ण भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। इस दिशा में जागरूक बनते हुए मुनि नथमल-आचार्य महाप्रज्ञ ने अपने संकल्पों के बारे में लिखा है-मैं कोई प्रमाद न करूँ, कभी उलाहना न सुनूँ, अध्ययन में किसी से पीछे न रहूँ-इन छोटे-छोटे संकल्प सूत्रों ने मेरी चेतना के जागरण में योग दिया, ऐसा मैं अनुभव करता हूँ।[81] इस मंतव्य से यह स्पष्ट होता है कि महाप्रज्ञ की संकल्प शक्ति और जागरूकता ने उनके व्यक्तित्व को सजाया-संवारा एवं अप्रतिम बना दिया। यद्यपि महाप्रज्ञ द्वारा संकल्पित सूत्रों में कहीं-कहीं पुनरावर्तन भी दृष्टिगोचर होता है पर 'द्विबद्धं सुबद्धं स्यात्' की अपेक्षा से उन्हें यथारूप प्रस्तुत किया गया है।

सफलता की राह में अनुकूल योग की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। महाप्रज्ञ इस संदर्भ में सौभाग्यशाली रहे हैं। उनका प्रेरणास्पद जीवन-वृत्त जिन प्रेरक आदर्शों से विनिर्मित हुआ उन्हें जाने बिना महाप्रज्ञ को समझना अधूरा होगा। अपने जीवन की सफलता के कतिपय महत्त्वपूर्ण घटक की चर्चा 'मेरे जीवन के रहस्य' कृति में महाप्रज्ञ ने की है-

अनेकांत की दृष्टि : भाग्य मानूँ या नियति? सबसे पहली बात-मुझे जैन शासन मिला। जिन-शासन का अर्थ है—अनेकांत का दृष्टिकोण। महाप्रज्ञ ने इसको जीया। इसकी पुष्टि कैलाशचंद्र शास्त्री दिगंबर विद्वान के कथन से होती है। महाप्रज्ञ का ग्रन्थ 'जैन दर्शन : मनन और मीमांसा' में-'मुनि नथमलजी ने श्वेतांबर-दिगंबर परंपरा के बारे में जो लिखना था, वह लिख दिया, पर वह हमें अखरा नहीं, चुभा नहीं। जिस समन्वय की शैली से लिखा है, वह हमें बहुत अच्छा लगा।' आचार्य महाप्रज्ञ ने माना है इस अनेकांत दृष्टि की बदौलत वे कहीं दलदल में नहीं फँसे। जिस व्यक्ति को अनेकांत की दृष्टि मिल जाए, अनेकांत की आँख से दुनिया को देखना शुरू करे तो बहुत-सारी समस्याओं का समाधान अपने आप हो जाता है। यह विकास एवं सफलता का राज है।

अनुशासन : तेरापंथ धर्म संघ अनुशासन और मर्यादा की धुरा पर टिका है। इसमें आचार्य महाप्रज्ञ को दीक्षित होने का सौभाग्य मिला जो उनकी महानता का कारक बना। महानता के दो सूत्र हैं-स्वेच्छाकृत विनम्रता और आत्मानुशासन। ये सूत्र तेरापंथ की संस्कार घूँटी में दिये जाते हैं। इन सूत्रों को उन्होंने आत्मसात् बनाया। महाप्रज्ञ का यह मानना था कि-इस विनम्रता ने हर क्षेत्र में मुझे आगे बढ़ाया। जो साधु बड़े थे, उनका सम्मान हृदय से हर-क्षण करता रहा। मैंने आत्मानुशासन का विकास किया।

गुरु अनुग्रह : जीवन पोथी में जिस संयम-निष्ठा, व्रत-त्याग निष्ठा की प्रतिष्ठा है वह आचार्य भिक्षु के जीवन वृत्त के सघन मनन की छाप है। महाप्रज्ञ उसे गुरुदेव (आचार्य श्री तुलसी) का अनुग्रह मानते थे। वे कहते जब भी प्रसंग आया, मुझे कहा—'तुम यह पढ़ो। शायद आचार्य भिक्षु को पढ़ने का जितना मुझे अवसर दिया गया, मैं कह सकता हूँ-तेरापंथ के किसी भी पुराने या नए साधु को उतना पढ़ने का अवसर नहीं मिला। उनकी क्षमाशीलता, विनम्रता, सत्यनिष्ठा को समझने और वैसा ही जीने का प्रयत्न भी मैंने किया।'

नवीनता का आकर्षण : 'मैं केवल अपने अतीत का गीत गाने के लिए नहीं जन्मा हूँ।' सिद्धसेन दिवाकर के इस कथन ने महाप्रज्ञ को अत्यधिक प्रभावित किया। वे कहते-मैं शायद उस भाषा में

न भी बोलूँ। पर, मुझे यह प्रेरणा जरूर मिली कि नया करने का अवकाश हमेशा विद्यमान रहता है। जो अतीत में हो चुका, वह सब-कुछ हो चुका—ऐसा नहीं है। हम सीमा न बाँधें। पर्याय अनंत हैं। आज भी नया करने का अवकाश है। कुछ नया करने की भावना प्रगाढ़ बनी।

आचार्य हरिभद्र, जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण, आचार्य हेमचंद्र, आचार्य मलयगिरी, आचार्य कुंदकुंद आदि-आदि ऐसे महान् आचार्यों को पढ़ने पर कोई न कोई नई बात ध्यान में आती गई। उन सबका मनन और प्रयोग आचार्य महाप्रज्ञ की सृजन चेतना को प्रखर बनाता रहा।

निस्पृहता : सांप्रदायिक दृष्टिकोण से उपरत महाप्रज्ञ ने विभिन्न वर्ग के संन्यासियों, साधकों, योगियों के साहित्य को पढ़ा, संपर्क साधा, प्रेरणाएँ संजोयी। उन्होंने ग्रहण करने योग्य को ग्राहक भाव से अवश्य अपनाया। उनमें उच्च कोटि की निस्पृहता देखी जाती है उसकी पृष्ठभूमि में एक घटना भी निमित्त बनी। उसका जिक्र करते हुए लिखा-स्वामी विद्यारण्य, जो पहले जादवपुर युनिवर्सिटी में गणित के प्रोफेसर थे, एशिया के ग्यारह चुनिंदा व्यक्तियों में वे एक थे। उन्होंने हिन्दू गणित पर एक पुस्तक लिखी। किसी दूसरे के नाम से छपी है, पर लेखन उनका है। हमारे बहुत निकट संपर्क में रहे। वे जोधपुर में आए हुए थे। हम शौच के लिए बाहर जा रहे थे। वे भी साथ में थे। मैंने पूछ लिया-'स्वामीजी! आपने प्रातराश कर लिया? दूध पीया? उन्होंने कहा-'दूध कहाँ से आए?' मैंने कहा-'आपके पीछे बड़े-बड़े प्रोफेसर घूमते रहते हैं कि आप कुछ बता दें, आपको क्या कमी है?' वे बोले-'मुनि नथमलजी! (आचार्य महाप्रज्ञजी) अभी जोधपुर में हूँ तब तो सब पीछे-पीछे घूमते हैं। यहाँ से मैं पुष्कर चला जाऊँगा और वहाँ भिक्षुओं की पंक्ति में जाकर भोजन करूँगा। वहाँ दूध कहाँ से आएगा? वहाँ दूध नहीं मिलेगा तो दूध का अभ्यास मुझे सताएगा, दूध का संस्कार सताएगा कि आज दूध नहीं मिला।' उनकी अनेक बातें मैंने देखी कि एक संन्यासी कितना निस्पृह और कितना संसार से मुक्त रहना चाहता है। उससे मैं बहुत प्रभावित हुआ।' ऐसे सैकड़ों-सैकड़ों जैन-अजैन व्यक्ति संपर्क में आए-हिंदू भी, मुसलमान भी। बड़े-बड़े लोग मिले। उनको देखा, कुछ नई बातें सीखीं।

भाग्य की सुरक्षा : ज्योतिष की भविष्यवाणी से मुनि नथमल बहुत पहले ही जागरूक बन गये। एतद् विषयक विक्रम संवत् उन्नीस सौ चौरानवे श्रीडूँगरगढ़ प्रवास की घटना का उल्लेख किया-हम सहपाठी बैठे थे। उसमें मुनि नगराज जी भी एक थे। उन्हें ज्योतिष में बहुत रुचि थी। कुछ जानते भी थे। वे खोजते रहते थे। वहाँ के श्रावक ज्योतिष विद्या के विज्ञ मन्नालाल नवलखा से संपर्क किया। मुनि नगराजजी बोले-आज मन्नालालजी से बात करनी है, जन्म कुंडली बनानी है। अनेक संतों की जन्मकुंडली बनाई गई। हम सब बैठे थे। वे फलादेश कर रहे थे। उसने कहा-'आपकी कुंडली में भाग्य इतना प्रबल है कि आप जो चाहेंगे, वह काम हो जाएगा।'

मैंने इस बात को सुना। बचपन से ही ग्रहणशीलता का एक भाव था। मैंने जैसे गाँठ बाँधली हो कि मुझे ऐसा कोई काम नहीं करना है कि जो अच्छा भाग्य है, उसमें कोई कमी आए। एक संकल्प कर लिया। हमेशा प्रयत्न किया कि भाग्य कहीं बिगड़े नहीं। जैन दर्शन के अनुसार संक्रमण भी होता है। बुरा भाग्य अच्छा और अच्छा भाग्य बुरा बन जाता है। भाग्य में कमी प्रमाद से आती है। मैंने तय कर लिया कि मुझे अधिक से अधिक अप्रमत्त रहने की साधना करनी है। मैं मानता हूँ कि ज्योतिष का वह एक संकेत मेरे लिए पथ प्रशस्त करने का हेतु बन गया।[82]

महाप्रज्ञ ने महानता और सफलता की दिशा में सदैव अपने चरण गतिशील रखें। जीवन की अंतिम साँसों तक मानवीय मूल्यों की समृद्धि में जुटे रहे। उनके द्वारा दिखाया गया रोशनी पथ युगों-

युगों तक मानव मन के अंधियारे को मिटाता रहेगा।

महाप्रज्ञ की सफलता का राज था—स्वयं के द्वारा निर्धारित आदर्श, यथा-सत्यनिष्ठा, लक्ष्य केन्द्रिता, प्रगाढ़ आस्था, अनिष्ट न करने का संकल्प, अप्रमाद आदि। ये उनके व्यक्तित्व निर्माण के प्रेरणा-दीप कहे जा सकते हैं। इन्हें अपनाकर कोई भी सफलता का वरण कर सकता है।

प्रेरणा संग्रहण, गुण-ग्राहिता एवं आत्माभिप्रेरणा की प्रवृत्ति महाप्रज्ञ के जीवन की विरल विशेषता थी। विभिन्न स्रोतों-प्रत्यक्ष-परोक्ष, सबल-निर्बल, अतीत-वर्तमान सभी से उन्होंने जितना संभव था ग्रहण किया। ये अभिप्रेरक उनकी अहिंसक सोच को गति से प्रगति पर वर्धमान बनाने में सहभागी बने हैं।

विश्व विभूति आचार्य महाप्रज्ञ का जीवन आज अदृश्य होकर भी हमारे लिए प्रेरणा पुँज बना हुआ है। 'दिव्य-ज्योति महाप्रज्ञ' राजस्थानी कवि इकराम की रचना इसका साक्षीभूत उपनय है। आचार्य महाप्रज्ञ जी के जीवन दर्शन को सटीक शब्द प्रस्तुति क्रम में ये पँक्तियाँ भी शुमार है-

मानव की सेवा को सच्चा कर्म बनाया जिसने,
सत्य-अहिंसा, प्रेम-शांति को धर्म बनाया जिसने,
अणुव्रत के आदर्श को अपना गर्व बनाया जिसने,
करुणा और दया को, मन का मर्म बनाया जिसने,
जिस मुख से हर क्षण उच्चारित एक सत्य होता है।
जो जीवन का अर्थ समझले, महाप्रज्ञ होता है॥

महात्मा गांधी एवं आचार्य महाप्रज्ञ दोनों के प्रेरणोत्स की संक्षिप्त झलक से यह स्पष्ट होता है कि मनीषियों ने अपने-अपने क्षेत्र में उच्च कोटि की अभिप्रेरणाएँ ग्रहण की। मात्र ग्रहण ही नहीं की उसके आलोक में व्यक्तित्व का वांछित निर्माण भी किया। यद्यपि दोनों मनीषियों के प्रेरणास्रोत संदर्भ प्रायः भिन्न हैं। महात्मा गांधी को राजनीति का क्षेत्र मिला वहीं उन्होंने लीक से हटकर नई लकीरें खींची और महाप्रज्ञ को धर्मनीति के आध्यात्मिक परिवेश में वैज्ञानिक जगत् को भावित करने का अपूर्व अवसर मिला। कर्म क्षेत्रीय स्वतंत्रता के बावजूद संग्राहक भाव दोनों की अन्तःचेतना का वैशिष्ट्य युक्त सादृश्य से सराबोर है। जिज्ञासु इससे वांछित प्रेरणा संजोकर जीवन के नव निर्माण की दिशा को प्रशस्त कर सकता है।

संदर्भ

1. काका कालेलकर-वियोगहरि, गांधी : व्यक्तित्व-विचार और प्रभाव,76
2. एम.के.गांधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, 32
3. गांधी : व्यक्तित्व-विचार और प्रभाव, 76
4. सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, 47-48
5. गांधी : व्यक्तित्व-विचार और प्रभाव, 100
6. डॉ. एस.एल. वर्मा-डॉ मधु मिश्रा, महात्मा गांधी एवं धर्म निरपेक्षता, 193-194
7. अहिंसा, 2.206
8. सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, 27
9. गांधी चित्रावली, 72
10. गांधी : व्यक्तित्व-विचार और प्रभाव, 75-77

11. अहिंसा-2, 191
12. सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, 8
13-14. बी.आर. नंदा, महात्मा गांधी एक जीवनी, 8-9, 62
15. गांधी : व्यक्तित्व-विचार और प्रभाव,11
16. हरिभाऊ उपाध्याय, बापू कथा, 45
17. महात्मा गांधी, मंगल प्रभात, 37-38
18. अहिंसा,2.206-7
19. महात्मा गांधी, अहिंसा, 3.300, हरिजन सेवक 9.12.39
20. बापू कथा, 34
21. सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, 358
22. मंगल प्रभात, 61
23. गांधीजी, गीता का संदेश, 5
24. सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, 58
25. महादेव देसाई-हरिभाऊ उपाध्याय, संक्षिप्त आत्मकथा, 61
26. ऐसे थे बापू, 32
27. सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा,228 संक्षिप्त आत्मकथा, 62
28. महात्मा गांधी एक जीवनी, 353
29. गांधी : व्यक्तित्व-विचार और प्रभाव,100
30. गांधीजी के संस्मरण, 36-37
31. गांधी चित्रावली, 133
32. गांधीजी के संस्मरण, 34
33. मेरे सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा-28
34. महात्मा गांधी एक जीवनी-77
35. गांधीजी, मंगल प्रभात, 41
36. गांधी एवं मार्क्स, 3-5
37. गांधी चित्रावली, 72
38. मेरे सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, 76
39. श्री मन्नेमिचन्द सिद्धान्तिदेव, बृहद् द्रव्य संग्रह-भूमिका, 20,21
40. बृहद्द्रव्य संग्रह-20
41. मेरे सत्य के प्रयोग अथवा आत्म कथा, 250
42. महात्मा गांधी की संक्षिप्त जीवनी, 29
43. आत्मकथा : महात्मा गांधी, 136
44. महात्मा गांधी की संक्षिप्त जीवनी, 94-95
45. भारतीय राजनीतिक विचारक, 400
46. अहिंसा यात्रा अमिट पदचिह्न, भाग-2.453.125
47. युवादृष्टि, जून-जुलाई, 2003.51
48. मुनि धनंजय कुमार, महाप्रज्ञ : अतीत और वर्तमान, 34
49. महाप्रज्ञ जीवन-दर्शन, 174
50. महाप्रज्ञ अतीत और वर्तमान,4
51. आचार्य महाप्रज्ञ, अतीत का बसंत : वर्तमान का सौरभ, 5
52. आचार्य महाप्रज्ञ, मेरी मां, 11
53. महाप्रज्ञ : जीवन-दर्शन, 177

54-57. मेरी मां, 23/115, 113/111.12/114
58. अतीत का बसंत : वर्तमान का सौरभ, 67
59. महाप्रज्ञ : जीवन-दर्शन, 143, 185, 187
60. सं. कन्हैयालाल फूलफगर, महाप्रज्ञ : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, 38.395
61. महाप्रज्ञ : जीवन-दर्शन, 189, 162
62-64. अतीत का बसंत : वर्तमान का सौरभ, 21-22, 45/1, 71/104-110
65. महाप्रज्ञ : जीवन-दर्शन, 223. अतीत का बंसत : वर्तमान का सौरभ, 48-49, 2-3
66. महाप्रज्ञ : जीवन-दर्शन, 31-34
67. अतीत का बसंत : वर्तमान का सौरभ, 86 (1996)
68. आचार्य महाप्रज्ञ, मेरे जीवन के रहस्य, 27-28
69. महाप्रज्ञ : अतीत और वर्तमान, 29-30
70. जैन भारती, अप्रेल-2003, 20
71. अतीत का बंसत : वर्तमान का सौरभ, 5, 15
72. आचार्य महाप्रज्ञ, तेरापंथ शासन-अनुशासन, 182-83 (1995)
73. युवाचार्य महाप्रज्ञ, मैं हूं अपने भाग्य का निर्माता, 200
74-75. अतीत का बंसत : वर्तमान का सौरभ, 33/30
76. पुरुषोत्तम महावीर, 47, 63
77. महाप्रज्ञ : अतीत और वर्तमान, 30
78. महाप्रज्ञ : जीवन-दर्शन, 126-27
79. मुनि सुखलाल : अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न - 2, 52
80. युवाचार्य महाश्रमण : महात्मा महाप्रज्ञ, सं. अगस्त 2009.183.84
81. अतीत का बंसत : वर्तमान का सौरभ, 83-85
82. मेरे जीवन के रहस्य, 32-36

अध्याय-3

अहिंसा : सैद्धांतिक स्वरूप

पूर्ववृत्त

अहिंसा का क्षेत्र असीम है। वह सार्वदिक् और सार्वत्रिक है। इस विराट् स्वरूपा अहिंसा पर जो चिंतन महात्मा गांधी और आचार्य महाप्रज्ञ ने व्यष्टि से समष्टि के आलोक में किया वह विशिष्ट है। विश्व-समाज के मानचित्र को आकार देने वाले विभिन्न पहलुओं को अहिंसक प्रस्तुति दी, वे ही तृतीय अध्याय का विमर्श्य है। धर्म के क्षेत्र में अहिंसा की जो प्राचीन अवधारणा रही वह वैयक्तिक अधिक थी। आज का आदमी जागतिक भाषा में सोचता है किन्तु प्रश्न वहीं का वहीं स्थिर है। क्या अहिंसा के विकास के बिना सार्वभौम या जागतिक अहिंसा का विकास संभव है? विकास की यह यात्रा कहाँ से आरंभ करें? इसका एक समाधान खोजा गया व्यक्ति से।

आदर्श व्यक्ति की कल्पना मनीषियों ने अहिंसा की कसौटी पर की है। महात्मा गांधी ने अहिंसक व्यक्तित्व का जो चित्रण किया वह किसी साधक के स्वरूप से कम नहीं है। आचार्य महाप्रज्ञ ने अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण में हृदय परिवर्तन की प्रमुख भूमिका स्वीकार की है।

अहिंसक समाज की कल्पना व्यक्ति और व्यवस्था परिवर्तन पर घटित हो सकती है। गांधी ने एक स्वस्थ समाज की कल्पना की जिसका प्रत्येक सदस्य आत्म-सम्मान और इज्जत की जिंदगी जी सके। महाप्रज्ञ ने अहिंसक समाज की रचना नैतिक मूल्यों के विकास पर संभव बतलाई। दोनों मनीषियों की राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में अहिंसा के विस्तार की संकल्पना महत्त्वपूर्ण है। गांधी ने भारतीय संदर्भ में आत्म-निर्भर आदर्श ग्राम स्वराज्य परक राष्ट्रव्यापी अहिंसा का सपना संजोया। वहीं लोकतंत्र के अहिंसक स्वरूप के विकास हेतु महाप्रज्ञ ने बताया कि इसके लिए दो दिशाओं से प्रस्थान करना जरूरी है। हिंसा और परिग्रह के प्रति जनता का दृष्टिकोण बदले, ऐसा प्रशिक्षण शिक्षा के साथ चले। लोकतंत्र का प्रशिक्षण सिद्धान्त के साथ अभ्यास और आचरण के द्वारा हो।

विश्व व्यवस्था के निर्माण में अनेक घटक काम करते हैं ये परस्पर सापेक्ष हैं। हमारा जीवन सापेक्षता के सिद्धांत से जुड़ा हुआ है। जीवन की सीमा में कोई भी निरपेक्ष नहीं है। व्यक्ति अकेला होते हुए भी वह परिवार, समाज और राष्ट्र सापेक्ष है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अंतर्राष्ट्रीय स्थिति सापेक्ष भी है। परिवार, समाज, राष्ट्र ये शक्ति के तंत्र हैं। ये समर्थ बनें इसके लिए जरूरी है अहिंसा के आदर्श का अनुशीलन। मनीषी द्वय की सोच इसी आदर्श से अनुप्राणित मानवता का पथ-प्रशस्त करने में समर्थ है।

अहिंसा की मूल इकाई : व्यक्ति

अहिंसा द्वारा व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर अमन-चैन की स्थापना की जा सकती है। यह अहिंसा के स्रष्टा-द्रष्टा द्वारा प्रस्तुत एक सच्चाई है। महात्मा गांधी एवं आचार्य महाप्रज्ञ ने इस सच्चाई को पकड़ा और इन क्षेत्रों में अहिंसा के स्वरूप की मीमांसा की। अहिंसा व्यक्ति से आरम्भ होकर परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व परिवेश में सुगमता से प्रतिष्ठित हो सकती है।

अहिंसा जो केवल धर्म का तत्त्व विशेष अथवा आध्यात्मिक साधना का मंत्र मानी जाती थी उसे गांधी एवं महाप्रज्ञ ने जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रयुक्त कर मानव जाति के उत्थान का पथ-प्रशस्त किया। शांतिमय सुखद जीवन के लिए अहिंसा की अनन्य भूमिका को प्रस्तुत कर अशांत मानव को शांति का संदेश दिया। मनीषियों की उदात्त चिंतन शैली में अहिंसा का प्रवाह विभिन्न संदर्भों में अनुस्यूत है। उसका विमर्श यथा शक्य प्रस्तुत अध्याय में अभीष्ट है।

सार्वभौम नियम

अहिंसा एक सार्वभौम नियम है जो समस्त मानव जाति पर लागू होता है। ऐसा नहीं है कि इस नियम के द्वारा केवल ऋषि-मुनि ही परिचालित हो सकते हैं। हर कोई व्यक्ति अहिंसा की सुवास को प्राप्त कर सकता है। अहिंसा को देश काल-परिस्थिति से परे एवं मनुष्य जाति का नियम बतलाते हुए गांधी ने कहा—'अहिंसा मठ-मंदिर की ही चीज नहीं है, जो ऋषियों अथवा गुफाओं में रहने वालों के लिए हो। अहिंसा तो ऐसी है कि जिस पर लाखों आचरण कर सकते हैं-इसलिए नहीं कि उनके फलितार्थों का उन्हें पूर्ण ज्ञान है, बल्कि इसलिए कि वह मनुष्य जाति का नियम है। यह आदमी और पशु के बीच का अन्तर व्यक्त करती है।' अहिंसा की दिव्यता से अनुप्राणित मानव जाति ने विकास की ऊँचाइयों को छुआ है। जो पशु आज से चार सौ वर्ष पूर्व की स्थिति में जैसा था आज भी वहीं है किसी तरह का विकास नहीं किया। विकास का मौलिक आधार अहिंसा है।

अहिंसा सिर्फ व्यक्तिगत गुण नहीं, बल्कि सामाजिक गुण भी है। इसे दूसरे गुणों की तरह विकसित किया जा सकता है। इसमें कोई शक नहीं कि समाज अपने आपस के कारोबार में अहिंसा का प्रयोग करने से ही व्यवस्थित होता है। अहिंसा को राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय व्यवहार में भी काम में लाया जा सकता है। गांधी की विशाल दृष्टि का प्रतीक यह कथन 'मेरे लिए अहिंसा एक व्यक्तिगत धर्म ही नहीं, समग्र समाज के लिए एक राजनीति और आध्यात्मिक साधना है।'[1] उनका स्पष्ट अभिमत रहा अहिंसा एक ऐसी शक्ति है, जिसका सहारा बालक, युवा, स्त्री-पुरुष सब ले सकते हैं। बशर्ते

कि उनकी मनुष्य मात्र में सजीव श्रद्धा हो। जब हम अहिंसा को अपना जीवन सिद्धांत बना लें तो वह हमारे संपूर्ण जीवन में व्याप्त होना चाहिए। यों कभी-कभी उसे पकड़ने और छोड़ने से लाभ नहीं हो सकता। अहिंसा की सतत् आराधना ही वांछित परिणाम लाती है। गांधी के समान आचार्य महाप्रज्ञ ने भी अहिंसा को मानव जीवन की आधारशिला माना है। उनके शब्दों में 'अहिंसा है तो जीवन है। यह नहीं है तो जीवन टिक नहीं पाता।'[2] अहिंसा के संस्कार का अभाव ही इसके अस्तित्व को अपरिहार्य तत्त्व न स्वीकारने का मुख्य कारण है। अहिंसा का विचार जब तक संस्कार नहीं बनता तब तक व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व के लिए अहिंसा वरदायी साबित नहीं हो सकती।

पात्र कौन

सिंहनी का दुग्ध स्वर्ण पात्र में ही ठहरता है अन्यत्र नहीं-यह विश्रुत जनोक्ति है। ऐसा ही नियम अहिंसा के साथ जुड़ा हुआ है। यह पात्र व्यक्ति में ही समाती है अपात्र में नहीं। प्रश्न उठता है अहिंसा का पात्र कौन? पात्र का तात्पर्य है जिसका हृदय पवित्र और निश्छल है, वहीं अहिंसा प्रकट होती है। 'अहिंसा हृदय का गुण है।' इस सूत्रात्मक विचार को स्पष्ट करते हुए गांधी ने बताया कि खाद्याखाद्य में ही अहिंसा की परिसमाप्ति नहीं होती। सूक्ष्म दृष्टि से इन वस्तुओं का ख्याल रखना स्तुत्य है। परन्तु जो अहिंसा परम धर्म है, वह इस अहिंसा से कहीं बढ़कर है। अहिंसा हृदय की उच्चतम भावना है। जब तक हमारा व्यवहार शुद्ध नहीं है, जब तक हम किसी को अपना दुश्मन समझते हैं तब तक यह कहना चाहिए कि हमने अहिंसा भाव का स्पर्श तक नहीं किया है।[3] जिस हृदय में प्रेम-करुणा और मैत्री की धारा बहती है अहिंसा वहीं है। गांधी के मंतव्य को और अधिक परिपुष्ट करने वाले विचार आचार्य महाप्रज्ञ के प्रतीत होते हैं। उन्होंने कहा 'अनुत्तरं साम्यमुपैति योगी'-योगी अनुत्तर साम्य को पाता है। जैन दर्शन की भाषा में अहिंसा और समता एक है। लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, जीवन-मृत्यु, निन्दा-प्रशंसा और मान-अपमान में जो सम रहे, वो ही अहिंसा की आराधना कर सकते हैं।'[4] अर्थात् समता का जीवन जीने वाला ही अहिंसा जैसी दिव्य शक्ति की उपासना कर सकता है। जिसमें समता का विकास नहीं हुआ है, उसमें अहिंसा प्रतिष्ठित नहीं हो सकती।

राष्ट्र निर्माण के स्वप्न में गांधी ने व्यक्ति की अहम् भूमिका स्वीकार की। उनकी दृष्टि में संपूर्ण निर्माण की आधारभूत इकाई व्यक्ति है। आदर्श व्यक्ति के बिना समाज, राष्ट्र और विश्वशांति की कल्पना कभी साकार नहीं हो सकती। व्यक्ति अथवा मानव के प्रति उनके उदात्त विचार थे। गांधी ने दर्शन, अनुभव एवं इतिहास के आधार पर बताया कि मानव मूलतः अहिंसाप्रिय प्राणी है। अनुभव बताता है कि मानव काम, क्रोध, द्वेष आदि आवेगों से प्रभावित होकर हिंसक आचरण कर सकता है, किन्तु जैसे ही वह अपनी सहज अवस्था में लौटता है उसका अन्तःकरण तथा विवेक उसे अहिंसा को अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं। गांधी का कथन है-अहिंसा हमारी प्रजाति का शाश्वत नियम है, जबकि हिंसा पशुओं का नियम है। पशुओं में आत्मा आवृत्त रहती है और वे भौतिक शक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते हैं। व्यक्ति का सद्विवेक व्यक्ति को एक उच्च नियम-आत्मा के संघर्ष-को मानने के लिए बाध्य करता है। अहिंसा.....एक ऐसा आदर्श है जिसकी ओर व्यक्ति प्राकृतिक रूप से बिना इच्छा किये ही, चलते हैं.....।

मानव समाज के विकास का इतिहास भी यह बताता है कि मानव की मूल प्रवृत्ति अहिंसा ही है। अपनी इस प्रवृत्ति के कारण ही मानव ने नर भक्षण के दोष से मुक्ति पायी है; मांसाहार

से शाकाहार की ओर बढ़ा है और शिकार के स्थान पर कृषि पर निर्भर हुआ है। वस्तुतः प्रारम्भिक कबीलाई संगठनों से लेकर आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों तक मानव-सभ्यता का जो विकास हुआ है, उसके पीछे मानव की अहिंसक प्रवृत्ति ही सक्रिय रही है।

व्यक्ति के भीतर अहिंसात्मक भावों की अभिव्यक्ति के निम्न प्रकार हैं–

- प्रत्येक मनुष्य में अच्छाई (सद्गुण) तथा बुराई (दुर्गुण) दोनों ही पायी जाती हैं।
- मनुष्य अपनी प्रकृति से मूलतः नैतिक एवं अहिंसक प्राणी है। मानव जीवन में इन दोनों गुणों का बहुत अधिक महत्त्व है। प्रथम गुण के कारण मानव सदैव ही दुर्गुण से सद्गुण को श्रेष्ठ मानता है। द्वितीय गुण के कारण मानव ने संघर्ष एवं हिंसा की तुलना में सहयोग एवं अहिंसा को पसंद किया है जिससे मानव सभ्यता का विकास संभव हुआ। अपनी नैतिक एवं अहिंसक प्रकृति के कारण ही मानव एक सामाजिक प्राणी है।
- मनुष्य एक विकासशील प्राणी है और इस दृष्टि से अन्य सभी प्राणियों से श्रेष्ठ है। अर्थात् मानव स्वयं के प्रयत्नों द्वारा अपनी बुराइयों पर विजय प्राप्त कर सकता है और अच्छाई की ओर विकास कर सकता है।
- सभी मानव ईश्वर की सन्तान है और उनकी आत्मा में ईश्वर का अंश विद्यमान है। मानव जीवन की दृष्टि से इस आध्यात्मिक सत्य के कारण ही मानव नैतिक, अहिंसक व विकासशील प्राणी बनता है।[5]

यदि व्यक्ति के भीतर दिव्यता का गुण विद्यमान न होता तो उसके विकास और परिवर्तन का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। जैन दर्शन अथवा आचार्य महाप्रज्ञ के विचार से प्रत्येक व्यक्ति में अच्छाई और बुराई दोनों के बीज विद्यमान हैं। जैसे निमित्त मिलते हैं वैसे ही अच्छाई या बुराई प्रकट हो जाती है।

अहिंसा व्यक्ति की भावनाओं से प्रस्फुटित होती है विवशता से नहीं। गांधी ने स्पष्ट कहा 'अहिंसा कोई ऐसा गुण तो है नहीं जो गढ़ा जा सकता हो। यह तो एक अंदर से बढ़ने वाली चीज़ है, जिसका आधार आत्यन्तिक व्यक्तिगत प्रयत्न है।' उन्होंने इसका अपने जीवन में अनुभव किया और स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि मैंने तो अहिंसा के विज्ञान का एक नम्र शोधन किया है। व्यक्ति अहिंसा की शक्तियों का अमर्याद रूप में विकास कर सकता है। आप अपने भीतर जितना अधिक अहिंसा का विकास करेंगे उतनी ही ज्यादा उसकी छूत फैलेगी.....धीरे-धीरे संपूर्ण जगत् में फैल सकती है।[6] अहिंसा की असीम शक्ति का उन्होंने अनुभव किया और अविचल विश्वास को प्रकट किया।

'कठोरतम धातु काफी आंच ले नरम हो जाती है, इसी प्रकार कठोरतम हृदय भी अहिंसा की पर्याप्त आंच लगने से पिघल जाना चाहिए। अहिंसा कितनी आंच पैदा कर सकती है इसकी कोई सीमा नहीं। अपनी आधी शताब्दी के अनुभव में मेरे सामने एक भी परिस्थिति ऐसी नहीं आयी जब मुझे यह कहना पड़ा हो कि मैं असहाय हूं और मेरी अहिंसा निरुपाय हो गई।'[7] आचार्य महाप्रज्ञ के वैयक्तिक अहिंसा संबंधी विचार गांधी के विचारों को संपोषण देने वाले हैं। वे वर्तमान व्यापी हिंसा के तांडव को स्पष्ट शब्दों में कहते–हिंसा की समस्या द्रोपदी के चीर की भांति बेछोर बनती जा रही है। इसका समाधान पाने हेतु व्यक्ति-व्यक्ति के भीतर अहिंसा की चेतना का जागरण जरूरी है। इस संदर्भ में अनेक दिशाओं से प्रयत्न होना जरूरी है-धार्मिक और आध्यात्मिक मंच से, मनोवैज्ञानिक

और दार्शनिक मंच से, सामाजिक और राजनैतिक मंच से, जो हिंसा का कोई विकल्प खोज सके। ऐसा करने से सारी मनुष्य जाति का भला हो सकेगा। किन्तु चुनना होगा व्यक्ति को।[8]

अहिंसा की बात कहाँ से शुरू करें? इस संबंध में आचार्य महाप्रज्ञ कहते—'व्यक्ति से शुरू करें। व्यक्ति स्वयं बदले, उसके संस्कार बदले, धारणा बदले, मान्यता बदले और यह धारणा पुष्ट बन जाए कि अहिंसा मेरा स्वभाव है। मुझे अहिंसा का जीवन जीना है, मेरी जीवन-शैली अहिंसा की होगी।' विश्व शांति की मूल इकाई व्यक्ति है। शान्ति की चर्चा करते समय हमें युद्ध और शस्त्र की बात को एक बार छोड़ देना चाहिए। सबसे पहले चर्चा शुरू करनी चाहिए व्यक्ति से। व्यक्ति में शांति है या नहीं? परिवार में शांति है या नहीं? राष्ट्र में शांति है या नहीं? सबसे पहले व्यक्ति फिर परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व का प्रश्न आता है। हम सीधे विश्वशांति के प्रश्न को छूते हैं और सब बातों को छोड़ देते हैं। इसे मूर्खता की बात न कहूँ किन्तु समझदारी की बात भी तो नहीं है और उसका परिणाम यह होगा कि विश्व शांति शायद कभी नहीं बनेगी।[9] यह स्पष्ट संकेत है कि व्यक्ति की अहिंसक चेतना को जगाये बिना विश्व शांति का सपना कभी साकार नहीं हो सकता।

जिस व्यक्ति की चेतना में शांति का स्रोत बह रहा है उसके लिए अहिंसा प्रत्येक स्थिति में आदर्श बनी रहेगी। प्रत्येक सामाजिक प्राणी अहिंसा को पसंद करता है। इसलिए कि वह शांति को पसंद करता है। शांति के बिना सुख नहीं। अतः सुख के लिए शांति और शांति के लिए अहिंसा जरूरी है। शांति और अहिंसा का तादात्म्य संबंध है। दोनों के अस्तित्व और विकास की कल्पना एक दूसरे के बिना अधूरी है।

अहिंसा का स्वरूप पवित्रता है, इसलिए वह व्यापक होने पर भी वैयक्तिक है। अहिंसा व्यक्ति की उन्मुक्त स्वतन्त्रता है। जो व्यक्ति उसको हृदय की पूर्ण स्वतन्त्रता से स्वीकार करता है वह परिस्थिति का सामना कर लेता है, किंतु अनैतिक आचरण नहीं करता या कर ही नहीं सकता। इसका हेतु है करुणा का विकास, आत्मौपम्य की भावना का विकास। जिसके भीतर करुणा का दरिया सूख जाता है, आत्मौपम्य की धारा टूट जाती है वह अहिंसा के मूल्य को भूल जाता है। ऐसा होने पर व्यक्ति हिंसक बन जाता है।

प्रश्न है मनुष्य सबसे ज्यादा हिंस्र किस पर होता है। तथ्य बोलते हैं कि साधारण से साधारण और परम पुरुषार्थी व्यक्ति भी प्रायः सबसे ज्यादा हिंसा स्वयं एवं स्वजनों की करता है। अपनी आलोचना, प्रताड़ना और हीनता एवं दूसरी ओर अहंकार तथा स्व-केन्द्रिता स्वयं पर हिंसा नहीं तो क्या है? विवशता क्या सबसे बड़ी हिंसा नहीं है? अपनों से कठोर वाणी में बात करना, अनुशासन के नाम पर और मर्यादा की आड़ में मौलिकता छीनने वाले नियमों का पालन परिवार या कार्यालय में हिंसा नहीं तो और क्या है? स्वयं पर हिंसा करने वाला व्यक्ति ही परिवार तथा परिवार के पश्चात् सामाजिक हिंसा का स्रोत बनता है। केवल मार-काट करना ही हिंसा नहीं है अपितु ईर्ष्या, द्वेष, स्वार्थ, मनमुटाव, उदासीनता, बेईमानी, छल-कपट, परपीड़न, परिग्रह, दया-करुणा की कमी, परहित व परपोषण का अभाव भी दूसरे रूप में हिंसा के ही प्रारूप हैं जिनके व्यापक प्रभाव सामुदायिक चेतना पर दिखाई पड़ते हैं।[10] ये वो कारक हैं जिनके चलते व्यक्ति अपने आप की हिंसा कर रहा है।

व्यक्ति तनाव का जीवन जीता है। तनाव अपने आपमें हिंसा है। जितने भी नकारात्मक भाव पैदा होते हैं, वे सब हिंसा हैं, हिंसा के कारण हैं। चेतना में उठने वाली हिंसा की तरंगें ही बाहर

आकर परिवेश को प्रदूषित बनाती है। यह व्यक्ति की अपने प्रति होने वाली हिंसा जब तक नहीं रुकेगी वह अहिंसक बन नहीं सकता। अगर अहिंसा का विकास नहीं है तो अकेला व्यक्ति भी सुख से नहीं रह सकता। आदमी केवल दूसरों की हिंसा नहीं करता। हर व्यक्ति अपने नकारात्मक चिंतन, विचार और भाव के कारण डिप्रेशन में चला जाता है, तनाव से भर जाता है और आत्महत्या कर लेता है। अहिंसा का सबसे पहला सूत्र है कि व्यक्तिगत जीवन में आदमी आनंद के साथ जीए।[11] अतः अहिंसा की शुरुआत व्यक्ति को अपने से ही करनी होगी। यह तभी संभव है जब व्यक्ति इस ओर न केवल अपना ध्यान ही केन्द्रित करे अपितु अपनी शक्ति को भी नियोजित करें।

प्रत्येक व्यक्ति अपनी खुद की हिंसा से बचें इस हेतु आचार्य महाप्रज्ञ का मौलिक चिंतन है-व्यक्ति अहिंसा का प्रारंभ सर्वप्रथम अपने आप से करे। अपने भीतर जो वृत्तियां हैं उनका परिष्कार करे। हम अनावश्यक हिंसा से बचें। मन के द्वारा होने वाली ग़लत प्रवृत्ति अनावश्यक हिंसा का बहुत बड़ा कारण है। इस अनावश्यक हिंसा को रोकने के लिए अपनी वृत्तियों का शोधन करना नितान्त आवश्यक है। उसका प्रारम्भ व्यक्ति दूसरों की बजाय अपने सुधार की बात, अहिंसा की बात समझ लेता है तो क्रान्ति घटित हो सकती है। इस हेतु मनुष्य के मस्तिष्क में जो अनावश्यक हिंसा का तंत्र हैं, प्रकोष्ठ है, उसे ठीक किया जाए। प्रशिक्षण एवं योग से यह रूपान्तरण घटित किया जा सकता है।[12] उन्होंने व्यक्ति के भीतर निहित अहिंसा के विकास की पर्याप्त संभावनाओं को भी प्रकट किया है।

अहिंसा की प्रचण्ड शक्ति

शक्ति वह होती है जो स्थिति में परिवर्तन लाये। अहिंसा ने अनेक परिस्थितियों में अपनी शक्ति को प्रकट किया है। जिसे अहिंसा की असीम शक्ति में विश्वास होता है उन्हें दुनिया की कोई परिस्थिति रोक नहीं सकती। अहिंसा शक्ति के संबंध में गांधी का अभिमत रहा-अहिंसा तो मानव के पास ऐसी प्रबल शक्ति है कि जिसका कोई पार नहीं। मनुष्य की बुद्धि ने संसार के जो प्रचण्ड अस्त्र बनाये हैं उससे भी प्रचण्ड यह अहिंसा की शक्ति है। इस शक्ति का दूसरा विकल्प नहीं। अहिंसा प्राणी का निजीगुण है इसे प्रकट करते हुए गांधी कहते हैं-अहिंसा आत्मा का बल है। आत्मबल के सामने तलवार का बल तृणवत् है। तलवार का उपयोग करके आत्मा शरीरवत् बनती है। अहिंसा का उपयोग करके आत्मा आत्मवत् बनती है।

आत्मिक शक्ति के आधार पर ही गांधी का यह दृढ़ विश्वास था कि जिसने शूरवीरों की अहिंसा का शस्त्र लिया है, वह अकेले सारे संसार की प्रबल शक्तियों का एकसाथ सामना कर सकता है। क्योंकि निःशस्त्र अहिंसा की शक्ति हर समय शस्त्रबल की अपेक्षा बहुत ऊँची है। इस विशिष्ट शक्ति का अनुभव जिस व्यक्ति ने किया है वही यह जान सकता है कि अहिंसा के हथियार से एक स्त्री या बालक भी हर किसी हथियार धारी दानव का सामना कर सकता है। अतः बहादुरों की अहिंसा के समान दुनिया में दूसरी कोई सच्ची शक्ति नहीं है। व्यक्ति अपने जीवन में इसका चाहे जितना विकास कर सकता है।[13] अपने जीवन में बहादुरों की अहिंसा का विकास करने की ख्वाहिश रखने वाले आदमी को सबसे पहले अपने मन से या विचारों से कम-से-कम बुजदिली का मैल धो डालना चाहिए। मसलन अहिंसा की आराधना करने वाला अपने बड़े अफसर की धाक से दब नहीं जायेगा और न उस पर गुस्सा ही करेगा। साथ ही वह अपनी ज्यादा से ज्यादा आमदनी वाली जगह को छोड़ने के लिए भी तैयार रहेगा। गांधी की दृष्टि में बुजदिल व्यक्ति अहिंसा की आराधना नहीं कर सकता।

गांधी की अहिंसा एक सक्रिय बल है, जो निर्बल का अस्त्र नहीं, अपितु वीरों का अस्त्र है। 'यदि रक्त बहना ही है, तो वह हमारा रक्त हो। बिना मारे मरने के शान्त धैर्य की साधना करो। मनुष्य तभी स्वच्छन्द जी सकता है, प्रेम दूसरों को नहीं जलाता, स्वयं ही जलता है; वह मृत्यु के कष्ट में भी आनन्द अनुभव करता है।[14] यह अहिंसा की उच्च भूमिका का निदर्शन है। जब व्यक्तिगत जीवन में अहिंसा की उच्च साधना साध ली जाती है तब व्यक्ति के लिए प्रत्येक क्षण आनन्दमय बन जाता है। भावनात्मक संदर्भ में देखें तो गांधी अहिंसा को शक्तिशाली व्यक्ति का शस्त्र मानते थे। अहिंसा कायर और कमजोर व्यक्ति का हथियार नहीं है। महावीर, बुद्ध और कृष्ण सभी क्षत्रिय थे, मगर ये सभी अहिंसा के उपासक, अनुपालक थे। आचार्य महाप्रज्ञ के विचार गांधी की विचार धारा के संवादी हैं। उन्होंने अहिंसा की असीम शक्ति को प्रस्तुति देते हुए कहा-अहिंसा की शक्ति प्राणवान् है उसका अनुभव हर व्यक्ति को हो सकता है।[15] अहिंसा की शक्ति का अनुभव तनावमुक्तावस्था में ही संभव है अन्यथा वह शक्ति कुंठित हो जाने से निष्क्रिय बन जाती है। अहिंसा की शक्ति में आचार्य महाप्रज्ञ की जीवंत आस्था थी।

अहिंसक के आभामंडल में पहुंचकर जन्मजात शत्रुर्ता-वैर रखने वाले प्राणी भी वैरभाव को भूलकर पूर्ण मैत्री-सद्भावना का अनुभव करता है। यह अहिंसा की शक्ति का ज्वलंत उदाहरण है। 'अहिंसा की शक्ति असीम है उसके सहारे ही मानवीय सभ्यता और संस्कृति का विकास संभव हुआ।' यथार्थ के धरातल पर अहिंसा की शक्ति से आदमी परिचित नहीं है और उस पर उसका विश्वास भी नहीं है। महात्मा गांधी, मार्टिन लूथर किंग जैसे व्यक्तियों ने अहिंसा की शक्ति को दुनिया के सामने रखा। दुनिया ने उसको प्रत्यक्ष देखा, फिर भी न जाने क्यों विश्व अहिंसा की और उन्मुख नहीं हुआ। शायद ऐसा सोचकर कि अहिंसा की शक्ति का परिणाम बहुत देर बाद आता है और बंदूक से फैसला तुरंत फरत हो जाता है।

बहुत आवश्यक है कि आदमी अहिंसा की शक्ति से परिचित बनें। जब तक उसकी शक्ति से परिचित नहीं होंगे, अहिंसा के प्रति विश्वास पैदा नहीं होगा। इसलिए पहला काम है अहिंसा की शक्ति से परिचित होना।[16] इस कथन में बहुत बड़े सत्य का निदर्शन है कि अहिंसा ही एक ऐसी शाश्वत शक्ति है जिससे प्रकृति का कण-कण प्रभावित है। महाप्रज्ञ अहिंसा की शक्ति में अटूट आस्था रखते हुए भी प्रश्न खड़ा करते-अहिंसा के संबंध में 'क्वालिटी कन्ट्रोल' गुणवत्ता संवर्धन का। यह प्रश्न अहिंसा की अनन्त शक्ति के प्रायोगिक धरातल को पुष्ट करने की दृष्टि से उठाया गया है। इस शक्ति का जब तक व्यवहार में स्पष्ट अनुभव नहीं होगा तब तक संदेहास्पद स्थिति बनी रहेगी। इसका एकमात्र समाधान अहिंसा की शक्ति का प्रखर प्रयोग ही हो सकता है।

गांधी की भांति महाप्रज्ञ ने अहिंसा को वीरों का पथ बतलाते हुए आर्ष वाणी को उद्धत किया है, 'पणयावीरा महावीहि' वीर ही अहिंसा का पालन कर सकता है। गांधी ने इस युग में उसे प्रत्यक्ष कर दिखाया। प्रायः लोग अहिंसा को कायरता के साथ जोड़ कर देखते हैं, लेकिन अहिंसा का कायरता के साथ कोई संबंध नहीं है। हिंसक आदमी तो बहुत कायर होता है। जबकि अहिंसा के रास्ते पर चलने के लिए विराट् शक्ति और मनोबल की जरूरत होती है।[17] अहिंसा की अजेय शक्ति के बाबत मनीषियों के विचारों में एक प्रवाह है जो निश्चित रूप से दिल और दिमाग को छूने वाला है।

अविचल सिद्धांत

व्यक्ति जीवन में अहिंसा को अपनाता है इसकी प्रथम सीढ़ी है वह अपने नित्य जीवन में पारस्परिक व्यवहार में सत्य, नम्रता, सहिष्णुता, प्रेम, करुणा आदि गुणों को विकसित करे। अंग्रेजी में एक कहावत है कि प्रामाणिकता एक श्रेष्ठ व्यवहार नीति है। किन्तु अहिंसा की दृष्टि से यह केवल व्यवहार नीति नहीं है। व्यवहार नीति शायद बदल भी जाए और बदलती ही है पर अहिंसा तो अविचल सिद्धांत है। जब इर्द-गिर्द हिंसा का दावानल प्रज्वलित हो रहा है। तब भी इसका पालन करना चाहिये।[18] सरल शब्दों में-'चारों ओर, जिन्दगी के हर पहलू में न्याय हो, यह अहिंसा की पहली शर्त है।' गांधी आम व्यक्ति को अहिंसा की जीवंत मूर्ति देखना चाहते थे। केवल व्यक्ति का बाह्य स्वरूप ही नहीं भीतर की चेतना भी अहिंसा की परिमल से सुगंधित हो ताकि इसका प्रभाव परिवेश को भी अनुप्राणित कर सके। 'मेरा अनुभव मुझे कहता है कि जहाँ तक आदमी के लिए सम्भव हो, उस हद तक सत्य और अहिंसा का पालन किये बिना, न तो व्यक्तियों को और न जातियों को ही शान्ति मिल सकती है।' शांति के लिए भी अहिंसा का अनुपालन महत्त्वपूर्ण है।

हिंसा के भाव व्यक्ति के भीतर तनाव और अशांति पैदा करते हैं। यह अध्यात्म जगत का अभ्युपगम है। आचार्य महाप्रज्ञ अहिंसा के मौलिक स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं-अहिंसा को बहुत स्थूल अर्थ में समझा जा रहा है, उसकी गहराई में जाने का प्रयत्न कम हो रहा है। हिंसा का प्रारंभिक बिन्दु किसी को मार डालना नहीं है और अहिंसा का प्रारंभिक बिन्दु किसी को न मारना ही नहीं है। हिंसा का प्रारंभ बिन्दु है-दूसरे जीव के अस्तित्व को न स्वीकारना, पदार्थ के अस्तित्व को भी न स्वीकारना। अहिंसा का प्रारंभिक बिन्दु है-छोटे-से-छोटे पदार्थ-परमाणु तक के अस्तित्व को स्वीकारना और उनके साथ छेड़छाड़ न करना। अपने अस्तित्व की भांति दूसरों के अस्तित्व का भी सम्मान करना।[19] यह आत्मौपम्य का सिद्धांत अहिंसा के विकास का महत्त्वपूर्ण सूत्र है। अस्तित्व के धरातल पर अभेदानुभूति अहिंसा है। इसे सरल शब्दों में प्रस्तुति मिली-'आत्मा ही हिंसा है और आत्मा ही अहिंसा है। आत्मा-आत्मा के बीच अभेदानुभूति है, वह अहिंसा है।' यह अहिंसा का नैश्चयिक रूप है।

एक व्यक्ति किस हद तक हिंसक और अहिंसक हो सकता है। आन्तरिक स्थिति का चित्रांकन करते हुए महाप्रज्ञ ने सत्य का उद्घाटन किया। अहिंसा विशाल होती है। हिंसा सीमा से परे नहीं हो सकती। एक व्यक्ति क्रूर होकर भी 'सबका हिंसक बन जाए'-उतना क्रूर नहीं होता, उसकी हिंसा की भी एक निश्चित रेखा होती है। वह अपने राष्ट्र, समाज, जाति या कम-से-कम परिवार का शत्रु नहीं होता। वह हर क्षण क्रियात्मक हिंसा नहीं करता। व्यक्ति क्रोध करता है पर क्रोध ही करता रहे-ऐसा नहीं होता। हिंसा को सीमित किए बिना व्यक्ति जी नहीं सकता। यथार्थ के धरातल पर देखा जाये तो अहिंसा अनन्त आनन्द का सतत् प्रवाही स्रोत है, फिर भी मनुष्य का स्वभाव उसमें सहजतया नहीं रमता इसका कारण नियन्त्रण शक्ति का अभाव है।

मन, वाणी और शरीर की निरंकुश-वृत्तियों का प्रतिरोध करने की आत्मशक्ति का जितना कम विकास होता है, उतना ही अधिक हिंसा का वेग बढ़ जाता है। हिंसा की मर्यादाएं कृत्रिम होती हैं। उनमें तड़क-भड़क और लुभावनापन भी होता है। अहिंसा में दिखावटीपन या बनावटीपन नहीं होता। वह आन्तरिक मर्यादा है। वह आती है, तभी व्यक्ति का व्यक्तित्व-जीवन की स्वतन्त्रता निखरती है।[20] ऐसा घटित होने से अहिंसा जीवन का अविचल सिद्धांत ही नहीं जीवन का पर्याय साबित होती है। अहिंसा सिद्धांत संबंधी दोनों मनीषियों के चिंतन में समानता और मौलिकता का संगम है।

अभय और अहिंसा

व्यक्ति अहिंसा का सच्चे अर्थों में तभी उपासक बन सकता है जब वह अभय बनें। भयभीत-कायर व्यक्ति अहिंसा जैसे शक्ति-शाली मंत्र का लाभ नहीं उठा सकता। गांधी के शब्दों में.....अहिंसा मंत्र का अर्थ है निडरता का मन्त्र-अभय का मंत्र। अभय बने बिना अहिंसा का पालन अपूर्ण है। अहिंसा की दूसरी संज्ञा क्षमा की परिसीमा है किन्तु क्षमा तो वीर पुरुष का भूषण है। अभय के बिना अहिंसा नहीं हो सकती। अहिंसा में भय का कोई स्थान ही नहीं है। भयमुक्त होने के लिए अहिंसा के उपासक को उच्च कोटि की त्यागवृत्ति विकसित करनी चाहिए। जिसने सब प्रकार के भय को नहीं जीता, वह पूर्ण अहिंसा का पालन नहीं कर सकता। इसलिए अहिंसा का पुजारी एक ईश्वर का ही भय रखे, दूसरे सब भयों को जीत ले।[21] ईश्वर से भय का आशय है केवल पापकर्म, बुरे कार्य से ही भय रखें जिसके सहारे दूसरे भय स्वयमेव समाप्त हो जायेंगे।

किसी भी स्थिति में कायर या भयभीत होने वाला अहिंसा जैसे महान् मूल्य को नहीं पा सकता। अहिंसा की पूर्ण परिपालना में अस्त्र-शस्त्र की जरूरत भी नहीं है। गांधी कहते हैं-'अहिंसा और कायरता कभी एक साथ नहीं चल सकते। शस्त्र रखने में कायरता नहीं तो भय का भूत अवश्य छिपा है। किन्तु विशुद्ध निर्भीकता के बिना सच्ची अहिंसा असम्भव है।' सच्ची अहिंसा के अभ्यासी को अभय होना जरूरी है। अहिंसा और अभय के संबंध में आचार्य महाप्रज्ञ का चिंतन गांधी के विचारों का संपोषक है। उन्होंने माना कि अहिंसा के विकास की पहली सीढ़ी है-अभय। अहिंसा महाव्रत है तो अभय उसकी भावना है। अभय के बिना अहिंसा की कोई बात सोची नहीं जा सकती। 'अहिंसा व्रत का आदि बिन्दु है तो अभय उसकी साधना का अभिन्न अंग है।' इस कथन की पुष्टि में महावीर को उद्धृत किया है। महावीर ने कहा, 'डरो मत।' जब तक डरते हो, तब तक किसी भी धर्म का पालन नहीं हो सकता। न अहिंसा का पालन हो सकता है, न सत्य का पालन हो सकता है और न अपरिग्रह का पालन हो सकता है। आदमी हिंसा इसीलिए करता है कि वह डरता है। वह झूठ इसीलिए बोलता है कि वह डरता है और परिग्रह इसीलिए एकत्रित करता है कि वह डरता है। उसे भय है कि बूढ़ा हो जाऊंगा तो क्या होगा? बीमार हो जाऊंगा तो क्या होगा? यह भय ही परिग्रह का मूल है। इसलिए महावीर ने कहा, 'डरो मत।'[22] तनाव को मिटाने का सबसे अच्छा सूत्र है-अभय, भय नहीं रखना।

अहिंसा की साधना का पहला सोपान है-अभय। यह एक बड़ी साधना है। अभय होना यानि चिंतामुक्त होना। सुख से जीने का मूलमंत्र है-अभय होना। आवश्यक है आदमी अभय बनें।

अभय निष्पति के संबंध में महाप्रज्ञ ने कहा-जब सहिष्णुता सधती है तब अभय घटित होता है। धर्म का रहस्य है-अभय। धर्म की यात्रा का आदि बिन्दु है-अभय और अन्तिम बिन्दु है-अभय। धर्म का अथ और इति अभय है। धर्म अभय से प्रारंभ होता है और अभय को निष्पन्न कर कृत्कृत्य हो जाता है। वीतरागता का आरम्भ अभय से होता है और वीतरागता की पूर्णता भी अभय में होती है। अहिंसा की सर्वोच्च निष्पत्ति-वीतरागता अभय से ही निष्पन्न होती है।

अहिंसा के विकास में निर्भयता का अनन्य योग है। निर्भयता अहिंसा का प्राण है। भय से कायरता आती है। कायरता से मानसिक कमजोरी और उससे हिंसा की वृत्ति बढ़ती है। अहिंसा के मार्ग में सिर्फ अंधेरे का डर ही बाधक नहीं बनता; मौत का डर, कष्ट का डर, अनिष्ट का डर, अलाभ

का डर, जाने-अनजाने अनेक डर सताने लग जाते हैं, तब अहिंसा से डिगने का रास्ता बनता है। पर निश्चित लक्ष्य वाला व्यक्ति नहीं डिगता। दृढ़ निश्चयी पराक्रमी शूर-वीर आदमी जीवन में एक बार मरता है, कायर आदमी हजारों बार मरता है। उसे चिन्ता और भय सताते रहते हैं। भय भीतर रहता है और वह सुख को काटता रहता है। हमारे सुख का सबसे बड़ा शत्रु है भय, वह सुख को चिरयुवा बनने नहीं देता।[23] जिसे अहिंसा को चिरयुवा बनाये रखना है उसके लिए अभय बनना जरूरी है।

महाप्रज्ञ ने बतलाया कि अभय का विकास अहिंसा और मैत्री के विकास के बिना संभव नहीं है। परिवार और समाज में, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सर्वत्र अहिंसा का विकास हो, मैत्री भाव का विकास हो तो आदमी अभय हो सकता है। अभय और अहिंसा का परस्पर घनिष्ट संबंध है। दोनों महापुरुषों ने समान रूप से इसे स्वीकारा है। हिंसा की शक्ति भय और आंतक पैदा करने वाली, डराने वाली, संताप देने वाली है। अहिंसा की शक्ति अभय की चेतना को जागृत करने वाली, मैत्री, सौहार्द, आत्मीयता, अपनापन पैदा करने वाली है।

अहिंसा की शर्तें

व्यक्ति के जीवन में अहिंसा अवतरण के मौलिक कारकों की चर्चा महत्त्वपूर्ण है। त्याग परक अहिंसा का अपना मूल्य है। गांधी का इस विषय में दृष्टिकोण रहा है कि हमें अहिंसा के क्षेत्र में नित नई शोध करनी हो, और मानव जाति पर शासन करने वाले इस सनातन और महान् नियम की नई. नई शक्तियों का समय.समय पर संसार को परिचय कराना हो, तो इसके लिए यम.नियमों का पालन आवश्यक है। चूंकि यम नियमों का पालन आत्म.शुद्धि का साधन है। आत्म शुद्धि के बिना अहिंसा की साधना व्यक्ति के जीवन में उतर नहीं पाती अतः आत्म शुद्धि जरूरी है। आत्म शुद्धि के बिना जीवमात्र के साथ ऐक्य सध ही नहीं सकता। आत्म.शुद्धि के बिना अहिंसा धर्म का पालन सर्वथा असंभव है।[24] नम्रता और सत्य-परायणता के बिना अहिंसा का पालन होना असंभव है। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि 'अहिंसा की सिद्धि के लिए यह जरूरी है कि कुमार्ग से जो कुछ प्राप्त किया गया हो उसका त्याग कर दिया जाये।' साधन-शुद्धि के महत्त्व को गौण नहीं किया जाये।

अहिंसा का पालन करने वाले व्यक्ति के लिए शर्त है कि परमेश्वर में सजीव श्रद्धा होना। गांधी के शब्दों में 'वीरों की अहिंसा साधना की सबसे पहली शर्त यह है कि हम अपने दिल में राम के जीते-जागते अस्तित्व का अनुभव करें।' इससे व्यक्ति के भीतर शक्ति का उदय होता है। अहिंसा की शर्तों के अनुपालन से नई चेतना का संचार होता है और व्यक्ति अपने मिशन में सफल होता है। अहिंसा अवतरण और विकास के संबंध में आचार्य महाप्रज्ञ का चिंतन रहा कि अहिंसा का प्रारंभ किसी को मत मारो, मत सताओ से शुरू करो परंतु इसकी प्रतिष्ठा हेतु कतिपय महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं की साधना जरूरी है। मन की पवित्रता, भावना की पवित्रता, कलह, कदाग्रह, निंदा, चुगली, परपरिवाद आदि मानसिक दोषों का शमन और प्रक्षालन हो, निर्मलता का प्रतिशत बढ़े साथ ही चित्त में मैत्री, प्रमोद, करुणा, औदासीन्य का विकास हो ताकि अहिंसा की चेतना स्वतः स्फूर्त बन जाये।[25]

उन्होंने कहा-जीवन-प्रणाली में परिवर्तन अहिंसा के विकास की मुख्य शर्त है। आज के व्यक्ति की जीवन प्रणाली शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य के लिए अच्छी नहीं है। आज न केवल शारीरिक स्वास्थ्य गड़बड़ा रहा है, मानसिक स्वास्थ्य भी गड़बड़ा रहा है। और जब मन स्वस्थ नहीं होता तो हिंसा बढ़ती है, अपराध, हत्याएं और आत्म-हत्याएं बढ़ती है। जीवन प्रणाली को बदलना

जरूरी है। जीवन के साथ वही व्यक्ति मैत्री स्थापित कर सकता है जो जीवन प्रणाली को बदले। साथ ही करुणा, मैत्री और संवेदनशीलता का विकास करे। व्यक्ति अपने प्रति प्रतिदिन मंगल भावना करे-'शिवसंकल्पमस्तु में मनः।' यह चिंतन जीवन निर्माण के लिए सबसे शक्तिशाली चिन्तन है। व्यक्ति के मन में यह चिन्तन प्रबल बने-'मेत्ति मे सव्वभूएसु'-सब प्राणियों के प्रति मेरी मैत्री है। इससे बड़ा कोई मंगल कार्य हो नहीं सकता। अहिंसा शक्तिशाली बने, धर्म मंगल व कल्याणकारी बने, इसके लिए आध्यात्मिकता का विकास जरूरी है। ऐसा तभी संभव है जब व्यक्ति की अन्तर चेतना में अहिंसा प्रकट हो। यह अहिंसा विकास की महत्त्वपूर्ण शर्त है।

अहिंसक : स्वरूप विमर्श

संकल्प और पुरुषार्थ की युति जब व्यक्ति की चेतना से संपृक्त होकर सघन बन जाती है अहिंसा वहीं व्यक्ति का सौंदर्य बनकर निखरती है। अहिंसा का जीवंत पुजारी 'अहिंसक' की अभिधा से सुशोभित होता है। मापदण्ड की पृष्ठभूमि में अनेक प्रश्न खड़े होते हैं। क्या अहिंसक व्यक्ति विशेष ही बन सकता है? क्या अहिंसा का पालन जीवन के किसी घटना प्रसंग में ही करणीय है? क्या संन्यासी ही अहिंसक बन सकता है अथवा कोई भी? क्या अहिंसक जीवन की प्रत्येक पहेली को अहिंसा से ही बुझाता है? इत्यादि जिज्ञासाओं का समाधान पाने के लिए मनीषी द्वय के विचारों का आलोडन जरूरी है।

प्रत्येक मानव के भीतर दिव्यता का उत्स विद्यमान रहता है। आत्मशक्ति के जागरण से उसका साक्षात् अनुभव किया जा सकता है। गांधी का दृढ़ विश्वास था कि 'एक पशु के रूप में मनुष्य हिंसापूर्ण है, किन्तु आत्मा की दृष्टि से अहिंसक है। जिस क्षण उसकी वह भीतरी आत्मा जाग पड़ती है वह हिंसक नहीं बन सकता। व्यक्ति की अन्तर चेतना में छिपी प्रशस्त भावनाओं के आधार पर अहिंसक की कल्पना की न कि धर्म अथवा जाति विशेष के आधार पर। हिन्दू मात्र अहिंसक हो, कहा नहीं जा सकता। 'तमाम हिन्दू अहिंसक है? सवाल की जड़ में जाकर विचार करने पर मालूम होता है कि कोई भी अहिंसक नहीं है, क्योंकि जीव को तो हम मारते ही हैं। लेकिन इस हिंसा से हम छूटना चाहते हैं, इसलिए अहिंसक कहलाते हैं।

साधारण विचार करने से मालूम होता है कि बहुत से हिन्दू मांस खाने वाले हैं, इसलिए वे अहिंसक नहीं माने जा सकते। खींच-तानकर दूसरा अर्थ करना हो तो मुझे कुछ कहना नहीं है। अहिंसक का दर्जा महान् है। उसमें आत्मौपम्य की चेतना जाग जाती है। अहिंसक मनुष्य तो सदा आत्मनिरीक्षण ही करेगा और इस परम सत्य का पता लगा लेगा कि—'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत' हमें वही बरताव दूसरों के साथ करना चाहिये जो हम उनसे अपने प्रति कराना चाहते हैं। यही सर्वोत्तम मार्ग है। अगर वह स्वयं हत्यारा होता तो वह अपने पागलपन के लिए अपना वध कभी नहीं करवाना चाहेगा। वह तो यह चाहेगा कि उसे अपने को सुधारने का अवसर मिले। अहिंसक यह भी जानता है कि जिसे मैं बना नहीं सकता उसे मिटाना भी नहीं चाहिये।[26] जिसके भीतर ऐसी चेतना जागृत हो जाती है वही सच्चा अहिंसक हो सकता है।

अहिंसावादी उपयोगितावाद का समर्थन नहीं कर सकता। वह तो 'सर्वभूतहिताय' यानि सबके लिए अधिकतम लाभ के लिए ही प्रयत्न करेगा और इस आदर्श की प्राप्ति में मर जायगा। इस प्रकार वह इसलिए मरना चाहेगा जिसमें दूसरे जी सकें। अहिंसक स्वतन्त्रतापूर्वक तभी जी सकता है, जबकि

वह आवश्यकता पड़ने पर अपने भाई के हाथों, उस पर जरा भी प्रहार नहीं करते हुए मरने को तैयार रहे। हत्या या किसी दूसरे व्यक्ति पर की गई प्रत्येक चोट, चाहे वह किसी भी कारण क्यों नहीं की गई हो, मानवता के प्रति अपराध है।[27] अहिंसावादी और उपयोगितावादी अपने रास्ते पर कई बार मिलेंगे। किंतु अन्त में ऐसा भी अवसर आयेगा, जब उन्हें अलग-अलग रास्ते पकड़ने होंगे और किसी-किसी दशा में एक-दूसरे का विरोध भी करना होगा। तर्कसंगत न रहने के लिए उपयोगितावादी अपने को कभी बलि नहीं कर सकता। परन्तु अहिंसावादी हमेशा मिट जाने को तैयार रहेगा।

अहिंसक का आदर्श महान् होता है। आचार्य महाप्रज्ञ ने अहिंसक के स्वरूप का चित्रण करते हुए लिखा-अहिंसक व्यक्ति वह है, जो किसी की हिंसा नहीं करता, अनावश्यक हिंसा नहीं करता, वह किसी को नहीं सताता, किसी का शोषण नहीं करता, किसी के साथ धोखाधड़ी नहीं करता और किसी को दुःखी नहीं करता।[28] अपने आशय को व्रतों की कसौटी पर रखते हुए लिखा-अहिंसक का जीवन व्रतों का समवाय है। जहां एक-दो नहीं, अहिंसा-सत्य-अचौर्य- ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह पाँचों व्रतों का एक साथ समावेश रहता है—

- अहिंसक में सब जीवों को आत्मतुल्य समझने की प्रज्ञा प्रकट हो जाती है यह उसका अहिंसा पक्ष है।
- अहिंसा के साथ-साथ व्यक्ति में ऋजुता प्रकट होती है। वही उसका सत्य पक्ष है।
- अहिंसा से अपनी मर्यादा का विवेक जागृत होता है। इसलिए अहिंसक व्यक्ति दूसरों के स्वत्व का अपहरण नहीं करता यही उसका अचौर्य पक्ष है।
- अहिंसक व्यक्ति अपने इन्द्रिय और मन पर अधिकार स्थापित करता है। यही उसका ब्रह्मचर्य पक्ष है।
- अहिंसक व्यक्ति आत्मलीन रहता है। वह बाह्य वस्तुओं में आसक्त नहीं होता, यही उसका अपरिग्रह पक्ष है।[29]

अहिंसक कौन बन सकता है? जो व्यक्ति स्व-पर के भेदभाव से ऊँचा उठा हुआ है, जिसके सामने पवित्र लक्ष्य है, जिसका आत्म-बल विकसित है और जो निर्भय है, वही अहिंसक बन सकता है। इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं-अहिंसक बुराई के साथ कभी भी समझौता नहीं कर सकता, इसलिए उसे जितना नम्र होना चाहिए उतना कठोर भी। 'वज्रादपि कठोराणि, मृदुनि कुसुमादपि'—यह बात अहिंसक के लिए सोलह आने सही है। कठोर किसी व्यक्ति के प्रति नहीं, अपनी वृत्तियों के प्रति हों ताकि बुराई से समझौता न करने के कारण पैदा होने वाली कठिनाइयों का दृढ़ता से सामना कर सके।[30] कथन में अहिंसक के कोमलता-कठोरता धर्म का प्रतिपादन है। विवेक उसका निजी गुण है कि कहाँ किसका प्रयोग करे। जो प्राणियों के प्रति दंड का परित्याग कर हिंसादि पाप कर्म नहीं करता, वही अहिंसक महान् अग्रन्थ अर्थात् निर्ग्रन्थ कहलाता है। अर्थात् मूर्च्छा की ग्रन्थि से मुक्त हुए बिना कोई भी अहिंसक नहीं हो सकता। अहिंसक का जीवन नियमोपनियम से युक्त आदर्श की दिशा में गतिशील रहता है।

अहिंसक का धर्म क्या है? गांधी ने समाहित करते हुए कहा-अहिंसक को आदमी की हिंसा करनी चाहिए, ऐसा कहीं नहीं लिखा है। अहिंसक के लिए तो राह सीधी है। उसे एक को बचाने के लिए दूसरे की हिंसा करनी ही नहीं चाहिए। उसे तो मात्र चरण-वंदना करनी चाहिए, सिर्फ समझाने का काम करना चाहिए इसी में उसका पुरुषार्थ है। इतना ही नहीं उसे तो अपनी सहिष्णुता की

शक्ति का विकास यहाँ तक करना होता है कि किसी भी धर्मग्रंथ में वर्णित अच्छाई को ग्रहण कर सके। जो विराट् दृष्टि से देखना चाहते हैं, वे देख सकेंगे कि कुरान शरीफ में ऐसे सैकड़ों वचन हैं जो हिन्दुओं को मान्य हों; भगवद्गीता में ऐसी बातें लिखी है कि जिनके खिलाफ मुसलमान को कोई भी एतराज नहीं हो सकता। कुरान शरीफ का कुछ भाग मैं न समझ पांऊ या कुछ भाग मुझे पसंद न आये, इस बजह से क्या मैं उसे मानने वाले से नफरत करूं?[31] कदापि नहीं। यही अहिंसक का आदर्श पथ होता है। आचार्य महाप्रज्ञ अहिंसा और अहिंसक के धर्म को अभेदोपचार की दृष्टि से देखते-अहिंसा के लिए शरीर-बल से कहीं अधिक आत्म-बल की अपेक्षा है। मानसिक कमजोरी आई; छिपाने-दबाने की बात आई कि अहिंसा नौ दो ग्यारह हो जाती है। अहिंसक के सामने आगे बढ़ने का एक लक्ष्य होना चाहिए। उसके बिना वह आत्म-बल बटोर नहीं सकता। अतः अहिंसक सरलता से बोलता है, सरलता से चलता है और सरलता से करता है। अहिंसक की प्रत्येक क्रिया सहज भाव से निष्पन्न होती है उसमें लुकाव-छिपाव, कुटिलता को स्थान नहीं रहता। अहिंसक का धर्म ही उसके लक्ष्य को निर्धारित करता है।

आम व्यक्ति से भिन्न अहिंसक की भूमिका का चित्रण किया गया क्योंकि अहिंसक की भूमिका परमार्थ की होती है। वह परमार्थ को आगे कर स्वार्थ से लड़े। वह सोचे-ये पौद्गलिक वस्तुएँ बिगड़ने वाली हैं, नष्ट होने वाली हैं। उपयोग होगा तो भी बिगड़ेंगी, उपयोग नहीं होगा तो भी बिगड़ेंगी। तब फिर आसक्ति क्यों? यह सोचकर उनकी चिन्ता से मुक्त रहने का प्रयत्न करता है। एक ओर अनासक्ति के विकास का आदर्श तो दूसरी ओर प्रतिक्रिया विरति का प्रयत्न अहिंसक के जीवन को निखारता है। अहिंसक प्रतिक्रिया विरति को अपना आत्म धर्म समझता है। महाप्रज्ञ के शब्दों में अहिंसक इसलिए अच्छा व्यवहार नहीं करता कि दूसरा मेरे साथ अच्छा व्यवहार कर रहा है। वह बुरा व्यवहार करने वाले के प्रति भी अच्छा व्यवहार करता है। सूत्रात्मक शैली में प्रस्तुति दी—

- अहिंसक प्रतिबिम्ब का जीवन जीना नहीं चाहता।
- अहिंसक प्रतिक्रिया का जीवन जीना नहीं चाहता।
- अहिंसक प्रतिध्वनि का जीवन जीना नहीं चाहता।

किसी ने अच्छा व्यवहार किया, इसलिए मैं उसके साथ अच्छा व्यवहार करूँ-यह सौदा है, विनिमय है। अहिंसक बुराई को जानता हुआ भी दूसरों के साथ अच्छा व्यवहार करता है। भगवान् महावीर जानते थे कि चंड कौशिक पैरों पर डंक मार रहा है, फिर भी उस पर अकृपा की दृष्टि नहीं हुई। दूसरी ओर लोग पूजा करने आए, उन पर भी वही दृष्टि रही। यह उत्कृष्ट उदाहरण है अहिंसक के आत्म धर्म प्रयोग का।[32] यह समताप्लावित व्यवहार का अपूर्व संदेश है।

अहिंसक की चेतना से करुणा का अजस्र स्रोत बहता है। उसे जीवन के प्रत्येक कर्म में देखा जा सकता है। करुणा शून्य जीवन स्व-पर दोनों के लिए खतरनाक बन सकता है। उसके अभाव में व्यक्ति क्रूरतापूर्ण व्यवहार करता है। इसके पदचिन्ह यत्र-तत्र देखे जाते हैं। उदाहरण के तौर पर-आजकल गांवों में दूध शुद्ध मिल जाता है पर शहरों में तो दूध भी नकली आता है सिंथेटिक दूध, जिसमें कितने तरह के जहर मिले रहते हैं। इस तरह का कार्य करने वाले कितना नुकसान कर रहे हैं। आदमी-आदमी के प्रति अन्याय करे, स्वार्थवश अन्धा बन जाए, यह अहिंसक मानव के लिए अच्छा नहीं है।[33] अहिंसक करुणाद्र होगा निष्करुण नहीं।

अहिंसक की मर्यादा क्या है? वह हिंसा की जलती ज्वाला में क्या करें? इस पहेली को बुझाते

हुए गांधी ने कहा-'वह अपनी बलि दे, अपने प्राणों का उत्सर्ग करें, यह अहिंसक की मर्यादा है पर दूसरे के प्राणों का उत्सर्ग करें, यह अहिंसक की मर्यादा नहीं है।' कथन की पुष्टि में कहा-बड़ी से बड़ी उत्तेजना के आगे भी डटे रहने और पस्त हिम्मत न होने की ताकत अहिंसक में न हो, तो उसकी कोई बड़ी कीमत नहीं हो सकती। चाहे जितनी उत्तेजना के सामने टिके रहने की शक्ति में ही उसकी सच्ची कसौटी है। स्त्रियों का सतीत्व लूटा गया हो और उसे अपनी आँखों देखने वाले अहिंसावादी साक्षी हो, तो वे जीवित कहां से रहेंगे।[34] आशय स्पष्ट है कि अहिंसक कायर नहीं हो सकता। उसके भीतर बुराई से संघर्ष करने का पर्याप्त सामर्थ्य होता है।

गांधी का मानना था कि अहिंसक एक भी काफी होता है, उस एक से भी जगत् को आश्वासन मिलेगा। आचार्य महाप्रज्ञ की दृष्टि में अहिंसक की मर्यादाएं सख्त होती है। एक सच्चा अहिंसक मौत की घड़ियों में भी धैर्य को नहीं छोड़ता। किसी भी परिस्थिति में अंतःकरण की शांति भंग नहीं करता। मारने की क्षमता रखता हुआ भी मारता नहीं यह अहिंसक की दिव्य शक्ति का प्रमाण है। वह अपनी तरफ से सभी को अभय बना देता है। अहिंसक अपने प्राण का विसर्जन कर सकता है, किन्तु मारने वाला नहीं हो सकता।[35] अहिंसक और कायरता में कोई संबंध नहीं है। भीरू आदमी अहिंसक नहीं हो सकता। अहिंसक को धमकियां और बन्दर 'घुड़कियां' भी सहनी पड़ती हैं।

अहिंसा का तेज ही अहिंसक को तेजस्वी बनाता है। उसका तेज विशिष्ट गुणों के समाचरण से बढ़ता है। विशेष रूप से सद्भावना का विकास मैत्री या प्रेम का विकास। अपने विरोधी के प्रति भी मन में पूरी सद्भावना जिसके मन में नहीं होगी, वह सफल अहिंसक नहीं हो सकता। महात्मा गांधी ने बहुत गहरी भेद रेखा खींची थी पापी और पाप के बीच में। पाप या बुराई के प्रति घृणा का भाव हो सकता है किन्तु व्यक्ति के प्रति नहीं, पापी के प्रति नहीं। जब इस सद्भावना का विकास होता है तभी अहिंसा की संभावना की जा सकती है.....सद्भावना के लिए अनिवार्य है कष्ट-सहिष्णुता का विकास।.....अहिंसक व्यक्ति स्वेच्छा से अपनी कष्ट-सहिष्णुता का विकास करता है और समय पर अहिंसा के लिए आने वाले बड़े-से-बड़े कष्ट को झेलने की वह क्षमता रखता है।[36]

प्रतिक्रिया करना भी अहिंसक की मर्यादा नहीं है। उस समय अहिंसक की मर्यादा है—वह मौन हो जाए। वह सोचे-मैंने इसे समझाया, मेरा कर्तव्य तो मैंने निभा दिया। ऐसा विचार होना बड़ा कठिन है पर जिसने हृदय से अहिंसा को अपनाया है, उसकी मर्यादा को समझा है उसके लिए कुछ भी असंभव नहीं है। समय पर शांत-मौन रहकर भी अपनी शक्ति का परिचय दे सकता है। अहिंसक की मर्यादा उसे उत्पथगामी नहीं होने देती। अतः अहिंसक अपने दोषों को छिपाने की बात भी नहीं जानता। वह अपनी भूलों को दूसरे के सामने रखकर अपने को हल्का अनुभव करता है। इसके लिए आत्मबल का विकास जरूरी है। अहिंसक के समक्ष आगे बढ़ने का एक पवित्र लक्ष्य होना चाहिए।

निर्भयता अहिंसक का मौलिक गुण है। भय से कायरता आती है, कायरता से मानसिक कमजोरी और उससे हिंसा की वृत्ति बढ़ती है। यह अहिंसक की मर्यादा के प्रतिकूल है अतः अहिंसक को न मौत का डर, न अनिष्ट का डर, न अलाभ का डर सताता है। अहिंसक को अकेलेपन का डर भी नहीं होना चाहिए।

महाप्रज्ञ ने लिखा-'अहिंसाव्रती को वैसी वस्तुएं नहीं खानी चाहिए, जिनसे आवश्यकतापूर्ति कम हो और हिंसा अधिक। उसे स्वाद के लिए कुछ भी नहीं खाना चाहिए और मादक वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिए। ये अहिंसक की मौलिक मर्यादाएं दूसरों के लिए आदर्श है एवं स्वयं के लिए

आनंदमय जीवन का अपरिहार्य अंग बनती है।

अहिंसक व्यक्ति की सफलता की शर्तों का जिक्र गांधी ने किया है। जो लोग पक्के अहिंसक हैं, वे इस बात की परवाह नहीं करेंगे कि उनके विरोधी प्रबल सैनिक शक्ति वाले है या कमजोर। मैं इस बात का हृदय से समर्थन करता हूं कि सच्चा अहिंसा-परायण वही है जो प्रहार करने की क्षमता रखते हुए भी अहिंसात्मक बना रहता हो।[37] अहिंसावादी सदा मिट जाने को प्रस्तुत रहेगा। इन शर्तों के बिना सफलता की कामना अपूर्ण रह जाती है।

गांधी ने जहाँ एक अहिंसक के स्वरूप-गुण-शर्तों का जिक्र किया वहाँ अपने देशवासियों की तथा अपने अहिंसक जीवन की अपूर्णता को भी स्वीकार किया-'सच्चे अहिंसक हिन्दुस्तान को किसी भी विदेशी शक्ति से कोई डर न होगा और न उसे अपनी सुरक्षा के लिए ब्रिटिश बेड़ों और हवाई फौजों का मुंह ताकना होगा। मैं जानता हूं अभी हमारे अन्दर बहादुरों की अहिंसा नहीं आ पाई है। उन्होंने अहिंसक शक्ति को दुनिया की सर्वश्रेष्ठ मिसाल बताया। इसकी सफलता पर संदेह की रेखा भी उनके दिमाग में स्थान न बना पाई। गांधी के चिंतन से कुछ हटकर आचार्य महाप्रज्ञ ने अहिंसक की सफलता की शर्तों का उल्लेख किया। पहली शर्त है कि उसका मानसिक संतुलन, अपने आवेग-आवेश पर नियंत्रण हो। क्रोध, मान, माया-लोभ, चुगली, निंदा, आरोपण, घृणा, तिरस्कार, कलह, पक्ष का आग्रह और भय ये आवेग हैं, जो असंतुलित स्थिति में तन-मन को रुग्ण बना देते हैं। अहिंसक को धीर-गम्भीर और शान्त होकर वेगात्मक वृत्तियों पर विजय पानी चाहिए। आवेग मुक्ति, वासना-मुक्ति और व्यसन-मुक्ति होने से रोग-मुक्ति स्वयं हो जाती है। आवेग विजय का अर्थ है-स्वास्थ्य, स्वस्थता, आत्म-स्थिति। आवेगों के नियन्त्रण से उदात्त वृत्तियां फलती हैं-क्षमा या उपशम, नम्रता या मृदुता, ऋजुता, अनासक्त भाव या सन्तोष, पर-गुण-ग्राहकता, स्व-श्लाघा-वर्जन, स्व-दोष-दर्शन, प्रेम या मैत्री, शान्ति, सत्य का आग्रह, अभय। एक सच्चा अहिंसक अपने नियंत्रण की चाबी अपने पास रखता है, जो उसकी सफलता का राज है।

अहिंसक के मौलिक स्वरूप की ओर इंगित करते हुए महाप्रज्ञ ने सफलता के सूत्र प्रस्तुत किये-

- अहिंसक को क्रूर नहीं होना चाहिए। क्रोध क्रूरता लाता है प्रेम का नाश करता है।
- अहिंसक नम्र होगा, उदण्ड नहीं। लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, जीवन-मृत्यु, निंदा-प्रशंसा, मान-अपमान में जो समवृत्ति होता है, वही अहिंसक है।
- अहिंसक को काय-ऋजु, भाषा-ऋजु, भाव-ऋजु होना चाहिए।
- पदार्थों के लिए या उनके व्यवहार में आसक्ति न हो। आसक्ति या असंतोष हिंसा है।
- परोक्ष में बुराई करना चुगली है और सामने बुराई करना निन्दा है। अहिंसक इन से उपरत हो।[38]

सहकारी बिन्दु :

- अहिंसक विश्वासपात्र होना चाहिए। वह चापलूस नहीं होता परन्तु सद्भावना के द्वारा एक अभिमानी के दिल को भी जीत लेता है। एक अहिंसक कभी झूठी प्रशंसा नहीं करता।
- अहिंसक किसी के साथ अनबन न करे। वह स्वयं अनबन के रास्ते पर न जाए। दूसरा कोई जाए तो उसकी जिम्मेदारी अहिंसक नहीं ले सकता।
- अहिंसक किसी के प्रति अन्याय न करे। अन्याय का दूसरा अर्थ है-असंयम। अहिंसा का

मूल मंत्र है-संयम। भगवान महावीर ने कहा-अहिंसक वह है जो हाथों का संयम करे, पैरों का संयम करे, वाणी का संयम करे और इन्द्रियों का संयम करें।

- अहिंसक की दृष्टि अन्तर्मुखी हो।[39] अपने इस अन्तर्मुखी स्वभाव के कारण अहिंसक स्व-पर हित संरक्षण के प्रति जागरूक रहेगा।

अहिंसक का जो स्परूप मनीषी द्वय ने प्रस्तुत किया है वह एक आदर्श व्यक्तित्व का परिचायक है। साथ ही भारतीय संस्कृति के 'ऋषि-पुरुष' की संकल्पना को आकार देने वाला प्रकल्प भी है।

अहिंसा प्रतिष्ठाधार : शिक्षा

बालक के भीतर छिपी अनन्त संभावनाओं को उकेरने और सही आकार देने में शिक्षा की अहम भूमिका है। शिक्षा एक ऐसी तूलिका है जिससे चाहे जैसे आदर्श व्यक्तित्व का निर्माण किया जा सकता है। शिक्षा एक ऐसी चाबी है जिसके द्वारा आन्तरिक क्षमताओं पर लगे ताले खुल जाते हैं। शिक्षा के द्वारा उन गुणों का बीज वपन किया जा सकता है जिसकी निष्पत्ति व्यक्ति में देखना चाहते हैं। शिक्षा का स्तर, इसका प्रयोगात्मक स्वरूप व्यक्तित्व निर्माण में योगभूत बनता है। व्यक्ति में अहिंसा की प्रतिष्ठा का प्रश्न शिक्षा से ही संभव बनता है। शिक्षा बालक के भीतर अहिंसक चेतना को पैदा करने में समर्थ है। शिक्षा के संदर्भ में अहिंसक मूल्यों के समाकलन की अपेक्षा है। महात्मा गांधी, आचार्य महाप्रज्ञ के शिक्षा विषयक विचार नैतिक मूल्यों एवं अहिंसक चेतना जगाने में समर्थ हैं। उनमें मौलिकता, समाधायकता, समानता और विशिष्टता का अनुपम संगम है।

शिक्षा में अहिंसा समावेश की संकल्पना गांधी की निराली थी। उनके अभिमत में- अहिंसा प्रचंड शस्त्र है। उसमें परम पुरुषार्थ है। वह भीरू से दूर भागती है। वह वीर पुरुष की शोभा है। उसका सर्वस्व है। यह शुष्क, नीरस, जड़ पदार्थ नहीं है। यह चेतनामय है। यह आत्मा का विशेषगुण है। इसलिए शिक्षा में अहिंसा की दृष्टि है, अहिंसा रूपी प्रेम सूर्य है, वैर-भाव घोर अन्धकार है। यदि सूर्य टोकरे के नीचे छिपाया जा सके तो शिक्षा में रही हुई अहिंसा-दृष्टि भी छिपायी जा सकती है।[40] शिक्षा में समाई अहिंसा की सोच गांधी की सूक्ष्म थी। उन्होंने यह आशा प्रकट की थी कि शिक्षा के द्वारा बालक की अहिंसक चेतना को अधिक सक्रिय, तेजस्वी बनाया जाये जिससे अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण का सपना साकार बन सके।

चालू शिक्षा पद्धति की अपूर्णता, अक्षमता को देखकर गांधी का हृदय बोल उठा-सारी शिक्षा-पद्धति ही ऐसी खराब है कि वह मनुष्य को पूरी शिक्षा समाप्त करने के बाद भी स्थिर मन और स्थिर विचार वाला नहीं बनाती। वह जड़मूल से सड़ी हुई है, उसे बिल्कुल नये सिरे से निर्माण करने की जरूरत है। यह मंतव्य शिक्षा संबंधी अंतर पीड़ा के साथ छिछली निष्पत्ति को द्योतित करता है। उन्होंने पाया कि चालू शिक्षा पद्धति अनेक कमजोरियों की शिकार है इससे वांछित परिणाम पाना असंभव है। शिक्षा के विषय में गांधी के विचार बड़े उदात्त थे। शिक्षा मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक विकास साधन की पद्धति है। वह अगर सही है तो शिक्षा के द्वारा मनुष्य सही प्रकार से विकास कर सकता है।[41] आचार्य महाप्रज्ञ के विचार गांधी के संवादी कहे जा सकते हैं। उनका कहना कि एक तरफ तो अहिंसक समाज रचना की बात कर रहे हैं, दूसरी ओर हमारी शिक्षा केवल बौद्धिक व्यक्ति पैदा कर रही है। भावना की शिक्षा के बिना बौद्धिक शिक्षा व्यर्थ है।

शिक्षा में अहिंसा के विकास के लिए कोई स्थान ही नहीं है। जब तक हमारी शिक्षा में बौद्धिक व्यक्तित्व के साथ-साथ भावनात्मक व्यक्तित्व के विकास की बात नहीं जुड़ेगी, अहिंसा की बात व्यर्थ हो जाएगी। 'वर्तमान में जो शिक्षा चल रही है, उस शिक्षा में शुभत्व को और अहिंसा जैसे तत्त्वों को प्रकट करने वाली शिक्षा नहीं मिल रही है।'[42]

वैज्ञानिक तकनीक विकास के बतौर इंटरनेट के केनवास पर आज दुनिया सिमट चुकी है। कोई भी व्यक्ति घटने वाली किसी घटना के प्रभाव से अछूता नहीं है। पूरा विश्व अशांति के दौर से गुजर रहा है। इसका प्रमुख कारण-शिक्षा प्रणाली में नजर आयेगा। प्रचलित शिक्षा प्रणाली सदोष है, त्रुटिपूर्ण है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में मनुष्य को अपने भावों पर, संवेगों पर नियंत्रण की बात नहीं सिखाई जाती। परिणामतः वर्तमान युग में शिक्षा एक ढर्रा बन गई। परिणाम यह है कि जितनी ज्यादा शिक्षा-बढ़ी उतने ही अपराध बढ़ रहे हैं। पढ़े-लिखे लोग अपराध में ज्यादा दक्ष होते हैं। अपराध की वे नई-नई तकनीक विकसित कर लेते हैं। आज शिक्षा में परिवर्तन बहुत आवश्यक है। वह शिक्षा आवश्यक है, जिसमें करुणा, संवेदना की चेतना जागे और हिंसा तथा अपराध कम हों। जब तक भावात्मक शिक्षा का विकास नहीं होगा, तब तक समस्या का समाधान संभव नहीं। वर्तमान शिक्षा से अर्थ कमाने की कला तो आती है, किन्तु अच्छा जीवन जीने की कला नहीं आ पाती।[43] जिस शिक्षा प्रणाली में अपने भावों, संवेगों और आवेगों पर नियंत्रण करने की बात नहीं सिखाई जाती वह शिक्षा प्रणाली हमेशा युद्ध और अशांति का खतरा बनाए रखती है। अन्तर्राष्ट्रीय तनाव और शस्त्रीकरण ने मानव समाज को इस सच्चाई की ओर दृष्टिपात करने के लिए विवश किया है। विवशता में स्व-वशता का सूत्र मिला-शिक्षा की प्रक्रिया को पूर्ण बनाया जाये।

शिक्षा का ध्येय

शिक्षा का ध्येय है-'सा विद्या या विमुक्तये।' जो मुक्ति के योग्य बनाये वह विद्या, बाकी सब अविद्या। इसका संदर्भ जीवनगत समस्त समस्याओं से जुड़ा है। जो व्यक्ति को समस्याओं से ऊपर उठने की कला न सीखा पाये वह शिक्षा अपने मौलिक गौरव को नहीं पा सकती। अतः गांधी की दृष्टि में जो चित्त की शुद्धि न करे, मन और इन्द्रियों को वश में रखना न सिखाये, निर्भयता और स्वावलंबन पैदा न करे, निर्वाह का साधन न बताये और गुलामी से छूटने और आजाद रहने का हौसला और सामर्थ्य न उपजाये उस शिक्षा में चाहे जितनी जानकारी का खजाना, तार्किक कुशलता और भाषा-पांडित्य मौजूद हो वह शिक्षा नहीं है या अधूरी शिक्षा है। उनकी दृष्टि में सच्ची शिक्षा विद्यार्थी को पूर्णता प्रदान करती है। अधूरी शिक्षा से विद्यार्थी केवल पुस्तकीय शब्दार्थ ज्ञान तो हासिल कर लेता है पर जीवन के हर मोड़ पर सामंजस्य की कला नहीं सीख पाता। 'पाल माल गजग' के लेखक को उद्धृत करते हुए लिखा 'हम जानते हैं कि सच्ची शिक्षा का अर्थ पुरानी या वर्तमान पुस्तकों का ज्ञान प्राप्त करना ही नहीं है। सच्ची शिक्षा वातावरण में है; आसपास की परिस्थितियों; और साथ-संगति में, जिससे जाने-अनजाने हम आदतें ग्रहण करते हैं, तथा खासकर काम में है। बृद्धि पूर्वक किया जानेवाला श्रम ही सच्ची प्राथमिक शिक्षा है।[44]

स्पष्टीकरण में गांधी ने लिखा—शिक्षा में जो दृष्टि पैदा करनी है वह परस्पर के नित्य सम्बन्ध की है। जहां वातावरण अहिंसा रूपी प्राणवायु के जरिये स्वच्छ और सुगंधित हो चुका है, वहां पर विद्यार्थी और विद्यार्थिनियां सगे भाई-बहन के समान विचरती होंगी, वहां विद्यार्थियों और अध्यापकों

के बीच पिता-पुत्र का सम्बन्ध होगा, एक दूसरें के प्रति आदर होगा। ऐसे अहिंसामय वातावरण में पले हुए विद्यार्थी सबके प्रति उदार होंगे, वे सहज ही समाज सेवा के लिए लायक होंगे। अहिंसा रूपी अग्नि में अहं भस्म हो गया होगा। उसका व्यवहार सबके लिए मानवोचित होगा। आचार्य महाप्रज्ञ ने गांधी के शिक्षा संबंधी विचारों को गति प्रदान की। इस सच्चाई को पकड़ा कि आज का व्यक्ति अहिंसा की बात को भूल-सा गया है। उपाय का प्रश्न; किस उपाय से अहिंसा के मूल्य को पुनः प्रस्थापित किया जाए महत्त्वपूर्ण है? आचार्य महाप्रज्ञ की हंस मनीषा ने उपाय खोजा कि बचपन से ही अहिंसा की आस्था उत्पन्न की जाए। शिक्षा के साथ इस संस्कार को पुष्ट किया जाएं कि 'सब जीव समान है।' दूसरा मनुष्य वैसा ही है जैसा मैं हूँ। और जैसा मैं हूँ, वैसा ही दूसरा मनुष्य है। इतनी आस्था उत्पन्न हो जाए तो मानवीय व्यवहार बदल जाए और यह बचपन में ज्यादा संभव है, क्योंकि उस अवस्था तक दूसरे संस्कार हावी नहीं होते, प्रभावी नहीं बनते।

महाप्रज्ञ बल पूर्वक कहते-जरूरत है दृष्टिकोण बदलें, चिंतन बदलें। शिक्षा परिवर्तन का सबसे बड़ा माध्यम है। शिक्षा को हम परिवर्तन के द्वारा कैसे ज्यादा से ज्यादा सार्थक और कार्यकारी बनाएं, जिससे प्रारंभ से ही विद्यार्थी में नैतिकता के संस्कार बनें।

प्रारंभ से ही शिक्षा के साथ अगर सीमाकरण का बोध कराया जाए, संयम का पाठ पढ़ाया जाए तो मस्तिष्क का विकास होगा, चरित्र का भी विकास होगा। दोनों का संतुलन बहुत जरूरी है। जीवन में चरित्र और ज्ञान-दोनों का योग होना चाहिए।[45] .....शिक्षा के साथ इसकी बहुत संगति बैठती है कि प्रारम्भ से ही बच्चों में वैसी अवस्थाओं का निर्माण किया जाए जिनकी अपेक्षा समाज रखता है। और जिन्हें हम सामाजिक मूल्य के रूप में विकसित करना चाहते हैं। शिक्षा का उद्देश्य था-व्यक्तित्व का निर्माण। आज की शिक्षा उस उद्देश्य को प्राप्त करने में सक्षम नहीं है। उच्च शिक्षा का पर्याप्त विकास होने के बावजूद, उसकी नई-नई शाखाएं (जो अतीत में नहीं थी) खोलने के बाद भी व्यक्ति की आपराधिक, पाश्विक प्रवृत्तियों में कोई अन्तर नहीं आया, वरन् उनमें बढ़ोतरी ही हुई है। इसकी तह में जायें तो शिक्षा व्यवस्था भी त्रुटिपूर्ण अनुभव होगी। हम विद्यार्थी को कभी भी अहिंसा का प्रशिक्षण नहीं देते, न ही उसे कभी शांति का प्रशिक्षण देते हैं। शिक्षा इसीलिए आज प्रश्नों के घेरे में हैं।

शिक्षा का परिणाम अच्छा आचार, अच्छा संस्कार नहीं आ रहा है, इसलिए परिणाम अपेक्षा के अनुसार नहीं आ रहा है। अच्छा बीज है-संतुलित ज्ञान। शरीर का ज्ञान, मन का ज्ञान और बुद्धि का ज्ञान। इनके संदर्भ में हमने बहुत विचार करने के पश्चात् जीवन विज्ञान का प्रकल्प दिया।[46] जिसमें शिक्षा की चतुष्पदी-आदर्श, उद्धेश्य, पद्धति और सामग्री पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया है।

शिक्षा का आदर्श है-स्थितप्रज्ञता। लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, निन्दा-प्रशंसा, मान-अपमान, जीवन-मरण आदि द्वन्द्वों की स्थिति में जिसकी प्रज्ञा समत्व की अनुभूति करने लग जाती है वह स्थितप्रज्ञ होता है।

शिक्षा का उद्देश्य है-सर्वांगीण व्यक्तित्व का विकास। उसके चार अंग हैं-शारीरिक विकास, बौद्धिक विकास, मानसिक विकास और भावनात्मक विकास।

पद्धति-सिद्धांत और प्रयोग-दोनों का संतुलन अपेक्षित है।

शिक्षा की सामग्री के चार महत्त्वपूर्ण अंग हैं-

- उद्देश्य की पूर्ति करने वाली पुस्तकें।

- उद्देश्य की दिशा में सहायता करने वाला शिक्षक।
- उद्देश्य की पूर्ति में सहायक वातावरण।
- उद्देश्य की पूर्ति में प्रेरक बनने वाले अभिभावक।

शिक्षा की यह चतुष्पदी अहिंसक वातावरण बनाने में सक्षम है।[47] इसके सम्यक् अनुशीलन से शिक्षा का वांछित ध्येय साकार बन सकता है। मनीषियों के विचारों में भले ही वैविध्य है पर उनका ध्येय समान रूप से शिक्षा द्वारा विद्यार्थी को परिपूर्ण बनाना है।

अखंड व्यक्तित्व निर्माण की आकांक्षा से गांधी ने शिक्षा का प्रारूप बनाया था। उनकी दृष्टि में मनुष्य न तो कोरी बुद्धि है, न स्थूल शरीर है और न केवल हृदय या आत्मा ही है। संपूर्ण मनुष्य के निर्माण के लिए तीनों के उचित और एकरस मेल की जरूरत है और यही शिक्षा की सच्ची व्यवस्था है। उनका स्पष्ट अभिप्राय था कि जब तक मस्तिष्क और शरीर का विकास साथ-साथ न हो और उसी परिमाण में आत्मा की जाग्रती न होती रहे, तब तक केवल बुद्धि के एकांगी विकास से कुछ विशेष लाभ नहीं होगा। आध्यात्मिक शिक्षा से मेरा आशय हृदय की तालीम से है। इसलिए मस्तिष्क का ठीक और चतुर्मुखी विकास तभी हो सकता है, जब वह बच्चे की शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियों की तालीम के साथ-साथ होता हो। ये सब एक और अविभाज्य हैं।[48] शिक्षा के अभिनव प्रारूप के जरिये राष्ट्रीय पैमाने पर क्रांति घटित करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने सार्थक प्रयत्न किये। अहमदाबाद में गुजरात विद्यापीठ की स्थापना करते समय (15-11-1920) गांधी ने कहा-इस महाविद्यालय की प्रतिष्ठा करने का उद्देश्य केवल विद्यादान नहीं है, बल्कि आजीविका की प्राप्ति के लिए साधन कर देना भी है। यों मैंने शिक्षा के क्षेत्र में ऐसा कोई बड़ा काम नहीं किया कि तुम्हें बता सकूं कि यह कार्य महान्-से-महान् है। यहाँ इस कार्य के लिए (अध्यापकों का) जो संगम हुआ है, वह तीर्थ-रूप है। यहाँ चरित्रवान् पुरुष जमा हुए हैं। सुन्दर सिन्धी, सुन्दर महाराष्ट्री, सुन्दर गुजराती लोगों का संगम हुआ है। विद्या का नहीं, चरित्र का चमत्कार बताकर आप स्वातंत्र्य दिलायेंगे। स्वराज्य का सुन्दर वृक्ष चरित्र का पानी पिलाने से, शुद्ध देवी बल से फूले-फलेगा।

विद्यार्थी तो परिस्थिति के दर्पण हैं। उनमें दंभ नहीं है, द्वेष नहीं, ढ़ोग नहीं। जैसे हैं, वैसे ही अपने को दिखाते हैं। यदि उनमें पुरुषार्थ नहीं, सत्य नहीं, ब्रह्मचर्य नहीं, अहिंसा नहीं, तो दोष उनका नहीं, माँ-बापों का, अध्यापकों का है। आचार्य का है, राजा का है।

इस विद्यालय की प्रतिष्ठा हम विद्या की दृष्टि से नहीं, बल्कि राष्ट्रीय दृष्टि से कर रहे हैं। विद्यार्थियों को बलवान् चरित्रवान् बनाने के लिए मेरा सारा प्रयत्न है। विद्यार्थियों से मेरा अनुरोध है कि मुझ पर तुम्हारी जितनी श्रद्धा है, उतनी ही श्रद्धा अपने अध्यापकों पर रखना। परन्तु यदि तुम अपने अध्यापकों को बलहीन पाओ तो उस समय तुम प्रह्लाद जैसी अग्नि से उस आचार्य को और उन अध्यापकों को भस्म कर डालना और अपना काम आगे बढ़ाना।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के समक्ष उन्होंने कहा-दूसरी विद्या मिले या न मिले, परन्तु इस वर्तमान विद्या को छोड़ो। यदि वर्तमान स्थिति के लिए सच्चा वैराग्य मेरे जैसा वैराग्य पैदा हुआ हो, यह लगता है कि स्वतन्त्रता के लिए कुछ भी विचार किये बिना इसका त्याग करना ही धर्म है। विद्यालय में बड़ी-से-बड़ी शिक्षा मिलती हो, सुविधाएं मिलती हों तो उनका भी भारत के लाभ के लिए बलिदान करने की जरूरत है।[49] स्पष्ट ध्वनित होता है कि उनकी दृष्टि में शिक्षा का दोहरा दायित्व था। एक तो विद्यार्थियों में नैतिक-चारित्रिक गुणों का बीज वपन करना दूसरा राष्ट्रीय

स्तर पर आजादी के लिए जन चेतना जागृत करना। इसी लक्ष्य से गांधी की शिक्षा सोच विभिन्न रूपों में प्रकट हुई। जैसे—स्त्री शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, आजीवन शिक्षा, धार्मिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा तथा उच्च शिक्षा आदि।

उनकी संपूर्ण शिक्षा-योजना में शिक्षा के दो प्रकारों का विशेष विवरण उपलब्ध होता है-बुनियादी शिक्षा तथा उच्च शिक्षा। 'बुनियादी शिक्षा' की बात गांधी ने 1935 में की। उसका आदि प्रयोग टॉलस्टॉय फार्म में हुआ था, जहां समस्त शिक्षा एक-न-एक शारीरिक श्रम के माध्यम से ही दी जाती थी। बुनियादी शिक्षा की पृष्ठभूमि में उनका सपना था कि स्वतन्त्र भारत में शिक्षा ऐसी चाहिए, जो विद्यार्थियों में परिश्रम के प्रति आदर की भावना पैदा करके उन्हें अपने पैरों पर खड़ा होने लायक बना सके। शिक्षा विषयक गांधी के अनुभव परक मौलिक विचार थे, दक्षिण अफ्रीका की फिनिक्स-बस्ती और टॉलस्टॉय फार्म में वे बच्चों के स्कूल चलाने में मदद कर चुके थे। उनका विश्वास दृढ़ हो चुका था कि स्कूलों में किताबी पढ़ाई पर आवश्यकता से अधिक जोर दिया जाता है और छात्रों के चरित्र-निर्माण एवं उन्हें हुनर सिखाने पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता।.....बुनियादी शिक्षा की यह योजना वर्धा-योजना के नाम से प्रसिद्ध है और जिस समिति ने उसे तैयार किया था उसके अध्यक्ष भारत के प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री डॉ. जाकिर हुसैन थे।

बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य

वर्धा योजना के आलोचकों के संदेह का निवारण करते हुए गांधी ने कहा-बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य छात्रों को कारीगर बनाना नहीं, बल्कि हस्त-कौशल और अनेक उपरकरणों के द्वारा शिक्षा देना है। गांधी ने इसे श्रममूलक शिक्षा कहा था।[50] शारीरिक श्रम के साथ उन्होंने बुद्धि के अन्य गुणों के विकास को नकारा नहीं। उनका कहना था 'उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पायी है, जिसके शरीर को ऐसी आदत डाली गयी है कि वह उसके वश में रहता है, जिसका शरीर चैन से और आसानी से सौंपा हुआ काम करता है। उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पायी है, जिसकी बुद्धि शुद्ध, शांत और न्यायदर्शी है।' बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य दस्तकारी के माध्यम से बालकों को शारीरिक, बौद्धिक और नैतिक विकास के साथ स्वावलम्बी बनाना है। बुनियादी शिक्षा के मुख्य सिद्धांत निम्न हैं-

- पूरी शिक्षा स्वावलम्बी होनी चाहिये। यानी, आखिर में पूँजी को छोड़कर अपना सारा खर्च उसे खुद देना चाहिए।
- इसमें आखिरी दर्जे तक हाथ का पूरा-पूरा उपयोग किया जाय। यानि, विद्यार्थी अपने हाथों से कोई न कोई उद्योग-धंधा आखिरी दर्जे तक करें।
- सारी तालीम विद्यार्थियों की प्रान्तीय भाषा द्वारा दी जानी चाहिये।
- इसमें साम्प्रदायिक धार्मिक शिक्षा के लिए कोई जगह नहीं होगी। लेकिन बुनियादी नैतिक तालीम के लिए काफी गुंजाइश होगी।
- यह तालीम, फिर उसे बच्चे लें या बड़े, औरतें ले या मर्द, विद्यार्थियों के घरों में पहुंचेगी।
- चूँकि इस तालीम को पाने वाले लाखों-करोड़ों विद्यार्थी अपने आपको सारे हिन्दुस्तान के नागरिक समझेंगे, इसलिए उन्हें एक आंतर-प्रांतीय भाषा सीखनी होगी। सारे देश की यह एक भाषा नागरी या उर्दू में लिखी जानेवाली हिन्दुस्तानी ही हो सकती है। इसलिए विद्यार्थियों को दोनों लिपियां अच्छी तरह सीखनी होंगी।[51]

शिक्षा का आश्रमी आदर्श नवीनता और प्राचीनता के संगम का प्रतीक है। शिक्षा के बारे में गांधी की जो मान्यतायें थीं उनका चित्रण उन्होंने अपनी भाषा में किया है।*

तालीम की महत्त्वपूर्ण निष्पत्तियाँ होगीं—आत्म-निर्भरता और श्रमनिष्ठा का मूल्यबोध। गांधी का शिक्षा संबंधी चिंतन बहुआयामी था। उसमें धार्मिक शिक्षण का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है-'अगर हिन्दुस्तान को आध्यात्मिकता का दिवाला नहीं निकालना है, तो उसे धार्मिक शिक्षा को भी विषयों के शिक्षण के बराबर ही महत्त्व देना पड़ेगा।' उनका अभिमत था कि धार्मिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में अपने सिवा दूसरे धर्मों के सिद्धान्तों का अध्ययन भी शामिल होना चाहिये। इसके लिए विद्यार्थियों को ऐसी तालीम दी जानी चाहिये, जिससे वे संसार के विभिन्न महान धर्मों के सिद्धान्तों को आदर और उदारतापूर्ण सहनशीलता की भावना रखकर समझने और उनकी कदर करने की आदत डालें। इससे आध्यात्मिक निष्ठा दृढ़ होगी और स्वीकृत धर्म को गहराई से समझने की दृष्टि पैदा होगी। बापू के विचारों को वर्तमान के संदर्भ में आचार्य महाप्रज्ञ ने नया आयाम देते हुए जीवन-विज्ञान का अभिनव प्रकल्प दिया। जो शिक्षा को सर्वांगीण और समाधायक बनाने की क्षमता रखता है।

जीवन-विज्ञान शिक्षा के क्षेत्र में अहिंसा का प्रयोग है। शिक्षा के साथ-साथ विद्यार्थी में अहिंसा का संस्कार निर्मित होना चाहिए। यदि बौद्धिकता के साथ अहिंसा की चेतना नहीं जागती है तो उसका सब से पहले दुरूपयोग अपने प्रति होता है। इस स्थिति से उबारने की प्रविधि का नाम है जीवन-विज्ञान। यह मस्तिष्क को प्रशिक्षित करने की प्रयोग पद्धति है। इसके द्वारा पुरानी आदतों को बदला जा सकता है। उनमें कांटछांट की जा सकती है और नई आदतों का निर्माण किया जा सकता है। इससे ऐसी पीढ़ी का निर्माण हो सकता है, जिसका अपने आवेशों पर नियंत्रण होता है, मानसिक एकाग्रता, मानसिक संतुलन और संकल्पशक्ति का विकास होता है। चरित्र का विकास उसका फलित है, इसलिए एक शब्द में कहा जा सकता है-चरित्रवान पीढ़ी का निर्माण। लक्ष्य की पूर्ति में मुख्य रूप से चेतना के रूपान्तरण पर बल दिया गया। जब तक मस्तिष्क का प्रशिक्षण नहीं होता, तब तक चेतना का रूपान्तरण घटित नहीं होता। हिंसा का मूल उपादान है व्यक्ति का मस्तिष्क। उसे बदले बिना अहिंसा की स्थापना नहीं की जा सकती। जब तक मस्तिष्क को प्रशिक्षित नहीं किया जाता तब तक अहिंसक समाज रचना की बात सार्थक नहीं हो सकती। न ही राष्ट्रीय एकता का सपना साकार हो सकता है। जीवन विज्ञान मस्तिष्क प्रशिक्षण का अभिनव प्रयोग है। इसके सार्थक परिणाम निकले हैं।

मानव मस्तिष्क भावों का उत्पत्ति केन्द्र है। रूसी वैज्ञानिक प्रोफेसर आरोन बेल्कीन ने बताया-हमारे मस्तिष्क में तीन सौ 'न्यूरोपेप्टाइड' हार्मोन्स पैदा होते हैं। बेल्कीन की धारणा है-प्रत्येक विचार के साथ एक न्यूरो पेप्टाइड हार्मोन्स पैदा हो जाता है। इसका अर्थ है-जितने विचार हैं उतने ही न्यूरो पेप्टाइड हार्मोन्स बनते हैं। बेल्कीन ने यह मान लिया-जैसी अन्तःस्रावी ग्रंथियां होती हैं वैसी ही मस्तिष्क एक बहुत बड़ी अन्तःस्रावी ग्रन्थि है, जो इतने रसायनों को पैदा करता है। वे रसायन हमें प्रभावित करते है।[53] महाप्रज्ञ ने बताया हमारे मस्तिष्क के दो पटल हैं-'दायां पटल और बायां। जो बायां पटल है वह भाषा, गणित, तर्क आदि के लिए जिम्मेवार है। जो दायां पटल है, वह अनुशासन, चरित्र, अध्यात्म, अन्तर्दृष्टि आदि के लिए जिम्मेदार है।' दोनों पटलों के समुचित विकास से वांछित व्यक्तित्व का निर्माण किया जा सकता है।

* परिशिष्ट : 3

'ट्रांसफार्मेशन ऑफ कांशियसनेस' चेतना का रूपांतरण कैसे हो? यह मुख्य बात हमारे सामने रहे। जीवन-विज्ञान का प्रशिक्षण इसे समाहित करने का उपक्रम बतलाता है। हमारी अंतःस्त्रावी ग्रंथियां जो हमारे भाव और व्यवहार को प्रभावित करती है, उन्हें यौगिक प्रयोगों द्वारा संतुलित बनाया जाता है। हमारा नाड़ीतंत्र या नर्वस सिस्टम भी हमारे भाव और व्यवहार को, चरित्र को प्रभावित करता है। जिसका पैरा सिंपेथेटिक नर्वस सिस्टम ताकतवर है, वह विनीत भद्र और अनुशासित रहेगा। जिसका सिंपेथेटिक नर्वस सिस्टम ज्यादा ऐक्टिव हैं, उद्दंड, उच्छृंखल और अविनीत होगा। इन पर प्रयोगों द्वारा नियंत्रण स्थापित किया जाता है।

मंतव्य को अधिक स्पष्ट करते हुए महाप्रज्ञ ने कहा-हमारे मस्तिष्क में बहुत सारे प्रोटीन्स बनते हैं। इन्हें न्यूरो ट्रांसमीटर कहा जाता है। ये न्यूरो ट्रांसमीटर हमारे व्यवहार और आचरण का नियमन करते हैं। परिवार में सब बच्चे हैं। कुछ उद्दण्ड, उपद्रवी और शैतान प्रकृति के होते हैं। सभी को एक जैसी शिक्षा दी जाती है। किन्तु सब उसका पालन समान रूप से नहीं करते। उसका कारण यही है कि उनके भीतर बन रहे प्रोटीन में अंतर है। शरीर विज्ञान की दृष्टि से उनके अंतःस्त्रावी ग्रंथियों के स्त्राव में जरूर कोई असमानता है, कोई नाड़ीतंत्रीय असंतुलन है।.....शिक्षा शास्त्रियों का कर्त्तव्य है कि वे शिक्षा नीति का निर्धारण करते समय सभी पक्षों पर समान रूप से विचार करें, उस पर ध्यान दें। सर्वांगीण दृष्टि से विचार न करने का परिणाम यह है कि इतनी ऊँची शिक्षा के बावजूद जो स्तर होना चाहिए, वह देखने में नहीं आ रहा है। पदोन्नति और दूसरे मुद्दों को लेकर बड़े-बड़े वैज्ञानिक आत्महत्या जैसा कदम उठा लेते हैं। परीक्षा में अनुतीर्ण विद्यार्थी ने ट्रेन के आगे कूदकर आत्महत्या कर ली। ऐसा क्यों होता है। इसका एक मात्र कारण यही है कि संवेगों पर नियंत्रण नहीं है। प्रतिकूल परिस्थिति को झेलने की क्षमता नहीं है। यह कला आती है, अंतश्चेतना के जागरण से, भावधारा के परिष्कार से।[54]

आन्तरिक रसायन हमारे भाव और व्यवहार के लिए उत्तरदायी है। अंतःस्रावी रसायन (हार्मोन) नाड़ीतंत्र के साथ अन्तक्रिया करते हैं। वे नाड़ीतंत्र के अनेक कार्यों का नियमन करते हैं। मुख्यतः नाड़ीतंत्र के स्वायत्त नाड़ी विभाग पर वे प्रभाव डालते हैं। अत्यधिक दबावपूर्ण परिस्थितियों से तनाव बढ़ता है, तनाव की उग्र स्थिति से अंतस्रावी ग्रंथितंत्र पर अतिरिक्त भार पड़ता है। अनुकम्पी और परानुकम्पी नाड़ीतंत्र का इससे संतुलन बिगड़ जाता है। इस स्थिति से अनुकम्पी नाड़ीतंत्र का प्रभुत्व बढ़ जाता है। शिक्षित और विद्वान लोगों में भी निषेधात्मक भावों की सक्रियता का यह एक प्रमुख कारण बनता है। अन्तस्रावी ग्रंथितंत्र के संतुलन से अनुकम्पी और परानुकम्पी नाड़ीतंत्र का भी संतुलन होता है। संतुलन की यह स्थिति व्यक्ति की आंतरिक समस्याओं का संतोषजनक समाधान करती है। जीवन-विज्ञान इस दिशा में एक अभिनव उपक्रम है। वैज्ञानिकों ने कुछ नई खोजें भी की हैं। उनके अनुसार नाड़ीतंत्र, ग्रंथीतंत्र और जैव रसायन हिंसा और अहिंसा के बीजों को अंकुरित करने में निमित्त बनते हैं। सामान्य धारणा यह है-साम्प्रदायिक कट्टरता मस्तिष्कीय विकार अथवा मस्तिष्कीय रोग है। मस्तिष्क विद्या के अनुसार मस्तिष्क की तीन परते हैं-

• लिम्बिक सिस्टम • रेप्टेलियन मस्तिष्क • निओ-कार्टेक्स[55]

इनका उचित नियंत्रण, प्रशिक्षण और विकास विद्यार्थी की अहिंसक चेतना के जागरण में योगभूत बनता है।

महाप्रज्ञ ने बताया हमारे मस्तिष्क में अनेक प्रकोष्ठ हैं। देखना यह है कि किसका स्विच ऑन कर रहे हैं? क्रूरता का स्विच ऑन हो गया तो आदमी शोषण करने लगेगा। यदि करुणा, अहिंसा, मैत्री का स्विच ऑन हो गया तो मनुष्य दुनिया का श्रेष्ठ प्राणी बन जाएगा। आज अच्छे आदमी की जरूरत है। अच्छा आदमी होना मुश्किल है। जिसके हृदय में अहिंसा, करुणा, मैत्री और प्रेम नहीं है, वह धनवान या राजनेता तो हो सकता है, किन्तु अच्छा आदमी नहीं हो सकता।

अहिंसा प्रशिक्षण की अनिवार्यता प्रकट की-जब तक शिक्षा के साथ प्रारंभ से ही बच्चों में अहिंसा के संस्कार और आवेश नियंत्रण की विधि नहीं सिखाई जाएगी, तब तक आतंकवाद को रोकने की बात सार्थक नहीं होगी। आतंकवाद को रोकने के लिए आज अहिंसा प्रशिक्षण की सर्वाधिक अपेक्षा है।[56]

जीवन-विज्ञान का उद्देश्य

जीवन-विज्ञान के मुख्य उद्देश्य हैं-

- स्वस्थ व्यक्तित्व का निर्माण, जिसमें शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एवं सामाजिक विकास का संतुलन हो।
- नए समाज का निर्माण-हिंसा, शोषण एवं अनैतिकता से मुक्त समाज का निर्माण।
- नई पीढ़ी का निर्माण-ऐसी पीढ़ी का निर्माण जो आध्यात्मिक भी हो एवं वैज्ञानिक भी। ऐसे आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण।[57] इन उद्देश्यों की संपूर्ति हेतु जीवन-विज्ञान के सम्पूर्ण पाठ्यक्रम और प्रशिक्षण के लिए प्रयोग प्रस्तुत किए हैं। सैद्धांतिक प्रशिक्षण के साथ-साथ प्रायोगिक प्रशिक्षण और नियमित अभ्यास इसके महत्त्वपूर्ण पहलू है। विद्यार्थी के जीवन में परिवर्तन घटित हो इसके लिए अनेक प्रयोग निर्धारित किए गये हैं। उनका सचित्र अवलोकन जीवन-विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में किया जा सकता है।

जीवन-विज्ञान प्रयोग-प्रशिक्षण में शिक्षा के साथ अहिंसा का विकास निहित है। अहिंसा का मुख्य तत्त्व है-स्व-नियंत्रण, अपने आप पर नियंत्रण। अपने आवेशों पर नियंत्रण किए बिना अहिंसा की कल्पना नहीं की जा सकती। हमारे अनियन्त्रित आवेश ही हमारी वृत्तियों को हिंसक बनाते हैं। जीवन-विज्ञान का प्रयोग स्व-नियंत्रण का प्रयोग है, इसके द्वारा व्यक्ति अपने आवेगों पर नियंत्रण प्राप्त करने की कला सीखता है। नियंत्रण का फलित है-अपने प्रति अहिंसक होना।

अहिंसा के सिद्धांत को जीवन-विज्ञान के संदर्भ में एक नया मोड़ दिया गया-तुम दूसरे की बात छोड़ो, अपने प्रति अहिंसक बनों; अगर तुम अपने प्रति अहिंसक बनोंगे तो इसका पहला परिणाम होगा-तुम आत्महत्या से बच जाओगे। जिसने अपने आवेगों पर नियंत्रण करना सीख लिया, वह अपने प्रति अहिंसक बन गया, वह दूसरों के प्रति भी अहिंसक बन गया। जीवन विज्ञान भीतर की दुनिया से परिचय कराता है। भीतर की दुनिया में जाकर हम अपने भावों का परिष्कार कैसे करें, यह सिखाता है। यह अच्छी आदतों के निर्माण में सहायक है। हम केवल दूसरों के प्रति उसे अहिंसक बनाएंगे तो वह बन नहीं पाएगा। क्योंकि भीतर में तो आग लग रही है, भट्टी जल रही है और बाहर से शांति की बात करें, यह कैसे सम्भव है? पहले अपने भीतर की आग को शांत करना है, उस भट्टी को बुझाना है। वह बुझेगी तो अपने आप शांति हो जाएगी। शांति के लिए अलग से प्रयत्न नहीं करना पड़ेगा।

शिक्षा के सामने वैयक्तिक परिवर्तन का मौलिक मुद्दा है। 'आदमी परिस्थिति की उपज है'

सूत्र ने बहुत भ्रांतियां पैदा की हैं। भारतीय चिंतन का सूत्र है-जैसी आस्था, जैसा संकल्प होता है, वैसा आदमी होता है। जीवन-विज्ञान का उपक्रम आस्था उत्पत्ति का स्रोत है।

प्रश्न है हिंसा के संस्कार का। यह बड़ी बाधा है कि हिंसा के अपने संस्कार हैं। हम परिवर्तन की, बदलने की बात सोचते हैं किन्तु प्रत्येक व्यक्ति के अपने-अपने कर्म जनित संस्कार होते हैं। फिर भी हम निराश न हों। हमारी अपनी आस्था यह होनी चाहिए कि प्रयोग के द्वारा, प्रयत्न के द्वारा, अभ्यास के द्वारा-संस्कार को भी परिष्कृत किया जा सकता है।

अपेक्षा है-एक नये संकल्प व नयी आस्था के निर्माण की और वह बचपन से ही, शिक्षा के क्षेत्र में हो, धर्म के क्षेत्र में हो और अध्यापक या धर्मगुरु के द्वारा हो। शिक्षा के क्षेत्र में यदि आस्था के कुछ बीज बोने की बात सोची जाए तो शायद सामाजिक मूल्यों के विकास की बात आगे बढ़ सकती है, उसका सुपरिणाम आ सकता है।[58] यह मौलिक चिंतन शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन की नई संभावनाओं को उजागर करता है। उनका यह विचार किससे-कैसे प्रभावित होकर उद्‌भूत हुआ कहना कठिन है। आचार्य महाप्रज्ञ ने अपने शिक्षा संबंधी विचारों में अब्राह्म लिंकन द्वारा अपने पुत्र के अध्यापक को लिखा गया पत्र उद्धृत किया है।

अब्राह्म लिंकन ने चाहा—मेरा पुत्र स्मृति संपन्न होने के साथ-साथ बुद्धिमान और प्रज्ञावान भी बने। उन्होंने अपने पुत्र की शिक्षा के संबंध में अध्यापक वर्ग को जो पत्र लिखा, उसमें स्थितप्रज्ञ का संपूर्ण दर्शन समाहित है। वह शिक्षा जगत् का एक ऐतिहासिक और महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ है। पत्र के बोल हैं—

'मेरे पुत्र को शिक्षा ग्रहण करनी है। मैं जानता हूं कि प्रत्येक व्यक्ति सही नागरिक नहीं होता है और न ही सब छोटे से बड़े होकर सत्य के पुजारी होते हैं किन्तु कृपया मेरे बच्चे को ऐसी शिक्षा दीजिएगा कि वह प्रत्येक दुष्ट व्यक्ति के लिए विवेकवान संघर्षवादी नायक बने। मेरे बच्चे को यह भी बतलाइयेगा कि जहां शत्रु होते हैं, वहां मित्र भी हैं। मैं जानता हूं कि उसे इस तरह की शिक्षा प्राप्त करने में समय लगेगा। मेहनत से कमाया हुआ एक डॉलर, पांच पौंड से अधिक होता है। उसे जीवन में हारने और जीतने के गौरव को सहर्ष स्वीकार करने की भी शिक्षा दीजियेगा। उसे ईर्ष्या से दूर रखने का प्रयास कीजिए। कृपया उसे मौन होकर हंसने के रहस्य को सिखाइयेगा, उसे किताबों के आश्चर्यमय जगत् से परिचित कराइयेगा और पहाड़ों पर खिले हुए फूल के चिरन्तन रहस्य को भी बतलाइयेगा। उसे यह सिखाइयेगा कि नकल करने से सम्मानपूर्वक असफल होना अधिक गरिमामय है। उसे बतलाइयेगा कि असफलता के कारण जो आँसू टपके उसमें कोई लज्जा नहीं है-उसे यह भी बतलाइयेगा-कि चाहे दुनिया उसे गलत समझे, फिर भी अपने ऊपर भरोसा रखे। उसे भद्र लोगों के साथ भद्रता और दुष्टों के साथ सख्ती से पेश आना चाहिए। मेरे पुत्र को बराबर बताते रहियेगा कि वह भीड़ का एक आदमी न बने। उसे बतलाइयेगा कि वह सबकी तो सुने लेकिन सत्य की चलनी से छानकर उसे सुने और देखे फिर ऐसे सत्य में जो भलाई हो, उसे ही ग्रहण करे।

यदि आपके लिए संभव हो तो उसे दुःख के समय हंसना और सुख-दुःख बोध से ऊपर उठने की सीख दीजिएगा। कृपया उसे अधिक मधुरता से बचने को कहियेगा। उसे यह भी बतलाइयेगा कि अपनी बुद्धि एवं अपना पसीना बेचते समय सबसे अधिक कीमत लगाने वाले को ही बेचे, किन्तु अपने हृदय और आत्मा के मूल्य को भी समझे।

लोहा आग में जलने से मजबूत होता है, इसलिए उसे स्नेह का ताप दीजिए, केवल लाड़ नहीं।

उसे धैर्यवान् होने का साहस दीजिए और शौर्य के लिए धैर्य की शिक्षा दीजिए। उसे अपने कृत्यों में गरिमामय आस्था बोध का पाठ पढ़ाइयेगा, तभी वह मानवता की गरिमा में विश्वास करेगा।'[59]

समत्व दृष्टि से देखा जाये तो पत्र के आशय में गांधी की बुनियादी शिक्षा एवं महाप्रज्ञ के जीवन-विज्ञान आयाम का स्पष्ट निदर्शन है।

बुनियादी शिक्षा में रोजगार मूलक दक्षता पर विशेष रूप से बल दिया गया है। महाप्रज्ञ की स्पष्ट अनुशंसा उनके मंतव्य में जाहिर है-आजकल कुछ ऐसा हो गया कि बौद्धिक प्रशिक्षण ज्यादा दिया जाने लगा है और रोजगार प्रशिक्षण की बात गौण होती जा रही है। पुराने जमाने में अपरा विद्या के अंतर्गत रोजगार की बात मुख्य रूप से शामिल थी। अनिवार्य रूप से रोजगार का प्रशिक्षण दिया जाता था। अब वह क्रम भंग हुआ है। शिक्षा के साथ रोजगार की कला का प्रशिक्षण आवश्यक है। इस विषय में महाप्रज्ञ जी का स्पष्ट कथन है—मैं उस विश्वविद्यालय को महत्व नहीं देता जहां शिक्षा की सैंकड़ों ब्रांचेज हैं किंतु रोजगार और चरित्र का शिक्षण नहीं मिलता। विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त कर निकलने वाला परावलंबी बना रहा तो फिर उस विश्वविद्यालयी शिक्षा का क्या औचित्य?[60] कथन के संदर्भ में जाहिर है कि महाप्रज्ञ ने शिक्षा के साथ रोजगार एवं चरित्र विकास को महत्व दिया है।

मानव अस्तित्व और विकास हेतु अहिंसा और शिक्षा के प्रश्न को एक साथ देखना होगा। उन्होंने कहा शिक्षा और अहिंसा में एक गहन सम्बन्ध को परखना होगा। जिससे अस्तित्व और विकास-दोनों की परम्परा सुरक्षित रह सके। इस संदर्भ में मूल्यपरक शिक्षा अथवा जीवन-विज्ञान वर्तमान युग की अनिवार्यता है। अहिंसा सर्वोपरि मूल्य है। अहिंसा के प्रतिष्ठित होने पर शेष सब मूल्य प्रतिष्ठित हो जाते हैं। अहिंसा के अभाव में शेष सब मूल्य विघटित हो जाते हैं। इस सच्चाई को शिक्षा के साथ जोड़कर महाप्रज्ञ ने समाधान की नई मिसाल कायम की है। अहिंसा के क्षेत्र में अनेक प्रयोग चल रहे हैं किन्तु वे उनकी दृष्टि में व्यावहारिक नहीं हैं वे मात्र अहिंसा की व्यावहारिक प्रयोग भूमियां हैं। जब तक शिक्षा के साथ अहिंसा के प्रशिक्षण की बात नहीं जुड़ेगी तब तक इसका मौलिक स्वरूप सामने नहीं आ सकता। अहिंसा के प्रशिक्षण का सूत्र है-हिंसा के बीजों को प्रसुप्त बनाकर अहिंसा के बीजों को जागृत करना। अहिंसा के बीज बोने के लिए प्रशिक्षण बहुत ही आवश्यक है।[61] सामाजिक स्वास्थ्य, वैयक्तिक स्वास्थ्य और मानसिक शांति के लिए अहिंसा का प्रशिक्षण सर्वाधिक उपयोगी है। इसका समायोजन स्कूली शिक्षा के साथ महत्त्वपूर्ण है।

लक्ष्य की संपूर्ति में आचार्य महाप्रज्ञ ने जीवन-विज्ञान के प्रयोगात्मक पक्ष में प्रेक्षाध्यान, आसन प्राणायाम के साथ-साथ अनुप्रेक्षाओं पर विशेष बल दिया है। अनुप्रेक्षा को वैज्ञानिक भाषा में Auto-Suggestion कहा जा सकता है। दूसरे के द्वारा दिया गया Suggestion चेतन मन तक ही पहुचता है पर अवचेतन मन तक पहुंचने के लिए Auto-Suggestion काफी प्रभावकारी रहता है। जहां-जहां ये प्रयोग चल रहे हैं वहां बहुत बड़ा परिवर्तन हो रहा है तथा प्रेक्षाध्यान, जीवन-विज्ञान की मांग बढ़ती जा रही है। हमें यह भी पता चलता है कि जिन स्कूलों में नियमित रूप से जीवन-विज्ञान का प्रयोग किया जा रहा है वहाँ के Result में काफी परिवर्तन आया है।[62] महाप्रज्ञ ने संकल्प शक्ति और भावनात्मक विकास के प्रयोग जोड़कर नैतिक शिक्षा एवं अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण को नया आयाम दिया है।

आचार्य महाप्रज्ञ ने बलपूर्वक कहा-शिक्षा के साथ संयम के पाठ को अनिवार्य रूप से जोड़ा

जाना चाहिए। जीवन-विज्ञान के द्वारा उस संयम या संकल्प शक्ति को जगाने के प्रयोग कराए जाते हैं। केवल पाठ नहीं पढ़ाया जाता, उसके प्रयोग कराए जाते हैं। उन प्रयोगों से सुप्त शक्तियां जागृत हो जाती हैं। हर विद्यार्थी को यह अनुभव करना चाहिए कि मेरे भीतर शक्ति का अक्षय कोश है। 'मैं कमजोर नहीं हूँ, मैं गरीब नहीं हूँ, मैं दरिद्र नहीं हूँ।' शक्ति जागरण का यह महामंत्र है।[63] प्रकट रूप से शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थी में शक्ति जागरण की पर्याप्त संभावनाओं को भाँपा हैं। वे कहते विद्यालय बालक को न केवल श्रुत संपन्न ही बनाये अपितु शील संपन्न भी बनाये। विद्यालयों के लिए एक वाक्य बन जाए-श्रुत संपन्न बनोः शील संपन्न बनों। 'कोरे श्रुत संपन्न नहीं, कोरे विद्वान और ज्ञानी नहीं, साथ में शील संपन्न भी बनों।' इस दिशा में प्रयास और सफलता का नाम है जीवन-विज्ञान।

एल. रॉन हबर्ड द्वारा प्रतिपादित 'साइंटोलोलॉजी' साइंस ऑफ लाइफ यानी जीवन का विज्ञान अथवा जीने का विज्ञान नैतिक मूल्यों के साथ व्यावहारिक ज्ञान पर बल देता है और जीवन की विभिन्न परिस्थितियों से जूझने और समाधान के व्यावहारिक समाधान सुझाता है। जीवन-विज्ञान की प्रविधि इससे सर्वथा मौलिक है। इसमें सैद्धांतिक ज्ञान के साथ प्रयोगों के द्वारा अखण्ड व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया बतलाई जाती है। विशेष रूप से इसमें बालक के भाव जगत को भावित कर आवेग और आवेश पर नियंत्रण स्थापित करने की शक्ति पैदा की जाती है। जीवन-विज्ञान से जुड़ने के बाद विद्यार्थी अपने में सकारात्मक बदलाव महसूस करते हैं। यह आत्मविश्वास, समझ, ईमानदारी, नैतिकता, प्रसन्नता और सफलता पाने के उपायों पर बेहतर ढंग से केन्द्रित होने की क्षमता प्रदान करता है।

जीवन-विज्ञान का कार्यक्रम एक त्रिकोणात्मक अभियान है—अभिभावक, शिक्षक और विद्यार्थी को भावित करता है।

शिक्षण की इस अभिनव प्रविधि के संबंध में आचार्य महाप्रज्ञ ने बतलाया-जीवन-विज्ञान के रूप में हम इस दिशा में जो प्रयत्न कर रहे हैं, उसमें राज्य सरकारें अपनी पूरी रूचि दिखा रही हैं। जीवन-विज्ञान जगत में बहुत व्यापक बन रहा है, लोकप्रिय हो रहा है। आज पूरे कर्नाटक में दो लाख शिक्षकों को जीवन-विज्ञान की ट्रेनिंग दी जा रही है। कर्नाटक सरकार जीवन-विज्ञान के प्रयोगों की सी. डी. बनवाकर उसे अपने राज्य के हर स्कूल को भेज रही है।[64]

प्रसंगतः उन्होंने कहा—'आज मैं कह सकता हूं कि जीवन-विज्ञान के प्रयोगों ने परिणाम दिखाया है। इसीलिए आज देश के कई प्रांतो ने अपने स्कूलों में इसे लागू किया है। पूरे आंकड़ों के आधार पर कहा जा सकता है कि आज चालीस-पैंतालीस लाख विद्यार्थी इस प्रयोग से लाभान्वित हो रहे हैं। लाखों शिक्षक अणुव्रत शिक्षक संसद के साथ जुड़कर, उसके सदस्य बनकर जीवन विज्ञान के काम को आगे बढ़ा रहे हैं, उसे व्यापक बनाने में अपना सहयोग दे रहे हैं। एक बात में यहाँ और स्पष्ट कर दूँ कि जीवन-विज्ञान और अहिंसा प्रशिक्षण के हमारे अस्सी प्रतिशत कार्यकर्ता अजैन हैं। नक्सली हिंसा से प्रभावित क्षेत्रों जैसे—बिहार, झारखंड, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ में जीवन-विज्ञान का सघन कार्यक्रम चल रहा है। अहिंसा के कार्यकर्ता इन क्षेत्रों में हिंसक गतिविधियों में संलग्न युवकों से संपर्क कर उन्हें प्रशिक्षण कार्यक्रम के नजदीक ला रहे हैं।'[65] अकेले बोकारों की पचास स्कूलों में जीवन-विज्ञान का शिक्षण-प्रशिक्षण इसकी उपयोगिता का सबूत है। भीलवाड़ा, ऋषिकेश में जीवन विज्ञान का प्रभावी शिक्षण चल रहा है।

जीवन-विज्ञान शिक्षण-प्रशिक्षण आदर्श व्यक्तित्व निर्माण की संकल्पना को साकार बनाता है। जिसके मुख्य तीन घटक हैं–

- एक स्वस्थ, शांत और संतुलित जीवन जीने के लिए पहली बात है नियंत्रण की क्षमता।
- ज्ञान की क्षमता, ज्ञान में उसके सारे पक्ष आ जाते हैं–समझ, अंडरस्टेंडिंग , अवधारणा आदि-आदि।
- आनन्द की अनुभूति।[66]

ये तीनों बातें बौद्धिक विकास के साथ नहीं हो तो जीवन खतरनाक बन जाता है। जीवन-विज्ञान इस खतरे को टालने वाला रेडार है। इसके प्रयोग से विद्यार्थियों में न केवल इंटेलीजेंसी का ही विकास होता है अपितु इमोशनल इंटेलीजेंसी का विकास भी होता है। अंतर्दृष्टि के जागरण की विधा हस्तगत होती है। परिणाम स्वरूप जीवन-विज्ञान के शिक्षण-प्रशिक्षण से विद्यार्थियों में अहिंसा, मानवता और नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा होती है। जीवन-विज्ञान महाप्रज्ञ की शिक्षा जगत् को अनूठी देन है। इसके जरिये वे शिक्षा जगत् में नई क्रान्ति के जनक कहलाते हैं। जीवन-विज्ञान का पूरा पाठ्यक्रम तैयार है जो राजधानी दिल्ली सहित देश के 15 राज्यों में कोर्स में स्वीकृत हो चुका है।

दोनों मनीषियों ने व्यक्ति-विषयक अहिंसा का जो प्रारूप, प्रक्रिया प्रस्तुत की वह मौलिक है। विचारों में समानता एवं वैशिष्ट्य की युति है। व्यक्ति की अहिंसक चेतना के जागरण पर समान रूप से बल दिया है। प्रविधि में वैशिष्ट्य है गांधी ने आत्म निर्भरता के लिए श्रम-प्रधान, बुनियादी शिक्षा पद्धति का सिंहनाद किया क्योंकि भारतीय स्वतंत्रता के लिए वह अनिवार्य था। वर्तमान के संदर्भ में स्वतंत्र भारत के बालकों में नैतिक-चारित्रिक उत्थान हेतु आचार्य महाप्रज्ञ ने जीवन-विज्ञान के प्रशिक्षण का सूत्रपात किया हैं। जब तक विद्यार्थी का अपने संवेगों-आवेगों पर नियंत्रण नहीं होता आदर्श व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का सपना साकार नहीं हो सकता। संतुलित एवं अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण हेतु दोनों मनीषियों के विचारों का समन्वित प्रयोग नयी संभावनाओं को उजागर करने में महत्वपूर्ण भूमिका रखता है।

अहिंसा की प्रयोगशाला-परिवार

मानव जीवन संबंधों के सहारे अस्तित्ववान और विकस्वर बनता है। संबंधों की मधुरिमा व्यक्तित्व निर्माण का अहं घटक है। व्यक्ति सुखी जीवन का सपना देखता है, पर उसको साकार वही कर सकता है जिसने अपने इर्द-गिर्द के वातावरण को अहिंसा की परिमल से महाकाया है। घर-आंगन का पारिवारिक माहौल अहिंसा की परिमल से सुवासित हो तो वही व्यक्ति के लिए देवालय, जिनालय और शिवालय बन जाता है। व्यक्ति की जीवन बगिया को सरसाने वाला घटक है परिवार। उसका सौहार्दमय-प्रेमपूर्ण वातावरण व्यक्ति की मानसिक शांति का सेतु बनता है। अहिंसा के व्यापक संदर्भ की पहली प्रयोगशाला परिवार है। महात्मा गांधी, आचार्य महाप्रज्ञ ने अहिंसा के विशद् चिंतन की पृष्ठभूमि में पारिवारिक अहिंसा के पहलू को नजर अंदाज नहीं किया। मनीषियों के इस विषय में सारगर्भित विचार देखे जाते हैं।

'अहिंसा का अर्थ है प्रेम का समुद्र, वैरभाव का सर्वथा त्याग' इस विराट् स्वरूपा अहिंसा का प्रथम प्रयोग पारिवारिक परिवेश से शुरू होता है। इस संदर्भ में गांधी के विचार मौलिक हैं। उनका यह मानना था कि जहां व्यक्ति सुख-दुख का अधिकांश समय बिताता है उस परिवार का वातावरण तो सौहार्दपूर्ण होना ही चाहिए। यह तभी संभव है जब अहिंसा का प्रयोग घर-परिवार में किया जाये। 'अहिंसा की बारहखड़ी तो कुटुम्ब में ही सीखी जा सकती है। अगर हम यहाँ उत्तीर्ण हो गये, तो फिर सब क्षेत्रों में उत्तीर्ण हो सकेंगे, यह मैं अनुभव से कह सकता हूँ। क्योंकि अहिंसक मनुष्य के लिये तो सारा जगत् एक कुटुम्ब है।'[67] इस कथन में अनुभूति का आलोक है। प्रारम्भिक जीवन में गांधी अपनी अर्धांगिनी कस्तूरबा के प्रति बड़े कठोर थे पर, जैसे-जैसे उन्होंने अहिंसा के अर्थ गाम्भीर्य में अवगाहन किया तब अपनी इस कमजोरी का अनुभव हुआ और कस्तूरबा के प्रति अपना रवैया अहिंसक बनाया। इससे उनका दांपत्य जीवन सहज बना। साथियों को भी इसकी प्रेरणा दी और उन्हें अपने प्रयत्न में सफलता भी मिली। इन विचारों को गति देने वाला आचार्य महाप्रज्ञ का अभिमत है।

परिवार वस्तुतः अहिंसा का प्रयोग स्थल है। अकेले में अहिंसा का प्रयोग नहीं होता। अहिंसा का प्रयोग होता है समूह में। जहाँ एक व्यक्ति हो वहां हिंसा और अहिंसा का प्रश्न व्यवहार के धरातल पर उठता ही नहीं। अंतर्जगत में हो सकता है, व्यवहार में नहीं।

परिवार एक छोटी-सी इकाई है। वह अहिंसा की सुन्दर प्रयोगस्थली बन सकती है। यदि अहिंसा का भाव परिवार में नहीं पनपता तो साथ रहने की बात ही नहीं आती। दस, बीस या पचास आदमी एक साथ रहते हैं, एक होकर रहते हैं, एक परिवार बनाकर रहते हैं, इसका अर्थ है कि उन्होंने अहिंसा

का पहला प्रयोग सीख लिया है। साथ में रहने का मतलब है-सह-अस्तित्व का पहला चरण।[68]

आचार्य महाप्रज्ञ ने परिवार की परिभाषा की—'अनुशासन का नाम है परिवार, सहिष्णुता का नाम है परिवार, विनम्रता का नाम है परिवार, और सदाचार का नाम है परिवार और इन सबके होने पर शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का नाम है परिवार। उनकी दृष्टि में सारी समस्याओं की जड़ है परिवार और सारी समस्याओं का समाधान है परिवार।'

बढ़ते हुए हिंसा के दौर से पारिवारिक संदर्भ भी अछूत नहीं रहा। महाप्रज्ञ की भाषा में-आज अपराध और हिंसा बहुत ज्यादा बढ़ गए हैं। आतंकवाद, उग्रवाद, अलगाववाद की हिंसा थी ही, अब घरेलू हिंसा, पारिवारिक हिंसा भी बहुत बढ़ गई है। थोड़े से धन और संपत्ति की लालच में परिवारों में खूनखराबा हो जाता है। पिता की मौजूदगी में ही भाई-भाई घर का बंटवारा कर लेते हैं। माता-पिता उनके आश्रित बनकर दुःख भरा जीवन जीने को विवश हो जाते हैं। यह घरेलू और पारिवारिक हिंसा कई तरह के रूपों में सामने आ रही है। दहेजहत्या, भ्रूणहत्या, आत्महत्या की घटनाएं आए दिन समाज मे घटती रहती है। यह सच्चाई है घरेलू हिंसा लगातार बढ़ रही है। इन पाँच-सात वर्षों में यात्रा के दौरान हमें स्थान-स्थान पर परिवारों के झगड़ें, मारपीट, खूनखराबे के प्रसंग सुनाई दिए। बताने की जरूरत नहीं हैं। जो समाचारपत्र रोज पढ़ते हैं, वे जानते हैं कि कोई भी दिन ऐसा नहीं जाता, जब इस तरह की हिंसा से समाचारपत्र अछूते हों।[69] अपने इस मंतव्य के साथ उन्होंने इस बात को बलपूर्वक कहा कि यदि परिवार में कलह, लड़ाई-झगड़ा, रोना-रूलाना-यह सब चलता है तो उसका जीवन नारकीय जैसा बन जाता है।

शांतिपूर्ण जीवन के लिए यह जरूरी है कि व्यक्ति परिवार के साथ शांतिपूर्ण ढ़ंग से रहे। व्यक्ति परिवार मे शांतिमय जीवन जीना चाहता है पर ऐसा कर नहीं पाता, उसके भी अनेक कारण हैं। उसमें मुख्य हैं सामंजस्य शक्ति का अभाव। जो व्यक्ति दूसरे के साथ सामंजस्य स्थापित करना नहीं जानता वह परिवार में रहकर शांतिपूर्ण जीवन नहीं जी सकता। परिवार एक छोटी इकाई है। परिवार अहिंसा का एक छोटा प्रयोग है। सबसे पहला और छोटा प्रयोग कहीं करना है तो परिवार में किया जा सकता है। जो व्यक्ति परिवार में रहते हुए अहिंसा का प्रयोग नहीं करता, वह कैसा धार्मिक, कैसा अहिंसक? अनिवार्य है अनेकांत का प्रयोग परिवार में हो, जिसका हृदय है सामंजस्य बिठाना। दो विरोधी विचारों में सामंजस्य, दो विरोधी रूढ़ियों में सामंजस्य। दो भिन्न रूचियों में सामंजस्य। सामंजस्य के अभाव में छोटी बात भी लड़ाई का कारण बन जाती है। यह पारिवारिक शांति का महत्त्वपूर्ण घटक है। सामंजस्य, समझौता और व्यवस्था पक्ष का सम्यक् समाचरण महत्त्वपूर्ण है।

परिवार में अहिंसा विकास का शक्तिशाली सूत्र है-सहिष्णुता। यह सहिष्णुता अहिंसा, पारस्परिक सौहार्द और शांत सहवास का आधार बनता है। महाप्रज्ञ की भाषा में जब तक सहिष्णुता का विकास नहीं होता, तब तक शांत सहवास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। एक दूसरे की कमजोरी और असमर्थता को सहन करना, अल्पज्ञता और मानसिक अवस्था को सहन करना, दूसरे की कठिनाई और बीमारी को सहन करना होता है। व्यक्ति जब इन सबको सहन करता है, तब परिवार में शांति रह सकती है। सहन नहीं करता है तो अशांति ही अशांति बनी रहती है।[70] सहिष्णुता के अभाव में आज समाज का विघटन हो रहा है, परिवार टूट रहे हैं। हिन्दुस्तान की बहुत बढ़िया प्रथा थी संयुक्त परिवार।.....अहिंसा का व्यावहारिक प्रयोग था, किन्तु आज संयुक्त परिवार खोजना भी मुश्किल है। संयुक्त परिवार बहुत शक्तिशाली हुआ करता था। बड़े और एकजुट परिवार से झगड़ा मोल लेने

की कोई हिम्मत नहीं करता था। अहिंसा का विकास हुए बिना दो आदमी अच्छी तरह से साथ में नहीं रह सकते, इसलिए अहिंसा हर आदमी के लिए जरूरी है।[71]

परिवार संगठन की उपादेयता के विषय में उनका मौलिक चिंतन है। मनुष्य की तीन बड़ी अपेक्षाएं हैं-'आश्वास, विश्वास, विकास। इनकी संपूर्ति में परिवार संगठन पैदा हुआ।' बीमारी, बुढ़ापा, असहाय अवस्था में परिवार आलंबन भूत बनता है। एक परिवार में दस लोग साथ रहते हैं, साथ में जीते हैं, कारण है विश्वास। कभी किसी पति ने यह परीक्षा नहीं कराई कि मुझे पत्नी भोजन परोस रही है, कहीं जहर तो नहीं दे रही है। लेकिन बड़े-बड़े लोग भोजन करते हैं, कहीं कोई जहर तो नहीं मिला दिया। अविश्वास का वातावरण रहता है। परिवार में विश्वास होता है तभी सुखद वातावरण रहता है। संदेहावस्था में विकास भी अवरूद्ध हो जाता है। पारिवारिक माहौल व्यक्ति को विकास की ऊँचाइयाँ प्रदान करने में अहं भूमिका अदा करता है।

परिवार के वातावरण को प्रभावित करने वाला एक और घटक-संबंध विच्छेद या तलाक। इस संबंध में महाप्रज्ञ के सामयिक विचार है। आज तलाक के मामले बहुत ज्यादा सामने आ रहे हैं। कारण है वैवाहिक जीवन की कसौटी का अभाव। मुनि जीवन और गृहस्थ जीवन दोनों में अनुकूल, प्रतिकूल स्थितियाँ आती है। महावीर ने एक मुनि के लिए बाईस परीषहों का विधान किया। विवाह करने वालों के लिए परीषहों की सूची क्यों नहीं बनाई गई? उनके सामने भी एक कसौटी होती-वैवाहिक बंधन में बंधने जा रहे हो। इन परीषहों को सहने की क्षमता हो और सहन करने का संकल्प हो, तभी विवाह करो। यह होना चाहिए था, यह मानदंड या कसौटी सामने होती तो शायद जीवन को सुखमय बनाने की दृष्टि प्राप्त हो जाती।

शिक्षा और व्यापार की दक्षता के लिए नए-नए कोर्स आ रहें हैं। क्या अब विवाह के पूर्व वर और कन्या के लिए दाम्पत्य जीवन को सुखी और सफल बनाने का कोर्स नहीं होना चाहिए? जैसे विवाह के पूर्व जन्म-कुंडली का मिलाना होता है, क्या वैसे ही दोनों के इमोशन, उनकी रूचियों, आदतों, मनोवृतियों और स्वभाव का भी मिलान नहीं होना चाहिए? क्या इस बात का प्रशिक्षण नहीं मिलना चाहिए कि वैवाहिक जीवन को किस तरह शांतिपूर्ण एवं खुशहाल बनाया जा सकता है? केवल धन-संपत्ति के आधार पर रिश्ता जोड़ा, पहले से कोई प्रशिक्षण नहीं दिया तो उसका परिणाम तलाक और संबंध विच्छेद के रूप में सामने नहीं आएगा?[72] इस त्रासदी से उबरने का उपक्रम होना चाहिए। विवाह से पूर्व लड़के-लड़की के वास्तविक गण मिलान हेतु प्रशिक्षण अनिवार्य होना चाहिए। उनकी दृष्टि में प्रशिक्षण बहुत जरूरी है। लक्ष्य बनाएं कि जीवन को सार्थक बनाना है, जीवन को शांति के साथ जीना है। उन्नत जीवन मूल्यों को जीवन में स्थान देना है। जीवन भी तो एक साधना हैं। कर्मवाद की भाषा में क्रोध, अहंकार, माया, छल-कपट, लोभ-इनको शांत करने की साधना करना है। लक्ष्य स्पष्ट है और साथ में साधना का संकल्प है तो फिर जीवन शांतिपूर्ण व्यतीत हो सकता है। चिंतनपूर्वक ऐसी व्यवस्था बनाएं कि घर परिवार में भी संयम का प्रशिक्षण चले।[73] पारिवारिक समस्या के प्रति महाप्रज्ञ कितने सहृदय रहे यह प्रस्तुत कथन से प्रकट होता है।

परिवार प्रबंधन

प्रबंधन के वर्तमान सूत्र हैं-समता, न्याय और करुणा। पारिवारिक संदर्भ में इन्हें उद्धृत करते हुए महाप्रज्ञ ने बताया-जिस परिवार में न्याय नहीं हैं, समता और करुणा नहीं हैं वह अच्छा नहीं हो सकता।

उसकी व्यवस्था भी अच्छी नहीं हो सकती। इनके साथ बारह भावनाएँ जुड़ी जिनमें प्रमुख हैं ये चार भावनाएं-मैत्री, प्रमोद, करुणा, उपेक्षा।

मैत्री का अर्थ है-परेषां हितचिंतनम्-दूसरों के हित की चिंता करना।.....परिवार के विघटन का प्रमुख कारण है कि मैत्री का प्रयोग कम हो गया है। एक-दूसरे की हित चिंता कम हो गई है। जहाँ व्यक्ति अपने स्वार्थ को गौण कर दूसरे के हित की चिंता करता है, उस संगठन को कोई तोड़ नहीं सकता।

प्रबंधन का दूसरा सूत्र है-प्रमोद भावना। वह संगठन मजबूत बनता है, जहाँ एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के गुणों को स्वीकार करता है, महत्व देता है।.....कल्पना करें-एक परिवार में पाँच भाई हैं, पाँच बहुएँ हैं। वे एक दूसरे को हीन बताने का प्रयास करेंगे, एक-दूसरे की निंदा और चुगली करेंगे तो क्या होगा? क्या ऐसा परिवार कभी अच्छा हो सकता है?

प्रबंधन का तीसरा सूत्र है—करुणा इसका अर्थ है-पीड़ा आए, समस्या आए तो उसका समाधान खोजना और क्रूरता की वृत्ति का विसर्जन करना।

चौथा सूत्र है-उपेक्षा। यदि संगठन को बनाए रखना है तो कहीं-कहीं उपेक्षा करो। अमुक आदमी अनुकूल नहीं है, फिर भी जैसे-तैसे इसे बनाए रखना है, इसलिए उपेक्षा करो। उपेक्षा का ही दूसरा नाम है मध्यस्थ-मध्यस्थ रहो, तटस्थ रहो। यह तटस्थता सम्यक् प्रबंधन का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।[74]

परिवार में अहिंसा के विकास की बड़ी समस्या है नाना रुचियां। नाना रुचियों के कारण संघर्ष होता है, कलह होता है। जितने व्यक्ति, उतनी ही रुचियां। भिन्न रूचि संघर्ष पैदा कर सकती है। नाना रुचियों को नहीं मिटाया जा सकता। किन्तु इससे उत्पन्न होने वाले संघर्ष को मिटाया जा सकता है। ऐसा कोई यन्त्र नहीं बना सकते कि सबकी रुचियों का समीकरण हो जाए। यह संभव नहीं है। ऐसा नहीं किया जा सकता। सबकी रुचियां एक सी नहीं हो सकती। हमें यह समझ लेना चाहिए कि रुचि और संघर्ष-ये दो हैं। उनके बीच एक ऐसा सूत्र दिया जा सकता है कि रुचियों की भिन्नता तो रहे पर संघर्ष न हो। वह सूत्र है अहिंसा के प्रयोग का। हम परिवार को अहिंसा की प्रयोगभूमि बनाएँ।

गांधी की अहिंसक सोच इस सच्चाई को स्वीकार करती है कि जैसा अहिंसा का भाव अपने परिवार के प्रति होगा उसी का विस्तार वैश्विक क्षितिज पर होगा। अहिंसा का गुणधर्म सर्वत्र एक जैसा ही काम करता है। उन्होंने अपने मन्तव्य को स्पष्ट किया-'एक बूँद पानी में वे सब गुणधर्म होने चाहिये जो तालाब के पानी में हैं। अपने भाई के साथ मैं जिस अहिंसा का व्यवहार करूँगा वह सारे विश्व के प्रति मेरी अहिंसा से भिन्न नहीं हो सकती। जब मैं अपने भ्रातृ-प्रेम को सारे विश्व में व्यापक करूं तो उस अवस्था में भी वह सत्य ही सिद्ध होना चाहिये।'[75] आशय स्वरूप अपने स्वजनों के प्रति किया गया अहिंसा का व्यवहार, भ्रातृप्रेम ही मानव जाति के लिए विस्तार पाता है। गांधी के इन विचारों से महाप्रज्ञ सहमत होने के बावजूद स्वतंत्र चिंतन रखते। उनकी यह सोच मौलिक थी कि परिवार विराट् प्रेम की शक्ति को सीमित कर देता है। भगवान् महावीर ने कहा, 'किसी प्राणी को मत मारो'। कोई भी अहिंसा का सूत्रधार यह कहकर नहीं चला कि अपने परिवार वालों का हित करो या अपने परिवार वालों को मत सताओ, मत मारो, कष्ट मत दो, क्योंकि उनकी दृष्टि में कोई परिवार था ही नहीं। वे परिवार की सीमा से ऊपर उठ गये थे। मैं मानता हूँ कि परिवार की अपनी उपयोगिता है और उपयोगिता के कारण ही परिवार बना है। यह एक शाश्वत सत्य है

कि एक चीज बनती है तो उसके साथ एक समस्या भी उत्पन्न हो जाती है। हर निर्मिति एक समस्या को उत्पन्न करती है। परिवार के साथ भी समस्या है क्योंकि व्यक्ति की सारी ममता अपने परिवार में केन्द्रित हो गयी। सबकी सीमा परिवार में सीमित हो गयी। जहाँ स्व से इतर आ गया तो उसके लिए सब कुछ करणीय है, जो यथार्थ में अकरणीय है। इसलिए परिवार की सबसे बड़ी समस्या है-स्वत्व की सीमा। यहां स्वत्व सीमित हो जाता है, सिमट जाता है, अपनत्व, ममत्व या प्रेम इतना विराट् नहीं रह पाता, सबके प्रति नहीं रह पाता, किन्तु वह परिवार-केन्द्रित हो जाता है। यह एक बहुत बड़ी समस्या है।[76] यह कटु सत्य का उद्घाटन है जो अहिंसा के क्षेत्र में विकास करने वालों को सोचने के लिए विवश करता है और परिवार के संदर्भ को विराट् स्वरूप में बदलने की प्रेरणा भरता है।

परिवार विघटक घटक

पारिवारिक विघटन में क्रोध का आवेश एक मुख्य तत्त्व है। वैसे ही अहंकार की भी पारिवारिक विघटन में कम भूमिका नहीं है। एक व्यक्ति का अहंकार समूचे परिवार की स्थिति को गड़बड़ा देता है। अहंकारी व्यक्ति दूसरों की बात को सुनता भी नहीं है, मानता भी नहीं है। वह अपनी अहंकारी वृत्ति को ही पोषित करता है। उसके अपने मन में जो जंचता है, वही करता है। अहंकार का आवेश बड़ा भयंकर होता है। अहंकारी मनुष्य में पुरुषार्थ कम होता है, अकर्मण्यता ज्यादा होती है, निठल्लापन ज्यादा होता है। जब अहंकार जागता है, आदमी का पुरुषार्थ सो जाता है। क्रोध और अहंकार-दोनों प्रकार के आवेश व्यक्ति को गिराते हैं। आवेश कभी जोड़ता नहीं, तोड़ता है। अहंकारी आदमी अपने-आपको ही श्रेष्ठ मानकर चलता है। वह कैसे जोड़ेगा? जहाँ मैं श्रेष्ठ हूँ और दूसरे अपकृष्ट हैं, हीन हैं, वहाँ दूसरे लोग कैसे जुड़ेंगे?

सामुदायिक चेतना के न जागने में, पारिवारिक विघटन में लोभ का हाथ भी कम नहीं है। एक व्यक्ति के मन में लोभ जागता है, सब-कुछ टूटना-बिखरना शुरू हो जाता है। लोभ के कारण आदमी सारी सफलताओं से भी वंचित रह जाता है। दूसरे का आगे आना उसे पसंद नहीं आता। वह स्वयं ही सब-कुछ पाना चाहता है। यह लोभ की वृत्ति अपना सेहरा सबसे ऊँचा रखना चाहती है। सामुदायिक चेतना के जागरण में लोभ का आवेश एक बहुत बड़ा विघ्न है। परिवार के विघटन में भी यह बहुत बड़ा कारण बनता है। पाँच-दस आदमी एक साथ कार्य कर रहे हैं, काम ठीक चल रहा है, अच्छी कमाई है, पर एक आदमी के मन में एक सनक आती है, लोभ जागता है और वह छिपे-छिपे अपना घर भरना शुरू कर देता है, बिखराव शुरू हो जाता है, लड़ाई-झगड़े शुरू हो जाते हैं। कोई लाभ नहीं रहता। यह लोभ लाभ को भी गंवा देता है। जहाँ लोभ बढ़ता है, वहाँ लाभ की हानि शुरू हो जाती है।[77] ये वृत्तियाँ केवल शांति को ही भंग नहीं करती अपितु परिवार में हिंसा की नई चिनगारियों को भी सुलगा देती है। साथ ही असहिष्णुता, असंयम और महत्त्वकांक्षा-ये पारिवारिक जीवन में अशांति का विष घोल देते हैं। सहिष्णुता और संयम का अभ्यास, महत्त्वाकांक्षा का परिसीमन जैसे नैतिक मूल्य पारिवारिक जीवन में होने वाली हिंसा पर नियंत्रण स्थापित करते हैं।

पारिवारिक संघर्ष का बड़ा कारण है निषेधात्मक दृष्टिकोण। परिवार के जिन सदस्यों की सोच निषेध प्रधान होती है वो सर्वत्र स्खलनायें देखते हैं और लड़ाई-झगड़ों में लगे रहते हैं। यह अपने आप में हिंसा का सूक्ष्म रूप है। इससे बचने के लिए निषेधात्मक भावों को समाप्त करना एवं विधायक भावों को उजागर करना होगा।[78]

आचार्य महाप्रज्ञ ने पारिवारिक संबंधों की विशुद्धि एवं अहिंसा के विकास हेतु प्रशिक्षण पर बहुत बल दिया है। उन्होंने कहा-मानवीय सम्बन्ध और निश्छल व्यवहार का प्रशिक्षण सामाजिक स्तर पर अहिंसा का प्रशिक्षण है। इसकी पहली प्रयोगभूमि है परिवार। परिवारिक जीवन में शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का होना अहिंसा के प्रशिक्षण का महत्त्वपूर्ण घटक है।[79] इसके साथ ही परिवार में शांति का पहला प्रयोग है-धैर्य का विकास और प्रतीक्षा में स्थिरता। इसी आधार पर शांति को विकसित किया जा सकता है। परिवार में शांति नहीं होती है तो अहिंसा के विकास का मार्ग अवरुद्ध एवं जीवन छिन्न भिन्न हो जाता है।

परिवार में अहिंसा विकास सूत्र

घर-परिवार की शांति का पहला प्रयोग है-मौन। दो में लड़ाई होती है, एक में कभी नहीं। जहाँ भी लड़ाई का प्रसंग हो, कटुता का प्रसंग हो वहाँ मौन का अभ्यास करना चाहिए। यह घर की शांति का सबसे बड़ा उपाय है। एक बोले तो दूसरा मौन हो जाए। यह एक सूत्र घर के वातावरण को शांतिमय बना देगा। शांतिपूर्ण स्थिति अहिंसा के विकास को प्रशस्त बनाती है।

पारिवारिक संदर्भ में 'सुखद संवास' का कन्सेप्ट महत्वपूर्ण है। साथ में रहना, भोजना, अर्जन कार्य आदि करना, यह संवास है। संवास प्रिय होता है या अप्रिय, सुखद होता है अथवा दुःखद पारिवारिक लोगों के लिए चिंतन का प्रश्न है। महाप्रज्ञ ने सुखद संवास के पैरामीटर प्रस्तुत किये-'सुखद संवास की पहली कसौटी है-विनम्रता।

- दूसरी कसौटी है-अप्रिय वचन बोलने से बचना।
- तीसरी कसौटी है-सहिष्णुता।
- चौथी कसौटी है-उपशांत कलह की उदीरणा न करना।

'बीती ताहि बिसारि दे' लोकोक्ति परिवार में शांति का बहुत बड़ा सेतु है-बीती बातों को भुलाना, उपशांत कलह की उदीरणा न करना।

- पाँचवी कसौटी है-गम खाना-उतेजना के प्रसंग में शांत रहना।[79]

गृहस्थ जीवन में पग-पग पर विषम परिस्थितियों से सामना करना पड़ता है। इसके लिए प्रतिदिन साधना और प्रशिक्षण का क्रम चलते रहना चाहिए। परिवार की शांति के लिए मन का संयम, वाणी का संयम, और शरीर का संयम-तीनों जरूरी है।

परिवार में अहिंसा विकास के टिप्स-

- स्वार्थ चेतना-मेरेपन के प्रतिपक्ष में-मेंरा कुछ भी नहीं है, मात्र संयोग है, भावना की पुष्टि।
- हम अकेलें हैं, अकेले आए हैं, अकेले जाना है। इस अध्यात्म चेतना का विकास।
- निश्चय और व्यवहार दृष्टि का संतुलन।
- संवेदनशीलता, सहानुभूति, संविभाग, मृदुता, विनम्रता का विकास।
- आज्ञा, विनय, वात्सल्य, कृतज्ञता, विवेक, समझोते का समाचरण।
- मात्र मंत्र उच्चारण से परिवार में सामंजस्य और सौहार्द संभव नहीं है। उसका कारगर नुस्खा एक ही है अहिंसा प्रशिक्षण, पारिवारिक सौहार्द और शांत सहवास का प्रशिक्षण। प्रशिक्षण लें और गृहस्थी में उसका प्रयोग करें।[81]
- अनेकांत दृष्टि का प्रयोग : विचार का आग्रह न हो। वचन का विवाद न हो। व्यवहार का असंतुलन न हो।

दोनों मनीषियों की पारिवारिक अहिंसा संबंधी सोच मौलिक है। उन्होंने इस सच्चाई का अनुभव किया कि जब तक व्यक्ति के आस-पास का वातावरण अहिंसा की परिमल से सुवासित नहीं होगा उसका विस्तार नहीं हो पायेगा। महात्मा गांधी ने पारिवारिक अहिंसा का विकास इसलिए जरूरी बताया कि उसका प्रयोग राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर सफल बन सके। आचार्य महाप्रज्ञ ने पारिवारिक अहिंसा के विकास में साधक-बाधक तत्वों का उल्लेख एवं पारिवारिक संदर्भ में अहिंसा को विभिन्न कोणों से व्याख्यायित कर युगीन समस्या के समाधान की प्रक्रिया को उजागर किया है। उभय मनीषियों ने 'वसुधैव-कुटुम्बकम्' के आदर्श को व्यवहारिक धरातल पर लाने की पृष्ठभूमि में पारिवारिक अहिंसा के विकास को अनिवार्य माना है।

अहिंसक समाज : एक प्रारूप

मानव जाति के अस्तित्त्व की कहानी अहिंसा के आलेख से निष्पन्न हुई है। अहिंसा का समूहगत प्रयोग किया गया उस दिन मानव-समाज का आकार प्रकट हुआ। इसके आधार पर 'अहिंसक-समाज' का प्रारूप विकसित हुआ। महात्मा-गांधी एवं आचार्य महाप्रज्ञ-दोनों मनीषियों ने अहिंसक समाज के संदर्भ में अपने-अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। विचारों में मौलिकता और समानता का निदर्शन है। गांधी की सामाजिक मूल्यों के अन्वेषण की दृष्टि वैज्ञानिक थी। एक वैज्ञानिक घटनाओं और तथ्यों के पर्यवेक्षण के आधार पर कल्पना करता है, फिर उसे प्रयोगों से सिद्ध करता है, वैसे ही उन्होंने सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में प्रयोग और परीक्षण किए। अपने परिपार्श्ववर्ती सहजीवन को प्रयोगशाला बनाकर अपने निष्कर्षों के आधार पर 'अहिंसक-समाज' की परिकल्पना प्रस्तुत की।

व्यक्तिगत स्तर पर अहिंसा की चर्चा अनेकशः मुखर हुई लेकिन गांधी की विशेषता यह है कि उन्होंने अहिंसा के सामाजिक पक्ष पर अधिक बल दिया। अहिंसक समाज का निर्माण आवश्यक है इसे कसौटी पूर्वक व्यापक आयाम दिया। आचार्य महाप्रज्ञ ने अहिंसक-समाज की परिकल्पना आध्यात्मिक-सामाजिक मूल्यों के आधार पर की। भले ही उनका सीधा संबंध अध्यात्म जगत् से जुड़ हुआ था पर उनका अहिंसक-समाज संबंधी विचार किसी भी समाज-शास्त्री से कम नहीं है। अपितु तटस्थ भाव से उन्होंने जो अहिंसक समाज की मीमांसा की वह महत्त्वपूर्ण है। धार्मिक ग्रंथों में व्रती समाज की जो रूपरेखा सूत्र रूप में निबद्ध है उसे आधुनिक परिवेश में वैज्ञानिक दृष्टि से प्रस्तुत करने का दुरूह कार्य किया है। तथ्यतः दोनों ही महापुरुषों की 'अहिंसक-समाज' रचना सोच में मौलिकता, समानता और वैशिष्ट्य का समावेश है।

अहिंसा का संबंध किसी व्यक्ति विशेष अथवा सम्प्रदाय विशेष से न होकर प्राणी मात्र से है। गांधी ने इसका प्रयोग संगठित रूप में किया है। अहिंसा के संगठित प्रयोग की प्रथम इकाई है समाज। सामाजिक परिवर्तन का यक्ष प्रश्न उनके सामने था क्योंकि बड़े पैमाने पर समाज में परिवर्तन हुआ है, इतिहास के आलोक में ऐसा सिद्ध कर पाना कठिन है। पर उन्होंने इस सच्चाई को समझा और कहा-अब तक समाज में परिवर्तन नहीं हो पाया इसका अर्थ इतना ही है कि व्यापक अहिंसा का प्रयोग आज तक नहीं किया गया। हम लोगों के हृदय में इस झूठी मान्यता ने घर कर लिया है कि अहिंसा व्यक्तिगत रूप से ही विकसित की जा सकती है और वह व्यक्ति तक ही मर्यादित है। दरअसल बात ऐसी है नहीं।

अहिंसा सामाजिक धर्म है, सामाजिक धर्म के तौर पर उसे विकसित किया जा सकता है, यह

मनवाने का मेरा प्रयत्न और प्रयोग है। यह नयी चीज है इसलिए इसे झूठ समझकर फेंक देने की बात इस युग में तो कोई नहीं कहेगा। यह कठिन है, इसलिए अशक्य है, यह भी इस युग में कोई नहीं कहेगा। क्योंकि बहुत-सी चीजें अपनी आँखों के सामने नई-पुरानी होती हमने देखी है। मेरी यह मान्यता है कि अहिंसा के क्षेत्र में इससे बहुत ज्यादा साहस शक्य है, और विविध धर्मों के इतिहास इस बात के प्रमाणों से भरे पड़े हैं। समाज में से धर्म को निकाल कर फेंक देने का प्रयत्न बांझ के घर पुत्र पैदा करने जितना ही निष्फल है; और अगर कहीं सफल हो जाये तो समाज का उसमें नाश है।[82] स्पष्ट आशय है कि अहिंसा के आधार पर ही समाज के संगठनात्मक स्वरूप की कल्पना की जा सकती है अन्यथा समाज नहीं 'समज' जो पशुओं के समूह का द्योतक है, ही कहलाता।

प्रश्न है कि अहिंसा का प्रयोग कब प्रारम्भ हुआ? गांधी का अभिमत है 'सारा समाज अहिंसा पर उसी प्रकार कायम है जिस प्रकार गुरुत्वाकर्षण से पृथ्वी अपनी स्थिति में बनी हुई है। लेकिन जब गुरुत्वाकर्षण के नियम का पता चला, तो इस शोध के ऐसे परिणाम निकले, जिनके बारे में हमारे पूर्वजों को कुछ ज्ञान न था। इसी प्रकार जब निश्चित रूप से अहिंसा के नियमानुसार समाज का निर्माण होगा, तो खास-खास बातों में उसका ढ़ांचा आज से भिन्न होगा।' उनका अभिमत था समाज संरचना की पृष्ठभूमि में अहिंसा का सत्व विद्यमान है। सब सुसंगठित समाजों की रचना अहिंसा के आधार पर हुई है। मैंने देखा है कि जीवन विघात के बीच रहता है और इसीलिए विघात से बढ़कर कोई नियम होना चाहिये। केवल उसी नियम के अन्तर्गत एक सुव्यवस्थित समाज समझा जा सकता है और उसी में जीवन का आनन्द है और यदि जीवन का यही नियम है तो हमें दैनिक जीवन में बरतना चाहिये।[83]

गांधी के समाज संबंधी विचार को व्यापक बनाने वाला चिंतन आचार्य महाप्रज्ञ का अहिंसक समाज के संदर्भ में देखा जाता है। पहले मनुष्य जंगल में रहता था, गुफा में रहता था। वृक्ष की छाल को ओढ़ता था अथवा नग्न ही रहता था। फिर मनुष्य ने विकास किया, समाज बनाया और बस्ती बनाकर रहने लगा। समाज का निर्माण अहिंसा के आधार पर हुआ है। जंगली या हिंसक जानवरों का समाज नहीं होता। वे एक दूसरे को खा जाते हैं। यदि मनुष्य हिंसक जानवरों की भाँति एक दूसरे को खाने को दौड़ते तो समाज का निर्माण ही नहीं होता। एक दूसरे के हितों में बाधा न डालने का समझोता सामाजिक जीवन का सुदृढ़ स्तम्भ है। समाज अहिंसा व प्रेम के आधार पर ही बनता है। एक दूसरे की मर्यादा समझने पर समाज बनता है। हिंसक मनुष्य कभी अपना समाज नहीं बना सकता। समाज के मूल में अहिंसा की प्रेरणा रही है। एक साथ जीना, अहिंसा की प्रेरणा के बिना संभव नहीं हो सकता।[84] समाज बना अहिंसा के आधार पर है। उसका सूत्र है-साथ-साथ रहो, तुम भी रहो और मैं भी रहूँ। या तुम, या मैं-यह हिंसा का विकल्प है।.....जहाँ अहिंसा का प्रयोग होगा, वहाँ भाषा बदल जायेगी, स्वर बदल जायेगा। व्यक्ति कहेगा-तुम भी रहो, मैं भी रहूँ, हम दोनों साथ रह सकते हैं, कोई बाधा नहीं है। अनेकांत में इस सूत्र का बहुत विकास हुआ है, जिसे सहावस्थान कहा जाता है।

अगर अहिंसा की भावना न हो तो दो व्यक्ति साथ नहीं रह सकते। वे साथ में तभी रह सकते हैं जब मन में अहिंसा की भावना हो और आपस में समझौता हो कि तुम मुझे हानि नहीं पहुँचाओगे, में तुम्हें हानि नहीं पहुँचाऊँगा। समुदाय बनाने का अथवा समाज बनाने का मूल सेतु अहिंसा है। आज हमने अहिंसा को बहुत भुला दिया। कोई किसी को कष्ट न पहुँचाए, सब अपने-अपने अधिकार

की सीमा में रहें और कोई कुछ न करें, इस समझोते के आधार पर समाज बना।

अहिंसा की मुख्य प्रयोगशाला है समाज। समाज का एक आधार सूत्र है समानता। एक आदमी अपने को बहुत बड़ा मानता है। वह सामाजिक प्राणी नहीं है, वह समाज की व्यवस्था को तोड़ रहा है। अपराधी आदमी चोरी करने वाला डाका डालने वाला या बम विस्फोट करने वाला असामाजिक कहलाता है। अगर सामाजिक हो तो वह समाज के किसी व्यक्ति को कष्ट नहीं पहुंचा सकता। क्योंकि समाज की पहली शर्त है तुम मुझे मत सताओं मैं तुम्हें नहीं सताऊंगा। इस शर्त पर सारा व्यवहार चलता है। जब वह दूसरों को सता रहा है तब वह समाजिक नहीं हो सकता।[85] महाप्रज्ञ का यह मंतव्य वर्तमान समाज में अव्यवस्था फैलाने वाले अराजक तत्वों के लिए एक प्रेरणा है। उन्होंने यह भी कहा कि यदि व्यक्ति कोरा व्यक्ति होता तो सब व्यक्ति अलग-अलग रहते पर एक धागा है, जो व्यक्तियों को जोड़ देता है और एक समाज बन जाता है। वह जोड़ने वाला तत्त्व है-हृदय परिवर्तन। हृदय-परिवर्तन का तत्त्व नहीं होता तो व्यक्ति अकेला ही रहता, कभी समाज नहीं बनता।[86] इतिहास के पन्नों पर इस सच्चाई को खोजा जा सकता है चूँकि आदि मानव तो वनवासी का एकाकी जीवन जीता था पर जब से उसमें विवेक जागने लगा, तभी से समाज व्यवस्था का सूत्रपात हुआ।

भारतीय संस्कृति के आदर्शानुरूप गांधी ने अहिंसक समाज के स्वरूप का चित्रण किया 'जिस समाज में अर्थ, काम और धर्म-तीनों की संतुलित उपासना होती है वह अहिंसक समाज कहलाता है।' इस त्रिपदी पर बने समाज का स्वरूप विशिष्ट होगा। उसमें अर्थ के अभाव-अतिभाव का साम्राज्य नहीं होता उसमें सभी को समान आर्थिक संसाधन उपलब्ध करने का अवसर मिलता है। भौतिक आकांक्षाएं पूर्ण करने का पर्याप्त अवसर सभी को रहता है। आध्यात्मिक विकास हेतु समाज का प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र होता है। वह इच्छित धर्म को स्वीकारने में स्वतंत्र होता है। उसमें सबल और दुर्बल-सबको विकास का समान सुअवसर मिलेगा। हर स्त्री-पुरुष आत्म निर्भर होंगे। भौतिक, आर्थिक राजनैतिक विभिन्न प्रकार के संसाधनों का उपयोग सभी के सामान्य सुख के लिए होगा। सहिष्णुता और धर्म निरपेक्षता इसके आवश्यक गुण होंगे।

गांधी ने इस सच्चाई को प्रस्तुति दी कि जब समाज के लिए अहिंसा मात्र सामयिक नीति स्वरूप न होकर सिद्धांततः अपनायी जायेगी तो समाज का ढ़ांचा अधिक परिष्कृत-विकसित होगा। इसका चित्रण किया गया-जब अहिंसा सिद्धांत बनकर समाज के व्यवहार में आयेगी तब एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शोषण नहीं करेगा, एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को धोखा नहीं देगा और उसके जीवन में न्याय बढ़ेगा। रिश्वत लेने या देने की बात तब नहीं रहेगी और समाज का सम्मार्जन हो जाएगा। यदि ऐसा नहीं हुआ तो अहिंसा को ललकारने वाली शक्तियां उठ खड़ी हो जायेंगी और हिंसा के बल से अर्थ, सत्ता आदि छीनने का प्रयत्न करेंगी; जिसका संकेत कम्युनिस्ट मेनिफेस्तो की अन्तिम पंक्तियों में मिलता है। कार्ल मार्क्स ने कहा-'सर्वहारा दल (मजदूर दल) के पास खोने को कुछ नहीं है सिवाय कि बेड़ियों के और पाने के लिए सारा संसार भरा पड़ा है....ए दुनिया के मजदूरों! एक हो जाओ।'[87] इस कथन में एक पीड़ा का दर्शन है जो अहिंसक समाज की अनिवार्यता को प्रकट करता है।

आचार्य महाप्रज्ञ के अहिंसक-समाज संबंधी विचार गांधी के विचारों की परिक्रमा के साथ मौलिकता को प्रकट करते हैं। 'अहिंसक समाज वह होता है, जिसमें संकल्पजा अथवा आक्रामक हिंसा के दरवाज़े बन्द हो जाए। जातीय उन्माद, सांप्रदायिक अभिनिवेश, शोषण, दूसरे की स्वतंत्रता

का अपहरण, अधिकार और स्वत्व का अपहरण, जीविका का विच्छेद और साम्राज्यवादी मनोवृत्ति-यह सारा आक्रामक हिंसा का परिवार है। आक्रामक हिंसा से मुक्त समाज को अहिंसक समाज की अभिधा से अभिहित किया जा सकता है। उन्होंने बताया 'समाज व्यवस्था का मंत्र है-अहिंसा। अहिंसा का अर्थ है अभय का विकास और अनाक्रमण का विकास।

यह जंगल का कानून है कि एक शेर दूसरे प्राणियों को खा जाता है। एक बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है, यह समुद्र का कानून है। जहाँ भय होता है वहाँ समाज नहीं बनता। समाज बने और चले, समाज व्यवस्था स्थाई रहे, उसके लिए दो अनिवार्य शर्तें हैं—'अभय और अनाक्रमण। इन दोनों का समुच्चय है अहिंसा।'[88] अहिंसक समाज को आकार देने वाले ये प्रमुख घटक हैं। इनके साथ आचार्य उमास्वाति के परस्परता के सूत्र को उद्धृत किया है। आचार्य उमास्वाति ने दर्शन जगत् को एक महत्त्वपूर्ण सूत्र दिया। वह समाज-व्यवस्था के क्षेत्र में भी बहुत मूल्यवान् है। वह सूत्र है-'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' अर्थात् परस्पर एक दूसरे को सहारा देना। समाज का अर्थ है संबंधों का जीवन। शान्तिपूर्ण संबंधों में समाज फलता-फूलता है। सह-अस्तित्व के संदर्भ में यह सूत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। औद्योगिक जगत् में, व्यावसायिक जगत् में, शिक्षा के जगत् में-सब जगह झगड़ा चल रहा है और इसका कारण है-परस्परता की कमी। अहिंसा विकास का सह-अस्तित्व महत्त्वपूर्ण सूत्र बनता है। जब तक सह-अस्तित्व की भावना का विकास नहीं होता तब तक अहिंसा का अर्थ पूरा समझ में नहीं आता।

एक साथ रहना है और एक साथ जीना है तो आश्वास, विश्वास और अभय के वातावरण का निर्माण करना होगा। हमारी अहिंसा, आपकी अहिंसा प्राणी मात्र के साथ जुड़े यह आवश्यक है। अहिंसा का दूसरा नाम है-समृद्धि। वर्तमान समाज समृद्ध नहीं है, दरिद्र है। समाज का मूल आधार है-सह अस्तित्व। जिस समाज में उनका विकास नहीं होता, उसे स्वस्थ और समृद्ध समाज नहीं कहा जा सकता।[89] अहिंसा के आलोक में स्वस्थ समाज का चित्रण मौलिक है-'वह समाज स्वस्थ है, जिसमें अपराध, प्रवंचना, अन्याय, लूट खसोट, संघर्ष आदि नहीं होते। जब लोभ और स्पर्धा की भावना प्रबल बनती है, समाज का शरीर अनेक रोगों से आक्रान्त हो जाता है। आज हॉस्पिटल, पागलखानों और कारखानों की संख्या बढ़ती जा रही है, क्योंकि समाज रुग्ण है। यदि हमें समाज को स्वस्थ बनाना है तो नैतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करना होगा। नैतिकता विहीन धर्म वर्तमान युग की सबसे बड़ी समस्या है।' महाप्रज्ञ ने इस तथ्य को प्रकट किया कि जहां धर्म के साथ नैतिकता नहीं होती, वहां हिंसा बढ़ती है, आतंक बढ़ता है। अतः स्वस्थ समाज के लिए व्यापार और व्यवहार में नैतिकता का अवतरण जरूरी है। समाज की स्वस्थता का यह आधारभूत तत्व है सभी के भीतर ये भाव जगे कि हमारा अस्तित्व दूसरों के कारण ही टिका हुआ है।

समाज की स्वस्थता और शक्ति संपन्नता में परस्पर संबंध है। आचार्य महाप्रज्ञ ने बतलाया-समाज के तीन शक्ति स्त्रोत हैं-'अनुशासन की चेतना, चरित्रबल और साधन शुद्धि का विवेक।' जिस समाज के शक्ति स्रोत शून्य बिन्दु के आसपास चले जाते हैं अथवा शून्य हो जाते हैं, वह समाज शक्ति संपन्न नहीं हो सकता और जो शक्ति संपन्न नहीं होता, वह स्वस्थ नहीं हो सकता। स्वस्थ समाज की पृष्ठभूमि में वे समाजाभिमुखी अहिंसा पर बल देते है। यदि मनुष्य का शोषण हो जाए, उत्पीड़न हो जाए, तो शायद उतनी चिंता नहीं होती। किसी का गला काटने पर भी संभवतः इतना प्रकंपन नहीं होता जितना एक चींटी को मार देने पर हो जाता है।[90] यह सच्चाई का निदर्शन है जो समाज

के प्रत्येक सदस्य को स्वयं के बारे में सोचने के लिए बाध्य करता है।

समूहगत जीवन को आनन्दमय बनाने के लिए समाज को बदलना जरूरी है। हिंसक समाज में कब तक व्यक्ति अहिंसक रह सकता है। समूचे समाज के लिए अहिंसा का पालन करना आवश्यक है, चूंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। गांधी का यह मौलिक चिंतन समाज में नई चेतना का संचार करने वाला है। उन्होंने मनुष्य को सामाजिक प्राणी कहा इसलिए भी उसका परिष्कृत वृत्तिवान् बनना जरूरी है। मानवीय चेतना के परिवर्तन में उनका दृढ़ विश्वास था। अपने इस विश्वास के आधार पर उन्होंने कहा कि अहिंसा व्यक्तिगत गुण नहीं है, बल्कि एक सामाजिक गुण है जिसको दूसरे गुणों की तरह विकसित करना चाहिए। इसमें कोई शक नहीं कि समाज अपने आपस के कारोबार में अहिंसा का प्रयोग करने से ही व्यवस्थित होता है। मैं जो कहना चाहता हूँ वह यह है कि इसे एक बड़े राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर काम में लाया जाय।[91] आशयतः वे अहिंसा के सामाजिक आयाम का विस्तार राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर व्यापक देखना चाहते थे।

इस वैज्ञानिक प्रगति के युग में मानव जाति की रक्षा हेतु समाज रचना कैसी हो? गांधी कहते हैं-बुनियादी सवाल हिंसा और अहिंसा के बीच चुनाव का नहीं। मुख्य बात तो यह है कि अगर संसार को जिन्दा रहना है तो विज्ञान को अहिंसा के साथ जुड़ जाना होगा। विज्ञान और हिंसा साथ-साथ नहीं चल सकते। दोनों मिलकर मनुष्य जाति को मिटा देंगे। आधुनिक विज्ञान और यान्त्रिक प्रगति से मानवता का लाभ तभी हो सकता है, जब समाज रचना अहिंसा पर आधारित होगी। अब मनुष्य जाति के लिए दूसरा कोई चारा नहीं है। अहिंसा मानव-जाति के संरक्षण में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। चूँकि यह मात्र वैयक्तिक धर्म नहीं सामाजिक धर्म है।[92] सामाजिक धर्म के रूप में अहिंसा की अनिवार्यता का निदर्शन उनकी अभिनव सोच का परिचायक है। इस संबंध में महाप्रज्ञ का अभिमत है कि समाज-विकास के लिए अहिंसा नितान्त आवश्यक है। यह केवल धर्म का ही प्रमुख तत्व नहीं है। इसका समाज व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्था के साथ भी गहरा संबंध है। जहां अहिंसा का विकास होगा, वहां शांति रहेगी। जहाँ शान्ति होगी, वहाँ विकास होगा। विकास की अनिवार्य शर्त है शांति और शान्ति की अनिवार्य शर्त है अहिंसा। दो महायुद्धों के बाद पश्चिमी जगत् में यह समझ विकसित हुई है-विकास के लिए शान्ति अनिवार्य है।[93] महाप्रज्ञ का मन्तव्य है कि 'मानसिक शान्ति के लिए अहिंसा अनिवार्य है किन्तु सामाजिक विकास और विकासोन्मुख गति के लिए भी वह कम अनिवार्य नहीं है। इस अनिवार्यता की अनुभूति कराना उतना ही अनिवार्य है जितना कि अहिंसा अनिवार्य है।'

जहां तक विज्ञान का प्रश्न है महाप्रज्ञ ने इसे समाज विकास की मौलिक कड़ी के रूप में स्वीकारा हैं। उनके शब्दों में अहिंसा का तात्पर्य है मैत्री का विस्तार। एक समय था जब छोटी-छोटी बातों पर विरोध का वातावरण बन जाया करता था। विज्ञान ने अनेक रहस्यों की खोज की। उससे कई तरह की समस्याएं भी पैदा हुईं। उन समस्याओं का समाधान विज्ञान के पास नहीं है। उनके समाधान के लिए अध्यात्म की शरण लेनी पड़ रही है। दूसरी और अध्यात्म के सूक्ष्म तत्ववेत्ता आचार्यों ने हजारों वर्ष पूर्व बताया सूई की एक नोक जितने स्थान पर अनंत जीवों की उपस्थिति। यह ब्रात आज वैज्ञानिक उपकरणों से सिद्ध हो गई कि बैक्टीरिया या जीवाणु सुई की नोक पर करोड़ों नहीं अरबों की संख्या में हो सकते हैं। दोनों ने एक दूसरे को उपकृत किया है। मेरा विश्वास है कि अध्यात्म और विज्ञान का अगर समन्वय हो तो एक नया संसार निर्मित हो सकता है। समस्या मुक्त संसार।[94]

अहिंसक समाज की परिकल्पना महत्त्वपूर्ण है पर इसकी क्रियान्विति का प्रश्न बड़ा जटिल है। इस जटिलता का केन्द्र बिन्दु है सामाजिक मूल्यों की बद्धमूलता। जब तक इनमें परिवर्तन घटित नहीं होगा अहिंसक समाज संरचना मात्र कल्पना बनीं रहेगी। आचार्य महाप्रज्ञ ने लिखा-'अहिंसक समाज की संरचना के सामने सबसे बड़ी समस्या है-मूल्यों का परिवर्तन। श्रम, वस्तु और संग्रह के मूल्य बदले बिना अहिंसक समाज रचना की संभावना नहीं की जा सकती।' उन्होंने इस सच्चाई को उकेरा कि 'अहिंसक समाज की स्थापना में सबसे बड़ी बाधा है स्वार्थ। वर्तमान की स्थिति में मनुष्य की स्वार्थवृत्ति को बढ़ने का अवसर मिला है। व्यक्ति इतना स्वार्थी हो गया कि उसे अपने पास-पड़ोस में रहने वालों के सुख-दुःख से कोई मतलब नहीं। ऐसी स्थिति में मूल्यों का अवमूल्यन होना स्वाभाविक है। उनका स्पष्ट अभिमत है कि स्वार्थ शासित समाज में नैतिकता श्रम और स्वावलंबन का मूल्य बढ़ जाता है।' यह मंतव्य समाज के प्रति सापेक्ष सोच का परिचायक है।

समता दृष्टि से निस्पन्न अहिंसक समाज संरचना का विचार महाप्रज्ञ की विराट् विचार धारा का नियामक है। वे कहते-अहिंसक समाज और हिंसक समाज-ये दोनों सापेक्ष शब्द हैं। कोई भी समाज ऐसा नहीं हो सकता, जो केवल हिंसा या अहिंसा के आधार पर चल सके। जीवन-निर्वाह के लिए हिंसा करनी पड़ती है। अपनी और अपने व्यक्तियों तथा वस्तुओं की रक्षा के लिए हिंसा की वाध्यता आती है। इस स्थिति में विशुद्ध अहिंसक समाज की कल्पना कैसे की जा सकती है। समाज हिंसा और अहिंसा दोनों के योग से चलता है। कोरी अहिंसा के बल पर चल नहीं पाता और कोरी हिंसा के बल पर वह टिक नहीं पाता।[95] यह सच्चाई का निदर्शन है।

स्वाभाविक जिज्ञासा है यदि समाज हिंसा-अहिंसा दोनों के योग से ही चलता है तो फिर अहिंसक समाज की कैसी कल्पना? समाधान स्वरूप जिस समाज में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा होती है, मानवीय उसूलों को अपनाया जाता है तथा हिंसा के अल्पीकरण पर बल दिया जाता है वह समाज अहिंसक समाज कहा जाता है। क्रियान्विति में उनका कहना है—समाज व्यवस्था अहिंसा के अनुरूप हो। व्यवस्था अहिंसात्मक नहीं हो और परस्पर सहयोग की भावना भी नहीं होती है तो समाज में हिंसा बढ़ती है और आतंक फैलता है। अहिंसात्मक समाज व्यवस्था से ही सामाजिक विषमताओं को मिटाया जा सकता है। उन्होंने अपने जन्म भूमि टमकोर समाज के उच्च और सम्पन्न वर्ग को अपनी सीमा में आगाह किया कि वे अपने गाँव और जन्मभूमि को भूलें नहीं तथा ग्रामोदय के लिए शिक्षा, चिकित्सा आदि सामाजिक व्यवस्थाओं के लिए एक संगठन तैयार करें जिसमें आम जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ समाज में अहिंसा और नैतिकता का भी विकास हो।[96] स्पष्ट है कि आचार्य महाप्रज्ञ की सोच समाज का पथ-दर्शन करने में कितनी पैनी और प्रखर थी।

ग्राम-व्यवस्था

अहिंसक समाज की मूल इकाई ग्राम-व्यवस्था है। ग्राम-निर्माण का सपना अहिंसक विचारधारा पर बुना गया है। अतः ग्रामीण स्वरूप को जाने बगैर अहिंसक समाज को जानना अधूरा होगा। गांधी ने आदर्श ग्राम की परिकल्पना की। उसका संरचनात्मक, संगठनात्मक ढ़ांचा ऐसा होगा जिसमें सभी को विकास के समुचित अवसर उपलब्ध होंगे। गाँव का प्रत्येक व्यक्ति खुशहाली का जीवन जीयेगा क्योंकि वह सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक दबाव से मुक्त होगा। उन्होंने आत्म विश्वास के साथ कहा कि यदि आदर्श गांव का मेरा स्वप्न पूरा हो जाय तो भारत के सात लाख गाँवों में से हर

एक गाँव समृद्ध प्रजातन्त्र बन जायेगा। उस प्रजातन्त्र का कोई व्यक्ति अनपढ़ न रहेगा, काम के अभाव में कोई बेकार न रहेगा; बल्कि किसी-न-किसी कमाऊं धंधे में लगा होगा। हर आदमी को पौष्टिक चीजें खाने को, रहने को अच्छे हवादार मकान और तन ढ़कने को काफी खादी मिलेगी। यह आदर्श गांव का प्रारूप मौलिक और मानव हित से जुड़ा हुआ है।

उनका यह अभिमत था कि गाँवों की पुनर्रचना का काम कामचलाऊ नहीं, बल्कि स्थायी होना चाहिए। उद्योग, हुनर, तन्दुरूस्ती और शिक्षा; इन चारों का सुन्दर समन्वय करना चाहिए। नयी तालीम में उद्योग और शिक्षा, तन्दुरूस्ती और हुनर का सुन्दर समन्वय है। इन चारों पहलुओं का समुचित विकास ही गाँव की खुशहाली का आधार है। इतना ही नहीं और भी छोटी-मोटी व्यवस्थाओं की ओर इंगित करते हुए गांधी कहते हैं-गाँव में धर्मशाला और रोगियों के इलाज के लिए छोटा-सा उपचार गृह भी होना चाहिए कि हवा, पानी, रास्ते वगैरह खराब न हों। हरेक गाँव में अपना अन्न और वस्त्र गाँव में ही पैदा करने या बनाने की शक्ति होना चाहिए। ऐसे ही गाँव 'स्वावलम्बी' कहला सकते हैं और यदि सारे गाँव ऐसे हो जायें, तो हिन्दुस्तान का दुःख बहुत-कुछ कम हो जाय।[97] इस प्रारूप में हिन्दुस्तान के लाखों गाँवों की अव्यवस्था और दुःख दर्द को दूर कर खुशहाली बहाल की संयोजना की गई है।

ग्रामीण लोगों की पीड़ा को गांधी ने नजदीकी से परखा और एकानुभूति के तौर पर अपना रहन-सहन, खान-पान समग्र रूप से बदल डाला। उनके चिंतन में यथार्थ का दर्शन छुपा है। आत्म निर्भर ग्रामीण-व्यवस्था के आधार पर ही गांधी अहिंसक समाज की संरचना करना चाहते थे। उनकी सोच में-'कारखानों की सभ्यता पर अहिंसात्मक समाज का निर्माण नहीं किया जा सकता। केवल आत्म-निर्भर गाँवों पर ही उसका निर्माण हो सकता है। यदि हिटलर चाहे तब भी वह सात लाख अहिंसात्मक गांवों का विनाश नहीं कर सकता। ध्वंस की उस प्रक्रिया में स्वयं उसी को अहिंसावादी बन जाना होगा। ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था की जो मेरी कल्पना है, उसमें शोषण के लिए कोई स्थान नहीं है और इसलिए हिंसा भी नहीं है, क्योंकि शोषण से ही हिंसा का उदय होता है। इसीलिए अहिंसामूलक होने से पहले ग्राममूलक होना आवश्यक है।' प्रस्तुत चिंतन यथार्थ के धरातल को छूने वाला है क्योंकि अहिंसक समाज की बुनियाद गाँव ही है। उनकी दृष्टि में अहिंसात्मक समाज के आदर्श का मूलाधार राजनैतिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण था जो हजारों गाँवों के उत्पादन के केन्द्रीकरण से जुड़ा हुआ था।

अहिंसा की बुनियाद पर गांधी जिस समाज की रचना करना चाहते थे, उस समाज में केन्द्रीकरण का स्थान नहीं था, ताकि प्रत्येक मनुष्य जीवन में अपने को हर तरह से सुखी और स्वतन्त्र बना सके। उससे (केन्द्रीकरण) बचने का एक ही मार्ग है-अहिंसा। मगर अहिंसा तो अहिंसा के रास्ते से ही आ सकती है, हिंसा के रास्ते से अहिंसा नहीं आ सकती है, जैसे कीचड़ से कीचड़ नहीं धोया जा सकता। कीचड़ धोने के लिए पानी आवश्यक है। अतः अहिंसक समाज में केन्द्रीकृत उद्योगवाद के विरोध में विकेन्द्रित उद्योग एवं केन्द्रीकृत पूँजी के प्रतिपक्ष में विकेन्द्रित पूँजी और ट्रस्टीशिप की बात कही। विकेन्द्रीकरण की पृष्ठभूमि में भारतीय देव संस्कृति का दर्शन छुपा है। 'यदि भारत को अपना विकास अहिंसा की दिशा में करना है, तो उसे बहुत सी चीजों का विकेन्द्रीकरण करना पड़ेगा। केन्द्रीकरण किया जाय तो फिर उसे कायम रखने के लिए और उसकी रक्षा के लिए हिंसाबल अनिवार्य है।'[98] गांधी का स्पष्ट आशय है कि अहिंसा का समुचित विकास यदि समाज के केनवास पर करना

है तो चालू अवधारणाओं में मौलिक बदलाव करना ही होगा। क्योंकि जहाँ केन्द्रीकरण का संग्रहण है वहाँ हिंसा को फलने-फूलने का अवकाश रहता है और अनेक अमानवीय तत्वों को पलने का मौका मिलता है। ठीक इसके विपरीत विकेन्द्रीकरण के द्वारा आर्थिक समानता-समतापूर्ण आदर्श व्यवस्था का सूत्रपात सुगम और सुलभ हो जाता है।

ग्राम स्वराज्य

ग्राम स्वराज्य को वे शोषण-विहीन समानता-युक्त समाज की रचना का आधार मानते थे। आजाद भारत का स्वराज्य एवं ग्राम कैसा हो, का चित्रण करते हुए लिखा-ग्राम स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि वह ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा जो अहम जरूरतों के लिए अपने पड़ोसियों पर भी निर्भर नहीं रहेगा, हालांकि बहुत-सी दूसरी जरूरतों के लिए-जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा-वह परस्पर सहयोग से काम लेगा। हरेक गाँव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरत का तमाम अनाज और कपड़े के लिए कपास खुद पैदा कर ले। उसके पास इतनी अतिरिक्त सुरक्षित जमीन भी होना चाहिये जिसमें ढ़ोर चर सकें और गांव के बड़ों व बच्चों के मन-बहलाव के साधन और खेल-कूद के मैदान का वंदोवस्त हो सके। इसके बाद जमीन बचे तो वह उसमें ऐसी उपयोगी फसलें बोयेगा जिन्हें बेचकर वह आर्थिक लाभ उठा सके, लेकिन गांजा, तंबाकू, अफीम वगैरह हानिकारक चीजों की खेती से वह बचेगा।[99] स्पष्ट तौर पर ग्राम स्वराज्य की कल्पना समाज के प्रत्येक व्यक्ति को आत्म-निर्भर बनाने की उदात्त भावना से संपृक्त थी। यद्यपि वे इस बात को भी मानते थे कि समाज में पलने वाले प्रत्येक व्यक्ति की योग्यताएं समान नहीं होती फिर भी समान अवसर तो सभी को उपलब्ध कराये ही जा सकते हैं।

गांधी ने कहा समाज की मेरी कल्पना यह है कि हम सब समान पैदा हुए हैं, अर्थात् हमें समान अवसर प्राप्त करने का हक है। हाँ, सबकी योग्यता एक-सी नहीं है। यह कुदरती तौर पर असंभव है। चूँकि बुद्धिशाली लोग अधिक कमायेंगे और इस काम के लिए अपनी बुद्धि का उपयोग करेंगे। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति का हक सभी को मिले ताकि सभी सुगमता से अपना जीवन-यापन कर सके। साथ ही अहिंसा के द्वारा आर्थिक समानता कैसे लाई जा सकती है इसका समाधान खोजा गया।

जिसने अहिंसा के आदर्श को अपनाया हो वह अपने जीवन में आवश्यक परिवर्तन करे। हिन्दुस्तान की गरीब प्रजा के साथ अपनी तुलना करके अपनी आवश्यकतायें कम करे। अपनी धन कमाने की शक्ति को नियंत्रण में रखे। जो धन कमाये उसे ईमानदारी से कमाने का निश्चय करें। गांधी का स्पष्ट अभिमत था—यदि अहिंसा को व्यापक क्षेत्र में घटित करना हो, तो सबसे पहले जीविकोपार्जन की विधि अहिंसा को चरितार्थ करने से आरम्भ करनी होगी। मैं अपने लिए जिस ढ़ंग से अन्न जुटाता हूँ उसमें अगर अहिंसा नहीं है, तो आगे फिर मेरे उपलक्ष में अहिंसा की सफलता किस प्रकार हो सकती है। अहिंसा की साधना का इस बिन्दु से हम आरम्भ करें तभी अहिंसा की और हमारी सच्ची परीक्षा है। उसमें स्पष्ट है कि हमको प्रचलित अर्थ-शास्त्र और समाज शास्त्र से प्रकाश प्राप्त नहीं होगा। बना-बनाया कोई दर्शन या विज्ञान हमारा हाथ नहीं थामेगा। उसकी बुनियाद ही जो दूसरी ठहरी। इससे हमकों अपनी श्रद्धा और श्रम से एक नये ही अर्थ-शास्त्र की नींव डालने और नयी अहिंसक समाज रचना के लिए तैयार हो जाना होगा।[100] उनके हृदय में संपूर्ण समाज व्यवस्था को

अहिंसक बनाने की आकांक्षा थी। इसे अभिव्यक्त भी किया-न सिर्फ भारत की बल्कि सारी दुनिया की अर्थरचना ऐसी होनी चाहिये कि किसी को भी अन्न और वस्त्र के अभाव की तकलीफ न सहनी पड़े।

दूसरे शब्दों में, हर एक को इतना काम अवश्य मिल जाना चाहिये कि वह अपने खाने-पहिनने की जरूरतें पूरी कर सके। यह आदर्श निरपवाद रूप से तभी कार्यान्वित किया जा सकता है जब जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं के उत्पादन के साधन जनता के नियंत्रण में रहे। वे हर एक को बिना किसी बाधा के उसी तरह उपलब्ध होने चाहिये जिस तरह कि भगवान की दी हुई हवा और पानी हमें उपलब्ध है; किसी भी हालत में वे दूसरों के शोषण के लिए चलाये जाने वाले व्यापार वाहन न बनें। किसी भी देश, राष्ट्र या समुदाय का उन पर एकाधिकार अन्यायपूर्ण होगा। हम आज न केवल अपने इस दुखी देश में बल्कि दुनिया के दूसरे हिस्सों में भी जो गरीबी देखते हैं, उसका कारण इस सरल सिद्धान्त की उपेक्षा ही है।[101] इसमें गांधी की आत्मव्यथा का स्पष्ट चित्रण है जो उनके अंतरमन की पीड़ा का प्रतिनिधित्व करती है। आचार्य महाप्रज्ञ ने स्वतंत्र रूप से ग्राम-व्यवस्था का जिक्र भले ही न किया हो, पर उनका स्वस्थ समाज रचना का प्रारूप एवं अणुव्रत ग्राम परियोजना में आर्थिक चिंतन गांधी के आर्थिक विचारों से मिलता-जुलता है। अर्थ-व्यवस्था और समाज-व्यवस्था के पारस्परिक संबंध को उन्होंने स्वीकारा है। अहिंसक समाज को उचित आकार देने में आर्थिक पहलू को गौण नहीं किया जा सकता।

अर्थ के संबंध में महाप्रज्ञ के विचार बहुत स्पष्ट एवं सुलझे हुए प्रतीत होते हैं। समाज के क्षेत्र में आर्थिक विकास में किसी को आपत्ति नहीं हो सकती किंतु यह येन-केन प्रकारेण नहीं होना चाहिए। साधन शुद्धि का विवेक अवश्य रहना चाहिए। मूल्यों का ह्रास न हो-समृद्धि के साथ करुणा, संवेदनशीलता का स्त्रोत सूखे नहीं। दूसरों के हित को हानि पहुँचाने वाली वृत्ति त्याज्य है। किसी एक व्यक्ति का स्वार्थ इतना न उभर पाये कि स्वयं का आर्थिक विकास दूसरों को हानि पहुँचाये। हमारे लिए वह अर्थशास्त्र उपयोगी है, जो गरीबी को मिटाये और साथ-साथ हिंसा का संवर्धन भी न करे। आर्थिक समृद्धि और अहिंसा की समृद्धि दोनों की आज अपेक्षा है।[102] उन्होंने अर्थशास्त्र के प्रमुख घटक उत्पादन, वितरण और उपयोग पर भी प्रकाश डाला है।

गरीबी और बेरोजगारी की प्रचण्ड समस्या का समाधान संवेदनशीलता और करुणा में खोजा जा सकता है। उनके शब्दों में-समाजिक प्राणी वह होता है, जो संवेदनशील होता है। जिसमें अपनी अनुभूति का जोड़ होता है, वह दूसरों को भी अपने समान समझता है। अगर संवेदनशीलता का यह सूत्र सफल होता है तो इतनी विशाल धनराशि संहारक अस्त्र-शस्त्र में न लगकर मानव की भलाई में लगती। आर्थिक विचारों की झलक उनके अर्थशास्त्रवेत्ता होने का अहसास कराती है।

भारतीय संस्कृति में पुरुषार्थ चतुष्ट्य का प्रतिपादन किया गया उसमें अर्थ का स्थान नम्बर दो पर और अहिंसा (धर्म) का स्थान प्रथम नम्बर पर रखा। आर्थिक पहलू को धर्म के साथ जोड़कर क्या इसे नया परिवेश प्रदान नहीं किया जा सकता? ऐसा होने से ही सकारात्मक परिणाम संभव होगा। आर्थिक पहलू को जाने बिना अहिंसक समाज-रचना का ज्ञान अधूरा होगा। वर्तमान के संदर्भ में अहिंसा की सफलता का मानदण्ड भी भौतिक-लक्ष्य की पूर्ति बन गया है। आर्थिक कठिनाइयों को मिटा सके तो अहिंसा सफल हुई, यह माना जाएगा और उन्हें न मिटा सकी तो विफल। सचमुच यह भूल भरा चिन्तन है, अहिंसा को लक्ष्यहीन किया जा रहा है। अहिंसा का लक्ष्य जीवन-शोधन

है। उसे अधिक प्रभावशाली किया जाए तो कठिनाइयों को पार करने का द्वार अपने आप खुलता है। अहिंसा का प्रयोग आर्थिक गुत्थी को सुलझाने में सफल हो सकता है। प्रश्न है अर्थ के सम्यक् दर्शन का। उनकी सोच में समाज में या व्यक्ति में न अर्थ का अभाव और न अर्थ का प्रभाव होगा। दोनों वांछनीय नहीं है। किन्तु अर्थ की मात्र उपयोगिता होगी। यह अर्थ का सम्यक् दर्शन है।[103] इस दर्शन के आधार पर समाज में अहिंसक अर्थशास्त्र का विकास किया जा सकता है।

ऐतिहासिक संदर्भ में देखें तो भगवान महावीर ने आर्थिक पहलू को अध्यात्म की मुहर लगाकर सामाजिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया था। इसकी पृष्ठभूमि में महावीर ने अहिंसाव्रती के लिए दो सूत्रों का प्रतिपादन किया-(1) अल्प आरम्भ एवं (2) अल्प परिग्रह। महाप्रज्ञ ने इन सूत्रों को आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुति देकर आर्थिक विचारों को समृद्ध बनाया है। उनका यह विश्लेषण है कि अल्प आरम्भ का आशय लघु व्यवसाय/लघु उद्योग है और अल्प-परिग्रह का आशय आवश्यकतापूरक व्यक्तिगत स्वामित्व हो सकता है। अहिंसक समाज में महाआरंभ (वृहत् व्यवसाय या वृहत् उद्योग) और महापरिग्रह (विपुल संग्रह) व्यक्तिगत नहीं होंगे। उनका समाजीकरण दंडशक्ति के आधार पर नहीं, किन्तु विसर्जन के आधार पर होगा।

महा-आरम्भ और महा-परिग्रह को आज की भाषा में केन्द्रित अर्थ व्यवस्था और केन्द्रित सत्ता कह सकते हैं। जहाँ परिग्रह अल्प है, वहाँ हिंसा भी अल्प है जहाँ परिग्रह विपुल है, वहाँ हिंसा भी बड़ी है। विकेन्द्रित अर्थ व्यवस्था में पहली बात यह है कि संपदा व्यक्ति-व्यक्ति के पास पहुँचे। वह कहीं केन्द्रित न हो। समूचे समाज के पास संपदा पहुँचे। साथ ही विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था अहिंसा के अति निकट है। अध्यात्म का सामाजिक रूप है-लोकतन्त्र और लोकतन्त्र में विकेन्द्रित अर्थ व्यवस्था पर यह अध्यात्म या धर्म का व्यावहारिक प्रतिफलन है।[104] वर्तमान में इस सच्चाई को व्यवहार के स्तर पर उपेक्षित किया गया है और इस आदर्श को भूलाने के परिणाम स्वरूप केन्द्रित-व्यवस्था के दुष्परिणाम हमारे सामने हैं। भ्रष्टाचार, पक्षपात, गैर-जिम्मेदारी, काम-चोरी आदि समाज में व्याप्त हो रहे हैं। जनता का स्वावलंबन, उसकी स्वायत्तता और अन्याय के प्रतिकार की शक्ति कुंठित कर दी गयी। जनता को शराब, जुंआ, व्यभिचार, खेल-तमाशों आदि में फँसाकर निर्बल बनाया गया ताकि वे सिर न उठा सकें।

ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाने की दृष्टि से विज्ञापन तथा टीवी. रेडियो, अखबार आदि के जरिये लोगों में अधिकाधिक भोग की लालसा जगाई जा रही है, यह जानते हुये भी कि वह कभी पूरी नहीं की जा सकती क्योंकि इच्छाओं का कोई अंत नहीं है और पृथ्वी पर साधन सीमित है। एक ओर असीम इच्छाएँ दूसरी ओर ससीम साधन। इन दोनों के बीच संतुलन स्थापित करने का रहस्य अध्यात्म के सनातन सिद्धांत संयम में छुपा है। संयम या अपरिग्रह सनातन मूल्य है। संसार के सब धर्मों ने अपरिग्रह को, अर्थात् संचय न करने को और वस्तुओं पर मलकीयत की भावना न रखने को प्रधानता दी है। अपरिग्रह और संयम केवल व्यक्तिगत साधना का विषय नहीं है, सामाजिक मूल्य भी है। कथन की पुष्टि में गांधी के मन्तव्य को उद्धृत किया 'मनुष्य को अपनी वास्तविक आवश्यकताओं की पूर्ति से संतोष मानना चाहिये और उस मामले में स्वावलंबी होना चाहिये। इतना संयम वह नहीं बरतेगा तो अपने को बचा नहीं सकेगा।'[105] आर्थिक संदर्भ में तथ्यों की प्रस्तुति सामयिक है। महाप्रज्ञ ने इस बात पर बल दिया कि 'अहिंसक समाज में अर्थ और सत्ता का मूल्य सर्वोपरि नहीं होगा। उसमें सर्वोपरि मूल्य होगा मानवता का।' मानवता के हित संपादन की दृष्टि से दोनों

ही महापुरुषों के अर्थ विषयक विचार सामयिक और समाधायक है। जिनमें समाज व्यापी असमानता को मिटाने का दर्शन छिपा है। अपेक्षा है समन्वित प्रयोग की।

आर्थिक प्रारूप बनाम : ट्रस्टीशिप

व्यापक आर्थिक असमानता को देख गांधी का कोमल हृदय द्रवित हो उठा। सामधान स्वरूप ट्रस्टीशिप का सूत्रपात किया। आर्थिक क्षेत्र में दिव्य दर्शन 'न्यासिता' (ट्रस्टीशिप) का सिद्धांत न केवल भारतीय संदर्भ में अपितु विश्व समाज के लिए आशा किरण है। इसकी पृष्ठभूमि में मानव कल्याण का उदात्त भाव छिपा है। अपने मंतव्य को प्रकट करते हुए गांधी ने कहा ट्रस्टीशिप का सिद्धांत इस बात पर आधारित है कि जिसके पास धन है वह उसे अपना समझकर फिजूल खर्च न करे-अमानत समझकर रखे और लोक कल्याण में खर्च करे। धनवान लोग भले ही करोड़ों रुपये कमायें (बेशक, ईमानदारी से) लेकिन उनका उद्देश्य वह सारा पैसा सबके कल्याण में समर्पित कर देने का होना चाहिये। 'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः' यानि, 'अपनी दौलत का त्याग करके तू उसे भोग।' अर्थात् तू करोड़ों खुशी से कमा, लेकिन समझ ले कि तेरा धन सिर्फ तेरा नहीं, सारी दुनिया का है; इसलिए जितनी तेरी सच्ची जरूरतें हो, उतनी पूरी करने के बाद तूं उसका उपयोग समाज के लिए कर।[106] आशय स्पष्ट है कि व्यक्ति अर्थ का उपयोग सामाजिक हित को ध्यान में रखते हुए करे।

न्यासिता की व्यवस्था के संदर्भ में गांधी ने संपत्ति पर तीन प्रकार के स्वामित्व का उल्लेख किया-

1. ईश्वर का स्वामित्व
2. व्यक्ति का निजी स्वामित्व तथा
3. समाज का नैतिक स्वामित्व।

इस मंतव्य को प्रस्तुति दी-संसार की सारी सम्पत्ति भगवान की है और यदि किसी के पास अनुपात से अधिक धन है तो वह उस धन का जनता की ओर से ट्रस्टी या अमानतदार है। न्यासिता के सिद्धांत और आर्थिक समानता की जड़ में धनिक का ट्रस्टीपन निहित है। न्यासिता की व्यवस्था के अन्तर्गत धनिकवर्ग धन का उपभोग अपरिग्रह के नियम के अनुसार करेगा और शेष बचे धन का व्यय सार्वजनिक हित की पूर्ति के लिए करेगा। इस प्रकार न्यासिता की व्यवस्था आर्थिक समानता की स्थापना में समर्थ है।[107]

नैतिक बल के सहारे न्यासिता की व्यवस्था को स्थापित किया जा सकता है जिसके दो प्रमुख साधन हैं—1. विचार-क्रांति एवं 2. अहिंसात्मक असहयोग।

विचार क्रांति एक ऐसा साधन है जिसकी मदद से न्यासिता के सिद्धांत के पक्ष में समाज की नैतिक चेतना जागृत की जा सकती है और धनिक वर्ग को भी आर्थिक समानता एवं न्याय की स्थापना के लिए सहज प्रेरणा दी जा सकती है। इससे हृदय परिवर्तन पूर्वक न्यासिता के सिद्धांत को अपनाया जाता है। इसकी पृष्ठभूमि में गांधी का अहिंसक अर्थशास्त्र बोलता है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा-जो अर्थशास्त्र नैतिक मूल्यों की उपेक्षा करता है, अवहेलना करता है, वह झूठा अर्थशास्त्र है। अर्थशास्त्र के क्षेत्र में अहिंसा को अपनाने का अर्थ है; उस क्षेत्र में अहिंसा के कानून को अथवा नैतिक मूल्यों को दाखिल करना। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का नियमन करने में नैतिक मूल्यों का ध्यान रखना जरूरी है। गांधी की राय में भारत की ही नहीं बल्कि सारी दुनिया की अर्थ-रचना ऐसी होनी

चाहिए जिससे किसी को भी अन्न और वस्त्र के अभाव की तकलीफ न सहनी पड़े। धन का समान वितरण मेरा (गांधी का) आदर्श है। लेकिन जहाँ तक मैं देख सकता हूँ वह आदर्श सिद्ध नहीं किया जा सकता। इसलिए मैं धन के 'न्यायपूर्ण' वितरण के लिए काम करता हूँ। आर्थिक समानता अहिंसापूर्ण स्वराज्य की मुख्य चाबी है। आर्थिक समानता के लिए काम करने का मतलब है, पूँजी और मजदूरी के बीच के झगड़ों को हमेशा के लिए मिटा देना।

जब तक मुट्ठीभर धनवानों और करोड़ों भूखे रहने वालों के बीच बेहद अंतर बना रहेगा, तब तक अहिंसा की बुनियाद पर चलने वाली राज्य-व्यवस्था कायम नहीं हो सकती। यह तो अहिंसक जन चेतना के जागरण से ही संभव होगी। आर्थिक समानता समाज के धरातल पर उतरे तभी गांधी का समतापूर्ण अहिंसक समाज घटित हो सकता है। आर्थिक समानता का अर्थ है सबके पास समान संपत्ति का होना यानि सबके पास इतनी संपत्ति का होना, जिससे वे अपनी कुदरती आवश्यकताएं पूरी कर सकें। आर्थिक समानता का आधार धनिकों का ट्रस्टीपन है। इस आदर्श के अनुसार धनिक को अपने पड़ोसी से कौड़ी भी ज्यादा रखने का अधिकार नहीं है।[108] गांधी के ट्रस्टीशिप सिद्धांत की मूलभूत भावना थी कि धनिक अपने धन के मालिक नहीं ट्रस्टी हैं। यह श्रम और पूँजी के बीच का संघर्ष मिटाने, विषमता और गरीबी हटाने तथा आदर्श एवं अहिंसक समाज की स्थापना करने में योगभूत बनता है। इसके अन्तर्गत अर्थव्यवस्था में पूँजीपतियों या मालिकों को समाज-हित में अपना स्वामित्व छोड़कर ट्रस्टी बनने का अवसर दिया जाता है। आर्थिक क्षेत्र में यह चिंतन गांधी की न केवल भारतीय समाज हेतु अपितु विश्व समाज-व्यवस्था के लिए भी अनुपम देन है।

'ट्रस्टीशिप सिद्धांत' को नैतिक और आध्यात्मिक परिवेश देने वाले आचार्य महाप्रज्ञ के विचार आर्थिक विषमता को मिटाने हेतु मौलिक हैं। वे कहते-'जब तक राष्ट्र और समाज में व्यक्ति को कम-से-कम उसके जीवन निर्वाह की चीज सुलभ न हो, किसी को धन कुबेर बनने का अधिकार नहीं हैं।' कथन में 'ट्रस्टीशिप सिद्धांत' की अर्थात्मम का अवबोध है। उन्होंने आर्थिक समस्या को समाहित करने वाले भगवान महावीर के दो सूत्रों का उल्लेख किया-इच्छा परिमाण और भोगोपभोग परिमाण। जब तक इच्छा और भोग का संयम नहीं होगा, तब तक न तो अहिंसक समाज संरचना का सपना साकार होगा और न ही आर्थिक समस्या सुलझ पाएगी। वर्ग-संघर्ष की क्रांतियां, हिंसक क्रांतियां इसीलिए होती हैं कि व्यक्ति लोभी और स्वार्थी बन जाता है.....यह स्थिति ही क्रांति को जन्म देती है।[109] उनके शब्दों में गरीबी का चरम बिंदु और अमीरी का चरमबिंदु-ये दोनों ही आदमी को हिंसा की ओर ले जाते हैं। हमें इनके बीच का रास्ता खोजना है। मैंने इस विषय में बहुत अध्ययन किया। बहुत गहराई में जाकर इस पर विचार किया तो मुझे लगा कि शायद दुनिया में हिंसा को बढ़ाने के लिए बड़े और अमीर लोग ही सर्वाधिक जिम्मेदार हैं। हमें इस तरह के दर्शन का निर्माण करना है। जहां ये दोनों बिंदु (अमीर और गरीब) न रहे। वह रास्ता नहीं जो आदमी को हिंसा की ओर ले जाए। हमें उन रास्तों का निर्माण करना है जो आदमी को अहिंसा और शांति की ओर ले जाए।

एक और भी पगडंडी है जो आदमी को हिंसा की ओर ले जाती है, वह है अभाव की संकरी गली। हिंसा का एक और जनक है, जिसे अतिभाव कह सकते हैं। यह अतिभाव का रोग बड़े लोगों का रोग है। जिन्हें धन का अपच हो रहा है, समझ लें कि वे अतिभाव की बीमारी से ग्रस्त हैं। मुझे तो पता नहीं, पर सुनता हूँ कि अतिभाव की बीमारी से पीड़ित लोग जिनकी दुनिया आधी रात

के बाद शुरू होती है। डांस बारों में, क्लबों में लाखों-लाखों रूपये एक ही रात में उड़ा देते हैं। इस सच्चाई के साथ उन्होंने अपने भावनात्मक पक्ष को भी उजागर किया-मैं जब भी यह सुनता और पढ़ता हूँ कि बड़े और धनाढ्य लोग विवाह और दूसरे आयोजनों में करोड़ों रूपये फूंक रहे हैं तो बरबस कहना पड़ता है कि ये ही लोग हैं, जो हिंसा और अशांति को बढ़ावा दे रहे हैं, नक्सलवाद, उग्रवाद जैसी प्रवृत्तियों को बढ़ावा दे रहे हैं। वे अपने चिंतन को बदलें। पैसा कमाना एक कला है, किंतु पैसे का उपयोग कहाँ और किस तरह करना है, यह विवेक की बात है।.....उपयोग वहाँ होना चाहिए जहाँ से समस्याएँ खड़ी हो रही हैं। हमारी अँगुली वहाँ टिके, जहाँ दर्द है, वहाँ तो ध्यान ही नहीं जा रहा है और नए-नए दर्द पैदा किये जा रहे हैं। हम अपने ही प्रयत्नों से हिंसा और अशांति को बढ़ाते जा रहे हैं। मैं चाहता हूँ कि बस एक स्थान पर समाज का ध्यान केन्द्रित हो जाए कि हम ऐसा कोई काम नहीं करेंगे, जिससे समाज में प्रतिक्रियात्मक हिंसा को प्रोत्साहन मिले और उसका परिणाम हमें भी भुगतना पड़े या हमारी अगली पीढ़ी को भुगतना पड़े। दृष्टिकोण में अगर इतना परिवर्तन हो जाए तो शायद हम हिंसा की समस्या को सुलझाने की दिशा में अग्रसर हो सकेंगे।[110] मंतव्य के आलोक में आर्थिक स्वस्थता का रहस्य छुपा है।

समस्या समाधान की भूमिका पर अर्थ के उपयोग की विधि का ज्ञान आवश्यक है। महाप्रज्ञ स्पष्ट शब्दों में कहते-उपयोग करना अधिकतर लोग नहीं जानते। अर्थ का उपयोग ऐसे कार्यों में करते हैं जिनसे कोई लाभ नहीं होता। फिजूल का खर्च करके, अपने अर्थ का प्रदर्शन करके वे अपने अहं की तुष्टि भले ही कर लें, किंतु उस खर्च का, उस व्यय का कोई लाभ नहीं होता, न वैयक्तिक दृष्टि से न सामाजिक दृष्टि से।

इच्छा के आधार पर तीन प्रकार के वर्गीकरण बनते हैं—महेच्छा, अल्पेच्छा और अनिच्छा। पहला वर्ग उन लोगों का है, जिनमें इच्छा का कोई संयम नहीं है। दूसरा वर्ग श्रावक का है, जिनमें इच्छा का परिमाण होता है। तीसरा वर्ग मुनि का है जिनमें इच्छा का पूर्ण संयम होता है। जहाँ महेच्छा है, वहाँ महान् परिग्रह होगा। जहाँ अल्पेच्छा है वहाँ अल्प परिग्रह होगा और जहाँ अनिच्छा है वहाँ अपरिग्रह है।

नैतिकता की पहली शर्त है-इच्छा परिमाण और उसकी अन्तिम बात है भोगोपभोग की सीमा। जब इच्छा परिमित होती है और भोगोपभोग सीमित होता है, तब प्रामाणिकता, अर्थार्जन के साधनों में शुद्धि आदि अपने आप फलित होने लगते हैं। जहाँ भोग की लालसा है, वहाँ क्रूरता बढ़ेगी तो अर्थार्जन के साधन शुद्ध नहीं रहेंगे। अर्थाजन के साधन अशुद्ध होंगे तो अप्रामाणिकता बढ़ेगी। यह सारा चक्र है। इच्छा-परिमाण और भोगोपभोग की सीमा-इन दोनों के बीच में है। अगर ये दो होते हैं तो नैतिकता फलित होने लगती है।

भोगोपभोग की समस्या ने आर्थिक समस्या को जटिल बनाया है। गरीबी और भूखमरी की समस्या इतनी जटिल नहीं है जितनी जटिल है भोगोपभोग की समस्या।[111] उपभोक्तावादी मनोवृति दूसरे के स्वत्व को हड़पने में कोई संकोच नहीं करती। सीमित वस्तु और असीमित उपयोग ने संतुलन को बिगाड़ दिया और उसीका दुष्परिणाम है आज की छीनाझपटी। ऐसे वातावरण में हिंसा को खुलकर खेलने का मौका मिलता है।[112] भोगोपभोग की आकांक्षा ने मानव को क्रूर बनाया है। इसके आर्थिक पक्ष को देखें तो अर्थोष्मा और क्रूरता दोनों जुड़े हुए हैं।

क्रूरता और शक्ति को अलग-अलग नहीं किया जा सकता। दोनों साथ-साथ चलते हैं। लोगों

को मखमली टोपियां अच्छी लगती हैं। कैसे बनती हैं ये टोपियां? न जाने कितने प्राणियों को सताया और मारा जाता है तब ये निर्मित होती हैं। बढ़िया जूते, बढ़िया बैग, अमुक-अमुक बढ़िया उपकरण-इन सबके लिए हजारों-लाखों प्राणियों को क्रूरता से सताया जाता है, पीटा और मारा जाता है तब इन चीजों का उत्पादन संभव बनता है। आदमी इन प्राणियों की करुण आह से बने पदार्थों को सुख और सुविधा का कारण मानता है। यह कहना चाहिए-शक्ति का सिद्धान्त सार्वभौम है तो क्रूरता का सिद्धान्त भी सार्वभौम है।[113] महाप्रज्ञ के प्रस्तुत विचार में तीखापन भले ही भाषित हो पर अर्थ के नैतिक पक्ष को उजागर करने में मौलिक हैं।

आर्थिक व्यवस्था के स्वरूप का चित्रण करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने बतलाया आर्थिक व्यवस्था का सबसे बड़ा सूत्र हो सकता है-पूरे समाज की न्यूनतम आवश्यकताएं पूरी हो जाएँ। रोटी, कपड़ा, मकान, दवा और शिक्षा के साधन प्रत्येक व्यक्ति को सुलभ हो जाएँ। आर्थिक समानता की बात छोड़ दें।.....इतना हो सकता है-जीवन की प्रारम्भिक और मौलिक आवश्यकताएं सबको समान रूप से मिले। अपनी-अपनी विशेष योग्यता से व्यक्ति लाभ कमाए, उसमें दूसरों को आपत्ति न हो। रस्किन और गांधी का मत था-एक न्यायाधिकारी को जितना मिले उतना ही एक वकील को मिले। इसका मतलब है, जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके, उतना तो अवश्य मिले। यह बात भी तब तक सफल नहीं हो सकेगी, जब तक आर्थिक विकास के साथ-साथ आर्थिक संयम और भोगोपभोग के संयम की बात नहीं जुड़ेगी।

आर्थिक विकास पर बहुत बल दिया गया, अधिक उत्पादन, अधिक आय और समान वितरण इन पर ध्यान दिया गया, किन्तु इनके साथ दो बातों को जोड़ना चाहिए था-आर्थिक संयम और इच्छा का संयम। आज के अर्थशास्त्री आर्थिक विकास के साथ संयम की बात को जोड़ देते तो एक नया समीकरण बनता।[114] मौलिक चिंतन के साथ कथन में यथार्थ का चित्रण है। आज का व्यक्ति, समाज व राष्ट्र केवल संग्रह करना जानते हैं, संयम की बात नहीं जानते। आज केवल आर्थिक व भौतिक विकास की बात पर बल दिया जाता है। नियंत्रण व संयम की बात पर नहीं, जो समस्या का बहुत बड़ा कारण है।

अर्थ जगत की समस्या से महाप्रज्ञ भली भाँति वाकिफ थे। उन्होंने कहा-मैंने तो सारे देश में घूम-घूम कर देखा है कि सबसे बड़ी कोई समस्या है तो वह है अनैतिकता की समस्या। अगर व्यापार जगत में, उद्योग जगत में राजनीति के तंत्र में और घर्मतंत्र में नैतिकता होती तो आज स्वतंत्रता के पचास वर्ष बाद भी गरीबी की समस्या मुँह बाएं खड़ी न होती, वह कभी की विदा हो चुकी होती। समस्या के मूल में भ्रष्टाचार का बोलबाल है। भष्टाचार तो केंसर की तरह है। इसे जितना जल्दी हो सके समाप्त करने की बात सराहनीय है। यह कोई शरीर से जुड़ा हुआ मसला नहीं है। यह सीधा दिल और दिमाग से ताल्लुक रखता है।

उद्योगपतियों में एक भावना जगे कि हम भ्रष्टाचार-मुक्त समाज की रचना में सहयोगी बनेंगे। ...दिशा और दृष्टि को बदलना है। स्थितियाँ अपने आप बदल जाएगी।[115]

आर्थिक समस्या का मौलिक समाधान प्रस्तुत करते हुए बतलाया-अर्थ पर भी नैतिकता का अनुशासन, अहिंसा का अनुशासन और अध्यात्म का अनुशासन हो तो अर्थ भी समस्या पैदा नहीं करेंगा। अनुशासन के अभाव में अर्थ की लोलुपता इतनी बढ़ जाती है, जो आगे चलकर विभिन्न अपराधों को जन्म देती है....अर्थ की लिप्सा आदमी को उस स्तर पर ले जाती है, जहाँ एकमात्र

अर्थार्जन ही उनका लक्ष्य बन जाता है।

आदमी के दिल-दिमाग पर अर्थ बहुत अधिक हावी हो गया है। अर्थ का साम्राज्य इतना विस्तृत हो गया कि इससे अब कोई क्षेत्र अछूता नहीं रहा है। आज बाजार में, कोर्ट, कचहरी और न्यायालयों में, राजनीति में, सामाजिक संदर्भों में, मंदिर और मस्जिदों में भी इसकी घुसपैठ हो गई है। परिवर्तन का एक मात्र उपाय है—अहिंसा की चेतना का जागरण। करुणा, संवेदना अथवा त्याग की चेतना का जागरण।[116]

नैतिकता की प्रतिष्ठा में प्रामाणिकता और इच्छा परिमाण महत्वपूर्ण है। 'अहिंसा का अर्थशास्त्र' अब एक ज्वलंत विषय बन गया है। आज का जो अर्थशास्त्र है, वह अहिंसा को नहीं, हिंसा को बढ़ाने वाला है। जरूरत है ऐसे अर्थशास्त्र की जो अहिंसा पर आधारित हो। आज के अर्थशास्त्र की मूल धारणा है इच्छा बढ़ाओ, उत्पादन बढ़ाओ, इससे विकास होगा। अहिंसा के अर्थशास्त्र में इच्छा को बढ़ाने की नहीं, बल्कि इच्छा के परिसीमन और अल्पीकरण की बात होगी। यह संयम का अर्थशास्त्र होगा। आचार्य महाप्रज्ञ के सान्निध्य में 'इकोनोमिक्स एंड नॉन वायलेंस' पर कई सेमिनार आयोजित हुए हैं।[117]

व्यक्तिगत स्वामित्व के संदर्भ में उनके विचार थे कि अहिंसक समाज का सदस्य व्यक्तिगत धन कितना रखे, यह संख्या निर्धारित करना बड़ा जटिल है। इसका सरल सूत्र यह हो सकता है-जितनी आवश्यकता उतना संग्रह।

अहिंसक समाज का सदस्य श्रमिक या बौद्धिक होने से पहले संयमी होगा। अतः वह अवास्तविक आवश्यकताओं का अंबार खड़ा नहीं करेगा। उसका संग्रह दो नियामक तत्त्वों से नियंत्रित होगा— 1. अर्जन के साधनों की शुद्धि 2. विसर्जन।

अहिंसक समाज में साधन-शुद्धि का साध्य से कम मूल्य नहीं होगा। अतः अहिंसक समाज का सदस्य अर्जन के साधनों की शुद्धि का पूर्ण विवेक रखेगा। वह व्यवहार में प्रामाणिक रहेगा। प्रामाणिकता के संदर्भ होगें-

- किसी वस्तु में मिलावट कर या नकली को असली बताकर नहीं बेचेगा।
- तौल-माप में कमी-बेशी नहीं करेगा।
- चोर-बाजारी नहीं करेगा।
- राज्य-निषिध वस्तु का व्यापार व आयात-निर्यात नहीं करेगा।
- सौंपी या धरी (बन्धक) वस्तु के लिए इनकार नहीं करेगा।

अर्जन के साधनों की शुद्धि रखते हुए उसे जो प्राप्त हो, वह केवल उसके लिए ही नहीं होगा। अहिंसक समाज की आवश्यकता व्यक्तिगत संयम के द्वारा नियन्त्रित होगी। उसका सदस्य अतिरिक्त अर्थ का विसर्जन कर देगा। विसर्जित अर्थ सामाजिक कोष के रूप में संग्रहीत होगा। समाज-कल्याण के लिए उसका उपयोग होता रहेगा।[118] महाप्रज्ञ के ये विचार महात्मा गांधी के आर्थिक न्यासिता संबंधी विचारों से मेल खाते हैं।

आर्थिक प्रशिक्षण सूत्र

स्वस्थ समाज का अपरिहार्य अंग आर्थिक स्वस्थता है। आर्थिक स्वस्थता संपोषक सूत्रों के प्रशिक्षण पर उन्होंने बल दिया, वो निम्न हैं—

- विसर्जन की मनोवृत्ति का प्रशिक्षण
- असंग्रह का प्रशिक्षण।
- विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था का प्रशिक्षण।
- विश्व-शान्ति का प्रशिक्षण।
- स्वस्थ-समाज का प्रशिक्षण।
- अर्थार्जन में प्रामाणिकता का प्रशिक्षण।
- संविभाग की मनोवृत्ति का प्रशिक्षण।
- उपभोग की असीम लालसा के नियमन एवं उपभोग के सीमाकरण का प्रशिक्षण।

इन सूत्रों के प्रायोगिक परिणाम स्वरूप समुन्नत आर्थिक विकास का सपना साकार किया जा सकता है। इनके व्यापक प्रशिक्षण की अपेक्षा है। प्रशिक्षण का प्रारूप व्यक्तिगत स्वामित्व, सामूहिक स्वामित्व, राज्य का स्वामित्व, सहकारिता, केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था, विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था इन सबकी मीमांसा के पश्चात् तैयार किया गया है, यह सर्वोत्तम प्रामाणित हुआ है। व्यवहार के धरातल पर देखा जाये तो सामूहिक स्वामित्व और राज्य का स्वामित्व दोनों आर्थिक विकास की दौड़ में पिछड़ गये हैं।[119] महाप्रज्ञ के शब्दोंमें-वर्तमान अर्थशास्त्रीय अवधारणा में भी परिवर्तन जरूरी है। आज सापेक्ष अर्थशास्त्र की बहुत आवश्यकता है। इस विषय पर अर्थशास्त्रियों के साथ कई सेमिनार और गोष्ठियां कर चुके हैं और प्रायः सभी अर्थशास्त्रियों ने रिलेटिव इकोनोमिक्स की अवधारणा का समर्थन किया है।[120] प्रस्तुत अभिमत वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में आर्थिक विकास की नई संभावनओं को उजागर करता है। इसमें व्यक्ति, समाज, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय अर्थानुबंधी समस्याओं को सुलझाने का पर्याप्त अवकाश है।

सुसंगठित समाज का आधार

समाज व्यापी विषमताओं के निवारण हेतु नई समाज-व्यवस्था और अहिंसा के संबंध में गांधी ने कहा 'आज समाज में जो असमानताएँ वर्तमान है, वह विशेष रूप से जनता के अज्ञान के कारण है। जनता जैसे-जैसे अपनी सहज शक्तियों का अनुभव करती जायगी वैसे-वैसे समस्त असमानताएं नष्ट होती जायेगी। यदि यह क्रांति हिंसा द्वारा हुई तो स्थिति जैसी आज है, उसके विपरीत ही होगी।. ....आज लोग जिस नई व्यवस्था की आशा लगाये हुए हैं, वह तो अहिंसा द्वारा अर्थात् हृदय परिवर्तन द्वारा ही उत्पन्न हो सकेगी। मेरी अपील और कार्य-प्रणाली शुद्ध अहिंसा की है।'[121] अपनी इसी आस्था के सहारे उन्होंने समाज व्यापी अज्ञान को दूर करने का प्रयत्न किया।

सुव्यवस्थित समाज और अहिंसा दोनों में निकट का संबंध है। हिंसा के आधार पर कभी स्वस्थ समाज नहीं बन सकता। तर्क की कसौटी पर जिस दिन वनमानुष ने हिंसा के क्रूर कारनामें त्याग कर अहिंसा की राह पर कदम बढ़ाये तभी मानव समाज का निर्माण संभव हुआ। इससे आगे जब समाज ने सुव्यवस्था कायम करने के लिए नियमोपनियम अपनाये तब उसका स्वरूप निखर पाया। महात्मा गांधी के इस चिंतन से जुड़ा हुआ आचार्य महाप्रज्ञ का मन्तव्य है कि मानवीय सभ्यता और संस्कृति का उच्चतम विकास बिन्दु है-अहिंसा। मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है इसलिए वह हर क्षेत्र में विकास की यात्रा करता है। सामाजिक स्तर की अहिंसा एक विकास है। अध्यात्म के स्तर पर सर्वोच्च

विकास है। समाज की आचार-संहिता उसके बिना पल्लवित नहीं हो सकती। अध्यात्म की आचार-संहिता उसके बिना बन नहीं सकती। अध्यात्म का पहला बिन्दु अहिंसा है और चरम बिन्दु भी अहिंसा है।[122] अहिंसा महाप्रज्ञ के अनुसार अध्यात्म जगत् और समाज की आचार-संहिता, दोनों के विकास की महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

सुसंगठित समाज रचना के मौलिक पहलू की आधार भित्ति का चित्रण किया-अहिंसा के बिना, सत्य और अपरिग्रह के बिना समाज नहीं बनता।

अहिंसा विकास का पहला तत्त्व है-भावना का परिवर्तन। हिंसा के अनेक कारण हैं उनमें एक बड़ा कारण है-भावना, एक प्रकार की धारणा का न्यास। आदमी-आदमी को आदमी नहीं मान रहा है यह एक भावना है और जब तक इस भावना का परिवर्तन नहीं होता तब तक इस सामाजिक मूल्य का विकास नहीं हो सकता।.....अध्यात्म के आचार्यों ने इस भावना-परिवर्तन के लिए कुछ शब्द दिए-'आत्मौपम्य,' 'आत्म तुला', 'सब जीव समान,' सब जीव अपनी आत्मा जैसे हैं।' ये शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण हैं और गंभीर अर्थ की सूचना देने वाले हैं। इस भावना के अभाव में जातीय विद्वेष पनपा, सांप्रदायिक विद्वेष और राज्य का सीमागत विद्वेष पनपा। यदि यह भावना विकसित होती कि सब जीव समान हैं मेरी आत्मा के जैसी ही दूसरे की आत्मा है, जैसी सुख-दुःख की अनुभूति मुझे होती है, वैसी ही सामने वाले व्यक्ति को होती है, तो यह जातीय और साम्प्रदायिक आक्रोश-विद्वेष कभी नहीं पनप पाता।

वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डाला जाये तो गंभीरता नजर आयेगी। रंग के आधार पर जाति के आधार पर धारणाओं के आधार पर भी विद्वेष पनपा है। एक संप्रदाय वाला एक वर्ण विशेषवाला दूसरे सम्प्रदाय वाले दूसरे वर्ण वाले को हीन मान रहा है और अपने आपको उच्च प्रमाणित कर रहा है। ये सारे विद्वेष इस आधार पर पनपे हैं कि अहिंसा का सूत्र था मानव जाति की एकता का, उसे भूला दिया गया।

'मनुष्य जाति एक है'-इस मूल्य की प्रतिष्ठा अनेक समस्याओं का एक समाधान है। कुछ लोगों ने इस दिशा में प्रयत्न किए इसमें सर्वाधिक उल्लेखनीय प्रयत्न है महात्मा गांधी एवं आचार्य महाप्रज्ञ के। उन्होंने इन सारे विद्वेषों को मिटाने और अहिंसा के प्रति आस्था उत्पन्न करने का अथक प्रयास किया, परन्तु इतिहास इस बात का साक्षी है, घटनाएं स्वयं प्रमाण हैं कि वह प्रयत्न एक सीमा तक सफल हुआ, किन्तु व्यापक स्तर पर सफलता अभी भी बाकी है।

पर, सामाजिक धरातल पर यह सच्चाई है जब-जब संघर्ष, अशांति, विवाद, उग्र बने वहाँ ध्यान तत्काल समझौते की ओर जाता है। जब पंजाब की समस्या उग्र बनी पूरे राष्ट्र का ध्यान केन्द्रित हो गया कि आतंकवाद समाप्त होना चाहिए, हिंसा की उग्रता अब नहीं चलनी चाहिए। इसका अर्थ यह है कि आदमी हिंसा चाहता नहीं, करता है। वह चाहता अहिंसा है, चाहता शान्ति है किन्तु उन्माद आता है और उन्माद में वह हिंसा, अशांति कर डालता है।

यह बात समझ में आनी चाहिए कि समाज का मूल्य अहिंसा ही हो सकता है और इसी आधार पर समाज बना है। वह नहीं होता तो समाज बनता ही नहीं। एक आदमी दूसरे आदमी को खाने और काटने को तैयार रहता। किन्तु सबसे पहला समझौता यही हुआ कि भाई! तुम भी अपनी सीमा में रहो और मैं भी अपनी सीमा में रहूँ और हम दोनों साथ-साथ जीएँ, समाज बनकर जीएँ। काल के लम्बे फासले से आदमी अहिंसा की इस बात को भूल-सा गया है। अतः सम्यक् उपचार हेतु

बचपन से ही अहिंसा की इस आस्था का निर्माण-'सब जीव समान है, मनुष्य वैसा ही है जैसा मैं हूँ और जैसा मैं हूँ वैसा ही दूसरा मनुष्य है' किया जाये। इस आस्था के निर्माण की पृष्ठभूमि में आचार्य महाप्रज्ञ ने दो महत्त्वपूर्ण सूत्रों का उल्लेख किया–

1. धारणा या भावना का परिवर्तन 2. प्रेम या मैत्री का विकास।

हिंसा का मूल है-घृणा। जब तक घृणा पैदा नहीं होती, आदमी हिंसा नहीं कर सकता। लड़ना होता है, युद्ध करना होता है तो सामने वाले के प्रति घृणा पैदा की जाती है। यदि यहूदी जाति के प्रति घृणा पैदा नहीं की जाती तो लाखों यहूदियों को बिना मौत नहीं मारा जाता। पहले घृणा पैदा की जाती है और फिर हिंसा की जाती है। आज भी जितना आतंकवाद चल रहा है वह सारा घृणा के आधार पर चल रहा है। प्रेम उत्पन्न होने पर कोई किसी को सता नहीं सकता। प्रेम उत्पन्न करना, प्रेम का विकास करना, मैत्री का विकास करना, यह अहिंसा का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। कबीर ने यहां तक लिखा–

'पोथा पढ़-पढ़ जग भया, पंडित भया न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।'

आज की समस्या का, हिंसा की उग्र घटनाओं का मूल कारण है इस प्रेम के आदर्श को भूलाना।[123] व्यापक जन संपर्क के आधार पर आचार्य महाप्रज्ञ का यह मन्तव्य बना कि प्रेम, मैत्री, करुणा के आदर्श को प्रतिष्ठित करके ही अहिंसक समाज संरचना का आंशिक सपना पूरा किया जा सकता है।

आध्यात्मिक विकास में अहिंसा की सूक्ष्मतम साधना का मनन धार्मिक जगत् का मान्य विषय है। पर अहिंसा को स्वस्थ समाज, नैतिक समाज संरचना में अनिवार्य तत्त्व के रूप में गांधी और महाप्रज्ञ ने समान रूप से स्वीकारा है। धर्म के क्षेत्र में अहिंसा का प्रतिपादन जितना सच है उतना ही व्यावहारिक, सामाजिक जीवन को आनन्दमय बनाने के लिए अहिंसा का आचरण अनिवार्य है। इस संबंध में महाप्रज्ञ का मंतव्य है कि राग-द्वेषमुक्त चेतना अहिंसा है। यह धर्म का आध्यात्मिक स्वरूप है। जीव की हिंसा नहीं करना, झूठ नहीं बोलना, चोरी नहीं करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, परिग्रह नहीं रखना-यह धर्म का नैतिक स्वरूप है। राग-द्वेषमुक्त चेतना आत्मिक स्वरूप है। वह किसी दूसरे के प्रति नहीं है और उसका सम्बन्ध किसी दूसरे से नहीं है। जीव की हिंसा नहीं करना-यह दूसरों के प्रति आचरण है। इसलिए यह नैतिक है। नैतिक नियम धर्म के आध्यात्मिक स्वरूप से ही फलित होता है। इसका उदय धर्म का आध्यात्मिक स्वरूप ही है। इसलिए यह धर्म से भिन्न नहीं हो सकता।

हर्बर्ट स्पेन्सर और थॉमस हक्सले तथा आधुनिक प्रकृतिवादी और मानवतावादी चिंतकों ने धर्म और नैतिकता को पृथक् स्थापित किया है। यह संगत नहीं है। जो आचरण धर्म की दृष्टि से सही है, वह नैतिकता की दृष्टि से सही है, वह नैतिकता की दृष्टि से गलत नहीं हो सकता। धर्म अपने में और नैतिकता दूसरों के प्रति-इन दोनों में यही अंतर है। किन्तु इनमें इतनी दूरी नहीं है जिससे एक ही आचरण को धर्म का समर्थन और नैतिकता का विरोध प्राप्त हो।[124] धर्म का तत्त्व अहिंसादि व्यक्ति में जितना सघन होगा समाज का ढांचा उतना ही सबल होगा। व्यक्ति-व्यक्ति का आचरण-व्यवहार ही सामाजिक संदर्भ में कार्यकारी बनता है। अतः स्वस्थ समाज संरचना में महाप्रज्ञ अहिंसादि नैतिक मूल्यों का होना अनिवार्य मानते थे। वे कहते हैं व्यक्ति और समाज दो हैं। अनेकान्त की

दृष्टि से विचार करें तो दोनों एक ही हैं। समाज-व्यक्ति विकास की दृष्टि से दोनों के विकास का एक बड़ा आधार सूत्र बनता है-अहिंसा। जहाँ समाज है, वहाँ आश्वासन बहुत जरूरी है। अहिंसा सबसे बड़ा आश्वासन है। अहिंसा के द्वारा आश्वासन तब मिलता है, जब वातावरण भयमुक्त होता है। इसीलिए भगवान महावीर ने बार-बार कहा-किसी से डरो मत। उपनिषद् में कहा गया-सारी दिशाएँ मेरी मित्र है। मैत्री और अभय के संस्कार जितने सघन बनते हैं, अहिंसा की चेतना उतनी ही पुष्ट बनती है।[125]

समग्र दृष्टि से समाज रचना के आधार का आकलन करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने बताया वैयक्तिक विशेषताओं की उपेक्षा कर केवल समाज रचना की कल्पना करने वाले अपनी कल्पना को साकार नहीं कर पाते। यदि समाजवाद और साम्यवाद के साथ जन्मजात वैयक्तिक विशेषताओं (शरीर रचना, आनुवंशिकता, मानसिक चिन्तन की शक्ति, भाव, संवेदन, संवेग, ज्ञान अथवा ग्रहण की क्षमता) का समीकरण होता तो समाज रचना को स्वस्थ आधार मिल जाता है। समाजीकरण के लिए जिन आधार सूत्रों की आवश्यकता है, वे जन्मजात वैयक्तिक विशेषताओं से जुड़े हुए हैं।

- समाज रचना का एक आधार है-परस्परोपग्रह अथवा परस्परावलंबन।
- समाज रचना का दूसरा आधार है-संवेदनशीलता।
- समाज रचना का तीसरा आधार है-स्वामित्व की सीमा।
- समाज रचना का चौथा आधार है-स्वतंत्रता की सीमा।
- समाज रचना का पाँचवाँ आधार है-भाव का विकास, बौद्धिक विकास, चिन्तन का विकास, शिल्प और कला का विकास।
- संग्रहनय अभेद प्रधान दृष्टि है। उसके आधार पर समाज निर्माण होता है।
- व्यवहार नय भेद प्रधान दृष्टि है उसके आधार पर व्यक्ति की वैयक्तिकता सुरक्षित रहती है।

व्यक्ति और समाज-दोनों के समन्वय पूर्वक यदि व्यवस्था, नियम, कानून बनाया जाए तो उसका अनुपालन सहज और व्यापक होगा।[126]

सर्वोदय समाज

संगठित समाज की मीमांसा के साथ अपनी स्वतंत्र सोच के आधार पर जिस सर्वोदय का चित्रांकन गांधी ने किया उसको जाने बिना अहिंसक समाज रचना का ज्ञान अधूरा होगा। सर्वोदय समाज की पृष्ठभूमि में 'सर्वोदय' शब्द को समझना जरूरी है। यह एक ऐसा गूढ़ार्थ शब्द है जिसमें आत्मिक, नैतिक, वैयक्तिक, सामाजिक, राजनैतिक सह वैश्विक विकास के सूत्र निहित हैं। सर्वोदय का शाब्दिक अर्थ है-सबका उदय, सब प्रकार से उदय एवं सबके द्वारा उदय। इसके बीज सूत्र प्राचीन ग्रंथों में खोजे जा सकते हैं—

- वेद सभी प्राणियों के उदय की बात करते हैं।
- महाभारत-'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
  सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भागभवेत।।'
- ईशावस्योपनिषद् के प्रथम श्लोक में-
  'ईशावास्यमिद्म सर्वं यत् किंचित जगात्यां जगत।
  तेन व्यक्तेन भुंजीथाः मा गृथः कश्यचिद् धनम्।।'

- गीता में 'आत्मवत् सर्वभूतेषु, सर्वभूत हितेरताः।'
- जैनाचार्य समंतभद्र ने -'सर्वोदय तीर्थमिदं त्ववेव' स्पष्टतया 'सर्वोदय' शब्द का प्रयोग किया।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो इसके आध्यात्मिक और सामाजिक उभय अर्थ ध्वनित हैं। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में रस्किन के 'अन्टू दिस लास्ट' का गुजराती छायानुवाद 'सर्वोदय' गांधी ने किया।

गांधी ने सर्वोदय विचार को सामाजिक संदर्भ में प्रयुक्त करते हुए इसके मुख्य तीन पहलू प्रकट किये-

1. एक व्यक्ति की भलाई सभी की भलाई में निहित है।
2. वकील और नाई के काम भी समान हैं क्योंकि सभी को अपने काम से आजीविका चलाने का अधिकार है।
3. एक मजदूर, किसान एवं कारीगर के जीवन जीने योग्य हैं।[127]

यह 'सर्वोदय' का संबोध कालांतर में गांधी के लिए रामराज्य कल्पना का आधार बना।

समाज में अहिंसा की विकसित भूमिका पर गांधी सर्वोदय समाज की रचना करना चाहते थे। ऐसा समाज जिसमें न शोषण हो, न शासन हो। सत्य और अहिंसा की धूरी पर निर्मित वह समाज अपने आपमें आदर्श होगा जिसमें शरीर श्रम अनिवार्य होगा। ऐसा समाज जिसमें जात-पाँत, धर्म का भेदभाव न होगा, शोषण की गुंजाइश न होगी और व्यक्ति तथा समाज दोनों को अपने विकास का पूरा अवसर मिलेगा। इस उद्देश्य की सिद्धि में निम्न साधनों का अवलम्बन इष्ट रहा-

• सामाजिक एकता (भिन्न-भिन्न धर्मों के मानने वालों में तथा जातियों में मित्रता)। • अस्पृश्यता को दूर करना। • जात-पांत को समाप्त करना। • नशाबन्दी। • खादी और ग्रामोद्योग को विकसित करना। • गाँवों की सफाई। • नयी तालीम। • पुरुषों और स्त्रियों में अधिकार और प्रतिष्ठा की समानता। • आरोग्य और स्वच्छता। • भारतीय भाषाओं का विकास। • संकीर्ण प्रान्तीय भाव को मिटाना। • हिन्दी भाषा का राष्ट्र भाषा के रूप में प्रचार। • आर्थिक समानता। • खेती की उन्नति। • मजदूरों का संगठन। • आदिवासी कल्याण • विद्यार्थी-संगठन। • कुष्ठ-रोगियों की सेवा। • अनाथ दरिद्रों की सेवा। • गो सेवा। • प्राकृतिक चिकित्सा।[128] इन निर्दिष्टित बिन्दुओं के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि गांधी ने कितने उन्नत सर्वोदय समाज संरचना का सपना संजोया था। समय-समय पर इन तथ्यों की विस्तार से मीमांसा करने में अपनी पूरी शक्ति लगाई। यद्यपि लोग 'सर्वोदय-समाज' परिकल्पना को 'यूटोपिया' की संज्ञा देते थे। पर जिस दिन समाज की व्यवस्था इस दर्शन की अनुरूप घटित होगी वह समय बड़ी उपलब्धि का होगा। इसके पीछे गांधी की जो मनसा थी उसमें समग्र समाज को अहिंसा-प्रेम-सत्य और भाईचारे के मूल्यों से अभिस्नात कर दुनिया के समक्ष भारत-भू का एक नया अहिंसक आदर्श प्रस्तुत करना था।

अन्त्योदय

सर्वोदय समाज का आधार 'अन्त्योदय' की पृष्ठभूमि में देखा जा सकता है। गांधी ने सभी के उदय यानि विकास का जो आदर्श प्रस्तुत किया उसकी मूलभूत इकाई 'अन्त्योदय' ही है। सामाजिक न्याय का यह तकाजा है कि जो गरीब या कमजोर है उसको पहले ऊपर उठाना चाहिए। इसीलिए गांधी ने अन्त्योदय की बात कही थी। विकास की पद्धति ऐसी होनी चाहिये कि उसका लाभ सबसे कमजोर को सबसे पहले मिले।[129] उनकी यह सोच समाज के प्रत्येक व्यक्ति के उत्थान का आधार बन सकती है।

गांधी के समाजवादी विचारों में अनुभूति का आलोक और ऋषि-परंपरा का आदर्श है। उन्होंने कहा—'मेरा समाजवाद किताबों का नकली समाजवाद नहीं, सहज और स्वाभाविक समाजवाद है। अहिंसा में मेरी आस्था से वह उत्पन्न हुआ है। अहिंसा का आचरण करने वाला ऐसा कोई आदमी हो ही नहीं सकता, जो सामाजिक अन्याय का विरोधी न हो।' स्पष्ट रूप से उनके समाजवाद में व्यक्ति का विरोध नहीं, समाज में पलने वाली गलत-रुग्ण प्रथा-परंपरा का विरोध था। सरल शब्दों में उनका समाजवाद स्वस्थ परंपरा का परिपोषक एवं वैयक्तिक शांति का पक्षधर था। गांधी के सर्वोदय-समाज के प्रकल्प को महाप्रज्ञ के संस्कारक्षम, स्वस्थ समाज परिकल्पना में झांका जा सकता है।

संस्कारक्षम, स्वस्थ समाज

अहिंसामूलक संस्कारक्षम समाज की परिकल्पना आचार्य महाप्रज्ञ की निर्मल सोच से निष्पन्न है। इसमें मौलिकता और सामयिकता का अद्‌भुत संगम है। संस्कारक्षम समाज की पृष्ठभूमि को प्रकट करते हुए उन्होंने बताया—अहिंसा शब्द जैसे ही सामने आता है, अनेक भ्रान्तियों का जाल सामने आ जाता है। अहिंसा के सन्दर्भ में कौन-सा सिरा थामें, यह आम लोगों के लिए जानना कठिन है। अहिंसा का प्रारंभ बिन्दु है-हिंसा का संकल्प मन में न आए। संकल्पजा हिंसा न हो, मानसिक, वैचारिक और प्रतिक्रियात्मक हिंसा न हो। साथ ही उन्होंने इस बात पर बल दिया कि जीवन-शैली को अहिंसक बनाने के लिए अल्पेच्छा, अल्पारंभ और अल्पपरिग्रह का सिद्धान्त पूर्ण प्रासंगिक है।[130] समाज के स्तर पर यह आवश्यक है।

समाज में हिंसा पनपने के जब तक आधार विद्यमान रहेंगे तब तक पूर्ण अहिंसक समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। समाज व्यापी हिंसा के उत्प्रेरक तत्त्वों का जिक्र करते हुए महाप्रज्ञ कहते है 'जातिवाद, रंगभेद, गरीबी, क्षेत्रवाद-इन पूर्वाग्रहों से ग्रस्त समाज समय-समय पर हिंसा की आग में ईंधन डालता रहता है। जातिवाद और रंगभेद के सर्पदंश से छुटकारा पाने के लिए मानवीय एकता के विकास का प्रशिक्षण अत्यन्त अपेक्षित है।' इतिहास के केनवास पर इसे आंका जा सकता है। समाज में व्याप्त विजातीय तत्त्वों का परिष्कार हो इस हेतु महापुरुषों ने समय-समय पर सामाजिक अहिंसक क्रांति का स्वर बुलंद किया। भगवान महावीर को उद्धृत करते हुए महाप्रज्ञ ने कुछ मौलिक तथ्यों का उल्लेख किया—

1. उस समय दास प्रथा चालू थी। सम्पन्न मनुष्य विपन्न मनुष्य को खरीदकर दास बना लेता था। महावीर ने इस हिंसा के प्रति जनता का ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने एक सूत्र दिया-दास बनाना हिंसा है, इसलिए किसी को दास मत बनाओ।
2. उस समय के पुरुष स्त्रियों को और शासक वर्ग शासितों को पराधीन रखना अपना अधिकार मानते थे। महावीर ने इस ओर जनता का ध्यान खींचा कि दूसरों को पराधीन बनाना हिंसा है। उन्होंने अहिंसा सूत्र दिया-दूसरों की स्वाधीनता का अपहरण मत करो।
3. उच्च और नीच-ये दो जातियां समाज-व्यवस्था द्वारा स्वीकृत थी। उच्च जाति नीच जाति से घृणा करती थी। उसे अछूत भी मानती थी। महावीर ने इस व्यवस्था को अमानवीय करार दिया। उन्होंने बलपूर्वक कहा-जाति वास्तविक नहीं है। जाति-व्यवस्था परिवर्तनशील है, काल्पनिक है। इसे शाश्वत का रूप देकर हिंसा को प्रोत्साहन मत दो। किसी मनुष्य

से घृणा मत करो। उन्होंने सब जाति के लोगों को अपने संघ में सम्मिलित कर 'मनुष्य जाति एक है'-इस आन्दोलन को गतिशील बना दिया।

4. उस समय स्वर्ग की प्राप्ति के लिए पशु की बलि दी जाती थी। महावीर ने कहा-स्वर्ग मनुष्य का उद्देश्य नहीं है, उसका उद्देश्य है निर्वाण-परमशान्ति। पशुबलि से स्वर्ग नहीं मिलता। जो पशु बलि देता है, वह मूक पशुओं की हिंसा कर अपने लिए नरक का द्वार खोलता है।
5. यह माना जाता था कि युद्ध में मरने वाला स्वर्ग में जाता है। महावीर ने इसकी अवास्तविकता का प्रतिपादन करते हुए कहा-'युद्ध हिंसा है। वैर से वैर बढ़ता है। उससे समस्या का समाधान नहीं होता।'
6. आक्रमण मत करो। मांसाहार और शिकार का वर्जन करो।[131] भगवान महावीर द्वारा निर्दिष्ट अहिंसक समाज क्रांति के ये आधारभूत तत्त्व वर्तमान समाज व्यवस्था को स्वच्छ एवं स्वस्थ बनाने में अहं भूमिका रखते हैं।

सामाजिक परिवेश में अहिंसा के स्वरूप का जिक्र महाप्रज्ञ ने किया—'समाज के किसी भी व्यक्ति का शोषण नहीं करना, लूट-खसोट नहीं करना, पीड़ा नहीं पहुँचाना, आघात नहीं करना, हीन भावना पैदा नहीं करना आदि-आदि समाजाभिमुखी अहिंसा है। आज समाजाभिमुखी अहिंसा की ओर ध्यान बहुत कम है। स्वाभिमुखी अहिंसा की ओर भी ध्यान केन्द्रित नहीं है। केवल छोटे प्राणियों की ओर अभिमुखी अहिंसा ही ज्यादा चल रही है। चींटी को नहीं सताना, नहीं मारना उसका एक निदर्शन बन सकता है।'[132] समाज के धरातल पर इन मौलिक घटकों को उतारने का प्रयत्न किया जाये तो परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त होगा। अहिंसा विकास की नई सँभावनाएँ उजागर होगी।

स्वस्थ समाज के स्वरूप का चित्रण करते हुए महाप्रज्ञ ने बतलाया 'जिस समाज में आश्वासन, परस्परता, सामाजिकता और संवेदनशीलता होती है वह समाज स्वस्थ होता है।' समाज में कमजोर, असहाय, बच्चे, बूढ़े, गरीब, रोगी सभी श्रेणियों के लोग होते हैं। उन सभी को सहयोग, सहानुभूति समाज में मिलनी चाहिए। जहाँ परस्पर सुख-दुःख बाँटने की मानसिकता है वही समाज वास्तव में स्वस्थ समाज कहलाने का अधिकारी है।

स्वस्थ समाज संरचना के आधारभूत बिन्दुओं का उल्लेख करते हुए इसके मौलिक स्वरूप को प्रस्तुत किया। इसके संयोजन का पहला आधार बिन्दु है-आत्मानुशासन। जब आत्मानुशासन जागता है तब आदमी में अहिंसा के भाव प्रबल बनते हैं।

स्वस्थ समाज का दूसरा सूत्र है-मानवीय एकता में विश्वास। आदमी में अपना अहं है इसीलिए वह घृणा को महत्त्व दे देता है। अमुक लोग छोटे हैं, अछूत हैं, काले हैं इसीलिए हमारे पास नहीं बैठ सकते, हमारे साथ एक वाहन में भी नहीं चल सकते, हमारी बस्ती में नहीं बस सकते-आदि कुछ ऐसी अहं वृत्तियाँ हैं, जिससे आज भी आदमी ग्रसित है। दक्षिणी अफ्रीका इसी भयानक व्याधि से ग्रसित है। नीग्रों लोगों को लेकर यहाँ कितना भेदभाव बरता जा रहा है। महात्मा गांधी को इसीलिए वहां कितना कष्ट झेलना पड़ा था। आज भी वह समस्या पूरी नहीं सुलझी है।

जो समाज आत्मानुशासन से भावित होता है, वह शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व में विश्वास करता है। उसे हम चाहें तो अहिंसक समाज कह दें, शांतिवादी समाज कह दें, चाहें शोषणमुक्त समाज कह दें, वह वास्तव में स्वस्थ समाज है। समाजवादियों तथा साम्यवादियों ने भी ऐसी ही समाज की

परिकल्पना की है। आत्मानुशासन के प्रशिक्षण के बिना, अथवा अणुव्रत के प्रशिक्षण के बिना ऐसा समाज कभी संभव नहीं है।

स्वस्थ समाज में ही संवेदनशीलता, सहानुभूति तथा करुणा का विकास होता है।

स्वस्थ समाज-संरचना के लिए यह आवश्यक है कि आजीविका अपवित्र अर्थात् अप्रामाणिक न हो। जब भी आदमी अप्रामाणिक होता है तो उसके मन में बहने वाला करुणा का स्रोत सूख जाता है।

स्वस्थ व्यक्ति ही स्वस्थ समाज का निर्माता होता है। व्यक्ति की स्वस्थता उसके आहार पर भी बहुत कुछ निर्भर करती है। यह देखा गया है-जिन व्यक्तियों का आहार शुद्ध और सात्विक होता है, उनका विचार और व्यवहार भी सात्विक होता है। अतः सात्विक आहार तथा व्यसनमुक्त जीवन स्वस्थ समाज व्यवस्था के प्रमुख अंग है।[133] इनकी उपेक्षा कर समाज का वांछित विकास नहीं किया जा सकता। संपूर्ण भारत भ्रमण के दौरान महाप्रज्ञ ने समाज व्यापी विषमताओं को बारीकी से आंका और समाधान की शैली में बताया। स्वस्थ-समाज निर्भर करता है नैतिक-आत्मिक गुणों के विकास पर। विकास के मानक हैं-

1. अहं विलय की चेतना का जागरण।
2. परस्परता की चेतना का जागरण।
3. त्याग की चेतना का जागरण।
4. अर्जन के साथ विसर्जन की चेतना का जागरण।[134]

इनके समुचित विकास से स्वस्थ समाज परिकल्पना को क्रियान्वित किया जा सकता है।

अहिंसक समाज के प्रस्थान में एक महत्त्वपूर्ण आयाम है-सुविधावादी दृष्टिकोण में बदलाव। महाप्रज्ञ ने इंगित किया—हम प्रदूषण से चिन्तित हैं, त्रस्त हैं। सुविधावादी दृष्टिकोण प्रदूषण पैदा कर रहा है। उस पर हमारा ध्यान नहीं है। मैं मानता हूं, समाज सुविधा को छोड़ नहीं सकता; किन्तु वह असीम न हो, यह विवेक आवश्यक है। यदि सुविधाओं का विस्तार निरन्तर जारी रहा तो अहिंसा का स्वप्न कभी यथार्थ में परिणत नहीं होगा। हमें सुविधावादी दृष्टिकोण को समाप्त करना है, विचारों में मोड़ लेना है। उनका स्पष्ट मंतव्य रहा कि यदि हम यह चाहते हैं कि सामाजिक जीवन में अधिकतम अहिंसा या शांति हो, उपद्रव न हो, अपराध न हो, आक्रामक मनोवृत्तियां न हों, आतंकवाद न हो तो सुविधावादी दृष्टिकोण को बदलना होगा। दोनों बातें साथ नहीं चल सकती।[135] सुविधावाद अहिंसक समाज का बाधक तत्त्व है। इसके चलते व्यक्ति श्रम की संस्कृति को भूलकर केवल भोग-विलास में लिप्त होकर अपनी कर्मजा क्षमताओं को कुंठित कर देता है। इससे न केवल वैयक्तिक विकास अवरुद्ध होता है अपितु सामाजिक विकास पर प्रश्नचिन्ह लग जाता है। अतः सुविधावादी मनोवृत्ति के परिष्कार एवं श्रम-चेतना के जागरण से ही समाज उन्नति के साथ अहिंसा का वरण कर सकता है।

स्वस्थ समाज का स्वरूप उसकी विकास प्रक्रिया को निर्धारित करता है। अहिंसक समाज में फलने-फूलने वाले तत्त्वों का सूत्रात्मक शैली में प्रतिपादन महाप्रज्ञ का किसी समाज शास्त्री से कम नहीं है। वे सूत्र हैं—

1. अर्थार्जन के साधनों की शुद्धि
2. सत्ता का विकेन्द्रीकरण
3. मूल्यों की यथार्थता

4. श्रम का उचित मूल्यांकन
5. नैतिकता का विकास
6. कर्तव्य की प्रेरणा
7. स्वार्थ का विसर्जन या स्वार्थ संतुलन।[136]

जिस समाज में इन तत्त्वों का उचित स्थान है, विस्तार है, प्रसार है, प्रतिष्ठा है, वही अहिंसक स्वस्थ समाज कहा जा सकता है फिर वह दुनिया के किसी भी कोने में क्यों न हो?

अहिंसा यात्रा

अहिंसक समाज निर्माण में आचार्य महाप्रज्ञ का मौलिक योगदान है। व्यक्ति-व्यक्ति की अहिंसक चेतना जागने पर अहिंसक समाज का स्वरूप निष्पन्न होगा। जब तक व्यक्तिशः चेतना में परिवर्तन नहीं होगा स्वस्थ समाज संरचना का सपना अधूरा रहेगा। वे समाज परिवर्तन की पृष्ठभूमि में अहिंसा की तालीम को महत्वपूर्ण मानते थे। अहिंसक समाज निमार्ण के प्रयत्नों की कड़ी में हाल ही में संपादित सप्त वर्षीय (2001-8) अहिंसा यात्रा महत्वपूर्ण है। अहिंसा यात्रा का कारवां राजस्थान के रेतीले टीलों से चलकर दरिया के किनारे मोहमई मुंबई तक पहुँचा। इस बीच गुजरात, मध्यप्रदेश, हरियाणा, पंजाब आदि अनेक प्रांतों में अहिंसा का सिंहनाद करता हुआ देश की राजधानी दिल्ली में अपनी पहचान बनाई। जन साधारण से लेकर राष्ट्रपति के दिलों में अहिंसा यात्रा के शास्ता ने महात्मा गांधी की स्मृतियाँ जीवंत बनाई। लोग कहने लगे एक ऐसा फकीर संत, अहिंसा से ओतःप्रोत, मानवता की भाषा में बोलता है। समाज, राष्ट्र का व्यक्ति-व्यक्ति कैसे शांति का जीवन जीए, रहस्य बतलाता है। मानों इक्कीसवीं सदी का एक और गांधी फिर से स्वतंत्र भारत का नैतिक पथ प्रशस्त कर रहा है। लोगों की इस सोच का एकमात्र राज है-इस अवस्था में, जीवन के 8-9 वें दशक में भी व्यक्तिगत अनुकूलता को गौणकर कठोर यात्रा पथ का चयन मानव को शांति का संदेश देने के लिए महाप्रज्ञ ने स्वीकार किया।

अहिंसा यात्रा के व्यापक उद्देश्य, कार्य और उपलब्धियों की विषद् विवेचना यथाशक्य 'प्रायोगिक स्वरूप' में पाठ्य सुलभ रहेगी। प्रस्तुत संदर्भ में मात्र उसके आंशिक सामाजिक स्वरूप की मीमांसा अभिष्ट है। आचार्य महाप्रज्ञ ने अहिंसा यात्रा में तीन शब्दों पर विशेष ध्यान केन्द्रित कर लोगों को समझाने का प्रयत्न किया-स्वस्थ व्यक्ति, स्वस्थ समाज और स्वस्थ अर्थव्यवस्था। व्यक्ति और समाज स्वस्थ बनें। समाज की छोटी इकाई परिवार है। बड़ी इकाई समाज है। परिवार में शांति कब रह सकती है? समाज में, महानगर में शांति कब रह सकती है? पूरे राष्ट्र में शांति कब रह सकती है? अगर सज्जन चरित्र का विकास नहीं होता तो फिर कभी शांति का वातावरण नहीं रहता। भय, आशंका, संदेह, कलह, लड़ाई-झगड़ा, आरोप-प्रत्यारोप और आक्षेप-प्रत्याक्षेप चलता रहेगा और आदमी रोते-रोते एक दिन मर जाएगा और बात समाप्त हो जाएगी।

अहिंसा के द्वारा कैसे समाज में शांति का वातावरण बनें और कैसे सज्जन चरित्र का विकास हो? इस संदर्भ में उन्होंने व्यापक चिंतन किया और बताया अहिंसा के बिना सज्जन चरित्र का विकास नहीं हो सकता। अहिंसा के माध्यम से ही वह संभव हो सकता है। इसलिए अहिंसा के मर्म को समझने का प्रयत्न करें। अहिंसा के संबंध में हमारी समझ बहुत स्थूल है। अहिंसा के मर्म को नहीं समझ पा रहें हैं। उसकी गहराई को समझ नहीं पा रहे हैं। हमने अहिंसा यात्रा में अहिंसा के सैंकड़ों

पहलुओं पर विचार किया है। सामान्य लोग यही समझते हैं कि मारना हिंसा है और नहीं मारना अहिंसा है।

अहिंसा के हजारों पर्याय हैं। पर्यायों पर हमने समझने और समाझाने का प्रयत्न किया है। इससे वातावरण का परिष्कार भी हुआ है। सज्जन चरित्र को समझने का प्रयत्न करें और सज्जन चरित्र के द्वारा शांतिपूर्ण वातावरण का निर्माण किया जा सकता है। जीवन का आनंद प्राप्त हो सकता है।[137]

उन्होंने सज्जन चरित्र के मानक प्रस्तुत कर अहिंसक समाज की भूमिका को अधिक सुगम बनाया है। उसके मुख्य घटक हैं-शांत रहता है, दूसरों के दोष सभा में नहीं कहता, दूसरे की समृद्धि देखकर जलन नहीं करता, ईर्ष्या नहीं करता, संतोष का अनुभव करता है। दूसरे के कष्ट निवारण का उपाय खोजना। अपनी प्रशंसा नहीं करता, अपनी श्लाघा नहीं करता, न्याय मार्ग से विचलित नहीं होता, औचित्य का उल्लंघन नहीं करता, क्षमा का चारण करता है।

समाज परिवर्तन के संबंध में अहिंसा यात्रा में महाप्रज्ञ ने स्पष्ट कहा- समाज का ढ़ांचा हम नहीं बदल सकते। यह हमारा काम नहीं है। किंतु समाज की सोच को बदलने के काम में हम लगे हुए हैं। दहेज उत्पीड़न और भ्रूणहत्या की समस्या तभी सुलझेगी, जब आदमी का चिंतन बदलेगा। सबसे पहले इस संदर्भ में जनता का अज्ञान और भ्रम मिटना चाहिए, उसकी सोच परिष्कृत होनी चाहिए।

महिला समाज में जागृति की लहर पैदा करते हुए महाप्रज्ञ ने कहा-भ्रूण हत्या रोकने का अभियान और ज्यादा तीव्र और व्यापक होना चाहिए। इसके लिए पूरे समाज को आंदोलित करना है। महिलाएँ अपनी महिला जाति को बचाने के लिए आगे आएं। इस समय उनके अस्तित्व का सवाल पैदा हो गया है। अगर महिलाएँ न चेतीं तो बहुत बड़ी विभीषिका उनके सामने है।

पंजाब में प्रतिवर्ष चालीस हजार भ्रूणों की हत्या की बात सुनकर महाप्रज्ञ का करुण हृदय द्रवित बन बोल उठा-अजन्में कन्या भ्रूण को कोख में ही समाप्त करना कितनी बड़ी विभीषिका है, इससे ही अंदाजा लगा सकते हैं कि आने वाले दिनों में इसका परिणाम क्या होगा?.....एक भीषण युद्ध लड़ा जा रहा है। युद्ध में भी वर्षभर में चालीस हजार सैनिकों की हत्या नहीं होती होगी। यह युद्ध कानून और दंड के द्वारा नहीं रूकेगा। इसके लिए हृदय परिवर्तन आवश्यक है। भीतर की चेतना बदले, तब कहीं जाकर यह जघन्य कार्य रूकेगा। व्यक्ति के भीतर हिंसा की जो उथल-पुथल चल रही है, उसे रोकने के लिए उसके मनोभाव को परिवर्तित करने का प्रयत्न किया जाए। यह बात मनुष्य के मन-मस्तिष्क में समाजाए कि अजन्में शिशु की हत्या करना घोर पाप है, तब कहीं जाकर भ्रूणहत्या पर अंकुश लगेगा।[138] अहिंसा यात्रा के दौरान भ्रूण हत्या का मुद्दा हर जगह प्रमुख रूप से उठाया गया। गाँवों में बहुतसी ऐसी स्त्रियां महाप्रज्ञ के सामने आई, जिनके मन में प्रायश्चित का भाव था। वे कहती-'हमें मालूम नहीं था यह इतना बुरा काम है। अपनी अज्ञानता के कारण ऐसा कदम उठाया।' ऐसा कहते हुए वे रो पड़तीं वे हमसे (महाप्रज्ञ से) प्रायश्चित की मांग करती।[139] कथन में अतिरंजना नहीं यथार्थ का निदर्शन है।

अहिंसा यात्रा में नारी उत्थान के व्यापक प्रयत्नों में दहेज का मुद्दा भी उठाया गया। महाप्रज्ञ ने निःसंकोच अपनी सभाओं में कहा-आज दहेज की बीमारी कैंसर से भी अधिक घातक बन रही है। वह अनेक परिवारों की अनेक कन्याओं की बलि ले रही है। कन्या या तो भ्रूण के रूप में ही

समाप्त कर दी जाती है। सैकड़ों कन्याएँ अपनी उपेक्षा और स्वयं को माता-पिता की चिंता का कारण समझते हुए आत्महत्या का रास्ता भी अपना लेती हैं। यह एक बहुत बड़ी त्रासदी है। समय रहते इस विषय में समाज सचेत नहीं हुआ तो मानव जाति अपने लिए बहुत बड़ा संकट खड़ा कर लेगी। प्रकृति का संतुलन जब भी गड़बड़ाता है, कोई न कोई बड़ा संकट जरूर खड़ा होता है। आश्चर्य यह है कि समाज के चिंतनशील लोग भी इस ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं।[140] यह उनकी अन्तर्व्यथा का चित्रण है। समाधान स्वरूप हृदय परिवर्तन प्रविधि का व्यापक प्रशिक्षण सुझाया और उसके प्रयोग करवायें।

अहिंसा यात्रा के अधिशास्ता ने गरीब से गरीब तबके के लोगों से लेकर राजनीति में सक्रिय व्यक्तियों से सामूहिक एवं व्यक्तिशः संपर्क साधा और उनकी समस्याओं का उचित समाधान किया। उनके द्वारा निर्दिष्ट संतुलित विकास का चतुष्कोण-आर्थिक, भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक, अहिंसक समाज निर्माण में योगभूत बन सकता है। क्रियान्वयन हेतु आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा अर्थ शास्त्री, समाजशास्त्री, मनोवैज्ञानिक, शिक्षाशास्त्री, वैज्ञानिक, धर्मगुरु सब एक साथ मंच पर बैठकर अर्थव्यवस्था का नया प्रारूप प्रस्तुत करें जिससे वर्तमान समस्याओं का समाधान संभव हो सके। समाज संबंधी अनेक पहलुओं पर अहिंसा यात्रा में चिंतन-मनन और समाधान सूत्र खोजे गयें।

यद्यपि बीसवीं शताब्दी में एक नए समाज की रचना का प्रकल्प बहुत प्रखरता से सामने आया। समाजवादी समाज-रचना, अहिंसक-समाज-रचना, स्वस्थ-समाज-रचना आदि अनेक रचना-विधियों का सिद्धांत सामने आता रहा। पर कोई भी नई समाज-रचना आकार नहीं ले सकी। कारण मस्तिष्कीय रचना की जटिलता है। उसमें सोचने का प्रकोष्ठ अलग है और चिंतन को क्रिया में बदलने का प्रकोष्ठ अलग है। ज्ञानात्मक और क्रियात्मक दोनों प्रकोष्ठों में सामंजस्य किए बिना नए समाज की रचना के स्वप्न को आकार नहीं दिया जा सकता।

नए समाज की रचना अथवा अहिंसक-समाज की रचना केवल पदार्थ परिवर्तन, केवल व्यवस्था-परिवर्तन के आधार पर नहीं की जा सकती। उसके लिए यौगलिक युग की चेतना अपेक्षित है। उस चेतना के सेतु है–

- आत्मानुशासन की चेतना
- स्वावलम्बन की चेतना
- संग्रहमुक्त चेतना
- शासन मुक्त चेतना
- सम्बन्ध मुक्त चेतना
- वैर मुक्त चेतना
- रोगातंकमुक्त चेतना
- उपशांत राग-द्वेष की चेतना

महाप्रज्ञ का मानना था कि किसी भी एकांगी दृष्टिकोण पर अहिंसक समाज की रचना नहीं की जा सकती। केवल हृदय परिवर्तन एकांतवादी दृष्टिकोण है। केवल दंडशक्ति भी एकांतवादी दृष्टिकोण है। हृदय-परिवर्तन और दंडशक्ति-दोनों के संतुलित योग के आधार पर अहिंसक समाज की रचना की जा सकती है। यह अनेकांतवादी दृष्टिकोण है।[141] यथार्थ के धरातल पर जब समाज में नैतिक मूल्यों का उत्थान होगा, आध्यात्मिक तत्त्वों का समाज व्यवस्था में समावेश होगा और व्यक्ति-

व्यक्ति की चेतना का जागरण होगा तभी समतापूर्ण, शोषणमुक्त समाज की रचना संभव बनेंगी। इसी आधार पर अहिंसक समाज का वास्तविक निर्माण हो सकेगा और वही लोकतन्त्र की स्वस्थता के लिए वरदान सिद्ध होगा।

सुरक्षात्मक पहलू

अहिंसक समाज के सुरक्षात्मक पहलू पर प्रकाश डालते हुए गांधी ने कहा-अहिंसक समाज में पुलिस आज की पुलिस से बिल्कुल ही भिन्न प्रकार की होगी। उसमें अहिंसा में विश्वास रखने वालों की भरती होगी। वे लोगों के सेवक होंगे, सरदार नहीं। लोग उनकी सहायता करेंगे और वे दिन प्रतिदिन कम होते जाने वाले उपद्रवों का सरलता से समाधान कर सकेंगे। पुलिस के पास कुछ शस्त्र तो होंगे, पर उनका उपयोग शायद ही कभी होगा। वास्तव में देखा जाय, तो इस पुलिस को सुधारक के रूप में समझना चाहिए। ऐसी पुलिस का उपयोग मुख्यतया चोर-डाकुओं पर नियंत्रण रखने के लिए ही होगा। अहिंसक शासन में मजदूर-मालिकों का झगड़ा क्वचित् ही होगा। हड़तालें शायद ही होंगी। क्योंकि अहिंसक बहुमत की प्रतिष्ठा स्वभावतः इतनी होगी कि समाज के आवश्यक अंग इस शासन का आदर करने वाले होंगे। साम्प्रदायिक झगड़े भी इस शासन में नहीं होने चाहिए।[142] अहिंसक समाज का यह सुरक्षापक्ष प्रचलित सुरक्षा-व्यवस्था से सर्वथा नवीन है। इसमें प्रशासन की जरूरत ही कभी कभार होगी क्योंकि इस समाज में परस्परता, भाई-चारे के साथ जीने वाले लोग होंगे।

ग्राम स्वराज्य के शासन बल के विषय में गांधी ने लिखा 'अहिंसा की-अर्थात् सत्याग्रह और असहयोग की सत्ता ही ग्राम-समाज का शासन बल होगा। गाँव की रक्षा के लिए ग्राम-सैनिकों का एक ऐसा दल रहेगा, जिसे लाजमी तौर पर बारी-बारी से गाँव के चौकी-पहरे का काम करना होगा। ...ग्राम स्वराज्य में आज के प्रचलित अर्थों में सजा या दंड का कोई रिवाज नहीं रहेगा। ग्राम सभा स्वयं ही गाँव की धारा-सभा और न्याय सभा होगी, उसके द्वारा चुनी हुई पंचायत गाँव की कार्यकारिणी होगी।' यह ग्राम सुरक्षा की सुगम प्रक्रिया है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति को आत्मानुशासन जगाने का अवकाश रहेगा। गाँव की सुरक्षा में ग्रामीण स्वयं चौकीदार होंगे, पहरेदार होंगे तो अधिक सजगता से गाँव की रक्षा होगी।

सुरक्षा व्यवस्था के उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में गांधी ने रामराज्य व्यवस्था का सूत्रपात किया। रामराज्य स्वराज्य का आदर्श है। इसका अर्थ है धर्म का राज्य, न्याय और प्रेम का राज्य, अहिंसक स्वराज्य या जनता का स्वराज। राम राज्य में एक ओर अथाह सम्पत्ति और दूसरी ओर करुणा-जनक फाकेकशी नहीं हो सकती; उसमें कोई भूखा मरने वाला नहीं हो सकता; उस राज्य का आधार पशुबल न होगा, बल्कि लोगों के प्रेम और समझ-बूझकर बिना डरे दिये हुए सहयोग पर वह अवलंबित रहेगा। राम राज्य का अर्थ है कम-से-कम राज्य। उसमें लोग अपना बहुत कुछ व्यवहार परस्पर मिलकर अपने आप चलायेंगे। कानून गढ़-गढ़कर अधिकारियों के द्वारा दंड के भय से उनका पालन कराना उसमें लगभग नहीं होगा।

उसमें सुधार करने के लिए जनता धारासभा या अधिकारियां की राह देखती बैठी न रहेगी। बल्कि लोगों के चलाये सुधारों के अनुकूल पड़ने वाले कानून में सुधार करने के लिए व्यवस्थापिका सभाएं और व्यवस्था करने के लिए अधिकारी यत्न करेंगे। उसमें सब धर्म, सब वर्ण और सब वर्ग समान भाव से मिल-जुलकर रहेंगे और धार्मिक झगड़ें या क्षुद्र स्पर्धा, अथवा विरोधी-स्वार्थ सरीखी

चीज ही न होगी। उस राज्य में स्त्री का पद पुरुष के समान ही होना चाहिए। यह एक ही देश या जनता के लिए नहीं बल्कि सारी दुनिया के उत्तम राज्य का आदर्श है। यदि एक जगह भी वह सिद्ध हो जाय तो फिर उसकी छूत सारी दुनिया में फैल जानी चाहिये। यह स्थिति आने पर भिन्न-भिन्न राज्यों में झगड़े का कारण ही न रहेगा अर्थात् युद्ध जैसी चीज ही न रह सकेगी। सारे मतभेद, विरोध, झगड़े अहिंसक ही निपटा करेंगे।[143] इस प्रकार की उत्तम व्यवस्था ही गाँव के विकास में योगभूत बन सकती है और अहिंसक व्यवस्था का गौरव पा सकती है। क्योंकि इसमें दंड, ताड़ना के लिए नहीं व्यक्ति का हृदय बदलने के लिए दिया जायेगा।

अहिंसक समाज के स्वप्न को साकार बनाने की प्रक्रिया में शांति सेना का गठन गांधी की अहिंसक सोच का प्रायोगिक उपक्रम था। दंगा-फसाद-अशांत वातावरण को अहिंसक रीति से नियंत्रित करने में शांति सेना की भूमिका महत्वपूर्ण है उसका सैनिक जिस आस्था और लगन से अहिंसात्मक कारवाई करने के लिए संकल्पबद्ध होता है उसके परिणाम सकारात्मक निकलते हैं। रचनात्मक कार्यों के संपादन में शांति सेना की भूमिका अहिंसक समाज को साकार करने में योगभूत बनती है।

हिंसा के प्रतिकार, सामाजिक न्याय के उत्थान और मानव के अमन-चैन हेतु अहिंसक समाज की सुरक्षा-व्यवस्था के संबंध में महाप्रज्ञ का अभिमत है कि व्यवस्था का स्वरूप नियन्त्रण है। उसमें स्थिति के समीकरण की क्षमता है। इसलिए व्यवस्था के परिणाम से अहिंसा को नहीं आंकना चाहिए। उसकी सफलता जीवन की पवित्रता में निहित है। स्वतन्त्रता की रक्षा अहिंसा से हो सकती है। हिंसा या दण्ड-शक्ति की माया जितनी बढ़ती है, उतनी ही परतन्त्रता बढ़ती है।[144] अहिंसक समाज व्यवस्था में आत्मा की पवित्रता का लक्ष्य प्रमुख रहे ओर दण्ड-शक्ति का प्रयोग कम-से-कम किया जाये ताकि प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता सामाजिक धरातल पर सुरक्षित रह सके।

क्या अहिंसक समाज सुरक्षा के लिए पुलिस और सेना पर निर्भर होगा या उसे उनकी अपेक्षा नहीं होगी? इस संबंध में महाप्रज्ञ ने कहा अहिंसक समाज की स्थापना होने पर आंतरिक मामलों में सेना के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं होगी और पुलिस की आवश्यकता भी कम-से-कम होगी। अहिंसक समाज में अणुव्रत का यह व्रत अनिवार्यतः पालनीय होगा—'मैं किसी पर आक्रमण नहीं करूँगा और आक्रमक नीति का समर्थन भी नहीं करूँगा।' अहिंसक समाज में सेना आक्रामणकारी नहीं होगी। उसका काम केवल अपनी सीमा की सुरक्षा करना ही होगा।[145] कथन में गांधी के मंतव्य की प्रतिध्वनि है।

सम्यक् व्यवस्था का निपात सामाजिक समृद्धि का परिचायक है। जिस समाज में उचित व्यवस्था-मर्यादा का अभाव होता है वह उच्छृंखल समाज होता है। वहाँ अनेक तरह के अमानुषिक व्यवहार पनपते हैं परिणामतः लोगों की शांति भंग होती जाती है। ऐसी स्थिति में अहिंसा के विकास का सामाजिक, नैतिक उत्थान का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। इस विषय में आचार्य महाप्रज्ञ का मौलिक चिंतन रहा है कि 'अहिंसक समाज में भौतिक व्यवस्थाओं के समीकरण के साथ आन्तरिक परिवर्तन की आध्यात्मिक प्रक्रिया समन्वित होगी, इसलिए वह शासन मुक्ति की ओर सतत गतिशील होगी।' सच्चे अहिंसक समाज के सदस्य आत्मानुशासन से भावित होंगे। उन पर बाह्य नियन्त्रण की अपेक्षा स्वतः सिमटती जायेगी। आचार्य महाप्रज्ञ ने इस बात की समीक्षा भी की कि शासनमुक्त समाज की रचना में सबसे बड़ी बाधा है व्यक्ति की संग्रह-परायण मनोवृत्ति। मनीषियों के सुरक्षात्मक व्यवस्था पक्ष में समानता और वैशिष्ट्य का संगम है। गांधी ने बाह्य व्यवस्था पक्ष का चित्रण किया वहीं

महाप्रज्ञ ने व्यवस्था के साथ हृदय परिवर्तन को भी अनिवार्य बतलाया। उनकी दृष्टि में आंतरिक परिवर्तन से सुरक्षा एवं व्यवस्था पक्ष सुगम बनता जायेगा।

समग्र चिंतन के आलोक में देखा जाये तो यह नजर आयेगा कि गांधी ने समाजिक चेतना के साथ अद्वैत साधकर उसके परिष्कार, निर्माण का ताना-बाना बुना था। गांधी के अहिंसक समाज की परिकल्पना में अनेक विचारों की स्फुरणा नजर आती है जिसमें प्रमुख है-सर्वोदय समाज, अन्त्योदय-विचार, ग्राम-स्वराज, राम-राज्य, समाजवाद आदि। सभी का लक्ष्य अहिंसा प्रधान आदर्श समाज का निर्माण करना था। उनकी कल्पना का अहिंसक समाज हिंसा के दौर से जूंझते मानव समाज का प्रेरणा प्रदीप बनकर पथ-प्रशस्त कर सकता है।

आचार्य महाप्रज्ञ के अहिंसक समाज प्रारूप को समग्र दृष्टि से देखें तो उसमें सामयिक सच्चाई का समाकलन है। वर्तमान की प्रमुख आवश्यकता है-अहिंसा। जिस समाज में हिंसा ही हिंसा है, उस समाज में न रोटी-पानी की सम्यक् व्यवस्था होती है और न शिक्षा और चिकित्सा की। अहिंसा है तो अन्य व्यवस्थाएं भी समीचीन होंगी। अहिंसा और हिंसा दोनों के उपादान व्यक्ति के भीतर विद्यमान है। अहिंसा का विकास करना है तो हिंसा की चेतना का रूपान्तरण आवश्यक है। जब चेतना का रूपान्तरण होता है, असंभव लगने वाला कार्य भी संभव लगने लग जाता है। तभी अहिंसक समाज, स्वस्थ समाज और संस्कारक्षम समाज का आदर्श आकार लेता है।

समाहार के तौर पर देखा जाये तो मनीषी द्वय ने अहिंसक समाज के संबंध में जो विचार रखे हैं उनमें समानता और नवीनता की युति है। गांधी ने जहां व्यवस्था पक्ष के परिवर्तन पर बल दिया वहीं महाप्रज्ञ ने व्यवस्था के साथ व्यक्ति परिवर्तन पर भी बल दिया। उनका यह मंतव्य रहा कि जब तक व्यक्ति की चेतना नहीं बदलेगी समाज का ढाँचा बदल नहीं सकता। अतः व्यवस्था और व्यक्ति दोनों का साथ-साथ परिवर्तन होगा तभी अहिंसक समाज का सपना साकार हो सकता है। अपेक्षा है मनीषियों के विचारों को संयुक्त रूप से यथार्थ के धरातल पर क्रियान्वित किया जाए ताकि अहिंसक समाज रचना का सपना साकार बन सके।

अहिंसा का राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप

अहिंसा के आदर्श पर विनिर्मित अथवा अनुचारी राज्य विश्व के नक्से का सर्वाधिक शक्तिशाली राष्ट्र होगा। उसकी शक्ति किसी भौतिक विकास पर नहीं अहिंसा की सूक्ष्म अध्यात्म शक्ति से अनुप्राणित होगी। भारतीय संदर्भ में अहिंसा का अनुबंध सनातन है। काल के आरोह-अवरोह में इसकी स्थितियाँ भले ही बदलती रहीं पर आदर्श का सर्वथा लोप नहीं हुआ। गांधी ने परतंत्र भारत की मुक्ति का राज अहिंसा के सनातन सिद्धांत में झांका और राष्ट्र की जनता को इस ओर गतिमान किया। उन्होंने इसमें न केवल भारत की अपितु पूरी दुनिया के क्षेम-कुशल की दैविक कल्पना की है। आचार्य महाप्रज्ञ अहिंसा में राष्ट्र विकास को आंकते है। उभय मनीषियों ने राष्ट्र के निर्माण, विकास और खुशहाली हेतु अहिंसा को अपरिहार्य माना है। गांधी के लिए अहिंसा न केवल साध्य थी अपितु आजादी की साधना का अनिवार्य अंग बनी। भारतीय आजादी की प्रक्रिया में विभिन्न आयाम अहिंसा प्रधान अथवा निखालिस अहिंसा के आदर्श पर संचालित थे।

राज्य स्वरूप

गांधी की राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय सोच में राज्य व्यवस्था स्वतः स्फूर्त है। उनका राष्ट्र संबंधी चिंतन मानव प्रेम से जुड़ा हुआ था। वे कहा करते मैं देशप्रेमी हूं, क्योंकि मैं मानव-प्रेमी हूँ। मेरा देशप्रेम वर्जनशील नहीं है।.....देशप्रेमी की जीवन नीति किसी कुल या कबीले के अधिपति की जीवन-नीति से भिन्न नहीं है। और यदि कोई देशप्रेमी उतना ही उग्र मानव-प्रेमी नहीं है, तो कहना चाहिये कि उसके देश-प्रेम में उतनी न्यूनता है। वैयक्तिक आचरण और राजनीतिक आचरण में कोई विरोध नहीं है; सदाचार का नियम दोनों को लागू होता है।[146] स्पष्ट रूप से गांधी का राष्ट्रीय चिंतन मानव-प्रेम की धुरी पर टिका था। अतः उनका राजनैतिक विचार विश्व राजनीति को प्रभावित करने वाला ही नहीं उसे उपकृत करने वाला भी था।

स्वराज्य के संबंध में उन्होंने जितना विस्तृत उल्लेख किया उतना अहिंसक राज्य के संबंध में उपलब्ध नहीं है। संभव है वर्तमान की राज्य व्यवस्था से गांधी का चिंतन विशिष्ट रहा हो? पर आंशिक विचार जो राज्य संबंधी उपलब्ध है उसका चित्रण प्रासंगिक होगा। गांधी से प्रश्न किया गया 'अहिंसा द्वारा राज्य संचालन कैसे किया जाय?' उन्होंने कहा—'यह प्रश्न पूछते समय आप एक बात, अहिंसक स्वराज्य की प्राप्ति को स्वीकार कर लेते हैं। यह समझ में आता है क्या? यदि हमने सचमुच अहिंसक मार्ग से स्वराज्य प्राप्त किया होगा तो हममें से अधिकतर लोग अहिंसक बन चुके होंगे और हमारे

देश का संगठन अहिंसक तरीके से हुआ होगा। यदि हमने स्वराज्य प्राप्त करने योग्य अहिंसक तैयारी की होगी तो उसे अहिंसक तरीके से संभालने में हमें कठिनाई नहीं होनी चाहिए। अहिंसक स्वराज्य कोई आकाश से तो उतरा नहीं होगा। उसे पाने के लिए हमें बहुमत से लोगों का साथ मिला होगा। ऐसे राज्य का अर्थ हुआ कि गुण्डे भी हमारे अंकुश में आये होंगे। उदाहरण के लिए सेवाग्राम की सात सौ आबादी में पाँच-सात गुण्डे हो और बाकी सब लोगों को अहिंसक तालिम मिली हो तो इस स्थिति में गुण्डे बाकी लोगों का अंकुश स्वीकार करेंगे या छोड़कर भाग जायेंगे।'[147] स्पष्ट तौर पर ऐसे राज्य के अधिकांश लोग अहिंसा की आस्था से युक्त होंगे तब गिने-चुने बिना आस्था वाले लोगों के हिंसक कारनामें चल नहीं पायेंगे।

मौलिक चिंतन के आधार पर अहिंसक राज्य के आंतरिक स्वरूप का उल्लेख किया गया 'अहिंसक राज्य में तो बहुत कम चोर-डाकू होंगे, ऐसा मान लेना चाहिए। व्यक्ति के लिए यही समझा जाय कि उसे अपरिग्रही बनकर रहना है।' जहाँ परिग्रह की पकड़ गहरी होती है वहाँ उसे हड़पने वालों का जमावड़ा स्वतः होता है पर, जहाँ परिग्रह ही नहीं वहाँ अमानवीय तत्त्वों को फलने-फूलने का मौका नहीं मिल पाता। क्योंकि अहिंसक राज्य के नागरिक नैतिक-सामाजिक नियमों के साथ आत्म-नियंत्रण की चेतना से भावित होंगे। ऐसे लोग संग्रह की भावना से मुक्त मात्र अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति में आत्मतोष की अनुभूति करेंगे। यह स्वतः फलित है कि जहां संग्रह नहीं वहाँ विग्रह भी नहीं। मजबूती के साथ कहते कि 'अहिंसात्मक राज्य अधिक समझदार जनता की मर्जी के अनुसार काम करने वाला होना चाहिए।' अर्थात् अहिंसक राज्य में जनता की भावनाओं का आदर होगा उसकी उपेक्षा नहीं की जायेगी।

अहिंसक राज्य व्यवस्था की संभावना पर प्रकाश डालते हुए गांधी ने कहा-'मेरा विश्वास है कि यदि जनता का बहुसंख्यक भाग अहिंसात्मक हो, तो राज्य का शासन कार्य अहिंसा के आधार पर चलाया जा सकता है। जहां तक मैं जानता हूं, भारत में ही ऐसा राज्य हो सकने की सम्भावना है। इसी विश्वास के आधार पर मैं अपना प्रयोग चला रहा हूँ। इसलिए यदि यह मान लिया जाय कि भारत विशुद्ध अहिंसा के द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त कर लेता है, तो उन्हीं साधनों से वह उसकी रक्षा भी कर सकता है।'[148] इसके पीछे उनका चिंतन था कि देश में ऐसे स्वयं-सेवकों के मंडल होंगे जिनके जीवन का मुख्य कार्य ही जनता की सेवा करना और उसके लिए अपना बलिदान कर देना होगा। ये ऐसे दल न होंगे जो केवल लड़ाई लड़ना ही जानते हों बल्कि प्रजा को तालीम देने वाले और उसकी व्यवस्था, व्यवहार और सुख-सुविधा की सम्हाल रखने वाले दल होंगे। देश पर कोई विपत्ति आने पर पहला वार वे अपने ऊपर लेंगे।

स्वराज्य में अगर देश की सेना से जनता को खुद ही भयभीत रहना पड़े और उसी पर सैनिकों की गोलियां चले तो वह स्वराज्य या रामराज्य नहीं बल्कि शैतान का राज्य होगा।.....देश का सिपाही प्रजा का मित्र हो, प्रजा की आपत्ति के समय उसके लिए प्राण देने वाला हो तो वह क्षत्रिय है; यदि वह प्रजा को डराने वाला और शरीर या शस्त्र के बल से उसे पीड़ित करने वाला हो तो वह लुटेरा होगा।'[149] यह सुरक्षात्मक पक्ष उनकी अहिंसात्मक चेतना का प्रतिबिम्ब है। बापू को भारतीय परिवेश में ही कुछ ऐसा ऋषि-प्रसाद नजर आया जिसके आधार पर वे राज्य-व्यवस्था तक का विचार अहिंसा पर बुन सके।

उनका चिंतन व्यवहार के धरातल पर था, अतिवाद पर नहीं। उन्होंने माना कि अहिंसक राज्य

में भी पुलिस की आवश्यकता होगी। लेकिन इस अहिंसक राज्य में पुलिस ऐसे व्यक्ति होंगे जो अहिंसा में पूर्ण आस्था रखते हों। वे जनता के सेवक होंगे, मालिक नहीं। जनता और पुलिस परस्पर सहयोग से शान्ति-व्यवस्था कायम रखेंगे। पुलिस के पास जो हथियार होंगे उनका प्रयोग किसी अत्यधिक असाधारण स्थिति में ही किया जा सकेगा। पुलिस शारीरिक शक्ति का प्रयोग कम-से-कम करेगी सिवाय ऐसे अवसरों को छोड़कर जहाँ अनिवार्य हो, जैसे कोई पागल खून करने पर आमौदा होकर दौड़ रहा हो। अहिंसक राज्य व्यवस्था के संबंध में महाप्रज्ञ का चिंतन यथार्थ को उद्घाटित करने वाला है। उन्होंने इस सच्चाई की ओर ध्यान केन्द्रित किया कि अपराध निरोध अथवा सुधार के लिए समाजशास्त्र, मानव शास्त्र, दण्ड शास्त्र, विधि शास्त्र आदि-आदि पर ध्यान केन्द्रित होता है, किन्तु अध्यात्मशास्त्र और योगशास्त्र की विस्मृति बनी रहती है। फलतः बाह्य उपचार होता रहता है। भीतरी शल्य तक नहीं जाया जाता।.....यदि दंड-संहिता के साथ-साथ आध्यात्मिक शिक्षा का प्रयोग किया जाये तो अपराध की मात्रा में कमी आ सकती है।[150] वृत्ति परिष्कार के द्वारा समाधान की प्रक्रिया सुगम बन जाती है।

लोकतंत्र और अहिंसा

अहिंसा एक सार्वभौम प्रत्यय है जिसका संदर्भ विराट् है। यह केवल व्यक्ति अथवा सामाजिक जीवन को ही प्रभावित नहीं करती इसका संदर्भ अंतर्राष्ट्रीय क्षितिज तक जुड़ा हुआ है। विभिन्न राष्ट्रों की उन्नति का अहिंसा आधारभूत तत्त्व है। 'किसी भी राष्ट्र को उन्नति के रास्ते पर जाना हो तो उसे सत्य और अहिंसा का आश्रय लेना चाहिए।' यह मार्ग गांधी की दृष्टि में निष्कंटक है। प्रयोग की भूमिका पर यह भले ही कठिन हो पर राष्ट्र का विकास इस प्रक्रिया से होता है वह मौलिक है। लोकतन्त्र प्रणाली को अहिंसा-सत्य की भूमिका पर सही आकार मिले। राष्ट्रीय संदर्भ में गांधी ने कहा—'मैं यह मानता हूँ कि अहिंसा को राष्ट्रीय पैमाने पर स्वीकृत किये बिना वैधानिक या लोकतन्त्रीय शासन जैसी कोई चीज नहीं हो सकती। इसीलिए मैं अपनी शक्ति को इस बात का प्रतिपादन करने में लगता हूँ कि अहिंसा हमारे व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन का नियम है। मैं समझता हूं कि मैंने प्रकाश देख लिया है, यद्यपि वह कुछ धुंधले रूप में ही है।'[151] लोकतन्त्रीय शासन की पृष्ठभूमि में अहिंसा की महनीय भूमिका स्वीकार की।

उनकी यह घनीभूत आस्था थी कि सच्चे लोकतंत्र का ढांचा अहिंसा के आदर्श पर ही खड़ा किया जा सकता है। उन्होंने कहा लोकतंत्र और हिंसा का मेल नहीं बैठ सकता। जो राज्य आज नाममात्र के लिए लोकतंत्रात्मक हैं उन्हें या तो स्पष्ट रूप से तानाशाही का हामी हो जाना चाहिये, या अगर उन्हें सचमुच लोकतंत्रात्मक बनना है तो उन्हें साहस के साथ अहिंसक बन जाना चाहिये। यह कहना बिलकुल अविचारपूर्ण है कि अहिंसा का पालन केवल व्यक्ति ही कर सकते हैं, और राष्ट्र-जो व्यक्तियों से ही बनते हैं-हरगिज नहीं।[152] जाहिर है वे लोकतंत्र को अहिंसा की नींव पर खड़ा करना चाहते थे। इस अभिमत की सकारात्मक पुष्टि आचार्य महाप्रज्ञ के विचारों में झलकती है। उन्होंने लोकतंत्र की राष्ट्रीय प्रणाली के आदर्श को इंगित करते हुए लिखा 'हिंसा की बढ़ती प्रवृत्ति और लोकतंत्र में विरोधाभास है। लोकतंत्र हो और नैतिक मूल्यों का विकास न हो, यह सम्भव नहीं। लोकतंत्र हो और प्रामाणिकता तथा दायित्वबोध न हो, यह सम्भव नहीं। लोकतंत्र हो और अहिंसात्मक प्रतिरोध की शक्ति न हो, यह सम्भव नहीं।' इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि महाप्रज्ञ के लोकतंत्र

संबंधी विचार कितने उन्नत हैं। वे लोकतंत्र की रक्षा के लिए कितने सजग थे। हिंसा की बढ़ती प्रवृत्तियों के नियंत्रण का स्पष्ट आह्वान है। नैतिक मूल्यों के विकास का अवकाश है। उनका यह मानना था कि सच्चे लोकतंत्र में अहिंसात्मक प्रतिरोध की शक्ति होनी ही चाहिये।

महाप्रज्ञ ने लिखा-हिन्दुस्तान लोकतंत्रीय समाज-व्यवस्था का संकल्प लिए चल रहा है। लोकतंत्र का आधार है जनमत का सम्मान और समाजवादी व्यवस्था का आधार है सामाजिक न्याय। इनकी संपूर्ति के लिए आर्थिक संतुलन और तकनीकी विकास जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक है नैतिक या चारित्रिक विकास। मंतव्य में अहिंसा प्रतिष्ठा की अनुगूंज है।

लोकतंत्र की अगली भूमिका पर शांति-तंत्र की कल्पना की। महाप्रज्ञ का कथन है-हम राजतंत्र से लोकतंत्र तक पहुँचे हैं। इस विजय-यात्रा का मूल्य कम नहीं है। इससे अगली यात्रा शांतितंत्र की होनी चाहिये। लोकतंत्र में जो शासक आते हैं उनमें अहिंसा के प्रति आस्था होना जरूरी नहीं है। यद्यपि लोकतंत्र और अहिंसा में निकट का संबंध है फिर भी लोकतंत्रीय शासन को भी तानाशाही के आस-पास पहुंचा दिया है। शांति-तंत्र की प्रणाली लोकतंत्र से भिन्न नहीं होगी। किन्तु उसका शासक अहिंसा में आस्था रखने वाला हो-यह अनिवार्य शर्त होनी होगी। अब राजनीतिक प्रणाली का प्रयाण लोकतंत्र से शांतितंत्र की दिशा में होना चाहिए।[153] लोकतंत्र की विकास यात्रा शांतितंत्र में प्रतिष्ठित हो यह उनकी उदात्त अहिंसा भावना का प्रतीक है। वे लोकतंत्र की मूल आधार शिला चुनाव प्रणाली की स्वस्थ प्रक्रिया को महत्त्वपूर्ण मानते थे। चुनाव की प्रणाली लोकतंत्र के मौलिक स्वरूप का अभिन्न अंग है। इसमें आज हिंसा के बीज फूटने लगे हैं। प्रक्रिया का स्वरूप विद्रूप बनने जा रहा है। ऐसी स्थिति में लोकतंत्र की प्रणाली जिस आधार पर टिकी है उसके प्रति भी महाप्रज्ञ का चिंतन रहा। 'लोकतंत्र की गाड़ी चुनाव की पटरी पर चलती है।.....चुनाव की प्रक्रिया को बदलने का प्रयत्न करना अत्यन्त आवश्यक है। उसे बदलने के लिए अपेक्षित है प्रशिक्षण।'[154] कथन के आलोक में स्वस्थ राष्ट्रीय चेतना के निर्माण की पृष्ठभूमि को आंका जा सकता है।

विशेष रूप से मतदाता की चेतना को जागृत करते हुए बताया 'सही चयन-राष्ट्र का सही निर्माण है।' आपके अमूल्य वोट का अधिकारी कौन? 'जो ईमानदार हो, जो चरित्रवान हो, जो सेवाभावी हो, जो कार्य निपुण हो, जो नशामुक्त हो, जो स्वच्छ छवियुक्त हो, जो लोकहित को सर्वोपरि मानता हो, जो जाति-सम्प्रदाय से बंधा हुआ न हो।' इस संदर्भ में प्रत्यासी एवं मतदाता अणुव्रत के नियम विशेषरूप से मननीय है। लोकतंत्र प्रणाली को स्वस्थ बनाने वाली प्रक्रिया है चुनाव शुद्धि अभियान। अपेक्षा है इसके व्यापक पैमाने पर अनुशील की।

अहिंसा का राष्ट्रीय संदर्भ

अहिंसा की शक्ति में गांधी की अटूट आस्था थी। इसके सहारे ही उन्होंने भारत की आजादी को आवश्यक माना। वे कहते 'अहिंसा से बड़ी शक्ति मनुष्य जाति को मालूम नहीं है। इसकी शक्ति या प्रभावशीलता में मेरा विश्वास अटल है और उसी भाँति मेरा यह विश्वास भी अचल है कि केवल अहिंसा के जरिये स्वतन्त्र होने की शक्ति हिन्दुस्तान में है। भगवान् न करें हिन्दुस्तान को अहिंसा का पूरा पाठ पढ़ने के पहले खूनी लड़ाई लड़नी पड़े। आज की व्यवस्था तो महज एक उजला कफन है, जिसके नीचे केवल हिंसा-ही-हिंसा छिपी हुई है।' यह उनकी असीम अहिंसा-आस्था का निदर्शन है। विशेष रूप से वे हिन्दुस्तान की जनता को अहिंसा का शिक्षण देकर ही, उस शक्ति के सहारे

स्वतंत्र बनाने की आकांक्षा रखते थे। उन्होंने यह स्वीकारा कि मुझ में इतनी शक्ति नहीं है कि मैं सारे देश को अहिंसामय कर सकूँ, इसलिए मैं अहिंसा का प्रचार देश की स्वतन्त्रता पाने और उसके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय संबंध स्थापित करने के लिए ही करता हूँ। किन्तु मेरी कमजोरी से यह नहीं समझना चाहिये कि मैं अहिंसा के पूर्ण गौरव को नहीं देखता हूँ। मेरा हृदय उसका अनुभव करता है किन्तु मुझ में अभी वह क्षमता नहीं है जिससे पूर्ण रूप से अहिंसा की शिक्षा दे सकूँ।

अपनी अपूर्णता के साथ ही सामूहिक तौर पर अहिंसा के अपूर्ण स्वरूप की ओर समय-समय पर गांधी जनता का ध्यान आकृष्ट करते रहे। उनका जनता से आह्वान था कि हमारी अहिंसा चाहे बलवान अहिंसा न हो, पर सच्चे लोगों की अहिंसा जरूर होनी चाहिये। यदि हम अहिंसा-परायण होने का दावा करते हैं तो जब तक ऐसा दावा करें तब तक अंग्रेज अथवा सहयोगी भाइयों को हानि पहुँचाने का इरादा तक हमें नहीं करना चाहिये। परन्तु हमारे अधिकांश लोगों ने उनका नुकसान जरूर चाहा है और हम ऐसा करने से इसलिए रुक रहे हैं कि हम कमजोर हैं या इस गलत खयाल से कि केवल शारीरिक हानि न पहुँचाने से ही हमारे अहिंसाव्रत का पालन हो जाता है। हमारी अहिंसा की प्रतिज्ञा में तो भविष्य में प्रतिहिंसा करने की सम्भावना रह नहीं पाती।[155] यह इस सत्य को उजागर करता है कि आजादी के लिए उतावली जनता को भी गांधी अहिंसा की नीति से विचलित नहीं देखना चाहते थे। बल्कि बार-बार अहिंसा के मार्ग पर चलने को प्रेरित करते रहते।

गांधी समझाते हमारा राष्ट्रीय ध्येय अहिंसा का है। मगर मन और वचन से तो हम मानो हिंसा की ही तैयारी करते हैं। ज्ञान और शक्ति का भान होते हुए भी तलवार-त्याग करने में ही सच्ची अहिंसा है। उनका यह पक्का विश्वास था जो व्यक्ति और राष्ट्र अहिंसा का अवलम्बन करना चाहे, उन्हें आत्म सम्मान के अतिरिक्त अपना सर्वस्व गँवाने के लिये तैयार रहना चाहिये इसीलिए वह दूसरों के मूल्यों को हड़पने अर्थात् आधुनिक साम्राज्यवाद से, जो कि अपनी रक्षा के लिये पशुबल पर निर्भर रहता है बिल्कुल मेल नहीं खा सकता। विचारों की परिणति के लिए उन्होंने चाहा कि कोई ऐसा दल संगठित करना चाहिये जो मन-वचन-कर्म से अहिंसा के लिये प्रतिज्ञाबद्ध हो और उनकी ऐसी शिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिये जिसमें हर तरह के उपयोग के लिए वे तैयार रहें। उन्होंने यह स्वीकारा की दुनिया में हमारी कांग्रेस ही एक ऐसी संस्था है जिसने मेरे कहने पर स्वराज्य प्राप्ति के लिये विशुद्ध अहिंसा को अपनाया है। वह उसकी एकमात्र शक्ति है। मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि अगर हमारी अहिंसा वैसी न हुई जैसी कि वह होनी चाहिये तो राष्ट्र को उससे बड़ा नुकसान पहुँचेगा। क्योंकि उसकी आखिरी की तपिश में हम बहादुर के बजाय कायर साबित होंगे। और आजादी के लिये लड़ने वालों के लिये कायरता से बड़ी कोई बेइज्जती नहीं है।[156] यह अहिंसा की अविकल आस्था का प्रतीक है।

रचनात्मक कार्यक्रम

आजादी की पृष्ठभूमि में देश की जनता को रचनात्मक कार्यक्रम से जोड़कर गांधी भारतीय जनता की मनोवैज्ञानिक ढंग से अहिंसक चेतना जगाने में सतत् प्रयत्नशील रहे। उस प्रयत्न का एक मुख्य पहलू आर्थिक निर्भरता भी था। इसके लिए उन्होंने खादी और चरखे के महत्त्व को समझाया। जनता में खादी की भावना को जागृत किया और बताया कि 'खादी भावना का अर्थ है, पृथ्वी-तल के मानव-मात्र के साथ मित्र-भाव। उसका अर्थ है ऐसी हर चीज का त्याग, जिससे हमारे सहजीवी प्राणियों

को हानि पहुँचने की संभावना हो। यदि यह भावना हम अपने करोड़ों भाइयों में उत्पन्न कर सकें, तो हमारा यह देश क्या से क्या हो सकता है। ज्यों-ज्यों इस देश में मैं घूमता हूँ और उसका दर्शन करता हूँ, त्यों-त्यों चरखे की शक्ति में मेरी श्रद्धा बढ़ती और अधिकाधिक दृढ़ होती जाती है।' खादी के इस सूक्ष्म अर्थ को समझाने में उन्होंने अपनी आत्म-शक्ति को नियोजित किया और इसके हार्द को समझाया।

खादीवृत्ति का अर्थ है जीवन के लिए जरूरी चीजों की उत्पत्ति और उनके बँटवारे का विकेन्द्रीकरण। इसलिए अब तक जो सिद्धान्त बना है वह यह है कि हर एक गाँव को अपनी जरूरत की सब चीजें खुद पैदा कर लेनी चाहिए और शहरों की जरूरतें पूरी करने के लिए कुछ अधिक उत्पत्ति करनी चाहिये।.....खादी के उत्पादन में ये काम शामिल हैं-कपास बोना, कपास चुनना, उसे झाड़-झटक कर साफ करना और ओटना, रूई पींजना, पूनी बनना, सूत कातना, सूत को मांड़ लगाना, सूत रंगना, उसका ताना भरना और बाना तैयार करना, सूत बुनना और कपड़ा धोना।[157] अपनी अन्तर पीड़ा को शब्दों में बताया कि जन साधारण की स्वतंत्रता जैसी भी वह थी, चरखे के खात्मे के साथ ही खत्म हुई।

चरखा ग्राम वासियों के लिए खेती का पूरक धंधा था और खेती की इस से प्रतिष्ठा थी। विधवाओं का यह बन्धु और सहारा था। ग्रामवासियों को वह काहिली से भी बचाता था, क्योंकि इसमें कपास से रूई व बिनौलों को अलग-अलग करना, रूई की धुनाई, कताई, मंडाई, रंगाई, बुनाई आदि अगले-पिछले सभी उद्योग शामिल थे। गाँव के बढ़ई व लोहार भी इसके कारण काम में लगे रहते थे। चरखे के जाने से धानी के तेल निकालने जैसे अन्य ग्रामीण उद्योग भी नष्ट हो गयें।[158] गांधी की नजरों में चरखा व्यापारिक युद्ध की नहीं, व्यापारिक शान्ति की निशानी है। उसका संदेश संसार के राष्ट्रों के लिए दुर्भाव का नहीं, परन्तु सद्भाव का और स्वावलम्बन का है। उसे संसार की शांति के लिए खतरा बनने वाली या उसके साधनों का शोषण करने वाली किसी जनसेना के संरक्षण की जरूरत नहीं होगी; परन्तु उसे जरूरत होगी ऐसे लाखों लोगों के धार्मिक निश्चय की, जो अपने-अपने घरों में उसी तरह सूत कात लें जैसे आज वे अपने-अपने घरों में भोजन बना लेते हैं।

गांधी ने यह भी कहा—'मैंने करने के काम न करके और न करने के काम करके ऐसी अनेक भूलें की हैं, जिनके लिए मैं भावी संतानों के शाप का भाजन बन सकता हूँ। मगर मुझे विश्वास है कि चरखे का पुनरुद्धार सुझाकर तो मैं उनके आशीर्वाद का ही अधिकारी बना हूँ। मैंने उस पर सारी बाजी लगा दी है, क्योंकि चरखे के हर तार में शान्ति, सद्भाव और प्रेम की भावना भरी है। और चूँकि चरखे को छोड़ देने से हिन्दुस्तान गुलाम बना है, इसलिए चरखे के सब फलितार्थों के साथ उसके स्वेच्छापूर्ण पुनरुद्धार का अर्थ होगा हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता।' कताई के पक्ष में निम्न दावें प्रस्तुत किये गयें—

- जिन लोगों को फुरसत है और जिन्हें थोड़े पैसों की जरूरत है, उन्हें इससे आसानी से रोजगार मिल जाता है;
- इसका हजारों को ज्ञान है;
- यह आसानी से सीखी जाती है;
- इसमें कुछ भी पूंजी लगाने की जरूरत नहीं होती;
- चरखा आसानी से और सस्ते दामों में तैयार किया जा सकता है। इसमें से अधिकांश

को यह मालूम नहीं है कि कताई एक ठीकरी और बांस की खपच्ची से यानी तकली पर भी की जा सकती है;

- लोगों को इसमें अरुचि नहीं है;
- इससे अकाल के समय तात्कालिक राहत मिल जाती है;
- विदेशी कपड़ा खरीदने से भारत का जो धन बाहर चला जा रहा है, उसे यहीं रोक सकती है;
- इससे करोड़ों रुपयों की जो बचत होती है, वह अपने-आप सुपात्र गरीबों में बंट जाती है;
- इसकी छोटी से छोटी सफलता से भी लोगों को बहुत कुछ तात्कालिक लाभ होता है;
- लोगों में सहयोग पैदा करने का यह अत्यंत प्रबल साधन है।[159]

आर्थिक एवं ग्रामीण स्थितियों का सम्यक् आंकलन करते हुए उन्होंने चरखे के पुनरुद्धार का स्वर बुलंद किया। 'हिन्दुस्तान स्वयं ही एक शोषित देश है इसलिए गाँव वालों को अगर आत्म निर्भर बनाना है तो सबसे स्वाभाविक बात यही हो सकती है कि चरखे और उससे संबंधित सब चीजों का पुनरुद्धार किया जाय। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि चरखे के शान्त किन्तु निश्चित और जीवनप्रद 'रिवोल्यूशन' की तरह ही इससे शान्त और निश्चित क्रान्ति होती है।.....चरखे के बीस बरस के अनुभव ने मुझे इस बात का विश्वास दिया है कि मैंने उसके पक्ष में जो दलीलें दी है वह बिल्कुल सही है।' देश की जनता को अवगत किया कि युद्ध के द्वारा चाहे हमें अंग्रेजी शासन की जगह दूसरा शासन मिल जाय, पर आत्म-शासन नहीं। देहातियों की सेवा करने के ही उद्देश्य से देहात में प्रवेश करना-दूसरे शब्दों में जनता के अन्दर राष्ट्रीय चैतन्य और जागृति उत्पन्न करना जरूरी है। वह कोई जादूगर के आम की तरह अचानक नहीं टपक पड़ेगा। वह तो वट-वृक्ष की तरह प्रायः बे-मालूम बढ़ेगा। खूनी क्रांति कभी चमत्कार नहीं दिखा सकती। इस मामले में जल्दी मचाना निःसंदेह बरबादी करना है। चरखे की क्रांति ही, जहां तक कल्पना दौड़ती है सबसे द्रुत क्रांति है। गांधी ने चरखे की क्रांति और प्रतिष्ठा में हिन्दुस्तान की आजादी के अहिंसक स्वरूप को देखा और पूरे मनोयोग से प्रचार-प्रसार भी किया।

पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने का सच्चा और अहिंसक मार्ग रचनात्मक कार्यक्रम है। हिंसक और असत्यमय साधनों द्वारा स्वाधीनता के निर्माण का अत्यन्त दुःखद परिचय हम पा ही चुके हैं। वर्तमान महायुद्ध (द्वितीय विश्व युद्ध) में धन, जन और सत्य का नित्य ही जो नाश हो रहा है, वह हमारे सामने है। 'सत्य और अहिंसात्मक साधनों द्वारा प्राप्त पूर्ण स्वराज्य का अर्थ है जाति-पाँति, रंग अथवा धर्म के भेद-भाव बिना राष्ट्र के हरेक समूह की चाहे वह छोटे-से-छोटे अथवा गरीब से गरीब ही क्यों न हो-स्वाधीनता बनी रहेगी। रचनात्मक कार्यक्रम के द्वारा गांधी देश में आजादी की लहर पैदा करना चाहते थे। उन्होंने निम्न रचनात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत किये–

साम्प्रदायिक (कौमी) एकता, अस्पृश्यता-निवारण, खादी, सारे ग्रामोद्योग, गांवों की सफाई, नई अथवा बुनियादी शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा (बड़ों की तालीम), स्त्रियां (महिला जागृति), स्वास्थ्य और सफाई की शिक्षा, प्रान्तीय भाषायें, राष्ट्र भाषा, आर्थिक समानता, किसान, मजदूर, विद्यार्थियों के लिए कार्यक्रम।[160] इनको व्यवहार के धरातल पर अंजाम देने में सत्याग्रह की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

आजादी के मिशन को गांधी ने अहिंसा की मशाल से सदैव प्रज्ज्वलित रखने का प्रयत्न किया। जनता को अहिंसा पर डटे रहने के लिए आह्वान करते रहे। उनका आत्मीय निवेदन हिन्दुस्तानी

जनता से था 'अगर हिन्दुस्तान जगत् को अहिंसा का संदेश न दे सका तो तबाही आज या कल आनेवाली है और कल के बदले आज इसके आने की सम्भावना अधिक है। जगत् युद्ध शाप से बचना चाहता है, पर कैसे बचे इसका उसे पता नहीं चलता वह काम हिन्दुस्तान के हाथ में है।' इसके पीछे उनका मानसिक संकल्प था कि हिन्दुस्तान को अपनी सनातन संस्कृति के अनुरूप पश्चिम को अहिंसा धर्म सिखाना है। हिन्दुस्तान का जो अर्थ गांधी ने किया वह आम धारणा से सर्वथा भिन्न है। उनके अनुसार 'हिन्दुस्तान अरब सागर, हिन्द महासागर और बंगाल के समुद्र से घिरा तथा हिमालय का मुकुट पहिनने वाला हिन्दुस्तान ही नहीं है हिन्दुस्तान का अर्थ है सदियों से अहिंसा-सिद्धांत का उच्च घोष और उपदेश करने वाला देश। इसलिए अहिंसा के बिना उसके उद्धार की कल्पना मुझे हो ही नहीं सकती।'[161] वे हिन्दुस्तान की खोई हुई कीर्ति अहिंसा द्वारा ही पुनः पाने का स्वप्न संजो रहे थे। उन्होंने इतिहास के पृष्ठों को फिर से स्वर्णांकित करने का बीड़ा उठाया। चूँकि भारत दुनिया का धर्मगुरु कहलाने का गौरव बीते युग में पा चुका था। वह समय पुनः लौट आया जब गांधी भारत की पुनः कीर्ति अध्यात्म के सनातन मूल्य 'अहिंसा' पर ही फैलाना चाहते थे।

आजादी के अभियान में अहिंसा का प्रयोग चल रहा था इस बात की उन्हें आंशिक प्रसन्नता थी। पर, वे इस विषयक कमजोरी से भी वाकिफ थे अतः उस सच्चाई की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया—'यह भी सच है कि अभी तक हिन्दुस्तान ने बलवानों की उस अहिंसा का परिचय नहीं दिया है, जिसके द्वारा प्रबल फौजी हमलों का मुकाबला किया जा सके।' अहिंसक शक्ति का आत्म-विश्लेषण जिस सरलता से किया गया वह उनके स्वच्छ हृदय का प्रतिबिम्ब है।

दृढ़ विश्वास था कि तलवार के बल पर शांति स्थापित नहीं की जा सकती। अपने विश्वास को जन चेतना में प्रतिष्ठित करने की आकांक्षा से उन्होंने कहा 'मैं अपने विश्वास पर सबसे अधिक जोर यही कहकर दे सकता हूँ कि यदि मेरे देश को हिंसा के द्वारा स्वतन्त्रता मिलना संभव हो तो मैं स्वयं उसे हिंसा के द्वारा प्राप्त न करूँगा। 'तलवार से जो मिलता है वह तलवार से हर लिया जाता है'-इस बुद्धिमान के कथन में मेरा विश्वास कभी नष्ट नहीं हो सकता। यह तथ्यतः लागू होता है कि 'तलवार के जोर से यदि कोई आदमी कुछ ले लेता है तो उससे दूसरी तलवार से वह छीन लिया जाता है।' गांधी इस सच्चाई से वाकिफ थे कि सच्ची अहिंसा का एक कण भी रेडियम धातु से भी कई गुणा अधिक शक्तिशाली होता है। अतः अहिंसक हथियारों से आजादी की लड़ाई लड़ने वाले राष्ट्र को कोई पराजित बना नहीं सकता। अपनी आस्था को अभिव्यक्ति दी 'अहिंसा से लड़ने वाले राष्ट्र अजेय हैं, क्योंकि उनकी शक्ति बन्दूकों और मशीनगनों पर निर्भर नहीं है।' यह बात अलग है कि अहिंसक शक्ति को देश की जनता ने कितना साधा और प्रखर बनाया है। यह आत्म विश्लेषण का विषय है।

भारत के विषय में उनके स्पष्ट उद्‌गार थे 'यदि भारत तलवार के सिद्धांत को अपनाता है, तो सम्भव है कि वह क्षणिक विजय पा ले। किन्तु उस दशा में वह मेरे लिए उतना गौरवास्पद न रहेगा। मैं भारत को इसलिए चाहता हूँ कि मेरा सब कुछ उसी के कारण है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि संसार के लिए उसका अपना एक मिशन है, संदेश है। उसे अन्धे की तरह यूरोप की नकल नहीं करनी है। भारत के द्वारा तलवार का स्वीकार मेरी कसौटी की घड़ी होगी। मैं आशा करता हूँ कि उस कसौटी पर मैं खरा उतरूँगा। मेरा धर्म भौगोलिक सीमाओं से परे है। यदि मुझ में उसके प्रति ज्वलंत श्रद्धा एवं विश्वास है, तो वह मेरे भारत प्रेम पर भी विजय पा लेगा।'[162] यह विराट्

देश प्रेम का प्रतीक है। उनका प्रेम मात्र भारत भूमि से नहीं अपितु भारत के उच्च आदर्शों से था। अतः उस आदर्श के आधार पर ही वे भारत की आजादी का साक्षात्कार करना चाहते थे।

इस सच्चाई को भी समय-समय पर स्वीकारा कि अहिंसा की प्रगति जैसी हमारी होनी चाहिए वैसी अब तक नहीं हो पाई है। उन्होंने कहा भी-'मैं जानता हूँ कि अहिंसा की प्रगति जाहिर तौर पर बहुत धीमी प्रगति है। लेकिन अनुभव ने हमें बतलाया है कि हमारे सम्मिलित लक्ष्य का यही सबसे निश्चित मार्ग है। लड़ाई और शस्त्रास्त्र से न तो भारत को मुक्ति मिल सकती है, न संसार को। हिंसा तो न्याय प्राप्ति के लिए भी निष्फल साबित हो चुकी है। अपने इस विश्वास के साथ अहिंसा में पूरी श्रद्धा रखने में अगर कोई मेरा साथी न हो, तो मैं अकेला ही इस पथ पर चलने के लिए भी तैयार हूँ।' यह इस बात का सबूत है कि गांधी का अहिंसा-प्रेम अखंड था। उन्होंने न केवल भारत की अपितु दुनिया की मुक्ति का राज इसमें पाया और प्रस्तुत किया।

भारत की आजादी के लिये जिस अहिंसा शक्ति का प्रयोग किया जा रहा था उसका परिणाम इतना आसान नहीं जितना आसान समझा जाता था। इतना असंभव भी नहीं जिसकी कल्पना भी न की जा सके। गांधी ने इस चुनौती भरे संघर्ष के विषय में कहा-जिन अधिनायकों का अहिंसा में कोई विश्वास नहीं है उनकी भूख शांत करने के लिए हजारों नहीं तो सैकड़ों के बलिदान की आवश्यकता तो होगी ही, यह मैं कल्पना कर सकता हूँ। बड़ी-से-बड़ी हिंसा के सामने भी अहिंसा अपनी अमोघ शक्ति दिखाती है। यह अहिंसा की व्याख्या का सच्चा सूत्र है। ऐसे ही प्रसंगों पर उसके गुण की असल कसौटी होती है।[163] कथन कसौटी पर खरा उतरा और अनेक लोगों के अहिंसक बलिदान ने भारत के नाम आजादी का आलेख लिखा।

जहाँ तक राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रश्न है, इस संबंध में गांधी का अभिमत रहा जीवन में आदर्श की पूरी सिद्धि कभी नहीं होती। इसलिए 'थोरो' ने कहा है कि 'जो सबसे कम शासन करे वही उत्तम सरकार है।' इस व्यवस्था का अनुमोदन करते हुए उन्होंने अहिंसक राज्य व्यवस्था के सम्यक् संचालन में विधि-विधान एवं दंड का स्थान गौण रखकर मुख्य स्थान सेवा का रखा। गांधी के सामने एक बार प्रश्न उपस्थित किया गया-आप बाह्य आक्रमण का सामना अहिंसक नीति से किस प्रकार करेंगे, यह समझाइए? स्पष्ट शब्दों में कहा-मैं इसका चित्र पूरी तरह आपके सामने नहीं खींच सकूँगा। क्योंकि हमारे सामने न तो इस चीज का अनुभव है, न यह खतरा। और फिर आज तो सिख, गुरखों की सरकारी सेना खड़ी ही है। मेरी कल्पना तो यह है कि मैं अपनी हजार या दो हजार की सेना दोनों लड़ती हुई फौजों के बीच खड़ी कर दूँगा। ऐसा करके मैं अन्य कोई परिणाम न भी प्राप्त कर सकूँ फिर भी शत्रु की हिंसा का जहर तो कम कर दूँगा।[164]

अहिंसक शिक्षा पाने वालों के रक्षा-संबंधी दायित्व पर प्रकाश डालते हुए गांधी ने कहा-'जिन लोगों ने अहिंसा की पद्धति से शिक्षा पाई हैं, उनके द्वारा अहिंसात्मक मुकाबला किया जायेगा। वे निहत्थे ही आगे आकर आक्रमणकारी की तोपों के आहार बनेंगे।' यह अहिंसक-शक्ति द्वारा सुरक्षा का नया कीर्तिमान होगा जिसे कभी मिटाया नहीं जा सकेगा। यह उपक्रम असामाजिक तत्त्व फैलाने वालों के भीतर भी परिवर्तन की नई चेतना का संचार करने वाला सिद्ध होगा।

गांधी वसीयत

गांधी के हृदय में स्वराज्य की जो वास्तविक कल्पना थी उसे वे अपनी मृत्यु के पूर्व अपनी वसीयत

के तौर पर स्वराज्य की एक रूप-रेखा भी तैयार की। प्रस्तुत संदर्भ में उसको उद्धृत करना प्रासंगिक होगा। उन्होंने लिखा : मेरे सपनों का स्वराज्य तो गरीबों का स्वराज्य होगा। जीवन की जिन आवश्यकताओं का उपयोग राजा और अमीर लोग करते हैं, वही उन्हें (गरीब) भी सुलभ होनी चाहिए, इसमें फर्क के लिए स्थान नहीं हो सकता। मुझे इस बात में बिल्कुल संदेह नहीं है कि हमारा स्वराज्य तब तक पूर्ण स्वराज्य नहीं होगा, जब तक गरीबों को ये सारी सुविधाएं देने की पूरी व्यवस्था नहीं हो जाती।

मेरे सपनों के स्वराज्य में जाति या धर्म के भेदों का कोई स्थान नहीं हो सकता। उस पर शिक्षितों या धनवानों का एकाधिपत्य नहीं होगा। वह स्वराज्य सबके लिए, सबके कल्याण के लिए होगा। सबकी गिनती में किसान तो आते ही हैं, किन्तु लूले, लंगड़े, अंधे और भूख से मरने वाले लाखों करोड़ों मेहनतकश मजदूर भी अवश्य आते हैं। उनका यह भी कहना था अहिंसा पर आधृत स्वराज्य में लोगों को अपने अधिकारों का ज्ञान न हो तो कोई बात नहीं, लेकिन उन्हें अपने कर्तव्यों का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। हर एक कर्तव्य के साथ उसकी तौल का अधिकार जुड़ा हुआ होता है और सच्चे अधिकार तो वे ही हैं जो अपने कर्तव्यों का योग्य पालन करके प्राप्त किये गये हों।

अधिकारों का सच्चा स्रोत कर्तव्य है। अगर हम सब अपने कर्तव्यों का पालन करें, तो अधिकारों को खोजने बहुत दूर नहीं जाना पड़ेगा। अगर अपने कर्तव्यों का पालन किये बिना हम अधिकारों के पीछे दौड़ते हैं, तो वे हम से दूर होते जायेंगे।[165] यह एक दस्तावेज़ है गांधी के सपनों के स्वराज्य का, जिसको आकार देना अब भी बाकी है।

राष्ट्रीय संदर्भ में गांधी के मौलिक और विस्तृत विचारों का प्रवाह देखने को मिलता है वहीं आचार्य महाप्रज्ञ के राष्ट्रीय विचारों की संक्षिप्त पर महत्त्वपूर्ण झलक देखी जा सकती है। उसमें मानवता के त्राण की स्पष्ट आकांक्षा है। उनके चिंतन में व्यक्ति निर्माण का अद्‌भुत दर्शन है उसके आधार पर राष्ट्र निर्माण की कल्पना की गई है। उनके चिंतन में राष्ट्रीय एकता का आधार न्याय और समता के आधार पर निर्मित राष्ट्र का संविधान ही बन सकता है। जाति और सम्प्रदाय के आधार पर विभक्त मनोवृत्ति वाला राष्ट्र जिस हिंसक स्थिति से गुजरता है, उसका एक उदाहरण बोस्निया है। इससे भिन्न अहिंसक चेतना राष्ट्रीय एकता के विकास में योगभूत बनती है। उसके महत्त्वपूर्ण मूल्य हैं-

1. शांतिपूर्ण सहअस्तित्व
2. भौतिक और आर्थिक विकास
3. आतंकवाद से विमुक्ति[166]

इन मूल्यों के आधार पर अहिंसक राष्ट्र की कल्पना आसानी से की जा सकती है। जहाँ राष्ट्रीय एकता होगी वहाँ इन मूल्यों का विकास होगा, जहाँ ये मूल्य विकसित होंगे वहाँ अहिंसा की भूमिका स्वतः स्वीकृत होगी।

महाप्रज्ञ ने बताया शांतिपूर्ण जीवन और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व, जिसकी आज पूरे विश्व में चर्चा है। सह-अस्तित्व का सिद्धांत विश्व शांति की समस्या का बहुत बड़ा समाधान है। यह अहिंसा का प्राणभूत सिद्धांत है। इस कथन में भी कोई अतिरंजना नहीं लगती कि सह-अस्तित्व के बिना अहिंसा सफल नहीं, अहिंसा के बिना सह-अस्तित्व नहीं। सह-अस्तित्व और अहिंसा दोनों को बाँटा नहीं जा सकता।[167] इसकी व्यापकता तभी संभव है जब सहिष्णुता, अकिंचन्यादि गुणों का व्यक्ति-

व्यक्ति में विकास हो तो एक नये विश्व की कल्पना, जिसमें शांति होगी, सहिष्णुता होगी, सामंजस्य होगा, संभव हो सकेगी।[168]

महाप्रज्ञ का विराट् चिंतन भारतीय सीमाओं में बंधा हुआ नहीं था। दुनिया के किसी भी राष्ट्र ने अहिंसा के क्षेत्र में कदम बढ़ाया उसका अनुमोदन किया है। उन्होंने स्पष्ट कहा-हिंसा, आक्रमण, शस्त्र-ये सारे नश्वर तंत्र हैं। ये कभी स्थायी नहीं रह सकते। हमें साधुवाद देना चाहिए गोर्बाच्योव को, जिन्होंने संसार के सामने अहिंसा का प्रथम उपन्यास लिखा। इतना सुंदर उपन्यास कोई लेखक नहीं लिख सकता। अहिंसा के इस उपन्यास का लेखन कोई धार्मिक आदमी भी नहीं कर सकता, क्योंकि सारी शक्ति उनके हाथ में है जिनके हाथ में हिंसा की शक्ति है, वे अहिंसा की बात सोचें तब कुछ संभव हो सकता है।

.....यह इस युग की विशेषता माननी चाहिए-इस दुनिया में कुछ ऐसे लोग पैदा हुए हैं, जो अहिंसा की दिशा में सोचने लगे हैं। यह सबसे बड़ा आश्चर्य है-जिस राष्ट्र ने यह माना-साध्य की पूर्ति के लिए चाहे जैसा आलंबन लिया जा सकता है, उस राष्ट्र में अहिंसा का स्वर प्रखर हुआ है। साम्यवाद का सिद्धांत रहा-यदि साध्य ठीक है तो उसकी पूर्ति के लिए हिंसा पर विचार करना कोई जरूरी नहीं है। यह आस्था जिस राष्ट्र में थी, उसका स्वर बदला है, वह अहिंसा की भाषा में सोचने लगा है। यह कम आश्चर्य की बात नहीं है। महाप्रज्ञ का यह उद्धरण अहिंसा के अनुमोदन का प्रतीक है। इससे यह भी उजागर होता है कि दुनिया का कोई भी राष्ट्र अथवा उसका अधिकारी शांति की दिशा में कदम बढ़ाता तो महाप्रज्ञ अपनी सीमा में उसका अंकन अवश्य करते। यह उनका असीम अहिंसा प्रेम ही था जो उन्हें अहिंसा की प्रगति पर प्रफ्फुलित बनाता।

शांति का महत्त्वपूर्ण अंग है अहिंसा। इसका विकास प्रत्येक राष्ट्र कर सकता है। तथ्य की अवगति देते हुए महाप्रज्ञ ने सुझाया—'जो राष्ट्र परस्पर युद्ध करते हैं वे ही राष्ट्र युद्ध के बाद परस्पर अनाक्रमण संधियां करते हैं। युद्ध के बिना भी अनाक्रमण की संधिया होती हैं, इसलिए कि समाज शांति में रह सके। शांति का आधार है अनाक्रमण और अभय की भावना का विकास।'[189] यह राष्ट्रीय शांति का मंत्र है। जो राष्ट्र शांतिकामी हैं उन्हें बिना किसी संघर्ष के सामाजिक, राष्ट्रीय शांति को प्रशस्त बनाना होगा ऐसा घटित होने पर राष्ट्र में अहिंसा का विकास स्वतः घटित होगा।

अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ

गांधी की अहिंसक सोच केवल व्यक्ति, समाज और राष्ट्रीय संदर्भ में सीमित न रहकर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र का विस्तार पा चुकी थी। उन्होंने कहा—अहिंसा साधन है और लक्ष्य हर एक राष्ट्र के लिए पूर्ण स्वाधीनता है। अन्तर्राष्ट्रीय संघ तभी होगा जबकि उसमें शामिल होने वाले बड़े-छोटे राष्ट्र पूरी तरह स्वाधीन हों। जो राष्ट्र अहिंसा को जितना हृदयंगम करेगा वह उतना ही स्वाधीन होगा। एक बात निश्चित है, अहिंसा पर आधार रखने वाले समाज में छोटे-से-छोटे राष्ट्र भी बड़े-से-बड़े राष्ट्र के समान ही रहेगा। बड़प्पन और छोटेपन का भाव बिल्कुल नहीं रहेगा।.....अहिंसा को केवल नीति के बजाय एक जीवित शक्ति अर्थात् अटूट ध्येय के रूप में स्वीकार न कर लिया जाय, तब तक मुझ जैसों के लिए, जो अहिंसा के हामी हैं, वैधानिक या लोकतंत्रीय शासन एक दूर का स्वप्न होगा। जब कि मैं विश्व में भी अहिंसा का हामी हूं, मेरा प्रयोग हिन्दुस्तान तक ही सीमित है।[190] यह विचार उनके विराट् अहिंसा भाव को द्योतित करता है। वे जो अहिंसा का प्रयोग भारत के संदर्भ में कर

रहे थे उसको विस्तार देने की चाह रखते थे। उन्होंने कहा 'मेरा विश्वास है कि—विश्व संघ की रचना केवल अहिंसा की बुनियाद पर ही खड़ी की जा सकती है; और ऐसा करने के लिए हिंसा का पूरी तरह त्याग करना होगा।' स्पष्ट तौर पर विश्व संघ की कल्पना को आकार देने में अहिंसा की अहम भूमिका को स्वीकार किया। उनकी कल्पना जैसे राष्ट्रीय स्तर पर अहिंसा की थी वैसी ही वैश्विक संदर्भ में थी।

आचार्य महाप्रज्ञ ने विश्व व्यवस्था में अहिंसा की चर्चा करने से पूर्व राष्ट्रीय जनता का ध्यान वर्तमान स्थिति की ओर आकर्षित करते हुए कहा—'महावीर, बुद्ध और गांधी के देश ने अहिंसा को भुलाया है। गांधी के समय ऐसा लगता था-हिन्दुस्तान अहिंसा के क्षेत्र में विश्व का नेतृत्व करेगा। विश्वशांति और निःशस्त्रीकरण के उच्चारण का पुरोधा बना रहेगा। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने विश्व पटल पर पंचशील प्रस्तुत किए। विश्वशांति की नई किरण ने जन्म लिया। पर क्या वर्तमान परिस्थिति में उनकी मुखर व्याख्या की जा सकती है?' इसके साथ ही पूरी दुनिया का ध्यान अनाक्रमण-निःशस्त्रीकरण की ओर खींचते हुए कहा—यह सच्चाई है कि अन्तर्राष्ट्रीय तनाव और शस्त्रीकरण ने मानव समाज को कुछ सोचने के लिए विवश किया है। इस विवशता से जो स्व-वशता निकली है, वह सुनहले भविष्य का संकेत है। 19 नवम्बर 1990 में जो अहिंसा का अभिलेख लिखा गया, वह इस युग के इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटना है। नाटो और वारसा संधि पर चौंतीस देशों के राष्ट्राध्यक्षों ने युगान्तकारी निःशस्त्रीकरण संधी पर हस्ताक्षर कर शीतयुद्ध को अंतिम विदाई दे दी।[181] यह उपक्रम सचमुच मानवता के शांति पथ को प्रशस्त बनाने एवं अहिंसा को नया आयाम देने वाला सिद्ध होगा।

आर्थिक विषमता के चलते अहिंसा का विकास बाधित है। संयुक्त राष्ट्र की भूमिका अधिक सक्रिय बने तो वैश्विक समस्या को समाधान का नया रूप मिल सकता है। इस विषय में महाप्रज्ञ का कहना था कि आज संसाधनों पर नियंत्रण अपने-अपने राष्ट्र का है। अगर पेट्रोल अरब देशों के पास है तो उस पर उनका नियंत्रण है। अगर सारे खनिज अमेरिका में हैं, तो उन पर उसका नियंत्रण है। संयुक्त राष्ट्र संघ की अब तक जो भूमिका रही है, वह केवल शांति और सामंजस्य बिठाने की भूमिका रही है। अगर संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्था को जागतिक अर्थनीति की भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित किया जाये और वह नियंत्रण कर सके तो वर्तमान की समस्या को समाधान मिल सकता है।[182] कथन से यह अंदाज लगाया जा सकता है कि आचार्य महाप्रज्ञ वैश्विक स्तर पर भी समस्या के समाधान हेतु किस कदर अपना मौलिक चिंतन रखते थे।

शांति की व्यापक प्रतिष्ठा आचार्य महाप्रज्ञ का जीवनव्रत बनीं। अपने कर्म और जीवंत प्रयत्नों से अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शांति को प्राणवान बनाने में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। जिसके प्रेरक स्फुलिंग हैं-जैन भारती,लाडनूं 1988, 1995 एवं अणुव्रत विश्व भारती-राजसंमद 1991 में, 1998 में सरदारशहर तथा 1999 में दिल्ली में समायोजित अंतराष्ट्रीय शांति सम्मेलन। इन सम्मेलनों में औपचारिकताओं से ऊपर उठकर यथार्थ के धरातल पर ठोस निर्णय लिये गये। क्रियान्विति हेतु सभी संभागी संकल्प बद्ध बनें।

विश्वशांति के निमित्त आहूत अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में आचार्य महाप्रज्ञ ने अहिंसा-शांति प्रिय लोगों का ध्यान इस ओर केन्द्रित किया कि आज अहिंसा का कोई शक्तिशाली मंच नहीं है। अहिंसा के क्षेत्र में काम करने वाले लोग बिखरे हुए हैं। उनमें न कोई सम्पर्क है और न एकत्व का भाव है। परस्पर विरोधी विचार वाले राष्ट्रों ने संयुक्तराष्ट्र संघ को एक मंच बना लिया। वहाँ बैठकर वे

मिलते हैं और समस्या का समाधान खोजते हैं। पर अहिंसा में आस्था रखने वाले न कभी मिलते, न कभी बातचीत करते और न कभी समस्या का सामूहिक समाधान खोजते। कांफ्रेस में एक नई दिशा उद्घाटित हुई। एक ऐसा विश्व व्यापी अहिंसा मंच-'अहिंसा सार्वभौम' की रूपरेखा उजागर हुई, वहाँ बैठकर हिंसा की विभिन्न समस्याओं पर सामूहिक चिंतन किया जा सके और हिंसक घटनाओं की समाप्ति के लिए निर्णय लिए जा सकें। विश्वशांति के लिए उन्होंने अहिंसा का त्रिसूत्री कार्यक्रम प्रस्तुत किया–

- अहिंसा सार्वभौम मंच
- अहिंसा का प्रशिक्षण
- व्यापक रूप से समर्थ शांतिसेना का निर्माण।[183]

'अणुव्रत और विश्वशांति सम्मेलन' में अशांति के मूल कारणों की ओर ध्यान केन्द्रित करते हुए महाप्रज्ञ ने कहा-विश्व की अशांति का सबसे पहला और प्रमुख कारण है-'हमारी सदोष एवं त्रुटिपूर्ण शिक्षा-प्रणाली।' इसके समाधान स्वरूप उन्होंने जीवन विज्ञान शिक्षा का उपक्रम बतलाया। विकास की अवधारणा, पर्यावरण प्रदूषण एवं वाणी के असंयम को भी वे अशांति के कारण मानते थे। इन कारणों का निराकरण अणुव्रत के उद्घोष 'संयमः खलु जीवनम्'-संयम ही जीवन है, में खोजा जा सकता है। उन्होंने प्रबुद्ध वर्ग का ध्यान इस ओर केन्द्रित किया कि बहुत सारी समस्याओं का एक प्रमुख कारण है-संवेदनशीलता का अभाव। असंवेदनशील व्यक्ति समस्याएँ पैदा करता है। असंवेदनशीलता के कारण राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय समस्याएँ पैदा हो रही है।[184]

विश्वशांति की आकांक्षा के बावजूद वह साकार नहीं हो पा रही है? इस संदर्भ में महाप्रज्ञ का मंथन ताजिंदगी चालू रहा। उन्होंने विश्वशान्ति के बाधक तत्त्वों की एक संक्षिप्त-संभावित तालिका प्रस्तुत की-

- साम्राज्यवादी मनोवृत्ति
- बाजार पर प्रभुत्व
- जाति का अहंकार
- साम्प्रदायिक कट्टरता
- उपभोग सामग्री की विषमतापूर्ण व्यवस्था और वितरण

उनकी दृष्टि में मूल कारण-व्यक्ति का अपने संवेगों पर नियंत्रण न होना। संवेग संतुलन के व्यापक प्रचार और प्रयोग पर गहन विचार किये बिना वैज्ञानिक युग में उपजी हुई समस्याओं का समाधान नहीं किया जा सकता।[185] अहिंसा के क्षेत्र में काम करने वाले लोगों का ध्यान समस्या के मूल स्रोत के परिष्कार की ओर केन्द्रित करते हुए बताया कि 'व्यक्ति की चेतना का परिष्कार किए बिना विश्व शांति का सपना पूर्ण नहीं हो सकता।' व्यक्ति-व्यक्ति की चेतना के परिवर्तन हेतु 'अहिंसा प्रशिक्षण' की मौलिक प्रविधि का सूत्रपात कर वैश्विक स्तर पर शांति के पथ को प्रशस्त करने में महाप्रज्ञ की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। उन्होंने विश्व शांति के आधारभूत तथ्यों की चर्चा की है जिसका मुख्य बिन्दु है-विश्व शांति के लिए धार्मिक सहिष्णुता और समन्वय अनिवार्य है। इसकी सुगम व्याख्या प्रस्तुत की गई-

1. मेरा धर्म सत्य है, यह मानने का मुझे अधिकार है किन्तु दूसरे धर्मों में सत्य या सत्यांश नहीं है, यह मानना एकांगी दृष्टिकोण है। इस दृष्टिकोण को बदलकर ही हम विश्व शांति की दिशा में प्रस्थान कर सकते हैं।

2. मानव-जाति एक है फिर भी व्यक्ति के अहं के कारण जातीय उन्माद फैलता है और संघर्ष का वातावरण निर्मित कर देता है। जाति-भेद से मनुष्य विभक्त है किन्तु मानवता की दृष्टि से वह अभिन्न है, अविभक्त है। इस अनेकांत दृष्टि को अपना कर ही हम विश्व शांति की दिशा में प्रस्थान कर सकते हैं।

3. किसी व्यक्ति और राष्ट्र को उपभोग की सामग्री बहुत सुलभ है, किसी के लिए दुर्लभ है। जो गरीब है, जिसकी क्रय शक्ति कम है, उसे आवश्यक उपभोग सामग्री भी उपलब्ध नहीं होती। विश्व का एक भाग गरीब और एक भाग अमीर रहे, इस स्थिति में हिंसा, आतंकवाद और उग्रवाद को पनपने का मौका मिलता है। गरीबी की समस्या का समाधान खोजकर ही विश्व शांति की दिशा में प्रस्थान किया जा सकता है।

4. शासनाधीश और धनाधीश व्यक्तियों में यदि संवेदनशीलता की कमी होती है तो हिंसा और अशांति को बढ़ने का अवसर मिलता है। समर्थ व्यक्तियों की संवेदनशीलता से विश्व शांति की दिशा में नया प्रस्थान हो सकता है। उपभोग प्रतिक्रिया को जन्म देता है। संवेदनशीलता के साथ होने वाला संपदा का उपभोग समाज को सृजनात्मक दृष्टिकोण देता है।

5. विरोधी विचार शासन प्रणाली वाले राष्ट्रों का सह-अस्तित्व हो सकता है। विरोधी का सह-अस्तित्व-यह अनेकांत का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है। दूसरे के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए विश्व शांति की दिशा में प्रस्थान किया जा सकता है।

एकांगी दृष्टिकोण व्यक्ति, समाज और राष्ट्र में तनाव पैदा करता है। अनेकांत का दृष्टिकोण तनाव से मुक्ति दिलाता है। तनाव मुक्त जीवन शैली के द्वारा ही विश्व-शांति की दिशा में प्रस्थान किया जा सकता है।[186] मंतव्य से स्पष्ट है कि आचार्य महाप्रज्ञ विश्वशांति के प्रबल पक्षधर रहें हैं। जागतिक संदर्भ में वे विश्वशांति के प्रश्न को महत्वपूर्ण मानते थे। पर उनका कहना था जब तक भाव जगत् का परिष्कार नहीं होगा, न व्यक्ति की शांति संभव है और न जागतिक या विश्व शांति संभव है। हमें परिष्कार करना होगा भावजगत् का, जहाँ अशान्ति का जन्म हो रहा है।[187] उचित प्रयत्न की ओर दिशा दर्शन करके उन्होंने वैश्विक शांति का पथ प्रशस्त किया है। राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में अहिंसा की प्रतिष्ठा हेतु अहिंसा प्रशिक्षण, हृदय-परिवर्तन, सार्वभौम अहिंसा का उपक्रम प्रदान कर मानवता को उपकृत किया है।

विभिन्न संदर्भों में किया गया अहिंसा संबंधी चिंतन मनीषियों के आध्यात्मिक व्यक्तित्व का परिचायक है। जो अहिंसा वैयक्तिक साधना का अंग मानी जाती थी उसे समाज, राष्ट्र और अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ में जोड़कर न केवल अध्यात्म को ऊँचाइयाँ दी अपितु मानवता के उत्थान का अभिनव पथ-प्रशस्त किया है। जो समाज शास्त्रीय सोच के विषय थे उन्हें अहिंसा के आदर्श से जोड़कर नैतिक मूल्यों के विकास का नूतन आलेख लिखा। विभिन्न संदर्भों में किये गये अहिंसा के संयोजन का एक मात्र उद्देश्य था सामाजिक, राजनैतिक और अंतर्राष्ट्रीय शोषण एवं विषमताओं का अन्त कर एक आदर्श विश्व व्यवस्था का निर्माण करना। उससे जुड़ा हुआ प्रत्येक व्यक्ति, समाज और राष्ट्र विकास और स्वतंत्रता का अनुभव कर सकें, जिसमें पूर्ण शांति हो और उसका वांछित उदय-विकास हो सके। इस आदर्श व्यवस्था का सूत्रपात करना ही महात्मा गांधी एवं आचार्य महाप्रज्ञ का ध्येय रहा है।

संदर्भ

1. सेवाग्राम, 23.9.40 हरिजन सेवक, 5.10.40
2. आचार्य महाप्रज्ञ, अहिंसा के संदर्भ में, 12
3. हिन्दी नवजीवन, 25.7.29
4. आचार्य महाप्रज्ञ, अणुव्रत की दार्शनिक पृष्ठभूमि,164
5. डॉ. श्री राम वर्मा, भारतीय राजनीतिक विचारक, 403
6. अणुव्रत 1.15.2001, 27
7. मुनि मोहनलाल शार्दुल, जैन दर्शन के परिपार्श्व में, सं. 1989
8. युवाचार्य महाप्रज्ञ, मैं हूं अपने भाग्य का निर्माता, 251
9. युवादृष्टि, दिसम्बर 1998 3-5
10. अणुव्रत, 1-30.4 2002, 127
11. सार्थकता मनुष्य होने की, 52
12. अहिंसा यात्रा केन्द्रीय समिति, अहिंसा यात्रा, जनवरी 2002. 15
13. हरिजन सेवक, 6.7.40
14. डॉ. राधाकृष्णन्, धर्म और समाज, 274
15. युगीन समस्या और अहिंसा, 79
16. महाप्रज्ञ ने कहा, भा. 16.6-2007.89
17. महाप्रज्ञ ने कहा, भा-26.7.2008.16
18. गांधीजी, अहिंसा-2.199
19. आचार्य महाप्रज्ञ, कैसी हो इक्कीसवीं शताब्दी?, 102. सं-द्वितीय-2003
20. अणुव्रत की दार्शनिक पृष्ठभूमि, 157-8
21. गांधीजी, अहिंसा भाग-4.358 हरिजन बन्धु 31-8-40
22. आचार्य महाप्रज्ञ, घट-घट दीप जले, 127
23. आचार्य महाप्रज्ञ, धर्म मुझे क्या देगा?, 20
24. एम.के.गांधी, मेरे सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा. 187
25. आचार्य महाप्रज्ञ, साधना और सिद्धि, 45
26. गांधीजी, अहिंसा-2.247
27. राधाकृष्णन्, धर्म और समाज, 281
28. सार्थकता मनुष्य होने की, 4
29. आचार्य महाप्रज्ञ, मुक्त भोग की समस्या और ब्रहमचर्य-24
30. अहिंसा तत्व दर्शन, 258-9.62
31. हिन्द स्वराज्य, 48
32. आचार्य महाप्रज्ञ, धर्म के सूत्र, 145
33. आचार्य महाप्रज्ञ, अहिंसा के संदर्भ में, 21
34. गांधीजी, अहिंसा-3.247 हरिजन सेवक 28.1.1939
35. आचार्य महाप्रज्ञ, पुरुषोत्तम महावीर, 100
36. युवाचार्य महाप्रज्ञ, मेरी दृष्टि : मेरी सृष्टि, 132-33
37. यंग इंडिया, 7-5-25
38. अहिंसा तत्त्व दर्शन, 272-73
39. अणुव्रत, 1-30.4.2002, 137-8
40. अहिंसा-1,101

41. हरिभाऊ उपाध्याय, बापू-कथा, 30,156
42. आचार्य महाप्रज्ञ, महाप्रज्ञ ने कहा-6.134. मार्च. 2006
43. विज्ञप्ति, 28.3.2009.7
44. गांधीजी, मेरे सपनों का भारत, पृ. 196
45. महाप्रज्ञ ने कहा-4.44,69
46. महाप्रज्ञ ने कहा-16.17.18
47. आचार्य महाप्रज्ञ, लोकतंत्र-नया व्यक्ति नया समाज, 122-3
48. मेरे सपनों का भारत, 196-7
49. बापू-कथा, 30-31
50. बी.आर.नन्दा, महात्मा गांधी, 276
51. मेरे सपनों का भारत, 200
52. विज्ञप्ति, 18-28.8.2002.6
53. आचार्य महाप्रज्ञ, मुक्त भोग की समस्या और ब्रह्मचर्य, 43
54. आचार्य महाप्रज्ञ, महाप्रज्ञ ने कहा-16.15-16
55. युगीन समस्या और अहिंसा, 56
56. विज्ञप्ति 24.30 अगस्त 2008,11-6-12 जुलाई, 2008,10
57. राजस्थान पत्रिका, जोधपुर 30 जनवरी 2002-7
58. आचार्य महाप्रज्ञ, आमंत्रण आरोग्य को, 101-5
59. आचार्य महाप्रज्ञ, अहिंसा और शांति, 120-21
60. आचार्य महाप्रज्ञ, महाप्रज्ञ ने कहा-16,79
61. लोकतंत्र : नया व्यक्ति नया समाज, 125,83
62. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिन्ह, भा-1.195
63. महाप्रज्ञ ने कहा-4,72
64. महाप्रज्ञ ने कहा-8,15
65. महाप्रज्ञ न कहा-4,84
66. अहिंसा और शांति, 139
67. गांधीजी, अहिंसा-4.368-9
68. आचार्य महाप्रज्ञ, परिवार के साथ कैसे रहे?, 5
69. आचार्य महाप्रज्ञ, महाप्रज्ञ ने कहा-26,78,104
70. परिवार के साथ कैसे रहे?, 49-53
71. आचार्य महाप्रज्ञ-सार्थकता मनुष्य होने की, 51
72-74. परिवार के साथ कैसे रहे?, 143, 149-51, 34-38
75. अहिंसा-1,6
76. घट-घट दीप जले, 120.
77. अहिंसा के अछूते पहलु, 25
78. जैन भारती, मार्च 2003
79. लोकतंत्र-नया व्यक्ति नया समाज, 89-90
80. परिवार के साथ कैसे रहे?, 75-87
81. महाप्रज्ञ ने कहा-26,87
82. मेरे सपनों का भारत, 80-81
83. अहिंसा-2, 141, 147
84. युवाचार्य महाप्रज्ञ, मैं हूं अपने भाग्य का निर्माता, 246. युवादृष्टि जनवरी 1999.5

85. आचार्य महाप्रज्ञ, सार्थकता मनुष्य होने की, 5.51
86. लोकतंत्र : नया व्यक्ति नया समाज, 68
87. श्री नगराजजी, अणु से पूर्ण की ओर, 151
88. लोकतंत्र : नया व्यक्ति नया समाज, 124
89. मुनि नथमलजी, जैन दर्शन के मूल सूत्र, 150-51
90. समाज और हम, 10
91. अहिंसा भाग-3,243
92. श्रीमन्नारायण, ऋषि विनोबा, 153
93. साप्ताहिक विज्ञप्ति, 30 जून से 6 जुलाई, 2002.8
94. आचार्य महाप्रज्ञ, महाप्रज्ञ ने कहा-16.108
95. अणुव्रत की दार्शनिक पृष्ठभूमि, 170
96. राजस्थान पत्रिका, 14-3-2000.5
97. बापू कथा, 144-54
98. मेरे सपनों का भारत, 78
99. सिद्धराज दड्ढा, वैकल्पिक समाज रचना, 32-33
100. जैनेन्द्र कुमार, अकाल पुरुष गांधी. 229
101. मेरे सपनों का भारत, 76
102. महावीर का अर्थशास्त्र, 35
103. अहिंसा के अछूते पहलु, 193-94
104. अणुव्रत की दार्शनिक पृष्ठभूमि, 180 कर्मवाद, 293.296
105. वैकल्पिक समाज रचना, 15
106. गांधीजी, अहिंसा-4.374
107. भारतीय राजनीतिक विचारक, 438-39
108. बापू कथा, 191-94
109. आचार्य महाप्रज्ञ, अस्तित्व और अहिंसा, 59
110. महाप्रज्ञ ने कहा-4, 180,116.17
111. आचार्य महाप्रज्ञ, जैन दर्शन और अनेकान्त, 157-160
112. महाप्रज्ञ ने कहा-26, 64
113. युवाचार्य महाप्रज्ञ, महावीर का पुनर्जन्म, 293
114. अस्तित्व और अहिंसा, 60-63
115. महाप्रज्ञ ने कहा-4,17.18
116. सार्थकता मनुष्य होने की, 11-12
117. महाप्रज्ञ ने कहा-16,235
118. मेरी दृष्टि : मेरी सृष्टि, 124-125, 136
119. लोकतंन्त्र : नया व्यक्ति नया समाज, 87-93
120. विज्ञप्ति, 22-28 मार्च, 2009,7
121. हरिजन सेवक, 20.7.47
122. अहिंसा के अछूते पहलु, 4
123. जीवन विज्ञान : स्वस्थ समाज-रचना का संकल्प, 106-11
124. मुनि नथमल, जैन दर्शन के मूल सूत्र, 149-50
125. विज्ञप्ति, 16-22.6.2002.9
126. युगीन समस्या और अहिंसा, 46

127. महात्मा गांधी एवं धर्म निरपेक्षता, 89
128. ऋषि विनोबा, 163
129. वैकल्पिक समाज रचना, 22
130. लोकतंत्र : नया व्यक्ति नया समाज, 90
131. जैन दर्शन के मूल सूत्र, 19-20
132. अहिंसा के अछूते पहलु, 71
133. आचार्य महाप्रज्ञ, आमंत्रण आरोग्य को, 81-85
134. लोकतंत्र : नया व्यक्ति नया समाज, 67
135. आमंत्रण आरोग्य को, 99
136. अणुव्रत की दार्शनिक पृष्ठभूमि, 172
137. सार्थकता मनुष्य होने की, 101-2
138. महाप्रज्ञ ने कहा-16,13-9
139. महाप्रज्ञ ने कहा-7,42
140. परिवार के साथ कैसे रहे, 142
141. आचार्य महाप्रज्ञ, युगीन समस्या और अहिंसा, 48
142. हरिजन सेवक, 24.8.40
143. गांधी विचार दोहन, 64-66
144. अणुव्रत की दार्शनिक पृष्ठभूमि, 156
145. लोकतंत्र-नया व्यक्ति नया समाज, 14
146. गांधीजी, मेरे सपनों का भारत, 14
147. हरिजन बन्धु, मूल गुजराती 31-8-40
148. गांधीजी, अहिंसा-3,316
149. गांधी विचार दोहन, 73-74
150. आचार्य महाप्रज्ञ, विचार को बदलना सीखें, 146
151. हरिजन मूल अंग्रेजी, 11.2.39
152. मेरे सपनों का भारत, 18
153. लोकतंत्र : नया व्यक्ति नया समाज, 11
154. युगीन समस्या और अहिंसा, 9-10
155. अहिंसा-1,95,6-7
156. अहिंसा- 2, 194-8
157. मेरे सपनों का भारत, 111-12
158. अहिंसा-3,309. हरिजन सेवक 13.4.40
159. मेरे सपनों का भारत, 122-23 यंग इंडिया, 21-8-28
160. गांधी चित्रावली, 105, 111
161. हिन्दी नवजीवन, 23.11.24
162. मेरे सपनों का भारत, 4 हरिजन 4.11.39
163. अहिंसा-3, 286, 270
164. सेवाग्राम, 20.8.40
165. बापू-कथा, 203-7
166. महावीर का पुनर्जन्म, 284
167. समाज और हम, 14
168. महाप्रज्ञ ने कहा-4,164

189. जैन धर्म के मूल सूत्र, 15
180. अहिंसा-3,255
181. लोकतन्त्र : नया व्यक्ति नया समाज, 102
182. महावीर का अर्थशास्त्र, 89
183. युगीन समस्या और अहिंसा, 10-11
184. सार्थकता मनुष्य होने की, 21
185-186. युगीन समस्या और अहिंसा, 31, 25-26
187. स्वास्थ्य की त्रिवेणी, 32

अध्याय-4

अहिंसा : प्रायोगिक स्वरूप

पूर्ववृत्त

अहिंसा का प्रायोगिक स्परूप मनीषी द्वय की अनुभव चेतना से जुड़े सत्य का निदर्शन है। उनसे पूर्व अहिंसानिष्ठ प्रयोग मात्र आध्यात्मिक उत्थान अथवा वैयक्तिक शुद्धि के लिए प्रयुक्त किये जाते थे उनका सामूहिक जन-जीवन में परिवर्तन की प्रविधि के रूप में प्रयोग महात्मा गांधी व आचार्य महाप्रज्ञ का विश्व मानव के लिए अपूर्व उपहार है। अहिंसा के सनातन मूल्य को कसौटी पर कसकर व्यवहार में प्रतिष्ठित करना मनीषियों की अहिंसा निष्ठ चेतना का सबूत है। वैज्ञानिक युग में कोई भी प्रविधि तभी अस्तित्ववान् बन सकती है जब उसे वैज्ञानिक आधार प्राप्त हो। दोनों मनीषियों ने अहिंसा को अपने जीवन की प्रयोगशाला में परीक्षण और परिणामों को समीक्षण पूर्वक व्यापक आयाम दिया। अहिंसा मात्र प्राणवध विरति ही नहीं है अपितु जीवन परिवर्तन की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया भी है। एतद् विषयक मनीषियों द्वारा प्रयुक्त, प्रतिपादित प्रायोगिक मंतव्यों का विमर्श चतुर्थ अध्याय में इष्ट है।

महात्मा गांधी ने अहिंसा के प्रयोग पक्ष को अहिंसक आंदोलन से जोड़कर जन-जन में जागृति पैदा की। विशेष रूप से देश की आजादी के संदर्भ में अहिंसा को फौलादी हथियार के रूप में अपनाने का दृढ़ मनोबल उनकी अटूट अहिंसक आस्था का प्रमाण है। अपनी आस्था को असीम बनाने की प्रक्रिया में अहिंसा को प्रायोगिक रूप में प्रयुक्तकर इतिहास को नई दिशा दी। उन्होंने यह साबित किया कि हिंसा के दावानल को अहिंसा के अमृत कणों में शीतल करने की क्षमता है। इतना ही नहीं व्यक्ति से राष्ट्र तक के परिवर्तन का अनंतबल अहिंसा में समाया है। इस विश्वास को भारतीय आजादी के संदर्भ में गांधी ने साकार कर दिखाया।

आचार्य महाप्रज्ञ ने स्वतंत्र भारत की जनता के नैतिक चारित्रिक उत्थान हेतु अहिंसक प्रयोग को संस्कार परिवर्तन एवं व्यक्तित्व निर्माण की मौलिक प्रक्रिया के रूप में प्रतिष्ठित कर अहिंसा के सनातन मूल्य को जन-जीवन से जोड़ा। विकास की पृष्ठभूमि में संवेदनशीलता के विकास को अनिवार्य बतलाते हुए विभिन्न प्रयोग सुझाये। 'सव्वभूयप्प भूयस्स सम्मं भूयाहि पासओ'—सब जीवों को अपने तुल्य समझो। 'आयतुले पयासु'-सब आत्माओं को अपनी आत्म तुला से तोलों। इत्यादि विभिन्न अनुप्रेक्षाओं के प्रयोग से व्यक्ति का दृष्टिकोण बदलता है और उसमें दैविक गुणों का संचार होता है। जीवन मूल्यों का प्रायोगिक प्रशिक्षण शिक्षा के साथ जोड़कर महाप्रज्ञ ने परिवर्तन की प्रक्रिया को सुगम बनाया है। वर्तमान के संदर्भ में बढ़ते हुए आतंकवाद, उग्रवाद और हिंसा के घिनौने कारनामों के चलते अहिंसक उपचारात्मक प्रयोगों की मूल्यवत्ता स्वतः प्रमाणित है। अपेक्षा है दोनों मनीषियों द्वारा निर्दिष्ट प्रयोगों की समन्वित प्रस्तुति एवं व्यापक समाचरण की।

अहिंसा का आंदोलनात्मक स्वरूप

अहिंसा का सैद्धांतिक स्वरूप मनीषियों की प्रयोगधर्मा चेतना का संस्पर्श पाकर प्राणवान् बना। प्रयोगभूमि पर अहिंसा कहाँ, कैसे प्रतिष्ठित बनीं यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। इसके मन्थन स्वरूप विभिन्न तथ्य उजागर होते हैं। उन तथ्यों के आलोक में प्रायोगिक अहिंसा का एक व्यापक स्वरूप है-अहिंसक आन्दोलन। इसे राजनैतिक परिवेश में प्रतिष्ठित करने का एक मात्र श्रेय महात्मा गांधी को है। जिराल्ड हर्ड के शब्दों में 'गांधीजी के प्रयोग में सारे जगत् को दिलचस्पी है, और उसका महत्त्व युगों तक कायम रहेगा। इसका कारण यह है कि उन्होंने समूह को लेकर या राष्ट्रीय पैमाने पर उसका प्रयोग करने की कोशिश की है।'[1] कथन की पृष्ठभूमि में अहिंसक आंदोलन का स्पष्ट इंगित परिलक्षित है।

गांधी ने भारतीय संस्कृति के आदर्श रूप अहिंसक शक्ति को आजादी के हथियार रूप में अपनाने का देश की जनता से आह्वान किया। उनका दृढ़ विश्वास था कि जब यह शक्ति समूह चेतना से जुड़ जायेगी तो इसके परिणाम निश्चित वांछित ही होंगे। समूह शक्ति का बल मनोवैज्ञानिक मान्यता लब्ध है। 'प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि एक चूहा जो विद्युत ग्रिड पार करने में असफल रहता है, समूह के साथ पहले से भी अधिक विद्युत् ग्रिड पार करने में सफल हो जाता है।'[2] सामूहिक प्रयत्न में शक्ति का विस्फोट स्वाभाविक होता है। इस तथ्य के आधार पर संगठित रूप से जनता की अहिंसक चेतना को गांधी ने आजादी के आंदोलन से जोड़कर दुनिया के सामने सफलता की मिसाल कायम की।

गांधी ने विश्व व्यापी हिंसक आन्दोलनों का अध्ययन किया और उन्हें समाज परिवर्तन की दृष्टि से नाकाम पाया। उनकी दृष्टि में जो आन्दोलन हिंसा पर आधारित होते हैं उससे सच्चा परिवर्तन नहीं होता। सशस्त्र आन्दोलन की अपूर्णता अथवा निरर्थकता उनके सन्मुख थी। वे इस सच्चाई से अवगत थे कि हिंसक आंदोलन को दबा देना, उसे निरस्त करना किसी भी सत्ता पक्ष के लिए आसान होता है। यदि क्रांतिकारी दस-बीस गोलियाँ चला दे या दो चार अफसरों को मार डाले तो सत्ता पक्ष दो हजार बंदूकें चलवा सकता है और हजारों निरपराध लोगों को गोली से भूनकर रख सकता है। हिंसा का यह दौर थमता नहीं। क्योंकि आम प्रजा से सरकार हमेशा कहीं ज्यादा शक्तिशाली व समर्थ होती है। हिंसक आंदोलन की यह कमजोरी गांधी भलीभाँति जानते थे। इससे प्रेरणा लेते हुए उन्होंने कहा '.....मैं सशस्त्र आन्दोलन में विश्वास नहीं करता। जिस रोग को दूर करने के लिए इस उपचार का प्रयोग किया जाता है, उसके परिणाम से, इसका परिणाम कहीं अधिक भीषण होता है। ये प्रतिशोध तथा क्रोध के रूप हैं। हिंसा का अंतिम परिणाम कभी सुखद नहीं हो सकता। जर्मनी के मुकाबले

मित्र राष्ट्रों ने शस्त्र का प्रयोग किया। हम इससे उत्तम (अहिंसा) अस्त्र का प्रयोग कर सकते हैं।'[3] इस विश्वास और आस्था को मूर्त रूप देते हुए गांधी ने भारत की आजादी की भूमिका में अहिंसक आंदोलन का सूत्रपात किया। जिसकी मुख्य धुरा है-सत्याग्रह, असहयोग, सविनय अवज्ञा, स्वदेशी आदि।

सत्याग्रह आंदोलन

अहिंसा की अमिट आस्था से निष्पन्न सत्य की खोज का आग्रह यथार्थ के धरातल पर सत्याग्रह कहलाया। अहिंसा के सनातन आदर्श पर चलकर परिस्थितियों से लोहा लेते हुए हिमालयवत् अडिग बने रहने का संकल्प सत्याग्रह का अपना दर्शन है। गांधी का दृढ़ विश्वास था कि मानव के स्वभाव में दैविक गुणों का वास है पर उसे उत्तम प्रक्रिया से जगाने की जरूरत है। यह विश्वास ही सत्याग्रह की आधार शिला है। उनका मानना था कि सत्याग्रह से विरोधी मनःस्थितियों एवं परिस्थितियों का परिष्कार कर अनुकूल वातावरण का निर्माण किया जा सकता है। अहिंसा और सत्य की युगपत साधना के संकल्प पुरस्सर सामूहिक प्रायोगिक कर्मपक्ष का नाम है-सत्याग्रह आंदोलन।

'सत्याग्रह' संस्कृत के शब्द 'सत्य' और 'आग्रह' के योग से बना है। सत्य के प्रति आग्रह ही सत्याग्रह है। सत्याग्रह का अर्थ है, जिसे हम सत्य समझते हैं उसे मरणपर्यन्त न छोड़ना, सत्य के लिए तकलीफें उठाने की तैयारी, दूसरों को कष्ट न देने का संकल्प क्योंकि कष्ट पहुँचाने मात्र से सत्य का उल्लंघन होता है।[4] विरोधी को पीड़ा देकर नहीं, अपितु स्वयं को पीड़ा (कष्ट) में डालकर सत्य की रक्षा करना सत्याग्रह है। सत्याग्रह का तात्पर्य है-किसी भी त्याग के मूल्य पर सत्य और न्याय पर आरूढ़ रहने की शक्ति और संकल्प का पैगाम। गांधी ने इसे प्रेमबल या आत्मबल भी कहा है। साथ में यह भी बताया कि सत्याग्रह ऐसी तलवार है, जिसके दोनों ओर धार है। उसे चाहे जैसे काम में लिया जा सकता है। जो उसे चलाता है और जिस पर चलायी जाती है, वे दोनों सुखी होते हैं। वह खून नहीं निकालती, लेकिन उससे भी बड़ा परिणाम ला सकती है। उसके न जंग लग सकता है न चुराई जा सकती है। इसी तलवार से उन्होंने आजादी की लड़ाई लड़ने का निर्णय लिया।

सत्याग्रह आंदोलन की संयोजना का स्पष्ट उद्देश्य था भारतीय सभ्यता का संरक्षण। आध्यात्मिक सभ्यता की सुरक्षा गांधी ने इसी मूल्याधारित प्रयत्न में आँकी। प्रत्येक मनुष्य के सम्मुख संकट निवारण के लिए दो बल हैं, एक शस्त्रबल और दूसरा आत्मबल किंवा सत्याग्रह। यह बुनियादी तौर पर एक धार्मिक शक्ति है। जब तक हमें आत्मा की अखण्ड और अजेय शक्ति में आस्था नहीं होगी, तब तक हमारे संघर्ष की सफल परिणति पर प्रश्नचिह्न होगा। पर गलती आन्दोलन या उस शक्ति की नहीं हमारी आन्तरिक दुर्बलता की रहेगी।[5] स्पष्ट है उनका एक मात्र उद्देश्य आत्मशक्ति के बल पर देश को आजाद बनाना था। सत्याग्रह की मीमांसा में सत्यादि धर्मों का स्वयं पालन करने का आग्रह और अधर्म का सत्यादि साधनों के द्वारा ही विरोध इष्ट है। विरोध करने में खासकर अहिंसा के भंग की संभावना रहती है, इसलिए अहिंसा पर जोर देकर कहा-'अधर्म का अहिंसामय साधन से विरोध, सत्याग्रह है।' अहिंसा की पवित्र शक्ति ही इस आंदोलन का प्राण तत्त्व बना जिसका मुख्य लक्ष्य था सत्य और प्रेम के द्वारा अन्यायी के हृदय का संस्पर्श कर स्वयं उसको ही अन्याय के विरोध में खड़ा करना। सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक समस्याओं का निराकरण सत्याग्रह के द्वारा अहिंसक उपायों से करना मुख्य ध्येय रहा।

सत्याग्रह का आधारभूत तत्त्व है-मानवीय एकता। सभी के भीतर दिव्यता का समान रूप से

निवास है अतः सत्य-प्रेम की शक्ति से विरोधी की इस शक्ति का जागरण करना। विशेष रूप से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्श पर दुनिया का कोई मानव पराया है ही नहीं विरोधी भी अपना ही है। सत्याग्रह इसी पारिवारिक भावना का समाज में विस्तार करता है। सभी का आत्मबल असीम है यदि अन्याय के प्रतिकार के लिए आत्मबल का सहारा लें तो वर्तमान कष्टों से एक बड़ी हद तक बचा जा सकता है।.....'बुराई का प्रतिरोध न करो' का अर्थ है, बुराई को बुराई से नहीं, बल्कि भलाई से दूर करो। दूसरे शब्दों में शरीर बल का शरीर बल से नहीं, बल्कि आत्मबल से प्रतिरोध करो। आत्मबल ही सत्याग्रह आंदोलन की आधार भित्ति है।

तात्कालीन परिवेश में देखें तो भारतीय संदर्भ में गांधी के सत्याग्रह आंदोलन का आधार दक्षिण अफ्रीका में किया गया सत्याग्रह आंदोलन का सफल प्रयोग था। दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों के हित रक्षण हेतु गांधी के नेतृत्व में सत्याग्रह आंदोलन से आठ वर्ष तक चले संघर्ष का अन्त हुआ। आंदोलन की सफलता का निदर्शन है–

- तीन पौंड का कर समाप्त हुआ।
- हिन्दू, मुस्लिम, पारसी विवाह जायज माने गये।
- पढ़े-लिखे हिन्दी, भाषी अफ्रीका में आ सकते थे।
- आने-जाने के परवाने-परमिट प्रथा हटा दी गयी।

इस समझौते पर गांधी और जनरल स्मट्स के हस्ताक्षर हुए तथा जून 1914 को पार्लियामेंट में उसका विधेयक पारित हुआ और कानून बनाया गया।[6] बीस वर्ष से कौम पर थोपा गया अन्याय और अपमान का अहिंसक प्रतिकार से अन्त कर, सत्य की शोध में सत्याग्रह का अमोघ अस्त्र गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में पाया। संसार के इतिहास में ऐसे अहिंसक सत्याग्रह का यह प्रथम प्रयोग था। प्रयोग भूमि पर दुनिया के निम्न कोटि के गिरमिट मजदूरों को साथ लेकर गांधी ने इस अस्त्र का प्रयोग गोरे लोगों की निर्मम सत्ता के सामने किया।

दक्षिण अफ्रीका के अनुभवों ने सत्याग्रह की अपरिमित शक्ति को सिद्ध किया और भारत-भू के बंधन इसी अस्त्र से तोड़ने का संकल्प प्रबल बना।

सत्य और प्रेम (सक्रिय अहिंसा) से सारा संसार जीता जा सकता है-यह अटूट आस्था ही उन्हें सत्याग्रह की साधना में नियोजित कर सकी। इसकी संपुष्टि इन पंक्तियों से होती है-'मेरा ख्याल है कि यह पृथ्वी प्रेम के बल पर ही टिकी हुई है। जहाँ प्रेम है, वहीं जीवन है, प्रेम रहित जीवन मृत्यु के समान है। प्रेम उसी सिक्के का दूसरा पहलू है, जिसका पहला पहलू सत्य है।' सत्याग्रह शक्ति का यही रहस्य है।

आंदोलन के दौरान इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया कि-सत्याग्रह सरल भी है और कठिन भी। सत्य का ही आग्रह रखने से सारे दुःख दूर हो सकते हैं, अब यह बात सबको आसानी से समझ में आ जानी चाहिए। सत्य का पालन-दुःख दूर करने के लिए होता है। दुःख सहन कठिन लगता है। फिर ज्यों-ज्यों विचार करता हूँ, त्यों-त्यों सिवाय सत्याग्रह के कोई दूसरा उपाय अपने अथवा किसी दूसरे के दुःखों के (निवारण के) लिए सूझ नहीं पड़ता। मुझे तो ऐसा भी लगता है कि उसके सिवाय कोई सच्चा इलाज दुनिया में है ही नहीं। ऐसा हो या न हो, किन्तु हम तो अब यह समझने लगे हैं कि सत्याग्रह से विजय पाना (ज्यादा) ठीक रास्ता है।[7] उनका यह दृढ़ विश्वास जन-जन की चेतना का संचरण पाकर मुखर हो उठा। सत्याग्रह आंदोलन की गुणवत्ता को बरकरार रखने के लिए आंदोलन कारियों के लिए विशेष हिदायतें दी।

सत्याग्रहियों को गांधी का स्पष्ट आह्वान था-अपने शस्त्रागार में केवल सत्य और अहिंसा के ही शस्त्र रखें एवं उन्हीं का उपयोग करें। जो सत्याग्रह में शरीक होते हैं उन्हें हर हालत में हिंसा से अलग रहना है। ईंट-पत्थर नहीं फेंकने हैं और न किसी को किसी अन्य प्रकार से चोट पहुँचानी है। अपने साथी के पकड़े जाने या कैद की सजा दिये जाने पर शोक का या और किसी तरह का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए।

सत्याग्रह के अर्थानुरूप सत्याग्रही की मीमांसा की गई कि इस लड़ाई में लड़ने वाले में सत्य का आग्रह-सत्य का बल होना चाहिए अर्थात् उस व्यक्ति को केवल सत्य के ऊपर निर्भर रहना चाहिए। एक पग दही में और एक पग दूध में रखने (अर्थात् दो नावों पर रखने) से काम न चलेगा। ऐसा करने वाला व्यक्ति (शरीर बल और नैतिक बल के दो पाटों के) बीच में कुचल जायेगा। सत्याग्रह कोई गाजर की पीपनी नहीं है कि वह बजेगी तो बजायेंगे और नहीं तो खा जायेंगे।

सत्याग्रह शरीर-बल से अधिक तेजस्वी है और उसके सामने शरीर बल तिनके के समान है। सत्याग्रही तो अपने शरीर को कुछ भी नहीं गिनता। वह बाहरी हथियार नहीं बाँधता और मौत का डर रखे बिना अन्त तक लड़ता है। सत्याग्रही के लिए सबसे पहले सत्य का सेवन करना, सत्य के ऊपर आस्था रखना आवश्यक है। इस बात पर विशेष बल दिया गया कि सत्याग्रही अत्याचार में तो भाग ले ही नहीं सकता। उसको कुटुम्ब का मोह छोड़ना पड़ता है और पैसे का मोह त्याग करना होता है।

भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी सहन करनी पड़ती है। जो धर्म, दीन और ईमान की रक्षा उचित प्रकार से करता है वही सत्याग्रही हो सकता है। इसका अर्थ यह है कि जो मनुष्य सब कुछ खुदा या ईश्वर पर ही छोड़ देता है, उसको संसार में कभी हारना ही नहीं पड़ता।[४] उसके पास हारने जैसा कुछ भी अपना नहीं होता पर जीतने के लिए सारी दुनिया होती है। उसका प्रेम बल उसे विजयी बनाता है। इसी दृढ़ विश्वास से सत्याग्रही अपने ऊपर होने वाले वैयक्तिक अन्याय के लिए झट सत्याग्रह करने नहीं जायेगा। छुट-पुट अन्यायों को वह साधारणतः सह लेगा और सहन करते-करते विरोधी को प्रेम से जीतने की कोशिश करेगा।

गांधी ने इस पर बल दिया कि-सत्याग्रही दृढ़-निश्चयी, आत्म-विश्वासी, नैतिक शक्तिवाला एवं अनुशासित हो। सत्याग्रहियों का आत्मानुशासन बना रहे इस दृष्टि से कुछ अनिवार्य हिदायतें दीं-

• जुलूस न निकालें। • संगठित प्रदर्शन न हों। • पहले से समिति का आदेश प्राप्त किये बिना किसी भी कारण कोई हड़ताल न हो। • हिंसा न हो • ट्रामों के चलने या यातायात में कोई बाधा न डाली जाये। • किसी पर किसी भी किस्म का दबाव न डाला जाये।

सार्वजनिक सभाओं में तालियाँ न बजाई जायें। अनुमोदन या विरोध का प्रदर्शन न किया जाये। 'शर्म' 'शर्म' की आवाजें न कसी जायें। हर्ष ध्वनित न की जाये। पूर्णतया शांति रहे।[५] गांधी द्वारा निर्मित इन नियमों का पालन प्रत्येक सत्याग्रही का आत्म धर्म था।

सत्याग्रही होना सरल और कठिन दोनों है। सरल इसलिए है कि इसका राही बालक, रोगी, वृद्ध, गरीब, स्त्री-पुरुष कोई भी बन सकता था और बनें भी। कठिन इस दृष्टि से है आत्मशक्ति, सत्य-प्रेम और सघन देश भक्ति के बिना इस मार्ग पर नहीं चला जा सकता। अभय के बिना सत्याग्रही की गाड़ी एक कदम भी आगे नहीं चल सकती। ब्रह्मचर्य के पालन से ही सत्याग्रही की शक्ति शतगुणित बनती है। सत्याग्रही का स्वरूप अनेक प्रसंगों पर प्रकट हुआ अतः उसमें अनेक गुण-धर्मों का समावेश स्वाभाविक है।

सत्याग्रहियों की स्खलनाओं को देखकर समय-समय पर बापू उन्हें सावधान करते एवं अपूर्णता का बोध करवाते। सत्याग्रही इतना तो जरूर जानते हैं कि उनमें से यदि एक भी शुद्ध होगा, तो उसका यज्ञ फलोत्पत्ति के लिए काफी है। पृथ्वी सत्य के बल पर टिकी हुई है। 'असत्' 'असत्य' के मानी है, 'नहीं', 'सत' 'सत्य' अर्थात् 'है'-जहाँ असत् अर्थात् अस्तित्व ही नहीं उसकी सफलता कैसे हो सकती है? बस इसी में सत्याग्रह का सिद्धांत समाविष्ट है।[10] वे आंदोलन की सफलता सत्याग्रहियों के विशुद्ध आचरण पर आंकते थे। सत्याग्रह और सत्याग्रही में अन्योन्य भाव का निदर्शन है। सत्याग्रह एक अजेय शक्ति है। यह ऐसी शक्ति है जिसे हर कोई अपना सकता है। यह वीरों का अस्त्र है। भौतिक शस्त्र कमजोर व्यक्ति उठाता है। जान को हाथ में लेने वाला वीर ही सत्याग्रह के जरिये क्षमा, बलिदान, सहयोग, मर्यादा का अनुपालन करता है। बल-प्रयोग के सर्वथा विपरीत आत्म-शक्ति एवं सत्यबल के आधार पर बुना गया यह सत्याग्रह आंदोलन अहिंसा की ताकत पर टिका है।

सत्याग्रह वास्तव में अहिंसक आन्दोलन है। डॉ. हरिद्वपर राय के अनुसार सत्याग्रह की प्रक्रिया में चार विचार सन्निहित हैं-पहला संसार में कुछ गलतियां या अव्यवस्थाएँ हैं, दूसरा इन पर विजय प्राप्त करना अनिवार्य है, तीसरा, हिंसा के द्वारा इन पर विजय प्राप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि हिंसा बुरी इच्छाओं को गहरी और सबल बनाती है तथा चौथा, गलतियों पर विजय शुभ संकल्प से प्रेरित होकर आत्म-पीड़न के द्वारा किया जा सकता है। इन विचारों से स्पष्ट है कि सत्याग्रह की प्रक्रिया समाज में प्रचलित बुराइयों से संघर्ष करने के लिए आरम्भ होती है। ये बुराइयां आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक-किसी प्रकार की हो सकती है।[11] व्यवहार के धरातल पर सत्याग्रह आंदोलन बुराइयों के प्रतिकार का अहिंसक हथियार था। इसका नैश्चयिक स्वरूप अहिंसा और सत्य से ओत-प्रोत था।

सत्याग्रह आंदोलन को 'पैसिव रेजिस्टेन्स' कहना भूल होगी। दोनों का स्वरूप भिन्न हैं। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों का अहिंसात्मक आंदोलन 'पैसिव रेजिस्टेन्स' नाम से पुकारा जाता था जिसे निर्बलों का हथियार कहकर मखौल उडायी जाती पर गांधी ने प्रतिकार करते हुए कहा—'हम भले ही निर्बल और पीड़ित हों पर सत्याग्रह निर्बल का शस्त्र नहीं है। यह तो बलवान से बलवान और बहादुर-से-बहादुर का हथियार है।' उन्होंने बलपूर्वक कहा-हिन्दुस्तानियों का आंदोलन 'पैसिव रेजिस्टेन्स' से एक जुदी चीज है, दक्षिण अफ्रीका में 'सत्याग्रह' शब्द का प्रयोग किया गया था।

पैसिव रेजिस्टेन्स निषेधात्मक चीज है, इसमें प्रेम के सक्रिय तत्त्व का जरा भी अंश नहीं होता जबकि सत्याग्रह प्रेम के सक्रिय तत्त्व पर चलता है। यह तत्त्व कहता है कि 'जो तुम्हारे साथ बुरा करे उन पर तुम प्रेम करो।'[12] मन्तव्य से स्पष्ट है कि सत्याग्रह पैसिव रेजिस्टेन्स से बहुत ऊँची और भिन्न प्रक्रिया है।

अहिंसा और सत्य की मिशाल कायम करते हुए सत्याग्रह के विभिन्न प्रयोग किये गये, यथा—
• नमक सत्याग्रह • खेड़ा सत्याग्रह • वायकोम का सत्याग्रह • युद्ध विरोधी सत्याग्रह • प्रतिनिधि सत्याग्रह • व्यक्तिगत सत्याग्रह • बारडोली का सत्याग्रह

विभिन्न रूपों में प्रयुक्त सत्याग्रह तात्कालीन परिस्थितियों में एक राजनैतिक अस्त्र था जिसके जरिये सामाजिक, आर्थिक संकटों से उबरने का सार्थक प्रयत्न किया गया।

गांधी के सत्याग्रह आन्दोलन की सफलता का राज है स्वयं का प्रामाणिक सत्याग्रही होना। इस विचार की पुष्टि में दक्षिण अफ्रीका का एक उदाहरण प्रासंगिक होगा। सन् 1908 में गांधी को

अफ्रीका में काले पानी की जेल हुई। पत्थर फोड़ने का काम दिया गया। एक दिन पत्थर फोड़ते-फोड़ते उनके हाथ से खून बहने लगा। साथी सत्याग्रहियों ने कहा : 'बापूजी, काम बन्द कीजिये! अँगुलियों से खून बह रहा है।' बापू ने कहा : 'जब तक हाथ काम करता रहेगा, तब तक करते रहना मेरा कर्तव्य है।' और वह महान् सत्याग्रही पत्थर फोड़ता ही रहा।[13] घटना प्रसंग से प्रामाणित है कि उन्होंने सत्याग्रह की कसौटी पर खुद को किस तरह कसा और परिपक्व बनाया। गांधी की अहंकार मुक्त चेतना ने कभी स्वयं को पहला लौकिक सत्याग्रही घोषित नहीं किया। उनका दावा तो मात्र उस सिद्धांत के सार्वभौम पैमाने पर उपयोग का था।

सत्याग्रह आंदोलन की तकनीकी प्रक्रिया के रूप में असहयोग, सविनय अवज्ञा, उपवास, हिजरत, धरना, हड़ताल, सामाजिक-बहिष्कार आदि को अपनाया गया। इनमें प्रमुख की चर्चा स्वतंत्र रूप से की जायेगी।

सत्याग्रह आंदोलन का मौलिक स्वरूप सत्य-अहिंसा प्रधान होने से तत्वतः आध्यात्मिक कहा जा सकता है। यह शुद्धिकरण एवं तप की एक प्रक्रिया के रूप में प्रयुक्त हुआ। इसकी बेमिसाल शक्ति पर उन्हें पूरा भरोसा था। पर आचरण में इसकी अपूर्णता को देखकर कहा—'सत्याग्रह ऐसी शक्ति है जिसका पूर्ण विकास अभी नहीं हो पाया है। जो तपस्वी मनसा-वाचा-कर्मणा, सत्य और अहिंसा का पालन करता हुआ इसकी शक्तियों की शोध में श्रम करेगा उसे इसके अनेक नये प्रकार मिलेंगे और उसे इसका बल अटूट जान पड़ेगा।' गांधी का यह अभिमत सत्याग्रह के संदर्भ में यथार्थ का निदर्शन है।

सत्याग्रह आन्दोलन के संबंध में उनकी दृष्टि सूक्ष्म थी। जब वे विरोधियों के प्रति भी प्रेम की बात करते थे, तो उनके लिए यह पाखण्ड नहीं था। इसका असली उद्देश्य उस आक्रामकता को प्रतिद्वंदियों में भी निरस्त करना था। जब कभी आंदोलन के दौरान उन्होंने हिंसक वारदातें देखी, शिखरारोही सत्याग्रह आंदोलन को भी तत्काल स्थगित कर आत्मगौरव का अनुभव किया। इसे अपने जीवन का महत्त्वपूर्ण और बड़ा दिन करार देते हुए गांधी ने बताया—'सारे राष्ट्र के विरोध के बावजूद बारडोली का आन्दोलन जिस दिन मैंने स्थगित किया, उस दिन को मैं बड़ा मानता हूँ। पीछे हटने का वह दिवस, वह सत्याग्रही की दृष्टि से विजय-दिवस था। वह अहिंसा की जीत थी।'[14] उत्तर प्रदेश के चौराचौरी स्थान पर हुए दंगों ने गांधी की अहिंसक चेतना को मर्माहत कर दिया और उन्होंने आन्दोलन स्थगन की घोषणा की। जिसे सुनकर पूरा देश क्षुब्ध था। इसे गांधी की भयंकर भूल बताया जा रहा था पर वे अपने निर्णय के प्रति पूर्ण विश्वस्त थे। इससे प्रमाणित होता है कि उनका सत्य-अहिंसा प्रेम परिस्थितियों से अप्रभावित अविचल था।

सत्याग्रह आंदोलन ने देश की जनता की आकांक्षाओं को पूरा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सत्याग्रह के संबंध में महाप्रज्ञ का संक्षिप्त मन्तव्य देखा जा सकता है। यद्यपि उसका संदर्भ गांधी के संदर्भ से सर्वथा भिन्न है। पर, इतना तो सच है कि महाप्रज्ञ ने भी सत्याग्रह को प्रस्तुति का विषय बनाया। उनकी दृष्टि में सत्याग्रह का व्यक्तिगत प्रयोग बहुत पुराना है। भगवान् महावीर ने सत्याग्रह किया कि दासी बनी हुई राजकुमारी के हाथ से भोजन लूँगा, अन्यथा छह मास तक भोजन नहीं लूँगा। इसकी पारंपरिक व्याख्या कुछ भी हो, भगवान् महावीर के क्रान्त व्यक्तित्व के सन्दर्भ में इसकी व्याख्या होगी दास-प्रथा के उन्मूलन के लिए सत्याग्रह का प्रयोग। इस दौरान भगवान महावीर ने पाँच मास और पच्चीस दिन तक भोजन नहीं किया।

सत्याग्रह तपस्या है। उसका प्रहार यदि दूसरे व्यक्ति पर होता है तो वह सत्याग्रह नहीं हो सकता। उसका प्रहार अपनी शक्ति की प्रखरता के लिए होना चाहिए। जिस परिवर्तन के लिए सत्याग्रह किया जाता है, उससे संबंधित व्यक्ति का हृदय तपस्या की आँच के बिना नहीं पिघल सकता और हृदय का परिवर्तन हुए बिना सत्याग्रह की सार्थकता नहीं हो सकती। महात्मा गांधी ने सत्याग्रह को सामुदायिक प्रतिष्ठा दी।

सत्याग्रह संबंधी अपने मन्तव्य को अधिक स्पष्ट करते हुए महाप्रज्ञ ने लिखा-सत्याग्रह कोई आयास शस्त्र नहीं है। वह शस्त्रविहीन धार है। आयस शस्त्र को भी हर कोई नहीं चला सकता। जिसमें शरीर बल, मनोबल और प्रशिक्षण-तीनों होते हैं, वही उसे चला सकता है। सत्याग्रह की धार का प्रयोग वही कर सकता है, जो मनोबल, धृति, सहिष्णुता और करुणा से परिपूर्ण होता है। इस योग्यता का समुदाय न महात्मा गांधी को मिला और न किसी अन्य व्यक्ति को मिला। महात्मा गांधी सत्याग्रह के योग्य व्यक्ति थे। उनके कुछ सहयोगी भी उसके लिए उपयुक्त थे पर भीड़ की सत्याग्रह के लिए अर्हता नहीं हो सकती। हमारी दुनिया में बहुत बार अहिंसा के नाम पर हिंसा, सत्य के नाम पर असत्य और अच्छाई के नाम पर बुराई चलती है। वर्तमान में चलने वाले अधिकांश सत्याग्रहों में कोरा आग्रह ही चलता है। अनाग्रह के बिना सत्याग्रह उतना ही मिथ्या है, जितना कि असत्याग्रह। जिसमें अपने प्राणों का मोह नहीं है, जो दूसरे के प्रति प्रेम से परिपूर्ण है, जिसमें तटस्थता है-किसी भी पक्ष का आग्रह नहीं है, वह अहिंसक है और अहिंसक ही सत्याग्रही होने का अधिकारी है।

प्रशिक्षण और साधना के बिना सत्याग्रही का निर्माण नहीं हो सकता। कुछ लोग हिंसा-प्रेमी हैं और कुछ लोग सत्याग्रह-प्रेमी। गहरे में दोनों के प्रेम की जड़ एक है। अहिंसा के बिना सत्य सत्य नहीं हो सकता और सत्य के बिना अहिंसा अहिंसा नहीं हो सकती। दोनों की एकात्मकता ही दोनों को दो रूपों में प्रतिष्ठित करती है।[15] महाप्रज्ञ के इन सत्याग्रह मूलक विचारों में अध्यात्म को नई दिशा देने की ताकत है।

विमर्शतः सत्याग्रह आंदोलन अहिंसा और सत्य की धुरा पर टिका है। इसकी प्रासंगिकता आज भी विद्यमान है। वैश्विक मंच पर घटने वाली अनेक समस्याओं का सटीक-स्थायी समाधान सत्याग्रह के आलोक में खोजा जा सकता है। अपेक्षा है इसके विशुद्ध स्वरूप के प्रयोग की।

असहयोग आन्दोलन

असहयोग आन्दोलन अन्याय, शोषण-उत्पीड़न के विरुद्ध नैतिक शक्ति के प्रदर्शन का एक सशक्त अहिंसक साधन है। इसका प्रयोग विभिन्न परिस्थितियों एवं संदर्भों में औचित्यानुरूप किया जाता है। असहयोग का सीधा सा अर्थ है-अन्याय, पाप से अपने आपको हटा लेना, उसमें सहयोग नहीं करना। आत्म त्याग और बलिदान करने के लिए आत्म संयम का दूसरा नाम है-असहयोग। बुराई के प्रतिकार का यह एक शक्तिशाली अस्त्र है। यह शोधन की वैज्ञानिक प्रक्रिया है-स्व शुद्धि के द्वारा ही इसका प्रयोग किया जाता है। इसमें निष्क्रियता को कोई अवकाश नहीं यह प्रबल सक्रियता का द्योतक है। सक्रिय अहिंसक आत्मशक्ति के बगैर असहयोग की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस शक्ति का सामूहिक रूप से किया गया प्रयोग असहयोग आन्दोलन कहलाया। आजादी की पृष्ठभूमि में अहिंसक हथियार के रूप में इसका प्रयोग विशिष्ट था।

अहिंसा 'कुछ न करना' नहीं है। हम बुराई का प्रतिरोध इस ढंग से कर सकते हैं कि उसके

साथ सहयोग करने से इनकार कर दें। असहयोग आंदोलन का सूत्रपात सन् 1920 में गांधी के नेतृत्व में हुआ।[16] जिसका एकमात्र लक्ष्य देश की आजादी था।

हिन्द स्वराज और इंडियन होम रूल में असहयोग को परिभाषित करते हुए गांधी ने लिखा-'शांतिपूर्वक विरोध एवं पीड़ा सहकर अपने अधिकारों को सुरक्षित करने की यह एक विधि है। जब मैं कोई कार्य करने के लिए मना करता हूँ वह मेरी अन्तरात्मा के लिए अरूचिकर है, मैं आत्मा की शक्ति को काम में लेता हूँ।'[17]

असहयोग आंदोलन का मूल मंत्र है-अपनी मान्यता से विपरीत सिद्धांत का असहयोग। इसके द्वारा असामाजिक तत्व, शोषक दुष्टता, बुराइयों का सामूहिक प्रतिकार सुगमता से किया जा सकता है। भारत वर्ष में स्वतंत्रता आंदोलन में इसकी अहं भूमिका रही।

ऐतिहासिक संदर्भ में देखें तो असहयोग भारत की प्राचीन विधा है। भारतीय राजनैतिक व्यवस्था में ऐसा प्रचलन था कि जब राजा प्रजा पर अधिक अन्याय करता तब प्रजा राजा के राज्य से निकलकर जंगल जाने की धमकी देती और जंगल जाने पर वह कर देना बंद कर देती थी। कभी-कभी सामूहिक रूप से राज्य छोड़ने की बात भी आती थी। वस्तुतः ये असहयोग के ही उदाहरण हैं। व्यक्तिगत असहयोग के उदाहरण भी मिलते हैं यथा—प्रह्लाद, नचिकेता अपने पिता से, मीरा बाई ने राणा से, चंदन बाला ने रथिक से, गीता में पाण्डवों ने असहयोग किया, ईसामसीह, सुकरात आदि के असहयोगात्मक प्रयोगों का इतिहास साक्षी है। असहयोग आंदोलन की अहिंसक शक्ति सशक्त मांसपेशियों पर, विनाशकारी शस्त्रास्त्रों पर और शैतानी जहरीली गैसों पर भरोसा नहीं रखती, अपितु नैतिक साहस, आत्मनियंत्रण और सुदृढ़ चेतना पर भरोसा रखती है। प्रत्येक मनुष्य के भीतर, चाहे वह कितना ही क्रूर और द्वेषी क्यों न हो, दया की एक जलती हुई ज्योति, न्याय के प्रति प्रेम और अच्छाई तथा सत्य के प्रति सम्मान की भावना विद्यमान रहती है; उसे असहयोग जैसी प्रक्रिया से जागृत किया जा सकता है।

गांधी ने असहयोग की इस प्राचीन पद्धति का प्रयोग भारत की स्वाधीनता की समस्या को हल करने के लिए किया। यदि हम स्वतंत्र नर-नारियों की भाँति जीवन नहीं बिता सकते, तो हमें मर जाने में संतोष अनुभव करना चाहिए। भारत में अंग्रेजी राज्य भारतीय जनता के एक बहुत बड़े भाग की स्वेच्छापूर्ण और वास्तविक सहमति के आधार पर टिका हुआ है। यदि यह सहयोग न रहे तो यह शासन समाप्त हो जाएगा।[18] एतद् रूप चिंतन की निष्पत्ति में असहयोग आंदोलन आजादी की लड़ाई का अभेद्य अस्त्र बना।

गांधी ने दृढ़ता पूर्वक कहा-मेरा दृढ़ विश्वास है कि अहिंसात्मक असहयोग निर्बल का ही बल नहीं, बल्कि बलवानों का भी खास बल है। वह सर्वव्यापी सिद्धांत है। जान में हो या अनजान में हम रात-दिन इस पर अमल करते हैं।.....'क्वेकर' लोगों का इतिहास अहिंसात्मक असहयोग का जगमगाता उदाहरण है। भारत में वैष्णवों का इतिहास भी इस सिद्धांत की पुष्टि करता है। ये लोग जो काम कर सके हैं, सारी दुनिया उसे कर सकती है।

अहिंसात्मक असहयोग भारत को उसके मनुष्यत्व की याद दिलानेवाली चीज़ है। भले ही करोड़ों लोग एक साथ इस बात में श्रद्धा न रखें। हथियार उठाने के लिए भी कौन करोड़ों तैयार बैठे हैं? करोड़ों तैयार हो भी नहीं सकते। अहिंसात्मक युद्ध में अगर थोड़े भी मर मिटने वाले लड़ाके होंगे, तो वे करोड़ों की लाज रखेंगे और उनमें प्राण फूँकेंगे। अगर यह मेरा स्वप्न है, तो भी मेरे लिए

मधुर है। आकाशकुसुम है तो भी मेरी कल्पना की आँखों में उनकी शोभा है और उसमें से सौरभ फैलता ही रहता है।[19] यह उनकी अटूट आस्था का प्रतिबिम्ब है।

असहयोग सत्याग्रह का दर्शन इस तथ्य पर आधारित है कि कोई भी शासक तब तक ही प्रजाजन के प्रति अन्याय एवं शोषण की अनीति का पालन करने में समर्थ होता है जब तक कि उसे अज्ञान एवं भय के कारण प्रजाजन का सहयोग प्राप्त होता है। गांधी ने अहिंसक नीति से समाधान की प्रक्रिया के रूप में असहयोग को आजादी का आंदोलन बनाया।

भारतीय संदर्भ में असहयोग आंदोलन का उद्देश्य रहा-

- भारत के लिए स्वराज्य की मांग करना।
- ब्रिटिश सरकार से असहयोग करना।
- अंग्रेजों की तुर्की नीति (बांटो और शासन करो) का विरोध करना।
- हिन्दू-मुस्लिम एकता पर जोर देना।
- सरकारी उत्सवों व समारोहों का बहिष्कार करना।
- स्वदेशी का प्रचार तथा विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करना।

असहयोग का प्रमुख उद्देश्य था स्वतंत्रता प्राप्त करना। इसकी पृष्ठभूमि में गांधी ने अनुभव किया कि जब तक भारतवर्ष असहयोग के लिए पूरी तरह तैयार नहीं हो जायेगा, उसे स्वराज्य की प्राप्ति अर्थात् अपनी खोई हुई मर्यादा की प्राप्ति नहीं हो सकती। असहयोग आंदोलन का यह भी उद्देश्य था कि भारतवर्ष एक ऊँचे स्थान से संसार को अपना नैतिक संदेश सुना सके। इस आन्दोलन के द्वारा हम ब्रिटिश सिंह की आत्मा तक पहुँचते हैं, इसलिए कि वह उसको प्राप्त कर ले। यह आन्तरिक शक्ति को विकसित करने का आन्दोलन है। इसलिए अपने अंतिम रूप में यह निःसन्देह ब्रिटिशसिंह की आत्मा तक पहुँचेगा।[20] गांधी की बेबाक प्रस्तुति थी-कि भारत जानता है कि मशीन गनों और सुरंगों के सामने उसकी शक्ति बेकार है। .....वह असहयोग को स्वीकार कर रहा है। लोगों ने इसे अपनाया तो अभीष्ट की सिद्धि अवश्य होगी अर्थात् ब्रिटिश अन्याय परायणता का नाश अवश्य हो जायेगा। लक्ष्य प्राप्ति की तीव्र अभिलाषा के साथ असहयोग ने जन-जन में बल साहस, पौरुष, आशा तथा विश्वास का संचार किया।

असहयोग का आधारभूत तत्त्व अहिंसा है। इसके आलोक में पारस्परिक आदर और विश्वास की बुनियाद पर बिना किसी दबाव के सच्चे तथा प्रतिष्ठापूर्ण सहयोग के लिए रास्ता तैयार करना है। असहयोग आंदोलन का मूल सत्याग्रह है, अर्थात् प्रेम-पाप से घृणा करो पापी से नहीं। इस अपेक्षा से यह द्वेष या घृणा का मन्त्र नहीं, प्रेम का मन्त्र है। यह प्रेम सब दुखों के निवारण की कुँजी है। असहयोग के पीछे मूल दर्शन है सभी प्रकार के राजनैतिक तथा सामाजिक संबंधों का आपसी सहयोग पर निर्भर होना। यदि विशेष प्रकार की सामाजिक, राजनैतिक या आर्थिक व्यवस्था अन्याय तथा शोषण को प्रश्रय देती है, तो इसके उन्मूलन का सबसे सरल तथा मौलिक तरीका है, असहयोग के आधार पर पुराने संबंधों को तोड़ना और नई व्यवस्था में सहयोग देना। इसे अधिक स्पष्ट करते हुए कहा-'हम असहयोग के साथ प्रामाणिक अहिंसा का जो असहयोग का सहज फल है-अवलम्बन करें या प्रतियोगी सहयोग को अर्थात् विरोध के साथ सहयोग को अपनावें।'

गांधी का मानना था कि बुराई से असहयोग तत्त्वतः शोधन प्रक्रिया है। यह लक्षणों से कहीं अधिक कारणों का उपचार करता है। यह हमारे सामाजिक संबंधों को विशुद्ध आधार पर अधिष्ठित

करने का आन्दोलन है, ताकि उसकी मीमांसा हमारे आत्म सम्मान एवं गौरव के अनुकूल की जा सके। साथ ही बताया-बुराई से असहयोग करना, भलाई से सहयोग करने के बराबर है।

आंदोलन की प्रचंडता का अनुमान लगाया जा सकता है-इसमें हिन्दू-मुसलमान बिना भेदभाव शरीक हुए। मद्य-निषेध, खद्दर प्रचार, अस्पृश्यता-निवारण, अदालतों और सरकारी शिक्षण संस्थाओं का बहिष्कार इस आन्दोलन का ध्येय बन गया। इससे भारत में वह तूफान आया, वह सामूहिक जागृति हुई जो भारत के इतिहास में बिल्कुल नई और आश्चर्यजनक थी। अनेक वकीलों ने वकालत छोड़ दी, विद्यार्थियों ने स्कूल और कॉलेजों को छोड़ा, कौंसिलों तथा अदालतों का जबरदस्त बहिष्कार हुआ। लोगों ने अपनी पदवियां लौटा दीं। जगह-जगह पर विलायती कपड़ों की होली जलाई गई। प्रयाग के प्रसिद्ध वकील त्यागमूर्ति पं. मोतीलाल नेहरू तथा बंगाल के देशबन्धु चितरंजन दास भी अपनी वकालतें छोड़ कर महात्मा के कार्यक्रम में पूरी तरह से लग गये।[21] इस तरह पूरे देश में आंदोलन की लहर फैल गयी। आजादी की पृष्ठभूमि में असहयोग के दो मुख्य कारण थे—

1. भारत की आत्म निर्भरता खत्म हो रही थी।
2. ब्रिटिश शासकों को भारत से निकालना था।

इन कारणों की असहयोग के संदर्भ में रचनात्मक और निषेधात्मक पक्षों में पहचान बनी। इन पक्षों के निम्न बिन्दु हैं-

निषेधात्मक पक्षः • उपाधियों (समझौतों) को वापस करना।
• शैक्षणिक संस्थाओं का बहिष्कार करना। • ब्रिटिश शासकों के उत्सवों का बहिष्कार करना।
• न्यायालयों का बहिष्कार करना। • संसद का बहिष्कार करना।
• विदेशी समान का बहिष्कार करना। • करों का भुगतान न करना।

रचनात्मक पक्षः • सामुदायिक सामंजस्यता • अस्पृश्यता का निवारण • खादी का प्रयोग
• स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग • कुटीर उद्योग • ग्राम्य विकास • राष्ट्रीय शिक्षा • ग्राम पंचायत

गांधी का मानना था कि यदि हम किसी गतिविधि का बहिष्कार करते हैं तो साथ ही एक ऐसे माहौल का सृजन करते हैं जो भविष्य में रचनात्मक परिणाम दिखाते हैं। असहयोग के साथ ही निर्माण की बात जुड़ी होती है।

असहयोग के मुख्य दो उपकरण थे-1. बहिष्कार 2. हड़ताल

असहयोग आंदोलन के महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं-चम्पारन में सत्याग्रह के साथ असहयोग, दाण्डी-मार्च, अकाल के समय टैक्स न देने के रूप में असहयोग, संपूर्ण क्रांति के रूप में जयप्रकाश का असहयोग आदि।

असहयोग आंदोलन की आलोचना-प्रत्यालोचना का गांधी ने बेबाक जबाब दिया। आंदोलन के दौरान विदेशी कपड़ों की होली गांधी हाथों से जलाये जा रहे थे। सरकारी स्कूल-कॉलेजों का बहिष्कार करने का आह्वान कर रहे थे। ये सब करते देख गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर को महात्माजी के इस आन्दोलन में द्वेष की गंध आने लगी। उन्होंने बापू को इस बारे में लिखा। गांधी का उत्तर था—'विदेशी सरकार के प्रति द्वेष फैलाना तो मेरा धर्म है। लेकिन अक्सर यह नाराजगी और द्वेष व्यक्ति के प्रति हो जाता है। फिर सरकारी अधिकारियों की हत्या होती है। मैं वह द्वेष व्यक्ति से हटाकर वस्तु की ओर मोड़ता हूँ। मैं कहता हूँ कि विदेशी सरकारी अधिकारियों को मत मारो, विदेशी कपड़ा जलाओ। ऐसा कहकर मनुष्यों पर टूटने वाली हिंसा को वस्तु की तरफ मोड़ता हूँ।'[22] यह उनकी अहिंसक

सोच का साक्षात् रूप था। इससे यह भी परिलक्षित होता है कि असहयोग आंदोलन विभिन्न प्रतिक्रियाओं के बावजूद गति से प्रगति की ओर बढ़ता गया।

असहयोग आन्दोलन के अर्थ, स्वरूप, उद्देश्य और प्रक्रिया के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गांधी का यह आंदोलन अहिंसा पर टिका था। इसकी प्रयोग भूमि में अहिंसा का अलौकिक बल था। 'इसमें अहिंसा का मतलब है कि बुराई से असहयोग करने के लिए जो कुछ भी सजा मिले उसे स्वीकार कर लें।' कष्टों की परवाह किये बगैर अन्याय, बुराई के प्रतिकार को आत्म धर्म मानकर आने वाली विपत्तियों को सहर्ष झेलना आसान बात नहीं है। पर आंदोलनकारियों ने अहिंसा की रक्षा करते हुए देश की आजादी के लिए असहयोग को अपनाया। यह सत्याग्रह तकनीकी मूलक आन्दोलन था। जिसका विराट् स्वरूप प्रांत, व्यक्ति, समुदाय से ऊपर उठकर सर्वव्यापी बना।

असहयोग के संबंध में महाप्रज्ञ के संक्षिप्त विचार देखने में आते हैं। असहयोग के ऐतिहासिक प्रसंग का हवाला देते हुए महाप्रज्ञ ने लिखा-अरिष्टनेमि विवाह करने के लिए गए थे और विवाह को अस्वीकार कर दिया। यह असहयोग आन्दोलन का उदात्त रूप था। प्राचीन काल में ऐसी अनेक घटनाएँ घटी हैं जिनमें उद्दण्डता के साथ नहीं किन्तु सविनय असहयोग किया गया। वे उस घटना के साथ नहीं जुड़ते, जिससे सहमत नहीं होते। मैं यह नहीं करूँगा, यह निश्चय कर लेते। उसे असहयोग करने में कोई कठिनाई नहीं होती जिसके मन में कोई चाह और आकांक्षा नहीं होती। जो अपने आप में सन्तुष्ट है, वह असहयोग कर सकता है। अरिष्टनेमि ने असहयोग किया। दूसरे शब्दों में इसे सत्याग्रह कहा जा सकता है। सत्याग्रह और असहयोग-ये दो गांधीयुग के विशेष शब्द हैं, पर इनका प्रयोग अतीत में भी हो चुका है।

विवाह के निमित्त परकोटे में बंद पशुओं की चीत्कार सुनकर अरिष्टनेमि ने रथ को मोड़ने का आदेश दिया। रथ विवाह मण्डप की ओर न जाकर दूसरी दिशा में मुड़ गया। यह देखकर सब अवाक् रह गए। अनेक लोगों ने अरिष्टनेमि से कहा-आप इस प्रकार न मुड़ें। ऐसा करना ठीक नहीं है। अरिष्टनेमि अपने निश्चय पर अटल रहे। श्रीकृष्ण, वासुदेव आदि के आग्रह को भी अरिष्टनेमि ने अस्वीकार कर दिया। राजीमती की चीख भी उनके निश्चय को नहीं बदल सकी।

अरिष्टनेमि ने पुनः मुड़कर नहीं देखा। उनके मन में यह भाव जगा-मेरे कारण कितने प्राणी पीड़ित और दुःखी हो रहे हैं। मैं किसी को सताना नहीं चाहता, दुःखी और पीड़ित नहीं करना चाहता, मैं यह सब नहीं देख सकता। मुझे अपने आपमें रहना है अकेले में रहना है। वे सचमुच अकेले बन गए। जो व्यक्ति अहिंसा में विश्वास करता है, उसे अकेला रहना या चलना स्वीकार होता है। महावीर हो, अरिष्टनेमि या गांधी, अहिंसा की आस्था वाले व्यक्ति को अकेले चलना होता है।

वस्तुतः नेम-राजुल का घटना प्रसंग अहिंसा के आलोक में असहयोग को प्रदर्शित करता है। अरिष्टनेमि चले गए, राजीमती से विवाह नहीं हुआ। राजीमती अरिष्टनेमि की प्रतीक्षा करती रह गई। यह घटना घटित हो गई और इससे उपजा सिद्धांत शेष रह गया।[23]

असहयोग आंदोलन अहिंसा की नींव पर टिका है। जब-कभी इसका पूरे मनोयोग के साथ प्रयोग किया गया निष्पत्ति निश्चित रूप से आई। फिर प्रसंग चाहे शासक की क्रूरवृत्ति के परिष्कार का हो या देश की आजादी का। इस आंदोलन ने अपना कार्य मन्थर गति अथवा तीव्रगति से अवश्य किया। वर्तमान के संदर्भ में इस आंदोलन की अत्यन्त उपयोगिता महसूस की जा रही है। चूँकि बहुराष्ट्रीय कंपनियों का जाल पूरे भारत में पसरता जा रहा है जो देश के आर्थिक ढाँचे को कभी भी पंगु बनाकर

अपना प्रभुत्व जमा सकता है। आजादी की पृष्ठभूमि में असहयोग आंदोलन का पूरी ताकत के साथ प्रयोग किया गया आज पुनः पाश्चात्य संस्कृति के प्रभुत्व और विदेशी वस्तुओं के वहिष्कार के रूप में असहयोग आंदोलन को बुलन्द करने की जरूरत है।

राजनैतिक, सामाजिक, पारिवारिक संदर्भ में असहयोग आंदोलन का अभिनव प्रयोग अन्याय, शोषण, अनैतिकता, अकर्मण्यता के विरुद्ध किया जाये तो अनेक समस्याओं का समाधान होगा और एक अहिंसा प्रधान शांतिमय परिवेश की परिकल्पना साकार बनेगी।

सविनय-अवज्ञा आंदोलन

अहिंसक आंदोलन की एक शक्तिशाली कड़ी है-सविनय-अवज्ञा। गांधी ने इसका सूत्रपात आजादी के आंदोलन को अधिक सक्रियता प्रदान करने के लिए किया था। अहिंसा और सत्य की बुनियाद पर निर्मित यह आंदोलन देश की आकांक्षाओं को पूरा करने में कामयाब बना। इस आंदोलन की पृष्ठभूमि को प्रकट करते हुए गांधी ने मानो अन्तरव्यथा को शब्दों में उडेल दिया-राजनीतिक दृष्टि से हमारी स्थिति गुलामों से अच्छी नहीं है। हमारी संस्कृति की जड़ ही खोखली कर दी गयी है। हमारे हथियार छीनकर हमारा सारा पौरुष अपहरण कर लिया गया है। हमारा आत्मबल तो लुप्त हो ही गया था, हम सबको निःशस्त्र करके कायरों की भाँति निःसहाय और निर्बल बना दिया गया। सविनय-अवज्ञा की योजना इन बुराइयों के मुकाबले के लिए है।[24] इस कथन से सविनय-अवज्ञा की अनिवार्यता प्रकट होती है।

भारतीय चेतना को निर्बल बनाने वाले नियम विदेशी सत्ता द्वारा थोपे जा रहे थे जिनका प्रतिकार अस्तित्व रक्षा के लिए अनिवार्य बन गया। इसकी पुष्टि गांधी के कथन में झलकती है। हमारा अन्तःकरण पूर्वक विश्वास है कि 1919 के भारतीय दण्ड विधि (संशोधन) विधेयक संख्या 1 और दण्ड विधि (आपातिक अधिकार) विधेयक संख्या 2 नामक विधेयक अन्यायपूर्ण, स्वातन्त्र्य तथा न्याय के सिद्धांत और व्यक्तियों के बुनियादी अधिकारों के लिए; जो सम्पूर्ण समाज तथा स्वयं राज्य की सुरक्षा के आधार हैं, घातक तथा विध्वंसकारी हैं। अतः हम संकल्प करते हैं कि यदि इन विधेयकों को कानून का रूप दिया गया तो जब तक इनको वापिस नहीं ले लिया जायेगा तब तक हम इन और, इसके बाद नियुक्त होने वाली समिति जिन्हें इस योग्य समझेगी, ऐसे कानूनों की सविनय-अवज्ञा करते रहेंगे; और साथ ही हम संकल्प करते हैं कि इस संघर्ष में हम पूरी निष्ठा के साथ सत्य का पालन करेंगे और हिंसा नहीं करेंगे-किसी की भी जान-माल को किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुंचायेंगे।[25] मन्तव्य से स्पष्ट है कि सविनय-अवज्ञा की अनिवार्यता किस कदर बन चुकी थी।

स्वराज्य की मांग के संबंध में वायसराय लॉर्डरीडिंग का फरमान था स्वराज्य तो सिर्फ दो ही उपायों से मिल सकता है-एक तलवार और दूसरा दान।.....पर गांधी का ठीक इसके विपरीत यह दृढ़ विश्वास था कि इन दो के अलावा तीसरा रास्ता भी है और वह है सविनय कानून-भंग का।[26] साथ ही संघर्ष का स्वरूप अहिंसात्मक रहे इसके लिए भी गांधी संकल्प बद्ध थे।

सविनय अवज्ञा शब्दार्थ अहिंसा के गूढ़ भाव का द्योतक है। अनैतिक सरकारी कानूनों को भंग करना। सविनय यानी कहीं भी अविनय का भाव न हो। कानून (सरकारी और लौकिक) की अवज्ञा, उसका भंग, लेकिन तभी जबकि सत्य की निष्ठा के कारण हो और वह अवज्ञा सर्वथा विनम्र और भद्र हो।

विशेष रूप से गांधी ने इस बात पर बल दिया कि हमें सविनय कानून-भंग में केवल कानून-भंग का ही ख्याल नहीं करना चाहिए। यह एक ऐसा शस्त्र है, जिसका उपयोग हमें बहुत सम्भलकर करना चाहिए। जब आदमी किसी पौधे की फालतू डालों को काटने लगता है तो उसे इस बात का खास तौर पर ध्यान रखना चाहिए कि उसकी कैंची या कुल्हाड़ी उसकी जड़ को ही न काट दे, जिसकी रक्षा के लिए वह इस उटाले को काटने जा रहा था। सविनय कानून-भंग का प्रयोग केवल उसी दशा में अच्छा, आवश्यक और अक्सीर होगा, जब हम मनुष्य की उन्नति के दूसरे तमाम नियमों के पालन पर अटल और दृढ़ रहें। अतएव हमें 'कानून-भंग' की बनिस्वत उसके विश्लेषण-'सविनय'-पर पूरा-पूरा जोर देना चाहिए। विनय, नियम बद्धता, विवेक और अहिंसा के बिना 'कानून-भंग' करने से सिवाय सर्वनाश के और कुछ नहीं हो सकता। प्रेम के साथ किया गया कानून-भंग प्राणदायी और जीवनवर्द्धक है। सविनय कानून-भंग तो उन्नति का बढ़िया लक्षण है।

सविनय अवज्ञा में प्रतिरोध कार्य सविनय अर्थात् अहिंसक रूप से कानून की अवज्ञा करता है। जब अवज्ञा सविनय की जाती है तब वह सदिच्छापूर्ण, उदार, नियन्त्रित और अनुच्छृंखल होती है।

सविनय अवज्ञा वास्तव में विनय और आज्ञा भंग का अर्थात् अहिंसा और प्रतिरोध का सामंजस्य है। अनैतिक कानूनों को शिष्ट रूप में भंग करना सविनय अवज्ञा है। इस साधन का प्रयोग जीवन दायक तथा सृजनात्मक तभी हो सकता है जब 'अवज्ञा' की अपेक्षा उसके विशेषण 'सविनय' पर अधिक बल दिया जाये। अवज्ञा, सविनय तभी हो सकती है जब उसमें सच्चाई हो, वह दम्भपूर्ण, चुनौति की भावना से मुक्त हो, उसके पीछे कोई दुर्भावना या घृणा का भाव न हो, वह आदरपूर्ण और पूर्वानुभूत किसी अच्छे सिद्धांत पर आधारित हो।

मनुष्य की नैतिक उन्नति के लिए हानिकारक कानूनों का विरोध आवश्यक है किन्तु स्थिर सामाजिक व्यवस्था के लिए विनय भी आवश्यक है, क्योंकि इसके बिना समुचित विकास संभव नहीं हो सकता। अवज्ञा से भी अधिक निकृष्ट कार्य है-अनैतिक कानून का अनुगमन। मनुष्य के लिए वे ही कानून उचित हैं जो नैतिक एवं जनतन्त्रवादी नियमों से बने हों। गांधी ने इसी विश्वास को मूर्त रूप देने के लिए व आजादी के आंदोलन को तीव्र बनाने के लिए सविनय-अवज्ञा को आंदोलन का रूप दिया।

अन्यायी सरकार को बदलने या मिटाने का जनता को अधिकार है। इस निश्चय पर अहिंसात्मक शर्त के साथ गांधी ने सविनय-अवज्ञा का हथियार अपनाया। उनका स्पष्ट उद्घोषण था—'1920 का संघर्ष देश की तैयारियों के लिए था, 1930 का संघर्ष अंतिम मुठभेड़ के लिए है। कांग्रेस ने सविनय अवज्ञा और करबंदी आंदोलन को इस प्रतिज्ञा के साथ सक्रिय किया कि ब्रिटिश शासन में रहना मनुष्य और भगवान दोनों के प्रति अपराध है।' इसके साथ ही उन्होंने इस बात पर बल दिया कि अहिंसा का रास्ता ही एकमात्र रास्ता है, जो देश को आजादी दिला सकता है।

हर स्थिति में अहिंसा और विनय के मार्ग पर डटे रहने की हिदायत के साथ लोगों को यह शिक्षण दिया कि सिर पर डण्डे बरसें अथवा घायल होकर मर भी जाना पड़े तो वह आहुति है। उसके लिए मन में कोई दुःख नहीं होना चाहिए। इस आत्म निवेदन के साथ 12 मार्च 1930 को नमक कानून को तोड़ने के लिए दाण्डी कूच के पूर्व गांधी ने लार्ड इरविन को पत्र भेजा।.....संकल्प को आकार देते हुए समुद्र तट पर गांधी ने नमक-कानून तोड़ा। पूरे घटना चक्र में गांधी की आस्था और कर्म का एक साथ क्रियान्वयन देखा जाता है। इस कानून भंग के बदले उनको यरवदा जेल

का वास मिला पर वह उन्हें स्वराज्य प्राप्ति का शुभारम्भ एवं संकल्प की-'मुट्ठी टूट भले जाये, लेकिन खुलनी नहीं चाहिए' दृढ़ता का वरदान लगा।[27]

नमक-कानून भंग का अभिन्न रूप धरासना का नमक-भण्डार लूटना था। उसमें 400 सत्याग्रही गिरफ्तार कर लिये गये। हजारों की संख्या में लोग जेलों में ठूंस दिये गये।

नमक के लिए आन्दोलन एक नैतिक आन्दोलन था। उस माध्यम से शासन को खुली चुनौती दी गयी थी। नमक-कानून तोड़ने के आन्दोलन में नमक का उतना महत्त्व नहीं था जितना महत्त्व सविनय अवज्ञा का था। इस आंदोलन ने साबित कर दिया कि सत्य, अहिंसा और सविनय-अवज्ञा में एक छिपी हुई ताकत है, जो हिंसात्मक कार्यवाही को भी झुका सकती है।

सविनय-अवज्ञा के दो रूप मान्य हैं— • व्यक्तिगत सविनय-अवज्ञा • सामूहिक सविनय-अवज्ञा। प्रथम में जहां व्यक्ति स्वयं ही अपना नेता होता है वहाँ दूसरे में नेतृत्व की आवश्यकता होती है। प्रायोगिक दृष्टि से सविनय-अवज्ञा का प्रयोग आक्रमणात्मक और रक्षात्मक दोनों रूपों में किया जाता है।

सविनय-अवज्ञा आंदोलन के साथ गांधी ने अपने अनुभूत सत्य को जोड़कर इसे अधिक शक्तिशाली बनाया। उनका यह अनुभव था कि बगैर चरखे के, बगैर हिंदू-मुस्लिम एकता के और बगैर अस्पृश्यता निवारण के सविनय अवज्ञा का आन्दोलन चल ही नहीं सकता। इसके मूल में यह कल्पना निहित है कि हम अपने बनाये नियमों का स्वेच्छा से पालन करें। बगैर इसके किया हुआ सविनय भंग तो निर्दय मजाक होगा। यह चीज है, जो मुझे राजकोट की प्रयोगशाला में अनुभव हुई और इस पर मेरा दुगुना विश्वास हो गया। अगर एक भी मनुष्य तमाम शर्तों को पूरा कर ले, तो वह भी स्वराज्य प्राप्त कर सकता है।[28] गांधी का यह अनुभव प्रायोगिक धरातल पर सविनय-अवज्ञा आंदोलन को गति से प्रगति देने वाला सिद्ध हुआ।

गांधी के अनुसार सविनय-अवज्ञा की तीव्रतम प्रकृति को देखते हुए इसका प्रयोग पहले अन्य साधन अपनाने के पश्चात् ही करना चाहिए। समाधान हेतु वार्ता, प्रदर्शन, हड़ताल आदि समस्त प्रक्रियाओं को आजमाने के बाद ही अन्तिम अस्त्र के रूप में इसका प्रयोग किया जाये। इस संबंध में स्पष्ट अभिमत था जब कानून बनाने वाले की गलती सुधारने की चेष्टायें अर्जी आदि देने के बाद भी विफल हो जाती है, तब उस गलती के सामने दो ही विकल्प बचते हैं-या तो नैतिक शक्ति से उसे अपनी बात मानने पर विवश करें या उस कानून को तोड़ने का दण्ड झेलकर व्यक्तिगत रूप से कष्ट उठायें। इस रूप से सलक्ष्य किया गया सविनय-अवज्ञा आन्दोलन निश्चिय ही अभिष्ट की प्राप्ति में योगभूत बनता है। इसमें अहिंसा और न्याय की कसौटी पर चलने वाला सफलता का वरण करता है।

महाप्रज्ञ ने सविनय-अवज्ञा के प्रयोग को ऐतिहासिक संदर्भ में स्वीकारते हुए इसकी पुष्टि में कहा 'सब प्राणी समान हैं, जैसा मैं हूँ वैसे ही दूसरे जीव हैं'-इस चेतना का जागरण बहुत कठिन है। महावीर को इन संदर्भों में अहिंसा के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ा। उन्होंने अहिंसा के क्षेत्र में कई नई दृष्टियाँ दीं। कैसे मनुष्य की चेतना उदात्त बने और जो क्रूरता के बीज हैं, वे नष्ट हो जाएँ। यह अभियान महावीर के समय ही नहीं चला, उससे बहुत पहले प्रारंभ हो चुका था।[29] इस संदर्भ में इतना ही पर्याप्त है कि महाप्रज्ञ ने सविनय अवज्ञा को अहिंसा की कसौटी पर मान्य किया है।

संक्षेप में सविनय-अवज्ञा आंदोलन अहिंसा और सत्य के मार्ग पर चलते हुए राजनैतिक प्रतिकूल परिस्थितियों से लोहा लेने का महत्त्वपूर्ण साधन है। गांधी ने इसका प्रयोग भारत की आजादी आंदोलन के तहत किया था। वर्तमान के संदर्भ में इसकी प्रासंगिकता बरकरार है।

स्वदेशी आंदोलन

राष्ट्र पिता महात्मा गांधी द्वारा संचालित विभिन्न अहिंसक आंदोलन की एक शक्तिशाली कड़ी है-स्वदेशी आंदोलन। इसकी बुनियाद भ्रातृत्व प्रेम के अहिंसक आदर्श पर टिकी है। इसका उभय पथी स्वरूप-सत्याग्रह का कार्यक्रम एवं आजादी का आंदोलन रूप है। इसका सक्रिय प्रयोग 1921 से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक सत्याग्रह आंदोलन में किया गया। स्वदेशी आंदोलन को उन्होंने बहुत महत्त्व दिया और इसे आजादी पाने का ब्रह्मास्त्र करार दिया।

स्वदेशी आंदोलन की पृष्ठभूमि तात्कालीन परिस्थितियों में इसकी उपादेयता को उजागर करती है। अंग्रेजी हुक्मरानों की आर्थिक नीति के चलते भारत में विदेशी माल का आयात स्वतंत्र रूप से होने से देशी उद्योग धंधे प्रायः नष्ट होने लगे, विदेशी उद्योग धन्धों की प्रतिस्पर्धा से देश के उद्योग धंधों को बचा पाना कठिन हो गया। भारतीय अर्थ व्यवस्था चरमराने लगी। अकाल, प्राकृतिक प्रकोप, विदेशी कंपनियों का फैलाव, उद्योगीकरण ने लोगों की रोजीरोटी पर प्रश्नचिह्न लगा दिया। स्वदेशी वस्तुएं महंगी हो गयी। विदेशी वस्तुएँ हमारी संस्कृति, अर्थ व्यवस्था पर हावी हो गयी। परतंत्रता और नाजुक आर्थिक स्थिति का मुख्य कारण कुटीर उद्योगों का समूल विनाश होना था। गांधी ने महसूस किया कि आर्थिक विपन्नता में भारत अपनी आजादी की लड़ाई सुचारु रूप से नहीं चला सकता। इस गंभीर चिंतन-मंथन के साथ स्वेदशी आंदोलन का आविर्भाव हुआ।

'स्वदेशी' सामासिक शब्द है। स्व+देशी=स्वदेशी, स्व यानी अपने, देशी यानी देश, समाज, गाँव, पड़ोस का। इसका स्पष्ट अर्थ है अपने देश का अर्थात् अपने देश में बनाई वस्तुओं को व्यापक रूप से अपेक्षाकृत अधिक वांछनीय मानना-अपनाना। स्वेदशी एक धार्मिक नियम है जिसका पालन उससे होनेवाले सारे शारीरिक कष्टों के बावजूद मननीय है।[30] गांधी ने बल दिया कि स्वदेशी हमारे अन्दर की वह भावना है, जो हम पर प्रतिबंध लगाती है कि हम अपेक्षाकृत अधिक दूर के वातावरण को छोड़कर पास के वातावरण का उपयोग करें और उसकी सेवा करें। स्वदेशी एक भावना है, 'स्पिरिट' है। उसका अर्थ है दूर की चीजों की अपेक्षा अपने आसपास की, नजदीक की ही चीजें काम में लेने का नियम बनायें। स्वदेशी की धारणा में यह विचार निहित है कि इसकी शुरुआत तो स्थानीय स्तर से होनी चाहिए, किन्तु इसका विस्तार क्रमशः विश्वस्तर तक होना चाहिए, क्योंकि स्वदेशी धर्म का अन्तिम उद्देश्य सम्पूर्ण मानवता की सेवा है।

गांधी ने स्वदेशी आंदोलन के तहत् शपथ ली कि 'ईश्वर को साक्षी मानकर मैं गम्भीरता पूर्वक घोषित करता हूँ कि आज से मैं अपने व्यक्तिगत जरूरतों के लिए भारत की रूई, रेशम या ऊन से बने कपड़े का ही उपयोग करूँगा; और मैं विदेशी कपड़े का सर्वथा त्याग कर दूँगा तथा मेरे पास जो विदेशी कपड़े होंगे, उन्हें नष्ट कर दूँगा।' शपथ में स्वेदशी आंदोलन के दो मुख्य पक्ष उजागर होते हैं- निषेधात्मक और भावात्मक।

निषेधात्मक पक्ष में विदेशी वस्त्रों के उपयोग तथा विदेशी वस्त्र की दुकानों के बहिष्कार एवं शराब की दुकानों की बन्दी का नारा दिया गया। सत्याग्रही कार्यकर्त्ता इसमें जुट गये। इस कार्य को आत्मधर्म जानते हुए कांग्रेस के प्रमुख नेता-मोतीलाल नेहरू, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, सरदार वल्लभ भाई पटेल, सुभाष चन्द्र बोस, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य जैसे अनेक नेताओं ने अपने विदेशी पोशाकों की होली जलाई। असंख्य लोगों ने इसका अनुसरण किया। शहरों-गांवों में विदेशी वस्त्रों, वस्तुओं का संग्रह कर सार्वजनिक स्थलों पर जलाया गया।

भावात्मक पक्ष में स्वदेशी आंदोलन के तहत खादी के कार्यक्रम को अपनाया गया। गांधी ने नारा दिया-'कातो चरखा मिले स्वराज।' स्वयं सेवक सूत कातने लगे और खादी के वस्त्र पहनने लगे। खादी वस्त्रों की मांग के आदेश, बेचने और शुद्ध खादी-नकली खादी का प्रचार किया। खादी के महनीय स्वरूप को देखकर ही उन्होंने कहा था-'चरखे के हर तार में शान्ति, सद्भाव और प्रेम की भावना भरी है।' इसके विस्तार एवं आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए गांधी ने खादी पर विशेष बल दिया। खादी के पुनरुद्धार में उन्होंने संबंधित अनेक घरेलू उद्योगों का पुनरुद्धार संभव पाया।

स्वदेशी आंदोलन का आधार गीता का 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः पर धर्मो भयावह' में पाते हैं। वही इसका दर्शन 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' में देखते हैं, अर्थात् स्वदेशी की शुद्ध सेवा में परदेशी की भी शुद्ध सेवा होती है।

स्वदेशी के विराट् स्वरूप का चित्रण गांधी ने विभिन्न संदर्भों में भिन्न शैली में किया पर समग्र दृष्टि से इसका मौलिक रूप मानवता की सेवा ही रहा। उनकी दृष्टि में स्वदेशी उच्च कोटि की आध्यात्मिक सर्वमुखी देशभक्ति है। यह एक महायज्ञ है जिसका प्रारंभ समाज कल्याण हेतु किया गया है। अतः स्वदेश और स्वराज एक ही सिक्के के दो पहलू है। इसके प्रति गांधी का उदार दृष्टिकोण था-स्वदेशी-धर्म पालने वाला परदेशी का द्वेष कभी नहीं करेगा। इसलिए पूर्ण स्वदेशी में किसी का द्वेष नहीं है। वह संकुचित धर्म नहीं है। वह प्रेम में से, अहिंसा में से निकला हुआ सुन्दर धर्म है।[31] इस मार्ग पर शुद्धनीति पूर्वक चलते हुए देश की जनता ने अपना मनोरथ सिद्ध किया।

वर्तमान के संदर्भ में स्वेदशी आंदोलन की प्रासंगिकता का प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। गांधी ने स्वराज की मांग के लिए विदेशी वस्त्रों के त्याग की बात और स्वेदशी को अपनाने के लिए आन्दोलन किया था। पर आज स्वतंत्र भारत में आजादी की रक्षा के लिए भी स्वदेशी आंदोलन की उससे अधिक आवश्यकता है। द्रुतगति से हो रहे वैज्ञानिक विकास, पाश्चात्यानुकरण, हिंसा-आतंक, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का फैलाव व अन्य शोषणकारी शक्तियों से निपटने और समय रहते सही कदम उठाने के लिए स्वदेशी की प्रासंगिकता आज भी बरकरार है।

आजादी के प्रसंग में स्वेदशी आंदोलन जितना महत्त्वपूर्ण था आज उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। स्वतंत्रता के बावजूद देश की जनता आर्थिक, मानसिक रूप से गुलामी का शिकार बन रही है। 'जो हो रहा है होने दे' यह मानसिक गुलामी का प्रतीक है। बेरोजगारी, बढ़ती हुई जनसंख्या, पर्यावरण प्रदूषण, गिरते हुए नैतिक मूल्यों की स्थिति में स्वेदशी आंदोलन को अधिक शक्तिशाली रूप से अपनाने की जरूरत है।

पूर्वाग्रह मुक्त निष्पक्ष भाव से चिंतन के क्षितिज पर स्पष्ट होता है कि स्वदेशी भावना राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, मानवीय एवं अध्यात्मिक सभी उदात्त विचारों को अपने में समेटे हुए है। इसी का अनुसरण कर गांधी ने अपने मिशन में सफलता हासिल की थी। पर आज देशवासियों के पाँव उस मार्ग से फिसलते नजर आ रहे हैं। भारतीय जनता में गरीबी एवं आर्थिक संकट के बादल छा रहे हैं इसका कारण है स्वेदशी के विशाल अर्थ को भुलाना। आज स्वदेशी भावना/आंदोलन को पुनः प्रतिष्ठित करने की जरूरत है। बढ़ती हुई अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा पर नियंत्रण इसी से संभव है।

तत्वतः स्वेदशी का अवलम्बन संस्कृति के उदात्त गुणों को विकसित करता है, परतंत्रता घटती है जिसकी बदौलत राष्ट्र प्रगति तथा शांति की दिशा में अग्रसर होते हैं। यदि विश्व का प्रत्येक राष्ट्र स्वदेशी का ईमानदारी से पालन करे तो सभी प्रकार के उपनिवेशवाद समाप्त होंगे साथ ही एक देश

का दूसरे देश पर शोषण भी समाप्त होगा। विकसित, अविकसित, अर्धविकसित राष्ट्रों के बीच पनपने वाली आर्थिक विषमता का अन्त होगा। अतः सामाजिक, आर्थिक शांति के लिए भी स्वदेशी महत्त्वपूर्ण प्रविधि है। अपेक्षा है गांधी के विराट् स्वदेशी दृष्टिकोण को पुनः प्रतिष्ठित करने की। स्वदेशी के जरिये विशाल मानव शक्ति, पशुशक्ति और प्राकृतिक संपदा का सम्यक् उपयोग आम जन-जीवन को सरल-सुखी और शांतिपूर्ण बनाने में महत्वपूर्ण है।

अणुव्रतः एक नैतिक पैगाम

'सत्यं-शिवं-सुंदरं' की समृद्ध संस्कृति से सुविख्यात भारत-भू को हर युग में आलोकित करने वाले संत-महर्षियों का सुयोग सुलभ रहा है। परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्ति का वरण करते ही युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी ने स्वतंत्र भारत के नागरिकों में मानवीय मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा हेतु नैतिक-चारित्रिक पथ-दर्शन का बीड़ा उठाया। भारतीयता की शान संत भूमिका को उजागर करते हुए संतशिरोमणि तुलसी ने 2 मार्च, 1949 को अणुव्रत आंदोलन का विधिवत् सूत्रपात राजस्थान के कस्बे सरदारशहर में किया। पूर्व पीठिका के रूप में भारत स्वतंत्रता के प्रथम दिवस (15 अगस्त, 1947) पर, वे 'असली आज़ादी अपनाओं' का शंखनाद कर चुके थे। असली आजादी का तात्पर्य था-नैतिक-चारित्रिक विकास। उसके बिना आजादी का आनंद अधूरा होगा। अखंड आनंद का प्रायोगिक रूप है अणुव्रत आंदोलन।

अणुव्रत आंदोलन मानवीय व्यवहार को नैतिकता, प्रामाणिकता, सदाचार, सौहार्द और भाईचारे से सरावोर बनाने वाला एक अलाउद्दीन चिराग है। जिसे अपनाकर तब से अब तक लाखों लोगों ने अपने जीवन को रोशन किया है। यह व्यक्ति, समाज और राष्ट्रव्यापी दिव्यता को शतगुणित करने वाला नैतिक पैकेज है। विश्वभर में गतिशील विभिन्न आंदोलनों से इसका लक्ष्य, स्वरूप, प्रक्रिया सर्वथा विशिष्ट है। इसकी चुंबकीय आकर्षण शक्ति का सबूत है-आंदोलन के श्रीगणेश के साथ प्रथम आह्वान पर इकहत्तर (71) व्यक्तियों द्वारा 'अणुव्रत आचार-संहिता' के नियमों का स्वीकरण। अणुव्रतियों की आदिम संख्या ने सबको आश्चर्य चकित किया। आज इसके आराधक, अनुपालक सदस्यों की संख्या लाखों के पार है।

विमर्श्य आंदोलन स्वर्ण जयंती को मनाकर के भी वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सामयिकता बरकरार रखे हुए है। इसमें अत्याधुनिक जटिल, विध्वंसकारी प्रवृत्तियों एवं विश्वव्यापी आतंकवाद के खिलाफ अहिंसक क्रांति का सिंहनाद कर समाधान की नूतन दिशोद्घाटन का माद्दा है। आंदोलन के प्रवर्तक आचार्य तुलसी है पर इसके दर्शनपक्ष के प्राण प्रतिष्ठापक बनने का श्रेय महायोगी आचार्य महाप्रज्ञ को मिला। जिन्होंने आंदोलन की समग्र प्रस्तुति में अपनी प्राज्ञशक्ति का नियोजन कर समयोचित विस्तार दिया। सापेक्ष दृष्टि से अणुव्रत आंदोलन को महाप्रज्ञ के अहिंसक विचार विथी में संयोजित किया गया है।

आंदोलन की पृष्ठभूमि

बदलते परिवेश में प्राच्य मूल्यों का समावेश वक्त की पुकार है। नैतिकता, जो आध्यात्मिकता का समाजीकृत रूप है, का स्वतंत्र मूल्य है। वह सहज अपेक्षित है। जबकि मनुष्य का चिंतन अर्थवादी और मन सुविधावादी बनता है, तब नैतिकता का आंदोलन जरूरी हो जाता है और चरित्र-विकास सापेक्ष हो जाता है।

सब कुछ बाहर से आयात किया जा सकता है पर चारित्र का आयात नहीं किया जा सकता है। इसके लिए व्यक्ति-व्यक्ति को अपने जीवन में छोटे-छोटे चारित्रिक मूल्यों की आवश्यकता हैं। छोटी-छोटी बातों के सुधार के बिना हम बड़े कार्यों को नहीं कर सकते। आवश्यकता इस बात की है कि नैतिकता की अलख नये सिरे से जगाई जाये। ऊहापोह हुआ। 'समूचे विश्व को सुधारने में बड़े अवतार भी समर्थ नहीं हुए हैं और कर्त्तव्य-निष्ठा मेरी भी कम नहीं है, फिर चरित्र विकास की प्रेरणा मैं (तुलसी) क्यों न दूं।'[32] भावों के स्फुलिंग आंदोलन के सेतु बनें।

अणुव्रत शास्ता का पादविहरण जीवन व्रत था। एकदा राजस्थान के सीमावर्ती गाँवों में उन्होंने लोगों से पूछा-'भाई, तुम्हारे यहां खेती कैसी होती है?' उत्तर मिला-'बाबा! अच्छी होती है।' फिर तुम्हारे कपड़े फटे और मकान टूटे क्यों? एक साथ कई बोल पड़े—'बाबा! हमें तो मोसर (मृत्यु के उपलक्ष में वृहद् भोज) खा जाता है। उसमें दो-तीन-चार हजार रूपये लग जाते हैं।' जिज्ञासु भाव से पूछा—'क्या वह करना जरूरी है?' 'हां, बाबा! वह तो करना ही पड़ता है। कोई न करे तो लोग कहते हैं- यह तो घर बैठे रोटी खा रहा है और इसका दादा मसान में पड़ा सड़ रहा है। और भी न जाने क्या-क्या कहा जाता है।'[33] ऐसे अनेकशः प्रसंगों ने अनुशास्ता के हृदय को द्रवित किया। अपनी सीमा में रहते हुए कुछ व्यापक करने की चाह जगी।

दूसरी ओर देश की आजादी के साथ में नैतिक-चारित्रिक उत्थान की अनिवार्यता मुखर हो उठी। मौलिक समस्याओं का आवरण हटने लगा, वे क्रमशः उभरने लगी। जातिवाद, अस्पृश्यता, साम्प्रदायिकता, अमीरी, गरीबी, महंगाई और भिखमंगी ये हिन्दुस्तान की मौलिक समस्याएँ हैं। अनुशासन हीनता, पदलिप्सा, महत्त्वाकाँक्षा, प्रान्तीयता और भाषाई विवाद ये स्वतंत्रता के बाद उपजी हुई समस्याएँ हैं। विभिन्न समस्याओं के पलते सामाजिक, धार्मिक और राष्ट्रीय सभी क्षेत्रों में असंतोष व्याप्त था। भ्रष्टाचार का बोलबाला और नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा था, अतः ऐसे आंदोलन की आवश्यकता थी जो राजनैतिक स्वार्थों से उपरत प्रशस्त जन-जागरण को जन्म दे। नैतिक-मूल्यों के गिरते ग्राफ को रोक सके। इन्हीं अपेक्षाओं के बीच अणुव्रत आंदोलन अस्तित्व में आया।

विराट् लक्ष्य

तुच्छ स्वार्थ सीमित दायरे से उपरत अणुव्रत आंदोलन का विराट् लक्ष्य है-जाति, वर्ण, सम्प्रदाय, देश, रंग, लिंग भाषा के भेद-भाव से मुक्त मनुष्य मात्र को आत्म संयम की ओर प्रेरित करना। शोषण विहीन स्वस्थ समाज की संरचना करना। वैयक्तिक, कौटुम्बिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय जीवन में नैतिकता और ईमानदारी प्रतिष्ठित करना। अनीति, अनाचरण और अप्रामाणिकता से जर्जरित लोक जीवन में सदाचरण एवं प्रामाणिकता का संचार करना। व्यक्तिशः और सामूह चेतना में अहिंसा और संयम के संस्कार भरना। यह मानव में मानवीय गुणों का संचार कर उसे सच्चा इंसान बनाना चाहता हैं। अणुव्रत समाज के प्रत्येक वर्ग में व्याप्त बुराइयों को मिटाकर उसे स्वस्थ बनाना चाहता है।

आंदोलन के उद्देश्य बाबत अनुशास्ता के लब्ज हैं—'अहिंसा को आदर्श मानकर चलने वाला चरम अहिंसा तक न पहुँच सके, फिर भी नीति-भ्रष्ट नहीं होता। इस उद्देश्य से अणुव्रत आंदोलन चलाया गया।'

पवित्रता की आखिरी मंजिल को कोई माने या न माने, वहाँ तक पहुँचने का प्रयत्न करे या न करे किन्तु पवित्रता की पहली मंजिल सबके लिए समान है।...अणुव्रत की साधना जीवन पवित्रता

की पहली मंजिल है, पर उसकी दृष्टि वहीं तक सीमित नहीं है, वह और आगे बढ़ती है। अन्याय, असत्य, हिंसा, उत्पीड़न और शोषण आदि अनुचित साधनों के द्वारा पदार्थ-संग्रह न करने की बात पवित्रता का पहला चरण है। इस संदर्भ में स्पष्ट दृष्टि है-सुख-सुविधा पाने के साधन दोषपूर्ण न हो, कभी न हो, किसी भी स्थिति में न हो।[34] महाप्रज्ञ की यह मीमांसा अणुव्रत के लक्ष्य को उजागर करती है।

व्यक्ति सुधार से राष्ट्र सुधार का लक्ष्य मौलिक है। विश्व सुधार, राष्ट्र सुधार, समाज सुधार की कल्पना व्यक्ति सुधार पर की गई है। अणुव्रत आंदोलन व्यक्ति सुधार के द्वारा विश्वशांति की परिकल्पना करता है। आंदोलन के तहत् 'सुधरे व्यक्ति, समाज व्यक्ति से, राष्ट्र स्वयं सुधरेगा' मुखरित हुआ।

इसका लक्ष्य-अनीति, अनाचरण और अप्रामाणिकता से जर्जरित लोक जीवन में नीति, सदाचरण तथा प्रामाणिकता का संचार करना है। जन-जीवन में अधिकाधिक अहिंसा, अपरिग्रह, संतोष एवं संयम की चेतना जागृत कर अन्तहीन भोगेच्छा पर नियंत्रण कर समस्या के सही समाधान व अहिंसा के विकास की प्रक्रिया प्रस्तुत करना है।

ऐतिहासिक संदर्भ

'अणुव्रत एक त्रैकालिक सच्चाई है। अतीत में भी नैतिकता की जरूरत रही थी, वर्तमान में भी है और भविष्य में भी रहेगी। इसके बिना कोई भी समाज सुख और शांति के साथ नहीं जी सकता, अभय होकर नहीं जी सकता।' महाप्रज्ञ के कथन को ऐतिहासिक संदर्भ में देखें तो भारतीय संस्कृति में व्रत की गौरवशाली परंपरा रही है। गीता का 'अणुमपि व्रतस्य त्रायते महतो भयात्' इसका साक्षी है। व्रत का अर्थ है—किसी कार्य को करने या न करने का मानसिक निर्णय। व्रत इच्छा का स्वेच्छाकृत नियमन है। अणुव्रत शास्ता ने बताया 'अणुव्रत आंदोलन की आत्मा योग-त्याग या संयम है। इसलिए यह आध्यात्मिक है। भारत का मानस चिरकाल से आध्यात्मिक रहा है। भारतीय लोग जो शान्तिप्रिय हैं, उसका कारण उनकी आध्यात्मिक परंपरा है।'[35] इस गौरवमयी परंपरा को आधुनिक परिवेश में प्रस्तुत किया गया।

भारतीय संस्कृति त्याग प्रधान रही है। त्याग नकारात्मक होता है। सापेक्ष दृष्टि में निषेध व्यापक माना गया है और कर्म के साथ अनासक्ति का भाव जोड़ा गया है। दूसरों को न सताना, संग्रह न करना। नकार की सीमा जीवन-निर्वाह में बाधक नहीं बनती और बुराइयों से भी बचाव हो जाता है।.....आत्मा को यानी स्वयं को बलवान् बनाने के लिए त्याग की चेतना का जागरण महत्त्वपूर्ण है। इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर इसे आंका जा सकता है।

स्वरूप विमर्श

किसी भी आंदोलन की महानता उसके स्वरूप पर निर्भर करती है। स्वरूप संयोजना उसकी विराट्ता का आइना है, जिसमें सफलता-असफलता को झाँका जा सकता है। विमर्श्य घटक का सरल स्वरूप है-अणुव्रत, अर्थात् छोटे-छोटे नियम। व्रत मनुष्य को संताप से बचाता है। व्रत किसी व्यक्ति विशेष की बपौती नहीं है। इस पर सभी का समान अधिकार है। सामान्यतः व्रत को संकल्प भी कहा जाता है पर तत्वतः संकल्प व्रत से बहुत नीचे की स्थिति है। व्रत का अलौकिक स्वरूप है।

वर्तमान का सारा प्रवाह सिर्फ धन की ओर है। जैसे भी हो धन अर्जित करें, यह आदमी का एकमात्र लक्ष्य हो गया है। इस प्रवाह को, इस चिंतन को मोड़ने का उपाय सिर्फ व्रत है। छोटे-छोटे व्रत, जिनसे चिंतन की धारा बदलती है, जो जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लाते है।[36] परिवर्तन का यह विशिष्ट उपक्रम किसी धर्म-विशेष से जुड़ा हुआ नहीं है बल्कि सब धर्मों का समन्वित रूप है। क्योंकि व्रत सभी आस्तिक धर्मों का आत्मतत्व है। व्रत के मौलिक विभाग पाँच है। शेष सब उसकी व्याख्याएँ हैं। पाँचों में भी मूलभूत व्रत एक अहिंसा है। सत्य आदि उसी के पहलू हैं।[37] प्रस्तुत आंदोलन का आग्रह केवल नैतिकता के आचरण से है। धार्मिक आस्था का कोई प्रतिबंध नहीं। यह भावना मूलक व्रत का आंदोलन है।

अणुव्रत आंदोलन आचार-शुद्धि और व्यवहार शुद्धि का आंदोलन है। दूसरे के प्रति हमारा व्यवहार क्रूरता से मुक्त हो। ऐसा होने से ही 'मानवाधिकार आयोग' का कार्य सुगम होगा। अणुव्रत मानव धर्म का संपोषक है। महाभारत में कहा गया-'न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किचिंत्' इस दुनिया में मनुष्य से श्रेष्ठ कोई नहीं है। इस आधार पर धर्म का एक नाम बन गया-मानव धर्म। मानव के साथ धोखाधड़ी मत करो, लूट-खसोट मत करो, अप्रामाणिकता मत करो। उसे मत सताओ। यह मानव धर्म का स्वरूप बन गया। धर्म का दूसरा स्वर है-प्राणी मात्र के साथ समता का व्यवहार करो। ये दोनों धाराएँ उद्घोषित होती रही हैं किन्तु आचरण शायद दोनों का ही नहीं हो रहा है। न प्राणी के प्रति समता का आचरण हो रहा है और न मानव के प्रति। यह सार्वभौम धर्म जीवन के व्यवहार में नहीं उतर रहा है। अणुव्रत आंदोलन का प्रयत्न सार्वभौम धर्म को व्यवहार में अवतरित करने का है। इसके लिए एक मानवीय आचार संहिता* प्रस्तुत की गई है।

अणुव्रत के निदेशक तत्त्व इसके विराट् स्वरूप के साक्षीभूत हैं। वे निम्न हैं–

- दूसरों के अस्तित्व के प्रति संवेदनशीलता।
- मानवीय एकता।
- सह-अस्तित्व की भावना।
- साम्प्रदायिक सद्भाव।
- अहिंसात्मक प्रतिरोध।
- व्यक्तिगत संग्रह और भोगोपभोग की सीमा।
- व्यवहार में प्रामाणिकता।
- साधन-शुद्धि की आस्था।
- अभय, तटस्थता और सत्य निष्ठा।

इन तत्त्वों की संयोजना से स्पष्ट है कि अणुव्रत सार्वभौम धर्म का व्यावहारिक रूप है।[38] आंदोलन के स्वरूप को विभिन्न आयामों से व्यापकता प्रदान की गई।

अणुव्रत का उद्घोष

भोगवादी अथवा पदार्थवादी दृष्टिकोण का परिष्कार नैतिकता की मूल इकाई है। इसे प्रायोगिक स्तर पर प्रतिष्ठित करने की आकांक्षा से अणुव्रत आंदोलन ने घोष दिया-'संयमः खलु जीवनम्-संयम ही

---

* परिशिष्ट : 4

जीवन है।' संयम का अर्थ है-वृतियों का नियमन, वाणी, मन, आदि का नियंत्रण। यह एक सीमा करता है, व्यवस्था देता है। इस संयमात्मक सीमा या व्यवस्था का स्वीकरण ही इसकी प्रकृति है। आचार्य महाप्रज्ञ की भाषा में इस घोष को अगर आज सभी अपने जीवन-निर्माण का सूत्र बना लें तो उसका कल्याण तो होगा ही, समाज और राष्ट्र का भी बहुत भला होगा। जहाँ असंयम है, वहाँ भय है और जहाँ संयम है, वहाँ अभय और शांति है।[39]

संयम आध्यात्मिक तत्त्व है। नैतिक मूल्यों के विकास हेतु उसकी अनिवार्यता है। समाज में जब तक संयम का मूल्यांकन नहीं होगा। नैतिक मूल्यों का विकास भी प्रश्नायिक बना रहेगा। स्पष्ट शब्दों में महाप्रज्ञ ने बताया-भ्रष्टाचार की समस्या को केवल कानून, प्रवचन और उपदेश के द्वारा नहीं सुलझाया जा सकता। उसके लिए आवश्यक है संयम की चेतना को जागृत करने का प्रशिक्षण। मूल्य आधारित शिक्षा का केन्द्रीय तत्त्व है संयम। उसका प्रशिक्षण ही मूल्यों के विकास में सहायक हो सकता है।

समाज के चरित्रबल का अर्थ है-नैतिक मूल्यों का विकास। उसका प्रमुख साधन है संयम। वर्तमान स्थिति में संयम का मूल्य भी कम नहीं है। उपभोग सामग्री भी सीमित है। आबादी बढ़ रहीं है। संतुलन बिगड़ रहा है। यदि समृद्ध और समर्थ लोग उपभोग सामग्री का उपभोग कम करें तो संतुलन स्थापित हो सकता है। वह संतुलन सामूहिक मनोबल को बढ़ाने में सहयोगी बन सकता है।[40] तथ्यतः अणुव्रत के घोष ने जन-चेतना को जगाने में अहं भूमिका निभाई है।

व्यापक कार्य

प्रस्तुत आंदोलन ने जन-जागृति मूलक सामाजिक उत्थान के सार्थक प्रयत्न किये हैं। बिना उनको जाने अणुव्रत की चर्चा अधूरी रहेगी। पूर्णता की कड़ी में कतिपय तथ्यों का विमर्श प्रासंगिक बुझाता है।

पद्यात्रा

मुनि का जीवन व्रत है यात्रा। जब यात्रा के साथ विराट् कार्य की संयोजना जुड़ जाती है तो वह 'तिन्नाणं तारयाणं' को साकार करती है, जो साधु का विशेषण है। अणुव्रत अनुशास्ता ने आंदोलन के व्यापक प्रसार की मानसिकता से प्रलम्ब यात्रापथ का चयन किया। इसे पुष्ट करता है यह चर्चा प्रसंग-डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने अपने दो घंटे के वार्तालाप के दौरान आचार्य तुलसी से निवेदन किया-'आज देश में सत्य और अहिंसा के प्रचार की बहुत बड़ी आवश्यकता है। शांति की सारे संसार को आवश्यकता है।' इसके बाबत आचार्य तुलसी की विराट् दृष्टि थी—'मैं अपने संघ की सारी शक्ति सत्य और अहिंसा के प्रचार में लगाना चाहता हूँ। मुझे उस दिन हार्दिक प्रसन्नता होगी जिस दिन जनता में सत्य और अहिंसा मूर्तिमान बनेगी। मेरे दिल्ली आने का यही उद्देश्य है।'[41] अपने दिल्ली प्रवास में अनुशास्ता ने अणुव्रत के क्षेत्र में सघन कार्य किया जिसकी गूँज राष्ट्रपति भवन तक पहुँची।

जयपुर से कानपुर अणुव्रत शास्ता की उतर प्रदेश यात्रा अपने आप में अणुव्रत यात्रा का पर्याय थी। गाँव-गाँव, नगर, डगर अणुव्रत आंदोलन की अर्थात्मा से परिचित बनें। अणुव्रत के नियमों को लोगों ने बड़े जिज्ञासु भाव से ग्रहण किया। अनेक लोग प्रश्न करते—'बड़ा धाम कहाँ है? बाबा कहाँ से आ रहे हैं? आप कहाँ जा रहे हैं? क्यों जा रहे हैं?' आदि जिज्ञासाओं का उत्तर होता-'हम जयपुर से आ रहे हैं, कानपुर जाना है, धर्म का उपदेश देते हैं, अणुव्रत का प्रचार करते हैं, धाम कहीं भी

नहीं है।' सभी बातों पर विश्वास हो जाता पर 'धाम कहीं नहीं' यह गले नहीं उतरता। पर, यह भी अकिंचन संन्यस्त जीवन की सच्चाई थी। जिसे देर-सवेर समझ ही जाते।

परंपरा से अनभिज्ञ लोग अणुव्रत प्रणेता को भेंट देने के लिए फल, फूलमाला, गंगाजल, श्रीफल लाते। यात्रा नायक का उत्तर होता-'मैं भेंट नहीं लेता।' वे निराश होते। आचार्य श्री कहते-'मैं भेंट लेता हूँ।' तब वे प्रसन्न हो जाते। अनुशास्ता विनोद में कहते-'मैं भेंट लेता हूँ, पर इनकी नहीं, किसी बड़ी चीज की लेता हूँ।' वे असमंजस में पड़ जाते। अगली बात कहते-'मुझे उस बुराई की भेंट चाहिए, जो आपको सबसे अधिक प्रिय हो।'[42] 'मुझे न नोट चाहिए, न वोट चाहिए, न प्लॉट चाहिए, मुझे तो आपके जीवन की खोट चाहिए।' यह आह्वान सुन लोगों का सोया शौर्य सिहर उठता और मांग खाली नहीं जाती। इस क्रम में भेंट स्वरूप अनेकों लोगों, परिवारों ने मादक द्रव्यों का त्याग कर सच्ची भेंट संतों के चरणों में दी। राजस्थान से उत्तर प्रदेश का यात्रा पथ 650 मील का था। सैकड़ों देहाती, हजारों ग्रामीण लोगों से संपर्क हुआ। उनके बीच अणुव्रत का त्रिसूत्री कार्यक्रम-धूम्रपान वर्जन, मद्यपान-निषेध, मिलावट-निरोध चला।[43]

चरैवेति-चरैवेति-चलते चलो, चलते चलो-को चरितार्थ करते हुए अणुव्रत शास्ता औद्योगिक व्यावसायिक नगरी कोलकाता पहुँचे। जन चेतना को झनझनाते हुए उन्होंने कहा—'मैं कलकता देखने नहीं आया हूँ, भूमि या अर्थ की याचना करने नहीं आया हूँ। आप लोगों से बुराइयों की भिक्षा मांगने आया हूँ।' जनता ने इस भावना को बड़े आश्चर्य के साथ सुना। उस अवसर पर चरित्र-विकास हेतु त्रिसूत्री योजना प्रस्तुत की :

- मिलावट निषेध
- रिश्वत निषेध
- मद्य निषेध

महानगर प्रवास के दौरान 15 मार्च 1960 को महाजाति सदन में खाद्यमंत्री प्रफुल्लचन्द्र सेन द्वारा आयोजित कार्यक्रम में श्री जयप्रकाश नारायण उपस्थित थे। उन्होंने बंगाल की धरा से देश व्यापी नैतिक क्रांति के नेतृत्व का आह्वान अणुव्रत मंच की ओर से किया।

अणुव्रत की विचारक्रांति के स्वर जन-जन के कानों में गूँज उठे-'धर्म स्थान में जाकर पवित्र बन जाना धर्म की कसौटी नहीं है। उसकी कसौटी है दुकान में बैठकर पवित्र रहना। अणुव्रत शास्ता ने धर्म की प्रतिमा धर्म स्थान से हटाकर दुकान (कार्यालय) में प्रतिष्ठित करने का दिशा-दर्शन दिया, यह धर्मक्रांति की महत्त्वपूर्ण घटना है।[44] यात्रा के क्रम में देश के एक छोर से दूसरे छोर-कश्मीर से कन्याकुमारी, केलवा से कोलकाता पर्यंत पाद-विहरण कर अणुव्रत शास्ता ने जन जागृति की अलख जगाई। और स्वतंत्र भारत के गौरव को गुणित किया।

नारी जागरण

धर्मक्रांति, जन जागृति की दिशा में गतिशील आंदोलन की पहुँच आधी दुनिया का प्रतिनिधित्व करने वाले नारी समाज को कैसे बेखबर छोड़ता? ममता के आगर की कुछ बेहूदी पहचान क्रांतद्रष्टा को कहाँ गँवार थी? उन्होंने पाया सदियों से परिस्थिति की प्रताड़ना से पीड़ित नारी को जब तक जागृत नहीं किया जायेगा नैतिक क्रांति अधूरी होगी। पर्दा, अशिक्षा और रूढ़धारणाओं ने नारी के सत्व को धूमिल बना दिया।

विश्वभर का नारी समाज करवट ले रहा है यह आंकड़ो के आधार पर बहुत स्पष्ट हो गया। फिर भारतीय नारी का जागरण बाधित क्यों? अणुव्रत आंदोलन के तहत् इस दिशा में गति को उत्प्रेरित किया गया। जिसके सकारात्मक परिणाम निकले।

सैंकड़ों महिला सम्मेलन आयोजित हुए। उनमें महिलाओं को एक श्रेष्ठ प्रशिक्षण मिला। 18 दिसंबर 1956 को देश की राजधानी दिल्ली में आंचलिक कांग्रेस महिला समाज की ओर से एक कार्यक्रम आयोजित हुआ। अनुशास्ता ने उसे संबोधित करते हुए कहा-'एक स्त्री के बदलने का अर्थ है पूरे परिवार का जीवन-परिवर्तन। स्त्री विकास के प्रति ध्यान देना विकास की गति को बल देना है।'

अणुव्रत प्रणेता ने बहिनों को तथ्य की अवगति देते हुए बताया-मैंने कुछ लोगों से पूछा-'आप व्यापार में अनैतिक आचरण क्यों करते हैं? उत्तर मिला-'हम क्या करें, हमें स्त्रियाँ तंग करती हैं। उनकी फैशनेबल कपड़ों और गहनों की मांग पूरी करने के लिए अनैतिक होना पड़ता है।' इस उत्तर में भले ही एक बहाना हो पर स्त्रियों के लिए क्या यह आत्मा लोचन का विषय नहीं हैं? दहेज प्रथा क्या नारी जाती के लिए कलंक नहीं हैं? इस प्रथा में स्त्रियाँ सहभागी न बनें तो यह कलंक अपने आप धुल जाए।[45] इत्यादि विभिन्न संकेतों से नारी की चेतना जाग उठी। अणुव्रत आंदोलन नारी जगत् के लिए वरदान साबित हुआ।

पर्दा-परिष्कार

अणुव्रत आंदोलन की सहकारी प्रवृतियों में समाजव्यापी कुरूढ़ियों के खात्में का आह्वान किया गया। नारी जाति से जुड़ा हुआ पर्दा कुरूढ़ि का रूप धारण कर चुका यह बहुत स्पष्ट था। इसका परिमार्जन जरूरी हो गया। बहिनों के मानस को झनझनाते हुए अनुशास्ता ने कहा-'मैं इस विवाद में नहीं पड़ता कि आप पर्दा रखें या न रखें। यह अपनी-अपनी इच्छा पर निर्भर है, पर इसके गुण-दोषों को बताना मेरा काम है।'

पर्दा रखने का उद्देश्य तो लज्जा की सुरक्षा है, पर लज्जा तो आँखों में रहती है। विभिन्न सामयिक तथ्यों के साथ मंथन चला-'एक ओर अणुव्रत-क्रांति और दूसरी ओर यह बहिनों की कैद बहुत बड़ी विषमता है। मेरी भावना है कि अब इस प्रथा को जल्दी समाप्त किया जाए।' यह चिंतन कोलकता में सक्रिय बना।

पर्दाप्रथा के उन्मूल में अणुव्रत की सक्रिय भूमिका रही है। अनुशास्ता के हृदय स्पर्शी विचार पर्दा निवारण में योगभूत बनें। उन्होंने लिखा-'मुझे तो बहिनों का यह पर्दा सचमुच विकास का अवरोधक, कायरता का पोषक और संकीर्णता का परिचायक लगता है। यह अज्ञान का द्योतक है। समाज की बहिनें जब तक इस बंधन से मुक्त नहीं होगी तब तक हमारा काम अधूरा है। हाँ, यह जरूरी है कि एक गढ़े से निकलकर दूसरे में गिरना उचित नहीं है। पर्दे को छोड़कर विलास में फंसना ठीक नहीं है।'[46] इस प्रकार के क्रांतिकारी विचारों से अणुव्रत की राहें निष्कंटक बनती गई। पर्दाफास हो गया।

नया-मोड़

व्यापक जनसंपर्क से अणुव्रत आंदोलन के कार्यों में विस्तार व्यापा। यह स्पष्ट हो गया कि लोक-जीवन रूढ़ियों से इतना जकड़ा हुआ है कि कोई सामान्य स्वर उसे नहीं बदल सकता। तात्कालीन

समाज नया मोड़ ले, इस पर विचार-विमर्श किया गया। रूढ़ियों से चिपका कोई भी समाज रमणीय नहीं हो सकता। रूढ़ि कोई बुराई नहीं है। पर वह रूढ़ि, जिसकी उपयोगिता समाप्त हो जाए, बुराई बन जाती है। समाज में ऐसी अनेक रूढ़ियाँ हैं, उनके चलते चरित्र-विकास संभव नहीं। नितांत अपेक्षा है कि समाज नया मोड़ ले।[47]

विमर्श पूर्वक रूढ़ि उन्मूलन हेतु 'नया-मोड़' का कार्यक्रम दिया। मेवाड़ की ऐतिहासिक धरा नौचौकी-राजसमंद की भूमि से इस अभियान को विधिवत कार्यकारी बनाया गया। जिसमें विशेष रूप से पर्दा, मृत्युभोज, प्रथारूप से रोना, विधवाओं के काले वस्त्र और उनका तिरस्कार, विवाह आदि प्रसंगों पर होने वाले वृहत् भोज, दहेज, ठहराव और प्रदर्शन, तपस्या के उपलक्ष में होने वाले आडम्बर आदि विषयों पर एक समाजव्यापी अभियान चलाया गया। उसमें कुप्रथाओं से होने वाली तथा धार्मिक जीवन में उत्पन्न होने वाली समस्याओं के प्रति ध्यान आकर्षित किया गया। इस कार्यक्रम के आशातीत परिणाम आये। इसका अगला चरण है—'जैन संस्कार विधि', जो जन्म, विवाह, मृत्यु, आदि के प्रसंग पर महत्वपूर्ण काम कर रही है। अणुव्रत आंदोलन के रचनात्मक कार्यों की एक लम्बी सूची है। उनमें से महत्त्वपूर्ण पहलुओं को ही विमर्श का विषय बनाया गया है।

जातिवाद का उन्मूलन

अणुव्रत आंदोलन के धर्मचक्र ने भारतीय जन-मानस में जकड़ी जातिवाद की बेड़ियों को तोड़ने का सार्थक प्रयत्न किया। भगवान महावीर का उद्घोष-'एक्का मणुस्सजाइ' मनुष्य जाति एक है। यह पुनर्प्रतिष्ठा की राह पर उपेक्षित बना क्रांति की बाट जो रहा था। सहसा अणुव्रत आंदोलन का ध्यान उस ओर टिका। अनुशास्ता स्वयं हरिजनों की बस्तियों में गए और साधु-साध्वियों को भेजा। हरिजन बन्धु प्रवचन पंडाल में आने लगे। उनके सम्मेलन किये गये, जिसमें हजारों हरिजनों ने भाग लिया। इस कार्य में समाज का विरोध भी सहना पड़ा।

हरिजनों के संस्कार निर्माण के अनेक प्रयत्न किये गये। इस प्रवृति को विकासशील बनाने हेतु 'भारतीय संस्कार निर्माण समिति' गठित की गई। उसके माध्यम से अनेक हरिजनों के शिविर आयोजित हुए। उनमें आहार-शुद्धि, व्यसन-मुक्ति, हीन भावना का परित्याग आदि विषयों का प्रशिक्षण दिया गया। जातिवाद की अतात्त्विकता को आम जनता के गले उतारने की आकांक्षा से अणुव्रत शास्ता ने स्वयं शूद्रों के घरों में भिक्षा ग्रहण की।

जात-पाँत के आधार पर स्वयं को निम्न मानने वाले लोगों की चेतना को जगाते हुए अणुव्रत के मंच से आवाज उठाई-'आपमें जो स्वयं को हीन समझने की भावना घर कर गई, यही आपके लिए अभिशाप है। जहाँ एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के लिए अस्पृश्य या घृणा का पात्र माना जाये, वहाँ मानवता का नाश है। आप अपनी आदतों को बदलें। मद्य मांस आदि बुरी वृत्तियों को छोड़ दें। जीवन में सात्विकता लायें। फिर आपकी पावन वृत्तियों को कोई भी पतित या दलित कहने का दुस्साहस नहीं करेगा।' उत्थान की अभिप्सा से उन्हें यह भी बताया गया-'छुआछूत की धारणा मानसिक हिंसा है। यह हिंसा आज समाज का विघटन कर रही है। इस विघटनकारी तत्त्व को समाप्त करना बहुत जरूरी है। यह मुझे जानकर अति आश्चर्य हुआ कि हरिजनों में भी आपस में छुआछूत चल रहा है। जब आपकी इस बीमारी से पीड़ित हैं, तब हम दूसरों से क्या कहें? आप इस धारणा को अपने मन से निकालें। इस मिथ्या धारणा को छोड़कर ही आप बड़े बन सकते हैं। अपना बड़प्पन

अपने हाथ है। आप किसी को छोटा नहीं मानते हैं तो आप स्वयं ही बड़े बन जाते हैं।'[48] इस प्रकार सघन प्रयत्न हरिजनोत्थान की दिशा में संपादित हुए।

राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से आचार्य महाप्रज्ञ कहते हैं 'वर्तमान युग में राष्ट्रीय हित के लिए जितना सहायक अणुव्रत आंदोलन हो सकता है उतना शायद दूसरा हमें खोजना होगा। अणुव्रत का नियम है, मैं जाति के आधार पर किसी को ऊँचा-नीचा नहीं मानूंगा, सम्प्रदाय के आधार पर किसी से घृणा नहीं करूँगा, किसी को नीचा दिखाने का प्रयत्न नहीं करूँगा, किसी की आलोचना नहीं करूँगा।' जब तक हमारे जीवन में ये मूलभूत बातें नहीं आती, तब तक हम एकता की बात सोच भी नहीं सकते।[49] इत्यादि मौलिक विचारों के आलोक में अणुव्रत आंदोलन की सक्रिय भूमिका देखी जा सकती है।

चार प्रमुख आयाम

अणुव्रत आंदोलन के समग्र कार्य-कलापों को चार भागों में गुंफित किया जा सकता है-1. रचनात्मक 2. आंदोलनात्मक 3. संगठनात्मक 4. प्रचारात्मक।

आंदोलन की रचनात्मक प्रवृत्तियों में राग-द्वेष, भय, दुर्व्यसन-मुक्त, नैतिक मूल्यों को जीवन में अपनाने वाला तथा अहिंसक समाज-संरचना के लिए प्रयत्नशील अणुव्रती कार्यकर्ताओं का निर्माण मुख्य है।

आन्दोलनात्मक पहलू से यह आन्दोलन भ्रूणहत्या, दहेज प्रथा, बाल-विवाह, मृत्युभोज, अस्पृश्यता, जातिवाद सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन के लिए नया मोड़ जैसे कार्यक्रम चलाता है। विशेष रूप से अयथार्त माप-तौल, मिलावट, रिश्वत, मादक-द्रव्यों के सेवन के विरुद्ध आवाज उठाता है, जनमत का निर्माण करता है।

दहेज प्रथा उन्मूलन के लिए प्रस्तुत आंदोलन प्रयत्नशील है। अपनी सभाओं में महाप्रज्ञ बेबाक कहते-बहुएँ क्यों जल रही है? यह एक ज्वलंत प्रश्न है। सुविधावाद, बिना परिश्रम बटोरने की मनोवृति, प्रदर्शन और बड़प्पन-ये बड़ी-बड़ी घाटियाँ है जो समाधान के रोड़े है। जो लोग श्रम से जी चुराते है, अथवा आर्थिक अभाव का जीवन जी रहे हैं वे दहेज में समाधान खोजते हैं।

मोटर साईकिल, स्कूटर, कार, रेडियो ट्रांजिस्टर, टी.वी., रेफ्रिजरेटर आदि की पूर्ति दहेज में हो, इस धारणा ने पदार्थ का मूल्य बढा दिया और विवाहित युवती का अवमूल्यन कर दिया। प्राचीन काल से चली आ रही दहेज की व्यवस्था पहले स्वाभाविक थी, अब यह बहुत विकृत बन गई है। अणुव्रत आंदोलन में दहेज की विकृति मिटाने के लिए दो उपाय सुझाए गए हैं– • दहेज के लिए ठहराव न करना। • दहेज का प्रदर्शन न करना। इन दो उपायों को विस्तार दें तो कुछ संभावनाओं के बारे में सोचा जा सकता है।

दहेज का निर्धारण विवाह से पूर्व हो चिंतन का पहला बिंदु है-विवाह के साथ दहेज का संबंध न रहे, चिंतन का दूसरा बिंदु है-विवाह के अवसर पर देने की प्रथा को समाप्त किया जाए। इस हेतु एक विवाह-कक्ष का नियोजन अणुव्रत समिति के अंतर्गत बने। उस कक्ष का काम होगा-जनता से संपर्क, अणुव्रत के संकल्पों को जन-जन तक पहुँचाना और विवाह को दहेज के दानव से मुक्त करना। समाधान की सबसे बड़ी कठिनाई उनकी दृष्टि में यह है कि महिलाएं स्वयं महिलाओं को प्रताड़ित करती हैं। यदि सास बदल जाए तो बहुओं का जलना बंद हो जाए। अणुव्रत समिति के

विवाह कक्ष का संचालन महिलाएं करें और दहेज-प्रथा के उन्मूलन में महिलाएं आगे आएं तो कार्य को गति-वेग मिल सकता है।[50] व्यापक स्तर पर इन विचारों को प्रतिष्ठित करने की अपेक्षा है।

समाज में व्याप्त एक और बुराई जो नशे के रूप में अपनी जड़ें जमा रही है। युवावर्ग इसकी गिरफ्त में आ रहा है। परस्पर के संबंधों में आ रही कटुता, तलाक और आपराधिक कृत्य के पीछे एक बड़ा कारण शराब भी है। परिवारों को तबाह और बर्बाद करने में इसकी प्रमुख भूमिका होती है। अणुव्रत की चर्चा के उपरांत आचार्य महाप्रज्ञ से एक बहन ने अपने शराबी पति की दास्तान सुनाते हुए बताया—'जब तक मेरे पास गहने थे, उन्हें बेचकर पति की आवश्यकता पूरी करती रही। गहने समाप्त हो गए तो पीहर से उधार लेकर काम चलाती रही। अब मेरे लिए कहीं से कोई सहारा नहीं है। पति से इसी तरह मार खाती रही तो जल्दी ही अपंग हो जाऊंगी। मेरा जीवन नरक बन गया है।' शराब के नशे में सब कुछ संभव है क्योंकि शराब से विवेक चेतना पूरी तरह नष्ट हो जाती है।[51] इस टिप्पणी के साथ महाप्रज्ञ ने यह भी बताया कि गरीबी, अभाव और दुःख-ये आदमी को शराब जैसी बुराई की ओर धकेल देते है। प्रश्न है इस बुराई से कैसे बचाव किया जाए? अणुव्रत आंदोलन ने इस दिशा में व्यापक प्रयत्न किये हैं। एकांकी और नुक्कड़ नाटकीय लहजे से हजारों-हजारों लोगों के दिलों में व्यसन मुक्त जीवन जीने की न केवल चाह जगाई अपितु जीवन भर के लिए व्यसन मुक्त रहने को संकल्पित बनाया है। प्रेरणा पाकर लाखों लोगों ने अपने को व्यसन मुक्त बनाया है। अपेक्षा है इस अभियान को और अधिक शक्तिशाली बनाया जाये। यह तभी संभव है जब आम जनता इससे जुड़ें।

संगठनात्मक पहलू से देखा जाये तो सैंकड़ों क्षेत्रों में अणुव्रत समितियों का गठन हुआ है। ये समितियाँ परस्पर मतभेद को सुलह देकर समाप्त करती है साथ ही रचनात्मक, विकासात्मक कार्यक्रम भी स्थानीय लोगों के हितार्थ संपादित करती है।

प्रचारात्मक रूप से यह उन लोगों को दिशा बोध देने का काम कर रहा है जिनके सामने कोई लक्ष्य और सही दिशा नहीं है। इसकी महत्त्वपूर्ण कड़ियाँ हैं-अणुव्रत पत्रिका, अणुव्रत विचार परिषद्, अणुव्रत शिक्षक परिषद्, अणुव्रत वाहिनी, अणुव्रत भारती आदि। नैतिक मूल्यों की स्थापना हेतु समय-समय पर अणुव्रत यात्राएं संपादित हुई हैं। अणुव्रत अनुशास्ता श्री तुलसी ने 1957 में जयपुर से कानपुर (उत्तर प्रदेश) एवं फरवरी-मार्च 1995 में दिल्ली से लाडनूँ तक की अणुव्रत यात्रा की। यात्रा के दौरान हजारों-हजारों लोगों को अणुव्रत का संदेश मिला वे व्यसन मुक्त बनें।

अणुव्रती बनने की अर्हता

अणुव्रती की गुणवत्ता ही आंदोलन की शक्ति है अतः उसका स्वरूप विमर्श प्रासंगिक होगा। मानवीय एकता और सह-अस्तित्व उसका हृदय है। जिस व्यक्ति का मानवीय एकता में विश्वास नहीं है, सह अस्तित्व में विश्वास नहीं है, मानवीय समानता में विश्वास नहीं है, वह अणुव्रती नहीं हो सकता। प्रश्न उपस्थित हुआ आत्मा, परमात्मा, पुनर्जन्म और धर्म को नहीं मानने वाला अणुव्रती हो सकता है? अनुशास्ता का उत्तर था 'क्यों नहीं बन सकता?' यदि मानवीय एकता, समानता और सह-अस्तित्व में जिसकी आस्था है वह अणुव्रती हो सकता है। वह धर्म को माने या न माने, उपासना या पूजा-पद्धति करे या न करे। ये उसके व्यक्तिगत आस्था के प्रश्न हैं। अणुव्रत की आधार भित्ति है-मानवता में आस्था। इसके प्रति आस्थावान् कोई भी व्यक्ति अणुव्रती बन सकता है।[52] अणुव्रती बनने के

लिए जैनी होना अनिवार्य नहीं है। जैन परम्परा की भावना के अनुसार अणुव्रती वह बन सकता है जो सम्यक् दृष्टिवाला हो। इसीलिए अणुव्रतों को सम्यकत्वमूलक कहा गया है। इस आंदोलन में यह भावना नहीं है कि जैन दृष्टि को स्वीकार करने वाला ही अणुव्रती बने। इसके सम्यक् दर्शन की परिभाषा है-अहिंसानिष्ट दृष्टि। अणुव्रती वह बन सकता है जिसकी अहिंसा में निष्ठा हो। यह आंदोलन सब धर्मों को अहिंसा में केन्द्रित करता है। अहिंसावादियों का सार्वजनिक मंच है। अहिंसानिष्ठ कोई भी व्यक्ति इसे अंगीकार कर सकता है। अहिंसक की कसौटी उसका व्यवहार है। महाप्रज्ञ कहते हैं—व्रत नहीं दिखते, व्रती का व्यवहार दीखता है। जो क्रूर नहीं है, उचित मात्रा से अधिक संग्रह नहीं करता है, अपने पड़ौसी या सम्बन्धित व्यक्ति से अनुचित व्यवहार नहीं करता है, अपने स्वार्थ को अधिक महत्त्व नहीं देता है, अपनी सुख-सुविधा और प्रतिष्ठा के लिए दूसरों की हीनता नहीं चाहता है, दूसरों के बुद्धि-दौर्बल, विवशता से अनुचित लाभ नहीं उठाता है—नैतिकता का मूल्यांकन करते हुए अपने आप पर नियन्त्रण रखता है। ये वृत्तियां ही अणुव्रती होने का स्वयंभू प्रमाण है।[53] जो चिंतनशील आदमी है, अपने जीवन को सुखी और शांत बनाना चाहता है, संतोष का जीवन जीने का आकांक्षी है, उसे अणुव्रती बनना ही होगा। अणुव्रती हमेशा सच्चाई को सामने लेकर चलता है। अणुव्रती का नैतिक व्यवहार ही आंदोलन की सफलता का प्रतीक है।

अणुव्रत की अनुगूँज

अणुव्रत आंदोलन गरीब की झौपड़ी से लेकर राष्ट्रपति भवन तक पहुँचा। आंदोलन के सकारात्मक परिणाम के संबंध में शीर्ष व्यक्तियों के विचारों की झलक मात्र पर्याप्त है। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा-'अणुव्रत आन्दोलन का उद्देश्य नैतिक जागरण और जन-साधारण को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करना है।' डॉ. एस.राधाकृष्णन् की टिप्पणी थी—'इस समय हमारे देश में अणुव्रत आन्दोलन ही एक ऐसा आन्दोलन है, जो जनता के आत्म बल को जगा रहा है।' स्पष्ट है राजनीति से जुड़े लोगों ने भी इसे समझा। आंदोलन के विषय में पं. जवाहर लाल नेहरू का अभिमत था-हमें अपने देश का मकान बनाना है तो उसकी बुनियाद गहरी होनी चाहिए।.....गहरी बुनियाद चरित्र की होती है। देश में बड़े-बड़े काम करने हैं। उसके लिए मजबूत दिल, दिमाग और अपने को काबू में रखने की शक्ति चाहिए। ये बातें हमें सीखनी है। इन सबकी बुनियाद चरित्र है कितना अच्छा काम अणुव्रत आन्दोलन में हो रहा है।[54] इस आंदोलन से श्रीमती इन्दिरा गांधी भी प्रभावित थी, उसने कहा-'अणुव्रत आन्दोलन आज का नहीं है, यह वर्षों से चलाया जा रहा है। यह कहता है हमारा चारित्र उन्नत हो। देश के लोग चरित्रवान बनें। हमें देश को महान् बनाना है। महान् बनाने के लिए चरित्रवान् नागरिक चाहिए। चरित्रवान् नागरिक वह होता है जिसमें एकता की भावना हो, जिसमें आत्म संयम हो।' बड़ी संख्या में बुद्धिजीवियों एवं श्रद्धाशील व्यक्तियों ने इस आंदोलन को युग की अपेक्षा बतलाया।

आज पूरी दुनिया में अनैतिकता का कोहरा छाया है। मूल्यों का तेजी से पतन हो रहा है। ईमानदारी, विश्वास और मैत्री की अनेक परम्पराएं टूटती जा रही हैं। इस नैतिक दिवालियेपन पर अंकुश लगे, जन जीवन में सत्य-निष्ठा और ईमानदारी का समावेश हो इस दिशा में अणुव्रत आंदोलन सतत् प्रयत्नशील है। हाल ही में अणुव्रतशास्ता आचार्य महाप्रज्ञ ने अहिंसा यात्रा में जन-जन की नैतिक चेतना जगाने के व्यापक उपक्रम किये हैं। इस दौरान उनका अनुभव रहा-अहिंसा यात्रा में हमने जन-समस्याओं का गहन अध्ययन किया तो पाया कि सब जगह एक ही विभीषिका है-भ्रष्टाचार

और अनैतिकता की, अपराध और हिंसा की। एक ही सवाल हर ओर से आता है कि इसका समाधान क्या है? समाधान सिर्फ अणुव्रत है।

युगानुरूप इस आंदोलन के कार्यों को विस्तार दिया गया है। अणुव्रत शास्ता महाप्रज्ञ के शब्दों में-अणुव्रत का कार्य व्यापक हो गया। अन्य सारे कार्यक्रम अणुव्रत के पूरक बन गए हैं। सारे कार्यक्रम अणुव्रत के साथ ही चल रहे हैं। सब उसी के पल्लव हैं, उसी की शाखाएं, प्रशाखाएं हैं। प्रेक्षाध्यान, जीवन विज्ञान, अहिंसा समवाय, अहिंसा प्रशिक्षण सब उसी के परिणाम है। सूरत स्पिरिचुअल डिक्लेरेशन और उसके आधार पर बना संगठन फ्यूरेक, जिसके साथ राष्ट्रपतिजी और देश के बड़े-बड़े धर्मगुरु जुड़े हुए हैं, उसका एक व्यापक रूप बना है।[55]

अणुव्रत आंदोलन का दृष्टिकोण केवल भारत तक ही सीमित नहीं है। यह विश्व शांति का एक नया विकल्प है। महाप्रज्ञ ने बताया 'अणुव्रत और विश्व शांति-यह अंतर्राष्ट्रीय जगत के लिए एक नया विकल्प हो सकता है। अणुबम और विश्व शांति की चर्चा तो होती रहती है, किन्तु अणुव्रत और विश्व शांति की चर्चा एक नया प्रकल्प विश्व के सामने है। निश्चित रूप से-अणुव्रत ने संयम का जो सूत्र दिया है, उस सूत्र पर ध्यान दिए बिना विश्व शांति नहीं होगी।'[56] विश्व शांति के लिए अणुयुग की विभीषिका और स्टारवार की तेज अफवाहों के बीच अणुव्रत निःशस्त्रीकरण और शांति का पथ प्रशस्त करता है।

फिर से जानें, अणुव्रत आंदोलन की विकास यात्रा के अनेक चरण हैं। सम-सामयिक समस्याओं के संदर्भ में नये-नये उन्मेष इसकी प्राणवत्ता के सबूत है। यह पिछले 61-62 वर्षों का आकलन है कि आंदोलन ने हर स्थिति में नैतिक-चारित्रिक उत्थान की मिसाल कायम की है। स्वतंत्र भारत के इतिहास को स्वर्णाभ बनाने की आकांक्षा से इसने भाईचारे और साम्प्रदायिक सौहार्द का पैगाम हर मुल्क के लोगों को दिया है। अणुव्रत ने यह घोष मुखरित किया-'इंसान पहले इंसान; फिर हिन्दू या मुसलमान' इंसानियत की प्रतिष्ठा इसका विज़न है। प्रस्तुत आंदोलन के 61 राष्ट्रीय अणुव्रत अधिवेशन मनाये जा चुके हैं।

यह समाधान का विशुद्ध मार्ग है क्योंकि इसमें संप्रदाय गौण, धर्म मुख्य है, उपासना गौण चरित्र प्रधान है। कर्मकाण्ड गौण-प्रायोगिक जीवन प्रधान है। साम्प्रदायिक मतवाद गौण सद्भावना मुख्य है। परलौक की चिंता गौण वर्तमान जीवन की पवित्रता मुख्य है। एक वाक्य में यह अहिंसा की प्रतिष्ठा का नैतिक-चारित्रिक आंदोलन है जो सदियों तक मानवता को आलोकित करता रहेगा।

अहिंसक आंदोलन एक ऐसी प्रायोगिक प्रविधि है जिसका लाभ उभय पक्षात्मक है। प्रयोक्ता को जहाँ लक्ष्य मिलता है वहाँ प्रायोग्य की चेतना विशुद्धत्तर बनती है। अभियुक्त न्याय पथ पर चलने के लिए बाध्य होता है। विश्वभर में चलने वाले शांति आंदोलन अपनी वास्तविक गुणवत्ता से हटते जा रहे हैं। पर, गांधी और महाप्रज्ञ के अहिंसक आंदोलन की यह खूबी है कि उनका अहिंसा-सत्य आदर्श आलोक कभी प्रसुप्त या लुप्त नहीं हुआ। यही राज है अहिंसक आंदोलन की सफलता का। जहाँ भी इनका सच्चाई और निष्ठा के साथ प्रयोग किया गया सफलता ने चरण चूमे। इसका प्रमाण है-भारत की आजादी के अहिंसक हथियार। अविवेक पूर्ण अहिंसक आंदोलन को स्वयं गांधी भी हिंसा कहते थे। अहिंसक आंदोलन-सत्याग्रह, असहयोग, सविनय अवज्ञा, स्वदेशी एवं अणुव्रत आंदोलन सभी का लक्ष्य स्वस्थ समाज की संरचना अहिंसा की बुनियाद पर प्रतिष्ठित करना है।

अहिंसा का संगठनात्मक स्वरूप

अहिंसा की शक्ति असीम है। उसका कार्यक्षेत्र विस्तृत है। जब अहिंसा का संगठित प्रयोग किया जाता है उसे संस्थात्मक अहिंसा की संज्ञा दी जाती है। अहिंसा के प्रयोग को शक्तिशाली बनाने के लिए महात्मा गांधी एवं आचार्य महाप्रज्ञ ने गहन चिंतन-मंथन पूर्वक अहिंसात्मक संगठन को अस्तित्ववान् बनाया। अहिंसक संगठन का एक मात्र लक्ष्य था हिंसा के दावानल को अहिंसा के अमृत से शांत करना। गांधी द्वारा 'शांति दल' का गठन किया गया जो दंगा फसाद अथवा अशांत क्षेत्र में शांति स्थापित करने में अपनी सक्रिय भूमिका अदा कर सके। जिसका विकसित रूप 'शांति सेना' के रूप में विनोबा ने प्रतिष्ठित किया। महाप्रज्ञ ने अहिंसात्मक संगठन के रूप में अहिंसा-समवाय एवं अहिंसा वाहिनी का प्रकल्प दिया। मनीषियों के अहिंसक संगठन का उद्देश्य मुख्य रूप में तनाव ग्रस्त क्षेत्रों में शांति स्थापित करना एवं शांति के समय में रचनात्मक कार्यों को संपादित कर जन जागृति बढ़ाना है। प्रस्तुत संदर्भ में अहिंसात्मक संगठन की संक्षिप्त मीमांसा-स्वरूप, कार्य और सफलता की दृष्टि से इष्ट है।

शांति सेना

शांति सेना महात्मा गांधी की मूल अवधारणा है। इसकी स्फुरणा उनके मन में तब हुई जब देश में जगह-जगह अशांति फैलाई जा रही थी। सामाजिक समरसता भंग की जा रही थी—हिन्दू-मुस्लिम दंगे हो रहे थे। उन्होंने सोचा एक ऐसे समर्पित लोगों की जमात होनी चाहिए जो समाज में फैल रही अशांति को रोके एवं शांति स्थापित करे। इस दृष्टि से उन्हें सेना में समर्पण तत्त्व दिखाई पड़ा। अतः वह जमात जो शान्ति स्थापनार्थ कार्य करेगी-नाम दिया शान्ति सेना। शान्ति सेना अर्थात् वह सेना जो शान्ति के लिए, शान्ति प्रिय लोगों द्वारा, शान्ति चाहने वाले लोगों की रचनात्मक एवं स्वस्थ जमात। यह ऐसी जमात है जो हिंसा से भिन्न दण्डशक्ति के विपरीत अहिंसक तरीके से समाज में शान्ति स्थापनार्थ कार्य करेगी। इसके विस्तृत विमर्श से पूर्व अहिंसा सेवा-दल का जिक्र उचित होगा। चूंकि शान्ति सेना की पृष्ठभूमि में सेवा-दल प्रयोग की सफल भूमिका गांधी के दिमाग में अंकित थी।

शांति दल के प्रारूप को प्रकट करते हुए गांधी ने कहा—'शांति दल के हर एक सदस्य का ईश्वर में अटल विश्वास होना चाहिए। उसमें यह श्रद्धा होनी चाहिए कि ईश्वर ही सबका सच्चा साथी है और वह सबका सिरजनहार है, कर्ता है। इसके बिना जो शान्ति सेनाएँ बनेंगी, मेरे ख्याल में बेजान होगी। ईश्वर को आप अल्लाह के नाम से पहचानें, अहुरमज्द कहें, जीहोवा कहें, जीता-

जागता कायदा कहें, राम कहें, रहमान कहें, किसी भी नाम से पुकारें, मगर उसकी शक्ति का उपयोग तो आपको करना ही है। ऐसा आदमी किसी को मारेगा नहीं, बल्कि खुद मरकर जीतेगा और जी जायेगा। सफलता के लिए नियमों के पालन पर बल दिया-

- सेवक अपने साथ कोई हथियार न रखे।
- वह अपने बदन पर ऐसी कोई निशानी रखे, जिससे फौरन पता चल जाए कि वह शांतिदल का मेम्बर है।
- सेवक के पास घायलों वगैरह कि सार-संभाल के लिए तुरन्त काम देने वाली चीजें रहनी चाहिए। जैसे पट्टी, कैंची, छोटा चाकू, सूई वगैरा।
- सेवक को ऐसी तालीम मिलनी चाहिये, जिससे वह घायलों को आसानी से उठाकर ले जा सकें।
- जलती आग को बुझाने की, बिना जले या झुलसे आगवाली जगह में जाने की, ऊपर चढ़ने और उतरने की कला सेवक में होनी चाहिए।
- अपने मुहल्ले के सब लोगों से उसकी अच्छी जान-पहचान होनी चाहिए। यह खुद ही एक सेवा है।
- उसे मन ही मन राम का नाम बार-बार जपते रहना चाहिये और इससे मानने वाले दूसरों को भी ऐसा करने के लिए समझाना चाहिए।[57]

अहिंसक सेवा-दल अथवा शांतिदल की इस मीमांसा से स्पष्ट है कि गांधी के विचार अहिंसा को संगठनात्मक रूप देने में कितने प्रखर थे। उसी का विकसित रूप शांति सेना के रूप में प्रकट हुआ।

शांति सेना का उद्देश्य

शांति सेना का स्पष्ट उद्देश्य था हिंसा के विरोध में अहिंसक नागरिक शक्ति को संगठित एवं सक्रिय करना। अशांति के समय शान्ति के लिए कार्य करना एवं शान्ति के समय सृजन एवं रचना का कार्य करना। इसका दूरगामी उद्देश्य था-

- शान्तिमय समाज की स्थापना करना।
- समाज में शांति का मूल्य स्थापित करना।
- समाज में सज्जन शक्ति को संगठित करना।
- समाज में भ्रातृत्व, सौहार्द एवं सेवा भावना को स्थापित करना।
- दानव शक्ति को कमजोर एवं प्रेम शक्ति का संवर्धन करना।[58]

ये उद्देश्य शांति सेना की कार्य पद्धति को स्पष्ट करते हैं।

शांति सेना के विचार का स्पष्ट उल्लेख गांधी के इस कथन में है—'मैंने एक ऐसे स्वयं सेवकों की सेना बनाने की तजबीज रखी थी, जो दंगों, खासकर साम्प्रदायिक दंगों को शान्त करने में अपने प्राणों तक की बाजी लगा दे। विचार यह था कि यह सेना पुलिस का ही नहीं बल्कि फौज तक का स्थान ले ले।

मौलिक पहचान

1. शांति सेना का सदस्य पुरुष हो या स्त्री अहिंसा में उसका जीवित विश्वास होना चाहिए।

यह तभी संभव है, जबकि ईश्वर में उसका जीवित विश्वास है। अहिंसक व्यक्ति तो ईश्वर कृपा और शक्ति के बगैर कुछ कर ही नहीं सकता। इसके बिना उसमें क्रोध, भय और बदले की भावना न रखते हुए मरने का साहस नहीं होगा। ऐसा साहस तो इस श्रद्धा से ही आता है कि सबके हृदयों में ईश्वर का निवास है, और ईश्वर की उपस्थिति में किसी भी भय की जरूरत नहीं। ईश्वर की सर्व व्यापकता के ज्ञान का यह भी अर्थ है कि जिन्हें विरोधी या गुण्डे कहा जा सकता हो उनके प्राणों का भी हम ख्याल रखें। यह इरादतन दस्तन्दाजी उस समय मनुष्य के क्रोध को शांत करने का एक तरीका है, जबकि उसके अंदर का पशु भाव उस पर हावी हो।

2. शांति के इस दूत में दुनिया के सभी खास-खास धर्मों के प्रति समान श्रद्धा होनी जरूरी है। इस प्रकार वह हिन्दू हो तो हिन्दुस्तान में प्रचलित अन्य धर्मों का आदर करेगा। इसलिए देश में माने जाने वाले विभिन्न धर्मों के सामान्य सिद्धांतों का उसे ज्ञान होना चाहिए।

3. यह काम अकेले या जत्थों में हो सकता है इसलिए किसी को संगी-साथियों के लिए इन्तजार करने की जरूरत नहीं है। फिर भी आदमी स्वभावतः अपनी बस्ती में से कुछ साथियों को ढूँढकर स्थानीय सेना का निर्माण करेगा।

4. शांति का यह दूत व्यक्तिगत सेवा द्वारा अपनी बस्ती या किसी चुने हुए क्षेत्र में लोगों के साथ ऐसे संबंध स्थापित करेगा जिससे जब उसे भद्दी स्थितियों में काम करना पड़े तो उपद्रवियों के लिए वह बिल्कुल ऐसा अजनबी न हो जिस पर वे शक करें या उन्हें नागवार मालूम पड़े।

5. यह कहने की तो जरूरत ही नहीं कि शांति के लिए काम करने वाले का चरित्र ऐसा होना चाहिए जिस पर कोई अँगुली न उठा सके और वह अपनी निष्पक्षता के लिए मशहूर हो।

6. आमतौर पर दंगों से पहले उसे आने की चेतावनी मिल जाया करती है। अगर ऐसे आसार दिखाई दें तो शांति सेना आग भड़क उठने तक का इन्तजार न कर तभी से परिस्थितियों को सम्हालने का काम शुरू कर देगी जब से कि उसकी संभावना दिखाई दे।

7. अगर यह आंदोलन बढ़े तो कुछ पूरे काम करने वाले कार्यकर्ताओं का इनके लिए रहना अच्छा होगा, लेकिन यह बिल्कुल जरूरी नहीं ऐसा हो ही। ख्याल यह है जितने भी अच्छे स्त्री-पुरुष मिल सकें उतने रखे जाय। लेकिन वे तभी मिल सकते हैं जब कि स्वयं सेवक ऐसे लोगों में मिले जो जीवन के विविध कार्यों में लगे हुए हों। पर उनके पास इतना अवकाश हो कि अपने इलाकों में रहने वाले लोगों के साथ मित्रता के संबंध पैदा कर सकें तथा सब योग्यताओं को रखते हों जो कि शांति सेना के सदस्य में होनी चाहिए।

8. इस सेना के सदस्यों की एक खास पोशाक होनी चाहिये जिससे कालांतर में उन्हें बिना किसी कठिनाइयों के पहचाना जा सके। ये सिर्फ आम सूचनाएं हैं।

इनके आधार पर हरेक केन्द्र अपना विधान बना सकता है।[59] निर्दिष्ट शर्तों के आधार पर यह जाना जा सकता है कि गांधी की शांति सेना की अवधारणा कितनी उन्नत और कार्यकारी थी। विनोबा ने शान्ति-सेना का महत्त्व बताते हुए कहा : 'शांति-सेना के कार्य को मैं केवल राष्ट्रीय नहीं, बल्कि असल में अन्तर्राष्ट्रीय मानता हूँ। विज्ञान के इस युग में यदि हम अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ में नहीं सोचेंगे तो हमारा निर्णय सही दिशा में हो ही नहीं सकता।'[60] इससे बहुत स्पष्ट है कि शांति-सेना का क्षेत्र कितना व्यापक था और आज वह साकार भी हो चुका है।

शांति-सेना की संक्षिप्त मीमांसा से यह स्पष्ट हो जाता है कि गांधी हिंसात्मक प्रवृत्तियों पर

अहिंसात्मक नियंत्रण पाने के लिए कटिबद्ध थे। शांति-सेना की उनकी कल्पना एक मात्र अहिंसक प्रक्रिया पर टिकी थी। इसका सेतु बने अहिंसा और शांति की आस्था से परिपूर्ण शांति-सैनिक। अतः शांति सैनिक और शांति सेना में अद्वैत भाव का निदर्शन है।

अहिंसा सार्वभौम

अहिंसा का संगठनात्मक स्वरूप विकसित हो यह युग की अपेक्षा है। आज अहिंसा का प्रश्न एक नए संदर्भ में उपस्थित हो रहा है, वह संदर्भ 'अणु-अस्त्र' का है। आणविक अस्त्रों की विभीषिका ने अहिंसा को फिर से तेजस्वी बनने की चुनौती दी है। धार्मिक दृष्टि से अहिंसा पर मंथन प्राचीन काल से चलता आ रहा है। एक समय था जब अहिंसा का मूल्य केवल धार्मिक था, किन्तु आज उसका सामाजिक मूल्य भी है। संपूर्ण मानव जाति की समाप्ति का स्वर सुन हर आदमी काँप उठता है। मानवजाति का अस्तित्व खतरे से खेल रहा है। इस स्थिति में यह अत्यावश्यक हो गया है कि अहिंसा को नये संदर्भ में देखा और समझा जाए। हिंसा की भयानकता को नियंत्रित करने की दिशा में ठोस कदम उठाया जाये। इसकी क्रियान्विति में राष्ट्र संत तुलसी द्वारा निर्दिष्ट अहिंसा के अनुसंधान, प्रशिक्षण और प्रयोग का प्रारूप 'अहिंसा सार्वभौम' के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

अहिंसा सार्वभौम की पृष्ठभूमि में चिंतन का सघन प्रवाह रहा है। आचार्य महाप्रज्ञ के शब्दों में-अहिंसा की व्याख्या ज्यादा हो रही है। उसमें प्रयोग नहीं हो रहे हैं इसलिए अहिंसा के उपदेश जनता को आकर्षित नहीं कर रहे हैं। हिंसक शास्त्राशस्त्रों का शोध, प्रयोग और प्रशिक्षण के पीछे हजारों-हजारों वैज्ञानिक और प्रशिक्षक लगे हुए हैं। प्रतिदिन लाखों-लाखों पुलिस के जवानों और सैनिक का अभ्यास चलता रहता है। किन्तु अहिंसा के प्रशिक्षण की कहीं कोई व्यवस्था नहीं है और न कहीं उसके प्रति कोई आकर्षण उत्पन्न करने की योजना है। ऐसी स्थिति में अहिंसा के विकास की कोई कल्पना नहीं की जा सकती। अहिंसक समाज की रचना मात्र एक स्वप्न बनी हुई है उसे साकार करने के लिए अहिंसा सार्वभौम एक परिकल्पना है, एक साधन है, एक उपाय है।[61] स्पष्ट रूप से अहिंसा सार्वभौम का संबोध अहिंसा के विकास की संभावनाओं को उजागर करता है।

अणुव्रत के मंच से अहिंसा सार्वभौम का स्वर बुलंद हुआ। प्रश्न उठा अहिंसा का प्रारंभ कहाँ से होगा? समाहित करते हुए महाप्रज्ञ ने कहा-अहिंसा एक सीधी रेखा है। उसका आंरभ बिंदु हमें खोजना है। अहिंसा का आरंभ बिन्दु है व्यक्ति। अहिंसा का आरंभ व्यक्ति से होता है। व्यक्ति-व्यक्ति से, बिन्दु-विन्दु से एक रेखा बनेगी और वह रेखा बढ़ते-बढ़ते महारेखा बन जायेगी। महारेखा सार्वभौम और जागतिक होगी। अहिंसा सार्वभौम और जागतिक हो जाएगी। किन्तु क्या बिन्दु के बिना रेखा निर्माण किया जाना संभव होगा? कभी संभव नहीं है। अणुव्रत आन्दोलन का यह चिंतन रहा-व्यक्ति सुधरेगा तो समाज सुधरेगा, समाज सुधरेगा तो राष्ट्र सुधरेगा, राष्ट्र सुधरेगा तो जगत् सुधरेगा। हमें पहले बिन्दु को पकड़ना होगा। पहले बिन्दु को पकड़े बिना यदि अहिंसा सार्वभौम की बड़ी कल्पना को लेकर चलेंगे तो बहुत सार्थक बात नहीं होगी। अहिंसा सार्वभौम की कल्पना व्यक्ति पुरस्सर मूल इकाई से आरम्भ होकर जागतिक क्षितिज में व्याप्त होती है। अहिंसा सार्वभौम और अणुव्रत के संबंध को स्पष्ट करते हुए महाप्रज्ञ ने कहा—एक समय था अहिंसा के कंधे पर चढ़कर हिंसा जी रही थी और आज हिंसा के कंधे पर चढ़कर अहिंसा जीने का प्रयास कर रही है। सहारा हिंसा दे रही है। इस स्थिति में, अन्य विकल्प के अभाव में समूचे संसार में अहिंसा का स्वर मुखरित

हो रहा है। हम भी अहिंसा के स्वर को धार्मिक और आध्यात्मिक संदर्भ में नहीं खोज रहे हैं किन्तु जागतिक हिंसा के संदर्भ में खोज रहे हैं। आज का जागतिक संदर्भ हिंसा का है। उसके लिए अहिंसा की चर्चा करें और वह भी व्यक्ति के बिन्दु को सामने रखकर अणुव्रत के मंच से।[62]

यथार्थ के धरातल पर हिंसा की बाढ़ को रोकने का विकल्प है अहिंसा। अहिंसा के विकास का साधन है उसका प्रशिक्षण। अहिंसा सार्वभौम माध्यम बनेगा, उसके प्रति आकर्षण उत्पन्न करने का और प्रशिक्षित कार्यकताओं को अहिंसा की रणभूमि में नियोजित करने का।

अहिंसा का प्रशिक्षित कार्यकर्ता मरने की बात सोच सकता है, पर दूसरों को मारने की बात कभी नहीं सोच सकता। यह अभय के विकास की प्रक्रिया सरल नहीं है, सघन प्रयत्न के द्वारा उसे सरल और संभव बनाया जा सकता है। अहिंसा सार्वभौम का लक्ष्य अहिंसा के क्षेत्र में प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं का निर्माण करना है जिससे अहिंसा की शक्ति का साक्षात् अनुभव जन-चेतना को हो सके। अहिंसा तेजस्वी कैसे हो? इस संबंध में महाप्रज्ञ कहते है—'अहिंसा को तेजस्वी बनाने की बात आती है तो मैं सोचता हूँ कि अहिंसा शब्द को ही सामने लाने की बात नहीं रहेगी, उसके पीछे क्या करणीय है, उस पर भी हमारा ध्यान केन्द्रित होना चाहिए। अहिंसा सार्वभौम की परिकल्पना के पीछे यही बात जुड़ी हुई है कि किस प्रकार का मनोभाव विकसित किया जाए कि अहिंसा अपने आप अवतरित हो पूरी तेजस्विता के साथ।'[63] यह अहिंसा की आस्था का स्पष्ट निदर्शन है।

अहिंसा एक सार्वभौम तथ्य है जिसका प्रभाव व्यक्ति से समष्टि पर्यंत होता है। उसका प्रभाव भले ही विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न रूप से परिलक्षित होता है। उदाहरण स्वरूप व्यक्ति के जीवन में करुणा, मैत्री, प्रेम और पवित्रता के तौर पर देखा जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हिंसा और युद्ध की समस्या के समाधानार्थ अहिंसा सार्वभौम की कल्पना की गई है।

अहिंसा समवाय

जगत् जैविक अस्तित्व का पर्याय है। बहुत सूक्ष्म जीव भी सृष्टि की संरचना के अनिवार्य घटक हैं। पर्यावरण के संकट ने अहिंसा को व्यापक आधार दिया है। मनुष्य का अस्तित्व अन्य प्राणियों के अस्तित्व के साथ जुड़ा हुआ है यह बहुत स्पष्ट हो चुका है। अहिंसा केवल पारलौकिक साधना ही नहीं है अपितु इस जीवन की उपयोगिता भी है। लेकिन संकीर्ण सोच एवं नितांत भौतिकवादी दृष्टिकोण के कारण आज पूरी दुनिया अपने अस्तित्व के संकट से जूझ रही है। एक ओर संकीर्ण राष्ट्रवाद ने विनाशक शस्त्रों की स्पर्धा को प्रबल किया है तो दूसरी ओर उन्मुक्त भोगवाद समाज और परिवार की संगठना को क्षति पहुँचा रहा है।

अहिंसा-समवाय का श्रीगणेश

परिस्थिति विशेष में अनुशास्ता आचार्य श्री महाप्रज्ञ के मन में एक विचार उभरा कि अहिंसा की शक्तियों का एक समवाय बनाया जाये। जो व्यक्ति और संगठन, अहिंसा-विश्वशांति तथा पर्यावरण संरक्षण के लिए अपना जो कार्यक्रम चला रहे है वह यथावत् चलता रहे, पर अहिंसा समवाय के अंतर्गत सभी मिल बैठकर विचार करें तथा जो सामूहिक निर्णय हो उस पर सार्थक रूप से साझा प्रयत्न किया जाये ताकि खंड-खंड में होने वाले कार्य को समग्रता मिल सके। वैचारिक धरातल पर अहिंसा की समस्त शक्तियां एक मंच पर इकट्ठी होकर विश्व शांति के लिए चिंतन करें, मंथन करें।

इसी दृष्टिकोण में विश्व के महान् दार्शनिक आचार्य महाप्रज्ञ ने अणुव्रत के मंच से इस कार्य का शुभारम्भ 5 अप्रेल 1999 को नई दिल्ली में किया। इस अवसर पर देश एवं विदेश में फैले अहिंसात्मक संगठनों के प्रतिनिधियों ने एक जाजम पर इकट्ठे होकर सम्पूर्ण शक्ति के साथ कार्य करने की योजना बनाई। इस योजना की क्रियान्विति के लिए अहिंसात्मक शक्तियों के इस मंच को नाम दिया गया 'अहिंसा समवाय।'[64] विश्व शांति के प्रयासों में अहिंसा समवाय को एक सार्थक पहल माना जा सकता है। इसके द्वारा आचार्य महाप्रज्ञ ने समाज में अहिंसा की अलख जगाने का आह्वान किया है।

अहिंसा-समवाय अहिंसा के क्षेत्र में कार्य करने वाली शक्तियों का एक समवेत मंच है। आचार्य महाप्रज्ञ ने अहिंसा समवाय की संयोजना के साथ इस बात पर बल दिया कि असल में जब तक अहिंसा की शक्तियां संगठित नहीं होगी तब तक अहिंसा को तेजस्वी बनाना कठिन है। विभिन्न धार्मिक-नैतिक संगठन अहिंसा समवाय में विशेष सक्रिय बने यह समय की पुकार है।

उद्देश्य

अहिंसा समवाय के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा कि अहिंसा के लिए पसीना बहाया जायेगा तो हिंसा रूकेगी और मनुष्य का खून नहीं बहेगा। अगर हम बचपन से ही बच्चों को अच्छे संस्कार देते हैं, तो बच्चे भविष्य में अच्छे नागरिक बनते हैं। उनमें अहिंसा की वृत्ति का भी विकास होता है। इसके लिए अहिंसा का प्रशिक्षण जरूरी है तथा जीवन विज्ञान को स्कूली पाठ्यक्रमों का अंग बनाया जाना चाहिए। अहिंसा समवाय मंच भी इन्हीं उद्देश्यों पर केन्द्रित है।[65] मंतव्य के संदर्भ में यह बहुत स्पष्ट हो जाता है कि अहिंसा एवं शांति का मौलिक विकास ही इसका केन्द्र बिन्दु रहा है।

'अहिंसा समवाय' का उद्देश्य है अहिंसा में विश्वास करने वाले सारे संगठन एकजुट होकर एक मंच पर आएं और सामूहिक प्रयास के द्वारा अहिंसा की आवाज और अभियान को प्रभावी बनाए। सभी संस्थाओं का एक मंच से कार्यक्रम चलेगा तो वह एक आंदोलन का स्वरूप ग्रहण करेगा और शांति की दिशा में सार्थक होगा। इसके मुख्य लक्ष्य हैं—1. मानव-मानव के बीच, मानव एवं समाज के बीच और मानव एवं विश्व के बीच शोषण विहीन आत्मीय संबंध स्थापित करना। 2. समाज के संचालन में किसी बाहरी शासन की आवश्यकता न रखकर व्यक्ति तथा व्यवस्थाओं में आत्मानुशासन स्थापित करना।

अहिंसा शक्तिशाली बनकर व्यक्ति-व्यक्ति के हृदय में प्रतिष्ठित हो, यही इसका ध्येय है। सुख और शांति के लिए अहिंसा का पथ श्रेयस्कर है।

पृष्ठभूमि

अहिंसा की बात दुनिया के अंचल तक पहुंचे, इसके लिए महाप्रज्ञ ने अहिंसा-समवाय की परिकल्पना की। इसकी पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते हुए महाप्रज्ञ ने बताया—महात्मा गांधी, आचार्य विनोबा भावे और गुरुदेव तुलसी ने भारत के भविष्य की कल्पना शांति और अहिंसा के अग्रदूत के रूप में की थी। उसके लिए हमें एक शक्तिशाली आवाज बनानी है। आज अहिंसा पर खण्ड खण्ड में अनेक जगह कार्य हो रहा है, पर बिखरा हुआ होने के कारण उसका परिणाम सामने नहीं आ रहा है। अहिंसा समवाय अपने मन्त्र को पूरा करने में तभी सफल हो पायेगा जब इसके सदस्य वृत्तियों के परिष्कार के प्रति दृढ़ संकल्पित हों।[66] शास्ता की यह सोच जन मानस को अहिंसा की ओर गतिशील करती है।

सदस्य अर्हता

महत्त्वपूर्ण तथ्य है अहिंसा में विश्वास रखने वालों में आंतरिक शुद्धता का विकास हो। जिस व्यक्ति के हृदय और मस्तिष्क में तनाव, उलझनें, द्वेष, भेद-भाव भरे हों वह अहिंसा का पूर्णरूपेण पालन नहीं कर सकता। कथनी करनी में एकता आवश्यक है। अहिंसा समवाय के संदेशवाहक को अपने जीवन को ही संदेश बनाना पड़ेगा वरणा उसकी बात का समाज पर प्रभाव नहीं पड़ेगा। अर्थात् प्रशिक्षक ऐसे हों जो मनसा-वाचा-कर्मणा अहिंसा में विश्वास रखते हों। अहिंसा के संबंध में जिन्हें अच्छी जानकारी हो। वह यह जानता हों कि अहिंसा का प्रयोग कैसे किया जाए। अहिंसा के क्षेत्र में काम करने वाले के लिए समवाय द्वारा एक संकल्प पत्र जारी हुआ है। वे संकल्प हैं–

1. मैं अपने जीवन में हिंसा के अल्पीकरण का प्रयास करूँगा।
2. दूसरों की आस्था एवं विचारों के प्रति सहिष्णु रहूँगा।
3. किसी भी विवाद को शांति एवं सद्भावना से सुझलाने का प्रयास करूँगा।
4. अन्याय, अज्ञान, शोषण, गरीबी, बेकारी जैसी मूलभूत समस्याओं के समाधान का प्रयत्न करूँगा।
5. श्रम, स्वावलंबन, संयम, संविभाग तथा संवेग-नियंत्रण की साधना करूँगा।
6. प्रतिदिन आत्मनिरीक्षण करूँगा।[67]

संकल्प की भाषा से अहिंसा समवाय के महान् लक्ष्य को आंका जा सकता है। इसकी कार्य योजना एकमात्र व्यक्ति, परिवार, समाज एवं राष्ट्र की शांति के लिए बनाई गयी है।

समवाय का कार्य क्षेत्र

समवाय के कार्यक्षेत्र का स्पष्टीकरण करते हुए महाप्रज्ञ ने कहा–'अहिंसा समवाय के सामने विश्व और समाज की समस्याओं को समझने तथा उन्हें सुझलाने का भी सवाल है। इसलिए यह आवश्यक है कि अहिंसा, शांति और नैतिकता में विश्वास करने वाले लोग परस्पर मिलें। परस्पर विचारों से परिचित हों। स्वस्थ समाधान प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि विरोधी विचार को भी सुना जाये। इसके लिए मुख्य बिन्दु हैं–1. सह आसन, 2. सह चिंतन 3. सहमति और 4. सहक्रियान्वयन।[68] ये चार बातें होंगी तभी अहिंसा के बारे में सही सोच पैदा होगी तथा अहिंसा का तेजस्वी स्वरूप सामने आयेगा।

अहिंसा के सामाजिक मूल्य स्थापन हेतु अहिंसा समवाय राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रयोग कर रहा है। हर स्तर पर समविचारी संस्थाओं तथा सद्विचारक व्यक्तियों का सहयोग लेकर अहिंसा समवाय लक्ष्य प्राप्ति की ओर गतिशील है। समवाय के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अहिंसा प्रशिक्षण का कार्य युद्ध स्तर पर जारी है। जब अहिंसा प्रशिक्षकों की एक टीम बनकर तैयार हो जाएगी, तभी इस समवाय की बात जन सामान्य के हृदय में प्रतिष्ठित की जा सकती हैं।

समवाय के बढ़ते चरण

अहिंसा समवाय मंच की गतिशीलता का सबूत है समय-समय पर आयोजित होने वाले अहिंसा समवाय के सम्मेलन। इस उपक्रम के जरिये सम-सामयिक समस्याओं का अहिंसा के आलोक में चिंतन मनन किया जाता है। उदाहरण के तौर पर हम जान सकते है किसी एक सम्मेलन की गति-प्रगति के संदर्भ

में। त्रिदिवसीय 'राष्ट्रीय अहिंसा समवाय सम्मेलन' का आयोजन 1-3 मार्च 2003 मुंबई-कांदिवली में हुआ। राष्ट्र के प्रमुख लोगों ने इसमें उपस्थिति दर्ज की।

सम्मेलन ने बढ़ती हुई हिंसा और आतंकवाद तथा मंडराते हुए विश्वयुद्ध के इस दौर में अहिंसा समवाय की अनिवार्यता, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यक स्तर पर अहिंसा के लिए रचनात्मक कार्यक्रम, अहिंसा जन जागरण में स्वतंत्रता सेनानियों एवं नागरिकों की भूमिका, मानवाधिकार, जीवदया, पर्यावरण, वन्यजीवन की सुरक्षा में अहिंसा, सेवा संगठनों की अहिंसा आन्दोलन में भूमिका जैसे ज्वलंत विषयों पर गहन विचार-विमर्श किया।

प्रबुद्ध वक्ताओं ने हिंसा के इस दौर में अहिंसा समवाय की अनिवार्यता पर जोर दिया। सम्मेलन ने सर्व सम्मति से स्वीकार किया कि केवल अहिंसा और सह अस्तित्व के सिद्धांतों पर व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्रों की चेतना का रूपांतरण करके विश्व को मानवजनित विध्वंस तथा सर्वनाश से बचाया जा सकता है। विभिन्न धार्मिक एवं स्वयंसेवी संगठनों के प्रतिनिधियों ने अहिंसा समवाय आंदोलन को गति देने के लिए सम्मेलन को महत्त्वपूर्ण बताया।[69]

सम्मेलन ने इराक से भी आग्रह किया कि वह मन, वचन तथा कर्म से संयुक्त राष्ट्र के साथ सहयोग करे। सम्मेलन के मौलिक विस्तृत विचार-विमर्श को घोषणा पत्र के रूप में संक्षिप्तशैली में निम्न बिंदुओं में जाना जा सकता है-

- अहिंसात्मक कार्यशैली का व्यापक प्रचार हो परिणामतः गरीबी, शोषण, असमानता और बेरोजगारी पैदा ही न हो।
- भारत ही एक मात्र ऐसा देश है जहां विश्व के सभी धर्म सह-अस्तित्व के आधार पर विकसित हुए है। अहिंसक समाज में ही यह संभव है।
- अहिंसा अनवार्यता के प्रचार-प्रसार के लिए प्रत्येक स्थान पर अहिंसा यात्राओं, चिंतन तथा विचार गोष्ठियों का आयोजन किया जाए।
- चेतना के रूपान्तरण हेतु अहिंसा प्रशिक्षण जरूरी है।
- अहिंसा समवाय आंदोलन के लिए समानांतर (काउंटर) मीडिया की स्थापना की आवश्यकता पर बल के साथ अहिंसा विषयक साहित्य भारत की सभी भाषाओं में प्रकाशित तथा प्रचारित हो।
- प्रदूषण के कारणों को रोका जाये।
- राष्ट्रीय स्तर पर अहिंसा अनुसंधान केन्द्र की स्थापना की जाए।
- अहिंसा समवाय को आज एक नए राष्ट्रीय आंदोलन के समान मानता है, अहिंसा के प्रति निष्ठा तथा अटूट विश्वास को दोहराता है।
- संयुक्त राष्ट्र संघ तथा विश्व की सभी संस्थाओं, सभी सरकारों, शांति के लिए प्रयासरत सभी गैर सरकारी संगठनों तथा व्यक्तियों से अनुरोध है कि विश्वशांति की आचार संहिता हेतु त्वरित कदम उठायें।[70]

इस नव सूत्री घोषणा पत्र के संदर्भ में सम्मेलन की महत्वपूर्ण निष्पत्तियों का आकलन किया जा सकता है।

दिल्ली, धुले, राजसमंद आदि अनेक क्षेत्रों में अहिंसा समवाय के सम्मेलन हुए। अहिंसा समवाय की गतिविधियों को सक्रियता प्रदान करते हुए जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय द्वारा मदुरै, दिल्ली,

राजसमंद, लाडनूँ एवं त्रिवेन्द्रम् में अहिंसा समवाय के पांच केन्द्र भी प्रतिष्ठित किये गए। संबंधित जिज्ञासाओं का समाधान अधिकृत संस्थान से प्राप्त किया जा सकता है।

अहिंसा समवाय के सैद्धांतिक-प्रायोगिक पक्ष को मौलिकता प्रदान करते हुए जैन विश्वभारती संस्थान तथा गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति के संयुक्त तत्त्वावधान में अहिंसा का एक पाठ्यक्रम निर्धारित हुआ है। दिल्ली तथा लाडनूं में इस पाठ्यक्रम पर त्रैमासिक, मासिक, पाक्षिक तथा अन्य प्रशिक्षण शिविर भी शुरू हो चुके हैं। 2 अक्टूम्बर, 2001 से पत्राचार के माध्यम से अहिंसा प्रशिक्षण पाठ्यक्रम का शुभारम्भ इसके प्रचार-प्रसार की नई दिशाओं को उद्घाटित करने वाला साबित हुआ है।

जय जगत फाउण्डेशन, आदिमजाति सेवक संघ, अणुव्रत महासमिति, अणुव्रत शिक्षक संसद आदि संस्थाओं के माध्यम से पूरे देश में न केवल अहिंसा प्रशिक्षण शिविर आयोजित किये जा रहे हैं, अपितु आंतकवाद से प्रभावित क्षेत्रों में भी अहिंसा के संदेश को पहुंचाने का कार्य हो रहा है। देश के विभिन्न उपद्रव एवं आतंकग्रस्त क्षेत्रों-आसाम, अरुणाचल, नागालैण्ड, उत्तराखंड, पंजाब, मध्यप्रदेश, बिहार, उत्तरप्रदेश, गुजरात, आंध्रप्रदेश, राजस्थान आदि में अहिंसा समवाय के प्रभावी कार्यक्रम साम्प्रदायिक तनाव एवं अशांत वातावरण को शांति में तब्दील करने में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। अहिंसा में निष्ठा रखने वाले व्यक्तियों और संस्थाओं का यह सर्वमान्य मंच है। सर्वोदय जैसी कई संस्थाएं आज अहिंसा समवाय के साथ जुड़कर काम कर रही हैं।

प्रबुद्ध चिंतन में

प्रस्तुत मंच की महत्त्वपूर्ण गतिविधियों ने प्रबुद्ध वर्ग को प्रभावित किया है। इसका सबूत है अनेक चिंतनशील व्यक्तियों के अहिंसा समवाय के प्रति निकले भावप्रधान लब्ज। अहिंसा समवाय सम्मेलन के विशिष्ट अतिथि उ.प्र. के राज्यपाल महामहिम विष्णुकांत शास्त्री ने कहा था-'ऋषियों को अपने यज्ञ की रक्षा के लिए धनुर्धर भगवान राम की जरूरत पड़ी थी। दुनिया में भले कितने परमाणु बम बने लेकिन शांति के लिए अहिंसा ही सबसे बड़ा शस्त्र है। अपनी अहिंसक परंपरा के साथ ही हमें अपनी स्वाधीनता की रक्षा करने के लिए संकल्प लेकर अहिंसा की प्रवृति को बढ़ावा देना चाहिए।'

समारोह में सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश ए.एम अहमदी ने कहा 'वैश्वीकरण के इस दौर में भले सुख-सुविधाएं बढ़ी हैं, लेकिन अहिंसा जैसे मूलभूत मानवीय गुणों का क्षय होना चिंताजनक है। जिस कारगर शस्त्र से राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने हमें आजादी दिलायी, वह शस्त्र अभी भी प्रासंगिक है।' अहिंसा समवाय की प्रासंगिकता को उजागर करने वाले महानुभावों के विचार महत्वपूर्ण है।

अहिंसा-समवाय मंच की ओर से यह स्वर भी बुलंद किया गया-विश्व शांति के लिए अहिंसा के अलावा और कोई दूसरा रास्ता नहीं है। सारी दुनिया तुम्हारे लिए नहीं है बल्कि तुम सारी दुनिया के लिए हो। इसलिए सभी अहिंसक संगठनों को एक मंच पर आकर अपने-अपने स्तर से जन समुदाय को प्रेरित करना आवश्यक है। हमें अपनी संस्कृति और सभ्यता को अपनाने में गौरव करना चाहिए पर दूसरे के मत का अनादर नहीं करना चाहिए।[7]

विमर्शतः हिंसा के जहर को अहिंसामृत में बदलने की अभिप्सा से 'अहिंसा समवाय' संगठन विश्व मानवता के लिए 21 वीं सदी का अनमोल उपहार है। यह एक ऐसा सार्वजनिक मंच है जिसका राही अहिंसा-भाईचारे की आस्थावाला कोई भी व्यक्ति बन सकता है। इसका मुख्य घोष है—'अहिंसा में विश्वास रखने वालों साथ मिलकर विचार करो।' सहविचार बहुत बड़ी शक्ति है समस्या के समाधान की।

अहिंसा की तकनीक : अहिंसा प्रशिक्षण

बढ़ती हुई हिंसा दर्शन का आधार पा चुकी है। पूरा विश्व इसकी चपेट में है। धन-वैभव, सत्ता हथियाने का हिंसा प्रमुख साधन बन गयी है। हिंसा की शक्ति ने अहिंसा के लिए चुनौति खड़ी की है। मानवीय मूल्यों का गिरता ग्राफ अहिंसक शक्तियों के समक्ष यक्ष प्रश्न है। विश्व-शांति के लिए बड़ी बाधा भी है। समाधान की भाषा में अनेक चिंतकों ने अपने-अपने विचार प्रकट किये। इस कड़ी में गांधी और महाप्रज्ञ ने हिंसा के नियंत्रण एवं विश्वशांति की पृष्ठभूमि में जो अहिंसा के प्रशिक्षण की बात कही वो सर्वाधिक वजनदार प्रतीत होती है। दोनों मनीषियों ने बल दिया कि अहिंसा का प्रयोग और प्रशिक्षण व्यापक स्तर पर किया जाये ताकि हिंसा की समस्या का स्थायी समाधान हो सके।

आज समाज-वैज्ञानिकों ने यह स्वीकार किया है कि विश्व की समस्याओं का निदान हिंसा में नहीं बल्कि अहिंसा में है। जिस प्रकार अहिंसा पालन के लिए अन्य कई शर्तें अनिवार्य हैं उसी प्रकार अहिंसक तरीके से समाज की समस्याओं के निदान हेतु अहिंसा का प्रशिक्षण अनिवार्य है। हिंसा के द्वारा समस्याओं के समाधान के लिए भी जब प्रशिक्षण की आवश्यकता है तो अहिंसा जैसे उदात्त मूल्य को प्रशिक्षण के बिना कैसे कारगर सिद्ध किया जा सकता है, इसलिए अहिंसा के समर्थकों और इसमें विश्वास करने वालों के सामने आज मुख्य समस्या अहिंसक चेतना के जागरण की है।

पृष्ठभूमि

एक सामाजिक प्राणी पूर्णतः हिंसा से बच नहीं सकता, परन्तु जितनी अनावश्यक हिंसा हो रही है, उतनी संभवतः पहले कभी नहीं हुई। इस हिंसा को केवल सिद्धांत के आधार पर नहीं रोका जा सकता। उसे रोकने के लिए आवश्यक है-अहिंसा का प्रयोग और प्रशिक्षण। हिंसा की चेतना का रूपान्तरण किया जा सकता है। इसी आस्था ने अहिंसा-प्रशिक्षण को सकारात्मक स्वरूप प्रदान किया है।

समाज की हिंसक परिस्थितियों से जुझने के लिए गांधी ने सत्याग्रहियों और शांति सैनिकों की कतार खड़ी की। उनका कहना था कि अहिंसा की दिशा में ऊँचाई पर पहुँचने के लिए प्रशिक्षण बहुत आवश्यक है। 'इतनी बात सच है कि अहिंसा का प्रशिक्षण लेना पड़ता है और उसे बढ़ाना पड़ता है। उसकी गति ऊपर होती है, इसलिए उसकी ऊँची से ऊँची चोटी तक पहुँचने में कठोर श्रम करना पड़ता है।'[72] गांधी की दृष्टि में अहिंसा का प्रशिक्षण हिंसा के प्रशिक्षण से भिन्न है। भिन्नता से उनका स्पष्ट आशय था कि हिंसा के प्रशिक्षण में मारने की कला सिखाई जाती है परन्तु इसके विपरीत अहिंसा की तालीम में मरने की कला सिखाई जाती है।.....हिंसा के प्रशिक्षण में अस्त्र-

शस्त्रों के प्रयोग की विधियाँ बतलाई जाती हैं, परन्तु अहिंसा के प्रशिक्षण में सर्वप्रथम शस्त्र का परित्याग बतलाया जाता है।[73] अहिंसा प्रशिक्षण संबंधी गांधी के विचारों को आचार्य महाप्रज्ञ ने वर्तमान के संदर्भ में गतिशीलता प्रदान की है। इसकी स्पष्ट झलक—हमने महात्मा गांधी के अहिंसात्मक प्रतिकार के सूत्र को प्रयोग में लाने का प्रयत्न किया है। सामान्यतः आदमी प्रतिशोध लेता है। प्रतिशोध की भावना होती है और प्रतिशोध की भावना प्रतिक्रियात्मक हिंसा को जन्म देती है। अगर प्रतिशोध के स्थान पर प्रतिकार भावना का विकास किया जाता तो हिंसा को बढ़ने का मौका कम मिलता। किन्तु प्रशिक्षण के अभाव में लोग उसका महत्त्व समझ नहीं पा रहे हैं, उसका मूल्यांकन नहीं कर पा रहे हैं।

विशेष रूप से गांधी द्वारा पवित्र किये हुए स्थल और कक्ष में (असलाली 'गुजरात' 25 नवम्बर, 2002 को) महाप्रज्ञ ने चाह प्रकट की कि इतिहास की पुनरावृत्ति हो, अहिंसात्मक प्रतिकार को आगे बढ़ाया जाये तथा गांधी द्वारा निर्दिष्ट सूत्रों के पुनरूज्जीवन की चेतना जागे। उस कार्य को आगे बढ़ाये तो मेरा विश्वास है कि बढ़ती हुई हिंसा पर अंकुश लगाया जा सकेगा और अहिंसक वातावरण के निर्माण में समाज को अहिंसोन्मुखी बनाने में हम सक्षम हो सकेगें। विचारों के आलोक में अहिंसा प्रशिक्षण की पृष्ठभूमि को खोजा जा सकता है। यद्यपि महाप्रज्ञ इस कथन से बहुत पहले ही अहिंसा-प्रशिक्षण की अनिवार्यता को आंक कर प्रयोग भूमि पर प्रतिष्ठित कर चुके हैं।

अहिंसा प्रशिक्षण की प्रविधि एजाद कर आचार्य महाप्रज्ञ ने साम्यवाद के प्रवर्तक मार्क्स की अंतर अभिप्सा को आकार दे दिया। आर्थिक व्यवस्था के साथ हृदय-परिवर्तन अथवा आध्यात्म को न जोड़ने की कसक उनके जीवन के अंतिम क्षणों तक बनी रही। मार्क्स ने जीवन के संध्या काल में लिखा—'मैं और एंगल्स-हम इस सच्चाई का अनुभव करते हैं कि अगर हम आर्थिक व्यवस्था के परिवर्तन के साथ हृदय-परिवर्तन या अध्यात्म को जोड़ते तो हमारा रास्ता बहुत अच्छा होता किन्तु यह सूत्र हमें जीवन के अंतिम समय में मिला। हम कुछ कर नहीं सके, हमारा काम अधूरा रह गया।' निश्चित रूप से हृदय परिवर्तन और आजीविका अर्जन की समवेत प्रस्तुति अध्यात्म के मंच से अहिंसा प्रशिक्षण के रूप में एक नई क्रांति है।

यथार्थ का आकलन

आज हिंसा का होना आश्चर्य नहीं है। वर्तमान संचार माध्यम जिस प्रकार के हिंसात्मक दृश्य दिखा रहे हैं, उससे हिंसा के भावों को उद्दीपन मिल रहा है, हिंसा के प्रशिक्षण की पूरी व्यवस्था है। इस स्थिति में हिंसा न हो तो आश्चर्य की बात है। वैसे देखें तो हिंसा की वृत्ति हर आदमी में विद्यमान है। महाप्रज्ञ का यह आकलन था अगर मैं कहूँ कि मुझ में हिंसा की वृत्ति नहीं है तो यह असत्य बात होगी। जब तक कोई वीतराग नहीं बन जाता, हिंसा की वृत्ति किसी न किसी अंश में उसमें जरूर रहेगी। एक होता है हिंसा की वृत्ति को उद्दीपन देना, उसे उभारना और एक होता है, उसे शांत करना। हिंसा की वृत्ति पर अंकुश लगाया जा सकता है, उसे शांत रखा जा सकता है। उसका सबसे बड़ा माध्यम है अहिंसा का प्रशिक्षण।[74]

आतंकवाद हिंसा के नये-नये रूप एजाद कर रहा है। पूरी दुनिया पर इसकी पकड़ बढ़ रही है, ऐसे में अहिंसा की डगर पर सबकी निगाहें टिकती है। 'आतंकवाद देश के सामने बड़ी चुनौती' विषय पर आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा-आतंकवाद आज हौवा बन गया है। हमें इस सच्चाई को समझना

होगा कि आखिर आतंकवाद ने अपने पैर क्यों पसारे। शक्तिहीनता और संवेदनहीनता ही आतंकवाद को जन्म देती है। इसलिए अपनी शक्ति को बढ़ाकर ही आतंकवाद से लड़ा जा सकता है। इसके अलावा समाज में जागरूकता लाकर और बेरोजगारी दूर करने के प्रयास से आतंकवाद काबू में आ सकता है।

आतंकवाद की सफाई में अहिंसा की भी महती भूमिका है। वही आतंकवाद से लड़ने का ब्रह्मास्त्र है। आतंकवाद एक व्यवसाय बन चुका है।.....वाणी का असंयम भी आतंकवाद को बढ़ावा देता है। वाणी का संयम बढ़े तो समस्या का समाधान हो सकता है। समस्याओं पर गंभीर चिंतन भी जरूरी है।[75] 'हिंसा, उग्रवाद और आतंकवाद से निपटने के लिए अहिंसा प्रशिक्षण एक शक्तिशाली माध्यम है। इस विषय पर सामूहिक चिंतन किया जाए संभवतः हिंसा की बाढ़ को रोकने में सफलता मिलेगी।'

अहिंसा का विकास श्रमसाध्य कार्य है। उसके लिए प्रशिक्षण की कोई व्यवस्था नहीं है। यदि अहिंसा के प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था हो तो अहिंसा के विकास की संभावना की जा सकती है। हिंसा की समस्या का स्थायी समाधान हो सकता है। इस मंतव्य के साथ ही महाप्रज्ञ इस सच्चाई की ओर इंगित करते हैं कि अहिंसा में विश्वास करने वाले जितने संस्थान हैं, क्या उनमें कहीं वैज्ञानिक प्रणाली से अहिंसा का शोध हो रहा है? प्रयोग हो रहा है? क्या कहीं हृदय-परिवर्तन का प्रयोग किया जा रहा है? यह तो सुनने को मिलेगा कि साम्यवादी देशों में ब्रेन-वाशिंग का प्रयोग चल रहा है, प्रशिक्षण चल रहा है। किन्तु कहीं भी अहिंसा का प्रशिक्षण दिया जा रहा हो ऐसा सुनने में नहीं आता। एक ओर तो शक्तिशाली अस्त्रों का प्रयोग ओर एक और केवल भाषण। दोनों में सामंजस्य कहाँ है? आज प्रत्येक अहिंसावादी के सामने यह चिंतन का प्रश्न है। जब तक इस पर गंभीरता से चिंतन नहीं किया जाएगा, अहिंसा की दुहाई देने वाला व्यक्ति स्वयं हास्यास्पद बनता चला जाएगा।[76] इस मंथन के साथ अहिंसक क्रांति के सूत्रधार ने इस बात को स्पष्ट शब्दों में कहा-अहिंसा की उपयोगिता पर शोध हो, व्यक्तिगत सामाजिक व राष्ट्रीय संदर्भ में गहन चिंतन हो अहिंसा प्रशिक्षण की पद्धतियाँ निर्धारित की जायें तभी वांछित परिणाम संभव है। अहिंसा यात्रा के प्रणेता ने यह भी बतलाया कि धर्म को मात्र ग्रंथों का विषय बना देने से दुःख बढ़ता है। धर्म तो जीवन के क्रम में आना चाहिए। आज जरूरी है अहिंसा की चेतना मनुष्य के मन में अंकुरित हो। इसके लिए हर वर्ग के लिए अहिंसा प्रशिक्षण की आवश्यकता है। अहिंसा को निरवीर्य देखकर महाप्रज्ञ की चेतना झंकृत हो उठती और सुर निनादित होता-आज अहिंसा को एक कौटिल्य की जरूरत है—ताकि अहिंसा की मजबूत व्यूह रचना का निर्माण हो सके। जिसका आधार स्तूप अहिंसा प्रशिक्षण बन सकता है। प्रशिक्षण के अभाव में अहिंसा मात्र एक शाब्दिक व्यापार बनकर रह जायेगी। प्रशिक्षण व चेतना रूपांतरण के बिना अहिंसा कभी हृदयग्राही नहीं हो सकती। वे बल पूर्वक कहते—

- अहिंसा की व्यूह रचना मजबूत हो।
- अहिंसा का नेटवर्क बने।
- अहिंसा का प्रशिक्षण व्यापक बने।

इनके आधार पर अहिंसा को काफी व्यापक बनाया जा सकता है।[77]

हिंसा के कारणों पर प्रकाश डालते हुए महाप्रज्ञ ने बताया एक बड़ा और आंतरिक कारण पाते हैं, वह है-आवेश। क्रोध, लोभ, मोह का आवेश-ये अंतरंग कारण हैं। बाहर का कारण है-उपभोगवादी

मनोवृति। ये दो हिंसा के बड़े कारण हैं। रोटी का अभाव भी हिंसा का एक बहुत बड़ा कारण है। भूखा आदमी कुछ भी कर सकता है। बाहरी कारणों में बेरोजगारी और असंतुलन की समस्या भी कम नहीं है। अहिंसा और शांति की बात बहुत प्रभावी नहीं बन रही है इस संदर्भ में समस्त समस्याओं का आकलन कर महाप्रज्ञ ने कुछ पंक्तियाँ लिखी–

शांति का संदेश, देखने का कोण बदले।
सोचने का कोण बदले, शांत हो आवेश।।

- हिंसा का कारण है रोटी, और गरीबी उसकी चोटी।
  पर भूखा हिंसा करता जब, शांत नहीं आवेश।।
- जटिल परिस्थिति जब-जब आती, तब-तब हिंसा भी बढ़ जाती।
  स्थिति कैसे बदलेगी जब तक, शांत नहीं आवेश।।
- कभी क्रोध से, कभी लोभ से, कभी घृणा से, कभी क्षोभ से।
  आवेशित नर हिंसक बनता, शांत नहीं आवेश।।
- हिंसा से विक्षित मानव है, शस्त्र प्रशिक्षण का तांडव है।
  कैसे हो मस्तिष्क धुलाई, शांत नहीं आवेश।।
- नहीं प्रशिक्षण और न शिक्षण, है कोरा उपदेश विचक्षण।
  कैसे हो जन-मान्य अहिंसा, शांत नहीं आवेश।।
- नहीं समस्या को सुलझाएं, फिर अहिंसा के गुण गाएँ।
  प्रासंगिकता कैसे होगी, शांत नहीं आवेश।।
- महावीर का रूप अहिंसा, दिव्य शांति का स्तूप अहिंसा।
  'महाप्रज्ञ' का जन-जन सुन पाएँ, शाश्वत का निर्देश।।[78]

अहिंसा की प्रतिष्ठा के लिए आवश्यक है-करुणा की चेतना का विकास। करुणा होगी तो हिंसा परास्त होगी, समस्या का समाधान होगा। कोई भी लड़ाई और युद्ध लम्बे नहीं चलते। आखिर शांतिवार्ता और समझौते पर आना ही पड़ता है। शांति हमारी संस्कृति है, शस्त्र हमारी विवशता है। अहिंसा हमारे आगे रहे और हिंसा पीछे रहे। विकास के लिए शांति और शांति के लिए अहिंसा आवश्यक है। हिंसा के कारणों को मिटा कर तथा करुणा का विकास कर हम अहिंसा की स्थापना कर सकते हैं। शांति स्थापन में अहिंसा प्रशिक्षण की अहम भूमिका को स्वीकारते हुए वे सामाजिक विकास के लिए भी इसे महत्त्वपूर्ण बतलाते हैं। उनकी दृष्टि में अहिंसा प्रशिक्षण के बिना नैतिक मूल्यों का विकास नहीं हो सकता। आज सरकार सामाजिक विकास के लिए कई तरह से कार्य कर रही है, किन्तु नैतिक मूल्यों के उत्थान की दिशा में कोई प्रगति नहीं हो पा रही है। हिंसा, शोषण, अत्याचार, भ्रष्टाचार पर कोई अंकुश नहीं लग पा रहा है। जरूरत है भावनात्मक परिवर्तन की और उसके लिए प्रशिक्षण बहुत जरूरी है।[79] इसमें यथार्थ का निदर्शन है जो अहिंसा प्रशिक्षण की अनिवार्यता को प्रकट करता है।

क्या कभी सोचा गया कि जैसे सशस्त्र पुलिस और सेना की जमात खड़ी की जा रही है वैसे ही अहिंसक सैनिकों की जमात खड़ी करने की जरूरत है। जैसे प्रतिदिन हजारों-हजारों लोगों को शस्त्राभ्यास कराया जाता है, मारने की ट्रेनिंग दी जाती है वैसे ही क्या न मारने की ट्रेनिंग देना आवश्यक नहीं है। यह बहुत आवश्यक लगता है कि हिंसा की भाँति अहिंसा का प्रशिक्षण भी अत्यन्त अनिवार्य

हो। अगर हिंसा के क्षेत्र में 10-20 लाख सैनिक काम करते हैं तो अहिंसा के क्षेत्र में 10-20 हजार सैनिक भी बनें तो एक नया चमत्कार हो सकता है।[80] महाप्रज्ञ ने मंथन पूर्वक अहिंसा प्रशिक्षण प्रविधि का सूत्रपात किया। इसका आधार बना-सबके संस्कार समान नहीं हैं किन्तु इससे जुड़ा सच यह भी है-बहुत लोगों में अहिंसा के संस्कार को जागृत किया जा सकता है। परिणाम स्वरूप अहिंसा की अमीय धारा प्रवाह में प्रतिष्ठित होगी। पर यह प्रशिक्षण द्वारा ही संभव बन सकता है। जब तक मानवीय मस्तिष्क का परिष्कार नहीं किया जाता, दृष्टिकोण परिवर्तन का अभ्यास नहीं किया जाता, जीवन-शैली का परिवर्तन नहीं किया जाता और जीवन की प्राथमिक आवश्यकता रोटी की पूर्ति नहीं की जाती, तब तक अहिंसा तेजस्वी बने अथवा अहिंसा का प्रवाह निरन्तर चलता रहे, यह कम संभव लगता है।[81] अहिंसा की प्रतिष्ठा में व्यवहारिक तथ्यों का समाकलन है।

अहिंसा प्रशिक्षण का आध्यात्मिक पहलू है—अहिंसा की चेतना को जागृत करना और अहिंसा के संस्कार का निर्माण करना। व्यावहारिक पहलू है—अपेक्षानुसार आजीविका की विधियों का प्रशिक्षण। गरीबी, शोषण, अन्याय, अपराध और पर्यावरण प्रदूषण-इन समस्याओं को केवल आध्यात्मिक प्रशिक्षण से नहीं सुलझाया जा सकता है और समाज व्यवस्था के परिवर्तन से भी नहीं सुलझाया जा सकता है। उन्हें सुलझाने का उपाय है-अहिंसा की चेतना का जागरण और आजीविका की विविधा का प्रशिक्षण-इन दोनों का सहयोग।

प्रशिक्षण के चार आयाम

अहिंसा प्रशिक्षण का उपक्रम अस्तित्व में लाया गया। इसकी संकल्पना में बोलता है प्रणेता का मौलिक चिंतन और दृढ़ विश्वास। आचार्य महाप्रज्ञ के शब्दों में अहिंसा जीवन का दर्शन है। वह व्यक्ति के लिए आवश्यक है। उसका अपना अंतर्जगत् है। वहां भावों और विचारों का द्वंद है, इसलिए आवश्यक है-अहिंसा।

एक से दो हों वहां अहिंसा की आवश्यकता प्रबल बन जाती है। उसके बिना अभय का वातावरण नहीं होता है और शांतिपूर्ण वातावरण नहीं हो सकता।

हम हिंसा के कारणों की समीक्षा करके ही अहिंसा के विकास की बात सोच सकते हैं हिंसा का अंतरंग कारण है भावात्मक आवेश और आग्रह। उसका बाहरी कारण है रोटी का अभाव-प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति का अभाव। इन कारणों की मीमांसा के आधार पर अहिंसा प्रशिक्षण के चार आयामों की परिकल्पना की गई—

- आंतरिक परिवर्तन के लिए एक आयाम है-हृदय परिवर्तन।
- सिद्धांत के अनुरूप जीवन व्यवहार के लिए एक आयाम—अहिंसक जीवन शैली।
- जीविका नैतिक मूल्यों का ह्रास करने वाली न हो तथा रोटी के अभाव में आदमी को हिंसा की उत्तेजना न मिले इस आधार पर एक आयाम है- सम्यक् आजीविका एवं आजीविका प्रशिक्षण।
- इनके साथ-साथ एक आयाम है-सिद्धांत और इतिहास।

यह एक चतुर्आयामी उपक्रम अहिंसा के विकास का एक शक्तिशाली साधन बनेगा, यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है।[82] इस मंतव्य के अनुरूप अहिंसा प्रशिक्षण का कार्य अभिनव विश्वास के साथ प्रगतिशील बन रहा है।

अहिंसा प्रशिक्षण की प्रक्रिया को प्रभावी बनाते हुए आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा इसके चार आयाम निर्धारित किये गये हैं। वे इस प्रकार हैं-संवेग अर्थात् भावात्मक परिवर्तन, दृष्टिकोण का परिवर्तन, जीवन-शैली का परिवर्तन तथा व्यवसाय शुद्धि एवं किसी एक प्रकार के व्यवसाय का प्रशिक्षण। महाप्रज्ञ ने बतलाया—इसमें कुछ गांधीवादी संस्थाएं भी हमारा सहयोग कर रही हैं। हम लोग अहिंसा प्रशिक्षण शिविर लगाते हैं। उनमें भावशुद्धि पर विशेष बल दिया जाता है। विचार शुद्धि परिवर्तन के लिए ऐकांतिक आग्रह से बचने के लिए अनेकांत पर विशेष बल दिया जाता है। जीवन-शैली में परिवर्तन के लिए भोगवादी मनोवृति में परिवर्तन के लिए अणुव्रत का प्रचार-प्रसार पहले से भी हो रहा है। व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए खादी, ग्रामोद्योगों के विकास के रूप में कुछ गांधीवादी संस्थाओं का सहयोग मिल रहा हैं। आज कल कम्प्यूटर प्रशिक्षण भी व्यावसायिक प्रशिक्षण की दिशा में एक उपाय हो सकता है।[83] भावों के परिवर्तन के बिना दृष्टिकोण, जीवन-शैली तथा व्यवस्था का भी परिवर्तन नहीं हो सकता। इसलिए भाव परिवर्तन पर विशेष बल दिया जाता है।

उद्देश्य एवं आधार

अहिंसा प्रशिक्षण के संबंध में योचिसो की जिज्ञासा थी कि ट्रेनिंग का प्रारूप क्या होगा? समाहित करते हुए महाप्रज्ञ ने कहा-सैनिकों को परेड कराई जाती है, व्यायाम कराया जाता है। उसका उद्देश्य सैनिकों के शरीर को मजबूत बनाना है। अहिंसा के लिए मन और चित्त को प्रशिक्षित करना जरूरी है। अहिंसा मजबूत शरीर से नहीं मजबूत मन से फलित होगी। धर्म, अहिंसा और अभय की भावना से व्यक्ति को भावित किया जाए तो अहिंसा के प्रति सघन निष्ठा का उदय सहज बनेगा। इसके विकास के लिए मस्तिष्कीय प्रशिक्षण का उपक्रम अपेक्षित है।[84] कथन में बहुविध तथ्यों का समावेश है।

अहिंसा के विकास हेतु आंतरिक बल का विकास, वीरता, पराक्रम, कहीं भी हिंसा के सामने घुटने न टेकने का प्रबल संकल्प, अदम्य आत्म-विश्वास—ये अहिंसा की शर्तें हैं जो अहिंसा प्रशिक्षण से शक्तिशाली बनती हैं। बिना प्रशिक्षण के अहिंसा को तेजस्वी बनाने की बात संभव नहीं है। और न ही मस्तिष्कीय क्षमता के जागरण की बात घटित हो सकती है। आज के मनोवैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि अभी तक मनुष्य के मस्तिष्क का पाँच-छह प्रतिशत ही विकास हो पाया है। शेषभाग को भी जागृत और विकसित किया जा सकता है। इस बिन्दु पर अहिंसा के शोध की, प्रयोग की और प्रशिक्षण की एक अपेक्षा बन जाती है।[85]

अहिंसा प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य है—अच्छे व्यक्ति का निर्माण अथवा अहिंसानिष्ठ व्यक्ति का निर्माण। इसका आधारभूत तत्त्व है-हृदय-परिवर्तन। हृदय-परिवर्तन के बिना अहिंसा की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसका वाचक शब्द है भावात्मक परिवर्तन। हृदय हमारे शरीर का वह क्षेत्र है जहाँ भाव जन्म लेते हैं और ये शरीर, वाणी और मन को प्रभावित करते हैं। आयुर्वेद के अनुसार हृदय दो हैं। एक फुफ्फुस के नीचे और दूसरा मस्तिष्क में। मस्तिष्कीय हृदय की पहचान अवचेतक (हाइपोथेलेमस) से की गई है। वह भावधारा का उद्गम स्रोत है। वहाँ भाव जन्म लेते हैं और अभिव्यक्त होते हैं।[86] हिंसा उपजती है भावतंत्र में पश्चात् विचार में उतरती है और फिर आचरण में। अतः अहिंसा प्रशिक्षण का पहला केन्द्र है-भाव-विशुद्धि।

भाव-विशुद्धि मस्तिष्कीय शोधन पर निर्भर है। महाप्रज्ञ की दृष्टि में मनुष्य के दिमाग को प्रशिक्षित किए बिना कोई आदमी बड़ा काम नहीं कर सकता। मस्तिष्कीय प्रशिक्षण के अभाव में कोई भी

परिवर्तन हो सके, मुझे नहीं लगता।.....हिंसा केवल सीमाओं पर ही नहीं भड़कती है, वह तो प्राणी के मस्तिष्क में पैदा होती है। पहले वह मनुष्य के मस्तिष्क में उपजती है फिर समरांगण में उतरती है। इसलिए अहिंसा के प्रशिक्षण की महत्ता है।[87] अहिंसा प्रशिक्षण के द्वारा मस्तिष्कीय धुलाई होती है। हिंसक वृत्तियों को उद्दीपन देने वाला है-एनिमल ब्रेन। इसका परिष्कार और परिशोधन करके हिंसक वृत्तियों के उद्दीपन को रोका जा सकता है।

महाप्रज्ञ ने लिखा हमारे मस्तिष्क की बड़ी विचित्र रचना है। इतने प्रकोष्ठ हैं कि हर आदमी सोच ही नहीं सकता। अरबों-खरबों न्यूरॉन्स और उनके कनेक्शन हैं। मस्तिष्क में क्रोध को पैदा करने वाला तंत्र है तो उसे रोकने वाला तंत्र भी है। क्रोध पैदा करने वाला तंत्र ज्यादा सक्रिय होगा तो रोकने वाला तंत्र कहेगा, अभी इतना तेज क्रोध मत करो। इतना करोगे तो तुम्हारे हार्ट पर असर हो जाएगा। ज्यादा गुस्सा आता है तो हार्ट पर असर होना स्वाभाविक है। ज्यादा गुस्से से कुछ लोग मर जाते हैं। इसलिए इतना गुस्सा मत करो, थोड़ा संयम रखो। उत्तेजक और नियंत्रक दोनों तंत्र हमारे भीतर हैं। हिंसा को प्रेरणा देने वाला तंत्र भी हमारे मस्तिष्क में है। शांति और अशांति पैदा करने वाले दोनों तंत्र भी हमारे मस्तिष्क में हैं। जीवन के प्रति सम्मान पैदा करने के लिए यह जरूरी है कि हिंसा, अशांति और उत्तेजना से सक्रिय मस्तिष्क तंत्र को सुलाया जाए तथा जो शांति और अहिंसा का तंत्र सोया पड़ा है उसे जगाया जाए।[88] इस प्रक्रिया में अहिंसा प्रशिक्षण की अहम भूमिका महाप्रज्ञ ने बतलाई है।

सिद्धांत की बात मनुष्य के जागृत मन (कांशियस माइंड) तक पहुंचती है। परिवर्तन का क्षेत्र है अन्तर्मन (अनकांशियस माइंड)। प्रशिक्षण द्वारा अन्तर्मन को जागृत किया जा सकता है, व्यवहार को बदला जा सकता है, हिंसा की चेतना का रूपांतरण किया जा सकता है। इसलिए प्रशिक्षण की विधि पर सबको गंभीर चिंतन करना चाहिए। धर्म केवल सिद्धांत की बात न रहे। उसका अवतरण जीवन-व्यवहार में हो, इसकी आज बहुत बड़ी अपेक्षा है।[89] यह चिंतन आचार्य महाप्रज्ञ ने विश्वधर्म सम्मेलन में समवेत प्रबुद्ध लोगों के बीच रखा।

समग्र व्यूह रचना

विश्व व्यापी समस्याओं के प्रति ध्यान केन्द्रित करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने बताया—पदार्थ का अभाव अथवा पदार्थ का असंविभाग गरीबी की समस्या पैदा कर रहा है। अर्थ का अति संग्रह अथवा अर्थ का प्रभाव अमीरी की समस्या पैदा कर रहा है; निषेधात्मक भाव भावात्मक समस्या पैदा कर रहा है। उन्होंने न केवल समस्या को उकेरा अपितु उनसे मुक्ति पाने का उपक्रम भी बताया-

- निषेधात्मक भावों से मुक्ति पाने के लिए जरूरी है संवेग नियंत्रण का प्रशिक्षण।
- गरीबी की समस्या से मुक्ति पाने के लिए जरूरी है संयम प्रधान जीवन-शैली का प्रशिक्षण।
- संविभाग की चेतना के जागरण हेतु संवेग नियंत्रण और संयम की चेतना का विकास जरूरी है।[90] इन सूत्रों के द्वारा विश्व व्यापी अशांति पर नियंत्रण स्थापित कर शांति का मार्ग प्रशस्त किया जाये यह विश्व चेतना की पुकार है।

अहिंसा के प्रशिक्षण की आधारभूमि सम्यक् दर्शन है। दृष्टिकोण में बदलाव। वस्तु-जगत् और भाव-जगत् दोनों सच्चाई है। अहिंसा प्रशिक्षण का संबंध इन दोनों सच्चाइयों से जुड़ा हुआ है चूंकि वस्तु जगत् में परिवर्तन नहीं होता तो हिंसा बढ़ेगी और भाव-जगत् में परिवर्तन नहीं होता है तो

हिंसा को अधिक पनपने का मौका मिलेगा। यद्यपि अहिंसा का प्रशिक्षण भाव-जगत् का प्रशिक्षण है पर इसका संबंध समाज-व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था और राज्य-व्यवस्था के साथ है पर सबसे घनिष्ट संबंध है भाव-जगत् के साथ। इस मंथन के आधार पर अहिंसा-प्रशिक्षण का स्वरूप उभयात्मक रखा।

वस्तु जगत् से सबंध रखने वाली हिंसा को कम करने और अहिंसा को प्रतिष्ठित करने के लिए प्रशिक्षण के संदर्भ और समाधायक सूत्र आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा खोजे गये। वे निम्न हैं–

हिंसा का संदर्भ	**अहिंसा प्रशिक्षण का सूत्र**
1. असंतुलित समाज व्यवस्था	अहिंसक जीवन का प्रशिक्षण
2. असंतुलित राजनैतिक व्यवस्था	लोकतन्त्रीय जीवन-शैली का प्रशिक्षण
3. शस्त्रीकरण की समस्या	मानवीय अस्तित्व की सुरक्षा का प्रशिक्षण
4. जातीय और रंगभेद की समस्या	मानवीय एकता का प्रशिक्षण
5. सांप्रदायिक समस्या	धर्म या सत्य की मौलिक एकता का प्रशिक्षण
6. मानवीय संबंधों का असंतुलन	समता और आत्मतुला के सिद्धांत का प्रशिक्षण
7. आर्थिक स्पर्धा और अभाव	व्यक्तिगत स्वामित्व की सीमा तथा व्यक्तिगत उपभोग की सीमा का प्रशिक्षण
अंतर्जगत् से जुड़ी हिंसा के नियंत्रण	हेतु प्रशिक्षण-प्रयोग
8. मानसिक तनाव	कायोत्सर्ग और श्वास प्रेक्षा का प्रशिक्षण
9. वैचारिक मतभेद	अनेकांत का प्रशिक्षण
10. भावात्मक असंतुलन	चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा और लेश्याध्यान का प्रशिक्षण
11. व्यक्तिगत रासायनिक असंतुलन	प्रेक्षाध्यान के पांच चरणों का प्रशिक्षण।[91]

वस्तु-जगत् और भाव-जगत् से जुड़े अहिंसा प्रशिक्षण के इन सूत्रों में यथार्थ का समाकलन है।

अहिंसा के प्रशिक्षण का आधारभूत तत्त्व है-हृदय परिवर्तन अथवा मस्तिष्कीय प्रशिक्षण। परिवर्तन की पृष्ठभूमि में हिंसा के कारणों का उल्लेख एवं उसके समाधायक सूत्रों का मनन संदर्भित होगा-

हिंसा के हेतु	**परिणाम**
1. लोभ	अधिकार की मनोवृत्ति।
2. भय	शस्त्र-निर्माण और शस्त्र का प्रयोग।
3. वैर-विरोध	प्रतिशोध की मनोवृत्ति।
4. क्रोध	कलहपूर्ण सामुदायिक जीवन।
5. अहंकार	घृणा, जातिभेद के कारण छुआछूत, रंगभेद जनित दोष।
6. क्रूरता	शोषण, हत्या।
7. असहिष्णुता	साम्प्रदायिक झगड़ा।
8. निरपेक्ष व्यवहार	सामुदायिक जीवन में पारस्परिक असहयोग की मनोवृत्ति।

ये संवेग व्यक्ति को हिंसक बनाते हैं। हृदय परिवर्तन का अर्थ है-इन संवेगों का परिष्कार करना, इनके स्थान पर नये संस्कार बीजों का वपन करना। नये संस्कार बीजों का वपन मस्तिष्कीय प्रशिक्षण का मुख्य अंग है जिसकी निष्पत्ति का आकलन निम्न है-

प्रशिक्षण प्रक्रिया	**निष्पत्ति**
1. शरीर और पदार्थ के प्रति अमूर्च्छा भाव का प्रशिक्षण	• लोभ का अनुदय

2. अभय का प्रशिक्षण। शस्त्र-निर्माण और शस्त्र का व्यवसाय न करने की संकल्प-शक्ति का प्रशिक्षण।	• भय का अनुदय
3. मैत्री का प्रशिक्षण। प्रतिशोधात्मक मनोवृत्ति से बचने का प्रशिक्षण।	• वैर-विरोध का अनुदय
4. क्षमा का प्रशिक्षण।	• क्रोध का अनुदय
5. विनम्रता का प्रशिक्षण, अहिंसक प्रतिरोध का प्रशिक्षण, अन्याय के प्रति असहयोग का प्रशिक्षण।	• अहंकार का अनुदय
6. करुणा का प्रशिक्षण।	• क्रूरता का अनुदय
7. साम्प्रदायिक सद्भाव का प्रशिक्षण, भिन्न विचारों को सहने का प्रशिक्षण।	• असहिष्णुता का अनुदय
8. सापेक्ष चिंतन का प्रशिक्षण।	• निरपेक्ष चिंतन का अभाव
9. सापेक्ष व्यवहार का प्रशिक्षण।	• निरपेक्ष व्यवहार का अभाव
10. विधायक भाव का प्रशिक्षण।	• निषेधात्मक भाव का अभाव

समस्या और समाधान के आलोक में हृदय-परिवर्तन बनाम मस्तिष्क प्रशिक्षण की यह मौलिक प्रक्रिया और उसके परिणाम अहिंसा प्रशिक्षण के महत्त्व को उजागर करते हैं।

जीवन की आदिभूत इकाई बचपन में अहिंसा के संस्कार कैसे विकसित हो? इस ओर ध्यान केंद्रित करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने बच्चों के लिए अहिंसा प्रशिक्षण के सूत्र बतलाये हैं—1. स्वस्थ व्यक्ति 2. स्वस्थ समाज। निष्पत्ति है-शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व, ईमानदारी, नैतिकता आदि का व्यवहार।

अहिंसा प्रशिक्षण की समग्र व्यूह रचना में अनेक संदर्भ सूत्रों की संयोजना स्वीकृत है। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अहिंसा विकास में सहभागिता है। उसका संक्षिप्त विमर्श सामयिक होगा। अहिंसा के प्रशिक्षण का एक सूत्र है—'अनावश्यक हिंसा के वर्जन की चेतना को जगाना। उदाहरण के तौर पर पानी का अपव्यय, खनिज पदार्थों का अतिरिक्त दोहन, निरपराध प्राणियों और मनुष्यों की हत्या, यह अनावश्यक हिंसा है।'[92] इसका परिष्कार अहिंसा विकास के लिए जरूरी है।

जीवन-व्यवहार में घटित होने वाली हिंसा-अहिंसा के प्रति जागरूकता पैदा करना अहिंसा-प्रशिक्षण का महत्त्वपूर्ण कार्य है। इस ओर ध्यान केंद्रित करते हुए महाप्रज्ञ ने बताया-जब से अहिंसा के प्रशिक्षण का स्वर उभरा, अहिंसा प्रशिक्षण पर दो कान्फ्रेंसेस हुईं दुनिया का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है। अनेक पत्र आए, यह जिज्ञासा मुखर हुई-अहिंसा-प्रशिक्षण की विधि क्या है? सामान्यतः अहिंसा प्रशिक्षण का मतलब है-कहीं लड़ाई हो रही हो तो शान्ति सैनिक वहाँ जाएं, उन्हें समझा-बुझाकर शांत करें। यह एक कोण हो सकता है। इसे हम अहिंसा प्रशिक्षण की परिपूर्ण विधि नहीं मान सकते। हिंसा और अहिंसा को हमने युद्ध और शांति के क्षेत्र तक ही सीमित कर दिया। वस्तुतः यह जीवन का व्यवहार है। हर व्यक्ति के जीवन में बार-बार हिंसा और अहिंसा के क्षण आते ही रहते हैं। इससे विरत होने के लिए हम मूल से चलें। आहार का प्रशिक्षण, स्वास्थ्य का प्रशिक्षण और फिर संवेगों के संतुलन का प्रशिक्षण, यहाँ से हमारी अहिंसा प्रशिक्षण की यात्रा शुरू हो। जीवन से जुड़े अभिन्न तथ्यों का यह संग्रहण अहिंसा-प्रशिक्षण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

अहिंसा प्रशिक्षण का एक घटक है-आहार का प्रशिक्षण। भोजन और हिंसा में गहरा संबंध है। प्रश्न है भोजन सात्त्विक है या तामसिक? इसका परिणाम कैसा होता है? इस संबंध में महाप्रज्ञ

का मंतव्य है कि यदि आहार में मद्य-मांस का प्रयोग होता है तो उससे हिंसा की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलेगा। ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय समाज को लें या बाहर के समाज को लें। जिन लोगों को लड़ाई में ज्यादा रहना पड़ा, जो सुरक्षा के मोर्चों पर रहे, लड़ना ही जिनका पेशा बन गया, उन क्षत्रियों के लिए मद्य और मांस की खुली छूट समाज ने दी। जब लड़ाई में ही रहना है तो शराब और मांस का सहारा अवश्य है। ऐसी स्थिति में क्रूर बनना पड़ेगा, दया और संवेदनशीलता खत्म करनी पड़ेगी। संवेदन हीन हुए बिना हिंसा हो ही नहीं सकती। वर्तमान में आतंकवाद के प्रशिक्षण में प्रशिक्षुओं को संवेदनहीन बनने का प्रशिक्षण दिया जाता है।[93] आहार और हिंसा का संबंध है। इसे वैज्ञानिक धरातल पर प्रस्तुति मिली। आदमी जो भोजन करता है, उससे शरीर में अनेक प्रकार के रसायन बनते हैं। भोजन के द्वारा मस्तिष्क में न्यूरो-ट्रांसमीटर बनते हैं, जो तंत्र के संपोषक होते हैं। इनके द्वारा मस्तिष्क शरीर का संचालन करता है। वैज्ञानिकों ने चालीस प्रकार के न्यूरो-ट्रांसमीटरों का पता लगा लिया है। ये सारे भोजन से बनते हैं। भोजन के द्वारा एमिनो एसिड आदि अनेक प्रकार के एसिड बनते हैं। यूरिक एसिड जहर है वह भी भोजन से बनता है। जिस भोजन से विष अधिक बनता है, वैसा भोजन करने पर मानसिक समस्याएँ पैदा होती हैं, भावात्मक उलझने बढ़ती है और हिंसा की वृत्ति बढ़ती है। इस वैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर हिंसक-अहिंसक चेतना के जागरण में भोजन की अहम भूमिका है। महाप्रज्ञ ने इस तथ्य की पुष्टि की कि प्राचीन काल में भोजन के इस पहलू पर बहुत विचार किया गया कि क्या खाने से क्या होता है। आज के वैज्ञानिक विश्लेषण ने इस पहलू के साथ-साथ दूसरे पहलू पर भी बहुत ध्यान दिया है कि किस प्रकार के भोजन की पूर्ति न होने पर क्या होता है। दोनों पहलू हमारे सामने हैं- • किस वस्तु के खाने से क्या होता है? • किस वस्तु की पूर्ति न होने पर क्या होता है? एक प्राचीन पहलू और एक नया पहलू है।

एक आदमी बहुत चिड़चिड़ा है। चिड़चिड़ा क्यों है? इसकी खोज करने पर लगता है कि उसमें विटामिन 'ए' की कमी है। प्रति सौ क्यूबिक सेंटीमीटर में चीनी की मात्रा 90 से 110 मिलीग्राम होनी चाहिए। जिसमें इससे कम चीनी होती है, उसके शरीर पर असर आ जाता है। यदि अधिक कम होती है तो भावात्मक असर आता है, उसका स्वभाव बिगड़ जाता है। यहां तक कि वह आदमी हत्यारा चिड़चिड़ा बन जाता है। अनेक आदमी निराशा से ग्रस्त हो जाते हैं यह रसायनों की कमी के कारण होता है। आदमी डरता है। वह निरंतर भयग्रस्त होता है। भय लगने के अनेक कारण हो सकते हैं। उसमें एक कारण है—विटामिन 'बी' की कमी। इस प्रकार अनेक रसायन भय, अवसाद, हत्या आदि वृत्तियों को पैदा करने वाले होते हैं।[94] आध्यात्मिक और वैज्ञानिक विश्लेषण के साथ भोजन का विवेक अहिंसा प्रशिक्षण का महत्त्वपूर्ण बिन्दु बनता है।

शरीर और अहिंसा का संबंध है अतः अहिंसा-शिक्षण का एक पहलू स्वास्थ्य-विवेक भी है। महाप्रज्ञ कहते मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य की बात को छोड़ दें, शारीरिक स्वास्थ्य का भी हमारी हिंसा और अहिंसा के साथ गहरा संबंध है। आज यह वैज्ञानिक अध्ययन का विषय बना हुआ है। अगर लीवर की क्रिया ठीक नहीं है तो व्यक्ति में हिंसा की भावना पैदा हो जाएगी। हाइपर एसिडिटी है तो बुरे विचार, बुरे भाव पैदा होते चले जाएंगे। रक्त में ग्लूकोज की कमी है तो आत्महत्या या दूसरों की हत्या की भावनाएँ पैदा होगी। स्नायुतंत्र का संतुलन नहीं है, अन्तः स्रावी ग्रन्थियों के रसायन संतुलित पैदा नहीं हो रहे हैं तो हिंसा की भावना पैदा हो जाएगी। इस सूक्ष्म मीमांसा के साथ स्वास्थ्य विवेक का ज्ञान अहिंसा-प्रशिक्षण की प्रविधि में अत्यन्त जरूरी है। शारीरिक प्रशिक्षण

के जो घटक निर्धारित किये गये हैं वे निम्न हैं-आसन और प्राणायाम। पद्मासन, शशांकासन, योगमुद्रा, वज्रासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, गोदोहिकासन आदि आसन नाड़ी तंत्र और ग्रंथितंत्र को प्रभावित करते हैं। इनके द्वारा हिंसा के शारीरिक उत्पादक तत्त्व क्षीण होते हैं। अनुलोम-विलोम, चन्द्रभेदी, नाड़ी-शोधन, उज्जाई और शीतली आदि प्राणायाम शरीर में विषाणुओं का विरेचन करते हैं।[95] परिणामतः शरीर स्वस्थ बनता है और अहिंसा विकास की प्रक्रिया सुगम हो जाती है।

अहिंसा प्रशिक्षण का एक घटक है-'जीवनशैली का परिवर्तन।' जब तक अहिंसा की जीवन शैली को अपनाया नहीं जाएगा, आदमी सुखी और शांति से जी नहीं सकता। कितना भी धनी हो, कुबेरपति हो, अहिंसा की जीवन शैली यदि नहीं है तो व्यक्ति जीवन में दुःख ही भोगेगा, सुख उसे नसीब नहीं होगा। अगर जीवन शैली अहिंसा की हो जाए तो बहुत सारी समास्याओं का समाधान स्वतः हो जाएगा। इसके बिना अहिंसा के प्रशिक्षण की बात पूरी नहीं होगी। जीवन शैली के मुख्य नौ सूत्रों-सम्यक् दर्शन, अनेकान्त, अहिंसा, समण संस्कृति, इच्छा परिमाण, सम्यक् आजीविका, सम्यक् संस्कार, आहारशुद्धि व व्यसन मुक्ति, साधर्मिक वात्सल्य का अनुशीलन आवश्यक है।

हिंसा का एक बड़ा कारण है-मानसिक अस्वास्थ्य। 'हिंसा वह व्यक्ति करता है जो मानसिक दृष्टि से बीमार है।' मानसिक अस्वस्थता इन्द्रियों के उच्छृंखल प्रयोग से पैदा होती है। अतः मानसिक स्वस्थता के लिए इन्द्रियों पर एक सीमा तक नियन्त्रण और आंतरिक वृत्तियों का शोधन अहिंसा विकास के लिए जरूरी है। शोधन-परिष्कार और नियन्त्रण, यही है अध्यात्म। इस दिशा में प्रस्थान किए बिना अहिंसा के प्रशिक्षण की बात सफल नहीं होगी। अतः वृत्तियों और आश्रवों का शोधन है आन्तरिक शोधन। यह भीतर चले। बाहर में इन्द्रियों का प्रत्याहार (संयम) चलें। ये दोनों प्रक्रियाएं चलेगी तो अहिंसा के प्रशिक्षण की बात आगे बढ़ेगी। इसके साथ ही महाप्रज्ञ ने मानसिक प्रशिक्षण के महत्त्वपूर्ण साधनों का उल्लेख किया। उनमें प्रमुख हैं-ध्यान, कायोत्सर्ग, दीर्घश्वास-प्रेक्षा आदि। ये प्रयोग मानसिक एकाग्रता के विकास में सहयोगी बनते हैं। चंचलता जितनी कम उतनी ही हिंसा कम। चंचलता जितनी अधिक उतनी ही हिंसा अधिक।[96] निर्दिष्ट प्रयोगों के द्वारा चंचलता को नियंत्रित कर मानसिक स्तर पर अहिंसा का विकास किया जा सकता है।

अध्यात्म के आलोक में महाप्रज्ञ ने बताया कि-शारीरिक और मानसिक प्रशिक्षण से अधिक आवश्यक है भावनात्मक प्रशिक्षण। उसके साधन हैं-चैतन्य केन्द्र का ध्यान और आभामण्डलीय लेश्याध्यान। इन प्रयोगों के द्वारा शरीर के भीतर दो सूक्ष्म शरीर हैं-शटल बॉडी (तेजस शरीर) और शटलेट बॉडी (कार्मण शरीर)। अहिंसा के प्रशिक्षण के लिए इन शरीरों तक पहुँचना जरूरी है।[97] अनुप्रेक्षा के प्रयोग शारीरिक, मानसिक और भावात्मक—तीनों प्रशिक्षण के लिए उपयोगी है पर अहिंसा विकास के लिए पाँच अनुप्रेक्षाओं का अभ्यास अनिवार्य है-

- अभय की अनुप्रेक्षा
- सहिष्णुता की अनुप्रेक्षा
- करुणा की अनुप्रेक्षा
- मैत्री की अनुप्रेक्षा
- स्वावलम्बन की अनुप्रेक्षा।

इन अनुप्रेक्षाओं का प्रयोग भावात्मक अहिंसा को परिपुष्ट बनाता है।

अहिंसा प्रशिक्षण का एक मौलिक घटक है-भावनात्मक परिवर्तन। प्रत्येक व्यक्ति में विधेयात्मक और निषेधात्मक-दोनों भावों के स्रोत विद्यमान रहते हैं। निषेधात्मक भाव हिंसा को जन्म देते हैं और विधायक भाव अहिंसा को। किस प्रकार इन निषेधक भावों को दिमाग से निकाल सकें और किस प्रकार हमारे मस्तिष्क में विधायक भावों को जमा सकें इस प्रकार क्रियान्विति के लिए एक प्रयोग

की चर्चा महाप्रज्ञ ने की। उसकी प्रक्रिया है—कायोत्सर्ग की मुद्रा में बैठ जाएँ और निर्विचार अवस्था का अभ्यास करें। मस्तिष्क को एक बार विचारों से खाली कर दें, शून्य कर दें। वह निर्विचार और निर्विकल्प बन जाए। मस्तिष्क में कोई विचार नहीं और कोई विकल्प नहीं। निर्विकल्प होने का मतलब है कालातीत हो जाना। न कोई अतीत की स्मृति, न कोई भविष्य की कल्पना और न कोई वर्तमान का चिन्तन। तीनों कालों से मुक्त।.....कुछ क्षण निर्विचार रहें, निर्विकल्प रहें। इस अभ्यास से एक प्रकार से मस्तिष्क की धुलाई शुरू हो जाती है। ब्रेन वाशिंग का क्रम शुरू हो जाता है। यह मस्तिष्कीय धुलाई व्यक्ति को आगे बढ़ा देती है। जब पाँच मिनट या दस मिनट तक इस अवस्था का अभ्यास कर लें, फिर नया मोड़ लें कि दस मिनट निर्विकल्प रहें। फिर दस मिनट प्रयोग करें निषेधात्मक विचारों को खोजने का कि दिमाग में कहाँ-कहाँ निषेधात्मक भाव और विचार भरे पड़े हैं, संचित हैं। उन्हें खोजने का प्रयास करें। उन्हें टटोलें, खोजें। यह क्रम दस मिनट तक चले। दस मिनट तक विधायक भावों, विधायक विचारों को दोहराते रहें। यह 40 मिनट के प्रशिक्षण का क्रम बन गया। एक प्रयोगात्मक पाठ बन गया। चालीस मिनट का यह प्रयोग अहिंसा प्रशिक्षण का पहला प्रयोग बन जाएगा। निर्विचार अवस्था, निषेधात्मक भावों को बाहर निकालने का उपक्रम, विधायक भावों को स्थापित करने का प्रयत्न और विधायक भावों के स्थिरीकरण के लिए उनकी अनुप्रेक्षा या पुनरावर्तन-यह क्रम चलता है तो अहिंसक व्यक्तित्व का निर्माण किया जा सकता है।[98] ऐसे ही अन्य महत्त्वपूर्ण प्रयोग अहिंसा प्रशिक्षण की दृष्टि से सुझाये गये हैं।

गति तत्वः प्रेरणा प्रोत्साहन

मानवीय अर्हता को उजागर करने वाली महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में भी अहिंसा प्रशिक्षण को प्रस्तुति मिली। आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा-अर्हता का विकास ही जीवन की सिद्धि एवं उपलब्धि है। अर्हता किसी जाति, सम्प्रदाय या भूखंड की सीमा में नहीं बंधती। अहिंसा के प्रशिक्षण से अर्हता का विकास संभव है। इस क्षेत्र में अणुव्रत शिक्षक संसद ने अहिंसा प्रशिक्षण के क्षेत्र में अच्छा काम किया है। सब जातियों और संप्रदायों के लाखों लोग अपने-अपने संप्रदायों से जुड़े रहकर मानवता का काम कर रहे हैं। ऐसे ही प्रेरणा और प्रोत्साहन से प्रशिक्षण के कार्य को बल मिलता रहा है।

अणुव्रत शिक्षक संसद द्वारा शिविर समायोजन की कड़ी में भगवान महावीर की तपोभूमि राजगिरि में आचार्य धर्मेन्द्र के मार्ग दर्शन में एक मासिक अहिंसा शिविर में 55 प्रशिक्षुओं ने भाग लिया। शिक्षक बहुल शिविरार्थियों के इस दल को अभिप्रेरित करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा—'शिक्षकों में अहिंसा प्रशिक्षण अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि शिक्षकों का छात्रों से सीधा सम्पर्क रहता है। वे यदि जागरूक हों तो छात्रों के कोमल मस्तिष्क में सुसंस्कारों का आरोपण सुगम रूप में किया जा सकता है।' प्रशिक्षुओं ने अपने संस्मण के साथ निवेदन किया आतंकवाद, उग्रवादी तथा जातिवादी हिंसा की ज्वालामें पूरा बिहार धधक रहा है। ऐसी स्थिति में आपकी अहिंसा यात्रा एवं अहिंसा प्रशिक्षण से आशा की एक नई किरण स्फुरित हो रही है।[99] प्रकटतः अनेक प्रान्तों के लोग अहिंसा प्रशिक्षण में रूचि ले रहे हैं। आवश्यकता इसी बात की है कि सभी अहिंसक शक्तियां मिलकर काम करें।

सकारात्मक परिणाम

अहिंसा प्रशिक्षण की व्यापक संयोजना से परिवर्तन की दिशा में सकारात्मक सोच पैदा हुई है। सर्वोदय

संत श्री बालविजय ने आत्मतोष प्रकट किया—'झाबुआ में जीवन-विज्ञान एवं अहिंसा-प्रशिक्षण का जो कार्य चल रहा है वह बहुत ही प्रभावी है। आदिवासी लोग भी उसमें रूचि ले रहें हैं। कुछ आदिवासी युवकों ने स्वयं प्रशिक्षण प्राप्त किया है और वे पूरे गांवों को परिवर्तन करने की योजना पर काम कर रहें है।'

अहिंसा प्रशिक्षण से जुड़े लोग जन-जन की अहिंसक चेतना जागरण के पुनीत कार्य को जीवन का आनंद मानकर कर रहे हैं। आसाम में हेम भाई ने अहिंसा के क्षेत्र में रचनात्मक काम किया है। उन्होंने 30 हजार लोगों को अहिंसा के संकल्प दिलवाये हैं। उनके प्रभाव से अनेक उग्रवादी लोगों ने हथियार छोड़ दिये।[100] यह अहिंसात्मक प्रयत्नों की सार्थकता का सुफल है।

अहिंसा प्रशिक्षण के सकारात्मक परिणाम के संबंध में महाप्रज्ञ ने आत्मतोष व्यक्त किया। हमने अहिंसा-प्रशिक्षण का कार्य कोई उपदेश, प्रवचन शुरू से नहीं किया, किंतु शरीर के रसायनों में बदलाव और परिवर्तन लाने वाले प्रयोगों से शुरू किया। आदमी से सीधा बुराई छोड़ने की बात के बजाय, पहले उसे विश्वास में लिया। देश के कई भागों में यह कार्य चल रहा है। नैतिकता का प्रशिक्षण और साथ में रोजगार का प्रशिक्षण।

चुनौतिपूर्ण कार्य

परिवर्तन की मिसाल कायम करने वाला यह उपक्रम परिणामों की दृष्टि से काफी सफल रहा। सफलता के दूसरे छोर पर अहिंसा प्रशिक्षण के लिए एक कड़ी चुनौती भी है। जब कार्यकर्ता अहिंसा प्रशिक्षण का मिशन लेकर बिहार के आतंकग्रस्त क्षेत्र में पहली बार गये तो आतंकवादियों ने उनको बंदी बना लिया। वहां से मुक्त हुए तो पुलिसवालों ने पकड़ लिया। उन्होंने कहा-तुम आतंकवादियों से मिले हुए हो। बड़ी मुश्किल से उनसे मुक्ति मिली।[101] पर परिवर्तन की दिशा में बढ़ा यह अभियान इन बाधाओं से कहा रूकने वाला था? दिन-प्रतिदिन गतिशील बनता जा रहा है।

परिवर्तन की कहानी : अपनी जुबानी

अहिंसा प्रशिक्षण की प्रयोगभूमि पर अनेक लोगों ने अपने जीवन की दिशा और दशा को बदला है। इसके गवाह है लोगों के अपने बयान। स्वयं को कम्युनिस्ट और अहिंसा में विश्वास न होने की दुहाई देने वाले पत्रकार महोदय ने आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा शांति की अनुभूति के आह्वान पर तीन दिनों तक शिविर में भाग लिया। तीसरे दिन वह आचार्य महाप्रज्ञ के पास आया और भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हुए कहा—'अब मैं आपकी बात से सहमत हूँ। अहिंसा प्रशिक्षण के प्रयोगों से मेरा मन शांत हो गया है। मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि अहिंसा से ही शांति संभव है।'

शांति की डगर को उपलब्ध राजगिर, अहिंसा प्रशिक्षण शिविर में समागत सी.आई.पी. के नालंदा जिले के भतहर प्रखंड सरथरी के श्री रामाधीन प्रसाद ने बताया कि पहले मेरा हिंसा से जुड़े हुए लोगों से सम्पर्क था। अतः मेरे पास लायंस शुदा रिवाल्वर भी था। पर अहिंसा का प्रशिक्षण प्राप्त कर मैंने यह निश्चय किया है कि अपना रिवाल्वर बेचकर उससे प्राप्त धन का अहिंसा के प्रचार में उपयोग करूंगा। मैं बिहार के गांवों में अहिंसा और अणुव्रत की अलख जगाऊंगा।[102] ये अनुभव अहिंसा प्रशिक्षण के स्वर्णिम दस्तावेज़ है। इस कड़ी से जुड़े हुए अनेकों उदाहरण है।

देश के कई प्रांतो में अहिंसा प्रशिक्षण का प्रभावी कार्यक्रम चल रहा है। बिहार और झारखंड

के हिंसाग्रस्त क्षेत्रों में प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके परिणाम भी बहुत अच्छे आए हैं। बड़े-बड़े खूंखार आदमी भी बदल जाते है। असम में अच्छे-अच्छे युवक, जो हिंसा का रास्ता पकड़ चुके थे और उल्फा जैसे संगठनों के साथ काम कर रहे थे, उन्होंने हथियार रख दिये और अहिंसा का काम करने का संकल्प व्यक्त किया। एक युवक ने अपनी स्वचालित राइफल सौंपते हुए कहा—'अभी तक इससे मैं लोगों को मारता था। अब जिसे मैं इसको बेचूंगा वही मारेगा, इसलिए मैं इसे बेचूंगा नहीं, नष्ट कर दूंगा।'

ऐसा होता है संवेग नियंत्रण के द्वारा। अगर हम मस्तिष्क धुलाई या ब्रेनवॉशिंग कर सकें और हृदय परिवर्तन या चेतना का रूपांतरण कर सकें तो फिर सारी समस्याएँ सुलझ जाएंगी।[103] अहिंसा प्रशिक्षण के लिए आचार्य महाप्रज्ञ ने संवेग नियंत्रण पर विशेष बल दिया। क्योंकि हिंसा का मुख्य कारण संवेग का असंतुलन ही है। यदि संवेगों पर नियंत्रण हो जाए तो व्यक्ति हिंसा से काफी हद तक बच सकता है। आर्थिक समस्या को हल करने में भी प्रयत्न रत हैं।

पिछले दो दशक से अहिंसा प्रशिक्षण का कार्य चल रहा है। उसमें सक्रियता आई है।

आंकड़े बोलते हैं

प्रयोगधर्मी राष्ट्रसंत आचार्य महाप्रज्ञ ने वैज्ञानिक प्रविधि के अनुरूप 'अहिंसा प्रशिक्षण' का प्रणनयन कर परिवर्तन की मिशाल कायम की। रोशनी बटोरने का जिम्मा अणुव्रत विश्वभारती की सक्रिय शाखा 'अणुव्रत-शिक्षक संसद' के हाथों थमा। संसंद के राष्ट्रीय अध्यक्ष के अनुसार 'अणुव्रत शिक्षक संसंद' ने अब तक 34 साप्ताहिक शिविरों में 1834 लोगों को प्रशिक्षण दिया। 18 मासिक शिविरों में 666 लोगों को प्रशिक्षण दिया। अहिंसा प्रशिक्षक-प्रशिक्षण केन्द्र प्रमुख रूप से राजसमंद, टमकोर एवं चण्डीगढ़ में स्थापित है।[104]

अहिंसा प्रशिक्षण केन्द्रों का राज्यानुसार विवरण (30 सितंबर 2010)

S.NO.	STATE	TRAINING CENTER	SHORT T.C	R.N.T.C	TOTAL
1	Rajasthan	23	56	98	177
2	Punjab	4	0	8	12
3	Maharashtra	2	0	2	4
4	Andhrapradesh	1	0	11	12
5	Bihar	2	54	42	98
6	Jharkhand	1	2	11	14
7	Utterpradesh	1	14	14	29
8	Haryana	4	2	6	12
9	Madhyapradesh	0	1	0	1
		38	**129**	**192**	**359**

राष्ट्रीय अणुव्रत शिक्षक संसद भारत देश के 9 राज्यों में 361 अहिंसा प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित कर अहिंसक चेतना व मानव मूल्यों के विकास का कार्य कर रही है। लाखों व्यक्ति लाभान्वित हुए हैं। केन्द्रों की संख्या में प्रतिवर्ष इजाफ़ा हो रहा है।

आंकड़े इसके गवाह है। अहिंसा संकल्पित छात्र दस लाख पिचहत्तर हजार (1076203) बनें। अहिंसा प्रशिक्षण संचालित विद्यालयों की संख्या 569 है। प्रशिक्षकों द्वारा 1 लाख 95 हजार सदस्यों यानि छात्रों एवं अभिभावकों में, शिक्षकों में अहिंसा प्रशिक्षण दिया गया।

अहिंसा प्रशिक्षण का प्रायोगिक उपक्रम भारत के विभिन्न राज्यों में केन्द्र स्थापन व स्वतंत्र रूप से कितना व्यवस्थित रूप से चलता है इसकी एक झलक 'अहिंसा प्रशिक्षण यात्रा डायरी' में देखी जा सकती है।

अहिंसा की व्यापक प्रतिष्ठा के लिए महाप्रज्ञ सतत् अंतिम निःश्वास तक प्रयत्नशील रहे। इसकी संसतुति उनके द्वारा प्रदत्त घोषणा पत्रों में देख सकते हैं। सूरत आध्यात्मिक घोषणा पत्र का पूरक पत्र रतलाम अहिंसा घोषणा पत्र को बतलाते हुए उसमें क्रियान्विति का उल्लेख किया। महाप्रज्ञ ने बतलाया कि यदि आपके मन में करुणा और संवेदनशीलता है तो एक रूप होगा- विकास के स्रोत खुलेंगे, अन्यथा लड़ाई-झगड़ा, खींचतान और केकड़ा मनोवृत्ति पनपेगी। अहिंसा का प्रयोग पहले व्यक्ति स्वयं करे, फिर संस्थाओं में करे, समाज में करे तो स्वस्थ समाज रचना के प्रयास सफल हो सकते हैं। आज अहिंसा प्रशिक्षण के प्रति आकर्षण बढ़ा है। अहिंसा प्रशिक्षण का प्रयोग उभयधर्मा होना चाहिए। चेतना का परिवर्तन, व्यवस्था का परिवर्तन, रोजगार का प्रशिक्षण दोनों साथ चले तो अहिंसा तेजस्वी बन सकती है, जन जीवन अहिंसा के संस्कारों से अनुप्राणित हो सकता है।[105] इस प्रयत्न के द्वारा ही अहिंसा को लोकार्पित किया जा सकता है।

रोजगार मूलक विचारों को क्रियान्विति मिली। इसका स्वरूप बना-सम्यक् आजीविका और रोजगार का प्रशिक्षण। हमारी इस यात्रा में अनेक स्थानों पर अहिंसा के केन्द्र स्थापित हुए और अणुव्रत के कार्यकर्ताओं ने अब तक लगभग एक लाख परिवारों को इसका प्रशिक्षण दिया है। रोजगार का प्रशिक्षण प्राप्त कर आज वे बहुत अच्छी स्थिति में आ गए हैं। जिनके पास कुछ भी नहीं था, वे दो हजार से लेकर दस हजार रूपये मासिक कमाने की स्थिति में आ गए हैं। यह प्रशिक्षण का काम व्यापक स्तर पर चल रहा है।

समय-समय पर महाप्रज्ञ के सान्निध्य में अथवा स्वतंत्र रूप से अहिंसा प्रशिक्षण शिविरों का समायोजन किया जाता है। अनेक प्रांतो के लोग-झारखंड, बिहार, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र इत्यादि से आकर शिविर में भाग लेते हैं। जहां नक्सली हिंसा की समस्या ज्यादा है, वहां से भी कुछ लोग आते हैं। इन शिविरों में कोरा वाचिक प्रशिक्षण नहीं दिया जाता। ध्यान आदि के द्वारा उनकी आंतरिक वृत्तियों में बदलाव का प्रयत्न किया जाता है। रोजगार प्रशिक्षण के माध्यम से उन्हें जीविकोपार्जन का प्रशिक्षण दिया जाता है। नारे लगाने का समय बीत चुका। यथार्थ के धरातल पर कोई काम करने की जरूरत है।[106] महाप्रज्ञ के इस मंतव्य में यथार्थ का आकलन है। जिसका एक उदाहरण है-सूरत की पनास बस्ती।

पनास बस्ती

अहिंसा प्रशिक्षण के अन्तर्गत एक सूत्र है—रोजगार शुद्धि तथा रोजगार प्रशिक्षण। आज बेरोजगारी भी एक भयंकर समस्या है। रजनीकांत भाई के पास ऐसे लोगों की एक ऐसी टीम है जो 250 प्रकार के गृह उद्योगों का प्रशिक्षण देती है। पनास बस्ती-सूरत में भी रोजगार योजना लागू की गई। अनेक युवकों को मोमबत्ती बनाना, डिटरजेंट पाउडर बनाना आदि का प्रशिक्षण दिया गया। महिलाओं को

कपड़े सिलना, मेहँदी रचाना आदि कलाओं का प्रशिक्षण दिया गया। अणुव्रत उद्योग केन्द्र की स्थापना पूर्वक कुछ मशीनें भी भेंट की गयी।[107] आर्थिक आत्मनिर्भरता से लोगों में विश्वास का नया वातावरण बना।

रोजगार प्रशिक्षण की कड़ी से जुड़कर लगभग 18-20 हजार लोगों ने अभाव मुक्त जीवन जीने का सपना पूरा किया है।

सकारात्मक कार्यः एक झलक

अहिंसक चेतना जागरण एवं विकास में आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा संपादित सकारात्मक कार्यों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अहिंसा की तेजस्विता को निखारने एवं उसे पुष्ट करने वाले कार्यों की लम्बी सूची है। प्रस्तुत संदर्भ में संक्षिप्त विमर्श वांछित है। संप्रदाय की संकीर्णता से ऊपर उठकर आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा—'व्यक्ति चाहें जिस सम्प्रदाय का अनुगमन करें। पर मानवधर्म का, अहिंसा धर्म का पालन अवश्य करें।' संपर्क में आने वाले हर किस्म के लोगों को उन्होंने बताया कि मानव धर्म की रक्षा सबका नैतिक दायित्व है।

दिल्ली के विज्ञान भवन में पोप पॉल सहित धर्माचार्यों के मध्य उन्होंने कहा था कि 'विश्व के सभी महान् धर्माचार्यों को मिलकर यू.एन.ओ. की तरह धर्म संसद का एक मजबूत संगठन बनाना चाहिए। हम सब मिलकर यदि विवादास्पद विषयों पर चर्चा करते रहें तो उससे बहुत फायदा हो सकता है। सब लोग अपने धर्म का अनुपालन करें तथा युग के सामने उपस्थित समस्याओं का समाधान करें यह आवश्यक है।' अपने कथन के अनुरूप अहिंसा यात्रा के दौरान विभिन्न सम्प्रदायों के लागों से तथा धर्मगुरूओं से मिलें। अनेक मस्जिदों-दरगाहों में गए। व्यापक संपर्क साधा। सभी ने आचार्य महाप्रज्ञ के उदात्त चिंतन और व्यवहार का स्वागत किया।

जिस वातावरण में हम उच्छवास ले रहे हैं उसके प्रति हमारी जागरूकता बढ़े। इस ओर ध्यान केन्द्रित करते हुए महाप्रज्ञ ने कहा—जब तक हम प्रदूषण के कारणों को नहीं जानेंगे तब तक पर्यावरण-चेतना का जागरण नहीं होगा। जंगलों की कटाई भी बंद नहीं होगी। आज जीवन को इतनी प्राथमिकता नहीं मिल रही है जितनी पैसों को मिल रही है। फ्रीज, ए.सी. आदि सुख-सुविधाएँ पर्यावरण को प्रदूषित करने की ओर जा रही है।[108] पर्यावरण संतुलन की दृष्टि से उन्होंने संयम की चेतना के जागरण पर बल दिया।

मुंबई होलसेल गोल्ड ज्वैलर्स एशोसिएशन की तरफ से आचार्य महाप्रज्ञ के सान्निध्य में समायोजित सम्मेलन में व्यापार विशुद्धि की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण विचार विमर्श किया गया। आचार्य महाप्रज्ञ ने दीर्घकालीन सफलता के लिए प्रामाणिकता को मुख्य आधार बताया। व्यापार में प्रामाणिकता ही अहिंसा है, इस बात पर बल दिया गया। सम्मेलन में युवा व्यापारियों ने उत्साह पूर्वक व्यापार में प्रामाणिकता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की।[109]

अहिंसा यात्रा के दौरान मुंबई स्थानीय युवक परिषद् की ओर से आतंकवाद, भ्रूण हत्या, सर्वधर्म समन्वय, व्यसन, आदि की विकृतियों से परिचित कराने वाली अनेक झांकियां रास्ते में प्रदर्शित की गई। जिसकी दर्शकों पर अमिट छाप बनी।

आचार्य महाप्रज्ञ के व्यापक सकारात्मक प्रयत्नों का अंदाजा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि उन्होंने धर्म की आधुनिक परिभाषा प्रस्तुत की—'मैं जिस धर्म की व्याख्या करना चाहता हूँ, उसका संबंध जीने की कला के साथ है। जीने की कला है-शांति और आनंद।'

'स्वस्थ परिवार स्वस्थ समाज' पर प्रकाश डाला। ग्रामोद्धार, ग्राम संस्कृति के निर्माण तथा संवर्धन की योजनाओं के बाबत अधिकृत राजनैतिक व्यक्तियों के साथ संपर्क साधा। आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भरता हेतु प्रशिक्षण के अन्तर्गत सिलाई, बुनाई, कड़ाई, खाद्य निर्माण की कला, वस्तु निर्माण कौशल, कम्प्यूटर शिक्षण आदि गतिविधियों को जोड़ा गया है। संक्षेप में मानव जीवन की मूल्यार्हता हेतु संपादित आचार्य महाप्रज्ञ के मौलिक उपक्रम अहिंसा प्रशिक्षण की सकारात्मक भूमिका के सबूत है।

अहिंसा प्रशिक्षण की प्रविधि प्राचीन ग्रन्थ वृहत्कल्प भाष्य में निर्दिष्ट प्रशिक्षण विधि पर निर्मित की गई है। उसकी चतुः सूत्री प्रक्रिया बतलाई-पहला सूत्र है मूल पाठ का उच्चारण। मूलपाठ है-मैं किसी निरपराध प्राणी का संकल्पपूर्वक वध नहीं करूँगा। आत्म हत्या नहीं करूँगा। परहत्या नहीं करूँगा। भ्रूणहत्या नहीं करूँगा। दूसरा सूत्र है-अर्थ बोध। तीसरा सूत्र है अधिगम। यह पूछो कि तुम्हारी समझ में आया या नहीं आया। अधिगत किया या नहीं किया? चौथा सूत्र है-श्रद्धा। इस विषय में जो पाठ पढ़ाया, जो अर्थ बताया और जो तुमने समझा, उसमें तुम्हारी श्रद्धा पैदा हुई या नहीं हुई? प्रशिक्षण का यह महत्त्वपूर्ण सूत्र आचार्य संघदास और आचार्य मलयगिरि ने दिया। इस विधि के साथ महाप्रज्ञ ने आधुनिक-वैज्ञानिक विधा का समावेश कर अहिंसा-प्रशिक्षण की प्रविधि को अधिक शक्तिशाली बनाया है। इस प्रविधि में अनेक प्रयोगों का समावेश गहन मंथन के साथ किया गया है। अहिंसा के प्रशिक्षण की विशुद्ध प्रक्रिया अहिंसा विकास में योगभूत बनेगी और उसके परिणाम मानव जाति के लिए आनंददायी होंगे। अपेक्षा है इसके व्यापक प्रयोग की। प्रयोग की सफलता के मानक हैं-भाव परिवर्तन, जीवन शैली में परिवर्तन, दृष्टिकोण में परिवर्तन और आजीविका का प्रशिक्षण। इनके सकारात्मक परिणाम मानव जाति के लिए वरदान सिद्ध होंगे।

मनीषी द्वय ने अहिंसा प्रशिक्षण को अहिंसक चेतना के जागरण में महत्त्वपूर्ण बतलाया। वैशिष्ट्य इस बात का है कि गांधी ने अहिंसा प्रशिक्षण के तौर पर शांति सेना के संगठन को महत्त्व दिया वहीं महाप्रज्ञ ने अहिंसा प्रशिक्षण की समग्र प्रक्रिया को सिद्धांत से अधिक प्रायोगिक स्वरूप प्रदान किया है। अहिंसक चेतना के जागरण में निर्दिष्ट प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई है।

हृदय परिवर्तन एक विमर्श

अहिंसा की प्रतिष्ठा का आधार बिन्दु है चेतना का रूपांतरण। चेतना रूपांतरण के अभाव में 'अहिंसा' शब्द का सहस्र जप मात्र वागूविलास है। अहिंसा की आस्था से कार्य करने वालों के समक्ष बहुत बड़ा प्रश्न है-अहिंसा ने क्या किया? मानव मन की शांति अहिंसा बहाल करा सकती है? विश्व शांति का सपना अहिंसा में देखा जा सकता है? इत्यादि प्रश्नों के आलोक में मनीषियों ने नाना समाधान खोजे। गांधी ने अहिंसा के आलोक में हृदय परिवर्तन को महत्त्व दिया। उनका मानना था कि जब तक सामने वाले का हृदय हमारी अहिंसा की आंच से पिघल न जाये तब तक स्वयं को अहिंसा की अग्नि में तपाते रहें। उनका अपना एक तरीका था उसके अनुरूप उन्होंने उपवास के अनेक अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक प्रयोग किये, सफलता भी मिली। महाप्रज्ञ ने हृदय परिवर्तन की न केवल मीमांसा की अपितु प्रयोगात्मक स्तर पर प्रेक्षाध्यान की प्रविधि प्रस्तुत की। उसका विस्तृत विमर्श उपादेय है। व्यक्तित्व-निर्माण एवं अहिंसक चेतना के जागरण में प्रेक्षाध्यान के विभिन्न प्रयोग कितने सामयिक और सार्थक प्रमाणित होते हैं, यह ज्ञातव्य है। हृदय परिवर्तन को प्रेक्षा के आलोक में समग्ररूपेण समझा जा सकता है।

परिवर्तन का स्वरूप

हृदय-परिवर्तन विशुद्धि की मौलिक प्रक्रिया है। गांधी ने अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण और समस्या समाधान में हृदय-परिवर्तन की अहं भूमिका स्वीकार की। यह साधारण तथ्य है पर, इस विचार में मौलिकता का समावेश है। उन्होंने सामाजिक अव्यवस्थाओं के निराकरण में हृदय-परिवर्तन को स्वीकार किया। गांधी ने कहा-आज समाज में जो असमानताएँ वर्तमान हैं, वे विशेषरूप से जनता के अज्ञान के कारण हैं। जनता जैसे-जैसे अपनी सहज शक्तियों का अनुभव करती जायेगी वैसे-वैसे समस्त असमानाताएँ नष्ट होती जायेगी। यदि यह क्रांति अहिंसा द्वारा हुई, तो स्थिति जैसी आज है, उसके विपरीत ही होगी।....आज लोग जिस नई व्यवस्था की आशा लगाये हुए हैं, वह तो अहिंसा द्वारा अर्थात् हृदय-परिवर्तन द्वारा ही उत्पन्न हो सकेगी। मेरी अपील और कार्य-प्रणाली शुद्ध अहिंसा की है।[110] स्पष्ट परिलक्षित है कि गांधी न केवल व्यक्ति परिवर्तन हेतु अपितु सामाजिक अव्यवस्थाओं का समाधान भी अहिंसा में खोजते थे। उनके लिए अहिंसा और हृदय-परिवर्तन एक ही सिक्के के दो पहलू थे। वे अहिंसा से भिन्न हृदय-परिवर्तन को नहीं देखते थे। महाप्रज्ञ के कथन में इसकी समानता देखी जाती है। वे कहते-'अहिंसा का अर्थ है-हृदय-परिवर्तन। व्यक्ति स्वातन्त्र्य का अर्थ है हृदय-परिवर्तन।

हृदय-परिवर्तन के बिना व्यक्ति-स्वातन्त्र्य को परिभाषित नहीं किया जा सकता और अहिंसा को भी समझा नहीं जा सकता।[111] अहिंसा एवं हृदय-परिवर्तन का मौलिक संबंध है अतः अहिंसा को समझने के लिए हृदय-परिवर्तन को जानना जरूरी है।

हृदय-परिवर्तन के बिना वर्तमान की स्थितियाँ किस कदर नाजुक होती जा रही है जिसका चित्रण किया गया—जमींदार भूमिहीनों के प्रति करुणाशील नहीं है। मेधावी युवक रोजगार के अवसर से वंचित है। न्यायालय से न्याय की आशा क्षीण हो जाती है। राजनीतिज्ञ, पुलिस और अपराधियों का गठबन्धन यथार्थ पर पर्दा डाल देता है। हिंसा के बीजांकुरण के लिए ये स्थितियाँ उर्वर बन जाती हैं। जब-जब हिंसा फूटती है, उग्रवाद या आतंकवाद के सफाए की बात चल पड़ती है। दूसरी ओर अहिंसा में विश्वास रखने वाले उग्रवादी या आतंकवादी के हृदय-परिवर्तन की बात सोचने लग जाते हैं। ये दोनों ही चिन्तन सफल नहीं होते। न दण्डात्मक नीति सफल होती है और न हृदय-परिवर्तन की बात आगे बढ़ती है। अतः सम्यक् निदान के लिए समग्र प्रक्रिया का होना जरूरी है। जिक्र करते हुए महाप्रज्ञ ने बताया सर्व प्रथम संस्कार-परिवर्तन हो, संस्कार-परिवर्तन से विचार-परिवर्तन, विचार-परिवर्तन से हृदय-परिवर्तन, हृदय-परिवर्तन से स्थिति का परिवर्तन होता है। ऐसा नहीं है कि व्यक्ति को बदला नहीं जा सकता। प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों से यह पूर्णतया सिद्ध हो चुका है कि व्यक्ति को बदला जा सकता है। उसके स्वभाव को, प्रवृत्तियों, रुचियों और आदतों को बदला जा सकता है।[112] यह बदलाव एकाएक घटित नहीं हो सकता उसके लिए सघन प्रयत्न की अपेक्षा रहती है।

हृदय-परिवर्तन के संबंध में महाप्रज्ञ की सोच सकारात्मक थी। उनका मानना था कि मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जिसने दिशा को बदला है, मौलिक वृत्तियों का परिष्कार किया है, हृदय का परिवर्तन किया है, चेतना का रूपान्तरण किया है। इन सारे संदर्भों के आलोक में कहा जा सकता है कि मनुष्य की सबसे बड़ी उपलब्धि है-हृदय का परिवर्तन, चेतना का रूपान्तरण और मौलिक मनोवृत्तियों का परिष्कार।

महाप्रज्ञ ने माना है कि हृदय-परिवर्तन के आधार पर समाज में नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई है। किसी प्राणी जगत् में नैतिक मूल्य जैसा कोई तत्त्व नहीं होता। आवश्यक भी नहीं है, क्योंकि उनके पास बुद्धि का इतना विकास नहीं है। जहाँ बुद्धि का विकास नहीं होता वहाँ नैतिक मूल्यों की स्थापना हो ही नहीं सकती। बुद्धि के द्वारा अनैतिक मूल्यों की भी स्थापना होती है। बेचारे दूसरे प्राणियों में बौद्धिक विकास नहीं है, तो अनैतिक मूल्य भी नहीं है। वे कभी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करते। वे सदा बंधी-बंधाई मर्यादा में चलते हैं। वहाँ नैतिकता-अनैतिकता का प्रश्न नहीं है। मनुष्य ने अपनी बुद्धि के द्वारा ऐसे मूल्यों की स्थापना की जो समाज के लिए कल्याणकारी नहीं हैं, अकल्याणकारी हैं। दिशा-परिवर्तन हुआ तो उसने नैतिक मूल्यों की स्थापना भी की। मर्यादा विहीन आचरण कहें या अनैतिक आचरण-उसके प्रतिकार के लिए दण्ड व्यवस्था सभी प्राणियों के व्यवहार में है।

प्राणियों की बात छोड़ दें, वनस्पति जगत् में भी दण्डशक्ति का प्रयोग चलता है। चींटियों में भी यह प्रचलित है। खोज करने पर यह स्पष्ट हुआ कि प्राणीमात्र में दण्डशक्ति का प्रयोग और बलप्रयोग दोनों चलते हैं। ऐसे वृक्ष होते हैं जो दण्डशक्ति का प्रयोग कर प्राणियों को फँसा लेते हैं। ऐसे वृक्ष हैं जिनकी पत्तियाँ पहले खुली होती हैं, फिर ज्योंही कोई प्राणी आकर उन पर बैठता है, वे सिकुड़ जाती हैं। प्राणी उसमें फँस जाता है। वे पत्तियाँ प्राणी को निचोड़ कर, निस्सार खोल को

बाहर फेंक देती हैं। एक नहीं, अनेक ऐसे वृक्ष हैं, जो बलप्रयोग करते हैं। वे अन्य जीवों को चूसते हैं, उनका शोषण करते हैं। इसी तरह चींटियां सामुदायिक व्यवस्था का पालन करती हैं। चींटियों की रानी सारी व्यवस्था का संचालन करती है। जो चीटियां काम करने से जी चुराती हैं, आलसी हो जाती हैं, उन्हें समाज से बाहर निकाल दिया जाता है। मधुमक्खियों की भी यही व्यवस्था है। रानी मधुमक्खी काम न करने वाली मधुमक्खी को दण्ड देती है, उनका बहिष्कार करती है और दण्डस्वरूप उनसे अधिक काम कराती है।

समूचे प्राणीजगत् में दण्ड की और बलप्रयोग की व्यवस्था चलती है। मनुष्य ने दंडशक्ति के स्थान पर आत्मानुशासन का विकास भी किया। उसकी धारणा यह रही कि बलप्रयोग कम हो, दण्डशक्ति का प्रयोग कम हो, पर आत्मानुशासन जागे।[113] स्पष्टरूपेण आत्मानुशासन का विकास ही हृदय-परिवर्तन का मूल मंत्र है।

संदर्भ को स्पष्ट करते हुए महाप्रज्ञ ने कहा-विश्व में दो शक्तियां हैं-बल प्रयोग की शक्ति और हृदय-परिवर्तन की शक्ति। हृदय-परिवर्तन अहिंसा का प्राण है। हृदय का अर्थ पंपिंग करने वाला हृदय नहीं है। प्रेक्षाध्यान के संदर्भ में जिसे हृदय माना जाता है, वह मस्तिष्क का एक हिस्सा हाइपोथेलेमश है। हमारे जो इमोशंस हैं, भाव हैं, उनका उत्पत्ति स्थल है लिम्बिक सिस्टम और उसका एक भाग हाइपोथेलेम है।[114] ऐतिहासिक संदर्भ में हृदय-परिवर्तन की बात अनेक संदर्भों में उल्लिखित है यथा तथागत की शरण में अंगुलीमाल, महावीर के सन्मुख अर्जुनमाली जैसे हत्यारे, क्रूरकर्मी बदल गये यानी उनकी दूषित भावनाएँ बदल गयी जिसे हम हृदय-परिवर्तन की संज्ञा देते हैं। आचार्य महाप्रज्ञ प्रेक्षाध्यान को भावना परिष्कार का प्रयोग कहते हैं जो एक प्रकार से हृदय-परिवर्तन का प्रयोग है। हमारी भावनाएँ किस प्रकार परिष्कृत हों? क्रोध, अहंकार, लोभ, घृणा, भय, ईर्ष्या, कामवासना-ये कैसे आनुपातिक बन सकें, संतुलित बन सकें, इनकी उच्छृंखलता कैसे कम हो? इन्हें नियंत्रित करने में ध्यान की महनीय भूमिका बनती है।[115] प्रेक्षाध्यान को भले ही सामाजिक अहिंसा के साथ न जोड़ें किन्तु परोक्षतः सामाजिक शांति स्थापन में इसकी सक्रिय भूमिका रहती है।

महाप्रज्ञ कहते—मेरी अहिंसा मारो या मत मारों पर आधारित नहीं है। अहिंसा को हमने बहुत व्यापक रूप में लिया है। हिंसा का भाव कैसे और कहाँ से पैदा होता है, इस पर पूरी रिसर्च की है। खोज या अनुसंधान का वह क्रम अब भी जारी है।

प्रेक्षाध्यान का अभ्यास इसीलिए जरूरी है कि जो धारा हमारे भावों को उत्तेजना देती हैं, उन्हें मलिन बनाती है, मन में अशांति पैदा करती है, युद्ध और आतंक पैदा करती है, उस धारा को कमजोर बनाना है। उस धारा को प्रबल बनाना है, जिसमें शांति और सह-अस्तित्व है। लड़ाई, संघर्ष, हिंसा, और युद्ध पहले हमारे भावजगत् में पैदा होता है। वह बाह्यजगत् में मात्र अभिव्यक्त होता है। इस विश्लेषण के साथ उनका दृढ़ विश्वास था कि ध्यान के द्वारा वृत्तियों का परिवर्तन होता है, मस्तिष्क का नियमन होता है। इससे नाड़ी-संस्थान और ग्रन्थि-संस्थान पर नियंत्रण होता है।

वैज्ञानिक प्रविधि प्रयोग और परीक्षण को प्रेक्षाध्यान के संदर्भ में प्रयुक्त कर स्वभाव परिवर्तन की दिशा में सफलता हासिल की है। यह साबित हुआ कि अंतःस्त्रावी ग्रंथियों के स्त्राव ही आदमी के स्वभाव का निर्धारण करते हैं। ये स्त्राव ही किसी को अध्यात्म की ओर तो किसी को हिंसा और आतंक की ओर अग्रसर करते हैं। हम इस सिद्धांत को मानकर चलते हैं कि व्यक्ति में जैसा न्यूरोट्रांसमीटर बनता है, वैसे ही उसका व्यवहार होता है।[116] ध्यान के विभिन्न प्रयोगों से भीतर के सारे रसायन

बदल जाते हैं। रसायन आदमी के आचार और विचार को प्रभावित करते हैं। आचार्य महाप्रज्ञ ने स्पष्ट शब्दों में कहा है प्रयोगों के बिना केवल उपदेश और प्रवचन से परिवर्तन घटित नहीं होगा।

अहिंसा के वैश्विक प्रयत्नों की मीमांसा करते हुए महाप्रज्ञ ने बतलाया विश्व के अनेक अंचलों में अहिंसक समाज रचना की दृष्टि से अनेक व्यावहारिक प्रयोग चलाए जा रहे हैं फिर भी एक बात शेष रह जाती है, वह है-अहिंसा के क्षेत्र में किए जानेवाले प्रयोग कितने चिरंजीवी और कितने सफल होते हैं, यह अपने आपमें एक समस्या है। इस समस्या को अहिंसा के क्षेत्र में काम करने वाले लोगों ने अनुभव किया होगा। प्रेक्षाध्यान अहिंसा का वस्तुनिष्ठ प्रयोग नहीं है, वह केवल आंतरिक चेतना के रूपान्तरण का हृदय-परिवर्तन का प्रयोग है। अहिंसा में आस्था रखने वाला दण्डशक्ति पर भरोसा नहीं करता। उसका विश्वास हृदय-परिवर्तन पर होता है। इस अपेक्षा से कहा जा सकता है-प्रेक्षाध्यान सामाजिक विषमता और आर्थिक असमानता के उन्मूलन का प्रयोग है।[117] प्रेक्षाध्यान की स्वस्थ समाज संरचना में अहं भूमिका देखी जा सकती है। परिवर्तन एवं निर्माण की विराट् आकांक्षा की संपूर्ति में प्रेक्षाध्यान की विस्तृत व्याख्या आदेय है।

प्रेक्षा का उद्देश्य

अध्यात्म का साधक वैज्ञानिक दृष्टि संपन्न होता है। उसमें सत्य के साक्षात्कार की क्षमता जाग जाती है जिसका लाभ सभी को मिलता है। महाप्रज्ञ ने आत्म साक्षात्कार के क्षणों में अध्यात्म की गहराई में पैठकर इस सचाई को पकड़ा और प्रस्तुति दी कि जब तक भावतंत्र में परिवर्तन नहीं होता तब तक व्यक्ति का रूपान्तरण नहीं होता। हमारे भावतंत्र का मूल उद्गम स्रोत है-हाइपोथेलेमस का एक भाग लिम्बिक सिस्टम, जहाँ से भावनाएँ उपजती हैं। हाइपोथेलेमस नियंत्रण करता है पिच्यूटरी ग्लैण्ड पर। पिच्यूटरी ग्लैंड का नियंत्रण है सब ग्रंथियों पर, विशेषतः एड्रिनल ग्लैण्ड पर।

महत्त्वपूर्ण है भावतंत्र का परिष्कार। उसके लिए कुछ प्रयोग विकसित किये गये हैं-प्रेक्षा और अनुप्रेक्षा के। व्यक्ति में कुछ विशेष वृत्तियाँ होती हैं-क्रोध, भय, लोभ, अहंकार और वासना की; इन वृत्तियों में परिवर्तन किया जा सकता है। उसके लिए कुछ प्रयोग किये गये। एक व्यक्ति के आवेश को बदलना है तो उसके ललाट के क्षेत्र का केन्द्र ज्योतिकेन्द्र, वहाँ लम्बे समय तक श्वेत रंग का ध्यान किया जाए, तो आवेश शांत हो सकता है, क्रोध और लोभ भी शांत होता है और आध्यात्मिक चेतना जागती है। जब अन्तर्मुखी चेतना जाग जाती है, आध्यात्मिक चेतना जाग जाती है तब दृष्टिकोण बदलना शुरू होता है।[118]

महाप्रज्ञ के शब्दों में भावात्मक हिंसा को कम करे तो शरीर की हिंसा अपने आप कम हो जाएगी। इसके बिना मानसिक हिंसा कम नहीं होगी और जब तक मानसिक हिंसा कम नहीं होगी, कायिक हिंसा को रोका नहीं जा सकता। प्रेक्षाध्यान में महाप्रज्ञ ने एक आधार बनाया-व्याधि, आधि, उपाधि और फिर समाधि। व्याधि यानी शारीरिक बीमारी, आधि मानसिक बीमारी और उपाधि भावात्मक बीमारी। जब तक भावात्मक बीमारी का समाधान नहीं होगा, शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहेगा। जब तक भावात्मक हिंसा की वर्जना नहीं होगी, तब तक कायिक हिंसा भी कम नहीं होगी।[119] पूर्ण समाधि का वरण करने के लिए हिंसा से उपरति आवश्यक है।

परिवर्तन की दृष्टि से प्रेक्षाध्यान प्रक्रिया एक महत्त्वपूर्ण प्रविधि है। इसके नियमित प्रयोग से निश्चित परिवर्तन घटित होता है। महाप्रज्ञ का यह मंतव्य रहा—हमारी चेतना जब बदलती है तब

व्यवहार बदल जाता है। जैन धर्म ने अहिंसा, अपरिग्रह पर बहुत बल दिया। दूसरे धर्म भी अहिंसा और मैत्री पर बल देते हैं। इतना बल देने पर भी अहिंसा का विकास जितना होना चाहिए था उतना नहीं हुआ। प्रश्न है क्यों नहीं हुआ? कारण एक ही है कि जीवन में अहिंसा उतरती है चेतना के बदल जाने पर, जीवन में अपरिग्रह उतरता है चेतना का रूपान्तरण हो जाने पर। अर्थात् अहिंसा चेतना के रूपान्तरण का परिणाम है। असंग्रह चेतना के बदल जाने का एक व्यक्त रूप है। जब तक यह परिवर्तन नहीं होता, अहिंसा और अपरिग्रह के विकास की संभावना नहीं हो सकती। जो व्यक्ति ध्यान करने वाला है, जिसकी चेतना बदली है, उसकी अवस्था भी बदल जाएगी।

ध्यान का अभ्यास करने वाला व्यक्ति समाज को या किसी व्यक्ति को अपने गुलाम की भाँति नहीं देखता, नौकर को नौकर और कर्मचारी की भाँति नहीं देखता, उसकी दृष्टि बदल जाती है। अधिकांश कलह इसलिए होता है कि अहंकार को चोट पहुँचती है। पारिवारिक झगड़ों, कर्मचारियों के झगड़ों, अपने नौकरों के झगड़ों का मुख्य कारण है—दूसरों के अहंकार को चोट पहुँचाना। पर जिसकी चेतना बदल चुकी वह अपनी ओर से दूसरों को चोट पहुँचा ही नहीं सकता। वे ध्यानकर्त्ता के सन्मुख आत्मान्वेषण का पहलू रखते-ध्यान साधक को सोचना चाहिए कि उसका क्रोध कितना कम हुआ, व्यवहार कितना बदला, दूसरों को मूल्य देने की भावना कितनी जगी, दूसरों को अपने समान समझने और वैसा व्यवहार करने की वृत्ति कितनी विकसित हुई।[120] सकारात्मक उत्तर परिवर्तन का द्योतक है। इसी आधार पर प्रेक्षाध्यान वृत्तियों के उदात्तीकरण की प्रक्रिया है। उदात्तीकरण एक ऐसी रक्षा-युक्ति है, जिसमें समाज विरोधी अनैतिक कार्यों को अच्छे कार्यों में बदला जा सकता है।

स्वयं का दर्शन करने वाला अपने व्यक्तित्व का वांछित विकास कर सकता है, दृष्टि का निर्माण कर सकता है। प्रेक्षाध्यान का ध्येय सूत्र है 'संपिक्खए अप्पगमप्पएणं' अर्थात् आत्मा के द्वारा आत्मा को देखें। आत्म-दर्शन, आत्म निरीक्षण का प्रयोग निषेधात्मक भावों को समाप्त कर विधायक भावों को उजागर करता है। फलस्वरूप आवेग और आवेश जनित अथवा कषाय जनित कलह एवं हिंसा पर नियंत्रण हो जाता है। इसे जीवन निर्माण के संदर्भ में देखें।

जीवन निर्माण का सूत्र है ध्यान। ध्यान का प्रयोग जीविका के लिए नहीं है, जीवन निर्माण के लिए है। जब जीवन का निर्माण होता है तब जीविका की बात भी पीछे नहीं रहती। ध्यान के द्वारा दक्षता बढ़ती है, शक्ति बढ़ती है, स्मृति बढ़ती है, चातुर्य आता है किंतु इन सबसे महत्त्वपूर्ण जो उपलब्धि ध्यान के द्वारा प्राप्त होती है, वह है जीवन-निर्माण। जीवन का निर्माण होता है तो शान्तसहवास की समस्याएँ, आग्रह और रूचि-भेद की समस्याएँ, विचार भेद और विरोधाभास की समस्याएँ, निषेधात्मक भाव की समस्याएँ समाहित हो जाती हैं।[121]

ध्यान से विधायक विचार का, मैत्री भाव का, सबके प्रति सम्मान की भावना का और सामंजस्यपूर्ण चेतना का जागरण होता है। जब चेतना की यह स्थिति बनती है तब पारिवारिक और सामाजिक जीवन सुखद हो जाता है।

ध्यान का प्रयोग अहिंसा विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। कोरी हिंसा ही हमारे भीतर विद्यमान नहीं है। अहिंसा भी हमारे भीतर विद्यमान है। हमारी मस्तिष्कीय प्रणाली में दो प्रणालियाँ हैं—क्रोध आने की प्रणाली हमारे मस्तिष्क में है तो क्रोध पर नियन्त्रण पाने की प्रणाली भी हमारे मस्तिष्क में है।....ध्यान का प्रयोग इसीलिए है कि हम अहिंसा को जगा सकें और हिंसा को सुला सकें।

आचार्य महाप्रज्ञ ध्यान के प्रयोग में वैश्विक समस्याओं का समाधान खोजते थे। उनका यह

मानना था कि स्थिरता से हिंसा पर नियंत्रण किया जा सकता है। ध्यान स्थिरता का अचूक प्रयोग है। यह कायिक, वाचिक, मानसिक ध्यान है। इनसे हिंसा की प्रवृत्ति पर नियंत्रण होता है।[122]

प्रेक्षा से परिवर्तन

प्रेक्षाध्यान पद्धति के अनेक आयाम हैं—कायोत्सर्ग, अन्तर्यात्रा, श्वास प्रेक्षा, शरीर प्रेक्षा, चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा, अनुप्रेक्षा-भावना आदि। इन सभी का सम्मिलित लक्ष्य है चैतन्य का जागरण, व्यक्तित्व का रूपांतरण। ध्यान के जिन प्रयोगों से व्यक्तित्व में बदलाव आता है उन मुख्य प्रयोगों की संक्षिप्त मीमांसा प्रासंगिक होगी।

कायोत्सर्ग : एक वैज्ञानिक विधि

तनाव इस युग की सबसे बड़ी त्रासदी है। अतिशय तनाव आदमी को पागल बना देता है। पागलपन का मुख्य कारण ही तनाव है। तनाव ने हिंसक घटनाओं के प्रतिशत को बढ़ावा दिया है। तनाव से उबरने की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है—कायोत्सर्ग। इसका प्रयोग दबाव द्वारा उत्पन्न हानिकारक प्रभावों को निष्फल करने के लिए किया जाता है। कायोत्सर्ग की पृष्ठभूमि में 'दबाव' को समझना जरूरी है। जो भी परिस्थिति हमारी सामान्य जीवन-धारा को अस्त-व्यस्त कर दें, उसे 'दबाव या तनाव पैदा करने वाली' परिस्थिति कहा जाता है। आधुनिक मनुष्य के मानस में पैदा होने वाले ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा, घृणा या भय के भाव, सत्ता और संपत्ति के लिए संघर्ष, लालसाएँ और वहम भी 'दबाव-तंत्र' को प्रवर्तित कर देते हैं। इस दबाव से मुक्त होने की प्रक्रिया है-कायोत्सर्ग।[123] कायोत्सर्ग का अर्थ है-शरीर का व्युत्सर्ग और चैतन्य की जागृति।

कायोत्सर्ग स्वभाव परिवर्तन का महत्त्वपूर्ण उपक्रम है। सेल्फ हिप्नोटिज्म प्रक्रिया के सूत्र ऑटोरिलेक्शेसन-स्व-शिथिलीकरण, सेल्फ एनेलिसिस-अनुप्रेक्षा का इसमें समावेश किया गया है। इसमें विशेष रूप से विवेक को जोड़ा गया है। कायोत्सर्ग की पूर्णावस्था में व्यक्ति देह और चैतन्य की भेदानुभूति के साथ वैभाविक मानसिक-बौद्धिक अवस्थाओं को अपने से भिन्न-विजातीय जानकर उनसे मुक्त होने का संकल्प करता है। वही संकल्प शरीरस्थ कोशिका, नाड़ीसंस्थान, ग्रन्थि-संस्थान तक पहुँचकर रासायनिक परिवर्तन घटित करता है।[124] जो हृदय परिवर्तन का आधार बनता है। संक्षेप में कायोत्सर्ग का प्रयोग तनाव मुक्ति एवं हृदय परिवर्तन का महत्त्वपूर्ण घटक है।

श्वास प्रेक्षा

चित्त की चंचलता से उपजी समस्याओं का समाधान श्वास प्रेक्षा के प्रयोग से सुगम बन जाता है। श्वास प्रेक्षा का अर्थ है-श्वास के प्रति जागृति। जो व्यक्ति श्वास के प्रति नहीं जागता, वह व्यक्ति जीवन में घटित होने वाली घटनाओं के प्रति जागरूक नहीं बन सकता। जागरूकता से श्वास लेने वाला व्यक्ति संक्लेश से मुक्ति पाने का रहस्य जान लेता है।

श्वास और आवेग का परस्पर गहरा संबंध है। श्वास की गति पर द्रष्टा भाव का विकास करके अथवा उसकी दिशा में परिवर्तन करके आवेग, आवेश पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। काम, क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, अहंकार आदि की तरंगें श्वास की चंचलता के बिना नहीं उभरतीं। क्रोध आता है तो श्वास तीव्र हो जाता है या श्वास तीव्र होता है तब क्रोध की तरंग आती है। श्वास

शांत होता है तो आवेग शांत हो जाता है, जब आवेग शांत होता है तो श्वास स्वयं शांत हो जाता है। यह चेतना के रूपांतरण का महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। इससे आवेश जनित अनेक समस्याओं का समाधान सुगम बन जाता है।

समवृत्ति श्वास प्रेक्षा

समवृत्ति श्वास प्रेक्षा में नाड़ी तन्त्रीय असंतुलन पर सीधा प्रहार होता है जो मानव की दूषित एवं हिंसक प्रवृत्तियों का कारण बनता है। महाप्रज्ञ हिंसा के कारणों की श्रृंखला में एक बड़ा कारण नाड़ी-तन्त्रीय असंतुलन को बताते है। नाड़ी तन्त्रीय असंतुल से व्यक्ति अकारण हिंसा पर उतारू हो जाता है, मारने में मजा आने लगता है। मारने का कोई प्रयोजन नहीं है, न कोई अपराध, न कोई वैर-भाव, न कोई द्वेष और न कोई बदला लेने की भावना, कुछ भी नहीं, बस मारने में मजा आने लग गया। इस समस्या का उपचार समवृत्ति श्वास प्रेक्षा को बतलाया। इस प्रक्रिया में दोनों नथुनों से क्रमशः श्वास ग्रहण किया जाता है। यानी दाएँ से लेकर बायें से निकालना फिर बायें से लेकर दाएं से निकालना जिससे श्वास का रेचन किया जाता है पुनः उसी से श्वास लिया जाता है। इस प्रयोग से मस्तिष्क का दायां और बायां हिस्सा संतुलित बनता है। हठयोग की भाषा में इड़ा और पिंगला नाड़ी संतुलित होती है। सिंपेथेटिक नर्वस सिस्टम एवं पेरासिंपेथेटिक नर्वस सिस्टम-अनुकंपी और परानुकंपी-दोनों नाड़ी तंत्रों में संतुलन स्थापित होता है।[125] संतुलित नाड़ी तंत्र व्यक्ति को अकारण हिंसा में प्रवृत्त नहीं होने देता।

समवृत्ति श्वास प्रेक्षा के वैज्ञानिक आधार एवं परिणाम को प्रस्तुति मिली। जब बाएं नथुने से श्वास लेते हैं तब दायां मस्तिष्क प्रभावित होता है और जब हम दाएं नथुने से श्वास लेते हैं तब बायां मस्तिष्क प्रभावित होता है, सक्रिय बनता है। मस्तिष्कीय कार्यक्षमता का समुचित प्रयोग करने की दृष्टि जागृत होती है। संवृत्ति श्वासप्रेक्षा के प्रयोग को अखण्ड व्यक्तित्व विकास का प्रयोग स्वीकारा गया है। यह अहिंसक व्यक्तित्व विकास का नियामक प्रयोग है। हृदय परिवर्तन की प्रक्रिया को प्रस्तुत प्रयोग नाड़ी तंत्रीय परिवर्तन के जरिये घटित करता है।

शरीर प्रेक्षा एक प्रयोग

'सप्त धातुमयं शरीरं' शरीर सप्त धातुओं से बना है। आयुर्वेद की इस परिभाषा से भिन्न आज के विज्ञान की खोज में शरीर सोलह तत्त्वों से बना है। कुछ निराशावादी लोगों ने शरीर को अपवित्र नाशवान् बताया। अध्यात्म के आचार्यों ने शरीर को रहस्यमय बतलाते हुए परम लक्ष्य (मुक्ति) का सेतु बतलाया। महाप्रज्ञ ने प्रेक्षाध्यान की प्रविधि में शरीर दर्शन को परिवर्तन की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया है। पैर के अंगूठे से लेकर मस्तिष्क तक शरीर के प्रत्येक भाग-अन्तरावयव पर चित्त का जागरूक दर्शन ही सरल शब्दों में शरीर प्रेक्षा है। इस प्रयोग से शरीर के प्रति जागरूकता बढ़ती है जो भीतर से आने वाली बुराई के प्रवाह को रोकती है और उपशम की क्रिया करते-करते व्यक्ति एक दिन उन बुराइयों को क्षीण करने की स्थिति तक पहुँच जाता है।[126]

शरीर एक ऐसी रसायन शाला है जिसमें असंख्य प्रकार के रसायन पैदा होते हैं। ये ही रसायन व्यक्ति के व्यवहार और व्यक्तित्व के नियामक बनते हैं। व्यक्ति में उठनेवाली हिंसा, आवेश, आक्रमण का जिम्मेदार आन्तरिक विद्युत् तंत्र और प्राणतंत्र का असंतुलित संचरण है। इस प्रयोग की दक्षता

से शरीरस्थ विद्युत-तन्त्र एवं प्राणधारा का संतुलन सधता है। परिणामतः तद्जनित समस्याओं से मुक्ति मिलती है। शरीर प्रेक्षा के तीन महत्त्वपूर्ण परिणाम हैं-

• प्राण-प्रवाह का सन्तुलन • चैतन्य केन्द्र की निर्मलता • आनन्द का जागरण।

चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा

चरित्र, स्वभाव एवं व्यवहार के परिवर्तन में प्रस्तुत प्रयोग की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। चैतन्य-केन्द्रों एवं अन्तःस्रावी ग्रन्थितंत्र की परस्पर सह संवादिता है। अन्तःस्रावी ग्रंथियों का हमारे स्वभाव निर्माण में गहरा योगदान रहता है। एतद् विषयक प्रस्तुति डा. एम. डब्ल्यू. काप, एम.डी. ने अपनी पुस्तक 'ग्लैण्ड्स : अवर इनविजिबल गार्जियन्स' में दी है। उन्होंने लिखा—हमारे भीतर जो ग्रन्थियां हैं, वे क्रोध, कलह, ईर्ष्या, भय, द्वेष आदि के कारण विकृत बनती हैं। जब ये अनिष्ट भावनाएं जागती हैं, तब एड्रिनल ग्लैण्ड को अतिरिक्त काम करना पड़ता है। वह थक जाती है। और-और ग्रंथियां भी अतिश्रम से थक कर श्लथ हो जाती है।[127] धीरे-धीरे उनके स्राव असंतुलित बन जाते हैं। परिणामतः अनेक भावनात्मक समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। अवसाद, डिपरेशन की स्थिति व्यक्ति को हिंसा में ले जाती है। हिंसात्मक स्थितियाँ अवसाद जनित तनाव के कारण होती है। चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा इस स्थिति से उबारने वाली प्रविधि है जो व्यक्ति के भीतर रासायनिक परिवर्तन घटित कर तन-मन से स्वस्थ बनाती है।

हिंसात्मक प्रवृत्ति का बड़ा कारण है रासायनिक असंतुलन। विभिन्न ग्रन्थियों में पैदा होने वाले स्राव ही व्यक्ति के व्यवहार को संचालित करते हैं। योग के ग्रन्थ आत्म-विवेक में स्पष्ट उल्लेख है कि क्रूरता, वैर, मूर्च्छा, अवज्ञा और अविश्वास-ये सब स्वाधिष्ठान (एड्रीनल का भाग) में उत्पन्न होते हैं। तृष्णा, ईर्ष्या, लज्जा, घृणा, भय, मोह, कषाय और विषाद्-ये सब मणिपूर चक्र (नाभि) में जन्म लेते हैं। लोलुपता, तोड़फोड़ की भावना, आशा, चिन्ता, ममता, दम्भ-अविवेक, अहंकार-ये सारे अनाहत-चक्र (हृदय) में जन्म लेते हैं। विभिन्न केन्द्रों में पैदा होने वाले असंतुलित स्राव अनेक समस्याओं को पैदा करते हैं। मस्तिष्कीय प्रक्रिया इससे प्रभावित होती है और मस्तिष्क विक्षिप्त-सा हो जाता है—हिंसा की वृत्तियाँ जाग जाती हैं। चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा एक उपाय है रासायनिक संतुलन स्थापन का।

विभिन्न चैतन्य केन्द्रों पर किया गया प्रेक्षा का प्रयोग उनके आन्तरिक परिवर्तन का, संतुलन स्थापन का मौलिक घटक सिद्ध होता है। स्वभाव परिवर्तन का सशक्त सेतु है दर्शन केन्द्र पर ध्यान का प्रयोग, जो पिच्यूटरी के स्राव को संतुलित बनाता है। संकल्प को भीतर अन्तर्मन तक पहुँचाता है। जब संकल्प लेश्या-तंत्र और अध्यवसाय-तंत्र तक पहुँच जाता है तो व्यक्ति में वांछित परिवर्तन घटित करता है।[128] ज्योतिकेन्द्र का ध्यान पिनियल, कंठ-विशुद्धि केन्द्र का ध्यान थाइराइड, तैजस केन्द्र का ध्यान एड्रीनल के स्रावों को संतुलित बनाता है। रासायनिक संतुलन की अपेक्षा से चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा हृदय-परिवर्तन का महत्त्वपूर्ण आयाम है। महाप्रज्ञ के शब्दों में-इसी अपेक्षा से ध्यान और अहिंसा का संबंध हमारी समझ में और गहरा बैठ जाता है। हिंसा का जो प्रबल सहायक तत्त्व है रासायनिक असंतुलन, उसे संतुलित करने का माध्यम है ध्यान।[129] चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा का प्रयोग वृत्ति परिष्कार, स्वभाव परिवर्तन एवं हृदय-परिवर्तन की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है।

लेश्याध्यान : रासायनिक परिवर्तन

भावतंत्र में उठने वाली दूषित तरंगों के परिवर्तन में रंगों की महत्त्वपूर्ण भूमिका स्वीकृत है। रंगों के प्रयोग से जहाँ शारीरिक बीमारियाँ, मानिसक दुर्बलताओं से मुक्ति मिलती है वहीं रंगों के ध्यान-लेश्याध्यान के प्रयोग से आध्यात्मिक मूर्च्छा का भंजन होता है। परिणामतः हृदय-परिवर्तन घटित होता है। रूपान्तरण की प्रक्रिया चेतना के सूक्ष्म स्तर पर घटित होती है। चेतना के उस स्तर पर पहुँचने के लिए रंगों की उपादेयता है। रंग व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं। वे व्यक्तित्व पर जितना प्रभाव डालते हैं, उतना प्रभाव और कोई नहीं डाल सकता। रंग स्थूल एवं सूक्ष्म उभय व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं। इस संबंध में जैन आगमों में विस्तार से वर्णन मिलता है जो 'लेश्या' शब्द से जाना जाता है। महाप्रज्ञ के शब्दों में 'चरित्र-परिवर्तन का मूल आधार है लेश्या का परिवर्तन। दूषित आभामंडल दूषित चरित्र का प्रतीक है, विशुद्ध आभामंडल निर्मल चरित्र का प्रतीक है।' लेश्याध्यान का प्रयोग चरित्र शुद्धि का प्रयोग है।

वृत्तियाँ, भाव या आदतें-इन सबको उत्पन्न करने वाला सशक्त तंत्र है-लेश्या-तंत्र। लेश्यातंत्र की शुद्धि ही परिवर्तन का मूल आधार है। अप्रशस्त लेश्याएँ-कृष्ण, नील, कापोत-क्रूरता, हिंसा, अठारह पापस्थान, हत्या की भावना, कपट, असत्य बोलने की भावना, प्रवंचना, धोखाधड़ी, विषय की लोलुपता, प्रमाद, आलस्य जनित दोषों की जनक है। विशेष रूप से—अविरति, क्षुद्रता, निर्दयता, नृशंसता, अजितेन्द्रियता-ये कृष्ण लेश्या के परिणमन हैं। ईर्ष्या, कदाग्रह, अज्ञान, माया, निर्लज्जता, विषय-वासना, रस-लोलुपता-ये नील लेश्या के परिणमन हैं। वक्रता-वक्र आचरण, अपने दोषों को ढाँकने की मनोवृत्ति, परिग्रह का भाव, मिथ्या दृष्टिकोण, दूसरे के मर्म भेदन की वृत्ति, अप्रिय-कथन-ये कापोत-लेश्या के परिणमन हैं।[130] ठीक इनसे भिन्न भावों की नियामक है प्रशस्त लेश्याएं-पद्म, तैजस, शुक्ल जो मानव में दिव्यता का संचार करती है। दूषित भावों और विकृत विचारों के द्वारा जो जहर शरीर में पैदा होता है उसे बाहर निकालने की अभूतपूर्व पद्धति है-लेश्याध्यान। रंगों के ध्यान से संचित विष बाहर निकलते हैं और भाव निर्मल बनते हैं। इस विषय में महाप्रज्ञ का निजी अनुभव था। प्रशस्त रंगों का ध्यान भावों को निर्मल बनाने में उपयोगी होता है।

अनुप्रेक्षा

हृदय-परिवर्तन का आधारभूत प्रयोग है-अनुप्रेक्षा। व्यक्ति में पनपने वाली विकृतियों, दुष्प्रवृत्तियों, असामान्य मनोदशाओं का उपचार अनुप्रेक्षा के प्रयोगों से सुगम बन जाता है। जिसे हम बदलना चाहते हैं, जिस आदत में परिवर्तन लाना चाहते हैं, उसका विश्लेषण करना अनुप्रेक्षा है। अनुप्रेक्षा ध्यान का एक प्रयोग है। जब अनुप्रयोग के स्तर पर पुनरावृति करते हैं बार-बार दोहराते हैं, तो धीरे-धीरे एक क्षण ऐसा आता है, जब वह बाहर की बात भीतर तक चली जाती है और जो बदलने का स्थान है, वहाँ तक पहुँचती है और परिवर्तन शुरू हो जाता है।[131] इस प्रक्रिया में आत्म-निरीक्षण और आत्म-विश्लेषण का एक साथ प्रयोग चलता है। सरल शब्दों में भीतर में पलने वाली वृत्तियों का दर्शन एवं उसके परिष्कार का संकल्प। परिणाम स्वरूप पूर्व धारणाओं के परिष्कार एवं नव निर्माण में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

मानसिक स्वास्थ्य का उपाय है—सुझाव। वर्तमान मनोविज्ञान की भाषा में इसे सजेशन या ऑटोसजेशन कहा जाता है। सुझाव स्वयं से स्वयं को देना अथवा दूसरे से ग्रहण करना-ये दोनों

महत्त्वपूर्ण उपाय हैं। इससे वांछित परिवर्तन सम्भव है। इससे मानसिक स्वास्थ्य के विकास को बहुत गति मिल सकती है। स्वस्थ मानसिकता हिंसात्मक समस्याओं को सुलझाने में अहं भूमिका रखती है। आन्तरिक परिवर्तन एवं परिवेश की विशुद्धि के लिए अनुप्रेक्षा और प्रेक्षा के प्रयोगों की उपादेयता है। इस प्रयोग से शरीरस्थ न्यूरोन्स सुझाव को ग्रहण कर वांछित परिवर्तन पूर्वक विकास को संपादित करते हैं। परिणामतः चिन्तन और अनुचिन्तन की प्रक्रिया से चित्त शुद्धि, चित्त समाधि, समस्या समाधान और संस्कार निर्माण घटित होता है।

भावना प्रयोग

हृदय परिवर्तन का मौलिक उपक्रम है-भावना। भावना का प्रयोग आत्म-सम्मोहन का प्रयोग है। इसके द्वारा जटिलतम आदतों को बदला जा सकता है। इस प्रक्रिया में सर्व प्रथम उच्च स्वर में बोल-बोलकर मन को भावित किया जाता है, फिर मंद स्वर में, पश्चात् बिना उच्चारण के मानसिक स्तर पर चित्त को भावित किया जाता है। तीनों प्रकार से मन को भावित करने के पश्चात् भावना को वहाँ तक पहुँचाया जाता है जहाँ परिवर्तन की प्रक्रिया घटित होती है। दृढ़ निश्चय के साथ इसका अभ्यास करने पर स्वभाव अपने आप बदल जाता है।[132]

प्रेक्षाध्यान पद्धति के विभिन्न प्रयोग हृदय-परिवर्तन-मस्तिष्कीय परिवर्तन के सशक्त आधार बनते हैं। इन प्रयोगों के अभाव में हृदय परिवर्तन की कल्पना मात्र मन बहलाव साबित होती है।

योगासन और अहिंसा

योगासन और अहिंसा का संबंध है। ऋषि-मुनियों ने अनुभव के आधार पर इसे प्रतिष्ठित किया है। योग केवल शरीर को साधने का ही प्रयोग नहीं है अपितु भावनात्मक स्तर पर अहिंसक चेतना के जागरण का महत्त्वपूर्ण उपक्रम है। महात्मा गांधी ने योगासन के द्वारा घटित होने वाले परिणामों को स्वीकार किया। उनकी सोच में आसन सात्विक व्यायाम है जिसका प्रधान उद्देश्य शरीर को योगी नहीं बल्कि शुद्ध बनाना है। इनसे कितनी ही बीमारियाँ दूर होती हैं। व्यायाम का अहिंसक स्वरूप स्वीकारते हुए गांधी ने कहा अहिंसा की तालीम में अनेक प्रकार के हठयोग संबंधी प्रयोग स्वीकृत हैं उसमें शरीर-शिक्षा, शरीर का आरोग्य, शरीर को सुदृढ़ बनाना, ठंड, धूप सहने की शक्ति बढ़ाना, शरीर की चपलता बढ़ाना आदि का समावेश होता है।[133] गांधी के योग, व्यायाम संबंधी विचारों से यह ध्वनित होता है कि उन्होंने अहिंसात्मक प्रक्रिया में शरीर को साधने की अपेक्षा से योगासन को वरीयता प्रदान की है।

महाप्रज्ञ ने अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण एवं हृदय परिवर्तन में योगासन की अनन्य भूमिका स्वीकृत की हैं। शरीर में जमा होने वाले विजातीय तत्त्वों का निष्कासन योगासन के द्वारा स्वाभाविक रूप से होने लगता है। आसान के द्वारा मानसिक और भावनात्मक द्वंद्वों पर विजय पाई जा सकती है। पुष्टि में उन्होंने लिखा-जिसे बहुत गुस्सा आता है, उस व्यक्ति को शशांक आसन का प्रयोग कराया जाए तो उसका गुस्सा कम हो जाता है। जिसमें वासना जनित वृत्तियाँ जागृत होती हैं, उसे योग-मुद्रा का प्रयोग कराया जाए। वासना जन्य वृत्तियों के उभार में एड्रिनल ग्लेण्ड-वृक्कग्रंथि सहायक बनती है। ....शशांक आसन और योगमुद्रा के द्वारा एड्रिनल ग्लेण्ड पर नियंत्रण किया जा सकता है।[134] अपेक्षातः योगासन वृत्ति परिष्कार की मौलिक प्रविधि है।

अहिंसक चेतना जागरण की दृष्टि से योगासन महत्त्वपूर्ण है। यौगिक प्रयोग रीढ़ की हड्डी को लचीला बनाए रखने से शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य सुदृढ़ रहता है। अनेक प्रकार की हिंसात्मक दूषित प्रवृत्तियों से व्यक्ति अनायास बच जाता है। शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक दृष्टि से आसनों का अपना महत्त्व है। योगासनों के द्वारा किस प्रकार वृत्ति और भावनाओं को बदला जा सकता है, यह गंभीर अध्ययन का विषय है। योगासन का शरीर शास्त्रीय संदर्भ में आकलन किया जाये तो हिंसा का संबंध हमारे नाड़ीतंत्र, ग्रंथितंत्र और अम्लों से है। योगासन इन तीनों को प्रभावित कर उनमें संतुलन स्थापित करते हैं। असंतुलन जनित हिंसात्मक वृत्तियों के परिष्कार में योगासन की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अहिंसक चेतना के विकास हेतु योगासन के प्रयोग को व्यापक बनाकर व्यक्तित्व निर्माण का कार्य सुगम किया जा सकता है।

प्राणायाम

प्राणायाम का अर्थ है-श्वास पर नियंत्रण, श्वास का निरोध। यह प्राण संयम तथा अनुशासन का प्रयोग है।

जीवन का आधारभूत तत्त्व है प्राणशक्ति। प्राणशक्ति की कमी अनेक जटिलताओं को जन्म देती है जिसका एक प्रकट रूप है हिंसात्मक प्रवृत्तियों में अभिरुचि। प्रश्न प्राणशक्ति के विकास का है। अहिंसात्मक प्रक्रिया में प्राणायाम एक साधन है प्राणशक्ति के संवंर्धन का। जो व्यक्ति अपनी हिंसक प्रवृत्तियों-आदतों को बदलना चाहता है उसके लिए प्राणायाम बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। परिवर्तन के संदर्भ में महाप्रज्ञ का अभिमत रहा—'प्राणशक्ति जितनी प्रबल होती है, संकल्प उतना ही प्रबल होता है। संकल्प जितना प्रबल होता है, उतना ही प्रबल होता है परिवर्तन।' इसके आलोक में प्राणायाम परिवर्तन का महत्त्वपूर्ण घटक है।

विभिन्न प्रयोगों की मीमांसा से यह स्पष्ट है कि प्रेक्षाध्यान एवं हृदय परिवर्तन का घनिष्ट संबंध है। प्रेक्षा का परिकर तनाव मुक्ति में अहं भूमिका अदा करता है। तनाव से बचने के लिए अब सरकार पुलिस, अर्द्धसैनिक बलों और सेना के जवानों के लिए योगाभ्यास का प्रशिक्षण दे रही है। पुलिस अकादमी और जेलों में प्रेक्षाध्यान के प्रशिक्षकों को बुलाकर जवानों को और कैदियों को ध्यान का प्रशिक्षण दिलाया जा रहा है।[135] आशातीत परिणाम निकल रहे हैं। ध्यान और अहिंसा के अद्वैतभाव को महाप्रज्ञ ने प्रस्तुति दी—'अहिंसा और ध्यान मूलतः कोई दो तत्त्व नहीं है। आत्मलीनता ही अहिंसा है और वही ध्यान है।' ध्यान की गहन अवस्था में अहिंसा की उच्च भूमिका का वरण किया जा सकता है। ध्यान योग की समग्र प्रक्रिया परिवर्तन की आधारभूत कड़ी है। हृदय परिवर्तन का यह शक्तिशाली प्रयोग है।

गांधी और महाप्रज्ञ दोनों ने ही अहिंसक चेतना के जागरण में हृदय परिवर्तन को स्वीकारा। वैशिष्ट्य मात्र प्रक्रिया का है। गांधी का हृदय परिवर्तन का तरीका था आत्म त्याग-अनशन (उपवास), अथवा सत्याग्रह पूर्वक सामने वाले व्यक्ति के हृदय को छू लेना, उसे पिघाल देना, बदलने के योग्य बनाना। आचार्य महाप्रज्ञ ने हृदय परिवर्तन के लिए विभिन्न प्रयोग सुझाये हैं। उनके विचार में वास्तविक परिवर्तन रासायनिक परिवर्तन पूर्वक ही हो सकता है। इसे प्रायोगिक भूमिका पर प्रतिष्ठित करने में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

परिवर्तन की सशक्त कड़ी : मूल्य बोध

जीवन की दिशा बदलने में मूल्यों की अनन्य भूमिका है। मूल्य स्थापन की दृष्टि से महात्मा गांधी ने बहुत बड़ा कार्य किया और अहिंसा-सत्य जैसे मूल्यों की बदौलत देश को आजादी का उपहार दिया। उनका मूल्य स्थापन का अपना तरीका था। प्रस्तुत संदर्भ में आचार्य महाप्रज्ञ ने अहिंसा और नैतिकता की प्रतिष्ठा हेतु जिन चारित्रिक मूल्यों का शिक्षा के साथ समावेश किया उनका संक्षिप्त विमर्श इष्ट है।

आचार्य प्रहाप्रज्ञ ने चारित्र निर्माण की वैज्ञानिक प्रणाली 'जीवन-विज्ञान' के रूप में उजागर की। जीवन-विज्ञान प्रयोग का लक्ष्य है—बचपन से ही अहिंसा की आस्था उत्पन्न करना। जब हिंसा की आस्था उत्पन्न हो जाती है, यह धारणा बन जाती है कि हिंसा के बिना काम नहीं चलता, फिर उसे बदलना बहुत जटिल हो जाता है। बचपन के संस्कार इतने प्रभावी होते हैं कि बाद में आने वाले संस्कार उनके सामने टिक नहीं पाते। इसलिए बचपन से ही अहिंसा की आस्था का निर्माण किया जाये।[136] बाल मनोविज्ञान में भी यह स्वीकृत है।

शिक्षा एवं अहिंसा के संबंध में गांधी ने कहा-शिक्षा में जो दृष्टि पैदा करनी है वह परस्पर के नित्य संबंध की है। जहाँ वातावरण अहिंसारूपी प्राणवायु द्वारा स्वच्छ और सुगन्धित हो चुका है वहाँ छात्र और छात्राएँ सगे भाई-बहिनों के समान बिचरती होंगी। वहाँ विद्यार्थियों और अध्यापकों के बीच पिता-पुत्र का संबंध होगा। एक दूसरें के प्रति उदार होगा, ऐसी स्वच्छ वायु ही अहिंसा का नित्य सतत् पदार्थ पाठ है। ऐसे शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के वातावरण में पले हुए विद्यार्थी निरन्तर सबके प्रति उदार होंगे तथा सहज ही समाज सेवा हेतु लालायित होंगे। उनके लिए सामाजिक बुराइयों-दोषों का अलग प्रश्न नहीं होगा। वह अहिंसारूपी अग्नि में भस्म हो गया होगा।[137] कथन का स्पष्ट आशय मूल्यों की प्रतिष्ठा और उसके विकास से है। उदारता, परस्परता, समाजसेवा जैसे सामाजिक मूल्य शिक्षा द्वारा उदात्त बनें यह उनकी आंतरिक अभिलाषा थी। गांधी ने नई तालीम की बात कही उसका संबंध मूल्य विकास से था।

मूल्यों की प्रतिष्ठा जीवन में कैसे हो? इस पहेली को बुझाते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने विशेषरूप से 'जीवन-विज्ञान' की संयोजना की है। जीवन-विज्ञान के तहत् मूल्यों का प्रशिक्षण समग्र व्यक्तित्व विकास का सर्जक है। यह शिक्षा के क्षेत्र में अहिंसा का प्रयोग है। शिक्षा के साथ-साथ विद्यार्थी में अहिंसा का संस्कार निर्मित होना जरूरी है। यदि बौद्धिकता के साथ अहिंसा की चेतना नहीं जागती है तो उसका सबसे पहले दुरूपयोग अपने प्रति होता है। अपने प्रति अन्याय करने वाला सामाजिक

धरातल पर न्याय कर पायेगा असंभव है। अतः जीवन के हर पक्ष में न्याय हो इस लक्ष्य से मूल्यों का मनन महत्त्व रखता है। सोलह जीवन मूल्यों का विमर्श विभिन्न श्रेणियों में किया गया है। वर्गीकृत मूल्यों की मीमांसा प्रस्तुत संदर्भ में उपादेय है।

सामाजिक मूल्य

व्यक्ति और समाज का घनिष्ट संबंध है। जैसा व्यक्ति होगा वैसा ही समाज होगा। सामाजिक परिवेश को व्यक्ति से भिन्न नहीं आंका जा सकता। व्यक्ति का मूल्यपरक जीवन-व्यवहार सामाजिक परिवेश को मूल्यवान बनाता है। प्रश्न है ऐसे कौन से मूल्य हैं जो सामाजिक संदर्भ को प्रभावित करते हैं, उसे सार्थकता प्रदान करते हैं? इस संदर्भ में कर्त्तव्य-निष्ठा और स्वावलम्बन का उल्लेख किया गया है।

कर्त्तव्यनिष्ठा सदाचार की प्रेरक शक्ति है। कांट के शब्दों में कर्त्तव्य के लिए कर्त्तव्य होना चाहिए, न दया के लिए, न अनुकम्पा के लिए और न दूसरों का भला करने के लिए। ये सब नैतिक कर्म के हामी नहीं है और उससे सम्बद्ध भी नहीं हैं। केवल मनुष्य का स्वतंत्र संकल्प उसका स्वलक्ष्य मूल्य है। इसीलिए कर्त्तव्य के लिए ही हमारा कर्त्तव्य होना चाहिए। इसमें प्रतिक्रिया की बू नहीं क्रियात्मक भाव होता है। जहाँ कर्त्तव्यबोध और दायित्व बोध होता है, वह समाज स्वस्थ होता है।[138] इस मन्तव्य में सामाजिक स्वस्थता का राज है। जिस समाज में दंड और नियंत्रण की प्रधानता होती है कर्तव्य भाव सुप्त होता है वह समाज रूग्ण होता है।

समाज का मौलिक विकास कर्त्तव्यबोध पर टिका है। महाप्रज्ञ के शब्दों में-'जिस समाज में कर्त्तव्यबोध नहीं होता, वहाँ ध्वंस शुरू हो जाता है।'

नैतिक जीवन की पहली शर्त है स्वावलम्बन। समाज की भूमिका में स्वावलम्बन का अर्थ यह नहीं होता कि मनुष्य दूसरों का सहयोग ले नहीं। मेरी सम्मति में उसका अर्थ यही होना चाहिए कि मनुष्य अपनी शक्ति का संगोपन न करे, जिस सीमा तक अपनी आवश्यकताओं को पूरा कर सके, स्वयं करे। वह विलासी जीवन को उच्च और श्रमरत जीवन को हेय न माने। स्वावलम्बन (अपनी श्रम शक्ति) का अनुपयोग और परावलंबन (दूसरों की श्रम शक्ति) का उपयोग शोषणपूर्ण जीवन का आरम्भ बिन्दु है। शोषण स्वयमेव हिंसा है। महाप्रज्ञ के इस मंतव्य में समाज विकास का राज छुपा है।

बौद्धिक मूल्य

एक व्यक्ति में बौद्धिक विकास तो बहुत हो सकता है पर 'बौद्धिक मूल्य' उसमें प्रतिष्ठित हो यह आवश्यक नहीं। शिक्षा के साथ बौद्धिक मूल्य जागृत व विकसित हो इसी आशय से जीवन-विज्ञान प्रशिक्षण में 'बौद्धिक मूल्य' का समावेश किया गया है।

सत्य का संबंध उभयपक्षी है। इसकी साधना से व्यक्ति आध्यात्मिक और सामाजिक-दोनों क्षेत्रों में प्रतिष्ठा अर्जित कर सकता है। यद्यपि सत्य का मार्ग कंटकाकीर्ण होता है पर जिसमें इसपर चलने का साहस है उसे सफलता निश्चित रूप से मिलती है। सत्य का विराट् स्वरूप है-काया की ऋजुता, वाणी की ऋजुता, भाव की ऋजुता, संवादी-प्रवृत्ति, कथनी-करनी की समानता सत्य है। ठीक इसके विपरीत काया की वक्रता, वाणी की वक्रता, भाव की वक्रता, विसंवादी प्रवृत्ति, कथनी करनी की असमानता असत्य है।[139] सत्यमार्ग का समग्रता से अनुशीलन करना सत्य की अखण्ड आराधना है।

सत्य सीमाओं में बंटा हुआ नहीं होता। उसका स्वरूप निरपेक्ष होता है। सत्य-सत्य ही है। एक के लिए एक प्रकार का और दूसरे के लिए दूसरे प्रकार का नहीं होता।

सत्य की खोज के प्रश्न को समाहित करते हुए भगवान् महावीर ने कहा—'अप्पणा सच्च मेसेज्जा' स्वयं सत्य की खोज करो। इस संदर्भ में ऐसा नहीं होता कि एक व्यक्ति सत्य खोजे और दूसरा उपयोग करे। वैज्ञानिक जगत् में यह होता है कि व्यक्ति सत्य को खोजे और सारा जगत् उसका लाभ उठायें। किन्तु अध्यात्म का संसार इससे भिन्न है। इसमें जो सत्य को खोजता है वही उसका उपयोग करता है। सत्य का साधक ही अहिंसक होता है।

समाज में पहनाव, खान-पान, धार्मिक आस्था, राजनैतिक विश्वास आदि की भिन्नताएं सर्वत्र परिलक्षित हैं। समन्वय एक ऐसा सूत्र है जो भेद में अभेद दृष्टि पैदा करता है। विरोध में अविरोध की चेतना जगाता है। अनेकांत का एक सूत्र है समन्वय। वह भिन्न प्रतीत होने वाले दो वस्तु धर्मों में एकता की खोज का सिद्धांत है। इसका व्यापक संदर्भ है-मैं अकेला नहीं हूँ, दूसरे का भी अस्तित्व है। हम दोनों में संबंध है। उस संबंध के आधार पर ही हमारी जीवन यात्रा चलती है। इस संबंध की अवधारणा के आधार पर सृष्टि संतुलन की व्याख्या की जा सकती है।[140] यह समन्वय के व्यापक संदर्भ की स्वीकृति है। इसके सहारे परिवार, समाज, राष्ट्र और अंतर्राष्ट्रीय वातावरण को शांतिपूर्ण सहअस्तित्व का पर्याय बनाया जा सकता है। समन्वय के पाँच सूत्रों का उल्लेख किया गया—

- मण्डनात्मक नीति बरती जाए। अपनी मान्यता का प्रतिपादन करें किन्तु दूसरों पर मौखिक अथवा लिखित आक्षेप न किया जाए।
- दूसरों के विचारों के प्रति सहिष्णुता रखी जाए।
- दूसरे सम्प्रदाय और उसके अनुयायियों के प्रति घृणा और तिरस्कार की भावना का प्रचार न किया जाए।
- कोई साम्प्रदाय-परिवर्तन करे तो उसके साथ सामाजिक बहिष्कार आदि अवांछनीय व्यवहार न किया जाए।
- धर्म के मौलिक तत्त्वों-अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को जीवनव्यापी बनाने का सामूहिक प्रयत्न किया जाए।[141]

राष्ट्रीय संदर्भ में सम्प्रदाय निरपेक्षता महत्त्वपूर्ण मूल्य है। प्रत्येक व्यक्ति में इस चेतना का जागरण जरूरी है। विश्व में अनेक धर्म-हिन्दू, बौद्ध, सिक्ख, ईसाई, जैन-मुस्लिम आदि प्रचलित हैं। सूक्ष्म मत-मतान्तरों के आधार पर ये धर्म भी सम्प्रदाय एवं पंथों में बंट गए हैं। मोटे रूप में धर्म वृक्ष है। मत, पंथ और सम्प्रदाय इसकी शाखाएँ हैं। नाम के अन्तर को छोड़ कोई मूलधारा से भिन्न नहीं है। शाखा का अस्तित्व वृक्ष के बिना नहीं है और बिना शाखा के वृक्ष, वृक्ष नहीं कहलाता। सम्प्रदायों की उपयोगिता धर्म से जुड़े रहने तक ही है अलग से नहीं। धर्म के मौलिक तत्त्व मानवता के संरक्षक हैं। उनके विकास हेतु सम्प्रदाय निरपेक्षता की चेतना का जागरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हर व्यक्ति वाणी, लेखन, विचार-प्रकाश और धार्मिक उपासना करने में स्वतंत्र है। विविध भाषाएं, विविध जातियां विविध धर्म-सम्प्रदाय हैं। किन्तु इन विविधताओं के होने पर भी सब एक (मानव) हैं। साम्प्रदायिक विग्रह से एकता की शक्ति कुंठित होती है। संप्रदाय-निरपेक्षता व्यक्ति के हृदय में प्रत्येक धर्म-संप्रदाय के प्रति आदर-सम्मान के भाव पैदा करता है और व्यक्ति की सोच को उदार बनाता है।

जाति, रंग, लिंग, सम्प्रदाय पर पलने वाले भेद-भाव को मिटाने वाला महामंत्र है- मानवीय एकता। मानवीय मूल्य ही है जो व्यक्ति-व्यक्ति के दिलों को जोड़ता है। इस मूल्य का हजारों वर्ष पूर्व आध्यात्मिक मंच से सिंहनाद हुआ-'एक्का-मणुस्सजाई'-मनुष्य जाति एक है। महावीर का यह उद्घोष दिव्य दृष्टि से अनुस्यूत है। इस आदर्श को भुलाने से ही समाज में विषमताएँ पनपी। जन्मना जाति की व्यवस्था ने मनुष्यों में ऊँच-नीच और छुआछूत की भावना पैदा की, समत्व के सिद्धांत का विखंडन किया। इस स्थिति में मनुष्य जाति की एकता का उद्घोष नहीं होता तो अहिंसा अर्थहीन हो जाती। अतः अहिंसा की पृष्ठभूमि में महावीर ने कहा-'मनुष्य कर्म से ब्राह्मण होता है, कर्म से क्षत्रिय, कर्म से वैश्य और कर्म से शूद्र।' मनुष्य केवल मनुष्य है। वह विद्याजीवी होता है तब ब्राह्मण हो जाता है। वही व्यक्ति उसी जीवन में रक्षा जीवी होकर क्षत्रिय, व्यवसायजीवी होकर वैश्य और सेवाजीवी होकर शूद्र हो सकता है। परिवर्तनशील जाति मनुष्य मनुष्य के बीच में ऊँच-नीच और छुआछूत की दीवार खड़ी नहीं करती।[42] इसका व्यावहारिक अनुशीलन विघटनकारी समस्याओं का समाधान है। आचार्य महाप्रज्ञ ने मानवीय एकता को नूतन अर्थ दिया-मनुष्य-मनुष्य के बीच घृणा और संघर्ष की समाप्ति ही इसका विकास सूत्र है।

मानसिक मूल्य

मानसिक मूल्यों की प्रतिष्ठा और विकास अहिंसा की प्रतिष्ठा में सहायक है। तनाव, आवेग और अपने प्रति निराशा की भावना एवं परिस्थितियों का प्रभाव मानसिक असंतुलन के कारण हैं। इसका सैद्धान्तिक कारण है-भावों की अशुद्धि। महाप्रज्ञ ने मानसिक स्वास्थ्य पर प्रकाश डाला। उनकी दृष्टि में जो व्यक्ति संतुलित जीवन जीता है, समता का जीवन जीता है, सहिष्णुता का जीवन जीता है, मन को आवेगों और दुश्चिंताओं की भट्टी में नहीं झोंकता, वह व्यक्ति मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होता है। मानसिक स्वास्थ्य के ये कारक ही मानसिक संतुलन के हेतु हैं।

धृति वह तत्त्व है जो व्यक्ति के मन में सदाचार के प्रति आस्था को दृढ़ करती है। शिक्षा के साथ धैर्य का प्रशिक्षण एक बालक को हिंसा से उबरने एवं उससे निपटने की शक्ति देता है।

नैतिक मूल्य

उच्च आदर्श समाज में प्रतिष्ठित हो इसकी पृष्ठभूमि में नैतिक मूल्यों का विकास महत्त्वपूर्ण है। नैतिक मूल्य सर्वत्र एक समान नहीं हो सकते, क्योंकि पूरे भूखण्ड में मनुष्य का व्यवहार एक जैसा नहीं। फिर भी कुछेक ऐसे सार्वभौम मूल्य हैं, जिनका विकास कर समाज में नैतिकता को कायम किया जा सकता है।

शिक्षा के साथ प्रामाणिकता का प्रयोग नैतिक आस्था को मजबूती देता है। वचन की प्रामाणिकता, अर्थ की प्रामाणिकता और व्यवहार की प्रामाणिकता इसके विभिन्न रूप हैं। जिनके परिपार्श्व में व्यक्ति की प्रायः क्रियाओं का समावेश है। वचन की प्रामाणिकता विश्वास पैदा करती है। आर्थिक प्रामाणिकता शोषण को रोकती है। व्यवहार की प्रामाणिकता संबंधों को सौहार्दपूर्ण बनाती है।

करुणा मैत्री का प्रखर प्रयोग है। इसका संबंध पर-सापेक्ष नहीं होता। प्रयत्न पूर्वक इसका विकास किया जा सकता है। नैतिकता का आधार है-करुणा। हमारी दो वृत्तियाँ हैं-एक है क्रूरता की वृत्ति और दूसरी है करुणा की वृत्ति। करुणा का संबंध है संवेदनशीलता से। मनुष्य जितना संवेदनशील

होता है, उतनी करुणा उसमें जागती जाती है। मनुष्य जितना असंवेदनशील होता है, उतनी क्रूरता बढ़ती जाती है। क्रूरता पर नियंत्रण करुणा के द्वारा किया जा सकता है।

क्रूरता की समस्या का मूल कारण है अमानवीय दृष्टिकोण, फिर चाहे वह लोभ के रूप में अभिव्यक्त हो या संग्रहवृत्ति के रूप में विकसित हो। इसको मिटाने का उपाय है-मानवीय दृष्टिकोण का विकास। इसे ही प्राचीन भाषा में आत्मौपम्यदृष्टि कहा गया है। इसका अर्थ है प्रत्येक प्राणी को अपने समान समझना। प्रत्येक व्यक्ति में चेतना जागे कि 'सब मेरे जैसे ही मनुष्य हैं। हम सब एक ही हैं। मैं भी मनुष्य हूँ। वह भी मनुष्य है। मुझे मनुष्य को मनुष्य की दृष्टि से देखना चाहिए।' जब तक इस दृष्टि का विकास नहीं होगा तब तक क्रूरता समाप्त नहीं होगी, व्यवहार नहीं बदलेगा।[143] मानवीय चेतना का विकास करुणा की पृष्ठभूमि में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि करुणा ही अहिंसा का प्राण और धर्म का फल है। अहिंसा और करुणा की चेतना जागे, प्राणी मात्र के प्रति समता की चेतना जागे और यह विचार सुदृढ़ बने कि मैं जानबूझकर किसी को कष्ट नहीं दूँगा। किसी को सताऊँगा नहीं, किसी के स्वत्व का हरण नहीं करूँगा। किसी का अहित और अनिष्ट नहीं करूँगा। यह चेतना ही धर्म का फल है। आज इसे गौण किया जा रहा है।[144]

संसार विरोधी जोड़ों (युगल) से बना है। भिन्नता के बावजूद संघर्ष से उबरने का सूत्र महावीर ने सह-अस्तित्व का दिया। इसका तात्पर्य है कि विरोधी व्यक्तियों, विरोधी विचारों और विरोधी धर्मों का सह-अस्तित्व हो सकता है। सामान्य धारणा है कि दो विरोधी धर्म एक साथ नहीं रह सकते। भगवान् महावीर ने कहा, 'दो विरोधी धर्म एक साथ रह सकते हैं।' दार्शनिक भाषा में नित्य-अनित्य, सामान्य-विशेष-ये एक साथ रह सकते हैं।....अस्ति और नास्ति, होना और न होना-दोनों साथ-साथ रहते हैं। दोनों विरोधी हैं, पर उनका सह-अस्तित्व है। विचारों की भिन्नता, शासन प्रणालियों की भिन्नता, जीवन स्तर एवं संस्कृति में भिन्नता के बावजूद सह-अस्तित्व संभव है। जिसका प्रमाण है भारतीय जनतंत्र।

आध्यात्मिक मूल्य

मूल्यों की श्रेणी में आध्यात्मिक मूल्य का सर्वोपरि स्थान है। अध्यात्म का सीधासा अर्थ है-अशुभ योग से शुभ योग में आना, अशुभ भाव से शुभ भाव में आना। जीवन-विज्ञान प्रशिक्षण के संदर्भ में आध्यात्मिक मूल्य का अर्थ है-स्वभाव में प्रतिष्ठित होना। इस कोटि में स्वीकृत मूल्यों की संक्षिप्त मीमांसा इष्ट है।

संबंधों का जीवन जीने वाला व्यक्ति पदार्थों में आसक्त बन जाता है। यह आसक्ति ही हिंसा एवं दुःख का मूल कारण है। इससे मुक्ति का उपाय है-अनासक्ति। अनासक्ति का अर्थ है-पदार्थ के साथ जुड़ी हुई चेतना का छूट जाना, उसके घनत्व का तनुकरण हो जाना, पदार्थ के साथ चेतना का सम्पर्क कम हो जाना। अनासक्त चेतना राग-द्वेष से उपरत होकर समता दृष्टि को पैदा करती है। यह समता दृष्टि ही जीवन में संतुलन पैदा करती है।

सामुदायिक जीवन का आधारभूत तत्त्व है सहिष्णुता। इसके अर्थ को सूत्रात्मक शैली में महाप्रज्ञ ने प्रस्तुति दी-

- सहिष्णुता का अर्थ है-सामर्थ्य पूर्ण समायोजन।
- सहिष्णुता का अर्थ है-शक्तिशाली होना।

- सहिष्णुता का अर्थ है-संवेग पर नियंत्रण।
- सहिष्णुता का अर्थ है-असहयोग।
- सहिष्णुता का अर्थ है-सुधार के लिए अवसर देना।

इनके अतिरिक्त सहिष्णुता का अर्थ है-अनुकूलता एवं प्रतिकूलता को सहना। जीवन में आने वाली परिस्थितियों को झेलने का मनोबल इस मूल्य से बढ़ता है।

सहिष्णुता के विकास की महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ हैं-

• परिस्थितियों को झेलना। • दूसरे व्यक्ति को सहन करना। • अपने से भिन्न विचारों को सहन करना। • राग और द्वेष की तरंगों का सामना करना[145] महाप्रज्ञ के इस चित्रण से सुस्पष्ट है कि सहिष्णुता एक ऐसा मूल्य है जिसका संबंध वैयक्तिक शांति, सामाजिक समरसता एवं विश्व शांति से है।

मृदुता सामूहिक जीवन की सफलता का सूत्र है। यह व्यक्ति के जीवन में सरसता भरती है। मृदु स्वभाव में लोच होती है। जो कार्य कठोर अनुशासन से नहीं होता वह मृदुता से हो जाता है। नैतिक चेतना का सूत्र है-मृदु व्यवहार। नैतिकता और मृदुता को अलग-अलग नहीं समझा जा सकता।

अभय जीवन विकास का आधारभूत मूल्य है। भगवान् महावीर ने अहिंसा पर बहुत बल दिया। उन्होंने कहा-'डरो मत। किसी से मत डरो। न बीमारी से डरो, न मौत से डरो, न कष्ट से डरो और न भूत से डरो। किसी से मत डरो। यह तभी सिद्ध होगा जब हम दूसरों को डराएंगे नहीं, सताएंगे नहीं, दूसरों को कष्ट नहीं देंगे, अपनी ओर से दूसरों का तिलमात्र भी अनिष्ट नहीं करेंगे। जैसे-जैसे यह चेतना जागती जाएगी, अभय की चेतना अपने आप विकसित होती चली जाएगी।[146] अभय अहिंसा का साधन है। जहाँ भय है वहाँ अहिंसा नहीं हो सकती। भय और अहिंसा का कोई मेल नहीं, कोई संगति नहीं। धर्म और अहिंसा दोनों का मूल मंत्र है अभय। अभय की चेतना का विकास संकल्प एवं अनुप्रेक्षा के प्रयोग से किया जा सकता है।

आत्मानुशासन मूल्य का विकास वैयक्तिक और सामुदायिक दोनों पक्षों को प्रभावित करता है। आत्मानुशासन का अर्थ है अपनी इन्द्रियों और मन पर विवेक का अंकुश रखना।

पर-शासन से ऊपर उठने वाला स्व-शासित हो जाता है। स्व-शासन का विकास होने पर समाज में अव्यवस्था नहीं होगी, किन्तु एक विशेष व्यवस्था होगी। नियम कृत्रिम नहीं होगा, किन्तु सहज होगा। प्रेरणा का मूल भय नहीं कर्तव्यनिष्ठा होगी।

स्वतन्त्रता और आत्मानुशासन के संबंध को प्रकट करते हुए महाप्रज्ञ ने बताया-जनतन्त्र का मूल आधार है-स्वतन्त्रता और उसका मूल आधार है-व्यक्ति का आत्मानुशासन। जब कोई व्यक्ति अपने आप पर अपना नियन्त्रण रख सकता है, तभी वह स्वतन्त्रता की लौ प्रज्ज्वलित कर सकता है। अधिनायकता के युग में भय और आतंक का राज्य होता है, इसलिए व्यक्ति के आत्मानुशासन का विशेष मूल्य नहीं होगा। जनतन्त्र के युग में अभय का राज्य होता है, इसलिए उसमें आत्मानुशासन का मूल्य बढ़ जाता है। चूँकि स्वतन्त्रता का अर्थ है आत्मानुशासन का विकास।

शिक्षा प्रणाली के संदर्भ में जीवन-विज्ञान का अर्थ है बौद्धिक विकास के साथ भावनात्मक विकास का सन्तुलन हो। भावनात्मक विकास का एक पहलू है—नैतिक विकास। इसके दो रूप हैं-सामाजिक नैतिकता और वैयक्तिक नैतिकता। सामाजिक नैतिकता और अनुशासन के संदर्भ में समाज या संस्था के नियम उपनियम व्यक्ति की वासना, वृत्तियाँ, संवेग की समस्या को बिना विचारे बनाये जाते हैं।

जिनका पालन वैयक्तिक नैतिकता व्यक्तिगत संवेगों और वृत्तियों पर नियंत्रण करने पर ही संभव होता है। जीवन-विज्ञान प्रशिक्षण में मूल्यों का शिक्षण भावनात्मक स्वस्थता का कारक है। इसके पीछे महत्त्वपूर्ण दृष्टि रही है-विद्यार्थी समाज में जीता है। उसे सामाजिक प्राणी बनना है। उसको समाज के नियमों को मानना है, राष्ट्र के नियमों का पालन करना है, क्योंकि वह राष्ट्र में रहता है। यदि शिक्षा के द्वारा उसकी यह मानसिकता नहीं बनती है तो वह अच्छा विद्यार्थी नहीं बन सकता। इससे भी अधिक जरूरी है संवेगों पर नियंत्रण करना। यह नैतिकता का महत्त्वपूर्ण बिन्दु है। यह शिक्षा के साथ जुड़े। जीवन-विज्ञान प्रशिक्षण में इसी अपेक्षा की पूर्ति हुई है। शिक्षा में साथ मानसिक शक्ति की बात भी जुड़ी होनी चाहिए। इस शक्ति का विकास जिस राष्ट्र, समाज या व्यक्ति में नहीं होता, वह कमजोर हो जाता है। जिन व्यक्तियों में मनोबल का विकास और भावात्मक विकास—दोनों न्यून हैं, शिक्षाशास्त्री उनके विकास के लिए नई-नई पद्धतियाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। आज अपेक्षा है कि सामाजिक परिवेश बदले और वर्ग-संघर्ष, वैमनस्य आदि समस्याएँ समाहित हों। इसके लिए भावनात्मक विकास अपेक्षित है।'[47] इस अपेक्षा की संपूर्ति मूल्यों के अभ्यास से संभव है। मूल्यों की प्रतिष्ठा हेतु विशेषरूप से अनुप्रेक्षा और भावना योग के प्रयोग निर्दिष्ट हैं।

अनुप्रेक्षाओं के प्रयोग से शरीरस्थ न्यूरोन्स वांछित विकास को संपादित करते हैं। परिणामतः चिंतन और अनुचिन्तन की प्रक्रिया से चित्त शुद्धि, चित्त समाधि, समस्या समाधान और संस्कार निर्माण की प्रक्रिया सुगम हो जाती है। मूल्यों से संबंधित प्रायोगिक अनुप्रेक्षाओं की सविधि मीमांसा, 'अमूर्त्त चिन्तन' पुस्तक में की गयी है। भावना योग वैचारिक विशुद्धि का प्रयोग है जिसका ऐतिहासिक संदर्भ है 'शिवसंकल्पमस्तु में मनः' मेरा मन पवित्र संकल्प वाला बने। मेरा मन निरन्तर पवित्र बना रहे।[148] मन की पवित्रता स्वभाव और व्यवहार को पवित्र बनाती है। परिणामतः अनेक वैयक्तिक, सामाजिक और राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान स्वतः हो जाता है।

अहिंसा की असीम शक्ति प्रायोगिक संदर्भ से जुड़कर समाधान की नूतन रेखाएँ खींचने में समर्थ बनी। जिसमें इक्कीसवीं सदी के मानव का आध्यात्मिक-भौतिक पथदर्शन करने की अद्‌भुत क्षमता है। जहाँ तक प्रयोग पक्ष का संदर्भ है गांधी-महाप्रज्ञ की प्रयोग प्रविधि में समानता और वैशिष्ट्य की युति है। प्रयोगों के द्वारा हृदय परिवर्तन की प्रक्रिया को दोनों मनीषी समान रूप से स्वीकारते हैं। जहाँ तक वैशिष्ट्य का प्रश्न है गांधी ने देश (भारत) की आज़ादी के संदर्भ में अथवा जन-जागरण की दृष्टि से अहिंसात्मक प्रयोगों को अपनाया। उन्हें सफलता भी मिली। साधुता के अनुगामी आचार्य महाप्रज्ञ ने स्वात्मानुभूति से जुड़े प्रयोगों को व्यवहारिक जगत् में प्रतिष्ठित कर व्यक्ति परिवर्तन से समूह परिवर्तन की मिसाल कायम की। जो स्वतंत्र भारत के नागरिकों की आत्म-विशुद्धि के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। विमर्श के आधार पर यह परिलक्षित होता है कि दोनों मनीषियों का एक मात्र लक्ष्य अहिंसात्मक प्रयोगों द्वारा व्यष्टि से समष्टिगत परिवर्तन घटित करना रहा है। व्यापकता का संदर्भ अब भी शेष है।

संदर्भ

1. गांधी जी, हिन्द स्वराज्य, 12
2. डॉ. एस. एन. शर्मा, आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, 94
3. हरिजन सेवक, 19.4.42

4. सम्पूर्ण गांधी वाड्.मय, खण्ड. 9. 62-63 सितम्बर, 1963
5. सम्पूर्ण गांधी वाड्.मय, खण्ड 15. 106,163 सितम्बर, 1965
6. सुमित्रा गांधी कुलकर्णी, महात्मा गांधी मेरे पितामह, 134
7-8. सम्पूर्ण गांधी वाड्.मय, 9.98-99, 226-27
9. सम्पूर्ण गांधी वाड्.मय, 15. 220-21
10. महादेव देसाई, हरिभाऊ उपाध्याय, संक्षिप्त आत्म-कथा, 99
11. डॉ. दशरथ सिंह, गांधीवाद को विनोबा की देन, 487
12. गांधीजी, अहिंसा-2.208. हरिजन सेवक, 21.5.38
13-14. साने गुरूजी, बापू की मीठी-मीठी बातें, 71-72, 51
15. आचार्य महाप्रज्ञ, घट-घट दीप जले, 240-41
16. गांधीजी, अहिंसा-3.290 हरिजन सेवक, 30.9.1939
17. Hind Swaroj or Indian Home. Rule. p. 12
18. राधाकृष्णन्, धर्म और समाज, 274-75
19. गांधीजी, अहिंसा. 1.118-19 हिन्दी नवजीवन, 15.8.1928
20. गांधीजी, अहिंसा-1.34 यंग इंडिया, 28.7.1921
21. गांधी चित्रावली, 85
22. बापू की मीठी-मीठे बातें, 19
23. युवाचार्य महाप्रज्ञ, महावीर का पुनर्जन्म, 296-7 सं. 1993
24. बापू-कथा, 102
25. संपूर्ण गांधी वाड्.मय, 15.104-5
26-27. बापू-कथा, 58, 59,107-9
28. अहिंसा-3.273, हरिजन सेवक 3-6. 1939
29. युवाचार्य महाप्रज्ञ, महावीर का पुनर्जन्म, 296. (सं. 1993)
30,31. मेरे सपनों का भारत, 133,122,135 सं. दिसम्बर 2000
32-33. युवाचार्य महाप्रज्ञ, प्रथम संस्करण-1986, धर्मचक्र का प्रवर्तन, 4.35
34-35. आचार्य महाप्रज्ञ, अणुव्रत की दार्शनिक पृष्ठभूमि, 197, 208, 167
36. महाप्रज्ञ ने कहा-26.77
37. अणुव्रत की दार्शनिक पृष्ठभूमि, 155
38. युवाचार्य महाप्रज्ञ, मेरी दृष्टिः मेरी सृष्टि, 199, 131 स. तृतीय
39. महाप्रज्ञ ने कहा-26. 26
40. मुनि सुखलाल, अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग-2.152-53
41-48. धर्मचक्र का प्रवर्तन, 68, 74, 71, 32-34, 84, 28
49. आचार्य महाप्रज्ञ, अहिंसा और शांति, 97
50-51. परिवार के साथ कैसे रहे? 154-57, 145
52. घट-घट दीप जले, 233 अणुव्रत दर्शन, 47
53. अणुव्रत की दार्शनिक पृष्ठभूमि, 168
54. धर्मचक्र का प्रवर्तन, 19
55. महाप्रज्ञ ने कहा-8, 91
56. युगीन समस्या और अहिंसा, 17-18
57. गांधी जी, अंहिसा भाग-4.396 हरिजन बंधु मूल गुजराती 5.5.46
58. युवादृष्टि, मार्च 2000.17-21
59. अंहिसा, 2.209-10

60. ऋषि विनोबा, 280
61. युवाचार्य महाप्रज्ञ, मेरी दृष्टिः मेरी सृष्टि 118 सं. तृतीय
62. में हूँ अपने भाग्य का निर्माता, 247, 250
63. मेरी दृष्टिः मेरी सृष्टि 119, 131
64. युवादृष्टि, अक्टूबर 2000.52-53
65. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग-1.202
66-67. युवादृष्टि, अक्टूबर 2000.52-53
68. अणुव्रत, 1 अगस्त 2000.5
69-71. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग-1.208,212, 101-208
72. सेवाग्राम, 25.8.42 हरिजन बंधु 31.8.40
73. हरिजन 18.1.42
74. महाप्रज्ञ ने कहा-7.68
75. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग-2.265, 166
76. मैं हूँ अपने भाग्य का निर्माता, 252-53, अणुव्रत 1-5 दिसम्बर कवर पृष्ठ, 2003
77. विज्ञाप्ति, 7-13 जुलाई 2002.7
78. महाप्रज्ञ ने कहा-4.150
79. विज्ञप्ति, 11-7 अप्रेल, 2004.16
80. युवाचार्य महाप्रज्ञ, अहिंसा के अछूते पहलु, 50
81. अणुव्रत, 1-5.12.2003.5
82. सं. भगवानदास, अहिंसा प्रशिक्षणः अनुभूतियाँ, कवर पृष्ठ
83. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग-1.90
84. मुनि धंनजय कुमार, महाप्रज्ञःजीवन दर्शन, 66, स. द्वितीय 1996
85. युवाचार्य महाप्रज्ञ, मेरी दृष्टिः मेरी सृष्टि, 133
86. अंहिसा व्यक्ति और समाज, 56
87. आचार्य महाप्रज्ञ, अंहिसा के सन्दर्भ में, 8
88. युगीन समस्या और अंहिसा, 93
89. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग-2.96.7
90. अंहिसा के अछूते पहलु . 51-53
91. लोकतन्त्र : नया व्यक्ति नया समाज, 63-66, 99-100
92. लोकतन्त्र : नया व्यक्ति नया समाज, 84-85. सं. अगस्त 2002
93. नया मानव : नया विश्व, 41-45
94. युवाचार्य महाप्रज्ञ, अहिंसा के अछूते पहलु. 31.32.सं.प्रथम जनवरी. 1989
95-96. लोकतन्त्र : नया व्यक्ति नया समाज, 88-89,85-89
97. आचार्य महाप्रज्ञ, अहिंसा और शांति, 88 सं. 1999
98. अहिंसा के अछूते पहलु, 51-53
99. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग- 2.36
100. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग- 2.60
101. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग- 1.33
102. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग- 2.25.36
103. महाप्रज्ञ ने कहा-3,33.179 सं. जनवरी,2006
104. अहिंसा प्रशिक्षणः अनुभूतियाँ.129, 2010
105. विज्ञप्ति, 9.15.5. 2004.11

106. महाप्रज्ञ ने कहा-16,26,46
107-108. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग- 2.257, 25.12.9
109. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग- 1.254
110. हरिजन सेवक, 20.7.47
111. लोकतन्त्र : नया व्यक्ति नया समाज नया समाज, 78
112. आचार्य महाप्रज्ञ, विचार को बदलना सीखें, 39 (सं. 2000)
113. अध्यात्म योग. अक्टूबर 2003.6
114. अहिंसा और शान्ति, 88
115. विचार को बदलना सीखें, 52-53
116. महाप्रज्ञ ने कहा-4,57
117. लोकतन्त्र नया व्यक्ति नया समाज, 101-3
118. आचार्य महाप्रज्ञ, प्रासंगिक है धर्म और दर्शन, 24-25 सं. 2003
119. महाप्रज्ञ ने कहा-4,84
120. जीवन विज्ञान शिक्षा का नया आयाम, 105-9 सं.1988
121. कैसे रहे परिवार के साथ?,30
122. अहिंसा के अछूते पहलु, 13-14,27-29. सं.2003
123. आचार्य महाप्रज्ञ, भीतर की ओर, 30 सं. 2001
124. आचार्य महाप्रज्ञ, अप्पाणं शरणं गच्छामि, 212, (पंचम संस्करण-1992)
125. अहिंसा के अछूते पहलु, 24-25. सं. 2003
126. आभामंडल, 8 संस्करण 1991
127. प्रेक्षाध्यान : सिद्धांत और प्रयोग, 28
128. आभामंडल. 51.69. (सं. 1991)
129. अहिंसा के अछूते पहलु, 24. सं. 2003
130. आभामंडल, 51. सं. 1991
131. महाप्रज्ञ ने कहा-2,18
132. आभामंडल, 72
133. गांधीजी, अहिंसा-4.362
134. आचार्य महाप्रज्ञ, तब होता है ध्यान का जन्म, 29 (सं. अगस्त.1996)
135. महाप्रज्ञ ने कहा-16,118
136. आचार्य महाप्रज्ञ, कैसी हो इक्कीसवीं शताब्दी?, 55
137. हिन्दी नवजीवन, २३.9.28
138-139. युवाचार्य महाप्रज्ञ, अमूर्त्त चिन्तन, 105-6, 116, 122-23
140. युगीन समस्या और अहिंसा, 44
141-142. अमूर्त्त चिन्तन, 137-38, 149,161
143. एकला चलो रे, 55.75
144. महाप्रज्ञ ने कहा-26,40
145. अमूर्त्त चिन्तन, 187-196,93-4
146. महावीर का पुनर्जन्म, 223. सं. 2003
147. अमूर्त्त चिन्तन, 221-225
148. अहिंसा के अछूते पहलु, 110 (सं. जनवरी 1989)

अध्याय-5

वैचारिक भेद और अभेद

पूर्ववृत्त

कर्म-कौशल और क्रियान्विति की धुरा पर प्रतिष्ठित महात्मा गांधी और आचार्य महाप्रज्ञ की सोच से उपजा सत्य वैज्ञानिक युग का दिशा दर्शन है। मनीषियों ने जिन शाश्वत मूल्यों को जीया और व्यापक पैमाने पर प्रस्थापित किया उनमें समाधान की अपूर्व क्षमता है। अहिंसा संबंधी मौलिक विचारों में से कतिपय तथ्यों का विमर्श प्रस्तुत अध्याय में 'अहिंसा संबंधी विचारों में 'भेद, अभेद एवं समन्वय' के रूप में किया गया है।

गांधी और महाप्रज्ञ के न केवल विचारों में ही समानता दृष्टिगोचर होती है अपितु जीवन व्यवहार के अनेक पक्षों में यथा—निस्पृहता, श्रमशीलता, खाद्य संयम, अनासक्ति, नियमित दिनचर्या, दृढ़ निश्चयता, करुणा-परोपकारिता, राष्ट्रोत्थान की भावना में साम्यता का निदर्शन है। इतना ही नहीं शारीरिक दृष्टि से भी काफी समानता गोचर होती। अहिंसा सोच में कई मौलिक समानताएँ हैं—

- अहिंसा दोनों मनीषियों के चिन्तन का केन्द्र बिन्दु है, व्यापक रूप से इसके पालन पर बल दिया है।
- अहिंसा के मनसा-वाचा-कर्मणा अनुशीलन पर बल दिया है।
- अहिंसा विकास के संदर्भ में अवस्था का कोई प्रभाव नहीं पड़ा बल्कि गांधी ने तो यहाँ तक कहा-मुझे ऐसा नहीं लगता कि मेरी देह छूटने के बाद मेरा विकास बन्द हो जायेगा।
- अहिंसा पर चली लेखनी का जहाँ तक प्रश्न है, दोनों में वैचारिक विकास का प्रवाह निरंतर प्रवर्धमान बना। गांधी ने कहा-मेरे एक ही विषय पर लिखे दो लेखों में कहीं विरोधाभास लगे तो बाद के लेख को प्रमाणभूत मानें। महाप्रज्ञ ने जीवन के 8-9 दशक में अहिंसा पर जितना कहा-लिखा उतना पूर्व में नहीं।

अहिंसा संवंधी चिंतन में व्यापक समानताओं के बावजूद असमानाताएँ भी देखी जाती हैं, जो स्वाभाविक हैं। दोनों का कार्यक्षेत्र भिन्न-भिन्न दिशाओं में गतिमान हुआ है। भिन्नता के कतिपय संदर्भ हैं-

- गांधी को मरणशील को मृत्युदान, संपत्ति सुरक्षा हेतु हिंसा का वरण मान्य था, पर महाप्रज्ञ ने सर्वथा-सर्वदा हर स्थिति में अहिंसा के अनुपालन पर बल दिया।
- गांधी ने अहिंसा के संगठित प्रयोग पर बल दिया-राजनैतिक, सामाजिक आंदोलन में इसका उपयोग उनकी इस सैद्धांतिक मान्यता का व्यावहारिक रूप था। महाप्रज्ञ प्रथमतः व्यक्तिगत

अहिंसा विकास के पक्षधर हैं किंतु सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में भी समुचित रूप से अहिंसा के विकास पर बल देते रहे हैं।

गांधी का अहिंसा प्रयोग प्रायः सामूहिक रहा। व्यक्तिगत स्तर पर उन्होंने स्वयं अहिंसा के कई प्रयोग किये पर महाप्रज्ञ ने मनुष्येतर मूक प्राणियों-प्रकृति के कण-कण से तादात्म्य स्थापित करने पर्यंत बल दिया है।

गांधी और महाप्रज्ञ के अहिंसा विषयक विचारों में अनेक समन्वय सूत्र गुँफित हैं। मानव के समक्ष आज अस्तित्व का संकट उपस्थित हो रहा है। ऐसी विषम परिस्थिति से उबरने के लिए मनीषियों द्वारा निर्दिष्ट अहिंसा का मार्ग आशा की नई किरण है। दोनों मनीषियों के अहिंसक चिंतन की समन्वित प्रस्तुति, प्रयोग और समाचरण विश्व मानव को संरक्षण देने में समर्थ है। अपेक्षा है उसके व्यापक प्रयोग और प्रशिक्षण की।

भेद दृष्टि के आधारभूत मानक

बीसवीं/इक्कीसवीं शताब्दी को आध्यात्मिक दिशा देने वालों में महात्मा गांधी एवं आचार्य महाप्रज्ञ का नाम अग्रणी है। सनातन मूल्यों के आलोक में युगधारा को मोड़ने वाले महापुरुषों के विचारों में समानता और वैशिष्ट्य का अपूर्व संगम है। अहिंसा के विराट् संदर्भ को जीवन-व्यवहार की समग्र प्रक्रिया में समरस बनाने हेतु गांधी का प्रयत्न स्तुत्य है। आचार्य महाप्रज्ञ ने अहिंसा की अखंड आराधना को जीवन का सदाव्रत बनाया। वे अहिंसा के प्रतीक-पर्याय थे। उनके चिंतन, वाणी एवं कर्म से अहिंसा मुखरित हुई। उनकी दृष्टि में अहिंसा किसी भी स्थिति में अपनी मौलिकता को अतिक्रांत नहीं कर सकती। मनीषियों के अहिंसा संबंधी विचारों में भेद, अभेद एवं समन्वय की दिशा का विमर्श प्रस्तुत अध्याय में अभीष्ट है।

कार्यक्षेत्र

गांधी और महाप्रज्ञ की अहिंसादृष्टि को मौलिक आधार देने वाले तथ्यों में महत्त्वपूर्ण है-उनका कार्यक्षेत्र। गांधी के कार्य का अभिन्न अंग बना-राजनैतिक क्षेत्र। स्वभाव से गांधी आध्यात्मिक, नैतिक निष्ठावान व्यक्ति थे। राजनीति को उन्होंने आपद्धर्म के रूप में अपनाया और भारतीय उच्च आदर्शों पर उसके मानचित्र को नया रूप प्रदान किया। परिणामतः वे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अग्रणी ही नहीं महानायक बन गये। गांधी को महानायक की भूमिका पर प्रतिष्ठित करने वाला सेतु था-उनका अहिंसा प्रेम। इसका अंदाज इससे लगाया जा सकता है कि गांधी देश की आजादी को अति महत्त्वपूर्ण लक्ष्य मानते थे फिर भी वे उसे अहिंसा को त्यागकर प्राप्त करना नहीं चाहते थे। विदेशी सत्ता को हटाने के लिए हिंसा के बदले अहिंसा को हथियार बनाने का कारण भी यही था।

गांधी ने अहिंसा का सर्वाधिक प्रयोग राजनीति के क्षेत्र में किया। चाणक्य और मैक्यावली जैसे अनेक राजनीतिक चिंतकों के प्रभाव से छल-छद्म, दांव-पेंच तथा झूठ-प्रपंच आदि दुर्गुणों से युक्त राजनीति को उन्होंने अहिंसा के प्रयोग से स्वच्छ एवं स्वस्थ करके, सत्य, प्रेम तथा करुणा आदि सद्गुणों से संपृक्त किया। इससे भी बढ़कर उन्होंने अपनी व्यक्तिगत मुक्ति का आधार राष्ट्र सेवा को बनाया। गांधी से पूर्व किसी को यह नहीं सूझा कि राजनैतिक आंदोलन तथा समाज सेवा के कार्य भी वैयक्तिक मुक्ति के साधन हो सकते हैं। अहिंसा की अमिट आस्था से अभिनव भावधारा का संचार हुआ जिसकी प्रस्तुति उनके विचारों में देखी जाती है। मैं सत्य का विनम्र सेवक हूँ। मैं आत्मज्ञान प्राप्त करने को अधीर हूँ। मैं इस जीवन में मोक्ष चाहता हूँ। मेरी राष्ट्र सेवा मेरी आध्यात्मिक

साधना है, जिसके द्वारा मैं अपनी आत्मा को शरीर के बन्धन से मुक्त करना चाहता हूँ। विश्व के नश्वर राज्य की मुझे कामना नहीं है। मैं तो उस स्वर्ग राज्य के लिए साधना में लीन हूँ जिसे मुक्ति कहते हैं।

अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए गुफा सेवन की मुझे आवश्यकता नहीं दिखती। गुफा तो मेरे भीतर भी मौजूद है यदि उसे मैं जान पाऊँ। गुफावासी योगी भी हवाई महल की कल्पना में फंस सकता है किन्तु राजमहल का वासी जनक ऐसी कल्पनाओं से मुक्त है। शरीर गुफा में और मन संसार में रहे तो गुफावासी को भी शान्ति नहीं मिल सकती। किन्तु महलों के चाक चिक्य के भीतर बसने वाले जनक को ऐसी शान्ति प्राप्त हो सकती है जिसे वे ही जानते हैं जिन्हें ऐसी शान्ति मिल चुकी हो। मेरे लिए मोक्ष का मार्ग स्वदेश व निखिल मानवता की सेवा का मार्ग है। मेरी यात्रा मोक्ष और सनातन शान्ति की ओर है। देश-भक्ति तो इस यात्रा का पथ है। इसलिए मेरी दृष्टि में राजनीति धर्म से भिन्न नहीं हो सकती। राजनीति को सदैव धर्म की अधीनता में चलना चाहिए। धर्महीन राजनीति मृत्युपाश के समान है क्योंकि उससे आत्मा का हनन होता है।[1] यह अहिंसा और राजनीति की समन्वित साधना का स्पष्ट निदर्शन है जो उनकी अभिनव सोच का सबूत देती है।

गांधी का राजनैतिक व्यक्तित्व उनके आध्यात्मिक व्यक्तित्व को उजागर करता है। उन्होंने अपनी मानसिकता का स्पष्ट उल्लेख किया-शुद्ध अर्थ में मैं आध्यात्मिक और धार्मिक व्यक्ति हूँ। मैंने राजनीति को माध्यम बनाया है जनता के साथ आत्मीयता स्थापित करने के लिए। उसके लिए यह सबसे बड़ा माध्यम है, इसलिए इसे मैंने चुना है। किन्तु मेरी कोई भी राजनीति, समाजनीति, अर्थनीति अध्यात्म से पृथक् नहीं हो सकती। अगर अध्यात्म से पृथक् है तो वह मेरे लिए कचरा है, धूलि है, किसी भी तरह से वह मेरे लिए उपयुक्त नहीं है।[2] प्रकट रूप से गांधी ने राजनीति को कितने पवित्र भाव से अपनाया था। यह उनके कथन से जान सकते हैं।

राजनीति के क्षेत्र में अहिंसा की शक्ति पर संदेह करने वालों से कहा-'मेरी अहिंसा की पद्धति कभी शक्ति को घटा नहीं सकती, बल्कि संकट के समय, यदि राष्ट्र चाहेगा, तो केवल यही पद्धति उसे अनुशासित और सुव्यवस्थित कर पाने में समर्थ बनाएगी।'[3] उनके ये विचार न केवल भारतीय राजनीति तक सीमित थे अपितु दुनिया के सभी परतंत्र मुल्कों के विषय में भी थे। इसका एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा। जब मिस्त्र अंग्रेजी जुए से मुक्त होने की कोशिश कर रहा था तब उसने गांधी (अथवा भारत) से संदेश माँगा। गांधी ने शुभकामनाओं के साथ लिखा-'यह कितना अच्छा होगा, यदि मिस्त्र अहिंसा के संदेश को अपनावे?'

भारत के निमित्त विश्व राजनीति के समक्ष उन्होंने आत्मत्याग के अलौकिक नियम को उजागर किया और बताया कि जिन ऋषियों ने हिंसा के बीच में से अहिंसा का मंत्र निकाला उनमें न्यूटन से कहीं अधिक क्षमता थी। उनकी वीरता और साहसिक शक्ति वेलिंगटन से कम नहीं थी। शस्त्र-शक्ति के प्रयोग को भलीभाँति समझकर उन्होंने उसकी निःसारता देख ली और इसलिए उन्होंने इस खिन्न और श्रांत संसार को सिखलाया कि मोक्ष या उद्धार अहिंसा के द्वारा जिस तरह हो सकता है, हिंसा के द्वारा उस तरह नहीं हो सकता।[4] इसे सत्यापित किया—'अहिंसा बिना खून खराबे के राजनीतिक सफलता पान का तरीका है।' दृढ़ता के साथ वे अपने ध्येय के साथ जुड़े रहे। अनेक प्रसंगों पर प्रस्तुति दी-मेरे पास कोई गुप्त मार्ग नहीं है। मैं सत्य को छोड़कर किसी कूटनीति को नहीं जानता। मेरा एक ही शस्त्र है-अहिंसा। संभव है कि मैं अनजाने, कुछ दूर के लिए गलत रास्ते

भटका लिया जाऊँ किन्तु यह हमेशा के लिए नहीं चल सकता। अतएव मैंने अपने लिए ऐसी कैद निश्चित कर ली है। जिसके दायरे के भीतर ही मुझ से काम लिया जा सकता है।

स्वतंत्रता आंदोलन के सिलसिले में गांधी के समक्ष प्रश्न उपस्थित किया गया—'क्या आप उग्र राष्ट्रवादी की प्रवृत्ति प्रकट नहीं करते? और क्या आप यह नहीं समझते कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए दस लाख प्राणों का बलिदान कर देना खतरनाक आदर्श होगा।' इसे समाहित करते हुए कहा मैं नहीं समझता कि अपने निज के जीवन का बलिदान करना कोई खतरनाक आदर्श है और इन बहुमूल्य प्राणों का बलिदान तो वह देश करेगा, जिसे जबरदस्ती अनिवार्य रूप से शस्त्र-त्याग करना पड़ा है। आपको यह स्मरण रखना चाहिए कि भारत अहिंसा के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है और इसलिए किसी दूसरे के प्राण लेने का वहाँ कोई प्रश्न ही नहीं है। हम अपने प्राणों को इतना सस्ता या फालतू नहीं समझते कि व्यर्थ के लिए उन्हें गँवा बैठें, किंतु साथ ही हमें दस लाख प्राणों का भी बलिदान करना पड़े तो हम कल ही करने को तैयार होंगे और इसपर आकाश में से ईश्वर यही कहेगा-शाबाश मेरे पुत्रों, शाबाश! हम अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं। आप साम्राज्यवादी प्रकृति के लोग हैं। आपको दूसरे को भयभीत करने की आदत पड़ी हुई है।[5] गांधी के इस स्पष्ट उत्तर में आत्म बलिदान और राष्ट्रप्रेम का जीवंत संदेश था। ऐसी शक्ति उनमें अहिंसा की आस्था से निष्पन्न हुई।

गांधी कहते थे-कोई भी राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को स्वतंत्रता का दान नहीं दे सकता। वह तो अपना खून देकर ही प्राप्त करनी अथवा खरीदनी पड़ती है, जो क्रिया सन् 1919 से अपने आप भारत में चल रही है उसमें हम अपना खून काफी दे चुके हैं। किन्तु यह हो सकता है कि ईश्वर की कृपालु दृष्टि में अभी ऐसा प्रतीत होता हो कि आत्म-शुद्धि की क्रिया में हम अभी पूरे नहीं उतरे। पर हमारी दृढ़ प्रतिज्ञा है कि जब तक कोई भी अंग्रेज भारत में शासक की तरह रहना अस्वीकार न करेगा, हम आत्म-बलिदान की इस क्रिया को बराबर जारी रखेंगे। अपने इस फौलादी संकल्प को गांधी ने पूरा कर दुनिया के सामने नये इतिहास का सृजन किया। अहिंसा प्रयोग की सार्थकता और वैज्ञानिकता को सिद्ध कर दिखाया।

गांधी ने दृढ़ता पूर्वक कहा अहिंसा की शिक्षा प्रत्येक धर्म में वर्तमान है, किन्तु मेरा विश्वास है कि हिन्दुस्तान में उसके आचरण को एक वैज्ञानिक रूप दिया गया है। अगणित ऋषि-मुनियों ने तपस्या करके अपने जीवन का उत्सर्ग किया है। किन्तु आज अहिंसा के उस आचरण का लगभग अन्त हो चुका है। क्रोध का उत्तर प्रेम से और हिंसा का अहिंसा से देने का सनातन नियम फिर से जीवित किया जाना चाहिए। विचारों को क्रियान्विति दी और जन-जन को आजादी की पृष्ठभूमि में अहिंसा के अनुपालन पर बल दिया। उन्होंने इस तथ्य को समझाया कि जो व्यक्ति तथा राष्ट्र अहिंसा का अवलंबन करना चाहे उन्हें आत्म सम्मान को छोड़कर, अपना सर्वस्व गंवाने के लिये तैयार रहना चाहिये।.....यह समझना जबदरस्त भूल है कि अहिंसा केवल व्यक्तियों के लिये ही लाभदायक है जन समूह के लिए नहीं। जितना वह व्यक्ति के लिये धर्म है उतना ही वह राष्ट्र के लिये भी धर्म है।[6] इस कथन में अहिंसा संबंधी व्यापक दृष्टि का निदर्शन है।

भारत की आजादी में अहिंसा की भूमिका कहाँ तक रही यह चिंतनीय प्रश्न है, पर गांधी ने अपना विश्वास प्रकट करते हुए कहा 'मेरा विश्वास है कि अहिंसा का पालन ही हमें आजादी तक ले आया है। चाहे उसमें कितने ही दोष क्यों न रहे हों।' इस आत्म निवेदन में सत्यानुभूति का आलोक था। गांधी ने भारतीय आजादी के सफर को जो अहिंसा-सत्य का अपूर्व आधार दिया वह मानव

जाति के लिए अमूल्य उपहार बन गया। पूरी दुनिया के प्रबुद्ध जन-मानस ने गांधी के अहिंसक आजादी आंदोलन को पाशविक शक्ति पर नैतिक शक्ति की विजय करार दी। राजनीति उनका न केवल कर्म क्षेत्र बनकर रहा अपितु आत्म विशुद्धि का धर्मक्षेत्र बन गया।

कर्मक्षेत्र की तुला पर आचार्य महाप्रज्ञ का समाचरण गांधी से सर्वथा भिन्न था। उनका कर्मभेदी आत्मोथान का एकमात्र लक्ष्य आध्यात्मिक चिंतन-मंथन पूर्वक शोध और एतद् विषयक गतिशीलता बनी। 'तिन्नाणं तारयाणं' मुनि के विशेषण को सार्थक बनाने में महाप्रज्ञ ने अपनी प्राज्ञशक्ति को नियोजित किया। उन्होंने धार्मिक जगत् में पनपे अवरोध-धर्म से परलोक सुखी बनता है, को हटाने में अहँ भूमिका अदा की। उनका मानना था कि धर्म से वर्तमान जीवन सुखी और शांतिपूर्ण बनता है। पर धार्मिक कहलाने वालों को अपना सिंहावलोकन करना होगा। 'चितंन करें कि धर्म को हम किस रूप में स्वीकार कर रहे हैं। जहाँ प्रामाणिकता नहीं, नैतिकता नहीं, ईमानदारी नहीं, वहाँ अहिंसा नहीं हो सकती और व्यवहार भी अच्छा नहीं चल सकता।' अध्यात्म की गहराई में अवगाहन कर उन्होंने अनेक मौलिक तथ्यों का विश्लेषण किया। उन्होंने बतलाया-'वसुधैव कुटुम्बकम्'-आध्यात्मिक भूमिका का अनुचिन्तन है। अध्यात्म के शिखर पर पहुँचने वाले व्यक्ति के लिए कोई अपना और पराया नहीं होता। तव-मम का भेद समाप्त हो जाता है। इस भूमिका की अनुभूति और उसकी अभिव्यंजक शब्दावली को हम समाज की भूमिका पर सीधा नहीं उतार सकते।.....समाज व्यवस्था में परिवर्तन चाहने वाले अच्छे-अच्छे सिद्धान्तों, वचनों और प्रवचनों को सामने रखकर इतिश्री मान लेते हैं। सिद्धांत और विचार आकार लिए बिना ही निरंजन-निराकार बन जाते हैं। सामाजिक धरातल पर उच्च आदर्श तब तक व्यापक नहीं बन सकते जबतक व्यक्ति का मस्तिष्क अर्थात् अन्तःकरण बदल नहीं जाता। एतदर्थ उन्होंने मस्तिष्क परिष्कार/हृदय परिवर्तन पर बल दिया।

सामाजिक धरातल पर महाप्रज्ञ ने विकास की नूतन परिभाषा प्रस्तुत की-जिस राष्ट्र में नैतिकता अधिक है, सदाचार ज्यादा है, हिंसा कम है, अहिंसा का विकास है, लोग शांति और सुख के साथ जीते हैं, जहाँ पागलखाने या मेंटल हॉस्पीटल कम हैं, जेलें कम हैं, वह राष्ट्र और समाज विकसित है। विकास का यह पेरामीटर मानव मन में नई चेतना का संचार करता है। यह उनके व्यापक राष्ट्र प्रेम को प्रकट करता है कि वो अपनी सीमा में रहकर भी देश की प्रत्येक इकाई का वास्तविक विकास किस कदर चाहते थे। उनके शब्दों में—'मैं हमेशा आदमी को सामने रखकर चलता हूँ। समाज में इन्सानियत का विकास हो, भाईचारा बढ़े, समाज और राष्ट्र की एकता मजबूत हो, नैतिक मूल्यों का विकास हो, यही हमारा मुख्य विजन है, यही हमारे कार्यक्रमों का निचोड़ हैं।'[8] कथन में राष्ट्रोत्थान की स्पष्ट झलक है। नैतिकता की व्यापक प्रतिष्ठा हेतु उन्होंने सुझाया—'अहिंसा के क्षेत्र में काम करने वाली स्वयं सेवी संस्थाओं का अपना एक मंच हो, संयुक्त राष्ट्रसंघ हो। उसका अपना अर्थशास्त्र हो, समाजशास्त्र हो, आचार-संहिता हो।' इस मंतव्य से महाप्रज्ञ की व्यापक अहिंसा जागृति की संकल्पना का अनुमान लगाया जा सकता है। उन्होंने अहिंसक ग्राम योजना एवं रोजगार प्रशिक्षण की प्रक्रिया को समाज में प्रतिष्ठित करने पर बल दिया। अहिंसा प्रशिक्षण की प्रविधि का सूत्रपात कर उसके रचनात्मक स्वरूप को व्यापकता देने के लिए सप्त वर्षीय अहिंसा यात्रा का संचरण किया।

सामाजिक संदर्भ में अहिंसा की गुणवत्ता उजागर हो इसके लिए आध्यात्मिक शक्ति का नियोजन किया। अपनी सभाओं में लोगों से आह्वान किया—'हमें समाज को एक नया दर्शन देना है और वह दर्शन है अहिंसा का। अहिंसा में समाज के समीकरण की क्षमता है। समाज में जो इतना भेद,

इतना अंतर और इतना वैषम्य है, उसे पाटने का सामर्थ्य है। मैं मानता हूँ वह समाज व्यवस्था, वह राज्य व्यवस्था, वह अर्थव्यवस्था और वह धर्मव्यवस्था भी अच्छी नहीं होती, जो व्यक्तियों के तनाव को दूर न कर सके। आज की सबसे बड़ी बीमारी है तनाव। यह बीमारी दूसरी तमाम बीमारियों की जन्मदात्री है।'[9] यह उनका मात्र वाचिक अभ्युपगम ही नहीं है। इसके उपचार स्वरूप विभिन्न प्रायोगिक पक्षों को अध्यात्म के धरातल पर उजागर किया है।

अहिंसा की प्रस्थापना में एक महत्त्वपूर्ण आयाम है-सुविधावादी दृष्टिकोण बदले। हम प्रदूषण से चिन्तित हैं, त्रस्त हैं। सुविधावादी दृष्टिकोण प्रदूषण पैदा कर रहा है, उस पर हमारा ध्यान ही नहीं जा रहा है। 'मैं जानता हूँ-समाज सुविधा को छोड़ नहीं सकता किन्तु वह असीम न हो-यह विवेक आवश्यक है। यदि सुविधाओं का विस्तार निरन्तर जारी रहा तो अहिंसा का स्वप्न यथार्थ में परिणत नहीं होगा।'

समाज व्यापी विषमताओं का चित्रांकन किया-आज अनैतिकता बहुत है, भ्रष्टाचार बहुत है, अपराध, हिंसा बहुत है, आतंक और उपद्रव बहुत है। यह सारा क्यों है?.....मूर्च्छा (मोह) के कारण है। मोह का घना अंधकार है। जब ज्ञान का पूर्ण प्रकाश होता है फिर पूर्ण मोह का विलय होता है। जब तक मोह का अंधकार है व्यक्ति सच्चाई को पकड़ नहीं पाता। इस मूर्च्छा के विलयन में वे प्रेक्षाध्यान के अभ्यास को महत्त्वपूर्ण बतलाते। वह इसलिए जरूरी है कि जो धारा हमारे भावों को उत्तेजना देती है, उन्हें मलिन बनाती है, मन में अशान्ति पैदा करती है, युद्ध और आंतक पैदा करती है, उस धारा को कमजोर बनाना है। उस धारा को प्रबल बनाना है, जिसमें शान्ति और अहिंसा है, सामंजस्य और समन्वय है, मैत्री और सह अस्तित्व है।[10] भावधारा के परिवर्तन से समाज में अहिंसा प्रतिष्ठा का उपक्रम समस्या के स्थायी समाधान का द्योतक है। उन्होंने व्यक्ति परिवर्तन पूर्वक समाज में अहिंसा प्रतिष्ठा की दृष्टि से सैकड़ों प्रेक्षाध्यान शिविर समायोजित किये, जिसके सकारात्मक परिणाम आये हैं।

प्रेक्षाध्यान शिविरों के पॉजिट्‌िव परिणामों का राज है स्वयं महाप्रज्ञ द्वारा संभागियों के लिए अमूल्य समय का नियोजन। प्रति शिविरार्थी की चेतना को छूने का, झंकृत करने का उपक्रम अपने आपमें मौलिक था। संभागी के हृदय में आचार्य महाप्रज्ञ के सौम्य व्यवहार की अपूर्व छवि अंकित होती। इस संदर्भ के उदाहरणों में से एक का उद्धरण प्रासंगिक होगा। अंतर्राष्ट्रीय प्रेक्षाध्यान शिविर अहमदाबाद में, श्री पी. के. त्रिवेदी (पूर्व आई. ए. एस) उपस्थित हुए उनके अनुभव के बोल हैं—'यहाँ आने से पहले मैं आशंकित था कि जैन बनाने की बात होगी या अपने धर्म के महत्त्व को बढ़ावा होगा। पर, यहाँ तो जीवन जीने के बारे में व प्रायोगिक विधि से स्वयं आचार्य प्रवर प्रयोग करवातें हैं। ये तो बड़ी विशेष बात है, इतने बड़े आचार्य प्रवर सरल भाव से सभी से पूछते हैं, मिलते हैं कितनी बड़ी बात है।'[11] ऐसा अनुभव अनेक व्यक्तियों का है।

महाप्रज्ञ ने केवल आध्यात्मिक जीवन ही नहीं अपनाया अपितु धर्म के क्षेत्र में पलने वाले पाखंड का भी खंडन किया। धर्म को यथार्थ के धरातल पर सामयिक प्रस्तुति दी। उनकी दृष्टि में धर्म के तीन रूप हैं-नैतिकता, उपासना और अध्यात्म। तीनों का खंडित रूप धर्म की अपूर्णता है। स्वयं को धार्मिक कहने वालों से उनका आह्वावान था—धर्म के क्षेत्र में चलने वाली रूढ़ धारणाओं, मान्यताओं से परे होना होगा। रूढ़िवादों का संकलन किया जाए तो धर्म का स्थान पहला हो सकता है। इसलिए धार्मिक जगत् में रहने वालों को चिन्तन करना होगा कि केवल मान्यता के आधार पर ही धर्म के तत्त्व का प्रतिपादन न करें। प्रत्यक्षानुभूति के मार्ग को भी प्रशस्त करें।

ज्ञान और आचार की प्रतिष्ठा का प्रथम सोपान है—नैतिकता। व्यक्ति अपने आपको धार्मिक तो कहता है पर नैतिकता को जीने का प्रयास नहीं करता। नैतिकता शून्य धर्म विस्मय का विषय है।.....आदमी कोरा अनुयायी ही न बनें। वह सही अर्थों में धार्मिक बनें। इससे व्यक्ति और धर्म दोनों तेजस्वी बनेंगे।[12] कथन में एक ओर वर्तमान की विकृत धार्मिक मानसिकता का चित्रण है वहीं दूसरी ओर धार्मिकों को आत्मनिरीक्षण का अवकाश भी मिला है। इस मंतव्य में महाप्रज्ञ के कर्मक्षेत्रीय कौशल का अनूठा उदाहरण देखा जा सकता है। वर्तमान के संदर्भ में वे अपने कर्त्तव्य एवं दायित्व के प्रति पूर्ण सजग रहे हैं। इसका प्रतिबिम्ब शब्दों में देखते है—हमें यदि अहिंसा के वातावरण का निर्माण करना है तो दो-तीन बातों पर ध्यान देना होगा—

• पहली बात है-मैं जातीयता और साम्प्रदायिक कट्टरता में विश्वास नहीं करूँगा। मेरा सम्प्रदाय ही अच्छा है, दूसरे सब खराब हैं, इस अवधारणा ने हिंसा को फैलाने में जड़ का कार्य किया है।

• दूसरी बात है-कोई किसी भी धर्म का आयोजन करे, उत्सव मनाए, मैं उसमें हस्तक्षेप नहीं करूँगा।

• तीसरी बात-मैं खण्डनात्मक नीति का प्रयोग नहीं करूँगा। ये संकल्प ही धर्म-सम्प्रदायों से अहिंसा के वातावरण के निर्माण हेतु पर्याप्त हैं।[13] अपने कथन की पुष्टि में महाप्रज्ञ लिखाते हैं भावी पीढ़ी को हम अच्छा बनाना चाहतें हैं तो एकता के संस्कार का निर्माण करें। संप्रदाय, जाति, वर्ण आदि के आधार पर किसी को ऊँच-नीच न मानें। अहमदाबाद में हमारी मौजूदगी में हिन्दू-मुसलमानों के बीच पुलिस अधिकारियों के साथ जब शांति समझोते की शर्त लिखी जा रही थी तो उसमें एक मुख्य धारा यह थी कि किसी भी संप्रदाय का पर्व, त्यौहार आदि कुछ हो तो दूसरे संप्रदाय के लोग उसका सम्मान कर सकें और उसमें भाग ले सकें तो बहुत अच्छा, किंतु अगर ऐसा संभव न हो पाए तो कम से कम उसमें किसी प्रकार की बाधा तो न डालें।[14] प्रस्तुत मंतव्य इंगित करता है कि महाप्रज्ञ सामाजिक धरातल पर किस कदर भाईचारे और पारस्परिक प्रेम को प्रखर बनाने में प्रयत्नशील बने रहे हैं। उनके प्रयत्न मानवता को उजागर करने में महत्त्वपूर्ण साबित हुए है।

अपने कर्तव्य के साथ साधनामय जीवन के प्रति आचार्य महाप्रज्ञ पूर्ण सजग थे। ठहराव उन्हें मान्य नहीं था। सतत् गतिशीलता ही उनका संकल्प बना। अखण्ड अहिंसा की आराधना ही उनका लक्ष्य रहा है। वे कहते—''अहिंसा में मेरी आस्था है, उसके प्रयोग भी करता रहता हूँ। किन्तु हिंसा के चिर-संचित संस्कारों को चीरकर मैं अहिंसा की प्रतिष्ठा कर चुका हूँ, यह मैं मानूँ तो मेरा दम्भ होगा। मैं इतना ही मान सकता हूँ कि मैं अहिंसा की दिशा में चल रहा हूँ। कब तक कहां पहुँच पाऊँगा?—यह प्रश्न केवल वर्तमान से ही जुड़ा होता तो मैं इसके उत्तर की रेखा खींच डालता किंतु यह प्रश्न मेरे अतीत से भी जुड़ा है, इसलिए अहिंसा की दिशा में चल रहा हूँ, इससे आगे कहने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है।

'मैं जो हूँ, वही रहूँ' इस मनोवृत्ति में मेरी कोई आस्था नहीं है और इसलिए नहीं है कि इससे मैं अहिंसा की पौध को पनपते देखता हूँ।'

'मैं अपूर्ण हूँ और पूर्ण होना चाहता हूँ' यही मेरी अहिंसा का आदि-बिंदु है। अपूर्ण पूर्ण तभी होगा, जब जो है, वह नहीं रहेगा और जो नहीं है, वह होगा।'[15] इस आत्मालोचन में परिपूर्ण अहिंसा विकास की अन्तः अभिप्सा मुखर है। प्राणवान अहिंसा को शब्दों में प्रस्तुति मिली—'अहिंसा शब्द मेरे लिए कोई नया शब्द नहीं है। मैंने केवल अहिंसा का संकल्प ही नहीं किया, उसे जीया है। अहिंसा

को वही जी सकता है, जिसका अपने आवेश पर नियंत्रण है। सौभाग्य मानता हूँ कि मुझे सदा संतुलित रहने की कला प्राप्त है। इसलिए मैं अहिंसा का जीवन जीने में सफल बना हूँ।'[16] यह उनके कर्मक्षेत्र की प्रामाणिकता का उत्कृट नमूना है। विमर्शतः दोनों ही महापुरूष अपने-अपने कार्यक्षेत्र में पूर्ण निष्ठा और समर्पण भाव के साथ गतिशील देखे जाते हैं। अतः उनका कार्य क्षेत्र एक दूसरे से भिन्न होने पर भी कर्म कौशल में भेद खोजपाना कठिन है।

रचनात्मक कार्यक्रम : उपदेश-प्रचार

अहिंसा की पृष्ठभूमि में गांधी ने देश के उज्ज्वल भविष्य हेतु रचनात्मक कार्यक्रम को अपने हाथ में लिया। उनका मानना था-जब तक देश की जनता कर्मशील एवं सुशिक्षित नहीं होगी तब तक स्वराज्य का संकल्प आकार नहीं ले पायेगा। चिंतन की क्रियान्विति में स्वतंत्रता आंदोलन का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा रचनात्मक कार्यक्रम को बनाया। इसके उपक्रम थे-

- अस्पृश्यता-निवारण • संपूर्ण मद्यनिषेध • हिन्दू-मुस्लिम एकता
- चरखा, खादी-ग्रामोद्योग के रूप में सौ फीसदी स्वदेशी और
- सात लाख गाँवों का संगठन।[17]

सभी पहलुओं का गांधी ने सटीक चित्रण किया। प्रथम के संबंध में वे कहते-अछूतों की स्थिति सुधारने के लिए यह जरूरी नहीं है कि उनसे उनके परंपरागत पेशे छुड़वाये जाये अथवा उन पेशों के प्रति उनके मन में अरुचि पैदा की जाये। ऐसा नतीजा पैदा करने के लिए की गई कोशिश उनकी सेवा नहीं, असेवा होगी। बुनकर बुनता रहे, चमार चमड़ा कमता रहे और भंगी पाखाना साफ करता रहे और तब भी वह अछूत न समझा जाय तभी कह सकते हैं कि अस्पृश्यता का निवारण हुआ।[18] उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल दिया। जब तक हिन्दू और मुसलमानों के बीच सच्ची एकता स्थापित नहीं हो जाती, तब तक मैं दोनों से कहता हूं कि इस साम्राज्य (अंग्रेजी राज) को मिटाना असम्भव है। सात करोड़ मुसलमान और तैंतीस करोड़ हिन्दू, एकता के सिवा किसी और तरह साथ नहीं रह सकते। हिन्दू और मुसलमानों में जबानी नहीं, दिली एकता होनी चाहिए। अगर ऐसा हो तो हम एक साल में स्वराज्य की स्थापना कर सकते हैं। इस एकता की सिद्धि के लिए छात्रों से कहा—लड़कों को उर्दू और देवनागरी दोनों लिपियाँ सीखनी होंगी। आपका ऐसा करना स्वराज्य और हिन्दू-मुस्लिम-एकता, दोनों की दृष्टि से अच्छा होगा। आजादी की पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय जीवन के लिए हिन्दू-मुस्लिम-एकता खाने-पीने और सोने के समान ही आवश्यक चीज है।[19] इस एकता के जरिये वे पूरे भारत की एकात्मकता साधना चाहते थे।

रचनात्मक कार्यक्रम के द्वारा गांधी देश की आन्तरिक स्थिति सुधारने में जुट गये। समस्या के मूल को पकड़ा। बेरोजगारी एवं बेकारी निराकरण हेतु उन्होंने चरखा, खादी एवं ग्रामोद्योग पर बल दिया। उनका कहना था-बड़े-बड़े शहर मात्र ही सारा भारत नहीं है, भारत तो अपने साढ़े सात लाख गाँवों में निवास करता है और शहर उन गांवों पर अपनी जिन्दगी बसर करते हैं। अतः गाँवों का उत्थान अनिवार्य है। वस्तुतः गांधी रचनात्मक कार्यक्रम को अहिंसा के प्रचार का आधार मानते थे।

आचार्य महाप्रज्ञ आम जनता के आध्यात्मिक एवं नैतिक उत्थान हेतु ताउम्र प्रयत्नशील रहे। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि वे सामाजिक एवं युगीन समस्याओं से सरोकार नहीं रखते। उनके उपदेश मानव को नई दिशा देने वाले और व्यवहारिक जीवन से जुड़े हुए थे। सामाजिक परिवेश

को दूषित करने वाली तथा स्वस्थ मनोवृत्ति का चित्रण एक साथ किया हैं—जो दूसरों को पराधीन रखना चाहते हैं, हीन बनाये रखना चाहते हैं, जातिगत भेदभाव रखते हैं; छुआछूत, ऊँच-नीच और काले-गोरे के पचड़े में फँसे हुए हैं, ये अभय नहीं हैं; शान्त नहीं हैं। जिनकी भोग-लिप्सा बढ़ी हुई है, जो परिग्रह के पुतले और शोषण के पुंज बने हुए हैं शांति उनके लिए प्रश्नचिह्न बनी हुई है? शांतिपूर्ण जीवन वही बिता सकता है, जो बुराइयों से दूर है। बुराई से दूर वही रह सकता है, जिसमें प्रतिरोधात्मक शक्ति या स्व-नियन्त्रण का पर्याप्त विकास है।[20] वैयक्तिक शांति के साथ समतापूर्ण समाज व्यवस्था का निदर्शन है। इससे उनकी सामाजिक सोच का स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है। वे अपने आध्यात्मिक प्रयत्नों के द्वारा स्वस्थ-समाज को आकार देने में प्रयत्नशील रहे।

जिस समाज में रहते हैं उसके प्रति वे अपने नैतिक दायित्व का वहन बखूबी करते रहे हैं। समय-समय पर सामाजिक परिवेश में आने वाले अवरोध को गतिशीलता प्रदान करते। उनके शब्दों में—सामुदायिकता की भूमिका को समझना आवश्यक है। सहानुभूति, सेवा, सहयोग, सापेक्षता के बिना किसी भी प्राणी का जीवन नहीं चल सकता इसलिए हमें सामुदायिकता का विकास करना है।

वर्तमान समाज व्यापी विषमताओं के संबंध में आचार्य महाप्रज्ञ का अभिमत रहा है कि अर्थ के प्रति अति आकर्षण के कारण अनेक समस्याएँ पैदा हो रही हैं। बेरोजगारी, भूखमरी के कारण हिंसा बढ़ रही है। कुछ व्यक्ति अर्थ के प्रति इतने लोलुप हो गए, सुविधा के प्रति इतने लोलुप हो गए कि सब कुछ भोगना चाहते हैं। वैयक्तिक संग्रह की मनोवृत्ति ने अर्थ के विषय में अनर्थकारी समस्याएं पैदा कर दी है।.....जब तक धर्म के लोग राजनीति के लोग, समाज के प्रमुख लोग और सत्ता पर बैठे लोग सब मिलकर चिंतन नहीं करेंगे तब तक समस्या का समाधान कोई अकेला नहीं कर सकता। यह प्रश्न केवल व्यक्ति का नहीं, समाज का नहीं, पूरे राष्ट्र का है। इसलिए इस विषय में, नैतिकता के विषय में सब लोगों को चिंतन करना चाहिए और निर्णय करना चाहिए कि हम कैसे समाज को इस अभिशाप से मुक्त कर सकें।[21] इस समस्या के उपचार हेतु उन्होंने मानव के चरित्र बल पर प्रकाश डाला और कहा जब चरित्र बल बढ़ता है तब आदमी केवल व्यक्तिगत संग्रह पर ही नहीं, मूर्च्छा पर भी नियन्त्रण पाने का प्रयत्न करता है अतः अहिंसा का विकास और अमूर्च्छा का विकास ये दो महान गुण हैं।....जिस व्यक्ति या समाज में इनका यथेष्ट विकास होता है, वही चरित्रवान् कहलाने का औचित्य पाता है। उन्होंने इसकी प्रतिष्ठा में अणुव्रत के नियमों का मनन उपयोगी बतलाया।

सामाजिक समरसता के लिए आचार्य महाप्रज्ञ ने समग्र व्यक्तित्व विकास को महत्त्वपूर्ण बतलाया। सुख और शांति के लिए दृष्टिकोण के परिवर्तन पर बल दिया—आध्यात्मिक व्यक्ति का दृष्टिकोण वैज्ञानिक बनें और वैज्ञानिक व्यक्ति का दृष्टिकोण आध्यात्मिक बनें। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के बिना समस्या के समाधान के नियमों को नहीं खोजा जा सकता। आध्यात्मिक दृष्टिकोण के बिना अहिंसा, करुणा और मैत्री का व्यवहार नहीं किया जा सकता। वर्तमान की प्रमुख समस्याएँ—भूखमरी और गरीबी, भ्रष्टाचार, विकास की असंतुलित अवधारणा, नैतिकता से शून्य अर्थशास्त्रीय अवधारणा और समस्या के प्रति गंभीर चिंतन के प्रति वे अपना मौलिक आध्यात्मिक विज़न रखते थे।

विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु अहिंसा प्रशिक्षण के अतंर्गत उन्होंने आर्थिक स्वास्थ्य हेतु आवश्यक बतलाया है—

- विसर्जन की मनोवृत्ति का प्रशिक्षण।

- असंग्रह का प्रशिक्षण।
- विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था का प्रशिक्षण।
- अर्थशास्त्र और विश्वशांति।
- अर्थशास्त्र और स्वस्थ समाज।
- अर्थशास्त्र में प्रामाणिकता का प्रशिक्षण।
- संविभाग की मनोवृत्ति का प्रशिक्षण।
- उपभोग की असीम लालसा के नियमन एवं उपभोग के सीमाकरण का प्रशिक्षण।[22]

महिला जगत् की अस्मिता से जुड़े दहेज का यक्ष प्रश्न महाप्रज्ञ की अहिंसक सोच से अछूता नहीं रहा। उनकी दृष्टि में दहेज की समस्या का इलाज है—करुणा का विकास, मानवीय दृष्टिकोण और संवेदनशीलता के सूत्र की अनुभूति। सुविधावादी और प्रदर्शन के दृष्टिकोण ने करुणा का स्रोत सुखा दिया है। उसे फिर से प्रवाहित करने के लिए एक अभियान की अपेक्षा है, एक आंदोलन की जरूरत है। लोभ और सुविधावाद की मनोवृत्ति व्यक्ति को कठोर बना देती है। उस कठोरता के ताप से संवेदना का रस सूख जाता है।

पदार्थ और मनुष्य-इन दोनों में मनुष्य का अधिक महत्त्व है। इस सच्चाई को उजागर करना आवश्यक है दहेज की समस्या से उबरने के लिए। इस कार्य के लिए एक नयी व्यवस्था पर ध्यान केन्द्रित हो-

- दहेज के लिए ठहराव न करना।
- दहेज का प्रदर्शन न करना।

इन उपायों पर सामूहिक चर्चा और सामूहिक चिंतन होना चाहिए।

दहेज प्रथा के संदर्भ में महाप्रज्ञ का आकलन था कि कभी-कभी ऐसा लगता है-विवाह धन के साथ हो रहा है, कन्या के साथ नहीं हो रहा है।....दहेज की समस्या से निपटने के लिए उनके अभिमत में-अणुव्रत समिति के अन्तर्गत एक विवाह-कक्ष का नियोजन जरूरी है। उस कक्ष का काम होगा-जनता से संपर्क करना, अणुव्रत के संकल्पों को जन-जन तक पहुँचाना और विवाह को दहेज के दानव से मुक्त करना।[23] इसके साथ ही वे महिलाओं की आत्मनिर्भरता और क्षमताओं के जागरण पर बल देते थे।

अध्यात्म के आलोक में समस्याओं का समाधान उनकी प्रशस्त शैली का सबूत है। मनुष्य की मूल प्रवृत्तियाँ—क्रोध, अभिमान, कपट, लोभ, भय, शोक, घृणा, काम-वासना, कलह-इनसे उत्पन्न होने वाले दोषों का नियंत्रण या शोधन आध्यात्मिकता से ही हो सकता है, इसलिए समाज में उसका अस्तित्व अनिवार्य है। इस मंतव्य की पुष्टि में उनका स्पष्ट अभिमत रहा है कि आध्यात्मिकता से भले ही समाज का रूप-परिवर्तन न हुआ हो, किंतु उससे सत्य के प्रति आस्था की सृष्टि हुई है। चरित्र और नैतिकता के प्रति जो आस्था है, वह आध्यात्मिकता का ही प्रतिफल है। आध्यात्मिकता का अंकन संख्या से मत करिए। उसका अंकन गुण-मात्रा से करिए। यह देखिए वे लोग कैसे हैं, जिनमें आध्यात्मिक विकास हुआ है। जिन विचारधाराओं ने मनुष्य को भौतिक इकाइयों में विभक्त किया है, वे सब काल्पनिक और सामयिक हैं। आध्यात्मिकता का प्रतिबिम्ब मानवीय विभक्ति नहीं किंतु एकता है। उसके अनुसार भौगोलिक, जातीय, सांप्रदायिक, भाषायी-ये भेद अस्वाभाविक हैं, एकता स्वाभाविक है/आध्यात्मिक व्यवहार की स्वीकृति के मुख्य अंग हैं—

- मानवीय एकता में विश्वास।
- मानवीय स्वतंत्रता में विश्वास।
- विश्व-शांति एवं विश्व-मैत्री में विश्वास।
- सह-अस्तित्व में विश्वास
- सत्य में विश्वास
- प्रामाणिकता में विश्वास
- निश्छल-व्यवहार में विश्वास
- पवित्रता में विश्वास
- संग्रह की सीमा में विश्वास

ये विश्वास धर्म के मूलभूत सिद्धांतों में आस्था को प्रकट करते है। प्रथम चार अहिंसा अणुव्रत के फलित हैं। पाँचवां सत्य, छठा-सातवां अचौर्य, आठवां ब्रह्मचर्य और नवां अपरिग्रह का फलित है। व्यवहार में अध्यात्म का प्रतिपालन जीवन की महान् सफलता है। इससे व्यक्ति और समाज दोनों लाभान्वित होते हैं। इसका आधारभूत नैतिक आंदोलन 'अणुव्रत-आंदोलन' है। इसके द्वारा समाज, राष्ट्र का चरित्र उन्नत बनता है। उन्नत चारित्र देश की अखंडता-सुरक्षा का आधार है। महाप्रज्ञ के शब्दों में—चरित्र और देशभक्ति इन दोनों का परस्पर गहरा संबंध है। देश की सुरक्षा करने वाले भी नैतिकता और चरित्र के अभाव में ऐसा कार्य कर देते हैं कि देश की सुरक्षा भी धुंधलाने लगती है।[24] व्यापक पैमाने पर वे नैतिक-चारित्रिक उत्थान पर बल देते एवं इसके व्यवहारिक स्वरूप की निर्मिति के लिए 'अणुव्रत-ग्राम' अहिंसक ग्राम की योजना को मूर्त बनाने में अपनी शक्ति का नियोजन भी करते रहे।

दाण्डी मार्च : अहिंसा यात्रा एक व्यूह

अहिंसा के प्रसार का एक सशक्त प्रयोग है-यात्रा। गांधी की दाण्डी यात्रा और महाप्रज्ञ की अहिंसा यात्रा भिन्न स्थितियों में संपादित इतिहास का स्वर्णिम दस्तावेज है। यात्रा की दृष्टि से दोनों ही पद यात्राएँ हैं पर उद्देश्य की दृष्टि से सर्वथा भिन्न है। गांधी की दाण्डी यात्रा जहाँ आजादी के सत्याग्रह आंदोलन के तहत नमक कानून को तोड़ने के निमित्त संपादित हुई, महाप्रज्ञ की अहिंसा यात्रा वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में सद्भावना और भाईचारे की प्रतिष्ठा के साथ अहिंसा की शक्ति को व्यावहारिक बनाने के लिए संपादित हुई। एक का उद्देश्य स्वराज्य था जबकि दूसरे का उद्देश्य स्वतंत्र देश के नैतिक पतन को रोक कर नैतिक मूल्यों का विकास और बढ़ती हिंसा के स्थान पर अहिंसा के प्रति आस्था को पुनः जगाना। संज्ञान हेतु उनका विमर्श जरूरी है।

12 मार्च 1930 की सुबह इतिहास प्रसिद्ध दाण्डी यात्रा शुरू हुई। गांधी के साथ आश्रम के इकहत्तर साथी थे। वह कूच केवल दाण्डी तक के लिए नहीं था, वह तो पूर्ण आजादी के लिए था। गांधी के नेतृत्व में काफ़िले का पैदल प्रवास एक महान् राष्ट्रीय यात्रा थी। हर आदमी की जबान पर 'नमक' का नाम था। अहिंसा इस यात्रा का प्राण थी। अहिंसा की पृष्ठभूमि में उन्होंने लोगों को समझाया कि सरकार सारी निष्ठुरता का उपयोग करेगी। वह हमें कुचल देना चाहेगी, लेकिन अहिंसा और विनय का मार्ग हमें नहीं छोड़ना है। भले ही सिर पर डण्डे बरसें, घायल हो जाएँ और मर भी जाना पड़े तो वह आहुति है, उसके लिए मन में दुःख नहीं होना चाहिए। उन्होंने नेताओं के गिरफ्तार हो जाने पर भी आंदोलन जारी रखने के गुर बतलाये। सारा कार्यक्रम इस तरह बनाया गया था कि नमक-कानून को तोड़ने में हुई गिरफ्तारियों से आंदोलन किसी भी स्थिति में रुके नहीं। दाण्डी मार्च से पूर्व गांधी ने लार्ड इर्विन को एक पत्र भेजा जिसमें स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया—स्वाधीनता का आन्दोलन मूलतः गरीब से गरीब की भलाई के लिए है। इसलिए इस लड़ाई की शुरुआत भी इस अन्याय के विरोध से होगी। आश्चर्य तो इस बात पर है कि इतने लम्बे समय

से नमक के इस निर्दय एकाधिकार को सहन करते रहे। मैं जानता हूँ कि आप मुझे गिरफ्तार करके मेरे प्रयत्न को विफल कर सकते हैं। उस दशा में मुझे आशा है कि मेरे पीछे हजारों आदमी नियमित रूप से यह काम सम्हालने को तैयार होंगे। नमक के घृणित कानून को तोड़ने के कारण जो सजाएँ दी जायेंगी, उन्हें वे खुशी-खुशी बर्दास्त करेंगे।[25] पत्र की पंक्तियाँ गांधी के असीम आत्मबल को प्रकट करती है जो उन्हें अहिंसा की साधना से प्राप्त था।

दाण्डी कूच के बीच उन्होंने यह घोषणा की—'आजादी नहीं मिली तो रास्ते में मर जाऊँगा या आश्रम के बाहर रहूँगा। नमक कर न उठा सका तो आश्रम लौटने का भी कोई इरादा नहीं है।' उनके संकल्प ने भारतीय जन-मानस को आंदोलित किया। दाण्डीयात्रा के दौरान वे जहाँ पहुँचते, वहाँ हजारों लोग एकत्र होते। बापू के विचारों से अवगत होते। वे यात्रा का भरपूर आतिथ्य करते। आतिथ्य ग्रहण में भी गांधी बड़े सजग रहते। बरबादी उन्हें असह्य थी। गरमी के दिन थे। तरबूजों और खरबूजों का मौसम था। एक पड़ाव पर लोग गाड़ियों में भर-भरकर तरबूज और खरबूजे लाये। वे इतने थे कि खाये नहीं जा सकते थे। फल वहाँ बरबाद हो रहे थे। कोई आधा ही खाकर फेंक देता। महात्मा ने वह दृश्य देखा। अपने भाषण में प्रतिकार की भाषा में बोल उठे—'आप लोगों ने मेरा सिर नीचा कर दिया। देश में एक तरफ भूखमरी है, आधा पेट खाकर जीने वाले लोग हैं और यहाँ मेरी स्वातन्त्र्य यात्रा में इस तरह की बरबादी होती है। अपनी वेदना मैं कैसे व्यक्त करूँ? फिर से ऐसा पाप नहीं करना।'[26] गांधी के ये हित शिक्षामृत वचन सुनकर यात्री सजग बन गये।

24 दिन के बाद गांधी दाण्डी पहुँचे। समुद्र तटपर उन्होंने नमक-कानून तोड़ा और कहा—'नमक-कानून तोड़ा जा चुका है। अब जो कोई सजा भुगतने को तैयार हो वह जहाँ चाहे और जब सुविधा देखे नमक बना सकता है।' इस आह्वान के साथ जगह-जगह सभाएँ हुई। पूना, कराची, मद्रास, सोलापुर, कलकत्ता, दिल्ली हर जगह लोग अगली कार्यवाही के लिए अधीर हो रहे थे। गांधी ने घोषणा की अब धारासना का नमक-भण्डार लूटा जायेगा। वाइसराय को पत्र से सूचित किया—या तो वे नमक कर उठा लें या सत्याग्रहियों की गिरफ्तारी करें या मन चाहा गुण्डापन दिखायें। उत्तर में पाँच अप्रैल को गांधी को गिरफ्तार करके यरवदा जेल भेज दिया गया। जाते हुए वे लिखवा चुके थे—'यदि इसे शुभारम्भ मान लिया जाये, तो पूर्ण स्वराज्य मिले बिना नहीं रहेगा। मुट्ठी टूट जाये, लेकिन खुलनी नहीं चाहिए।' इस दृढ़ प्रतिज्ञ संदेश ने सत्याग्रहियों के भीतर अद्‌भुत चेतना का संचार किया। आंदोलन के तहत् लोगों ने हंसते-हंसते यातनाएँ झेली। हजारों की संख्या में लोग जेलों में ठूंस दिये गये। यातना और अनुशासन के दृश्य को चित्रित करते हुए। 'न्यूफ्रीमैन' के संवाददाता ने लिखा 'धारासना जैसे पीड़ादायक दृश्य मेरे देखने में नहीं आये। कभी-कभी तो ये इतने दुःखद हो जाते कि क्षण-भर को आँखें भर लेनी पड़ती थी। स्वयंसेवकों का अनुशासन अद्‌भुत था। लगता था कि इन लोगों ने गांधीजी की अहिंसा को धोलकर पी लिया।'[27] यह अतिरंजना नहीं, आँखों देखे सत्य का निदर्शन है, जिसमें गांधी की जीवंत अहिंसा का दर्शन है। दाण्डी यात्रा के सकारात्मक परिणाम निकले। सरकार के साथ संघर्ष में हिन्दुस्तान की जीत हुई। वायसराय ने गांधी से समझौता किया। संसार में हिन्दुस्तान की प्रतिष्ठा बढ़ी।

नमक के लिए दाण्डी यात्रा अहिंसा की शक्ति के परीक्षण का एक अभिनव प्रयोग था। यह एक नैतिक आन्दोलन था जिसके द्वारा शासन को खुली चुनौती दी गयी थी। नमक-कानून तोड़ने का एक मात्र उद्देश्य था सरकार की शोषणमयी नीति का अन्त करना/साथ ही पूर्ण आजादी के लिए एक अच्छी शुरुआत करना।

'आध्यात्मिक दृष्टि से शांति स्थापित करना और भौतिक दृष्टि से शांति की प्रतिष्ठापना में रात-दिन का अंतर है।' इस अंतर की अंतहीन दूरी को पाटने का सार्थक उपक्रम है अहिंसा यात्रा। करूणा के पर्याय भारत ज्योति आचार्य महाप्रज्ञ ने जीवन के नवेंदशक में कठोर यात्रापथ का अनुशीलन कर एक बार पुनः गांधी की 'डांडी-मार्च' को जीवंत बनाया। लक्ष्य की भिन्नता के बावजूद अहिंसा यात्रा ने जन जागृति की लहर पैदा की वह सामयिक परिस्थितियों में महत्त्वपूर्ण है। इस यात्रा ने न केवल प्रबुद्ध अथवा संपन्न लोगों को प्रभावित किया अपितु अनपढ़-गँवार एवं अभाव की जिंगदी जीने वालों में भी प्रेरणा और प्रोत्साहन भरकर जीने का अभिनव अर्थ प्रदान किया है।

गांधी की डांडी मार्च की पृष्ठभूमि थी अनैतिक कानूनों का अन्त करना। लोक महर्षि आचार्य महाप्रज्ञ की अहिंसा यात्रा की पृष्ठभूमि बनें अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य तुलसी के अमोघ वचन 'अणुव्रत की पदयात्रा से राष्ट्र व्यापी पृष्ठभूमि का निर्माण हुआ है। अब यदि पुनः पदयात्रा हो तो उसके सकारात्मक परिणाम आयेंगे।' तात्कालीन निमित्त बना भगवान महावीर की 2600 वीं जन्मजयंती के उपलक्ष में भारत सरकार द्वारा घोषित 'अहिंसा-वर्ष'। महाप्रज्ञ ने अनुभव किया घोषणा के अनुरूप कार्य नहीं हो रहा है। मंथन पूर्वक महाप्रज्ञ ने 5 दिसम्बर 2001 को राजस्थान के चूरू जिले के सुजानगढ़ कस्बे से त्रिवर्षीय 'अहिंसा यात्रा' का घोषणा पूर्वक शुभारंभ किया। इसकी कालावधि जन मानस की भावनाएँ और निष्पत्तियों को देखते हुए जनता के आग्रह पर बढ़ाकर 2008 तक की गई। इसका कुल यात्रा पथः 9313.5 कि.मी. है। दोनों महापुरूषों की (युवाचार्य महाश्रमण) 11 हजार 433 कि. मी. अहिंसा यात्रा रही। सप्त वर्षीय अहिंसा यात्रा का मंचनकर अधिशास्ता ने देश की जनता को शांति का संदेश दिया।

अहिंसा यात्रा की सफलता का राज है इसके विराट् उद्देश्य की समायोजना। हिंसा के बढ़ते दावानल को अहिंसा के अमृत जल से शांत करना। भारतीय संस्कृति के दिव्य स्तूप प्रेम, सौहार्द, भाईचारे के परस्परता मूलक मूल्यों को स्थापित करना। अहिंसात्मक शक्तियों को संगठित कर हिंसा की आस्था को धूमिल करना। जन-जन में अहिंसक चेतना का जागरण और नैतिक मूल्यों का विकास इस यात्रा का मुख्य लक्ष्य था। नकारात्मक भाव हिंसा के जनक हैं अतः नकारात्मक भावों को सकारात्मक बनाना। प्रयोग और प्रशिक्षण के द्वारा आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण करना। बहुउद्देशिय अहिंसा यात्रा का एक उद्देश्य यह भी था—'जनता को अहिंसा का स्वर भी सुनाई देता रहे।' हजारों-हजारों ऐसे युवक हैं, जो अहिंसा का नाम भी नहीं जानते। वे केवल गोली और बम की भाषा को समझते हैं और उसी वातावरण में साँस लेते हैं। ऐसे व्यक्तियों से भी संपर्क साधना। इस अभियान में विशेषरूप से पूर्वांचल के सीमांतवासी उग्रवादी युवकों से बातचीत पूर्वक विश्वास में लेकर उन्हें अहिंसा का सिद्धांत समझाया गया। उन्होंने साश्चर्य कहा 'यह अहिंसा की बात हमने सुनी ही नहीं। यह बात हमें बहुत अच्छी लग रही है इसके बारे में हमें अभी तक किसी ने बताया ही नहीं।' ऐसे ही लाखों लोगों को अहिंसा का संदेश पहुंचाना इस यात्रा का आशय रहा है।[28]

उद्देश्य

अहिंसा यात्रा के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए महाप्रज्ञ ने बताया—अहिंसक चेतना का जागरण और नैतिक मूल्यों का विकास इस यात्रा का लक्ष्य है। जब लोग जागृत होंगे तब वे हर घटना को सकारात्मक दृष्टिकोण से देखेंगे। नकारात्मक भाव से हिंसा का वातावरण पैदा होता है। अहिंसा यात्रा का एक

उद्देश्य है नकारात्मक भावों को सकारात्मक बनाना। गरीबी, शोषण, अन्याय, अपराध और पर्यावरण प्रदूषण इन सभी प्रश्नों का केवल आध्यात्मिक प्रशिक्षण से निवारण नहीं हो सकता और इन प्रश्नों का हल समाज व्यवस्था के परिवर्तन से भी नहीं हो सकता। इनके निवारण का उपाय है अहिंसक चेतना का जागरण। हिंसा वृद्धि को रोकने, नैतिक मूल्यों के विकास एवं जनजागरण जैसे व्यावहारिक लक्ष्यों के आधार पर इस यात्रा की परियोजना तैयार की गई।[29] परियोजना मात्र से इसके व्यापक उद्देश्यों को जाना जा सकता है। कार्यों की श्रृंखला में महत्त्वपूर्ण कार्य था आम जनता से सीधा संपर्क साधकर उनकी समस्याओं का उचित समाधान करना।

अहिंसा यात्रा के दौरान शास्ता ने औपचारिकता से उपरत रहकर हिंसा के मूल कारणों को खोजा और उस पर प्रकाश डाला। अभाव को हिंसा का बड़ा कारण बताया। उन्होंने कहा—रोटी के बिना व्यक्ति का जीवन भारभूत बन जाता है। यात्रा में गाँवों, नगरों में निकटता से यह अनुभव किया-अगर हिंसा को कम करना है, अपराधों को कम करना है, लूट-खसोट, चोरी-डकैती को कम करना है तो उसका एक रास्ता है—समाज व्यवस्था का परिवर्तन। स्वस्थ समाज व्यवस्था का प्रवर्तन। स्वस्थ समाज व्यवस्था वह है, जिसमें आंतरिक परिवर्तन और बाहरी परिवर्तन का संतुलन हो। कोरे बाह्य परिवर्तन से सुधार नहीं होगा, भीतरी परिवर्तन के बिना भी रूपांतरण संभव नहीं है। दोनों का समन्वय जरूरी है। समन्वय स्थापन की दृष्टि से अहिंसा यात्रा के दौरान विशेष प्रयत्न किये गये। गाँवों में गरीबी, शोषण, अन्याय, अशिक्षा, नशा, अपराध और पर्यावरण प्रदूषण-इन समस्याओं को सुलझाने के लिए अहिंसा की चेतना का जागरण और आजीविका की विविधा का प्रशिक्षण अहिंसा यात्रा का प्रमुख कार्य बन गया। यात्रा में शिक्षा, नशामुक्ति, संतुलित आहार, स्वच्छता, स्वास्थ्य, महिला शिक्षा, पर्यावरण चेतना, अंधविश्वास, कुरूढ़ियों के उन्मूलन, अस्पृश्यता निवारण, आजीविका शुद्धि आदि का प्रायोगिक प्रशिक्षण के साथ जन-जन की शिक्षा पर जोर दिया गया।

अहिंसा ग्राम निर्माण, आदर्श जिला निर्माण आदि के लिए विचार विमर्श पूर्वक काया-कल्प के संकल्प की क्रियान्विति की गई। मनुष्य में अपार शक्ति है-'शक्ति को पहचानो, जीवन सुधारो, गाँव को आदर्श बनाओ' यह उद्घोष बनाया गया।[30] इन रचनात्मक कार्यों को लेकर चलने वाली अहिंसा यात्रा की निष्पत्तियाँ उन गाँवों, कस्बों, नगरों में देखी गयी जहाँ से यह कारवाँ गुजरा।

प्राणवान उपक्रम

अहिंसा यात्रा में प्रशिक्षण के कार्य पर विशेष बल दिया गया ऐसा महाप्रज्ञ के शब्दों से परिलक्षित होता-प्रशिक्षण बहुत जरूरी है। हमने जब अहिंसा की यात्रा शुरू की तो यात्रा के साथ-साथ अध्ययन शुरू किया। अहिंसा यात्रा के कार्यकर्ताओं ने पानी, बिजली, रोजगार-धंधा, शिक्षा, आपसी सौहार्द आदि की तालिका बनाई। जहाँ भी जाते उसके आधार पर गाँव का सर्वेक्षण होता। उस क्षेत्र की स्थिति का आकलन करते। निर्धारित बिंदुओं के आधार पर गाँव की समस्याओं और अपेक्षाओं की सूची राज्य-शासन तक भी पहुँच जाती।[31] इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रशिक्षण के कार्य को किस निष्ठा के साथ संपादित किया गया।

विभिन्न क्षेत्रों में अहिंसा प्रशिक्षण को व्यापक संदर्भों में देखा और चलाया जा रहा है। भ्रूणहत्या, नशामुक्ति और दूसरे अभियान भी इसी परिप्रेक्ष्य में हैं। इससे संबंधित अच्छा और रचनात्मक काम देखना हो तो सूरत में जाकर देखें वहाँ जैन ही नहीं, दूसरी कौमों के पटेल आदि लोग अहिंसा प्रशिक्षण

और रोजगारमूलक प्रवृतियों से बहुत सक्रियता के साथ जुड़ रहे हैं।.....लोग अहिंसा प्रशिक्षण के कार्य को वर्तमान की समस्या का सबसे बड़ा समाधान मान रहे हैं। देश के ही नहीं, विदेश के लोग आए, अभी अमेरिका, रूस और जर्मन के लोग आए। सबने हमारे प्रयत्नों की सराहना की।[32] अहिंसा यात्रा की अनुगूँज सात समंदर पार पहुँची।

अहिंसा यात्रा के चरण गुजरात की उस धरा पर टिके जहाँ गोधरा काण्ड की हिंसात्मक दर्दनाक घटना की त्रासदी ने लोगों के दिलों में नफरत पैदा कर दी। सांप्रदायिक वैमनस्य को सद्भावना का बोध पाठ पढ़ाने स्वयं महाप्रज्ञ रथयात्रा में शामिल हुए। रथयात्रा के 125 वर्ष के इतिहास में यह पहला अवसर था जब कोई जैन मुनि उस यात्रा में शामिल हुए। इस यात्रा संबंधी महाप्रज्ञ का अनुभव रहा-अगर हमारी सद्भावना हो, हमारा प्रयत्न हो तो कठिन से कठिन परिस्थिति में, तनाव के वातावरण में भी शांति की लौ जलाई जा सकती है। रथयात्रा निकलने से पहले मुस्लिम भाइयों द्वारा ही यह सूचना मिली कि ऐसे कुछ अराजक तत्त्व रथयात्रा में विघ्न डालने की पूरी तैयारी कर चुके हैं। दंगे में प्रयुक्त होने वाला सामान जुटाया जा रहा है। किंतु आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि स्वयं मुसलमानों ने ही पुलिस को यह सूचना देकर पहले ही पुलिस प्रशासन को सावधान कर दिया। जिससे वे लोग अपनी योजना को कार्यरूप में परिणत नहीं कर सके।[33] इससे पूर्व हिन्दू-मुस्लिम एकता के पैगाम से भावित अहिंसा यात्रा के नायक आचार्य महाप्रज्ञ के चरण ख्वाजा साहब की दरगाह अजमेर में टिके और सभी को मानवता का संदेश दिया।

अहिंसा का सिंहनाद करते हुए अहिंसा यात्रा मुम्बई भिंवडी के उस इलाके में पहुँची जहाँ मुस्लिम बहुल नागरिकों का निवास है। वहाँ के प्रमुख नागरिकों ने आचार्य महाप्रज्ञ को कुरान शरीफ भेंट की और तहेदिल से स्वागत किया। भाईचारे-सद्भावना-सौहार्द का अद्भुत नजारा अहिंसा यात्रा ने निर्मित किया। इसका एक प्रसंग उदाहरणर्थ प्रस्तुत है—महाराष्ट्र के ठाणे नगर में गृह राज्यमंत्री विजय दर्डा आए। उन्होंने कहा—'आचार्यश्री! आज मैंने एक नया दृश्य देखा।' कैसा दृश्य—'आपकी सभाओं और यात्राओं में मुसलमान भी आते है। मैंने यह बात दूसरों के साथ बहुत कम देखी है। यह समुदाय पता नहीं क्यों जल्दी से दूसरों के साथ घुलमिल नहीं पाता।'

मैंने (महाप्रज्ञ) कहा—'आपने केवल एक जगह देखा। हकीकत यह है कि यहाँ तो बहुत कम मुस्लिम भाई आए हैं, इनकी उपस्थिति दूसरे स्थानों पर बहुत ज्यादा रही है।'[34] इस कथन की पृष्ठभूमि में महाप्रज्ञ का अनुभव बोल रहा था। मुंबई यात्रा के दौरान भिंडी बाजार जैसे क्षेत्रों में गये तो अहिंसा यात्रा के नायक की अगवाणी में चार-पाँच सौ मुसलमान भाई हाथों में अहिंसा ध्वज एवं शांति के नारों वाले बैनर थामें चल रहे थे, स्वागत द्वार पर अमन और दोस्ती का पैगाम था। ऐसे अनेक प्रसंगो की भावभूमि है आचार्य महाप्रज्ञ के आभामंडल से निकलने वाली पवित्र रश्मियाँ। इन रश्मियों में हर दिल को छूने की शक्ति थी चूंकि वे आत्मा, नैतिकता और मानवता के रसद से संचालित हुई।

अहिंसा यात्रा का कारवाँ राजस्थान, गुजरात एवं महाराष्ट्र के मुम्बई नगरी तक पहुँचा। अनेक गणमान्य व्यक्ति-भारत के प्रथम नागरिक राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम से लेकर झोंपड़पट्टी में बसेरा करने वाले लोग भी महाप्रज्ञ के संपर्क में आये। महाप्रज्ञ ने जीवनगत समस्याओं का समाधान अहिंसा में बतलाया। उनके संपर्क में ऐसे व्यक्ति भी आये, जिनकी आस्था हिंसा में थी। उन्हें आगाह किया कि अहिंसा ही ऐसा रास्ता है जो प्रतिक्रिया से मुक्त है। हिंसा प्रतिक्रिया पैदा करती है और

एक नई समस्या फिर खड़ी हो जाती है। महाप्रज्ञ ने विशेष रूप से बतलाया कि हिंसा किसी समस्या का समाधान नहीं है। इससे किसी का भी भला नहीं होता। मानवीय चेतना को झंकृत करने वाले संदेश ने अहमदाबाद के (गुजरात) निवासी हिन्दू-मुस्लिम लोगों के दिलों में भाईचारे और प्रेम के सुमन खिलाये।

दांडी-यात्रा एक बार फिर जीवंत उस समय बनी जब आचार्य महाप्रज्ञ अहिंसायात्रा के दौरान असलाली गाँव के 'गांधी हाल' में प्रेक्षा विश्व भारती अहमदाबाद मणिनगर से प्रस्थान कर पधारे। चूँकि साबरमती आश्रम से प्रस्थान कर दांडी यात्रा का प्रथम पड़ाव वहीं हुआ था। स्थान विशेष में तरंगित विचारों को उकेरते हुए महाप्रज्ञ ने कहा-महात्मा गांधी ने अहिंसा के लिए जो किया था, वह विलक्षण था। फिर भी लोग कहते हैं कि उस का क्या हुआ, जो गांधी ने किया था? मनुष्य का स्वभाव है विस्मृति। वह भूल जाता है। यदि विस्मृति नहीं होती और महात्मा गांधी के कार्य को निरन्तर आगे बढ़ाया जाता तो शायद दुनिया में एक चमत्कार हो जाता, हिंसा की बाढ़ रुक जाती। किन्तु कठिनाई है कि आदमी भूल जाता है। महात्मा गांधी थे, तब तक एक दृश्य दिखाई दे रहा था। उनके आभामंडल ने आकृष्ट किया था। जनता उनके पीछे-पीछे घूम रही थी। उनके चले जाने के बाद स्थिति में परिवर्तन आ गया। त्याग, तपस्या, संयम की बात गौण हो गयी। सत्ता का आकर्षण शिरोमणि बन गया और लगा कि महात्मा गांधी भुलाये जा रहे हैं।....आज भी मैं अनुभव करता हूँ कि महात्मा गांधी ने जो अहिंसात्मक प्रतिकार का सूत्र दिया था, महात्मा गांधी ने जो सविनय अवज्ञा आन्दोलन का सूत्र दिया था, महात्मा गांधी ने जो ट्रस्टीशिप का सूत्र दिया था यदि उन सूत्रों की निरन्तरता रहती तो आज समाज बदलता हुआ दिखाई देता।[35] यह महाप्रज्ञ के उदात्त चिंतन का सबूत है।

अहिंसा यात्रा के दौरान अनुशास्ता के विचारों में एकाएक परिवर्तन-सा घटित हुआ। अभिनव चिंतन की स्फुरणा हुई। उन्होंने बतलाया अहिंसा यात्रा में क्रमशः अनुभव करते-करते हमें लगा कि जब तक हिंसा के कारणों की खोज नहीं की जाती, हिंसा को रोका नहीं जा सकता। हमनें हिंसा के कारणों की खोज की लोगों ने इसे अहिंसा यात्रा कहा तो मैंने (महाप्रज्ञ) कहा—'नहीं, मैं तो हिंसा की यात्रा कर रहा हूँ। मैं तो हिंसा के कारणों की खोज में निकला हूँ। इस खोज से जो निष्कर्ष निकले, उससे मेरी धारणा बनी की आदमी को बदला जा सकता है।'

जब तक भूख की समस्या रहेगी, तब तक हिंसा की बाढ़ को रोका नहीं जा सकता। भूखा आदमी सोचने-समझने की शक्ति खो देता है। भूखे व्यक्ति से तो भजन भी नहीं होता।[36] अपने आशय को स्पष्ट करत हुए उन्होंने बताया—गरीबी और रोटी का अभाव भी आदमी को हिंसा के लिए प्रेरित करता है। नक्सलवाद इसी गरीबी और शोषण की आग से निकली हुई चिंगारी है जो आज कई राज्यों को अपनी लपेट में ले रही है। हिंसा की इस समस्या का अगर दंड, भय और शक्तिबल से रोकने का प्रयत्न करेंगे तो इससे बड़ी भूल और कोई नहीं होगी। इस समस्या पर नये ढंग से विचार करने की जरूरत है। चिंतनीय पक्ष यह है कि-जो बड़े कहे जाने वाले लोग हैं, वे तो इस समस्या पर कुछ सोचने और विचार करने की जैसे जरूरत ही अनुभव नहीं करते। वे इससे कोई लेना-देना ही नहीं मानते। वे इस भाषा में सोचते हैं-सरकार का काम है, वह जाने। हत्या, चोरी, लूट, दंगा होता है तो इसकी जिम्मेदारी प्रशासन पर डाल देते हैं। यह नहीं सोचते कि अप्रत्यक्ष रूप से इस समस्या के उभार में उनका कितना हाथ रहा? बात बहुत कटु लगेगी, किंतु हिंसा को बढ़ाने

में जितना अमीर लोगों का हाथ है, उतना किसी का नहीं है। अमीर लोगों के कारनामें समाज के गरीब लोगों में प्रतिक्रियात्मक हिंसा की आग सुलगा रहे हैं। उन्हें अपने क्रियाकलाप पर नये सिरे से चिंतन करना चाहिए।[37]

हिंसा के कारणों से लोगों को परिचित कराने के लिए ही हमने अहिंसा यात्रा शुरू की है। हिंसा के इतने कारण है कि उन सब पर सबका ध्यान जाना चाहिए। जब तक समाज में बड़े और छोटे, अमीर और गरीब का अंतर रहेगा, हिंसा की बाढ़ को रोका नहीं जा सकता।

इस प्रभावी यात्रा के दौरान अनेकबार महाप्रज्ञ ने कहा-हम अहिंसा की कोई नई अवधारणा प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं। अवधारणाएँ सब अपने-अपने स्थान पर हैं। हिंसा के कारणों की विशद व्याख्या विभिन्न संदर्भों में प्रस्तुत की गई। जिसका आंशिक उल्लेख किये बगैर अहिंसा यात्रा का विमर्श अपूर्ण रहेगा।

हिंसा के आर्थिक कारण है जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति का अभाव, जिसका आधार है असंतुलित अर्थव्यवस्था। अर्थ के अभाव और प्रभाव ने उपभोग प्रधान जीवन शैली और श्रम का शोषण, गरीबी एवं आसक्ति को पैदा किया है। एक और बेरोजगारी दूसरी ओर बाजार पर एकाधिकार की प्रवृति ने अनधिगत शोषण, मिलावट, प्रदर्शन, आर्थिक स्पर्धा को प्रश्रय दिया है।

हिंसा के मानसिक कारणों की सूची में प्रमुख है-मस्तिष्कीय असंतुलन। जिसके सहारे पलती है क्रूरता, आग्रहवृत्ति, मानसिक पिछड़ापन, कटुता, मानसिक तनाव, असंयम, असीम महत्त्वकांक्षा। जिसके परिणाम स्वरूप उत्पीड़न, अपमान/तिरस्कार, अशक्य को शक्य बनाने का मनोभाव।

हिंसा के भावात्मक कारणों की सूची में प्रमुख हैः ग्रंथियों के असंतुलित स्राव एवं कर्म विपाक। इनकी बदौलत पलते हैं—निषेधात्मक भाव, राग द्वेष की प्रवृति, सहिष्णुता का अभाव, आवेश युक्त भावात्मक उत्तेजना, मन और भावों की चंचलता। सबसे समर्थ कारण है भावतंत्र की अशुद्धि जो आवेगों को अनियंत्रित बनाती है। परिणाम स्वरूप करुणा और संवेदनशीलता का भाव तिरोहित हो जाता है। मूर्च्छा की सघनता भय, घुटन/कुण्ठा, व्यसन, दोषारोपण, धोखाधड़ी की भावना पैदा करती है। भावनात्मक तनाव के चलते प्रतिक्रिया, क्रोध, मान, लोभ, अहंकार-ममकार जैसे वैभाविक तत्त्व पैदा होते हैं।

हिंसा के वैश्विक कारण है प्रतिशोध की भावना के साथ न्याय का अभाव, पर्यावरण की चेतना का अभाव और आतंकवाद का प्रशिक्षण जिसकी बदौलत विषमता, अशिक्षा, आबादी में वृद्धि की समस्या अनियंत्रित हो रही है। शस्त्रीकरण, मादक द्रव्यों का प्रचुर मात्रा में निर्माण, अकाल और बाढ़ जैसे अनेक वैश्विक हिंसा के कारण हैं इन प्रमुख कारणों के अलावा भी हिंसा के कारण है जैसे-राजनैतिक, व्यावहारिक, सामाजिक, चेतसिक, शारीरिक और वैचारिक जिनकी महाप्रज्ञ ने अपने प्रवचनों में चर्चा की है।[38] इस विमर्श का एक मात्र लक्ष्य था-हिंसा के कारणों के प्रति जनचेतना को जागृत करना।

व्यक्ति-व्यक्ति के भीतर सौहार्द, शांति और अहिंसा की चेतना प्रबुद्ध बने इस महान् उद्देश्य से अहिंसा यात्रा में आचार्य महाप्रज्ञ ने लोगों को समझाया—

- कोई व्यक्ति अपराध करता है उसे किसी जाति या सम्प्रदाय से जोड़ना उचित नहीं है।
- कोई व्यक्ति अन्याय कर रहा है, नियमों का अतिक्रमण कर रहा है उसके प्रति प्रतिशोध के भाव मत रखो। प्रतिकार करो ताकि हिंसा को बढ़ावा न मिले।

आम आदमी अहिंसा का अनुसरण करे, उसके लिए तीन संकल्पों को प्रस्तुत किया है।

1. मैं अनावश्यक हिंसा नहीं करूँगा।
2. मैं निरपराध की हत्या नहीं करूँगा।
3. मैं उपभोग-सामग्री का संयम करूँगा।[39]

इन सूत्रात्मक तथ्यों को विभिन्न संदर्भों में सुगम शैली में प्रस्तुति देकर महाप्रज्ञ ने व्यक्ति-व्यक्ति के हृदय परिवर्तन की संभावनाओं को उजागर किया है। महाप्रज्ञ का यह मानना था कि यह यात्रा अहिंसा की शक्ति को समझने और समझाने की यात्रा है। इसमें हमने अहिंसा की शक्ति का अनुभव किया है। अहमदाबाद, मुंबई और सूरत-सभी जगह सौहार्द और भाईचारे का वातावरण बना है। महाप्रज्ञ का यह निजी अनुभव रहा है—'हम हजारों-हजारों लोगों से मिले, हिन्दुओं और मुसलमान दोनों के बीच रहे हैं और हमने पाया कि आम आदमी सौहार्द और शांति से रहना चाहता है।'

संकल्प चेतना

शांति की चाह को समुचित राह दिखाने की आकांक्षा से अहिंसा यात्रा के जरिये मानव मात्र को कराये जाने वाले संकल्प थे-

- मैं मानवीय एकता में विश्वास करूँगा।
- मैं जाति, संप्रदाय के आधार पर लड़ाई-झगड़ा नहीं करूँगा।
- मैं यथा संभव ईमानदारी का पालन करूँगा।
- मैं नशा मुक्त रहने का प्रयास करूँगा।[40]

इन संकल्पों में मानव मन की शांति और समस्याओं के समाधान का राज छिपा है।

अहिंसा यात्रा के रचनात्मक कार्यों को देखकर देश के अनेक गणमान्य व्यक्तियों ने इस उपक्रम की प्रशंसा की, इससे जुड़े। इब्राहीम कुरेशी के शब्दों में—'अहिंसा यात्रा के द्वारा जो काम हो रहा है, उसने देश में एक नई आशा का संचार किया है। प्रेम, विश्वास, मैत्री और भाईचारे के वातावरण का निर्माण किया है।.....अहिंसा यात्रा ने देश में मोहब्बत और शांति का जो संदेश दिया है, उससे नफरत और घृणा की आग शांत हुई है।'[41] प्रबुद्ध वर्ग ने इस यात्रा को जीवन बदलाव में महत्त्वपूर्ण बतलाया।

अहिंसा यात्रा की तहे दिल से लोगों ने अनुशंसा की। पाकिस्तान के राष्ट्रपति परवेज मुशर्रफ ने अहिंसा यात्रा को निमंत्रण दिया—'अहिंसा यात्रा की भारत ही नहीं, पाकिस्तान को भी जरूरत है। नई दिल्ली के बाद अहिंसा यात्रा को लेकर पाकिस्तान आए, इससे शांति एवं सद्भावना का वातावारण निर्मित होगा। प्रेम, भाईचारे व शांति, सद्भावना से ही मानव जाति का कल्याण संभव है।' इससे अहिंसा यात्रा की लोकप्रियता का अंदाजा लगाया जा सकता है। इस अभियान को आंदोलन के रूप में लोगों ने देखा। मिर्जा नियाग बेग के अभिमत में-अहिंसा यात्रा किसी व्यक्ति की यात्रा नहीं है यह विचार की यात्रा है। आचार्य महाप्रज्ञ ने एक स्वस्थ एवं सुखी अहिंसक समाज की संकल्पना दी है। यह यात्रा नये दर्शन, नई संस्कृति, नये आयाम एवं उपक्रम की स्थापना का अहिंसक शांतिमय आंदोलन का उद्घोष है।[42] सैंकड़ों लोगों ने अहिंसा यात्रा को अपने शब्दों में प्रस्तुति दी। जिसमें भारत के प्रथम नागरिक डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम से लेकर टैक्सी ड्राइवर सलीम (अहमदाबाद) जैसे लोग शामिल है।

अहिंसा यात्रा का काफिला जहाँ भी पहुँचा लोगों ने सहर्ष स्वागत किया। जिसमें छत्तीस ही कौम का उत्साह देखते बनता था। जातपांत के भेदभाव से उपरत बिना किसी औपचारिकता के लोगों ने अहिंसा यात्रा के मिशन का भरपूर लाभ उठाया। मीलों तक कतार बंध लोगों ने अधिशास्ता की अगवानी में पलक पावड़े बिछाये, बाट निहारी। पूर्व पड़ाव से अगले पड़ाव की मंजिल तय करते समय अनेकदा आचार्य महाप्रज्ञ एवं युवाचार्य महाश्रमण के प्रवचन/उद्‌बोधन एक से पाँच चरणों (पाँच बार) में संपादित हुए। विभिन्न ट्रस्ट एवं संगठनों के लोगों ने अहिंसा यात्रा के मिशन को व्यापक बनाने का संकल्प किया। हिन्दू-मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, सिन्धी आदि विभिन्न धर्मों से जुड़े लोगों ने इसकी अनुशंसा की, भाग लिया, युग की अपेक्षा बतलाते हुए सफलता की मंगल कामना की।

निष्पत्तियों के केनवास पर अहिंसा यात्रा ने जन-जन की अहिंसक चेतना को जगाने में अहं भूमिका अदा की है। एक करोड़ से भी अधिक लोग संभागी बनें। नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा इसका कालजयी आलेख है। विशेषरूप से सामाजिक एकता, अहिंसा प्रशिक्षण, रोजगार प्रशिक्षण, ग्रामोत्थान, राष्ट्रनिर्माण एवं विश्व शांति के सार्थक प्रयत्न इसकी अमिट यादगार है। मिशन के साथ संपादित नगर, डगर, गाँव, कर्बट पहुँची अहिंसा यात्रा का स्वर आज भी बुलंद है सदियों तक स्मृतियों में शेष रहेगा।

अहिंसा यात्रा ने गांधी की डांडी यात्रा की स्मृतियों को नये शिरे से उकेरा और अपनी अभिनव छाप लोगों के दिलों में अंकित की है। यद्यपि दोनों के संदर्भ स्थितियाँ सर्वथा भिन्न हैं पर अहिंसा की शक्ति का चमत्कार दोनों यात्राओं में विशेषाधिक रूप से कार्यकारी बना है।

अहिंसक सोच

अहिंसक सोच के संदर्भ में गांधी और महाप्रज्ञ के चिंतन में मौलिक भेद है। महात्मा गांधी की अहिंसक सोच में गतिशीलता का निदर्शन है। ठहराव उन्हें मान्य नहीं था। अपने चिंतन को आकार देने में चाहे बहुमत की चर्चा का पात्र भले क्यों न बनना पड़ा पर उन्हें जहां जैसा उचित लगा उसे अंजाम दिया। मनुष्य एवं मनुष्येतर प्राणियों के प्रति गांधी का अहिंसा संबंधी मन्तव्य स्पष्ट था। अधिकांशतया उन्होंने प्राणीमात्र के वध को हेय माना परन्तु यदा-कदा प्राणियों द्वारा सताये जाने अथवा उनकी सेवा-सुरक्षा संभव न होने पर प्राणहरण को भी स्वीकृत किया। बछड़े का वध गांधी के जीवन का प्रसिद्ध उदाहरण बन गया। पशु डॉक्टर की सलाह में बछड़े के इलाज की आशा खत्म है। बछड़ा छटपटा रहा है, करवट बदलने में भी उसे कष्ट होता था। मुझे (गांधी) लगा कि ऐसी स्थिति में इस बछड़े का प्राण लेना ही धर्म है, अहिंसा है।

अन्त में दीन भाव से किन्तु दृढ़ता पूर्वक पास में रहकर मैंने डॉक्टर के द्वारा जहर की पिचकारी डलवाकर बछड़े का प्राणहरण किया।[43] प्रसंग के संदर्भ में महात्मा गांधी की अहिंसा संबंधी सोच प्रगतिशील ठहरती है। उनके अनुसार हत्या उस समय हिंसा नहीं मानी जा सकेगी, जिस समय किसी के प्राण उसी के अच्छाई या हित में लिये जायें। जहाँ स्वार्थ-भावना से प्राणहरण किया जाये वह जघन्य अपराध है। अनाग्रह भाव से गांधी ने यह भी स्वीकारा कि वास्तविक रीति से मेरा माना हुआ धर्म अधर्म भी हो सकता है पर कई बार अनजाने से भूल किये बिना भी धर्म का पता नहीं चलता है। बछड़े की घटना से जाहिर है कि गांधी का करुणा भाव कभी-कभी इतना सक्रिय बना कि उनसे पर कष्ट दर्शन मात्र असह्य हो गया और ऐसी घटना उनके द्वारा घटित की गई।

अपने इस कृत्य को औचित्य पूर्ण मानते हुए गांधी ने प्रीतम को उद्धृत किया 'प्रेम-पथ पावकनी ज्वाला भालो पाछा भागे जाने' अर्थात् 'प्रेम-पथ आग की लपट है। उसे देखकर ही लोग भागते हैं। अहिंसा धर्म का पंथ प्रेम-पंथ है। इस पंथ में आदमी को बहुत बार अकेले ही विचार करना पड़ता है।

पुष्टि में कहा : ऐसे दृष्टांतों की कल्पना की जा सकती है जबकि मारने में ही अहिंसा हो और न मरने में हिंसा। मान लो कि मेरी लड़की कोई राय देने लायक न हो। उस पर कोई आक्रमण करने आ जाय। मेरे पास उसे जीतने का कोई दूसरा मार्ग मिले ही नहीं तो मैं लड़की का प्राण लूँ और आक्रमणकारी के तलवार के वश होऊँ तो उसमें मैं शुद्ध अहिंसा देखता हूँ। उनकी दलील थी-जिस तरह रोगी के भले के लिए उसके शरीर में चीरफाड़ करने में डॉक्टर हिंसा नहीं करता, बल्कि शुद्ध अहिंसा ही पालन करता है, उसी तरह मारने में भी अहिंसा का पालन हो सकता है। भाषित है कि सामाजिक दायित्व बोध अथवा कर्तव्य बोध को भी गांधी ने हिंसा-अहिंसा की तुला पर ला खड़ा किया और अहिंसा का चोगा पहना दिया।

जिस हिंसा का उद्देश्य अहिंसा का क्षेत्र बढ़ाना हो, जो हिंसा अनिवार्य हो पड़े, जो ऐसी हो जिसके लिए परिणाम का विचार किये बिना प्रयत्न किया जा सके, वह हिंसा क्षन्तव्य है; कर्तव्य भी हो सकती है। इसलिए यह कहना सरासर अनुचित नहीं है कि हिंसा में अहिंसा हो सकती है।[44] उनकी यह स्वतंत्र सोच थी जिसे तर्क की कसौटी पर नहीं रखा जा सकता।

अहिंसा के साथ धर्म और अधर्म का विवेक जुड़ा हुआ है। मैं जिस अहिंसा का पुजारी हूँ, वह केवल जीव-दया नहीं है। जैन धर्म में जीव-दया पर खूब जोर दिया गया है। वह समझ में आता है, मगर उसका यह मतलब हरगिज नहीं है कि इन्सान को छोड़कर हैवानों पर दया की जाय। देहधारी को कुछ न कुछ हिंसा तो करनी ही पड़ती है?

मुझे खेती करनी हो, जंगल में रहना हो, तो खेती के लिए लाजिमी (अनिवार्य) हिंसा करनी ही पड़ेगी। बंदरों, परिंदों और ऐसे जन्तुओं को, जो फसल खा जाते हैं, खुद मारना होगा या ऐसा आदमी रखना होगा जो उन्हें मारे। दोनों एक ही चीज हैं। जब अकाल सामने हो, तब अहिंसा के नाम पर फसल को उजड़ने देना मैं तो पाप ही समझता हूँ। पाप और पुण्य स्वतंत्र चीजें हैं। एक ही चीज एक समय पाप और दूसरे समय पुण्य हो सकती है।[45] प्रकट रूप से गांधी की अहिंसा संबंधी अवधारणा में पाप-पुण्य की कल्पना जैन मान्यता से भिन्न थी।

विचारों की थाह पाने की मंशा से प्रश्न उपस्थित किया गया कि कैनेडी के पुत्र पर सिंह ने आक्रमण किया हो उस समय उसको क्या करना चाहिए? गांधी ने बताया 'यदि कैनेडी यों ही खड़ा-खड़ा देखता रहता और उसके बच्चे को सिंह फाड़कर खा जाता है तो यह किसी सूरत या शकल में अहिंसा न होती। बल्कि निरी हृदयहीन कायरता होती, जो अहिंसा के विपरीत है।' तथ्यतः गांधी कायरता को हिंसा मानते थे। अनेक प्रसंगों पर कहा—यदि हिंसा और कायरता में से किसी एक का चुनाव करना हो तो मैं हिंसा को अपनाऊँगा।

गतिशील अहिंसा के आलोक में उनकी भावना को इस रूप में जाना जा सकता है कि स्वार्थ या क्रोध में किसी भी जीव को कष्ट दिया जाये या उसके अनिष्ट अथवा प्राण-हरण की इच्छा भी की जाये तो वह हिंसा है। निःस्वार्थ बुद्धि से, शांत चित से, किसी भी जीव की भौतिक या आध्यात्मिक भलाई के लिए उसे जो दुःख दिया जाये या उसका प्राणहरण किया जाये वह अहिंसा हो सकती है। दृष्टांत अपने आपमें अन्वेषणीय है कि क्या ये अहिंसक कहे जायेंगे। अंत में अहिंसा की परीक्षा का आधार भावना पर रहता है।

गांधी के प्रारंभ और कालान्तर के विचारों में एक बड़ा अन्तर पाया जाता है। उन्होंने कहा-बन्दर जिस जगह उपद्रव रूप हो गए हैं, उस जगह उनको मारने में जो हिंसा होती है, वह क्षम्य है। जब अकाल सामने हो तब अहिंसा के नाम पर फसल को उजड़ने देना मैं तो पाप ही समझता हूँ। इसी प्रकार एक प्रसंग में वे लिखते हैं—मछली या मांस खाने वाले को ये चीजें खाने देने में जो हिंसा होती है, उसे मैं हिंसा नहीं मानता। मैं उसे अपना धर्म समझता हूँ। इन्हीं विषयों पर वे प्रसंगान्तर से अपनी मान्यता दूसरी ही प्रस्तुत करते हैं-बन्दर को मार भगाने में मैं शुद्ध हिंसा ही देखता हूँ। उन्हें अगर मारना पड़े तो उसमें अधिक हिंसा होगी। यह हिंसा तीनों कालों में हिंसा ही गिनी जाएगी। उसमें बन्दर के हित का विचार नहीं है, किन्तु आश्रम के ही हित का विचार है। किसान जो हिंसा करता है, वह हिंसा अनिवार्य होकर क्षम्य हो सकती है, परन्तु अहिंसा नहीं हो सकती। प्लेग के चूहे और चींचड़ भी मेरे सहोदर हैं। जीने का जितना अधिकार मेरा है, उतना ही उनका है।[46] इस तरह गांधी के पूर्ववर्ती एवं उत्तरवर्ती विचारों में अन्तर है। व्यवहार की दृष्टि से उन्हें जब जैसा लगा प्रस्तुति दी।

हिंसा अहिंसा के संबंध में महाप्रज्ञ के विचार गांधी से सर्वथा भिन्न थे। हिंसा उनके लिए कभी अहिंसा नहीं बन सकी। सूक्ष्मता के साथ उन्होंने यथार्थ के धरातल पर तथारूप प्रस्तुति दी। महाप्रज्ञ के शब्दों में-सारा संसार जीवाकुल है-अनन्त-अनन्त जीव हैं। सूक्ष्म-स्थूल, त्रस-स्थावर—सभी प्रकार के जीव भरे पड़े हैं। एक अणुमात्र भी ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ जीव का अस्तित्व न हो। आकाश का एक प्रदेश भी जीवमुक्त नहीं है। उस स्थिति में मुनि श्वास लेता है, चलता-फिरता है, उठता-बैठता है, सोता-जागता है, वह सब कुछ करता है। तब क्या यह संभव है कि उससे किसी जीव की हिंसा न हो? उसके शरीर के योग से कोई जीव न मरे, यह कभी संभव नहीं हो सकता। उसके प्रमाद से भी जीव हिंसा हो सकती है और अप्रमाद अवस्था में भी जीव हिंसा हो सकती है। कोई जीव ऊपर से उसके शरीर पर गिरकर मर सकता है। कोई जीव उसके पैरों के नीचे आकर मर सकता है। जाने अनजाने भी मर सकता है।

फिर अहिंसा का सर्वपालन कैसे होगा? उस स्थिति में यह प्रतिपादित किया गया कि अशक्य कोटि की हिंसा मुनि से भी हो जाती है। वह हिंसा करता नहीं किंतु हो जाती है। यह शरीर की अनिवार्यता है, इसलिए हो जाती है। किन्तु मुनि शरीर धारण के लिए उस हिंसा का आश्रयण नहीं ले सकता। इसमें इतना अन्तर आ गया।.....वह भोजन के लिए हिंसा का आश्रय नहीं लेगा, किन्तु उसका शरीर है, उसके योग से कभी हिंसा हो भी जाती है।[47] इस कथन के आलोक में स्पष्ट है कि हिंसा को हिंसा ही माना गया भले ही वह किसी भी स्थिति में क्यों न हो। जीवन यापन से जुड़ी अनिवार्य हिंसा को महाप्रज्ञ ने कभी अहिंसा नहीं माना। जहाँ तक अहिंसक सोच में गतिशीलता का प्रश्न है उन्होंने इस संदर्भ में सूक्ष्मता से आकलन किया है पर अहिंसा का मौलिक स्वरूप कभी धूमिल न होने दिया।

अहिंसा स्वरूप भेद

अहिंसा के स्वरूप-मान्यता संबंधी गांधी और महाप्रज्ञ के विचारों में मौलिक अन्तर पाते हैं जिसकी एक झलक विमर्श्य है। गांधी की सोच में अहिंसा के विभिन्न रूप देखे जाते हैं। उन्होंने बताया 'दूसरों के लिए प्राणोर्पण करना प्रेम की पराकाष्ठा है और उसका शास्त्रीय नाम अहिंसा है।' यह

भी कहा आप देहान्त तक दुःख भोग कर दूसरे को सुख देने का नाम अहिंसा धर्म है। अपनी अहिंसा समझ को अधिक स्पष्ट किया-हिंसा का अभाव अहिंसा नहीं है, वह तो उसका रूप भर है। उस अहिंसा का प्राण प्रेम है। प्रेम से और जीवन्त शक्ति क्या है? फिर भी आत्मगत और व्यक्तिगत प्रेम में अन्तर बांधना कठिन हो जाता, और 'प्रेम' शब्द में निषेध की शक्ति भी कम रहती; इसी से प्रेम न कह कर कहा गया 'अहिंसा' वह अहिंसा निष्क्रिय (पैसिव) पदार्थ नहीं है, वह तेजस्वी और सक्रिय तत्त्व है।[48] प्रकट रूप से गांधी की अहिंसा प्रेम से उद्‌भूत होकर व्यवहार के धरातल को पुष्ट करती है। उनकी दृष्टि में दूसरे के सुख दुःख का जहाँ असर नहीं है, वहाँ दया नहीं है, जहाँ दया नहीं वहाँ धर्म नहीं है, अहिंसा नहीं है।

दूसरे का सुख ढूँढने में ही तो अहिंसा का शोध हुआ। मनुष्य ने जब अपने को दूसरे में देखा और दूसरे को अपने में देखा, तभी उसने दूसरे के सुख से सुखी और दुःख से दुखी होना सीखा। इससे उसने अपने ऐहिक सुख के त्याग में आत्मिक सुख का अनुभव किया और इसी से वह अपने लिए बेखबर जगत् की हिंसा करने से अटका।[49] स्पष्टतया व्यक्ति के भीतर छुपा दया-प्रेम भाव ही उसे जागतिक हिंसा से बचाता है और उसके भीतर मानवीय चेतना का संचार करता है।

'अहिंसा कोई यांत्रिक क्रिया नहीं है। यह हृदय का सर्वोत्तम गुण है।' इस गुण का विकास ही मानव जीवन की सार्थकता है। हमारे हृदय में जो अहिंसा सुप्त रूप से पड़ी हुई है उसे विकसित करना महत्त्वपूर्ण है पर इसका उद्‌भव तो सच्चे बल से ही होगा। क्या हमारे अन्दर इस प्रकार की बलवान अहिंसा है? यह प्रश्न अहिंसा की चेतना को झंकृत करने के लिए जरूरी है। गांधी के अहिंसा संबंधी चिंतन में वैयक्तिक और सामाजिकता का समावेश है। उनकी अहिंसा सोच में जहां प्रेम, ईश्वर और सत्य की युति है वहीं महाप्रज्ञ की अहिंसा संबंधी सोच में आत्मविशुद्धि की स्वीकृति के साथ समाजिक, राजनैतिक समस्याओं के समाधान की शक्ति है।

अहिंसा के सैद्धांतिक पक्ष को आधुनिक परिवेश में प्रस्तुति महाप्रज्ञ की निर्मल प्रज्ञा का प्रसाद है—'अहिंसा एक रचनात्मक उपक्रम है। इसका अर्थ केवल 'मत मारो' इतना ही न लें। वह तो है ही, पर किसी को सताओ मत, पीड़ा मत पहुँचाओ। किसी का शोषण मत करो। किसी के साथ अन्याय मत करो। समस्त प्राणी मात्र को आत्मतुला के समान समझने का प्रयत्न करो। सबको अपनी आत्मतुला पर तौलें। जो व्यवहार आपको पसन्द नहीं है, वह व्यवहार आप भी किसी के साथ न करें। जो व्यक्ति हर प्राणी को अपनी दृष्टि से देखता है, अपने समान समझता है, वह किसी को भयभीत नहीं करता, पीड़ित नहीं करता, चोट नहीं पहुँचाता, धोखा नहीं देता। आत्म तुला का यह सिद्धांत अहिंसा का प्रायोगिक स्वरूप है।' इस कथन के आलोक में अहिंसा का आचरण वैयक्तिक है पर प्रभाव व्यापक होता है। व्यापकता का अंदाजा उनके शब्दों में गुंफित है—'अहिंसा वह अमृत है जो समाज व राष्ट्र को जीवित रखता है।' अर्थात् उसके अस्तित्व को कायम रखता है। अहिंसा के भावात्मक पक्ष में मानवीय मूल्यों का ग्रहण है—अहिंसा में मैत्री है, सद्‌भावना है, सौहार्द है, एकता है, सुख और शान्ति है। अहिंसा का स्वरूप उपशम, मृदुता, सरलता, सन्तोष, अनासक्ति और अद्वेष है।[50]

अहिंसा स्वरूप के संबंध में महाप्रज्ञ का अभिमत रहा, 'अहिंसा का स्वरूप व्यापक है। असत् का संवरण और सत् का प्रवर्तन अहिंसा है।' अर्थात् मानव जितना असत्-पापकारी प्रवृत्तियों पर नियंत्रण और पापाचार रहित प्रशस्त प्रवृत्तियों का समाचरण करता है उसकी अहिंसा उतनी ही तेजस्वी बनती है। महाप्रज्ञ अहिंसा के विराट् स्वरूप के पक्षधर थे उन्हीं के शब्दों में—मैनें बार-बार इस बात को

कहा है कि अहिंसा को संकुचित अर्थों में न लें। उसके व्यापक स्वरूप को देखनें और समझने का प्रयत्न करें। मानवोचित कर्म अहिंसा है, इससे इतर कर्म हिंसा है। जिससे स्वयं का और दूसरों का कल्याण हो, ऐसा हर कार्य अहिंसा है। जो स्वयं के लिए हानिकर हो और दूसरों को भी पीड़ा और दुःख पहुंचाएं, वह हिंसा है। अहिंसा और हिंसा को इसी दृष्टि से देखना चाहिए।[51]

सतत् अहिंसा की शोध में संलग्न आचार्य महाप्रज्ञ ने प्रतिरोध और प्रतिकार को अहिंसा के आयाम बतलाते हुए बतलाया कि प्रतिरोध अपना बचाव है और प्रतिकार है परिस्थिति पर आघात। अहिंसा में प्रतिरोध और प्रतिकार की शक्ति नहीं रहे तो अनुपालक निर्वीर्य बन जाएगा, शक्ति-संतुलन हिंसा के हाथ में चला जायेगा। अहिंसा की प्रतिरोध शक्ति है स्वतन्त्र चेतना का अनावृत्तिकरण और उसकी प्रतिकार शक्ति है प्रेम का विस्तार। उतना विस्तार, जिसमें शून्य न हो तो अप्रीति के लिए कोई अवकाश न हो।[52] जाहिर है कि अहिंसा की शक्ति में ही प्रेम का समावेश और अप्रीति का अन्त होता है। अहिंसा की मात्रा बढ़ती है, प्रेम का धरातल ऊंचा और निर्विकार होता है, उससे आनन्द का स्रोत फूट निकलता है।

अहिंसा का अर्थ गौरव उनके शब्दों में प्रतिबिम्बित हुआ-अहिंसा का अर्थ है-निर्विकार दशा। मूलभूत विकार है-राग-द्वेष। व्यक्ति की प्रवृत्तियां जितनी राग-द्वेष रंजित होगी अहिंसा की चेतना उतनी ही धूमिल बनती जायेगी। दूसरी ओर हिंसात्मक प्रवृत्तियों में भी अहिंसा की साधना की जा सकती है। उनकी दृष्टि में युद्ध की प्रवृत्ति हिंसा है किन्तु उसमें भी निरपराध को न मारने, निहत्थों पर प्रहार न करने की वृत्ति अहिंसा है। व्यापार करना अहिंसा नहीं किन्तु व्यापार करने में झूठा तोल-माप व शोषण न करने और न ठगने की वृत्ति अहिंसा है। सिद्धान्त की भाषा में यों कहा जा सकता है कि राग-द्वेष से जितना बचाव किया जाए, वही अहिंसा है।[53] तथ्यतः अहिंसा के मौलिक तत्त्व को व्यवहारिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया गया है। वर्तमान युग की मांग है कि धर्म के तत्त्व को जीवन में समरस बनाया जाये।

व्यक्तिगत जीवन से जुड़ी अहिंसा को प्रस्तुत किया। अहिंसा का अर्थ है—गुस्से पर नियंत्रण करना तथा नशा नहीं करना। नशा और गुस्सा व्यक्ति को हिंसक बनाता है, पर वह हिंसा स्थूल रूप से दिखाई नहीं देती। महाप्रज्ञ स्पष्ट शब्दों में कहते—हमें या तो सीमा पर युद्ध दिखाई देता है या आंतक और उपद्रव की घटनाएँ दिखाई देती हैं। इसी के साथ हम आगे भी देखने का मानस बनाएं कि क्या आवेश कृत हिंसा कम है? आवेश में आकर आदमी अपने भाई को, पिता को, पत्नी को, पुत्र को मार डालता है। वहाँ न कोई आतंक की बात है और न किसी उग्रवाद की बात है।[54] व्यक्तिगत जीवन से जुड़ी हिंसा को मात्र उकेरा ही नहीं अपितु अहिंसात्मक प्रशिक्षण के माध्यम से परिवर्तन की प्रविधि भी बतलाई।

विचार वैशिष्ट्य के प्रवाह में से कतिपय बिन्दुओं का विमर्श मनीषियों के स्वतंत्र चिंतन को प्रस्तुत करता है। अहिंसा की धुरा पर परिक्रमा करने वाले विचार-प्रवाह में मौलिकता का निदर्शन है। मनीषियों की कर्मक्षेत्रीय भिन्नता से निष्पन्न विचारों में भिन्नता स्वाभाविक है। पर, अपने-अपने संदर्भ में विशिष्टता जीवंत है। अपेक्षा है उस विचार वैशिष्ट्य को यथार्थ के धरातल पर समझने और प्रायोगिक बनाने की।

अभेद तुला : एक विमर्श

महात्मा गांधी एवं आचार्य महाप्रज्ञ के विचारों में जहाँ भिन्नता है, वहाँ अद्‌भुत समानता भी देखी जाती है। समानता का संदर्भ भले ही आंशिक बुझाये पर उनका आशय लक्ष्यभेदी होने से उन विचारों को अभेद की श्रेणी में रखा गया है। प्रस्तुत संदर्भ में उन पहलुओं का विमर्श इष्ट है जो मनीषी द्वय की वैचारिक एकता के द्योतक हैं।

अहिंसा की आस्था

अहिंसा के प्रति गांधी की अटूट आस्था उनके मन-वचन-कर्म में समायी हुई थी, जिसकी प्रस्तुति अनेक प्रसंगों पर हुई। उन्होंने कहा—'अहिंसा परमो धर्मः' अहिंसा जीवन का उच्चतम सिद्धान्त है। उसके पालन से यदि जरा भी हम च्युत हों तो उसे हमारा पतन समझना चाहिये। भूमिति की सरल रेखा तख्ते पर चाहे न खींची जा सकती हो परन्तु उस कार्य की असंभवता के कारण वह व्याख्या नहीं बदली जा सकती। अहिंसा की यह आस्था सत्य शोध से जुड़ी हुई थी। वे कहते-'मुझे पक्षपात सत्य का ही है और मैं अहिंसा मार्ग से सत्य का शोधन करता हूँ। मैंने अनुभव किया है कि दूसरे मार्ग से सत्य का पता नहीं लग सकता। सत्य है या नहीं, अहिंसा परम धर्म है या नहीं-मेरे निकट ये विवादग्रस्त विषय नहीं है। इस विषय में अपने मन में शंका का होना भी मैं संभव नहीं मानता। किन्तु उसका पालन क्यों कर हो, यह प्रश्न मेरे पास हमेशा खड़ा रहता है।' स्पष्टतया गांधी की अहिंसा आस्था निर्विकल्प थी, जिसकी प्रस्तुति अनेक प्रसंगों पर की गई।

उनका यह मानना था कि अहिंसा बल पर ही मानव अस्तित्व टिका हुआ है। उन्होंने कहा—'अगर अहिंसा या प्रेम हमारा जीवन धर्म न होता, तो इस मर्त्यलोक में हमारा जीवन कठिन हो जाता।' अहिंसा और प्रेम ही ऐसे तत्त्व हैं जो असंभव को संभव में बदल सकते हैं। गांधी इसी बल पर डटे रहे। वे कहते थे-अंग्रेजों का स्वभाव है कि वे झुकते नहीं। इस पर उन्हें कोसने की आवश्यकता नहीं। हमारे प्रेम की आग से उनके 'कठोर से कठोर वाहुदण्ड' पिघले विना नहीं रह सकते। मैं इस बात को जानता हूँ, अतएव अपनी इस स्थिति से हट नहीं सकता।[55] इस फौलादी आस्था का ही चमत्कार था कि लम्बे अर्से तक भारत पर राज करने की अंग्रेजों की मानसिकता बदल गयी।

अहिंसा के परिणाम निकले। दुनिया के प्रवुद्ध मानस ने यह अनुभव किया। एक यूरोपियन भाई ने खत के जरिये गांधी को लिखा—'आपने जिंदगी भर अहिंसा पर चलने और दूसरों को चलाने की पूरी कोशिश की है। अपनी अपार लगन की बदौलत आपको अपने काम में कामयाबी मिली

है। ब्रिटेन ने जाहिर तौर पर इस तरह नेकदिली और दोस्ती के साथ हिन्दुस्तान छोड़ दिया, उससे यह उम्मीद मालूम होती है कि अहिंसा की कदर सिर्फ आपके ही मुल्क तक महदूद नहीं है। मालूम होता है कि हिंसा की मजबूत, मोटी दिरवालें पहली बार कहीं-कहीं कुछ टूटी है और इन्सानी समाज के लिए कुछ भले दिन आने वाले हैं।' गांधी की टिप्पणी थी हिन्दुस्तान को बहादुरों की अहिंसा का तजुरबा नहीं है। बहादुरों की अहिंसा दुनिया में सबसे बड़ी शक्ति है। आज की दुःखी दुनिया के उद्धार के लिए तलवार की धार जैसी अहिंसा के दुर्गम मार्ग के सिवा दूसरी कोई आशा नहीं है। हो सकता है कि इस सत्य को साबित करने में मेरे जैसे करोड़ों आदमी असफल रहें लेकिन यह असफलता अहिंसा के सनातन नियम की नहीं, बल्कि उन करोड़ों की होगी। यह उनकी अहिंसा आस्था की मिशाल है।

आस्था जब मुखर होती है तो वह जीवन की सच्चाई का रूप धारण कर लेती है। गांधी के साथ भी अहिंसा का अनुबंध कुछ ऐसा ही था। उन्होंने अनेक प्रसंगों पर कहा : मैं खुद तो अपने अहिंसा के उसूल में तबदीली नहीं कर सकता, अहिंसा मेरे लिए एक उसूल ही नहीं, वह मेरे जीवन का सत्य बन गई है; जिसका आधार मेरा बरसों का तजुरबा है। जो आदमी बार-बार मीठे सेब खा चुका है, उसे उन्हें कड़वे कहने के लिये कैसे राजी किया जा सकता है, वे लोग सेब नहीं खाये बल्कि सेब की तरह दिखाई देने वाले कोई दूसरे फल खाये हैं। अहिंसा को साम्राज्यवादियों के छिपे या खुले कामों से डरना नहीं चाहिए।[56] यह विचार मुस्लिम लीग की समस्या के दौरान गांधी ने रखा था जिसका स्पष्ट आशय था कि अहिंसक आस्था में समाधान की शक्ति छुपी है।

नागासाकी और हिरोशिमा पर हुए अणुबम के प्रयोग गांधी की अहिंसक आस्था को हिला नहीं सके, अपितु बरबादी की खबर पाकर उन्होंने यही कहा—'यदि दुनिया अब भी अहिंसा को नहीं अपनाती है तो मानव जाति आत्महत्या से नहीं बचेगी।' दुनिया को प्रेरित करते हुए उन्होंने कहा—'एटम बम की इस बेहद दर्दनाक कहानी से हमें सबक तो यह सीखना है कि हिंसा से हिंसा को नहीं मिटाया जा सकता। इन्सान सिर्फ अहिंसा की मार्फत ही हिंसा के गढ़े में से निकल सकता है। नफरत को सिर्फ प्यार से ही जीता जा सकता है। मैंने कोई किताबी बात नहीं कही थी। मैं यह मानता हूँ कि जो चीज मेरी रग-रग में भरी है, उसी को मैंने जोरदार शब्दों में कहा है। साठ साल तक इस चीज को जीवन के हर एक क्षेत्र में आजमाकर मेरी श्रद्धा और भी पक्की हुई है और दोस्तों के तजुरबे से भी उसे ताकत मिली है। यह एक ऐसी जड़ की सच्चाई है कि आदमी अगर अकेला हो तो भी बगैर किसी झिझक के इस पर डटकर खड़ा रह सकता है। मैक्समूलर ने बरसों पहले कहा था—'जब तक सत्य पर विश्वास रखने वाले मौजूद हैं, सत्य को दुहराना ही पड़ेगा।' मैं इस बात को मानता हूँ।[57] स्पष्ट रूप से जब सारी दुनिया एटम बम की विनाश लीला से भयभीत थी, उस समय भी गांधी ने अहिंसा में इसका समाधान देखा।

अहिंसा की अटूट आस्था का बल प्राप्त था, जिसकी बदौलत वे सदैव शक्ति संपन्न बने रहे। उन्होंने स्वीकारा—'मेरे में अहिंसा और सत्य के सिवाय कोई नीति चातुर्य नहीं है।'

आचार्य महाप्रज्ञ की अहिंसा आस्था उनके अखंड अहिंसक जीवन का सबूत थी। ताजिंदगी अहिंसा को प्राणवान बनाने में अपनी शक्ति का नियोजन किया। नैतिकता और अहिंसा के अपरिहार्य संबंध को सामाजिक धरातल पर प्रस्तुति दी-स्वस्थ समाज के लिए जरूरी है नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था जागे। अहिंसा और नैतिकता को अलग नहीं किया जा सकता। जब तक इसका व्यवहारिक

प्रयोग नहीं होगा अहिंसा की चेतना का जागरण नहीं होगा। आस्था मुखर हुई-जीवन की समस्याओं का समाधान अहिंसा में है।[58] यह उनकी अटूट अहिंसा आस्था का प्रमाण है। न केवल वैयक्तिक अपितु पारिवारिक सामाजिक और राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान अहिंसा में बतलाया है।

अहिंसा शाश्वत धर्म है। इसकी रचनात्मकता पर आचार्य महाप्रज्ञ की अटूट आस्था थीं। इस आस्था को अभिनव आयाम देते हुए 'अहिंसा-यात्रा' का उपक्रम किया जिसके आशातीत परिणाम निकले हैं। लोगों ने महाप्रज्ञ के इस दृष्टिकोण को समझा कि गरीबी, अशिक्षा, इत्यादि से मुक्ति पाने के लिए तथा विकास की पगडंडियां तय करने के लिए शांति आवश्यक है। महाप्रज्ञ ने जन-जन की चेतना में आस्था का संचार कर उन्हें अहिंसा की दिशा में गतिशील बनने के लिए प्रेरित किया है।

अहिंसा आस्था को जगाने का एक उपक्रम है—अणुव्रत आन्दोलन। व्यक्ति और समाज दोनों में अहिंसा की आस्था जागे तभी व्यापक परिवर्तन संभव होगा। महाप्रज्ञ मानते थे कि अहिंसा मात्र पारलौकिक ही नहीं है, भौतिक अभ्युदय में भी इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। 'अहिंसा धर्म समाज के लिए तभी अधिक उपयोगी बन सकता है, जबकि उसका मूल्यांकन समाज की दृष्टि से किया जाए।'[59]

अहिंसा आस्था अनेक बार मुखर हुई। उन्होंने बताया कि अहिंसा हमारे जीवन की सफलता और शांति का अनिवार्य अंग है। अहिंसा है तो जीवन है। यह नहीं है तो जीवन टिक नहीं पाता। पर दुनिया इस सच्चाई को स्वीकार करने में हिचकिचाती है। जीवन के सही अर्थ को समझने के लिए इसे स्वीकार करना होगा।[60] इस प्रकार वे जीवन-अस्तित्व के लिए अहिंसा को अनिवार्य मानते थे। यह उनकी अहिंसा आस्था का ही निदर्शन है कि वे अहिंसा के बिना शांतिपूर्ण जीवन की कल्पना नामुमकिन मानते। मनीषियों की अहिंसा आस्था उनके मन-वचन-कर्म से संपृक्त बनीं और सफलता का मार्ग प्रशस्त हुआ।

विधायक सोच

व्यक्ति की सोच उसके आंतरिक भावों का प्रतिबिम्ब है। जैसा भाव वैसा स्वभाव, जैसा स्वभाव वैसा व्यवहार। यह नैश्चयिक तथ्य है। इस संदर्भ में महात्मा गांधी और आचार्य महाप्रज्ञ की सोच समान रूप से सकारात्मक देखी जाती है। गांधी के जीवनवृत्त का अवलोकन एवं चिंतन का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है उनकी सोच सदैव सकारात्मक रही। जहाँ तक विरोधी विचारों के साथ ताल-मेल का प्रसंग होता वहाँ भी गांधी का विधायक दृष्टिकोण था। इसकी पुष्टि मे एक प्रसंग का उल्लेख उचित होगा-यद्यपि श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ कार्य के लिए मैं हिसात्मक पद्धति का अटल विरोधी हूँ अतएव हिंसावादियों के और मेरे मिलाप के लिए कोई गुँजाइश नहीं है। इतना होने पर भी मेरा अहिंसा-धर्म मुझे न केवल रोकता है बल्कि अराजकों और अन्य सभी हिंसावादियों से संपर्क रखने पर मजबूर करता है। किंतु यह संसर्ग केवल इसी आशय से है कि उन्हें मैं उस राह से बचाऊँ जो मुझे गलत दिखाई देती है। मुझे अपने अनुभव से विश्वास हो गया है कि स्थायी कल्याण असत्य और हिंसा का फल कभी हो ही नहीं सकता।[61] प्रकट रूप से गांधी का दृष्टिकोण विधेयात्मक था।

प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थिति में भी गांधी का विधायक भाव देखा गया। जिसका प्रखर उदाहरण है—कस्तूरबा की मौत पर गांधी द्वारा कहे गये शब्द—'हम दोनों बासठ वर्ष तक साथ रहे....और

वह मेरी गोद में मरी, इससे अच्छा क्या हो सकता है।' जेल के शिकंजों में भी गांधी ने यही कहा—'यहाँ मुझे अपनी शक्ति के विकास का सुनहरा अवसर मिला है।' जब वे जेल से बाहर निकलते एक नई शक्ति-स्फुरणा की अनुभूति करते।

विधायक भाव आचार्य महाप्रज्ञ की आध्यात्मिक प्रगति का राज है। आत्मान्वेषण की भूमिका पर वे यदा कदा कहते—चौरासी वर्ष की उम्र में मुझे याद नहीं कि कभी स्वप्न में भी किसी का अहित-अनिष्ठ वांछा हो। उनकी सोच सदैव सकारात्मक रही है। महाप्रज्ञ का कहना है 'मेरे मन में किसी के प्रति घृणा, शत्रुता और द्वेष का भाव नहीं है। मन में सबके प्रति करुणा, संवदेना और आत्मौपम्य का भाव बहता है। इसी के परिणाम मानता हूँ कि जो भी हमारे पास आता है, अपनेपन का अनुभव करता है।'[62] जहाँ तक विधायक विचारों के संप्रसार का प्रश्न है महाप्रज्ञ ने इसे बखूबी संपादित किया है। उनकी अनेक कृतियों में विधायक सोच की मीमांसा हुई है। 'कैसे सोचे' 'विचार को बदलना सीखें' रचना में वैचारिक विशुद्धि पर विशेष रूप से बल दिया गया है।

इस सत्य को उजागर किया कि-अमंगल, नितान्त स्वार्थपरक एवं अनिष्ट विचार हिंसा के पर्याय हैं। इनसे बचना वैचारिक अहिंसा की दिशा में गतिशील बनने के लिए जरूरी है। वैचारिक धरातल पर अतीन्द्रिय चेतना/अहिंसक चेतना-विकास के मुख्य घटक हैं—बुरे विचार न आएँ। अनावश्यक विचार न आएँ। विचार बिल्कुल न आएँ।[63] विधायक भाव की पृष्ठभूमि में वे भाव शुद्धि को महत्त्वपूर्ण मानते। उनका अभिमत रहा कि भाव का उद्वेग, भाव का आवेश उभरता है, हिंसक घटनाएँ घट जाती हैं। जितनी भी असामाजिक प्रवृत्तियाँ होती हैं, उसके पीछे काम कर रहा है भाव। भाव विशुद्धि अहिंसक जीवन की आधार भित्ति है।

मन की पवित्रता और भावों की निर्मलता ही अहिंसा है। हिंसा और अहिंसा में मन और भावों का बड़ा योग रहता है। मन और भावना निर्मल नहीं है तो चेतना की पवित्रता को सुरक्षित नहीं रखा जा सकता, जीवन भी अच्छा नहीं बन सकता। इस सच्चाई को आत्मसात् करते हुए महाप्रज्ञ ने निरन्तर विधायक भावों को जीया है। मनीषियों की सोच सकारात्मक भावों से परिपूर्ण बनी, यह उनके अहिंसा प्रधान जीवन का प्रतिफल कहा जा सकता है।

आध्यात्मिक व्यक्तित्व : निस्पृहता

क्रिया-कलापों के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का आकलन किया जाता है। महात्मा गांधी एक रूप में गृहस्थ संन्यासी थे। आचार्य महाप्रज्ञ पँचमहाव्रतधारी संन्यासी हैं। महात्मा गांधी प्रथम दृष्टया भले ही राजनीतिक नेता थे, पर उनका अन्तःकरण अध्यात्म से भीगा हुआ था। करुणा-प्रेम, सत्य-अहिंसा, मानवता उसके स्फुलिंग थे। अहिंसा का कर्मयोग ही उनका जीवन चरित्र बन गया। विचार, वाणी एवं व्यवहार की एकता उनका जीवन दर्शन बनी। स्वेच्छा से अपनाई हुई गरीबी, सादगी, विनम्रता और साधुता से वे असाधारण कहलाये। कार्ल हीथ के शब्दों में वे 'सत्य एवं मानवतावादी' थे।[64]

गांधी के लोकप्रिय आध्यात्मिक व्यक्तित्व में अभावग्रस्त-दरिद्र-नारायण की समस्याओं का समाधान देखा गया। आम जनता के साथ एकाकार देखकर 'रवीन्द्रनाथ टैगोर' ने उन्हें 'महात्मा' कहा था। जॉन हेनेस ने लिखा—जब मैं गांधी के बारे में सोचता हूँ, मैं ईसा मसीह के बारे में सोचता हूँ। वो (गांधी) उसके जीवन को जीता है, उनके शब्दों को बोलता है, उसी तरह से कष्ट सहता है, श्रम करता है और एक दिन धरती पर उसका साम्राज्य लाने के लिये शानदार तरीके से बलिदान हो जायेगा।[65] यह उनके आध्यात्मिक जीवन का निदर्शन है।

करुणा उनके आध्यात्मिक जीवन का अंग थी। प्राणिमात्र के प्रति प्रेमभाव उनका स्वभाव बन गया था। गांधी की करुणा कितनी प्राणवान् थी, इसकी पुष्टि में एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा। चम्पारन में बलि के लिए ले जा रहे बकरे की जानकारी पाकर गांधी उस जुलूस में सम्मिलित हो गये। जुलूस देवी के मंदिर के पास आया। गांधी ने पूछा—बकरी किसलिए बलि चढ़ायी जा रही है? 'इसलिए कि देवी प्रसन्न हों।' गांधी का करुण हृदय बोल उठा 'बकरे से आदमी श्रेष्ठ है। मनुष्य की बलि देने से देवी अधिक प्रसन्न होगी। अपने को बलि करने कोई आदमी तैयार है? नहीं तो मैं तैयार हूँ।' सब की जुबान बंद हो गई। गांधी बोले : गूंगे जानवर से क्या देवी प्रसन्न होती है? यदि वह प्रसन्न होती हो तो अपना अधिक मूल्यवान् रक्त दो। वह क्यों नहीं देते? यह तो धोखा है, अधर्म है। आप हमें धर्म समझायें।' उस बकरी को जीवन दान मिला। आज यह जगदम्बा आप लोगों पर जितनी प्रसन्न हुई होगी, उतनी इससे पहले कभी न हुई होगी।[66] सब लोग लौट गये। यह उदाहरण गांधी के करुणापूरित हृदय से उपजे सत्य को प्रस्तुत करता है।

उनकी अध्यात्म चेतना में द्वेषभाव का स्थान नहीं था। प्रेम और मैत्री का विकास उनके जीवन में इस सीमा तक था कि विषैले सर्प भी उनकी दृष्टि में वध्य नहीं थे। 1917 का प्रसंग है। आश्रम में प्रार्थना के समय एक काला सर्प पीछे से गांधी की पीठ पर चढ़कर कंधे तक आ गया। लोगों द्वारा सावधान करने पर गांधी ने हंसकर कहा 'यह तो अपने आप ही चला जाएगा या इसके द्वारा ही मेरी मृत्यु लिखी होगी तो कोई चिन्ता की बात नहीं है।.....अगर इस साँप ने मुझे काटा तो मैं सबसे यही कहूँगा कि कम से कम इसे मारो मत।' थोड़ी देर बाद वह साँप अपने आप चला गया।[67] यह घटना उनकी अध्यात्मिक साधना का सबूत है। अपना अनिष्ट करने वाले के प्रति भी अहिंसात्मक विचार थे।

राजनैतिक जीवन में निस्पृहता उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग बनी रही। पदलिप्सा और सत्ता से मुक्त रहने की मनोवृत्ति निस्पृह भाव की द्योतक है। प्रेस सम्मेलन में एक पत्रकार ने बापू से पूछा, 'क्या आप स्वतंत्र भारत की सरकार के प्रधानमंत्री होगें?' बापू ने उत्तर दिया 'नहीं, यह पद युवकों के लिए सुरक्षित होगा।' 15 अगस्त,1947 को सत्ता के हस्तांतरण का उत्सव राजसी ठाठबाट से मनाने का फैसला किया गया था, लेकिन गांधी गाजे-बाजे के जरा भी पक्ष में नहीं थे। जिस दिन के लिए वे जीवन-भर परिश्रम करते रहे थे, उसके आगमन पर उनके मन में कोई उमंग नहीं थी। यह उनकी निस्पृहता, सहजता का निदर्शन है।

आचार्य महाप्रज्ञ एक महान् आध्यात्मिक संत थे। उनके जीवन का हर पहलू त्याग-वैराग्य से परिपूर्ण था। उसे व्याख्यायित करने की अपेक्षा नहीं है। महाप्रज्ञ के भीतर करुणा का जो अजस्त्र स्रोत था, उसने उनके आध्यात्मिक जीवन को पूर्णता प्रदान की। वैचारिक आत्म मंथन के क्षणों में आचार्य महाप्रज्ञ ने लिखा—'मैं इसे निसर्ग ही मानता हूँ कि मेरे मन में क्रूरता की अपेक्षा करुणा अधिक प्रवाहित है।' कोई भी व्यक्ति अपने में क्रूरता न होने का दावा नहीं कर सकता। करुणा और क्रूरता-दोनों धाराएँ हर व्यक्ति में प्रवाहित होती रहती हैं—कोई बड़ी और कोई छोटी। असमर्थ वर्ग के प्रति समर्थ वर्ग के अतिक्रमणों की चर्चा जब-जब सुनता हूँ, तब-तब मन करुणा से भर जाता है।[68] इस कथन से प्रकट होता है कि अध्यात्म का सार करुणा है। महाप्रज्ञ के जीवन में इसका पर्याप्त विकास देखा गया है।

महाप्रज्ञ के जीवन में दैविक गुणों का अपूर्व योग था जिनमें प्राणीमात्र के प्रति मैत्रीभाव, पदार्थ अप्रतिबद्ध चेतना, दैहिक निर्ममत्व जैसी विशेषताओं के साथ निस्पृहता और करुणा का मौलिक विकास देखा गया है। दीन दुःखियों की पीड़ा उनके दिल को कंपादेती थी, वे भीतर तक उद्वेलित हो उठते। करुणाद्र प्रसंगों पर उनकी टिप्पणी होती—'पदयात्रा के दौरान उन लोगों को देखा जो स्वतंत्र देश के नागरिक होने के बावजूद अभाव की जिन्दगी जीते हैं। उनका सारा समय और सारा श्रम दो समय की रोटी के जुगाड़ में ही बीत जाता है। वह भी पूरी नहीं मिलती है। उन्हें और उनके बच्चों को कभी-कभी भूखे ही सोना पड़ता है। हमने (महाप्रज्ञ) उनसे पूछा की दो समय का भोजन भी नहीं मिल पाता तो उस समय आप क्या करते हो? उन्होंने कहा-'महाराज, बस ऐसे ही डांटकर, मारकर या पुचकारकर सुला देते हैं।'[69] ऐसे अनेक प्रसंग उनके सन्मुख आते रहे हैं। महाप्रज्ञ ने बताया दो दिन से एक आदमी मेरे पास बार-बार आ रहा हैं, कल भी आया था। बताता है कि बहुत गरीब हूँ घर में कुछ नहीं है पत्नी बीमार है, हम क्या करें? इस तरह के कितने ही प्रसंग आते हैं। अहिंसा यात्रा में हम किसी गाँव में जाते, लोग गाँव से निकलकर सड़कों पर आ जाते। सबकी एक ही समस्या 'महाराज गाँव में पानी नहीं।' फिर आगे की समस्या बताते—'महाराज! खाने को घर में एक दाना नहीं हैं। रहने को टूटी-फूटी झोंपड़ी है। आपके पास तो सरकार के लोग भी आते हैं। आप उनसे कहें कि हम गरीबों की समस्या सुलझाएँ।'

'मेरे मन में आया किससे कहूँ? कौन है उत्तरदायी? कौन लेगा इस समस्या को सुलझाने की जिम्मेदारी?.....समाधान कैसे होगा?.....भूख की समस्या, रोटी की समस्या के प्रति जो एक स्वस्थ आर्थिक नीति होनी चाहिए, वह नहीं है। यह भूख की समस्या बहुत विकराल है और आने वाले दशकों में क्या होगा, कहा नहीं जा सकता। उद्योग जगत और सरकारी तंत्र को इस समस्या पर विचार करना चाहिए।'[70] इस मंतव्य के संदर्भ में जान सकते हैं कि महाप्रज्ञ के भीतर करुणा का कैसा प्रवाह था। संन्यस्त जीवन की मर्यादा में जितना संभव होता उपयुक्त मार्ग-दर्शन भी करते।

जब आचार्य तुलसी ने महाप्रज्ञ को युवाचार्य पद पर नियुक्त किया उस समय उन्होंने विनम्र निवेदन किया-'यदि आप मुझे पदवी से मुक्ति दें, तो मुझे प्रज्ञा की साधना करनी है।' यह थी उनकी पद के प्रति अनासक्ति। उनको उपाधि की परवाह नहीं की। निरूपाधिक चेतना के संवाहक महाप्रज्ञ का मन सरल बालक की तरह निश्छल, निष्कपट था। प्रवंचनाओं और प्रपंच से बचे रहने की उनकी सहज बुद्धि थी। सरलता उनकी अपनी पहचान बनीं। दैनिक विश्वमित्र (कोलकाता) के संपादक कृष्णचन्द्र अग्रवाल के शब्दों में-महाप्रज्ञ निरभिमान हैं, सरल स्वभाव के 'सर्वजन हिताय, सवर्जन सुखाय' मनीषी हैं जो बड़े विद्वानों में कम होते हैं। वे एक अपढ़ श्रावक से उसी की भाषा-भावना से वार्तालाप कर सकते हैं जिस सरलता के साथ विश्व के प्रसिद्ध धर्म-गुरु दलाई लामा के साथ।[71] कथन में महाप्रज्ञ की नैसर्गिक सहजता का निदर्शन है जो उनकी अहिंसक चेतना का निर्झर थी।

महाप्रज्ञ के भीतर करुणा का अजस्र स्रोत प्रवहमान था। अपनी मर्यादाओं के भीतर रहकर वे हर संभव प्रयत्न दीन दुखियों के दुःखों को दूर करने में करते रहे हैं। जब-जब अभावग्रस्त लोगों को देखते उनका हृदय करुणाद्र बन जाता। दूसरों के कष्ट कारक छोटे-छोटे प्रसंग उनको भीतर तक कंपित कर देते। उसका एक छोटा सा उदाहरण उपयुक्त होगा—'जब कभी प्रवचन में बहुत देरी हो जाती है तब (महाप्रज्ञ) सोचता हूँ-साधु भिक्षा के लिए जाते हैं, पैर जलते हैं। मन में कम्पन होता है कि उन्हें कष्ट दिया जा रहा है।'[72] समय की सीमा प्रायः रखी जाती है पर यदा-कदा होने वाला विलम्ब महाप्रज्ञ के करुणाद्र मानस को कचोटने लग जाता।

महाप्रज्ञ का यह मानना था कि हम करुणा की सर्वोच्च अवस्था पर न जा सकें तो कम से कम इतनी संवेदनशीलता जरूरी है कि असमर्थ, असहाय व्यक्ति के प्रति हमारी सहानुभूति हो, संवदेनशीलता हो। यह अनुभव करें कि यह कष्ट भोग रहा है, हम उस कष्ट को अपने पर तो नहीं ले सकते, पर उसके उपचार में सहायक जरूर बन सकते हैं। यह संवेदनशीलता ही समाज की स्वस्थता को कायम रखती है।

कभी कुछ पाने या पदलिप्सा की चाह नहीं जगाई। अकर्तृत्व भाव से सब कुछ करते हुए भी महाप्रज्ञ अकर्ता बने रहे हैं। तथ्यतः गांधी और महाप्रज्ञ का आध्यात्मिक व्यक्तित्व अपने आपमें स्वस्थानीय परिपूर्ण था। जिसकी कीर्ति पूरे जगत् में पसरी है।

अहिंसा की शक्ति

अहिंसा की शक्ति को गांधी और महाप्रज्ञ समान रूप से स्वीकारते थे। उनका मानना था कि इस शक्ति से हर असंभव को संभव बनाया जा सकता है। अहिंसा एक ऐसा शाश्वत मूल्य है जिस पर अनेकों ने चल कर अपने स्वरूप को प्राप्त किया है। अहिंसक आचरण में अनेक समस्याओं को समाहित करने की और दुःखों के अन्त की क्षमता है। इस विशाल सामर्थ्य के कारण गांधी ने अहिंसा को प्रचण्ड शक्ति के रूप में स्वीकार किया—'मैं तो अहिंसा को जगत् की महा-प्रचण्ड शक्ति समझता हूँ।' यानि अहिंसा की शक्ति का कोई माप नहीं है। उनकी दृष्टि में अहिंसा एक सर्वश्रेष्ठ शक्ति है। प्रस्तुति दी-मेरी अहिंसा सख्त चीज की बनी हुई है। वैज्ञानिकों को सबसे मजबूत जिस धातु का पता होगा उससे भी यह ज्यादा मजबूत है। इतने पर भी मुझे खेदपूर्वक इस बात का ज्ञान है कि हमें अभी इसकी असली ताकत प्राप्त नहीं हुई है। अगर वह प्राप्त हो गयी होती, तो संसार में हिंसा की जिन अनेक घटनाओं को मैं असहाय रूप में रोज देखा करता हूँ उनसे निपटने का रास्ता भगवान् मुझे सुझा देता।[73]

गांधी का यह दृढ़ विश्वास था 'अहिंसा और शायद अकेली अहिंसा ही विष को अमृत में बदलने की शक्ति रखती है। बहुत से लोग यह स्वीकार करते हैं कि आज के चारों और फैले विष को अमृत में बदलने का एक मात्र मार्ग अहिंसा ही है किन्तु उनमें इस स्वर्णिम मार्ग को अपनाने का साहस नहीं है। मैं डंके की चोट से कह सकता हूँ कि अहिंसा कभी असफल नहीं रही। लोग बेशक अहिंसा की ऊंचाई तक नहीं पहुँच सके।' यह उनका आकलन था।

अहिंसा में तीव्र कार्यसाधक शक्ति भरी हुई है। इसमें जो अमोघ शक्ति है उसकी अभी पूरी खोज नहीं हुई है। 'अहिंसा के समीप सारे वैरद्वेष शांत हो जाते हैं,' यह सूत्र शास्त्रों का प्रलाप नहीं है बल्कि, ऋषि का अनुभव-वाक्य है। जाने-अनजाने, प्रकृति की प्रेरणा से, सब प्राणियों ने एक-दूसरे के लिए कष्ट उठाने का धर्म पहचाना है और उसके आचरण द्वारा संसार को निभाया है। तथापि इस शक्ति का संपूर्ण विकास और सब कार्यों और प्रसंगों में इसके प्रयोग के मार्ग का अभी ज्ञानपूर्वक शोधन-संगठन नहीं हुआ है। हिंसा के मार्गों के शोधन और संगठन करने का मनुष्य ने जितना दीर्घ उद्योग किया है और उसका बहुत अंशों में शास्त्र बना डालने में सफलता पाई है, उतना यदि अहिंसा की शक्ति के शोधन और संगठन के लिए करे तो मनुष्य जाति के दुःखों के निवारणार्थ यह एक अनमोल अचूक और परिणाम में उभय पक्ष का कल्याण करने वाला साधन सिद्ध होगा।[74] स्पष्टतया

गांधी अहिंसा की शक्ति से पूरे विश्वस्त थे। पर उन्होंने यह स्वीकारा कि अभी इस शक्ति की खोज अधूरी हो पाई है, पूर्णता का परिणाम अपूर्व होगा।

अहिंसा की शक्ति को गांधी ने विभिन्न संदर्भों में पाया। उसका एक संदर्भ था प्रेम का विस्तार। प्रेम और अहिंसा उनकी दृष्टि में एक ही थे। जिस तरह कि गुरुत्वाकर्षण का नियम हम चाहे मानें या न मानें अपना काम करेगा। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक प्राकृतिक नियमों के प्रयोग द्वारा आश्चर्यजनक बातें पैदा करता है उसी तरह यदि कोई व्यक्ति प्रेम का वैज्ञानिक यथार्थता के साथ प्रयोग करे तो वह इससे अधिक आश्चर्यजनक बातें पैदा कर सकेगा। क्योंकि अहिंसा की शक्ति-प्राकृतिक शक्तियों-उदाहरणार्थ बिजली आदि से कहीं अधिक अनंत, आश्चर्यजनक और सूक्ष्म है। जिस व्यक्ति ने हमारे लिए प्रेम के नियम अथवा कानून की खोज की, वह आजकल के किसी भी वैज्ञानिक से कहीं अधिक बड़ा वैज्ञानिक था। केवल हमारी शोध अभी तक जितनी चाहिए उतनी नहीं हुई है और इसलिए प्रत्येक के लिए उसके परिणाम देख सकना संभव नहीं है। कुछ भी हो, यह उसकी एक विशेषता है, जिसके अंतर्गत मैं प्रयत्न कर रहा हूँ। प्रेम के इस कानून के लिए मैं जितना अधिक प्रयत्न करता हूं, उतना ही अधिक मुझे जीवन में आनंद—इस सृष्टि की योजना में आनंद अनुभव होता है। इससे मुझे शांति मिलती है और प्रकृति के रहस्यों का अर्थ जान पाता हूँ, जिनका वर्णन करने की मुझमें शक्ति नहीं है।[75] ये उद्‌गार गांधी ने यूरोप की भूमि मार्सेल्स के विद्यार्थियों के बीच कहे थे। इस चिंतन में गहन अनुभूति का आलोक है।

आजादी प्राप्ति के सिलसिले में गांधी ने अनेक कष्ट जेलों और विदेशियों के बीच सहे। इस कष्ट सहिष्णु मनःस्थिति के पीछे अहिंसा का बल था। उनके कार्य करने की शक्ति को देखकर अनेक लोग उनसे यह जानने को उत्सुक होते कि इतने दुबले-पतले शरीर में कार्य करने की और कष्ट सहन करने की इतनी क्षमता कहाँ से आयी? उन्होंने बताया—'अहिंसा के अतिरिक्त मुझ में अन्य कोई शक्ति नहीं है। मुझ में जो शक्ति है, वह अहिंसा की ही शक्ति है।' अपने लाखों अनुगामियों से भी यही कहा-हमें यह सिद्ध कर दिखाना है कि संसार में अहिंसा से बढ़कर तेजस्विनी कोई शक्ति है ही नहीं।' यह उजागर होता है कि बापू ने अहिंसा की शक्ति को किस रूप में स्वीकार किया था।

गांधी की भांति महाप्रज्ञ अहिंसा की शक्ति के प्रति पूर्ण आश्वस्थ थे। उनका यह मानना था कि अहिंसक शक्ति के सहारे हर असंभव को संभव बनाया जा सकता है पर शर्त एक ही है उसका निष्ठा के साथ अनुशीलन किया जाये।

अहिंसा की अदृश्य शक्ति में महाप्रज्ञ का पूरा विश्वास था। इस विश्वास का आधार रहा है वीतराग वचन। भगवान् महावीर ने कहा—'अहिंसा सब जीवों का कल्याण करने वाली है। जैसे भूखे के लिए भोजन, प्यासे के लिए जल और पक्षी के लिए आकाश सहारा है, वैसे ही अहिंसा सबके लिए सहारा है।' यह सत्य का निदर्शन है। विभिन्न नैतिक मूल्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव सापेक्ष हित संपादक बनते हैं वहीं अहिंसा निरपेक्ष रूप से सर्वत्र-सर्वदा सबका कल्याण करने वाली अमिट शक्ति है। आचार्य महाप्रज्ञ अहिंसा में व्यापक शांति स्थापना की शक्ति देखते थे पर वे बाधक तत्त्वों को भी स्वीकारते रहे हैं। उनका स्पष्ट कथन था कि अहिंसा एक पारसमणि है जिसके द्वारा लोहे को सोना बनाया जा सकता है। इसके द्वारा समाज में शांति की और अमन चैन की स्थापना की जा सकती है। जो सोने के द्वारा नहीं की जा सकती, उस शांति की स्थापना अहिंसा के द्वारा की जा

सकती है। इस सच्चाई को हम जानते हैं कि उस पारसमणि को जानते हुए भी वे सोना नहीं बना रहे हैं।[76] अहिंसा की शक्ति को महाप्रज्ञ किस रूप में देख रहे थे समझा जा सकता है।

उन्होंने यथार्थ मूल्यांकन के लिए ध्यान को शक्तिशाली साधन बताया। अहिंसा का विकास करने के लिए, अपने आपको जानने के लिए, प्राणीमात्र की समानता को समझने के लिए, प्राणी मात्र के प्रति अहिंसा के सूत्र का, संवेदना के सूत्र का विकास करने के लिए ध्यान का प्रयोग महत्त्वपूर्ण है। अहिंसा की शक्ति असीमित है, अपेक्षा है उसका एक शक्तिशाली अस्त्र के रूप में प्रयुक्त करने की। उनका स्पष्ट अभिमत था कि राष्ट्र निर्माण में अहिंसा के मौलिक स्वरूप को अपनाया जाये। प्रायोगिक रूप से मूल इकाई व्यक्ति को माना जाये। उनके शब्दों में 'व्यक्ति-व्यक्ति के चरित्र निर्माण से ही राष्ट्र निर्माण संभव होगा। भावात्मक विकास के बिना चरित्र निर्माण नहीं होता तथा चरित्र के बिना राष्ट्र भक्ति टिकती नहीं है।' राष्ट्र के वफादार नागरिकों का चरित्र अहिंसा निष्ठ होगा तभी वे सच्चे-नेक राष्ट्रभक्त बन सकते हैं।

अहिंसा एक शक्ति है जिसमें छिपा है—विश्वास। इस विश्वास के सहारे व्यक्ति खुशहाल जिन्दगी जी सकता है। अपने मन को निर्मल बना सकता है। व्यक्तित्व का समुचित विकास कर सकता है। जीवन को शांति से चलाने के लिए अहिंसा की शक्ति का विकास अपेक्षित है। 'अहिंसा की शक्ति का अनुभव हर व्यक्ति को हो सकता है।'[77] कर वही सकता है जिसने अहिंसा को जीवन में सम्यक् रूपेण प्रतिष्ठित किया है, व्यवहार के धरातल पर जीया है। अहिंसा की शक्ति असीम है, पर अब तक उस शक्ति का सही उपयोग नहीं हो पाया। इसका समुचित प्रयोग ही शक्ति का संवाहक है।

संयम का आचरण

दोनों मनीषियों के भीतर संयम की चेतना का पर्याप्त विकास हुआ। यद्यपि आंशिक और पूर्ण संयम की दृष्टि से अन्तर है। पर जहाँ तक संयमी वृत्ति का प्रश्न है समान रूप से उसकी विद्यमानता देखी जाती है। संयम की चेतना व्यक्ति को आंतरिक सौंदर्य प्रदान करती है। यह गांधी एवं महाप्रज्ञ के जीवन में अक्षरशः लागू होता है। महात्मा गांधी के बारे में एक विचारक ने लिखा 'मैंने दुनिया में इतने भद्दे आदमी में इतना सौंदर्य नहीं देखा।' इस कथन से मेल खाता महाप्रज्ञ का कथन-महात्मा गांधी का वजन केवल सौ पाउंड था। शरीर हड्डियों का ढांचा मात्र था। किन्तु उनका सौंदर्य इतना प्रभावक था कि विश्व के बड़े-बड़े व्यक्ति उनके पीछे फिरते थे। उनके साथ पाँच-दस मिनट बैठकर, उनसे बातचीत कर अपने आपको धन्य मानते थे। इस विशाल सौंदर्य का कारण क्या था? उसका एकमात्र कारण था-संयम। महात्मा गांधी ने इतना कठोर संयम साधा, संयममय जीवन व्यतीत किया कि प्रत्येक व्यक्ति उनके साथ रहने को ललचाता था और उनसे बात कर अपने आपको गौरवान्वित मानता था।[78] यह उनकी संयमी वृत्ति का प्रभाव था।

आचार्य महाप्रज्ञ का बाह्य सौंदर्य भी बहुत आकर्षक नहीं था, पर आंतरिक सौंदर्य के कारण कोई उनके सामने से उठने की इच्छा नहीं करता। वे महत्त्वपूर्ण से महत्त्वपूर्ण एवं समान्य से सामान्य व्यक्ति को अपनी ओर आकृष्ट करते थे। देश के प्रथम नागरिक राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम आचार्य महाप्रज्ञ के अन्तःसौंदर्य से अभिभूत हैं। उनके द्वारा निकले ये बोल इसके सबूत है—'आचार्य महाप्रज्ञ सम्प्रदाय से ऊपर हैं। साम्प्रदायिक सद्भाव भाईचारा मेल मिलाप की भावना का विकास आचार्य महाप्रज्ञ जिस कुशलता से कर रहे हैं उतना दूसरे नहीं कर सकते। इसलिए देश को आचार्य

महाप्रज्ञ जैसे संतों की बहुत अपेक्षा है। आप जैसे महानुभावों के सहयोग से ही देश का सही निर्माण हो सकेगा। मैं इस कार्य में आपका पूर्ण सहयोगी बनूँगा।' एक वैज्ञानिक के द्वारा आचार्य महाप्रज्ञ के बाबत यह टिप्पणी अपना मूल्य रखती है पर उनका व्यक्तित्व इससे उपरत अकल्प्य था।

दिव्य कलनाओं से सर्जित व्यक्तित्व में जादुई आकर्षण था। संयम की परिमल हर घटक को वासित करती रही। वे जिस मार्ग से गुजरते उसका काया पलट हो जाता। वे जिस गाँव, शहर में पहुँचे वहाँ के वातावरण में अपूर्व परिवर्तन घटित हुआ है। ऐसे अनगिन परिवर्तन के साक्षी भूत प्रसंग है। हाल ही में घटित एक का उल्लेख किया जा रहा है। मेड़ता सिटी में नागौर जिलाधीश श्री मधुकर गुप्ता ने जिले के अनेक वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारियों के साथ दर्शन कर अल्पकालीन प्रवास के व्यापक परिणामों का निवेदन किया-आचार्य जी! इन दिनों में मैं जिले के अनेक गाँवों और शहरों मे गया। सर्वत्र सद्भाव, समन्वय और उत्साह का वातावरण देखा।

आपके प्रवास की सर्वत्र सकारात्मक प्रतिक्रिया देखने को मिली। यदि नागौर जिले में आपका दीर्घकालीन परिभ्रमण और प्रवास होता तो एक आदर्श जिले के रूप में अपनी पहचान बना लेता। आपका अहिंसा प्रशिक्षण का उपक्रम अच्छा है।[79] यह कथन महाप्रज्ञ के आध्यात्मिक सौंदर्य का परिचायक है जिसमें असीम क्षमताओं का प्रवाह परिलक्षित हुआ है।

संयम के प्रति गांधी का आदर भाव प्राणवान था। ऐसा अहसास उनके शब्दों से होता है। 'संयम का स्वागत दुनिया के तमाम शास्त्र करते हैं। समकोण सब जगह एक ही प्रकार का होता हैं। दूसरे कोण अगणित है। अहिंसा और सत्य ये सब धर्मों के समकोण हैं। जो आचार इस कसौटी पर न उतरे वह त्याज्य हैं।'[80] प्रकट रूप से गांधी संयम को अहिंसा और सत्य की कसौटी पर कसकर जीवन में उतारने के पक्षधर थे।

संयम चेतना को संपुष्ट करने के लिए गांधी ने छोटी-छोटी बातों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। इस तथ्य की प्रस्तुति महाप्रज्ञ के शब्दों में-एक भाई आया आश्रम का और दांतून तोड़कर लाया। गांधी ने कहा—'अरे! इतना क्यों तोड़ा? तुमने फालतू तोड़ लिया। थोड़े से ही तुम्हारा काम चल सकता था। टहनी को ज्यादा तोड़ लिया।' प्रश्न टहनी का नहीं, प्रश्न फालतू अपव्यय का था। ऐसा ही दूसरा प्रसंग जो प्रमत्त चेतना का प्रतिकार करता है। एक व्यक्ति आया और खटिया को ऐसे ही सरका दिया। गांधी ने कहा कि तुमने खटिया सरकाई, देखा ही नहीं कि कोई जीव-जन्तु है। कितनी छोटी बात कि जहाँ चलते समय आदमी बैठे हुए को कुचलकर चला जाता है और ध्यान नहीं देता वहाँ खटिया को सरकाने में जीव-जन्तु का ध्यान दिया जाए।[81] जाहिर है गांधी के भीतर अपव्यय, प्रमाद से उपरत अप्रमत्त चेतना का विकास कितना प्रखर था। संयम चेतना की बदौलत उन्होंने अपने जीवन की सभी क्रियाओं को सीमित और सादगी पूर्ण बनाया।

गांधी की दैनिक जीवन चर्या में, व्यवहार में संयम की संपुट थी। सुबह मुंह धोने के बाद दंतुन धोकर जलाने के लिए गांधी सूखने को सम्भालकर एक तरफ रख देते। हाथ धोने के लिए पानी भी जरूरत से अधिक कोई भूल से गिराता तो वे कहते, 'साबरमती के सारे पानी के मालिक हम ही नहीं, और लोग भी हैं।' सार्वजनिक धन के उपयोग में पाई-पाई का खर्च विवेक पूर्वक हो इसके लिए बड़े सजग थे। इसकी पुष्टि मनु बहन के प्रश्न उत्तर में देखी जाती है। मनु ने एक बार पूछा 'बापू, आप ग्यारह बजे सोते हैं और तीन बजे उठ जाते हैं, फिर लालटेन क्यों बुझा देते हैं?' बापू का उत्तर था 'तेरा बाप कमाता है कि मेरा बाप कमाता है? यह जनता का पैसा है। उसे इस

तरह खर्च करने का हमें क्या अधिकार है?'[82] उत्तर की भाषा से जान सकते है कि गांधी के भीतर अपव्यय मुक्त-संयमी चेतना का अद्‌भुत विकास था। उनकी प्रत्येक क्रिया में संयम-सादगी की स्पष्ट झलक जीवन के उत्तरार्ध में देखी गयी।

आचार्य महाप्रज्ञ ने अखंड रूपेण संयम की साधना को जीवन का व्रत बनाया था। अहिंसा और संयम को समन्वित प्रस्तुति दी। 'अहिंसा का व्यापक स्वरूप है-संयम की चेतना का निर्माण।' जब तक संयम की चेतना का विकास नहीं होगा अहिंसा की साधना अधूरी रहेगी। यदि अहिंसा का सघन विकास करना है तो संयममय जीवन शैली को अपनाना होगा। जितना-जितना आत्म नियंत्रण होगा, संयम होगा अहिंसा की चेतना प्रस्फुरित होती जायेगी।

संयम के पुरोधा आचार्य महाप्रज्ञ ने जन-जन की संयम चेतना जगाने एवं आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुति देने में अहम भूमिका निभाई है। संयम का अर्थ है-उस व्यक्तित्व का विकास, जो बाह्य से निरपेक्ष होकर अपने-आपमें परिपूर्ण, संतुष्ट और परितृप्त है।

संयम का अर्थ है-उस व्यक्तित्व का विनाश, जो बाह्य से अधिक सम्बन्ध होकर अपने-आप में अपूर्ण, असंतुष्ट और अतृप्त रहता है। महाप्रज्ञ ने इस सच्चाई को जीया है। उनकी पदार्थाकर्षण मुक्त संयम चेतना का एक उदाहरण पर्याप्त होगा-एक भाई बहुत बढ़िया घड़ी लेकर आया। महाप्रज्ञ से बोला—'महाराज इसे रख लें।' 'उन्होंने कहा-नहीं।' उसने कहा-'क्यों?' महाप्रज्ञ का उत्तर था-'साधरण घड़ी है तो कोई चिंता नहीं रहती। कोई उसे उठाकर ले भी नहीं जाता। कीमती घड़ी है तो उसको संभाल कर रखना पड़ेगा, सावधानी रखनी पड़ेगी कि कोई उठाकर न ले जाए। एक भय का भार सिर पर और आ जाता है।'[83] उनकी सोच में-बढ़िया चीज साधु को लेनी ही नहीं चाहिए।.....साधारण चीज की तो नहीं, किंतु कोई विशिष्ट, बढ़िया चीज आई, वह चाहे घड़ी हो, कपड़ा हो, पैन हो, कुछ भी हो, बढ़िया नाम में ही खतरा है। वह भय को मोल लेने जैसा है। कथन में उत्कृष्ट संयम चेतना की स्पष्ट झलक है।

संयम की शक्ति विश्व शांति का नियामक तत्त्व है। इस ओर दुनियाँ का ध्यान केन्द्रित करते हुए महाप्रज्ञ ने कहा-हम संयम के द्वारा विश्वशांति की स्थापना करना चाहते हैं। केवल चर्चा, भाषण, विचार और चिन्तन से विश्व में शांति का सपना साकार नहीं होगा। जब तक आम जनता में, विश्व के नागरिकों में यह संयम की आस्था पैदा नहीं होगी, तब तक विश्व शांति के लिए होने वाली चर्चाएं और प्रयत्न व्यर्थ होंगे।[84] आशय रूप विश्व शांति के लिए असंयम-उपभोक्तावाद की वृत्ति का परिष्कार एवं संयम की चेतना का विकास अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। मनीषियों ने अहिंसा की पृष्ठभूमि में संयम के विकास को महत्त्वपूर्ण माना है। अपने जीवन में उसको उचित स्थान देकर उदाहरण प्रस्तुत किया है।

साध्य-साधन शुद्धि

साध्य-साधन शुद्धि पर गांधी और महाप्रज्ञ ने समान रूप से बल दिया। राजनीति के क्षेत्र में साधन शुद्धि पर बल देने वाले गांधी अपनी कोटि के अकेले नेता थे। भारतीय स्वतंत्रता के संदर्भ में—'मैंने भारत की आजादी के लिए जीवन भर कोशिश की है, लेकिन यदि इसे सिर्फ हिंसा द्वारा ही पाया जा सकता है तो मैं इसे पाना नहीं चाहूँगा। स्वाधीनता प्राप्त करने के साधन उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं, जितना की स्वयं साध्य।' कथन की पुष्टि में कहा 'यदि भारत हिंसा के सिद्धांतों को अपनाता है तो वह अस्थायी विजय भले ही प्राप्त कर ले, लेकिन तब वह मेरे हृदय का गर्व नहीं रहेगा। मेरा

पूर्ण विश्वास है कि भारत को दुनिया के लिए एक संदेश देना है। लेकिन यदि भारत ने हिंसात्मक साधनों को अपनाया तो यह परीक्षा का समय होगा। मेरा जीवन अहिंसा धर्म द्वारा भारत की सेवा के लिए समर्पित है।'[85] प्रस्तुत अभिमत में साधन शुद्धि का स्वर मुखर है।

अहिंसक साधनों से ही स्वराज्य प्राप्त हो यह गांधी की हार्दिक भावना थी। दृढ़ स्वर था-स्वराज्य प्राप्ति करने के साधनों का शुद्ध अहिंसात्मक होना आवश्यक है। भारत यदि हिंसात्मक साधनों को ग्रहण करले तो मैं जो दिलचस्पी भारतीय स्वराज्य में ले रहा हूँ, बन्द हो जाय। क्योंकि उस साधन का फल स्वतंत्रता नहीं, बल्कि स्वतंत्रता के पर्दे में गुलामी होगी। अभी तक हम जो स्वतंत्रता न प्राप्त कर सके उसका कारण यही है कि हम विचार, वाणी और आचार में अहिंसानिष्ठ नहीं रहे हैं। हाँ, यह बात सच है कि अहिंसा को हमने धर्म के रूप में ग्रहण नहीं किया-व्यवहारनीति के रूप में स्वीकार किया है। हम जानते हैं कि भारत वर्ष को दूसरे किसी साधन से स्वराज्य नहीं मिल सकता, किन्तु इसके कारण हमारी व्यवहारनीति में पाखण्ड को स्थान नहीं मिल सकता और न मिलना ही चाहिए। अहिंसा का स्वांग बनाकर हम हिंसा को आश्रय नहीं दे सकते। एक साध्य के लिए, एक नियतकाल तक अहिंसानिष्ठ होने का हम दावा करते हैं।[86] स्पष्टतया साध्य प्राप्ति हेतु साधन शुद्धि का सिद्धांत प्रकट हुआ है।

गांधी ने साध्य में बीज-वृक्ष का संबंध बतलाया। साधन बीज है और साध्य हासिल करने की चीज-पेड़ है। इसलिए जितना सम्बन्ध बीज और पेड़ के बीच है, उतना ही साधन और साध्य के बीच है। शैतान को भजकर मैं ईश्वर-भजन का फल पाऊँ यह कभी हो ही नहीं सकता। इसलिए यह कहना कि हमें तो ईश्वर को ही भजना है, साधन भले शैतान हो, बिल्कुल अज्ञान की बात है। जैसी करनी वैसी भरनी।

साध्य की उपलब्धि में साधन की भूमिका को अधिक स्पष्ट करते हुए उनका कहना था-मुझे अगर आपसे आपकी (व्यक्ति से) घड़ी छीन लेनी हो तो बेशक आपके साथ मुझे मार-पीट करनी होगी। लेकिन अगर मुझे आपकी घड़ी खरीदनी हो, तो आपको दाम देने होंगे। अगर मुझे बख्शीश के तौर पर आपकी घड़ी लेनी होगी, तो मुझे आपसे विनय करनी होगी। घड़ी पाने के लिए मैं जो साधन काम में लूँगा, उसके अनुसार वह चोरी का माल, मेरा माल या बख्शीश की चीज होगी। तीन साधनों के तीन अलग परिणाम आयेंगे।[87] मन्तव्य से प्रकट है कि साध्य की प्राप्ति में साधन का अनन्य योगदान रहता है। साधन की उपेक्षा कर वांछित साध्य की कल्पना नहीं की जा सकती।

जीवन में साधन शुद्धि के सिद्धांत को अपनाया। अपने जीवन के प्रसंग का उल्लेख किया-मेरे जीवन में मुझे अपने प्रतिपक्षियों को गोली से उड़ा देने के और शहीदों के सिंहासन पर बैठने के कितने ही मौके मिले थे, परन्तु मेरे हृदय ने उनमें से किसी पर गोली झाड़ने का मार्ग स्वीकार नहीं किया, क्योंकि मैं नहीं चाहता था कि वे मेरा संहार कर डालें, फिर भले ही मेरे साधनों को वे कितने ही नापसन्द क्यों न करते हों। मैं चाहता था कि वे मुझे मेरी गलती समझा दें और मैं उन्हें उनकी गलती समझाने की कोशिश करता था, पर इस सूत्र का सदैव पालन किया—'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।'[88] इस कथन से स्पष्ट होता है कि गांधी ने लक्ष्य प्राप्ति से अधिक महत्त्व लक्ष्य साधक कारक को दिया।

साध्य-साधन शुद्धि के विचारों को सरल शब्दों में रखा-जो मनुष्य बन्दूक धारण करता है और जो उसकी सहायता करता है, दोनों में अहिंसा की दृष्टि से कोई भेद नहीं दिखाई पड़ता। जो आदमी

डाकुओं की टोली में उसकी आवश्यक सेवा करने, उसका भार उठाने, जब वह डाका डालता है, तब उसकी चौकीदारी करने, जब वह घायल हो तो उसकी सेवा करने का काम करता है, वह उस डकैती के लिए उतना ही जिम्मेदार है जितना कि खुद डाकू। इस दृष्टि से जो मनुष्य युद्ध में घायलों की सेवा करता है, वह युद्ध के दोषों से मुक्त नहीं रह सकता।[89]

महाप्रज्ञ के साध्य-साधन संबंधी विचार तेरापंथ के आद्य प्रणेता आचार्य भिक्षु के सैद्धांतिक तथ्यों के वाहक होने के साथ उनमें मौलिकता है। साध्य और साधन की एकता के संबंध में महाप्रज्ञ का अभिमत रहा—आध्यात्मिक जगत् का साध्य है आत्मा की पवित्रता और उसका साधन भी वही है। आत्मा की अपवित्रता कभी भी आत्मिक पवित्रता का साधन नहीं बन सकती। पहले क्षण का साधन दूसरे क्षण में साध्य बन जाता है और वही उसके अगले चरण का साधन बन जाता है। पहले क्षण का जो साध्य है वह अगले क्षण के लिए साधन है। पवित्रता ही साध्य है और वही साधन है।[90] साध्य और साधन की एकता के परिचायक ये विचार शुद्ध साध्य के लिए साधन की शुद्धि को प्रकट करते हैं। साध्य की सिद्धि में साधन को गौण नहीं किया जा सकता।

आचार्य महाप्रज्ञ ने साध्य-साधन की मीमांसा के मुख्य आधार का जिक्र किया-साध्य और साधन की एकता के विचार को आचार्य भिक्षु ने जो सैद्धान्तिक रूप दिया, वह उनसे पहले नहीं मिलता। शुद्ध साध्य के लिए साधन भी शुद्ध होने चाहिए।

साध्य-साधन संबंधी अपने विचारों को रखते हुए बताया-निर्वाण का मुख्य साध्य है-आदमी बदले। निर्वाण का अर्थ है आदमी का बदलना। आदमी की वृत्तियों का बुझ जाना। आदमी की वृत्तियों का शान्त हो जाना। हमारे सामने साध्य है कि आदमी बदले, आदमी की वृत्तियां बदले, दृष्टिकोण बदले, उसका चरित्र बदले। यह हमारा साध्य है। जब हृदय नहीं बदलेगा वे सारे कैसे बदलेंगे? उनको बदलने का एकमात्र कोई साधन है तो वह है चैतन्य का जागरण। जब चैतन्य जागता है हृदय का परिवर्तन होता है, तब ये सारी बातें बदल जाती है। यह काम न भय से हो सकता है और न बल-प्रयोग से हो सकता है और न आर्थिक प्रलोभन से हो सकता है। इस संदर्भ में जब साधन-शुद्धि का विचार करते हैं तो इस निष्कर्ष पर पहुंचना होता है कि अहिंसा का साधन हिंसा नहीं हो सकती। भय हिंसा है। बल प्रयोग भी हिंसा है। सत्ता का प्रदर्शन भी हिंसा है। आर्थिक प्रलोभन भी हिंसा है। धन से धर्म नही हो सकता। हिंसा से अहिंसा नहीं हो सकती।[91] इस मंतव्य के परिप्रेक्ष्य में साध्य की सिद्धि में साधन की शुद्धि अनिवार्य है। विमर्शतः गांधी और महाप्रज्ञ दोनों साध्य की सिद्धि में साधन की शुद्धि को स्वीकारते थे। यद्यपि दोनों का साध्य-साधन संबंधी चिंतन भिन्न क्षेत्रों को प्रभावित करने पर भी अपने-अपने क्षेत्र में समान रूप से साधन शुद्धि पर बल देता रहा है।

प्रयोग धर्मिता

सैद्धांतिक तथ्यों के आधार पर अहिंसा को प्रायोगिक धरातल पर प्रतिष्ठित करने में मनीषियों के प्रयत्न बेमिसाल हैं। अहिंसा की शक्ति से जन साधारण लाभान्वित हो इस हेतु प्रयोगों की सार्थकता स्वतः प्रमाणित है। गांधी ने अहिंसा को केवल नीति के रूप में ही नहीं स्वीकारा अपितु जीवन के प्रत्येक क्रिया-कलाप में उसको समरस बनाने का प्रयत्न किया। फिर चाहे प्रसंग ब्रह्मचर्य की साधना का हो अथवा आहार संयम का हो। अहिंसक चिकित्सा के रूप में मिट्टी और पानी के प्रयोग गांधी अक्सर किया करते थे। कस्तूरबा को स्वस्थ बनाने के निमित्त स्वयं आहार संयम का प्रयोग-एक

साल के लिए दाल और नमक का त्याग किया।[92] इतना ही नहीं किसी भी अप्रिय घटना के घटने पर गांधी प्रायश्चित्त स्वरूप निराहार उपवास किया करते थे।

अहिंसक चेतना के विकास स्वरूप गांधी ने अनेक प्रयोग किये जिसमें दूध का परित्याग भी सम्मिलित है। सूक्ष्म दृष्टि से वे हर क्रिया को अहिंसक पद्धति से संपादित करने के पक्षधर थे। हर क्षण के सदुपयोग का स्मरण उनकी अहिंसक चेतना का सबूत है। सामान्य रूप से छोटी-से-छोटी बात पर भी उनकी नजर टिकी रहती। यहाँ तक कि पानी का अपव्य न हो इस दृष्टि से पानी के ड्रम के पास एक तख्ती लगवाई गयी। उस पर लिखा था -आवश्यकता से अधिक एक बूँद जल व्यर्थ फेंकना, 'अपरिग्रह व्रत' के विरुद्ध आचरण होगा। आचरणात्मक पहलू से स्पष्ट होता है कि उनका अहिंसा धर्म विशाल था। उसमें सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह सभी व्रतों का समावेश था। इन प्रमुख व्रतों की साधना अपने जीवन में की। जीवन के व्यक्तिगत व्यावहारिक पक्ष से लेकर राजनीति पर्यंत अहिंसा के प्रयोगों की अनुगूँज गांधी की विरल पहचान थी।

महाप्रज्ञ ने अहिंसा को जीवनव्रत के रूप में स्वीकारा अतः उनके जीवन की प्रत्येक क्रिया में अहिंसा की छाप स्वाभाविक रही है।

मन-वचन-कर्म की सूक्ष्म अहिंसक साधना उनके जीवन का अभिन्न अंग बनी। अतः महाप्रज्ञ के जीवनगत अहिंसानिष्ठ प्रयोगों का उल्लेख नामुमकिन है। पर उनकी प्रायोगिक अहिंसा का अंकन परमानंद कापड़िया के इस उल्लेख से किया जा सकता है—'मेरे लेख में कहीं-कहीं व्यंग्य भी है, कटूक्तियाँ भी हैं, किन्तु मुनिश्री नथमलजी ने जो लेख लिखा है, उसमें केवल समीक्षा है, न कोई व्यंग्य और न कोई कटूक्ति।' इससे मैं बहुत प्रभावित हुआ।[93] यह कथन महाप्रज्ञ की प्रायोगिक अहिंसा का प्रमाण है, जो उनके लेखन में भी झलकती रही।

महाप्रज्ञ का मानना था कि जब तक अहिंसा को प्रायोगिक संदर्भ नहीं मिलेगा इसके वांछित परिणाम नहीं निकलेंगे। उन्होंने बलपूर्वक कहा अहिंसा का केवल उपदेश ही नहीं प्रयोग व प्रशिक्षण भी जरूरी है। अहिंसा प्रशिक्षण महाप्रज्ञ द्वारा सुझाया गया ऐसा उपक्रम है जो प्रयोक्ता की अहिंसक चेतना को जगाता है। इसका आधार सूत्र है-हिंसा के बीजों को प्रसुप्त बनाकर अहिंसा के बीजों को जागृत करना। अहिंसा के बीज वपन हेतु अहिंसा प्रशिक्षण की आवश्यकता पर न केवल बल दिया अपितु इसकी समग्र प्रक्रिया प्रस्तुत कर इसे व्यापकता प्रदान की। हजारों व्यक्ति इस प्रशिक्षण से जुड़े और परिवर्तन की मिसाल कायम की। उदाहरण स्वरूप-अहिंसा प्रशिक्षण से झाबुआ जिले के आदिवासियों के जीवन में एक मोड़ आया है। झारखंड के 35 छात्र उग्र नक्सलवादी गतिविधियों से तंग आकर अहिंसा का प्रशिक्षण लेकर अहिंसा के प्रचार कार्य से जुड़ रहे हैं। अहिंसा प्रशिक्षण को अधिक व्यापक बनाने हेतु आचार्य महाप्रज्ञ ने सप्तवर्षीय अहिंसा यात्रा का अभियान चलाकर जन-जन में अहिंसा की निष्ठा पैदा करने का सार्थक उपक्रम किया है। महाप्रज्ञ ने अनुभव किया-'अहिंसा यात्रा की जरूरत पूरे राष्ट्र और विश्व को है। आज जिस प्रकार हिंसा बढ़ रही है, उससे पूरा राष्ट्र चिंतित है। यदि पूरे राष्ट्र में अहिंसा की यात्रा चले तो पूरा राष्ट्र फलफूल सकता है।'[94] इस बढ़ती हिंसा में भावी पीढ़ी का कल्याण कैसे हो? उसके लिए अहिंसा यात्रा जरूरी है।

अहिंसा को, धर्म को जब तक जीवन की व्यावहारिक समस्याओं के साथ नहीं जोड़ेंगे, तब तक धर्म केवल कल्पना की बात, जबानी जमा खर्च की बात रहेगा, धर्म की सारी अवधारणा को ही बदलना है। स्पष्टतया महाप्रज्ञ अहिंसा को सामाजिक धरातल पर प्रायोगिक रूप में प्रतिष्ठित करने

के न केवल पक्षधर थे अपितु प्रयत्नशील भी रहे हैं। इसकी मिसाल है उनकी कृति 'कैसे रहे परिवार के साथ'। जिसमें धर्म की अवधारणा को नया परिवेश मिला है। तथाकथित धार्मिक के जीवन व्यवहार ने धार्मिक मूल्यों का ह्रास किया है। झगड़ालू प्रकृति, धोखाधड़ी पूर्ण व्यवहार के चलते वर्तमान पीढ़ी का बढ़ता अनास्थाभाव, धर्म के प्रति उपेक्षापूर्ण दृष्टि में बदलाव की अनिवार्यता देख आचार्य महाप्रज्ञ ने धर्म और धार्मिक के अन्तरविरोध का सटीक शब्दों में चित्रण किया है। उनकी सोच में धर्म मात्र परलोक सवारने की प्रक्रिया नहीं है। इससे वर्तमान जीवन भी आनंददायी बनता है। पारिवारिक संबंधों में मधुरता परिलक्षित होती है। सामाजिक और राजनैतिक धरातल पर नैतिकता पूर्ण व्यवहार होता हे। अपेक्षा है धर्म के सही तत्त्व को जीवन में अपनाने की।

महाप्रज्ञ ने बताया कालबद्ध और क्षेत्रबद्ध धर्म की साधना से भी व्यापक धर्म है जो चौबीस घंटे होता है। सत्यनिष्ठा, ईमानदारी, नैतिकता, सदाचार आदि ऐसे ही व्यापक धर्म हैं। जब तक चौबीस घंटे वाला व्यापक धर्म हमारे जीवन में नहीं उतरता तब तक समस्याएँ भी बनी रहेंगी।

स्वयं को धार्मिक मानने वालों से महाप्रज्ञ का आह्वान था-कसौटी करते रहना चाहिए कि धर्म से हमारा वर्तमान सुधर रहा है। जीवन में सकारात्मक परिवर्तन कितना आ रहा है? व्यवहार में कितना बदलाव आ रहा है? कसौटी न करें और जीवन भर आँख मूंदकर धर्म करते रहें तो इससे कुछ भी नहीं होगा। कोल्हू के बैल की तरह एक ही गोल घेरे में जीवन भर चक्कर लगाते जीवन बीत जाएगा, पहुँचेंगे कहीं नहीं। न घर के रहेंगे न घाट के। न इहलोक सुधरेगा न परलोक।[95] प्रायोगिक धरातल पर आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा प्ररूपित अहिंसा प्रशिक्षण एवं अहिंसा यात्रा ऐसे उपक्रम हैं जिनके जरिये अहिंसा का प्रायोगिक रूप अधिक तेजस्वी और कार्यकारी बना है।

समाज में अहिंसा के विकास के परिप्रेक्ष्य में उनका अभिमत है कि व्यक्तिगत जीवन और सामाजिक जीवन में अहिंसा की प्रतिष्ठापना के लिए भावनात्मक तनाव से मुक्त होना होगा। जब तक भावनात्मक तनाव है तब तक हिंसा से सर्वथा मुक्त होना असम्भव लगता है। अतः तनाव मुक्ति के प्रयोगों का अनुशीलन किया जाये, यह अपेक्षित है। इस अपेक्षा की पूर्ति में महाप्रज्ञ ने अनेक अहिंसक प्रयोग प्रस्तुत किये हैं। मनीषियों ने अहिंसा को व्यक्ति, समाज और राष्ट्र व्यापी बनाने के लिए इसके व्यापक प्रयोग प्रस्तुत किये जो उनकी प्रयोगधर्मा चेतना का सबूत है।

सूक्ष्म मीमांसा

अहिंसा के विकास की दृष्टि से हिंसा के सूक्ष्म स्वरूप का चिंतन अपने-अपने क्षेत्र में समान रूप से किया है। कार्य क्षेत्रीय भिन्नता के बावजूद सूक्ष्मता में अवगाहन मनीषियों की पारदर्शी प्रज्ञा का प्रमाण है। जीवन की अनिवार्यता पर सत्य को धूमिल न करके यथार्थ का निदर्शन अहिंसानिष्ठ चेतना का सबूत है। हिंसा की सूक्ष्मता में अवगाहन करते हुए गांधी ने कहा था 'कर्ममात्र सदोष है क्योंकि उसमें हिंसा समायी हुई है तो भी कर्म के क्षय के लिए कर्म ही करते हैं। देहमात्र पाप है। तो भी देह को तीर्थक्षेत्र बनाकर देह-मुक्ति की तैयारी करते हैं वैसे ही हिंसा को भी समझना चाहिये।'

पर यह हिंसा हो कैसी? यह स्वाभाविक हो, कम से कम हो, इसके पीछे केवल करुणा हो, विवेक हो, मर्यादा हो, इसके विषय में तटस्थता हो, यह सहज प्राप्त धर्म हो।[96] यह हिंसा के सूक्ष्म स्वरूप का चित्रण है इसमें हिंसा की अनिवार्यता का विवेक किया गया है।

अनुभूति के आलोक में गांधी ने कहा था-इस जगत् में कोई भी देहधारी, कुछ अंश में हिंसा

किए बिना अपनी देह को टिकाये नहीं रह सकता। सभी कोई (क) अपनी देह की रक्षा के लिए (ख) अपने रक्षणीय की रक्षा के लिए (ग) कभी-कभी उन्हीं जीवों को शान्ति देने के लिए-अनेक जीवों का वध करते हैं।

गांधी की सूक्ष्म दृष्टि में शाकाहार भी हिंसा की कोटि में आता है। उनका कहना था भाजी खाने वाला भी हिंसा करता है। जगत् हिंसामय है। देह धारण करने का मतलब है, हिंसा में शरीक होना।[97] ऐसी हालत में अहिंसा धर्म का पालन बहुत महत्त्वपूर्ण है। उनका चिंतन रहा कि 'निरामिष आहारी वनस्पति खाने में हिंसा है' यह जानता हुआ भी निर्दोषता का आरोपण कर मन को फुसलाता है। यह भी स्वीकारा कि खेती में सूक्ष्म जीवों की अपार हिंसा है। कार्यमात्र, प्रवृत्ति मात्र, उद्योग मात्र सदोष है।.....खेती इत्यादि आवश्यक कर्म शरीर व्यापार की तरह अनिवार्य हिंसा है। उसका हिंसापन चला नहीं जाता है।[98] हिंसा-अहिंसा का सूक्ष्म अन्वेषण किया। उनके विचारों में अहिंसा व्यापक वस्तु है। हम हिंसा की होली के बीच घिरे हुए पामर प्राणी हैं। यह वाक्य गलत नहीं है कि 'जीव-जीव पर जीता है।' मनुष्य एक क्षण के लिए भी बाह्य हिंसा के बिना जी नहीं सकता। खाते, पीते, उठते-बैठते, सभी क्रियाओं में इच्छा-अनिच्छा से वह कुछ-न-कुछ हिंसा तो करता ही रहता है। यदि इस हिंसा से छूटने के लिए वह महाप्रयत्न करता है, उसकी भावना में केवल अनुकम्पा होती है, वह सूक्ष्म से सूक्ष्म जंतु का भी नाश नहीं चाहता और यथाशक्ति उसे बचाने का प्रयत्न करता है, तो वह अहिंसा का पुजारी है। उसके कार्यों में निरन्तर संयम की वृद्धि होगी; उसमें निरन्तर करुणा बढ़ती रहेगी। किन्तु कोई देहधारी बाह्य हिंसा से सर्वथा मुक्त नहीं हो सकता।[99] हिंसा के सूक्ष्म स्वरूप का चित्रण अहिंसा के विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

महाप्रज्ञ ने जीवन से जुड़ी सूक्ष्म हिंसा को स्वीकारा-जब तक शरीर है हिंसा से बचना कठिन है। जीवन के जुड़े कर्म में हिंसा का अवकाश रहता है उदाहरण के तौर पर एक आदमी लिखता है, कलम और कागज के बीच में कुछ दिखाई नहीं देता। यन्त्र से देखें तो कलम और कागज के बीच कितने ही जीव मिलेंगे। जल में जीव है, जमीन में जीव है, एक भी अणु ऐसा नहीं है जहां जीव नहीं है। अर्थात् ज्ञान प्राप्त होने पर अवधि ज्ञानी जब देखते हैं तो जीव ही जीव दिखाई देते हैं।

शरीर के साथ जुड़े हिंसा के संबंध को विच्छिन्न करने के उद्देश्य से भगवान् ने बताया-तुम संयम पूर्वक चलो, संयम से ठहरो, संयम से बैठो, संयम से सोओ, संयम से खाओ-पाप का बन्धन नहीं होगा। जीव है या नहीं उसे छोड़ दो। हिंसा से बच पाते हैं या नहीं, पर भावना से तो बच ही जाते हैं। आज अहिंसा के साथ जीव का सम्बन्ध जोड़ रखा है और भावना का प्रश्न उड़ा दिया है।[100] कथन में यथार्थ का आकलन है। मनीषी द्वय ने जीवन से जुड़ी अनिवार्य हिंसा को स्वीकारा एवं पूर्ण अहिंसक जीवन के आदर्श को प्रस्तुत किया।

अहिंसा के स्थूल स्वरूप से कहीं अधिक गम्भीर है उसका पारदर्शी सूक्ष्म स्वरूप। यह दोनों के विमर्श का विषय रहा। चिन्तन के स्वातंत्र्य पर मनीषियों ने अहिंसा के सूक्ष्म स्वरूप का मंथन किया।

गांधी की दृष्टि में अहिंसा का अर्थ है प्रेम का समुद्र, वैरभाव का सर्वथा त्याग। अहिंसा में दीनता, भीरुता न हो। डरकर भागना भी न हो। अहिंसा में दृढ़ता, वीरता, निश्छलता हो।.....अहिंसा लूले-लंगड़े प्राणियों को न मारने में ही समाप्त नहीं होती। अहिंसा के माने पूर्ण निर्दोषिता ही है। पूर्ण अहिंसा का अर्थ है प्राणीमात्र के प्रति दुर्भावना का पूर्ण अभाव।[101]

प्रत्येक प्राणी के प्रति आत्मानुभूति की स्थिति में ही अहिंसा घटित होती है। प्राणीमात्र के प्रति जब तक समान अनुभूति नहीं जागती तब तक समभाव भी घटित नहीं होता और बिना समभाव के अहिंसा मात्र आदर्श रहती है जीवन का व्यवहार नहीं बन पाती। इस संदर्भ में अहिंसा के सूक्ष्म रूप का उल्लेख किया-'अहिंसा के माने सूक्ष्म जन्तुओं से लेकर मनुष्य तक सभी जीवों के प्रति समभाव।' अपने आशय को स्पष्ट किया किसान जो अनिवार्य जीव-नाश करता है, उसे मैंने कभी अहिंसा में गिनाया ही नहीं। यह वध अनिवार्य होकर क्षम्य भले ही गिना जाय, किन्तु अहिंसा तो निश्चय ही नहीं है।

अहिंसा के सूक्ष्म अर्थ को प्रस्तुत किया—'अहिंसा का अर्थ किसी के शरीर को प्रत्यक्ष हानि न पहुँचाना ही नहीं है। युक्ति-अयुक्ति, असत्य-प्रपंच, छल-कपट संक्षेप में कहा जाय तो सभी अस्वच्छ और कुटिल मार्गों की गणना हिंसा में है। जिसने एक बार अहिंसा को धर्मभाव से अथवा नीति के रूप में स्वीकार कर लिया, उसके लिए इन तमाम मलिन मार्गों का त्याग आवश्यक है।' उन्होंने यह भी कहा-अहिंसा का साधक केवल प्राणियों को उद्‌वेग पहुँचाने वाली वाणी न बोलकर और कर्म न करके अथवा मन में भी उनके प्रति द्वेषभाव न आने देकर संतोष नहीं मानता; बल्कि वह जगत् में फैले हुए दुःखों को देखने-समझने और उनके उपाय ढूँढ़ने का प्रयत्न करता रहेगा और दूसरों के सुख के लिए स्वयं प्रसन्नतापूर्वक कष्ट सहेगा। अर्थात् अहिंसा केवल निवृत्ति-रूप कर्म या अक्रिया नहीं है, बल्कि बलवान प्रवृत्ति या प्रक्रिया है।[102] अहिंसा और अहिंसक को अभेद दृष्टि से देखा जाये तो अनुभव होगा कि अहिंसा का अर्थ कितना गूढ़ एवं विराट् है।

अहिंसा की सूक्ष्मता के विकास की संभावना को आंकते हुए लिखा-आज हम ऐसी बहुत सी बातें करते हैं, जिन्हें हम हिंसा नहीं मानते हैं, लेकिन शायद उन्हें हमारे बाद की पीढ़ियां हिंसा के रूप में समझे। जैसे हम दूध पीते हैं या अनाज पकाकर खाते हैं, उसमें जीव हिंसा तो है ही यह बिल्कुल संभव है कि आने वाली पीढ़ी इस हिंसा को त्याज्य समझ कर दूध पीना और अनाज पकाना बन्द कर दे। आज यह हिंसा करते हुए भी हमें यह दावा करने में संकोच नहीं होता कि हम अहिंसा धर्म का पालन करते हैं। यह अहिंसा की सूक्ष्मता का चित्रण है। अहिंसा की सूक्ष्मता सहसा प्राप्त नहीं होती उसका भी क्रमिक भाव है। विकास क्रम का चित्रण गांधी ने किया। हिंसा त्याग की क्रमिक भूमिकायें होती हैं। देश, काल, विवेक और शक्ति के अनुसार व्यक्ति अहिंसा की ओर आगे बढ़ता है।

यदि अनिवार्य हिंसा को अहिंसा धर्म मानने की धारणा बन जाय, उस स्थिति में आगे बढ़ने की आशा नहीं की जा सकती। क्रमिक विकास का मार्ग स्पष्ट करते हुए गांधी ने लिखा खेती इत्यादि आवश्यक कर्म शरीर व्यापार की तरह अनिवार्य हिंसा है। उसका हिंसापन चला नहीं जाता है और मनुष्य ज्ञान, भक्ति आदि के द्वारा अन्त में अनिवार्य दोषों से मोक्ष प्राप्त कर, इस हिंसा से भी मुक्त हो जाता है।[103] परिलक्षित है कि अहिंसा की सूक्ष्मता को उन्होंने गहराई से पकड़ा। केवल पकड़ा ही नहीं उसे अपने जीवन के व्यवहार में स्थान दिया। उनकी प्रस्तुति थी-जान बूझकर मैं किसी भी प्राणी को दुःख नहीं पहुँचा सकता, मनुष्यों को तो दुःख पहुँचाने की बात ही नहीं, भले ही वह मेरा या मेरे स्वजनों का कितना ही अहित कर दें। अतः जहाँ मैं ब्रिटिश राज को अभिशाप समझता हूँ, वहाँ मैं एक भी अंग्रेज या भारत में उसके किसी भी उचित स्वार्थ को नुकसान नहीं पहुँचाना चाहता। प्रकट रूप से न केवल सूक्ष्म अहिंसा के स्वरूप को ही व्याख्यायित किया अपितु जीवन के व्यवहार पक्ष में भी उतारा। इसीलिए उनकी अहिंसा प्राणवान बनी।

महाप्रज्ञ ने अहिंसा के सूक्ष्म स्वरूप को प्रस्तुत किया। उन्होंने बताया-अहिंसा का अर्थ-केवल 'मत मारो' इतना ही न लें। वह तो है ही पर किसी को सताओ मत, पीड़ा मत पहुँचाओ, किसी का शोषण मत करो। किसी के साथ अन्याय मत करो। समस्त प्राणीमात्र को अपनी आत्म तुला के समान समझने का प्रयत्न करें। सबको अपनी आत्म तुला पर तौलें। जो व्यवहार आपको पसन्द नहीं है, वह व्यवहार आप भी किसी के साथ न करें। यह अहिंसा का सूक्ष्म आचरणात्मक पक्ष है। उनकी दृष्टि में अहिंसा का सूक्ष्म स्वरूप है—'अपने कुत्सित भावों पर नियंत्रण करना, प्रत्येक परिस्थिति को सहिष्णुता से सहना। भावावेश में किसी कार्य को न करना।'[104] वास्तव में भावनात्मक अहिंसा महत्त्वपूर्ण है। जब तक भावनात्मक स्तर पर अहिंसा का विकास नहीं होगा इसकी अनुपालना अपूर्ण रहेगी।

अपने जीवन में अहिंसा के सूक्ष्म स्वरूप को महाप्रज्ञ ने जीया है। अतः उनकी अहिंसा साधना स्थूल से सूक्ष्म की ओर कैसे गतिशील बनी यह महत्त्वपूर्ण विषय है। उन्होंने आत्मावलोकन के क्षणों में इस प्रश्न को समाहित करते हुए लिखा—मैं देखता हूँ एक दिन मैंने संकल्प किया था, मैं अहिंसा का पालन करूँगा। उस समय मेरे लिए अहिंसा का अर्थ था-जीवों को न मारना। जहाँ जीव न मरे, वहाँ भी हिंसा हो सकती है, यह मेरे लिए अतर्कणीय था।

जीव-दया की अर्थ-गरिमा भी कम नहीं है। आत्मतुला के भाव की चरम परिणति में अतुल आनन्दानुभूति होती है। समय-समय पर मुझे इसकी अनुभूति हुई है। मैं जैसे-जैसे बड़ा हुआ, सहधर्मियों की मनोभूमिका पर विहरने लगा, तब मुझे प्रतीत हुआ मेरी अहिंसा की समझ अधूरी है। अहिंसा की परिपूर्ण वेदिका के निर्माण के लिए मैं तड़प उठा। मैंने समझा अहिंसा का अर्थ है, परिस्थिति के मर्म-भेदी परशु से मर्माहित न होना। इस कुशल जगत् में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जो परिस्थिति के मृदु पुष्प से प्रमत्त और कठोर वज्र से आहत न हो। मुझे लगा जो व्यक्ति अपनी जीवन धारा को परिस्थिति के प्रभाव-क्षेत्र की ओर प्रवाहित कर देता है, वह अहिंसा की अनुपालना नहीं कर सकता। परिस्थिति की मृदुता से आनेवाली मूर्च्छा के साथ-साथ चेतना मूर्च्छित हो जाती है और उसकी कठोरता से उपजने वाली कुण्ठा के साथ-साथ वह कुण्ठित हो जाती है।

अहिंसा चेतना की स्वतंत्र दशा है। जो सर्दी से अभिभूत हो जाए, वह स्वतंत्र नहीं हो सकती। जो गर्मी से अभिभूत हो जाए, वह भी स्वतंत्र नहीं हो सकती। स्वतंत्र वह हो सकता है, जो किसी से अभिभूत न हो। अब मेरी अहिंसा का प्रकाश-स्तम्भ यही है। इसमें प्राणी-दया के प्रति मेरा मन पहले से अधिक संवेदनशील बना है। दूसरे की पीड़ा में अपनी पीड़ा की तीव्र अनुभूति होने लगी है। यदि मैं परिस्थिति की कारा का बंदी बना बैठा रहता तो दूसरों के प्रति निरन्तर संवेदनशील नहीं रह पाता।[105] कथन के आलोक में स्पष्ट है कि महाप्रज्ञ ने सूक्ष्म अहिंसा को केवल प्रतिपादित ही नहीं किया अपने जीवन में इसे साधा, साधना का आधार बनाया। तथ्यतः मनीषियों ने समय-समय पर अहिंसा की सूक्ष्मता को आंका और अपने जीवन में उसे उतारा है।

व्यक्ति सुधार से राष्ट्र सुधार

किसी भी राष्ट्र की मूलभूत इकाई व्यक्ति है। व्यक्ति का निर्माण ही राष्ट्र का सच्चा निर्माण है। इस संबंध में महात्मा गांधी और आचार्य महाप्रज्ञ एकमत थे। इस दिशा में उनके प्रयत्न स्तुत्य रहे हैं। अहिंसा की पृष्ठभूमि में व्यक्तित्व निर्माण संबंधी गांधी का कथन था—'अहिंसा का उद्देश्य उत्पीड़न

या दबाब किसी भी तरह नहीं हो सकता। इसका तो उद्देश्य हृदय परिवर्तन है।' स्पष्टतया व्यक्ति-व्यक्ति का हृदय परिवर्तन यानी व्यक्ति सुधार ही गांधी की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण था। व्यक्ति निर्माण की उनके भीतर अद्भुत कला थी। उन्होंने ऐसे व्यक्तित्व तैयार किये जो देश की आजादी के लिए अहिंसा की राह पर कुर्बान होने को भी तत्पर थे। उदाहरण के रूप में पं. मोतीलाल नेहरू, बाबू राजेंद्रप्रसाद, सी.सार. दास, सरदार वल्लभ भाई पटेल, सी. राजगोपालाचार्य, पं. जवाहरलाल नहेरू आदि प्रमुख हैं। गांधी के संपर्क से अनेक लोगों के जीवन का सारा अर्थ-बोध ही बदल गया था। पं. मोतीलाल नेहरू ने इलाहाबाद के उच्च न्यायालय में अपनी लाखों की प्रेक्टिस को लात मार दी थी; बीमारी के बाद किसी स्वास्थ्यप्रद स्थान में स्वास्थ्य लाभ के दौरान उन्होंने गांधी जी को एक पत्र लिखा था। उसके कुछ अंश इस प्रकार हैं—

'पहले के राजसी रसोड़े की जगह सिर्फ एक छोटी-सी रसोई और नौकरों की पुरानी पलटन में से अकेला एक मामूली-सा नौकर-चावल, दाल और मसाले की तीन छोटी-छोटी थैलियां,..... शिकार को धता बताई, दूर-दूर तक पैदल घूमने निकल जाता हूं, राइफल और बंदूकों की जगह किताबों और पत्र-पत्रिकाओं ने ले ली है....कहाँ से कहाँ पहुँच गये, लेकिन जिंदगी का जो लुफ्त आज है वह पहले कभी न था।'[106] उदाहरण से स्पष्ट होता है कि उनके सम्पर्क से पं. मोतीलाल नेहरू के जीवन में मौलिक परिवर्तन घटित हुआ। ऐसे अनेक व्यक्ति थे जिनका निर्माण गांधी ने अपनी अहिंसक चेतना के जरिये किया। उन्होंने व्यक्ति निर्माण से राष्ट्र निर्माण का सपना साकार किया।

गांधीवत् आचार्य महाप्रज्ञ ने राष्ट्र निर्माण में व्यक्ति निर्माण को महत्त्वपूर्ण बतलाया। 'सुधरे व्यक्ति समाज व्यक्ति से राष्ट्र स्वयं सुधरेगा' श्लोगन के द्वारा जन-जन में जागृति का सिंहनाद किया। व्यक्ति निर्माण की पृष्ठभूमि में नैतिक-चारित्रिक उत्थान के साथ संयम चेतना के जागरण को महत्त्वपूर्ण बतलाया। अहिंसा की बात कहां से शुरू करें? इसे समाहित करते हुए महाप्रज्ञ ने स्पष्ट कहा-'अहिंसा प्रतिष्ठा की शुरुआत व्यक्ति से करें। व्यक्ति स्वयं बदले, उसके संस्कार बदले, मान्यता बदले और यह धारणा पुष्ट बन जाए कि अहिंसा मेरा स्वभाव है। मुझे अहिंसा का जीवन जीना है, मेरी जीवन शैली अहिंसा की होगी।' व्यक्ति निर्माण की परिकल्पना अहिंसा के बुनियाद पर की गई है।

महाप्रज्ञ के संपर्क में आने वाली अनेक व्यक्तियों की जीवनधारा में मौलिक परिवर्तन आया और उनमें दिव्यगुणों का संचार हुआ। इसकी पुष्टि में एक-दो उदाहरण ही पर्याप्त होंगें। रामाधार नामक व्यक्ति अहिंसा यात्रा के दौरान आचार्य महाप्रज्ञ के सम्पर्क में आया और परिवर्तन का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया। एक समय था जब वह अपनी रिवॉल्वर हमेशा अपनी छाती से चिपका कर रखता था। आज उसे उस लोहे के खिलौने से कोई मोहब्बत नहीं है वह उसे बेचकर उससे मिलने वाले पैसों को नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में शांति के प्रसार में लगाना चाहता है। वह रामाधार जिसकी पहले पहचान इकबाल नाम से थी। पाँच खून करने पर भी पकड़ा नहीं गया। आज वह शांति योद्धा बन चुका है।[107] महाप्रज्ञ के संपर्क से बदलने वाले लोगों की बड़ी संख्या है।

मुंबई में सुपारी चलती है। खाने वाली सुपारी नहीं, यहाँ सुपारी का अर्थ है किसी को मारना। (मुंबई वालों की भाषा में इसे 'खल्लास' करना कहते हैं।) सुपारी, यानि एक तरह का ठेका।.... .यात्रा के दौरान इस तरह सुपारी लेकर काम करने वाला एक भाड़े का आदमी मुझे (महाप्रज्ञ) मिला। वह मेरे पास आया और बोला—'महाराज! आपने मुझे पहचाना?' मैं कुछ देर तक उसकी ओर देखता रहा, फिर बोला—'आकृति कुछ जानी-पहचानी-सी जरूर लगती है, किंतु पहचान नहीं पा रहा हूँ।'

उसने कहा—'अमुक गाँव से अमुक गाँव की ओर जाते हुए मैं आपसे रास्ते मैं मिला था। आपने उपदेश सुनाया था। इसके बाद मैंने आपकी सभाओं में कई बार अपनी हाजरी लगाई और आपके प्रवचन सुने। अब मैंने अपना धंधा बंद कर दिया।'

मैने पूछा—'कौन-सा धंधा?'

उसने कहा—'भाड़े पर मर्डर करने का। कल ही एक लाख की सुपारी मुझे मिल रही थी। मैंने साफ मना कर दिया। कह दिया कि अब मैं यह काम छोड़ चुका हूँ।'[108]

परिवर्तन की स्वात्मकथा का बयान करते हुए पुलिसकर्मी श्री डुगले ने बताया-मेरी ड्यूटी गुरू महाराज (महाप्रज्ञ) की सेवा में लगी। सेवा के साथ मुझे बड़ा आनंद आया। मैं यहाँ पूर्णतः तनावमुक्त रहा। मैंने अपनी ड्यूटी से अधिक समय काम किया तथा पूरी नैतिकता के साथ अपने कर्तव्य का पालन किया।

हमारे विभाग में कई लोग हफ्ता वसूली करते हैं पर मैं अहिंसा यात्रा के प्रणेता से प्रेरणा लेता हूं कि कभी अनैतिक कार्य नहीं करूँगा। व्यवसनमुक्त रहूँगा।

अनेक व्यक्ति परिवर्तन के साक्षी हैं। मराठा भील आदिवासी शिवदास कोचा, जो कभी शराबी था, सत्संग से जीवन में नया रंग खिला। संकल्प पूर्वक नशामुक्त बना और अपने क्षेत्र की पुलिस पाटिल पर पदासीन हुआ। महाप्रज्ञ की प्रेरणा से घर-घर प्रचार किया, उससे प्रभावित होकर 300 से अधिक लोगों ने नशे का परिहार किया।[109] यह महाप्रज्ञ के पारदर्शी व्यक्तित्व का चमत्कार था। जिसके संपर्क में आकर हजारों-लाखों लोगों ने बदली हुई फिजा का अनुभव किया। एक भाई के शब्दों में—'मेरी पुत्रवधू की बड़ी जटिल प्रकृति थी, किंतु प्रेक्षाध्यान शिविर में महाप्रज्ञ के सान्निध्य में आने के बाद इतना अंतर आ गया, जिसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता।' ऐसे परिवर्तन के अनेक प्रसंग घटित हुए हैं। अहिंसा को व्यापक संदर्भों में समझकर ही जीवन को समाजोपयोगी बनाया जा सकता है। व्यापक प्रयत्नों से महाप्रज्ञ ने अहिंसक व्यक्तित्व निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

हिन्दू-मुस्लिम एकता

राष्ट्र के अमनचैन एवं सौहार्दपूर्ण सहवास की पृष्ठभूमि में महात्मा गांधी एवं आचार्य महाप्रज्ञ दोनों के हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रयत्न महत्त्वपूर्ण साबित हुए है। युद्ध से युद्ध का, हिंसा से हिंसा का समाधान गांधी की दृष्टि में गलत था। किसी भी प्रकार के संघर्ष का स्थायी रूप से निदान अहिंसक साधनों के द्वारा ही हो सकता है, चाहे वह संघर्ष व्यक्ति का आन्तरिक हो या दो व्यक्तियों का आपसी हो अथवा वह सामाजिक, राजनैतिक-साम्प्रदायिक हो-सभी संघर्षों का निदान एक मात्र अहिंसा में है—यह गांधी का दृढ़ विश्वास था। उनके शब्दों में 'मेरा यह विश्वास है कि साम्प्रदायिक संघर्षों को रोकने के लिए भी अहिंसा का हथियार उसी प्रकार कारगर सिद्ध हो सकता है जिस प्रकार वह ब्रिटिश शासन के विरुद्ध लड़ी गई हमारी स्वतंत्रता की लड़ाई में कारगर सिद्ध हुआ है। उस समय लोगों ने अहिंसा द्वारा लड़ने में मेरा साथ दिया था, क्योंकि वे जानते थे कि जबरदस्त ब्रिटिश हथियारों का मुकाबला और किसी तरह नहीं किया जा सकता। किन्तु वह दुर्बलों की अहिंसा थी। साम्प्रदायिक लड़ाई में उस अहिंसा से काम नहीं चल सकता। उसके लिए तो वीरों की सच्ची अहिंसा की आवश्यकता है।[110] तदनुरूप गांधी ने अपनी शक्ति को नियोजित किया। अभय के बल पर उन्होंने एकता के प्रयत्नों में सफलता पाई।

सन् 1946 में नोआखाली जिले में, जहाँ मुसलमानों ने हिन्दुओं पर भयंकर अत्याचार किये थे, वे छुरियां लिए गाँव-गाँव घूम रहे थे, किसी हिन्दू की वहाँ जाने की हिम्मत नहीं होती थी। ऐसी स्थिति में गांधी उन गाँवों में पैदल चलकर पहुँचे और मुसलमानों को शान्ति का सन्देश सुनाया। सरकारी सुरक्षा से उपरत एवं मारक षड्यन्त्र से सावधान करने वालों से गांधी का उत्तर था 'ऐसा क्यों न हो? उनका भी तो इस शरीर पर अधिकार है। यदि मुझे अपने देशबन्धुओं से ही डर लगने लगे तो मुझे इसी समय से नेतापन को नमस्कार कर देना चाहिए। उनकी समझ में मेरी देश सेवा में कोई भूल होगी तभी तो वे मुझे मारना चाहते हैं, उसमें उनकी नेकनियती है, फिर भला उन्हें किस तरह दोष दूँ।'[111] निश्चित रूप से गांधी का आत्म मंथन कितना प्रबुद्ध था।

हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रयत्न में गांधी ने स्वयं को ऐसे क्षेत्रों में नियोजित किया जहाँ अशांति की संभावना थी। प्रसंग 13 अगस्त 1947 का है। गांधी वोलीघाट के मुसलमान के घर में रहने के लिए पहुँचे ही थे कि कुछ हिंदू युवक उनके शांति प्रयत्नों के खिलाफ प्रदर्शन करने को आ धमके। गांधी ने युवकों को समझाया.....भाई-भाई की इस लड़ाई को रोकना क्यों आवश्यक है। बंगाली युवक बदले हुए मन-मस्तिष्क से अपने घरों को लौट गये। यह एक चमत्कार था। उनके इस जादुई प्रभाव से कलकत्ता के हालात में रातोंरात परिवर्तन हो गया। दंगा रुक गया। आजादी की अगवानी का दिन 14 अगस्त दोनों कौमों ने संयुक्त रूप से साथ मिलकर मनाया।

31 अगस्त को कोलकाता में पुनः दंगा होने से गांधी के शांति प्रयत्नों को गहरा धक्का लगा। उन्होंने पहली सितंबर से अनशन शुरू करने की घोषणा कर दी-जब तक कलकत्ते में शांति स्थापित न होगी, वह अपना उपवास नहीं तोड़ेंगे। उनका दृढ़ विश्वास था 'जो मेरे कहने से न हुआ, वह शायद मेरे उपवास से हो जाये।' उपवास की घोषणा ने सारे कलकत्ते को हिला दिया.....। मुसलमान विचलित हो उठे और हिंदू लज्जा से नतमस्तक। दोनों कौमों के नेताओं ने आपस में शांति बनाये रखने की प्रतिज्ञा की और गांधी से प्रार्थना की वो अपना अनशन समाप्त कर दें। गांधी ने इस शर्त के साथ उपवास तोड़ा कि यदि फिर शांति भंग हुई तो वो आमरण अनशन कर देंगे।[112] इस मंतव्य से स्पष्ट होता है कि हिन्दू-मुस्लिम एकता हेतु गांधी ने अहिंसा का जीवंत प्रयोग कर दुनिया के समक्ष सफलता की मिसाल कायम की थी।

गांधी से भिन्न परिस्थितियों में महाप्रज्ञ ने हिन्दू-मुस्लिम एकता का स्वर बुलंद किया। साम्प्रदायिक सौहार्द में ही सभी का भला है। मानव-मानव के प्रति करुणा और मैत्री का भाव जागे। सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य रहे। इस दिशा में अपनी शक्ति के नियोजन हेतु कृत संकल्प महाप्रज्ञ ने गुजरात में उठे साम्प्रदायिक वैमनस्य को शांत करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। साम्प्रदायिक सद्भाव कायम हो इस हेतु हिन्दू और मुसलमान प्रमुख लोगों से विशद् वार्तालाप किया। अहिंसा यात्रा के मध्य सिद्धपुर, ऊंझा आदि गाँवों के हिन्दू-मुसलमान लोगों से महाप्रज्ञ ने कहा-शान्ति के लिए आवश्यक है कि सब लोग परस्पर विश्वास से रहें। साथ-साथ जीना है और विकास करना है तो इसके सिवाय और कोई रास्ता नहीं है।....एक दूसरे के प्रति भय से रहना, यह राष्ट्र के लिए शुभ संकेत नहीं है। कोई आदमी दूसरे के साथ मिलने से संकुचाता है तो वैसी अवस्था में व्यापार-व्यवहार कैसे चलेगा? वास्तव में अहिंसा केवल धर्म ही नहीं है। वह नीति और कूटनीति भी है। इसे हमें अच्छी तरह समझना होगा।[113]

शांति और विकास के अन्तरसंबंध को बतलाते हुए महाप्रज्ञ ने गुजरात में हिन्दू-मुस्लिम भाइयों के सामने एक बात रखी-गरीबी, अशिक्षा आदि से मुक्ति पाने के लिए विकास आवश्यक है। लड़ाई-

झगड़े की स्थिति में विकास नहीं किया जा सकता है। हिन्दू-मुसलमान एकता हेतु दोनों पक्षों के लोगों को आगाह किया कि किसी समप्रदाय का उत्सव हो, उसका अनादर न करें।.....मनुष्य में आस्था का अंतर हो सकता है। पर उसके लिए हम दूसरों के दिल को चोट पहुँचाएँ, यह उचित नहीं है। धर्म अलग-अलग हो सकते हैं। नैतिकता हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिए है।

आजादी के दिनों महात्मा गांधी द्वारा कोलकाता में हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रयत्नों की स्मृति करवाने वाला आचार्य महाप्रज्ञ का उपक्रम अहमदाबाद यात्रा के दौरान देखा गया। सांप्रदायिक हिंसा से ग्रस्त गाँवों में महाप्रज्ञ के चरण टिकें, उनमें एक ऐसा गाँव जहाँ जल्दी ही दंगा होने की प्रबल संभावना थी। दंगे के लिए आवश्यक साधन और सामग्री जुटा ली गई थी, महाप्रज्ञ ने तत्काल उस गांव के हिन्दू और मुसलमान दोनों समुदायों के प्रमुख लोगों को बुलाया। उनके साथ महाप्रज्ञ की लगभग पंद्रह मिनट तक बातचीत हुई। महाप्रज्ञ ने ज्ञापन दिया—'हमने दोनों समुदायों को आमने सामने बैठाकर कुछ बातें कही। लगभग आधा घंटा बाद हमें दोनों पक्षों की ओर से यह सूचना मिली कि अब दंगा नहीं होगा, अहिंसा प्रशिक्षण का कार्य शुरू होगा। दोनों समुदाय मिलकर इस कार्यक्रम को चलाएंगे।'[114] यह महाप्रज्ञ के प्राणवान प्रयत्नों का सुफल था। लोगों के दिलों में प्रेम के सुमन खिलें।

एकता के प्रयत्न को मूर्त रूप देते हुए आचार्य महाप्रज्ञ ने अहमदाबाद में जगन्नाथ की रथयात्रा में सम्मिलित होने का आमंत्रण स्वीकार किया। सनातन धर्म की रथयात्रा में जैन आचार्य का जाना कहाँ तक उचित होगा? ऊहापोह की परवाह किये बगैर ससंघ यात्रा में सम्मिलित हुए और स्पष्टीकरण किया—'आस्था अलग हो सकती है। पर अहिंसा के विचार में साम्य हो, इसलिए हम वहाँ गए।' जैन आचार्य का रथयात्रा में जाने का यह प्रथम अवसर था। उनकी उपस्थिति से सद्भावना का अभिनव रंग खिला। तनाव पूर्ण वातावरण में शांति पूर्वक रथयात्रा का मंचन महाप्रज्ञ की सूझबूझ का उदाहरण बन गया।

साम्प्रदायिक तनाव मुक्ति हेतु आचार्य महाप्रज्ञ की मौलिक चिंतन धारा ने सामाजिक वातावरण को स्वस्थ बनाने में अहं भूमिका निभाई है। गुजरात के दंगा पीड़ित कट्टरपंथी मुस्लिम लोगों द्वारा शांति स्थापना की पुरजोर प्रार्थना पर आचार्य महाप्रज्ञ ने साम्प्रदायिक सौहार्द की सभी से अपील की—हिंसा से हिंसा का शमन नहीं हो सकता। हिंसा का शमन अहिंसा से हो सकता है। कुछ एक व्यक्तियों के अपराध के कारण पूरे सम्प्रदाय एवं जाति को दोषी मानना उचित नहीं है। यहाँ आज जैसा वातावरण बना हुआ है वह निरंतर ऐसा ही बना रहा तो प्रदेश का विकास नहीं हो सकता। आपसी प्रेम एवं विश्वास का वातावरण बने एवं सभी एक दूसरे की स्वतंत्रता का सम्मान करें इसकी आवश्यकता है। कटुता एवं अविश्वास के वातावरण में कोई भी समाज आगे नहीं बढ़ सकता। आज आवश्यकता है उदार एवं अनुदार सभी लोगों के बीच सामंजस्य स्थापित हो। मानव जाति एक है। जिसका अहिंसा में विश्वास हो वह भेदभाव को महत्त्व नहीं दे सकता।....आखिर इस देश में हिंदू और मुसलमान दोनों को साथ-साथ रहना है। भय और आतंक के वातावरण में न आर्थिक विकास हो सकता है, न शैक्षणिक। देश की प्रगति के लिए साम्प्रदायिक सौहार्द अत्यंत अपेक्षित है।[115]

मनोवैज्ञानिक तरीके से आम लोगों को यह तत्व समझाया कि पारस्परिक सौहार्द कितना जरूरी है। उन्होंने बताया-हिन्दुस्तान विभिन्न जातियों, वर्गों और संप्रदायों का देश है। दुनिया को एक सिरे से दूसरे सिरे तक देखें, इतना विविधवर्णी देश दूसरा कोई नहीं मिलेगा। सदियों से रहते आए विविध

मतों के लोगों को भविष्य में भी यहीं रहना है। हिंदुओं को हिंदुस्तान से कहीं जाने की जरूरत ही नहीं हैं। मुसलमानों को भी यहाँ से जाने की जरूरत नहीं है। सभी समान रूप से यहां रहकर सुविधा-असुविधा, अमीरी-गरीबी झेल रहे सबके हित समान है। शांति से रहेंगे तो अपना और देश का भी विकास होगा, लड़ते-झगड़ते रहेंगे तो और ज्यादा गरीब बन जाएँगे।[116]

इस असाम्प्रदायिक संदेश का व्यापक असर हुआ। स्थाई परिणाम की आकांक्षा से अणुव्रत आंदोलन के दो व्रतों का जिक्र किया गया—

- मैं मानवीय एकता में विश्वास रखूँगा।
- धार्मिक सहिष्णुता रखूँगा।

लोकतंत्र में स्वतंत्रता सबसे बड़ा धर्म है वह तभी संभव है जब लोग शांति से रहें। विकास के लिए भी शांति अनिवार्य है शांति के लिए अहिंसा अनिवार्य है।

'सब मनुष्य समान है' यह अहिंसा का एक आधारभूत सिद्धांत है। मनुष्य जाति एक है-इस स्वर की उपेक्षा से मानव समाज का विकास अवरूद्ध हुआ है। जातिवाद और संप्रदायवाद ने सह-अस्तित्व को बहुत हानि पहुँचाई।....जातिवाद ने उच्च माने जाने वाले लोगों में अहंकार को बढ़ावा दिया और निम्न माने जाने वाले लोगों में हीन भावना को जन्म दिया। जहां अहंकार और हीन-भावना होती है, वहाँ सह-अस्तित्व नहीं हो सकता। जहाँ सह-अस्तित्व नहीं होता, वहाँ अहिंसा नहीं हो सकती।[117] कथन में साम्प्रदायिक सद्भावना के विकास का स्पष्ट इंगित है।

मुस्लिम भाइयों और ईसाइयों के मन में महाप्रज्ञ ने विश्वास पैदा किया। इसका प्रतीक है उनके द्वारा निकले ये शब्द—'आप ऐसे पहले व्यक्ति हैं, जो मानव और मानवता की बात करते हैं। प्रेम और भाईचारे की बात करते है।' इसी का परिणाम था मुहम्मद साहब के जन्मदिन के अवसर पर मुसलमान समाज की ओर से महाप्रज्ञ के पास निवेदन आया कि पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहब के जन्म दिन शबे-बरात के दिन हमें आपका संदेश चाहिए। संदेश प्रेषित किया गया जिसे लाखों मुसलमानों के बीच में पढ़ा गया। लोगों को आश्चर्य हुआ कि मुसलमानों के जलसे में किसी अन्य धर्मगुरू के संदेश का वाचन किया गया हो।[118] पर यह सच्चाई है जो महाप्रज्ञ के विराट् अहिंसा प्रेम का सबूत है।

राष्ट्रीय एकता-अखंडता के संबंध में महाप्रज्ञ का चिंतन था—हिन्दुस्तान अनेक जातियों और सम्प्रदायों का संगम है। एकता को हमेशा अनेकता की समस्या का सामना करना पड़ता हैं। राष्ट्र एक है, जातियां और सम्प्रदाय अनेक। अनेक में होने वाला टकराव एक के अस्तित्व को खतरे में डाल देता है।

हिन्दुस्तान के प्रबुद्ध वर्ग के लिए यह जरूरी हो गया है कि राष्ट्र की एकता को सुदृढ़ आधार देने के लिए वह कुछ प्राचीन मूल्यों के स्थान पर नए मूल्यों की स्थापना करे। कर्मणा जाति और स्वीकृत सम्प्रदाय-यह अवश्य ही नया मूल्य है।[119] इसकी प्रतिष्ठा हेतु उन्होंने जन-जन की चेतना को आंदोलित करने का प्रयत्न किया।

राष्ट्रीय एकता मूलक प्रयत्नों के लिए इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार आचार्य महाप्रज्ञ को प्रदान किया गया।

आचार्य महाप्रज्ञ ने साम्प्रदायिक सौहार्द हेतु व्यापक प्रयत्न किये हैं। जिसके महत्त्वपूर्ण संदर्भ-ख्वाजा दरगाह अजमेर, गोधराकांड प्रभावित गुजरात प्रांत, मुम्बई-भिवंडी आदि मुस्लिम बहुल क्षेत्रों के संभ्रात लोगों के बीच सौहार्द, भाईचारे का सन्देश पहुँचाना है। महाप्रज्ञ के साम्प्रदायिक सद्भावना मूलक

प्रयत्नों का आकलन करते हुए 'राष्ट्रीय साम्प्रदायिक सद्भावना प्रतिष्ठा' द्वारा 'राष्ट्रीय साम्प्रदायिक सद्भावना' पुरस्कार प्रदान किया गया। पुरस्कार समारोह में प्रधानमंत्री मनमोहनसिंह ने कहा—'आचार्य महाप्रज्ञ ने साम्प्रदायिक सौहार्द और सद्भावना के लिए हमारे देश में बहुत बड़ा काम किया। इस कार्य हेतु सम्पूर्ण जीवन को समर्पित कर दिया। आचार्य महाप्रज्ञ ने न केवल अपने साहित्य के द्वारा, अपितु अपने आचरण के द्वारा इस दिशा में एक अत्यन्त सुन्दर प्रयत्न किया है। वे साम्प्रदायिक सद्भावना के निष्ठाशील व्याख्याता हैं और उसी साधना में लगे हुए हैं। अपने विपुल साहित्य के द्वारा तथा समन्वय सम्मेलनों के द्वारा विभिन्न धर्मों के बीच एकता को संपुष्ट करने के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण अवदान दिया। हजारों लोगों की चेतना को जागृत किया है तथा अन्य धर्मों के प्रति समादर रखने के लिए अभिप्रेरित किया है।'

सद्भावना पुरस्कार पाना उनके लिए कोई खुशी का प्रसंग नहीं बना अपितु इसकी बाधा का हृदयस्पर्शी शब्दों में चित्रण करते हुए महाप्रज्ञ ने कहा—एक दिन ऐसा आए कि हम गर्व के साथ कहें—हिन्दुस्तान एक ऐसा देश है, जहाँ कोई भी आदमी भूखा नहीं है। यहाँ कोई भूखा नहीं सोता। भूख से सोने वालों की जो कठिनाइयां हैं, वे हमने देखी हैं। पद यात्रा के दौरान हम जनजातियों के बीच रहे, उनके घरों में रहे, गरीबों के घरों में रहे। महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रदेश और राजस्थान की आदिवासी पट्टियों की यात्रा में हमने उनकी स्थिति को देखा तो मन में आया कि आदमी भूखा है और हम बहुत बड़ी-बड़ी बातें करते रहे हैं। दोनों में विसंगति है। मैं चाहता हूँ कि सद्भावना पुरस्कार का एक अर्थ आगे बढ़े जन जातीय पुरस्कार, जिसमें ऐसी स्थिति का निर्माण कर सकें और गौरव के साथ कह सकें हम सब लोग कम से कम जीवन की प्राथमिक आवश्यकता को पूरा करने में समर्थ हैं। ऐसे प्रयत्न का मैं समर्थन करता हूं।[120] इसमें विराट् सद्भावना का निदर्शन है जो उनके उत्कृष्ट मानवता प्रेम को प्रकट करता है।

साम्प्रदायिक समस्या के स्थायी समाधान हेतु आचार्य महाप्रज्ञ ने अहिंसा प्रविधि प्रस्तुत की। घृणा का संस्कार व्यक्ति के नर्वस् सिस्टम् में आ गया है। उसे अहिंसा प्रशिक्षण के द्वारा ही मिटाया जा सकता है। ऐसा महाप्रज्ञ का अभिमत रहा। अहिंसा प्रशिक्षण के प्रायोगिक पक्ष से अनेक मुस्लिम युवक जुड़ रहे हैं, कार्यकर्ता तैयार हो रहे हैं। जिसका जीवंत प्रयोग लाडनूँ में जैन विश्वभारती संस्थान (विश्वविद्यालय) में देखा जा सकता है। हिन्दू-मुस्लिम एकता की दृष्टि से गांधी एवं महाप्रज्ञ के प्रयत्न निश्चित रूप से मानवतावादी हैं सदियां जिससे उपकृत होती रहेगी।

मोक्ष विचार

जिस भूमिका पर अहिंसा कृतार्थ बन जाती है उस सर्वोच्च अवस्था का तात्त्विक नाम है—मोक्ष। गांधी एवं महाप्रज्ञ दोनों ने मोक्ष को केवल स्वीकारा ही नहीं अपितु उस पर पर्याप्त प्रकाश डाला। गांधी दर्शन के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मोक्ष की अवधारणा उन्होंने भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति से ग्रहण की पश्चात् उस पर अपने चिंतन की पुष्टि दी। गांधी ने कहा—प्राचीन ऋषि-मुनियों ने अहिंसा के सिद्धांत को आखिरी मर्यादा तक पहुँचाया है और यह कह दिया कि भौतिक जीवन एक दोष है, एक जंजाल है। मोक्ष देहादि के परे की ऐसी अदेह सूक्ष्म अवस्था है, जहाँ न खाना है, न पीना है और इसीलिए जहाँ न दूध दूहने की आवश्यकता है और न घास-पात को तोड़ने की। संभव है इस तत्त्व को समझना या ग्रहण करना कठिन हो। सम्भव है कि पूर्णतः उसके अनुकूल जीवन व्यतीत

करना असम्भव हो और है भी। फिर भी मुझको इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि सत्य यही है। और इसलिए भलाई इस बात में है कि हम अपने जीवन को अपनी पूरी शक्ति भर उसके अनुकूल बनावें।

तथ्य की पुष्टि में उन्होंने कहा—सब समय, सब जगह, सम्पूर्ण अहिंसा संभव नहीं, यों कहकर अहिंसा को एक ओर रख देना हिंसा है, मोह है और अज्ञान है। सच्चा पुरुषार्थ तो इसमें है कि हमारा आचरण सदा अहिंसा के अनुसार हो। इस तरह आचरण करने वाला मनुष्य अन्त में परम पद प्राप्त करेगा, क्योंकि वह सम्पूर्णतया अहिंसा का पालन करने योग्य बनेगा। उन्होंने यह स्वीकारा कि जगत् यानी देहमात्र हिंसामय है और इससे अहिंसा-प्राप्ति के लिए देह के आत्यंतिक मोक्ष की तीव्र इच्छा पैदा हुई। जाहिर है उनके भीतर मोक्ष पाने की चाह कितनी प्रबल बनी। गांधी के शब्दों में—जीवन एक अभिलाषा है। उसका ध्येय पूर्णता अर्थात् आत्म साक्षात्कार के लिए प्रयत्न करना है।

मोक्ष की प्राप्ति में पुरुषार्थ की भूमिका स्वीकार की—'कर्म को मैं अवश्य मानता हूँ किन्तु पुरुषार्थ को भी मानता हूँ। कर्म का सर्वथा क्षय करके मोक्ष प्राप्त करना परम पुरुषार्थ है।'[121] देहमुक्ति और परमानंद के संबंध को प्रकट किया-मैं अपने को अहिंसामय मानता हूँ। अहिंसा और सत्य मेरे दो प्राण हैं। अहिंसा की महान शक्ति और मनुष्य की पामरता को क्षण-क्षण में अधिकाधिक स्पष्टता से देखता हूँ। यह देह तो हिंसा का स्थान है इसीलिए सर्वथा देह-मुक्ति में ही मोक्ष और परमानन्द रहता है। इसी से मोक्ष के आनन्द को छोड़ कर और सभी आनन्द अस्थिर हैं, सदोष हैं।[122] स्पष्टतया गांधी ने मोक्ष के परमानन्द को समझा और अपने जीवन का अन्तिम लक्ष्य उसकी प्राप्ति का बनाया।

महाप्रज्ञ बचपन से ही मोक्ष प्राप्ति को जीवन का सर्वोच्च ध्येय मानकर सतत् प्रयत्नशील बने। उनका स्पष्ट अभिमत था-जब तक जीव की मुक्ति नहीं होती तब तक दुःखों की अन्तहीन परंपरा चालू रहती है। जन्म-मरण की श्रृंखला का उच्छेद मुक्ति के वरण से होता है। मुक्तावस्था की पूर्व भूमिका है-वीतराग। साधना की उच्च भूमिका पर चेतना सभी मलों से मुक्त होकर वीतराग बन जाती है। वीतराग का अर्थ है-'पर' से हटकर अपने आपमें प्रतिष्ठित होना। इस अवस्था में 'पर' का सम्बन्ध समाप्त हो जाता है। यही बड़ी उपलब्धि है।[123]

अहिंसा की साधना जब सिद्धि में बदल जाती है, मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता है। मोक्ष का अपर नाम है निर्वाण। निर्वाण को सुगम शब्दों में प्रस्तुति दी—निर्वाण का अर्थ है स्वतंत्र अस्तित्व का वरण। व्यक्ति अपने उस स्वतंत्र अस्तित्व में अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत शक्ति और अनंत आनन्द का अनुभव करता है। परमात्मा होने का अर्थ स्वतंत्र सत्ता का होना है, स्वयं ईश्वर बन जाना है। ईश्वर में विलीन होना नहीं है। निर्वाण का ऐसा सिद्धांत भगवान महावीर के सिवाय किसी भी निर्वाणवादी दार्शनिक ने नहीं दिया। निर्वाण बुझ जाने का सूत्र नहीं है, अस्तित्व के मिट जाने का नाम नहीं है। निर्वाण में विलीन होने का प्रश्न नहीं है। निर्वाण है अपने समग्र अस्तित्व को अभिव्यक्त कर लेना, आत्मा को परमात्मा बना लेना।[124] यह मोक्षावस्था के स्वरूप का चित्रण है। निश्चित रूप से यह अवस्था अहिंसा की सर्वोच्च भूमिका की निष्पत्ति है।

निर्वाण के स्वरूप को स्पष्ट शब्दों में बताया। निर्वाण का एक अर्थ है-किसी भी बाधा का न होना। कर्मबद्ध अवस्था में प्रत्येक आदमी बाधा का जीवन जीता है। बाधाओं, विघ्नों को पार कर जाना, उन्हें जीत लेना निर्वाण है। निर्वाण का मतलब है अबाध हो जाना।

निर्वाण का एक अर्थ है-अव्याबाध सुख। हमारा ज्ञान, आनंद, शक्ति और सुख अव्याबाध बन जाए।

निर्वाण का दूसरा अर्थ है सिद्धि। निर्वाण का अर्थ है सारी सिद्धियों का प्राप्त होना। व्यक्ति को लोकाग्र में ऐसा स्थान मिलता है, जहां प्रदूषण नहीं है, पर्यावरण की समस्या नहीं है, कोई उपद्रव नहीं है, अकल्याण नहीं है। निर्वाण प्राप्त व्यक्ति उस स्थान में पहुँचता है, जहाँ न अकाल है, न सर्दी है, न गर्मी है। वह शरीर और मन से रहित होता है इसलिए उसके शारीरिक और मानसिक कष्ट भी नहीं होता। सदा क्षेम, शिव और कल्याण से ओत-प्रोत है निर्वाण।[125] यह स्पष्ट है कि मोक्ष अवस्था ऐसी अवस्था है जहाँ सभी दुःखों का अंत हो जाता है। प्राकृतिक विपदाओं का प्रभाव अकिंचित्कर बन जाता है। गांधी ने जो मोक्ष की परिकल्पना की उसको अधिक स्पष्ट रूप से महाप्रज्ञ ने प्रस्तुत कर उसके स्वरूप को प्रकट किया। मोक्ष की अवधारणा को निर्वाण, सिद्धि के रूप में महाप्रज्ञ का विश्लेषण तात्त्विक है।

कतिपय अभेद मूलक बिन्दुओं का विमर्श महात्मा गांधी एवं आचार्य महाप्रज्ञ की समान विचारधारा का प्रतिबिम्ब मात्र है। अहिंसानिष्ठ चेतना से निकले स्फुलिंग को पहचानना मुश्किल है। फिर भी एक विनम्र प्रयत्न किया गया मनीषियों के चिंतन की समानता के अन्वेषण का। अभेद का अर्थ चिंतन के एकात्मक आशय से लिया गया है। व्याख्या-विश्लेषण सापेक्ष होने के बावजूद तत्त्व की अर्थात्मा में अद्‌भुत समानता गोचर होती है। इस आधार पर अभेद के अन्तर्गत किया गया कुछेक मौलिक तथ्यों का संक्षिप्त विमर्श मनीषियों के उदात्त विचारों की झलक मात्र है।

समन्वय की दिशा : एक चिंतन

प्रथम दृष्ट्या राष्ट्र पिता महात्मा गांधी का चिंतन राजनीति एवं लोक महर्षि आचार्य महाप्रज्ञ का चिंतन अध्यात्म धुरा की परिक्रमा करता हुआ प्रतीत होता है। सूक्ष्मता से देखे तो उस चिंतनधारा में व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सभी संदर्भों को प्रभावित करने की क्षमता विद्यमान है। स्वतंत्र धाराओं से बहने वाली अहिंसा की विचार विथी में समन्वय के सूत्र संपृक्त है। समन्वय का आशय है-सैद्धांतिक मौलिकता को बरकरार रखते हुए एक विचार के साथ दूसरे का तालमेल होना। ऐसा तालमेल जो विकास की नई संभावनाओं को उजागर करे। गांधी एवं महाप्रज्ञ के विचारों में समन्वय का पर्याप्त अवकाश है। प्रस्तुत संदर्भ में महापुरुषों के अहिंसा संबंधी विचारों को समन्वय की कसौटी पर प्रस्तुत करना अभिष्ट है।

अहिंसा की समन्वित प्रस्तुति

गांधी की अहिंसा का क्रियात्मक शक्ति स्वरूप एवं महाप्रज्ञ की अहिंसा नीति को समन्वित रूप से समझने की कोशिश की जाये तो अहिंसा का एक नया रचनात्मक स्वरूप प्रकट हो सकता है। गांधी ने कहा था-'क्रियाहीन अहिंसा आकाश के फूल के समान है। क्रिया से उनका तात्पर्य केवल हाथ पैर का संचलन ही नहीं, विचार मात्र क्रिया है। विचार-रहित अहिंसा हो ही नहीं सकती। उनकी दृष्टि में जो जीने के लिए खाता है, सेवा करने के लिए जीता है उसकी तुलना में मात्र पेट पालने के लिए कमाता है-वह काम करते हुए भी अक्रिय है। जिस कर्म में कर्तृत्व की बू नहीं होती स्वार्थ की भावना नहीं रहती वह कर्म अकर्म की ओर गतिशील बनता है। उन्होंने इस तथ्य को भी प्रकट किया कि अगर अहिंसा धर्म सच्चा धर्म हो तो हर तरह व्यवहार में उसका आचरण करना भूल नहीं, बल्कि कर्तव्य है। व्यवहार और धर्म के बीच विरोध नहीं होना चाहिए।.....सब समय, सब जगह, संपूर्ण अहिंसा संभव नहीं, यों कह कर अहिंसा को एक ओर रख देना हिंसा है, मोह है और अज्ञान है। सच्चा पुरुषार्थ तो इसमें है कि हमारा आचरण सदा अहिंसा के अनुसार हो।

अहिंसा की व्यापक संयोजना की दृष्टि से आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा कि अहिंसा धर्म एवं नीति है और कूटनीति भी हैं। मैं मुनि हूँ मेरे लिए अहिंसा धर्म है, कुशल शासक के लिए अहिंसा नीति है, व्यापक और गूढ अर्थ में अहिंसा कूटनीति है। अहिंसा नीति के आधार पर ही विभिन्न जातियों, संप्रदायों और भाषाओं वाले लोगों को एकसूत्र में बांधकर रखा जा सकता है। अहिंसा कूटनीति है। शत्रुओं को दंड देने वाला उतना सफल नहीं होता। जितना उन्हें मित्र बनाने वाला होता है। यह

रहस्यपूर्ण नीति ही अहिंसा की कूटनीति है। महात्मा गांधी ने इसी कूटनीति के अंतर्गत हिंसा के विरोध में असहयोग नीति का सूत्र दिया।[126]स्पष्टीकरण में लिखा जो समाज और शासन के मुखिया है, उसके लिए अहिंसा एक नीति है। जब तक राजनीति के साथ अहिंसा का समावेश नहीं होगा, तब तक राष्ट्र का भला नहीं हो सकता। अहिंसा से व्यक्ति, समाज, राजनीति और राजनीतिक व्यवस्था प्रभावित होनी चाहिए। जब अहिंसा का इन पर प्रभाव होगा तब बुराइयां अपने आप समाप्त होंगी। अपने मंतव्य की पुष्टि में कहा-'कुशल राजनेता वह है, जो अहिंसा की नीति का अनुसरण करता है। अहिंसा की नीति का अर्थ है सामंजस्य। सामंजस्य से उनका आशय है-स्वार्थ और परार्थ में संतुलन।' स्वार्थ वर्तमान युग की समस्या है पर उसकी भी सीमा हो तो स्वार्थ-परार्थ में संतुलन संभव है।

महाप्रज्ञ का चिंतन बहुत स्पष्ट था। क्षीर-नीर प्रज्ञा से निष्पन्न विचार धारा में मौलिकता का निदर्शन है। जिसकी एक झलक-धर्म के संदर्भ में विचार करें तो कहना होगा-अहिंसा धर्म है। सामाजिक, राजनैतिक और वैश्विक संदर्भ में विचार करें तो कहना होगा-अहिंसा एक नीति है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अहिंसा को नए संदर्भ में समझने की जरूरत है। राष्ट्र की समस्याओं के समाधान की दृष्टि से दीर्घकालीन नीति को अपनाना जरूरी है। दोनों ही महापुरूष अहिंसा की दिव्य ज्योति को कर्म अथवा कर्तव्य से, नीति अथवा आचार से जोड़ कर समाज एवं राष्ट्र को स्वस्थ बनाने के पक्षधर बनें। इसकी क्रियान्वित हेतु उन्होंने अपने मिशन को ऊंचाइयां प्रदान की। वर्तमान युग की यह अहं अपेक्षा है कि समस्या समाधान के आलोक में मनीषियों के अहिंसा संबंधी विचारों को समन्वयात्मक रूप से प्रभावी बनाया जाये।

रचनात्मक कार्य : अहिंसक समाज

गांधी के रचनात्मक कार्यों एवं महाप्रज्ञ के अहिंसक समाज संरचना स्वस्थ-समाज परिकल्पना के समन्वय सूत्र की युगपत मीमांसा अपने आपमें मौलिक है। गांधी के रचनात्मक कार्यों की पृष्ठभूमि में भले ही भारतीय आजादी एवं ग्रामोत्थान की भावना रही हो पर उसमें निश्चित रूप से अहिंसा के बीज विद्यमान थे। दूसरी तरफ महाप्रज्ञ की अहिंसक समाज संरचना की परिकल्पना में अहिंसा के नैतिक मूल्यों के आगोश में विकास का पूर्ण अवकाश है। दोनों की युति आदर्श समाज की परिकल्पना को साकार बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर सकती है। स्वतंत्रता आंद्रोलन के दौरान रचनात्मक कार्यों का श्रीगणेश जन जागृति की दृष्टि से बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। आर्थिक आत्म निर्भरता के आधार पर देश की जनता को स्वावलम्बी बनाने के प्रयत्न निश्चित रूप से अहिंसा की धुरा पर टिके थे। चरखा, खादी, लघु कुटीर उद्योग आदि कार्यों का व्यापक प्रचार तात्कालीन परिस्थितियों में महत्त्वपूर्ण था।

रचनात्मक कार्यों के संगठित प्रयोग हेतु गांधी ने अनेक संस्थाओं का प्रवर्तन किया। स्पष्ट शब्दों में कहा-'काम का मेरा प्रयत्न शुद्ध अहिंसा के अनुसार करने का है।.....अखिल भारत चरखा-संघ और अखिल भारतीय ग्रामोद्योग-संघ ऐसी संस्थायें हैं, जिनके द्वारा अहिंसा की कार्य-पद्धति का अखिल भारतीय पैमाने पर प्रयोग किया जा रहा है।' इस कथन से रचनात्मक कार्यों की अहिंसक आधार भित्ति उजागर होती है। विभिन्न रचनात्मक कार्यों की इतिश्री गांधी भारत की स्वतंत्रता के साथ करने के पक्षधर नहीं थे अपितु वे रचनात्मक काम में लगे हुए सब संगठनों को एकताबद्ध

करने की संभावनाओं को चर्चाओं के माध्यम से उजागर करना चाहते थे। जिसके आधार पर अहिंसात्मक समाज-रचना का कार्य ज्यादा सुचारू रूप से एवं सूक्ष्म तरीके से किया जा सके।

राजनैतिक स्वाधीनता के पश्चात् गांधी का मुख्य कार्य सामाजिक और आर्थिक सुधारों का ही था और इन्हें क्रियान्वित करने के लिए वे अपनी अहिंसात्मक शैली को नया रूप देना चाहते थे, पर वैसा अवकाश उन्हें मिल नहीं पाया। गांधी चाहते थे गाँवों की पुनर्रचना का कार्य स्थायी एवं प्रभावी हो, इस हेतु उद्योग, हुनर, तन्दुरुस्ती और शिक्षा इन चारों का सुन्दर समन्वय रचनात्मक कार्य का अंग बनाया गया।[127] रचनात्मक कार्य की संपूर्ति कुछ हद तक महाप्रज्ञ की अहिंसक समाज संरचना में देखी जा सकती है। अहिंसक समाज का जो चित्रण किया उसमें सापेक्षता, समन्वय, सह-अस्तित्व के क्रियान्वयन पर बल दिया गया है।

अहिंसक समाज संरचना की बाधाओं का जिक्र करते हुए महाप्रज्ञ ने बताया सामाजिक जीवन में हिंसा का मूल है-अनैतिक उपायों से अर्थ का अर्जन, उसका संग्रह और विलासात्मक उपयोग, जाति और धर्म-सम्प्रदाय के प्रति मिथ्या दृष्टिकोण। इसका जनक है वैयक्तिक हिंसामय जीवन जो मोहात्मक संस्कार, आवेश, उत्तेजना और भोगात्मक मानसिकता को बढ़ाते हैं। इस समस्या से उबरने के लिए व्यक्ति और समाज-व्यवस्था दोनों के युगपत परिवर्तन की अपेक्षा पर बल देते हुए स्पष्ट किया कि व्यक्ति अच्छा नहीं है तो अच्छी से अच्छी समाज व्यवस्था भी लड़खड़ा जाएगी। समाज व्यवस्था अच्छी नहीं है तो अच्छे से अच्छा व्यक्ति भी लड़खड़ा जाएगा। अहिंसा के प्रयोग से व्यक्ति को एवं राज्यसत्ता, सामाजिक सत्ता, आर्थिक सत्ता और अहिंसक सत्ता के समन्वय पूर्वक समाज-व्यवस्था को बदला जाये।[128] यह यथार्थ का आकलन है जिसके आधार पर अहिंसक समाज संरचना का सपना साकार किया जा सकता है। अहिंसक समाज रचना की पृष्ठभूमि में अहिंसामयी जीवन-शैली पर बल दिया गया। उन्होंने विशेष प्रकार की जीवन-शैली का प्रतिपादन किया। जिसमें आदर्श नागरिक के सभी मानक सन्निहित है।

अहिंसक जीवनशैली का पहला सूत्र है-अभय। निरंतर भयभीत रहने वाला हिंसा से बच नहीं सकता। भयभीत व्यक्ति अपने स्वास्थ्य पर बुरा असर डालता हैं, फलतः उसे बीमारियां घेर लेती हैं। निरंतर अभय रहने वाला स्वस्थ रहकर आनंद और प्रसन्नता का जीवन जीता है।

अहिंसक जीवनशैली का दूसरा सूत्र है—करुणा। जिसके भीतर करुणा है, वह कभी किसी का अनिष्ट नहीं करेगा। अहिंसक जीवनशैली का तीसरा सूत्र है-सहिष्णुता। हम एक दूसरे को सहना सीखें। जहाँ एक दूसरे को सहने की मानसिकता होती है, वहाँ परस्पर शांति रहती है और विकास भी वहीं होता है।

अहिंसक जीवनशैली का चौथा सूत्र है-जागरूकता। प्रमाद के कारण जीवन में बुराइयों को प्रवेश पाने का अवसर मिल जाता है। जागरूक रहने वाला अपने जीवन को नया सौन्दर्य प्रदान कर सकता है। अहिंसक जीवनशैली के इन सूत्रों को अपना कर व्यक्ति सुखमय व शांतिपूर्ण जीवन जीता हुआ एक नये वातावरण का निर्माण करे, यही अपेक्षा है। यह जीवन शैली जन-जन में प्रतिष्ठित हो ताकि आदर्श समाज का सपना साकार बन सके। गांधी द्वारा प्रतिपादित रचनात्मक कार्य एवं महाप्रज्ञ द्वारा निर्दिष्ट अहिंसक समाज संरचना के प्रारूप को समन्वित रूप से क्रियान्वित किया जाए तो स्वस्थ समाज रचना साकार बन सकती है। चूँकि एक ओर व्यक्ति कर्मशील होगा दूसरी तरफ उसकी महत्त्वाकांक्षायें नियंत्रित होगी। परिणामतः समाज व्यवस्था नीतियुक्त होगी। व्यवहार के धरातल पर

एक ओर आर्थिक विकास, जन जागृति का कार्य प्रगतिशील बने दूसरी ओर नैतिक उत्थान एवं आध्यात्म की लौ प्रज्वलित होती रहे तो उस समाज का स्वरूप निश्चित रूप से आदर्शमान होगा। यथार्थ के धरातल पर मनीषियों की समाज विषयक संकल्पना को संयुक्त रूप से प्रतिष्ठित किया जाये तो समाज-व्यवस्था का मानचित्र अपने आपमें अपूर्व एवं परिपूर्ण होगा।

समन्वित शिक्षण

सर्वांगीण व्यक्तित्व निर्माण की पृष्ठभूमि में गांधी द्वारा बुनियादी शिक्षा एवं महाप्रज्ञ द्वारा जीवन-विज्ञान शिक्षण का प्रारूप प्रस्तुत किया गया। इन दोनों की समन्वित प्रस्तुति आधुनिक शिक्षा जगत् की समस्याओं को समाहित करने में समर्थ है। व्यावहारिक एवं नैश्चयिक, वैयक्तिक एवं सामाजिक समस्याओं का समाधान समन्वित शिक्षण से सुगम बनेगा। गांधी ने बुनियादी शिक्षण के द्वारा बालक के मस्तिष्क और शरीर के विकास के साथ उसी प्रमाण में आत्मा की जागृति हेतु आध्यात्मिक यानी हृदय की तालिम पर बल दिया-मस्तिष्क का ठीक और चतुर्मुखी विकास तभी हो सकता है, जब बच्चे की शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियों को तालीम के साथ-साथ दिया जाता हो, ये सब बातें एक और अविभाज्य हैं। इसका लक्ष्य था शरीर, मन तथा आत्मा की उत्तम क्षमताओं को उद्घाटित करना।[129] प्रश्न है इन शक्तियों का उद्घाटन कैसे हो? केवल क्रियात्मक समाचरण, पुस्तकीय ज्ञान से भावनात्मक परिवर्तन घटित नहीं हो सकता। इस अभिष्ट की संपूर्ति हेतु आचार्य महाप्रज्ञ ने जीवन-विज्ञान शिक्षण में प्रायोगिक विधि का समावेश कर परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त किया है। शाब्दिक उच्चारण मात्र से परिवर्तन घटित नहीं हो सकता इस सच्चाई का अनुभव करते हुए महाप्रज्ञ ने सिद्धांत के साथ प्रायोगिक प्रशिक्षण का समावेश कर परिवर्तन की प्रक्रिया को सुगम बनाया। जहां से संवेगात्मक तरंगें उत्पन्न होती है उस स्थान को प्रभावित और परिवर्तित करने में प्रयोगों की महत्त्वपूर्ण भूमिका बनती है। जीवन-विज्ञान के प्रयोगों द्वारा विद्यार्थियों में सकारात्मक परिणाम देखे गये हैं।

जीवन-विज्ञान शिक्षण के द्वारा विद्यार्थी का समुचित-संतुलित विकास होता है। हिंसा और अहिंसा दोनों को प्रेरणा देने वाले तंत्र हमारे मस्तिष्क में विद्यमान हैं। क्रोध का आवेश, अहंकार, लोभ, भय, घृणा और काम-वासना-ये देश, काल और व्यक्ति भेद में सांप्रदायिक कट्टरता, जातीय संघर्ष, सत्ता की लोलुपता, बाजार पर प्रभुत्व और अपराध के रूप में प्रकट होते रहते हैं। हिंसा के इन बीजों का प्रयोगों द्वारा परिष्कार किया जा सकता है। एक विद्यार्थी जीवन-विज्ञान की प्रयोगशाला में जाता है तो उसके दाएँ मस्तिष्क के जागरण का प्रयोग कराया जाता है।[130] शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन लाने वाला प्रस्तुत प्रयोग अपने आपमें मौलिक है। प्रयोगतः बुनियादी शिक्षा एवं जीवन-विज्ञान की समन्वित क्रियान्विति शिक्षा जगत् में संपूर्ण क्रांति घटित करने में समर्थ है। अपेक्षा है इसके व्यापक प्रयोग की।

अहिंसक आंदोलन : अहिंसा प्रशिक्षण

आजादी की पृष्ठभूमि में जन चेतना को आंदोलित करने हेतु गांधी ने अहिंसक आंदोलन का सूत्रपात किया। इस प्रक्रिया के द्वारा एक ओर वे देश की जनता को जगाना तो दूसरी ओर सत्ता पक्ष का हृदय बदलना चाहते थे। गांधी द्वारा प्रवर्तित उस आंदोलनात्मक प्रक्रिया का संदर्भ बदल चुका है पर उसकी उपयोगिता आज भी बरकरार है। आंदोलन के बतौर प्रयोगात्मक स्तर पर संगठित अहिंसा

की शक्ति की चर्चा करते हुए गांधी ने कहा 'हमें अहिंसा के रूप में जो शक्ति प्राप्त हुई है यदि उसे संगठित कर दिया जाय तो वह दुनिया की हिंसक-से-हिंसक शक्तियों के संयुक्त बल से मोर्चा ले सकती है। अहिंसा-प्रणाली में पराजय के लिए कोई स्थान नहीं है। उसका मन्त्र तो करो या मरो है, और वह दूसरों को मारने या चोट पहुंचाने में विश्वास नहीं रखती है। उसके उपयोग में, न धन की दरकार है, न उस विनाशकारी विज्ञान की।'[131] निश्चित रूप से उन्होंने अहिंसा की आस्था पर अहिंसक आंदोलन की बुनियाद खड़ी की थी।

बदले हुए परिवेश में अहिंसक आंदोलन की गतिविधियों को बलपूर्वक समाज, राष्ट्र व्यापी अव्यवस्थाओं पर नियंत्रण पाने हेतु अपनाने की जरूरत है। आत्मपीड़न एवं हृदय परिवर्तन के शुभ संकल्प से संचालित अहिंसक आंदोलन में आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक बुराइयों पर विजय पाने की क्षमता है। गांधी ने अपने अहिंसक आंदोलनों में हृदय परिवर्तन पर बल दिया। हृदय परिवर्तन के बिना समस्या का स्थायी समाधान नहीं निकल सकता। इस आशय की क्रियान्विति के बतौर गांधी ने सत्याग्रही और शांति सैनिक की नई अवधारणा प्रस्तुत की। वर्तमान के संदर्भ में गांधी के चिंतन को ऊँचाइयाँ प्रदान करने वाला आचार्य महाप्रज्ञ का चिंतन महत्त्वपूर्ण है।

अहिंसा की प्रतिष्ठा एवं हृदय परिवर्तन की पृष्ठभूमि में महाप्रज्ञ ने शोधपूर्वक अहिंसा प्रशिक्षण की प्रविधि प्रस्तुत की। उन्होंने कहा 'सिद्धांत और प्रयोग-दोनों का योग मिले तो परिवर्तन की संभावना की जा सकती है। अहिंसा की प्रतिष्ठा के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति अहिंसा की चर्चा ही न करे, उसके प्रशिक्षण की प्रायोगिक पद्धति भी सीखे, यह आवश्यक है। करोड़ों सैनिकों को युद्ध का प्रशिक्षण दिया जाता है। क्या हजारों लोगों को अहिंसा का प्रशिक्षण नहीं दिया जा सकता?' कथन में परिवर्तन की आस्था का निदर्शन है। चारों ओर चर्चा है कि अहिंसा के द्वारा अब तक परिवर्तन नहीं हुआ। शब्दों से परिवर्तन कैसे सम्भव होगा? अगर ऐसे शाब्दिक चमत्कार से कार्य हो जाए तो दुनिया कब की बदल जाए। उनका यह मानना था कि मनुष्य के दिमाग को प्रशिक्षित किए बिना कोई आदमी बड़ा काम नहीं कर सकता। मस्तिष्कीय प्रशिक्षण के अभाव में कोई भी परिवर्तन संभव नहीं होता। मस्तिष्कीय परिवर्तन अथवा हृदय परिवर्तन पर वे विशेष बल देते।

हम चेतन स्तर पर अहिंसा की बात करेंगे तो जनता उसे नहीं मानेगी। हम अपने उद्देश्य में सफल नहीं होंगे। अहिंसा के प्रशिक्षण के लिए चेतना के सूक्ष्म स्तरों तक जाना अपेक्षित है। हमारे शरीर के भीतर दो सूक्ष्म शरीर हैं-तैजस शरीर और कार्मण शरीर। अहिंसा के लिए इन शरीरों तक पहुँचना जरूरी है।[132] इस सूक्ष्म मीमांक्षा के साथ महाप्रज्ञ ने ध्यान के विभिन्न प्रयोग प्रस्तुत किये जिनके सकारात्मक परिणाम आये हैं। अहिंसा प्रशिक्षण में उन प्रयोगों का समावेश है जो हमारे भावतंत्र को प्रभावित कर वहां पैदा होने वाले रसायनों को बदल देते हैं। यह सिद्ध हो चुका है कि हिंसा और अहिंसा दोनों का स्रोत हमारे मस्तिष्क में विद्यमान है। जब व्यक्ति के भाव उत्तेजना और आवेश में होते हैं, व्यक्ति में हिंसा की चेतना जागती है। उत्तेजनात्मक आवेश हिंसा का कारण है। ठीक इसके विपरीत जब व्यक्ति शांत, संतुलित होता है तब अहिंसा के भाव विकसित होते हैं। हिंसा की शक्ति भय और आंतक पैदा करने वाली, डराने वाली, संताप देने वाली शक्ति है। अहिंसा की शक्ति अभय की चेतना को जागृत करने वाली, मैत्री, सौहार्द, आत्मीयता, अपनापन पैदा करने वाली शक्ति है।[133] इन शक्तियों का प्रयोगों के द्वारा वांछित परिवर्तन किया जा सकता है। हिंसा के भावों को बदलने एवं अहिंसा के भावों को विकसित करने में अहिंसा प्रशिक्षण के प्रयोग प्रभावी सिद्ध हुए हैं।

जहाँ तक अहिंसा के प्रशिक्षण का प्रश्न है मनीषियों ने इसे महत्त्वपूर्ण समझा। हिंसा को कारगर बनाने के लिए जैसे प्रशिक्षण की आवश्यकता है वैसे ही अहिंसा को भी प्रभावी करने के लिए प्रशिक्षण की अनिवार्यता है। समानता के बावजूद वैशिष्ट्य इस बात का है कि गांधी के अहिंसा प्रशिक्षण का सीधा संबंध शांति सैनिकों और सत्याग्रहियों के प्रशिक्षण से है जो समाज की हिंसक परिस्थितियों में एक अहिंसक सैनिक के नाते संघर्षरत स्थान में प्रस्तुत होते हैं। अतः यह संदर्भ विशुद्ध रूप से सामाजिक है। समाज व्यवस्था को बदलकर अथवा शांति की व्यूह रचना का प्रशिक्षण देकर अहिंसा के प्रशिक्षण के द्वारा शांति सैनिक तैयार करते।

आचार्य महाप्रज्ञ की भूमिका विशुद्ध रूप से व्यक्तिगत और आध्यात्मिक रही है। उनकी दृष्टि में हिंसा की जड़ हमारी चेतना में सन्निहित है। इसलिए अहिंसा के प्रशिक्षण में हिंसक चेतना के बदलने का प्रयास महत्त्वपूर्ण है और इस चेतना के बदलने का उपाय हैं योग के विभिन्न प्रयोग। प्रेक्षाध्यान के विभिन्न प्रयोगों के द्वारा वे व्यक्ति की संपूर्ण भावधारा को बदलना चाहते जो अहिंसा प्रशिक्षण का मौलिक स्वरूप है।

वस्तुतः गहराई से चिंतन करने पर दोनों महापुरुषों के विचारों में कोई अन्तःविरोध मालूम नहीं पड़ता केवल क्षेत्र का ही अन्तर है। गांधी का यह आशय कभी भी नहीं रहा कि बिना हृदय परिवर्तन के और मानसिक चेतना के बदले कोई सच्चा अहिंसक प्रशिक्षण हो सकेगा। और आचार्य महाप्रज्ञ जब अहिंसा के प्रशिक्षण में चेतना-भावधारा के बदलने पर जोर देते तो इससे उनका यह कदापि आशय नहीं रहा कि वे समाज में होने वाली हिंसा को मिटाना नहीं चाहते थे। दोनों महापुरुषों की अपनी-अपनी भूमिकाएँ थी। सापेक्ष दृष्टि से वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सच्चा समाधान तो दोनों मनीषियों के विचारों का समन्वय है। अहिंसा प्रशिक्षण में चेतना के परिवर्तन और हिंसा से जुझने एवं शांति स्थापन का प्रशिक्षण-दोनों अनिवार्य तत्त्व हैं। दोनों के मणि-कांचन संयोग से ही एक सुन्दर अहिंसक प्रक्रिया का निर्माण हो सकता है और ऐसे समग्र अहिंसक प्रशिक्षण से ही हिंसा की विकट समस्या का समाधान संभव होगा।

अहिंसक आंदोलन बनाम अहिंसात्मक प्रतिरोध सह हृदय परिवर्तन, अहिंसा प्रशिक्षण की संयुक्त प्रक्रिया को व्यापक बनाया जाये तो हिंसा की समस्या को चुनौति पूर्वक नियंत्रित किया जा सकता है।

विषय-वस्तु के विवेचन से यह स्पष्ट है कि गांधी और महाप्रज्ञ के विचारों में मौलिकता और समाधायकता का अपूर्व प्रवाह है। उनके विचारों के महासमुद्र में से भेद, अभेद और समन्वय के रूप में कतिपय बिन्दुओं का विमर्श किया गया है। भेद में उन पहलुओं पर मंथन किया गया है जो दोनों मनीषियों की स्वतंत्र चिंतनधारा को प्रकट करते हैं। भेद मूलक विचारों से यह साबित होता है कि मनीषियों ने अपने-अपने क्षेत्र में किस प्रकार नवीन विचारधारा का संचार किया है। अभेद में उन तथ्यों का समाकलन किया गया है जो मौलिक रूप से समानता के द्योतक हैं। समानता के बावजूद उन विचारों में स्वतंत्र चिंतन शैली का स्पष्ट निदर्शन है। समन्वय की दिशा में गांधी और महाप्रज्ञ की विचार वीथियों से उन रचनात्मक कार्यों एवं तथ्यों को ग्रहण किया गया है जिनमें समन्वय की कड़ी से जुड़कर सम-सामयिक समस्याओं को समाहित करने की अपूर्व क्षमता है। अपेक्षा है उन तथ्यों के समुचित संयुक्ति की। मनीषियों के विचारों की सम्यक् युति से स्वस्थ व्यक्ति, स्वस्थ परिवार, स्वस्थ समाज और स्वस्थ राष्ट्र की परिकल्पना साकार बन सकती है।

संदर्भ

1. डॉ. प्रभात कुमार भट्टाचार्य, गांधी दर्शन, 62 यंग इंडिया. 3.4.24
2. आचार्य महाप्रज्ञ, महावीर का अर्थशास्त्र-77
3. राधाकृष्णन्, धर्म और समाज, 280 यंग इंडिया 29.5.1924
4. गांधीजी, अहिंसा-1.12 यंग इंडिया 11.8.1920
5. इंग्लैंड में गांधीजी, 82
6. हरिजन सेवक, 5.9.36
7. सार्थकता मनुष्य होने की, 58
8. महाप्रज्ञ ने कहा-2,64
9. महाप्रज्ञ ने कहा-4,179
10. आचार्य महाप्रज्ञ, स्वास्थ्य की त्रिवेणी, 31
11. युवादृष्टि, जून-जुलाई, 2003,160
12. आचार्य महाप्रज्ञ, अहिंसा के संदर्भ में, 28-29
13. विज्ञप्ति, 14-20.7.2002, 10-11
14. महाप्रज्ञ ने कहा-4,44-45
15. युवाचार्य महाप्रज्ञ, मैं : मेरा मन : मेरी शान्ति, 54
16. विज्ञप्ति, 14-20.7.2002. 8
17. हरिभाऊ उपाध्याय, बापूकथा, 135
18. गांधी विचार दोहन, 32
19. बापू-कथा, 20
20. आचार्य महाप्रज्ञ, अणुव्रत की दार्शनिक पृष्ठभूमि, 158
21. आचार्य महाप्रज्ञ, कैसे हो सकता है शुभ भविष्य का निर्माण?, 119-120
22. आचार्य महाप्रज्ञ, लोकतंत्र : नया व्यक्ति नया समाज, 85 सं. 2002
23. आचार्य महाप्रज्ञ, अहिंसा और शांति, 134-135
24. अखिल भारतीय तेरापंथ टाइम्स, 17. 23.10.2005. 9
25. हरिभाऊ उपाध्याय, बापू-कथा, 108
26. साने गुरुजी, बापू की मीठी-मीठी बातें, 20-21
27. बापू-कथा, 108-9
28. अहिंसा यात्रा दर्पण, 5
29. साध्वी विमलप्रज्ञा, अहिंसा यात्रा : इक्कीसवीं सदी का कालजयी आलेख, 72-73
30. अणुव्रत, 1-5.12.2003. 18-19
31. महाप्रज्ञ ने कहा-16.74
32. महाप्रज्ञ ने कहा-8,50.51
33. महाप्रज्ञ ने कहा-3,174
34. महाप्रज्ञ ने कहा-4,86
35. अणुव्रत, 1-15 दिसम्बर 2003. 5
36. महाप्रज्ञ ने कहा-4,175
37. महाप्रज्ञ ने कहा-16,90
38. अहिंसा यात्रा दर्पण, 25.27
39. अणुव्रत कवर पृष्ठ, 1-15 दिसंबर 2003
40. अहिंसा यात्रा दर्पण,49

41. विज्ञप्ति 11-17.4.2004. 15
42. मुनि मोहजीत कुमार, लोक दृष्टि में अहिंसा यात्रा, 9.49
43-44. अहिंसा-1, 105, अहिंसा-1,106,80. हिन्दी नवजीवन. 2.12.1926
45. गांधीजी, अहिंसा-4.401
46. मुनि नगराज जी डी.लिट, अहिंसा विवेक, 71
47. आचार्य महाप्रज्ञ, मनन और मूल्यांकन, 30
48. जैनेन्द्र कुमार, अकाल पुरुष गांधी, 65
49. अहिंसा-1.76
50. युवाचार्य महाप्रज्ञ, अहिंसा तत्त्वदर्शन, 47
51. महाप्रज्ञ ने कहा-16,142.143
52. मैं : मेरा मन : मेरी शांति, 42-43
53. अहिंसा तत्त्व दर्शन, 267-8
54. अहिंसा के संदर्भ में, 36-37
55. अहिंसा-1,20,72,4,6
56-57. अहिंसा-4.436-37.425. 422 हरिजन सेवक 25.15.47, 403
58. अहिंसा के संदर्भ में, 2
59. अहिंसा तत्त्व दर्शन, 47
60. अहिंसा के संदर्भ में, 12
61. अहिंसा-1, 15 हिन्दी नवजीवन, 14.12.1924
62. अहिंसा यात्रा : इक्कीसवीं सदी का कालजयी आलेख, 186
63. आचार्य महाप्रज्ञ, विचार को बदलना सीखें, 19. सं. 2000
64. डॉ. किरण, गांधी एवं मार्क्स.6
65. डॉ. एस.एल. वर्मा, डॉ. मधु मिश्रा. महात्मा गांधी एवं धर्म निरपेक्षता, 197
66. साने गुरुजी, बापू की मीठी-मीठी बातें, 55-56
67. गांधी चित्रावली, 128
68. जैन भारती, जून 2004. 29
69. महाप्रज्ञ ने कहा-8,91. सं. द्वितीय अक्टूबर-2006
70. महाप्रज्ञ ने कहा-4,15.16
71. महाप्रज्ञ व्यक्तित्व एवं कृतित्व, 108
72. आचार्य महाप्रज्ञ, कैसे हो सकता है शुभ भविष्य का निर्माण, 93
73. गांधीजी, अहिंसा-3. 289 हरिजन सेवक, 30.9.1939
74. गांधी-विचार-दोहन, 17-18
75. इंग्लैंड में गांधीजी, 30
76. अखिल भारतीय तेरापंथ टाइम्स, 10-16.10.2005. 9
77. आचार्य महाप्रज्ञ, युगीन समस्या और अहिंसा, 79
78. आचार्य महाप्रज्ञ, मुक्त भोग की समस्या और ब्रह्मचर्य, 51
79. मुनि मोहजीत कुमार, अहिंसा यात्रा का उल्लास यादों के आस-पास, 9.3
80. अहिंसा-1, 32
81. आचार्य महाप्रज्ञ, एकला चलो रे, 273-74
82. बापू कथा, 5
83. सं. साध्वी विमल प्रज्ञा, साध्वी विश्रुत विभा. महाप्रज्ञ ने कहा-1.47
84. युगीन समस्या और अहिंसा, 19

85. काका कालेलकर. वियोगहरि, गांधी व्यक्तित्व विचार और प्रभाव, 13
86. यंग इंडिया, 6.4.24
87. गांधीजी, हिन्द स्वराज्य, 64-65
88. यंग इंडिया, 7.5.25
89. अहिंसा-1, 4
90. आचार्य महाप्रज्ञ, भिक्षु विचार दर्शन, 87. सं. 2003
91. आचार्य महाप्रज्ञ, मैं हूं अपने भाग्य का निर्माता, 244
92. एम.के.गांधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, 286
93. आचार्य महाप्रज्ञ, मेरे जीवन के रहस्य, 27-28
94. अहिंया यात्रा : इक्कीसवीं सदीं का कालजयी आलेख, 282
95. महाप्रज्ञ ने कहा-16,126.27
96. अहिंसा-1, 80 हिन्दी नवजीवन, 2.12.1926
97. अहिंसा-4,394
98. युवाचार्य महाप्रज्ञ, अहिंसा तत्त्व दर्शन, 152
99. सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, 306
100. आचार्य महाप्रज्ञ, धर्म के सूत्र, 140-41
101. हिन्दी नवजीवन, 20.9.28
102. गांधी-विचार-दोहन, 17
103. अहिंसा-1, 35-36
104. अहिंसा के संदर्भ में, 16-17
105. मैं : मेरा मन : मेरी शान्ति, 55 सं. दूसरा 1970
106. महात्मा गांधी, 158-59
107. अहिंसा यात्रा : इक्कीसवीं सदी का कालजयी आलेख, 334-35
108. महाप्रज्ञ ने कहा-3,176
109. मुनि मोहजीत कुमार, अहिंसा यात्रा का उल्लास यादों के आस-पास,19.24
110. हरिजन सेवक, 29.6.47
111. गांधी चित्रावली, 123
112. महात्मा गांधी, 347-48
113. अहिंसा यात्रा : इक्कीसवीं सदी का कालजयी आलेख, 57
114. महाप्रज्ञ ने कहा-4,86
115. अहिंसा यात्रा : इक्कीसवीं सदी का कालजयी आलेख, 32
116. महाप्रज्ञ ने कहा-4,169
117. अहिंसा के अछूते पहलु, 69-70
118. महाप्रज्ञ ने कहा-4,41.42
119. अणुव्रत की दार्शनिक पृष्ठभूमि, 160-61
120. विज्ञप्ति, 7. 3.8.2005. 7
121. अहिंसा-1,20-21,109.17 हिन्दी नवजीवन, 11-10.1928
122. हिन्दी नवजीवन, 14-10-1926
123. आचार्य महाप्रज्ञ, किसने कहा मन चंचल है, 54. सं. 2003
124. आचार्य महाप्रज्ञ, ऋषभ और महावीर, 67-68
125. ऋषभ और महावीर, 69-71
126. तेरापंथ टाइम्स, 12-18 जनवरी, 2009,11

127. मेरे सपनों का भारत, 24,104
128. युगीन समस्या और अहिंसा, 39
129. मेरे सपनों का भारत, 196-7. हरिजन, 8.5.37
130. युगीन समस्या और अहिंसा, 94
131. एडोल्फ हिटलर को पत्र से, 24.12.41
132. अहिंसा और शांति, 80-81
133. युगीन समस्या और अहिंसा, 74-75

परिशिष्ट

अहिंसा के साठ नाम

1. द्वीप-त्राण-शरण-गति-प्रतिष्ठा-यह देवों, मुनष्यों और असुरों सहित संपूर्ण लोक के लिए द्वीप अथवा (दीपक) के समान-शरण दात्री और हेयोपादेय का ज्ञान कराने वाली है। त्राण है—विविध प्रकार के जागतिक दुःखों से पीड़ित जन की रक्षा करने वाली, उन्हें शरण देने वाली, कल्याणेच्छु के लिए गति-गम्य-प्राप्त करने योग्य तथा समस्त गुणों एवं सुखों का आधार है।
2. निवर्ण-मुक्ति का कारण, शांति स्वरूपा है।
3. निवृत्ति-दुर्ध्यान रहित है अतः मानसिक स्वस्थता रूप है।
4. समाधि-समता का कारण है।
5. शक्ति
6. कीर्ति
7. क्रांति-अहिंसा के आराधन से क्रान्ति-तेजस्विता उत्पन्न होती है।
8. रति-प्राणी-मात्र के प्रति, मैत्री, अनुरक्ति-आत्मीयता को उत्पन्न करने के कारण वह रति है।
9. विरति
10. श्रुताङ्ग्-सत्शास्त्रों के अध्ययन-मनन से अहिंसा उत्पन्न होती है।
11. तृप्ति-सन्तोषवृत्ति भी अहिंसा का अंग है।
12. दया
13. विमुक्ति
14. क्षांति-क्षमा, यह भी अहिंसा रूप है।
15. सम्यक्त्वाराधना
16. महती-समस्त व्रतों में महान्
17. बोधि
18. बुद्धि
19. धृति
20. समृद्धि-जीवन को आनंदित करने वाली
21. ऋद्धि-लक्ष्मी प्राप्ति का कारण
22. वृद्धि-धर्म की वृद्धि का कारण
23. स्थिति-मुक्ति में प्रतिष्ठित करने वाली
24. पुष्टि-पुण्य का उपचय करने वाली

25. नन्दा
26. भद्रा
27. विशुद्धि
28. लब्धि
29. विशिष्ट दृष्टि-विचार और आचार में अनेकांत प्रधान दर्शन वाली
30. कल्याण
31. मंगल
32. प्रमोद
33. विभूति
34. रक्षा
35. सिद्धावास-मोक्ष हेतु
36. अनास्रव
37. केवल स्थानम्
38. शिव
39. समिति-सम्यक् प्रवृत्ति
40. शील
41 संयम
42. शील परिग्रह-चारित्र का स्थान।
43. संवर
44. गुप्ति
45. व्यवसाय-उत्कृष्ट निश्चय रूप
46. उच्छ्रय-प्रशस्त भावों की उन्नति
47. यज्ञ-जीव रक्षा में सावधानता स्वरूप
48. आयतन-समस्त गुणों का स्थान
49. अप्रमाद
50. आश्वास-प्राणियों के लिए आश्वासन
51. विश्वास
52. अभय
53. सर्वस्य अमाघात-प्राणी की अहिंसा
54. चोक्ष-शुद्ध
55. पवित्र
56. सुचि-भाव की अपेक्षा शुद्ध
57. पूता-विशुद्ध
58. विमला-निर्मलता का कारण
59. प्रभासा-प्रकाशमय
60. निर्मलतरा-अत्यन्त निर्मल।

गांधी के उपवास

- सन् 1913 फीनिक्स (द. अफ्रीका), आश्रम के दो सहयोगियों की नैतिक त्रुटि के लिए एक सप्ताह का उपवास। अगले साढ़े चार महीनों तक दिन में केवल एक बार भोजन। फीनिक्स में उपर्युक्त कारणों से पुनः 14 दिन का उपवास।
- 12 मार्च, 1918 अहमदाबाद में अहमदाबाद के हड़ताली मिल-मजदूरों को विचलित होते देखकर तीन दिन का उपवास।
- 13 अप्रैल, 1919 साबरमती, रौलट सत्याग्रह के सिलसिले में नाड़ियाद में पटरी उखाड़े जाने के प्रयास पर प्रायश्चित स्वरूप गांधी का तीन दिन का उपवास।
- 9 से 13 नवम्बर 1921 बम्बई, प्रिंस ऑकवेल्स की यात्रा के दौरान दंगा और खून-खराबा होने पर पांच दिनों का उपवास।
- फरवरी के द्वितीय सप्ताह 1922 में बारडोली में चौरी-चौरा हत्याकांड के समय में पांच दिन का उपवास।
- 18 सितम्बर 1924, दिल्ली कोहाट के हिन्दू-मुस्लिम दंगे के परिणाम स्वरूप 21 दिनों का उपवास तथा हिन्दू-मुसलमानों द्वारा सद्भावना का आश्वासन।
- 24 नवम्बर 1925, साबरमती में आश्रम सहयोगियों में त्रुटि पाकर सात दिन का उपवास।
- 20 सितम्बर 1932, यरवदा जेल मे मैक्डोनाल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय के विरूद्ध आमरण-अनशन की घोषणा। सोडा-सहित अथवा सोडाविहीन-जल के अतिरिक्त किसी प्रकार का भोजन न लेने का निश्चय। 26 सितम्बर को सरकार की ओर से समझौता करने पर अनशन-त्याग।
- 22 दिसम्बर 1932 यरवदा जेल में अप्पासाहब पटवर्धन द्वारा जेल में भंगी कार्य की मांग पर तीन दिन का उपवास।
- 8 मई, 1933 यरवदा जेल में आत्मशुद्धि हेतु इक्कीस दिन का उपवास तथा 29 मई को पूना की पर्णकुटी मे उपवास समाप्त।
- 16 अगस्त, 1933 यरवदा जेल में सरकार द्वारा गांधीजी को पहिले की तरह जेल में हरिजन कार्य चलाने की सुविधा देने से इनकार करने पर तथा 23 अगस्त तक स्वास्थ्य चिंतनीय, बिना शर्त रिहाई।
- 7 अगस्त, 1934 वर्धा में कुछ सुधारकों द्वारा अजमेर में असहिष्णु व्यवहार-प्रदर्शन के प्रायश्चित स्वरूप सात दिन का उपवास।

- 3 मार्च, 1939 राजकोट में गांधीजी द्वारा राजकोट नरेश पर जनता के साथ किये गये समझौतों के भंग करने पर 4 दिन का अनशन तथा 7 मार्च को अनशन त्याग।
- 10 फरवरी, 1943 आगा खां महल में—'भारत छोड़ो आन्दोलन' के संबंध में सरकार द्वारा गांधी पर हिंसा का आरोप करने पर तीन सप्ताह का उपवास तथा 3 मार्च को प्रार्थना के बीच उपवास समाप्ति। गांधी को 6 औंस संतरे का रस पिलाया।
- अक्टूबर-नवम्बर 1946 बिहार में बिहार के साम्प्रदायिक दंगे के प्रायश्चित स्वरूप इक्कीस दिन का अर्ध उपवास, फलों के रस के सिवा अन्य चीजों का त्याग तथा घोषणा की यदि भूल करने बिहारी अपना सुधार नहीं करते तो यह थोड़ा आहार (अर्ध-उपवास) आमरण अनशन में परिवर्तित हो जायेगा।
- 1 सितम्बर (रात 8.15 मिनट पर) 1947 कलकत्ता में 31 अगस्त की शाम गांधीजी के कलकत्ता के निवास स्थान पर साम्प्रदायिक सद्भावना हेतु गांधी द्वारा उपवास तथा 4 सितम्बर रात सवा नौ बजे सुहरावर्दी द्वारा दिये गये मीठे संतरे के रस के साथ उपवास त्याग।
- 13 जनवरी 1948, दिल्ली में दिल्ली के साम्प्रदायिक दंगे को शांत करने और सद्भावना स्थापना हेतु प्रातःकाल प्रथम खुराक के बाद उपवास। नमक, सोडा, खट्टा-नींबू मिश्रित अथवा रहित जल के अतिरिक्त और कुछ न लेने का निश्चय। उपवास की अवधि अनिश्चित काल, किन्तु 18 जनवरी को दोपहर 12 बजकर 45 मिनट पर प्रार्थना के पश्चात् उपवास-त्याग।

शिक्षा का आश्रमी आदर्श

1. लड़कों और लड़कियों को एक साथ शिक्षा देनी चाहिये। यह बाल्यावस्था आठ वर्ष तक मानी जाये।
2. उनका समय मुख्यतः शारीरिक काम में बीतना चाहिये और यह काम भी शिक्षक की देखरेख में होना चाहिये। शारीरिक काम को शिक्षा का अंग माना जाये।
3. हर लड़के और लड़की की रुचि को पहचानकर उसे काम सौंपना चाहिये।
4. हर एक काम लेते समय उसके कारण की जानकारी करानी चाहिये।
5. लड़का या लड़की समझने लगे, तभी से उसे साधारण ज्ञान देना चाहिये। उसका यह ज्ञान अक्षर-ज्ञान से पहले शुरू होना चाहिये।
6. अक्षर-ज्ञान को सुन्दर लेखन-कला का अंग समझकर पहले बच्चे को भूमितिकी आकृतियां खींचना सिखाया जाये; और उसकी अंगुलियों पर उसका काबू हो जाये, तब उसे वर्णमाला लिखना सिखाया जाए। यानि उसे शुरू से ही शुद्ध अक्षर लिखना सिखाया जाये।
7. लिखने से पहले बच्चा पढ़ना सीखे। यानि अक्षरों को चित्र समझकर उन्हें पहचानना सीखे और फिर चित्र खींचे।
8. इस तरह से जो बच्चा शिक्षक के मुँह से ज्ञान पायेगा, वह आठ वर्ष के भीतर अपनी शक्ति के अनुसार काफी ज्ञान पा लेगा।
9. बच्चों को जबरन कुछ न सिखाया जाये।
10. वे जो सीखें उसमें उन्हें रस आना ही चाहिये।
11. बच्चों को शिक्षा खेल जैसी लगनी चाहिये। खेल-कूद भी शिक्षा का अंग है।
12. बच्चों को सारी शिक्षा मातृभाषा द्वारा होनी चाहिए।
13. बच्चों को हिन्दी-उर्दू का ज्ञान राष्ट्र भाषा के तौर पर दिया जाये। उसका आरम्भ अक्षर-ज्ञान से पहले होना चाहिये।
14. धार्मिक शिक्षा जरूरी मानी जाये। वह पुस्तक द्वारा नहीं, बल्कि शिक्षक के आचरण और उसके मुँह से मिलनी चाहिये।
15. नौ से सोलह वर्ष का दूसरा काल है।
16. दूसरे काल में भी अन्त तक लड़के-लड़कियों की शिक्षा साथ-साथ हो तो अच्छा है।
17. दूसरे काल में हिन्दू बालक को संस्कृत और मुसलमान बालक को अरबी का ज्ञान मिलना चाहिये।

18. इस काल में शारीरिक काम तो चालू ही रहेगा। पढ़ाई-लिखाई का समय जरूरत के अनुसार बढ़ाया जाना चाहिये।
19. इस काल में माता-पिता का धंधा यदि निश्चित रूप से मालूम हो, तो बच्चे को उसी धंधे का ज्ञान मिलना चाहिये; और उसे इस तरह तैयार किया जाये कि वह अपने बाप-दादा के धंधे से जीविका चलाना पसन्द करे। यह नियम लड़की पर लागू नहीं होता।
20. सोलह वर्ष तक लड़के-लड़कियों को दुनिया के इतिहास और भूगोल का तथा वनस्पति-शास्त्र, खगोल-विद्या, गणित, भूमिति और बीजगणित का साधारण ज्ञान हो जाना चाहिये।
21. सोलह वर्ष के लड़के-लड़की को सीना-पिरोना और रसोई बनाना आ जाना चाहिये।
22. सोलह सो पचीस वर्ष के समय को मैं तीसरा काल मानता हूं। इस काल में प्रत्येक युवक और युवती को उसकी इच्छा और स्थिति के अनुसार शिक्षा मिले।
23. नौ वर्ष के बाद आरम्भ होने वाली शिक्षा स्वावलम्बी होनी चाहिये। यानि विद्यार्थी पढ़ते हुए ऐसे उद्योगों में लगे रहें, जिनकी आमदनी से शाला का खर्च चले।
24. शाला में आमदनी तो पहले से ही होनी चाहिये। किन्तु शुरू के वर्षों में खर्च पूरा होने लायक आमदनी नहीं होगी।
25. शिक्षकों को बड़ी-बड़ी तनख्वाहें भी नहीं मिल सकतीं, किन्तु वे जीविका चलाने लायक तो होनी ही चाहिये। शिक्षकों में सेवा-भावना होनी चाहिये। प्राथमिक शिक्षा के लिए कैसे भावी शिक्षक से काम चलाने का रिवाज निन्दनीय है। सभी शिक्षक चरित्रवान होने चाहिये।
26. शिक्षा के लिए बड़ी और खर्चीली इमारतों की जरूरत नहीं है।
27. अंग्रेजी का अभ्यास भाषा के रूप में भी हो सकता है और उसे पाठ्यक्रम में जगह मिलनी चाहिये। जैसे हिन्दी राष्ट्रभाषा है, वैसे ही अंग्रेजी का उपयोग दूसरे राष्ट्रों के साथ के व्यवहार और व्यापार के लिए है।

अणुव्रत : आचार संहिता

1. मैं किसी भी निपराध प्राणी का संकल्पपूर्वक वध नहीं करूंगा।
   - आत्म-हत्या नहीं करूंगा।
   - भ्रूण-हत्या नहीं करूंगा।
2. मैं आक्रमण नहीं करूंगा।
   - मैं आक्रामक नीति का समर्थन नहीं करूंगा।
   - विश्व-शांति तथा निःशस्त्रीकरण के लिए प्रयत्न करूंगा।
3. मैं हिंसात्मक एवं तोड़फोड़-मूलक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लूंगा।
4. मैं मानवीय एकता में विश्वास करूंगा।
   - जाति-रंग आदि के आधार पर किसी को ऊंच-नीच नहीं मानूंगा।
   - अस्पृश्य नहीं मानूंगा।
5. मैं धार्मिक सहिष्णुता रखूंगा।
   - साम्प्रदायिक उत्तेजना नहीं फैलाऊंगा।
6. मैं व्यवसाय और व्यवहार में प्रामाणिक रहूंगा।
   - अपने लाभ के लिए दूसरों को हानि नहीं पहुंचाऊंगा।
   - छलनापूर्ण व्यवहार नहीं करूंगा।
7. मैं ब्रह्मचर्य की साधना और संग्रह की सीमा का निर्धारण करूंगा।
8. मैं चुनाव के संबंध में अनैतिक आचरण नहीं करूंगा।
9. मैं सामाजिक कुरूढ़ियों को प्रश्रय नहीं दूंगा।
10. मैं व्यसन-मुक्त जीवन जीऊंगा।
    - मादक तथा नशीले पदार्थों : शराब, गांजा, चरस, हेरोइन, भांग, तंबाकू आदि का सेवन नहीं करूंगा।
11. मैं पर्यावरण की समस्या के प्रति जागरूक रहूंगा।
    - हरे-भरे वृक्ष नहीं काटूंगा।
    - पानी का अपव्यय नहीं करूंगा।

विद्यार्थी अणुव्रत

- मैं परीक्षा में अवैध उपयों का सहारा नहीं लूंगा।

- मैं हिंसात्मक एवं तोड़फोड़-मूलक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लूंगा।
- मैं अश्लील शब्दों का प्रयोग नहीं करूंगा, अश्लील साहित्य नहीं पढ़ूंगा तथा अश्लील चलचित्र नहीं देखूंगा।
- मैं मादक तथा नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करूंगा।
- मैं चुनाव के संबंध में अनैतिक आचरण नहीं करूंगा।
- मैं दहेज से अनुबंधित एवं प्रदर्शन से युक्त विवाह नहीं करूंगा और न भाग लूंगा।
- मैं बड़े वृक्ष नहीं काटूंगा और प्रदूषण नहीं फैलाऊंगा।

शिक्षक अणुव्रत

- मैं विद्यार्थी के बौद्धिक-विकास के साथ चरित्र-विकास में भी सहयोगी बनूंगा।
- मैं विद्यार्थी को उत्तीर्ण करने में अवैध उपयों का सहारा नहीं लूंगा।
- मै अपने विद्यालय में दलगत राजनीति को प्रश्रय नहीं दूंगा और न इसके लिए विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करूंगा।
- मैं मादक और नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करूंगा।
- मैं अणुव्रत-प्रसार मैं अपना योग दूंगा।

व्यापारी अणुव्रत

- मैं खाद्य पदार्थ मे मिलावट कर या नकली को असली बताकर नहीं बेचूंगा।
- मैं तोल-माप में कमी-बेशी नहीं करूंगा।
- मैं राज्य-निषिद्ध वस्तु का व्यापार और आयात-निर्यात नहीं करूंगा, तस्करी नहीं करूंगा।
- मैं सौंपी या धरी (बन्धक) वस्तु को लौटाने से इन्कार नहीं करूंगा।
- मैं जमाखोरी नहीं करूंगा।

अधिकारी/कर्मचारी अणुव्रत

- मैं रिश्वत नहीं लूंगा।
- मैं अपने प्राप्त अधिकारों का अनुचित प्रयोग नहीं करूंगा।
- मैं मादक और नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करूंगा।

प्रत्याशी अणुव्रत

- मैं प्रलोभन और भय से मन प्राप्त नहीं करूंगा।
- मैं प्रतिपक्षी प्रत्याशी का चरित्र हनन नहीं करूंगा।
- मैं मतदान और मतगणना के समय अवैध तरीकों को काम में नहीं लूंगा।

मतदाता अणुव्रत

- मैं प्रलोभन और भय से मतदान नहीं करूंगा।
- मैं जाली नाम से मतदान नहीं करूंगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अंगसुत्ताणि भाग-2 (भगवई), आचार्य तुलसी/मुनि नथमल, 2031, जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज.)
2. अथर्ववेद (प्रथम खण्ड), पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, चतुर्थ 1967, संस्कृति संस्थान ख्वाजाकुतुब, (वेदनगर) बरेली (उत्तर-प्रदेश)
3. अस्तित्व और अहिंसा, आ. महाप्रज्ञ/मुनि दुलहराज,/धनंजय कुमार, दूसरा : 1994, तुलसी अध्यात्म नीडम्, जैन विश्व भारती, लाडनूं
4. अणुव्रत की दार्शनिक पृष्ठभूमि, आ. महाप्रज्ञ/मुनि दुलहराज,/धनंजय कुमार, प्रथम 1995, आदर्श साहित्य संघ चूरू (राज.)
5. अपने घर में, युवाचार्य महाप्रज्ञ, 1988, आदर्श साहित्य संघ, चूरू
6. अतीत का बसंत वर्तमान का सौरभ, आचार्य महाप्रज्ञ/मुनि धनंजयकुमार, प्रथम 1996, आदर्श साहित्य संघ, चूरू (राज.)
7. अमूर्त्त चिन्तन, युवाचार्य महाप्रज्ञ मुनि दुलहराज, तृतीय-1992, तुलसी अध्यात्म नीडम्, जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज.)
8. अमृत योग, साध्वी राजीमती, 2000, आदर्श साहित्य संघ, चूरू
9. अध्यात्म रामायण, मुनिलाल, उन्नीसवां-2045, गोविन्द भवन—कार्यालय गीता प्रेस, गोरखपुर
10. अकाल पुरुष गांधी, जैनेन्द्र कुमार, जुलाई-1969, पूर्वोदय प्रकाशन, स्वत्वःपूर्वोदय—प्राइवेट लिमिटेड, नेताजी सुभाव मार्ग, नई दिल्ली-6
11. अणु से पूर्ण की ओर, श्री नगराजजी/मुनिश्री महेन्द्रकुमार, प्रथम—26 जनवरी, 1958, गोलछा ज्ञान मंदिर, विराटनगर, (नेपाल)
12. अणुव्रत विशारद्, युवाचार्य महाप्रज्ञ मुनि सुखलाल, नैतिक पाठमाला भाग-2 नामान्तरित, जैन विश्व भारती, लाडनूं
13. अध्यात्म का प्रथम सोपानः सामायिक, आचार्य महाप्रज्ञ, मुनि धनंजयकुमार, आदर्श साहित्य संघ, चूरू (राज.)
14. अप्पाणं शरणं गच्छामि, युवाचार्य महाप्रज्ञ, मुनि दुलहराज, 1992, तुलसी आध्यात्म नीडम्, जैन विश्व भारती, लाडनूं
15. अर्हम्, आचार्य महाप्रज्ञ मुनि दुलहराज, 1999, आदर्श साहित्य संघ, चूरू

16. अहिंसा (प्रथम भाग) (संपूर्ण गांधी वाङ्मय खण्ड-दस), गांधीजी विश्वनाथ शर्मा, कमलापति त्रिपाठी (अन्य), प्रथम—2.10.48, जयनाथ शर्मा, काशी विद्यापीठ प्रकाशन विभाग, बनारस छावनी
18. अहिंसा (तृतीय-भाग) (संपूर्ण गांधी वाङ्मय खण्ड-दस), गांधीजी विश्वनाथ शर्मा, कमलापति त्रिपाठी (अन्य), जून, 1949, जयनाथ शर्मा, काशी विद्यापीठ प्रकाशन विभाग, बनारस छावनी
19. अहिंसा (चतुर्थ-भाग) (संपूर्ण गांधी वाङ्मय खण्ड-दस), गांधीजी विश्वनाथ शर्मा, कमलापति त्रिपाठी (अन्य) नवम्बर, 1949, जयनाथ शर्मा, काशी विद्यापीठ प्रकाशन विभाग, बनारस छावनी
20. Non-Violent Revolution, Acharya J. B. Kripalani, Feb.1938, Vio & Co. Publishus Ltd. 8, Round Building, Bombay
21. अनुभव का उत्पल, आचार्य महाप्रज्ञ, 1999, जैन विश्व भारती, लाडनूं
22. अहिंसा तत्त्व दर्शन, मुनि नथमल छगनलाल शास्त्री, अगस्त-1960, तृतीय-1988, आदर्श साहित्य संघ, चूरू (राज.)
23. अहिंसा उवाच आचार्य महाप्रज्ञ मुनि मोहजीत कुमार, 2004, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता
24. अहिंसा के अछूते पहलु, युवावार्य महाप्रज्ञ मुनि दुलहराज, धनंजय कुमार, तृतीय मार्च-1989, जैन विश्व भारती, लाडनूं (राज.)
25. अहिंसक समाज संरचना, मुनि नथमल, अ.भा. अणुव्रत समिति, 210, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली
26. अहिंसा के संदर्भ में, आचार्य महाप्रज्ञ मुनि मोहजीत कुमार, 16 फरवरी, 2003, जै. श्वे. तेरापंथी महासभा 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1
27. अहिंसा विवेक, मुनि श्री नगराजजी मुनिश्री महेन्द्रुमारजी 'प्रथम', 1962, जै. श्वे. तेरापंथी महासभा 3, पोर्चुगीज, चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता-1
28. अहिंसा प्रशिक्षण यात्रा डायरी, डॉ. हीरालाल श्रीमाली, अणुव्रत विश्व भारती, विश्व शांति निलयम्, राजसमंद (राज.)
29. अहिंसा की सही समझ, मुनि नथमलजी, आदर्श साहित्य संघ, सरदारशहर (राज.)
30. अहिंसा और शांति, आचार्य महाप्रज्ञ, मुनि दुलहराज ''धनंजय कु.'', 1999, आदर्श साहित्य संघ चूरू, (राज.)
31. अहिंसा व्यक्ति और समाज, आचार्य तुलसी युवाचार्य महाप्रज्ञ मुनि सुखलाल, प्रथम-1992, जैन विश्व भारती, प्रेस, इंस्टीट्यूट (डीम्ड युनिवर्सिटी), तुलसी ग्राम, लाडनूं
32. अहिंसा यात्रा : इक्कीसवीं सदी का कालजयी आलेख, साध्वी विमलप्रज्ञा, 2003, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा 3, पोर्चुगीज स्ट्रीट, कोलकाता-70001
33. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग-1, मुनि सुखलाल, 2004, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा 3, पोर्चुगीज चर्चस्ट्रीट कोलकाता
34. अहिंसा यात्रा के अमिट पदचिह्न, भाग-2, मुनि सुखलाल, 2004, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा 3, पोर्चुगीज चर्चस्ट्रीट कोलकाता
35. अहिंसा प्रशिक्षण : अनुभूतियाँ, संपा. भगवान लाल बंशीवाल पर्यवेक्षक, अक्टूबर, 2010

36. अहिंसा विवेक, मुनि नगराजजी मुनि महेन्द्रकुमार 'प्रथम', प्रथम-1962, जै.श्वे. तेरापंथी महासभा 3, पोर्चुगीज, चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता-1
37. आभामंडलं, युवाचार्य महाप्रज्ञ/मु.दुलहराज, 1991, आदर्श साहित्य, संघ, चूरू
38. आमंत्रण आरोग्य को, आचार्य महाप्रज्ञ दुलहराज/धनंजयकुमार, 1999, आदर्श साहित्य संघ, चूरू
39. आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक, डॉ. अमरेश्वर अवस्थी, डॉ. रामकुमार अवस्थी, Research publications, Tripolia, Jaipur-2
40. आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन, मुनिश्री नगराजजी, डी.लिट्, 31 मार्च, 1969, जै. श्वे. तेरपंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता-1
41. आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रंथ, कन्हैयालाल दूगड़, 1961, जै. श्वे, तेरपंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता-1
42. आचार्यश्री तुलसी अभिनंदन ग्रन्थ, श्री अक्षयकुमार जैन, आचर्यश्री तुलसी धवल समारोह समिति, वृद्धिचन्द जैन स्मृति भवन, नया बाजार, दिल्ली
43. आरोग्य की कुंजी, गांधीजी सुशीला नाय्यर, 1948, नवभवन-नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद
44. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, डॉ. एस.एन.शर्मा, 1990-91, अर्चना प्रिण्टर्स, 403, सुभाषा प्ररम् बोदाला, आगरा-7
45. इंग्लैंड में गांधीजी, महादेव देसाई, अल्पमोती चतुर्थ—1959, मार्तण्ड उपाध्याय मंत्री सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली-1
46. इक्कीसवीं शताब्दी और जैन धर्म, आचार्य महाप्रज्ञ, 2003, जैन विश्व भारती, लाडनूं
47. ईशावास्योपनिषद् (सुश्रुत-टीका-समन्विता), डॉ. सुभाई वेदान्नंकार 'तनेजा' एम.ए.पी.एच.डी. साहित्याचार्य, अजमेरा बुक कम्पनी, त्रिपोलिया बाजार, जयपुर
48. उत्तरज्झयणाणि, आचार्य तुलसी युवाचार्य महाप्रज्ञ, 1993, जैन विश्व भारती संस्थान मान्य विश्व विद्यालय, लाडनूं
49. 108, उपनिषद्-ब्रह्म विद्या खण्ड, पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, प्रथम आवृत्ति गुरूपूर्णिमा 2056, ब्रह्मवर्चस्, शान्तिकुंज, हरिद्वार (उ.प्र.)
50. एकला चलो रे, आचार्य महाप्रज्ञ, 2000, 2004, कमलेश चतुर्वेदी, आदर्श साहित्य संघ, 210 दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-2
51. एकदशोपनिषत्, प्रो. सत्यव्रत सिद्धांतालंकार, 1954, विद्या विहार, बलवीर ऐवेन्यू देहरादून
52. ऐसे थे बापू, यू.आर.राव, अक्टूम्बर 1969, सूचना और प्रसारण विभाग भारत सरकार, नई दिल्ली
53 कर्मवाद, आचार्य महाप्रज्ञ, 1997, आदर्श साहित्य संघ, चूरू
54. कर्मयोगी श्रीकेसरीमलजी सुराणा अभिनंदन ग्रन्थ, डॉ. नथमल टांटिया, ई. सन् 1982, कर्मयोगी श्री केसरीमलजी सुराणा अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशन समिति, राणावास
55. कैसे हो सकता है शुभ भविष्य का निर्माण, आचार्य महाप्रज्ञ मुनि धनंजय कुमार/साध्वी विश्रुत विभा, सितंबर 2005, जैन विश्व भारती, लाडनूं

56. गांधी व्यक्तित्व विचार और प्रभाव, काका कालेलकर, वियोगहरि व अन्य, प्रथम, जनवरी 1966, मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली
57. गांधी चिन्तन, के.एल.कमल, 1996, जयपुर पब्लिशिंग हाउस एस.एम.एस.हाईवे, जयपुर
58. गांधी विचार दोहन, श्री किशोरलाल घ.मशरूवाला, 1946, कॉलेज बुक सेण्टर, चौड़ा रास्ता, जयपुर-3
59. गांधी एवं मार्क्स (वर्तमान के आलोक में), डॉ. किरण, 1997, ओरियंटल बुक सेन्टर दु. नं. 18, दूसरी मंजिल, 5574 ए, चौधरी काशीराम मार्किट दुर्गा कॉम्पलेक्स, न्यू चन्द्रावल, दिल्ली-7
60. गांधी शत-शतदल, सोहनलाल द्विवेदी, अक्टूम्बर, 1969, सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली
61. गांधी साहित्य-1 आत्म संयम, महात्मा गांधी (लेखक संग्रह), प्रथम, 1954, मार्तण्ड उपाध्याय मंत्री, सस्ता, साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
62. गांधी का भारत भिन्नता में एकता, राष्ट्रीय एकीकरण उपसमिति द्वारा संचयन, 1976, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया नई दिल्ली
63 गांधी दर्शन, डॉ. प्रभातकुमार भट्टाचार्य, 1981-82, कॉलेज बुक डिपो, त्रिपोलिया बाजार (आतिश गेट के पास) जयपुर-2
64. गीता माता, महात्मा गांधी, 1950, मार्तण्ड उपाध्याय मंत्री सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली
65. गीता का सन्देश, गांधीजी आर.के.प्रभु, प्रथम : अगस्त 1959, जीवणजी डाह्याभाई देसाई नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद-14
66. घट-घट दीप जले, आचार्य महाप्रज्ञ, 2000, कमलेश चतुर्वेदी, प्रबंधक आदर्श साहित्य संघ, 210, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-2
67. चिन्तन का परिमल, आचार्य महाप्रज्ञ मुनि दुलहराज, 1999, जैन विश्व भारती, लाडनूं
68. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, शान्तिचन्द्र, 1976, देवचन्द्र लालभाई जैन, पुस्तकोद्धार फण्ड, बम्बई
69. जन-जन की दृष्टि में : अणुव्रत आन्दोलन, मुनि मोहजीत कुमार, प्रथम, 1987, आदर्श साहित्य संघ, चूरू
70. जीवन की पोथी, यु. महाप्रज्ञ/मुनि दुलहराज, चौथा-1990, तुलसी अध्यात्म नीड्म, जैनविश्व भारती, लाडनूं
71. जीवन विज्ञान (स्वस्थ समाज रचना का संकल्प), युवाचार्य महाप्रज्ञ मुनि दुलहराज, तृतीय-1989, तुलसी अध्यात्म नीड्म, जैन विश्व भारती, लाडनूं
72. जीवन विज्ञान (शिक्षा का नया आयाम), आचार्य महाप्रज्ञ मुनि दुलहराज, पंचम [(तृतीय) 1988, नवम्बर)] तुलसी अध्यात्म नीडम् जैन विश्व भारती, लाडनूं
73. जीवन दर्शन, राष्ट्रसंत उपाध्याय पं. शोभाचन्द्र भारिल्ल, 'न्यायतीर्थ' एवम् कलाकुमार, द्वितीय 1970 ई., सन्मति ज्ञानपीठ लोहामण्डी, आगरा-2
74. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश-1, क्षुल्लक जैनेन्द्रवर्णी, सातवां, 2000, भारतीय ज्ञानपीठ, उदयपुर
75. जैन दर्शन के मौलिक तत्त्व, मुनि नथमल (आचार्य महाप्रज्ञ), सितम्बर, 1960, मोतीलाल बैगानी चेरिटेबल ट्रस्ट, 1/4 सी, खगेन्द्र चटर्जी रोड, काशीपुर, कलकत्ता-2

76. जैन परम्परा का इतिहास, युवाचार्य महाप्रज्ञ, ग्यारहवां, 1997, समण संस्कृति संकाय, जैन विश्व भारती, लाडनूं
77. जैन दर्शन मनन और मीमांसा, मुनि नथमल/मु. दुलहराज, परिवर्तित, 1973, आदर्श साहित्य संघ, चूरू
78. जैन दर्शन और अनेकांत, आचार्य महाप्रज्ञ मुनि दुलहराज/धनंजय कुमार, आदर्श साहित्स संघ, चूरू
79. जैन विद्या का सांस्कृतिक अवदान, डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी, डॉ. प्रेम सुमन जैन, प्रथम, 1976, आदर्श साहित्य संघ, चूरू
80. जैन दर्शन के परिपार्श्व में, मुनि मोहनलाल 'शार्दुल', प्रथम, 1976, आदर्श साहित्य संघ, चूरू
81. जैन-लक्षणावली, भाग-1, बालचन्द्र सिद्धांतशास्त्री, वि.सं. 2028, वीर सेवा मन्दिर, 21, दरियागंज, दिल्ली
82. जैन दर्शन के मूल सूत्र, आ. महाप्रज्ञ/मुनि धनंजय, आदर्श साहित्य संघ, चूरू
83. जैन तत्त्व चिन्तन, मुनिश्री नथमल (आचार्य महाप्रज्ञ), 1959, आदर्श साहित्य संघ, चूरू
84. ठाणं, आचर्य तुलसी/मुनि नथमल, प्रथम वि.सं. 2033, जैन विश्व भारती, लाडनूं
85. तत्वार्थ सूत्र (प्रगुच्छक), उमास्वाति, ई. 1905, निर्णय सागर यन्त्रालय
86. तेरापंथ शासन अनुशासन, आचार्य महाप्रज्ञ मुनि दुलहराज/धनंजय कुमार, द्वितीय 1990, 1995, जैन विश्व भारती, लाडनूं
87. दसवैकालिक चूर्णि, जिनदास गणि महत्तर, ई. 1933, ऋषभदेव केशरीमल श्वेताम्बर, संस्था-रतलाम
88. दिव्य ज्योति महाप्रज्ञ, इकराम राजस्थानी, अणुव्रत महासमिति, नई दिल्ली
89. धर्म के सूत्र, आचार्य महाप्रज्ञ/मु. श्रीचन्द्र 'कमल', 1925, आदर्श साहित्य संघ, चूरू
90. धर्मचक्र का प्रवर्तन, युवाचार्य महाप्रज्ञ संपा. मुनि श्री दुलहराज तुलसी अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति राजसमंद (राज.) 313326
91. धर्म मुझे क्या देगा?, आचार्य महाप्रज्ञ, मुनि धनंजय कुमार, साध्वी विश्रुत विभा, 2003, जैन विश्व भारती, लाडनूं
92. धर्म और समाज, राधाकृष्णन्, छटा-1972, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली
93. नया मानव नया विश्व, आ. महाप्रज्ञ/मु. धनंजयकुमार, 1999, आदर्श साहित्य संघ, चूरू
94. निर्युक्तिपंचक, गणाधिपति तुलसी आ. महाप्रज्ञ/समणी कुसुम प्रज्ञा, सं. सन् 1999, लाडनूं-341306 (राज.)
95. प्रश्नव्याकरण सूत्र, युवाचार्यश्री मधुकर मुनि, द्वितीय, वि.सं.2049, श्री आगम प्रकाशन समिति, श्रीब्रजमधुकर स्मृति भवन पीपलिया बाजार, ब्यावर
96. प्रवचन डायरी, आचार्य तुलसी श्रीचन्द रामपुरिया, सं. 1954-55 (प्रथमवृत्ति-1960), जै. श्वे. तेरापंथी महासभा 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता-1
97. प्राचीन भारत की सांग्रामिकता, पं. रामदीन पाडेय, एम.ए.साहित्याचार्य, प्रथम-1957, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् पटना-3
98. प्रासंगिक है धर्म और दर्शन, आचार्य महाप्रज्ञ मुनि धनंजय कुमार, 2003, जै. श्वे तेरापंथ महासभा 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1

99. प्रेक्षाध्यान सिद्धान्त और प्रयोग, आचार्य महाप्रज्ञ मुनि महेन्द्र कुमार, आठवां: 2002, जैन विश्व भारती, लाडनूं जेठालाल एस. झवेरी
100. पातंजल योग दर्शन, महर्षि पतंजली, 2017, गीता प्रेस, गोरखपुर
101. पुरुषोत्तम महावीर, आचार्य महाप्रज्ञ, मुनि दुलहराज/धनंजय कुमार, 1999, जैन विश्व भारती, लाडनूं
102. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय, अमृतचन्द्राचार्य, वि.नि.2431, प्रमश्रुत प्रभावकमण्डल, बम्बई
103. बापू-कथा, हरिभाऊ उपाध्याय, आठवां 1920-1948, सर्व सेवा संघ, राजघाट, वाराणासी–221001
104. बृहदद्रव्य संग्रह, श्री मन्नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव, वि.सं. 2045 पंचम, श्रीपरमश्रुत प्रभावक मण्डल, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास
105. बृर्हत्कल्प भाष्य, भद्रबाहु, 1933-37, जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर
106. भगवान महावीर के हजार उपदेश, गणेश, मुनि शास्त्री, प्रथम, जुलाई, 1973, अमर जैन साहित्य संस्थान उदयपुर (राज.)
107. भगवान महावीर का अहिंसा दर्शन, साध्वी अशोकश्री, द्वितीय, 1997, आदर्श साहित्य संघ, चूरू
108. भारतीय राजनीतिक विचारक, श्री राम वर्मा, 1998, कॉलेज बुक सेण्टर, चौड़ा रास्ता, जयपुर-3
109. भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग-4, डॉ. सुरेन्द्रनाथ दास गुप्ता, प्रथम-1972, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, विद्यालय मार्ग, तिलकनगर, जयपुर
110. भारतीय दर्शन : सरल विवेचन, डॉ. राजकिशोर सिंह, एम.ए.पी.एच.डी., द्वितीय 1984-85, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
111. भिक्षु विचार दर्शन, आ. महाप्रज्ञ/मुनि दुलहराज, 1996, 1993, आदर्श साहित्य संघ, चूरू
112. भिक्खु दृष्टांत, जयाचार्य/आचार्य तुलसी युवाचार्य महाप्रज्ञ, द्वितीय, 1987, जैन विश्व भारती, लाडनूं
113. भीतर की ओर, आचार्य महाप्रज्ञ, प्रथम 2001, जैन विश्व भारती, लाडनूं
114. मंगल प्रभात, महात्मा गांधी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद–14
115. मनन और मूल्यांकन, आ. महाप्रज्ञ, 2004, आदर्श साहित्य संघ, चूरू
116. महाप्रज्ञ जीवन-दर्शन, मुनि धनंजय कुमार, द्वितीय, 1996, आदर्श साहित्य संघ, चूरू
117. महाप्रज्ञ : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, कन्हैयालाल फूलफगर, जनवरी, 1980, मित्र-परिषद्, 115 ए, चित्तरंजन एवेन्यू, कलकत्ता
118. महान व्यक्तित्व, डॉ. लाल एवं जैन, उपकार प्रकाशन, 2/11 ए.स्वदेशी बीमा नगर, आगरा-282002
119. महाप्रज्ञ ने कहा प्रवचनमाला 1, साध्वी विमलप्रज्ञा, साध्वी विश्रुत विभा, 2005, आदर्श साहित्य संघ, 210, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली
120. महात्मा गांधी एक जीवनी, बी.आर.नंदा, 1969, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
121. महात्मा गांधी मेरे पितामह (व्यक्तित्व और परिवार), सुमित्रा गांधी कुलकर्णी, 1997, डायमण्ड पॉकेट बुक (प्र।.) लि. एक्स-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-2 नई दिल्ली
122. महात्मा गांधी एवं धर्मनिरपेक्षता, डॉ. एस.एस. वर्मा डॉ. मधु मिश्रा, प्रथम-1999, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अका. प्लॉट नं. 1, झालाना सांस्थानिक क्षेत्र, जयपुर-2

123. महाप्रज्ञ अतीत और वर्तमान, मुनि धनंजय कुमार, द्वितीय, 1994, आदर्श साहित्य, संघ चूरू
124. महावीर का अर्थशास्त्र, आचार्य महाप्रज्ञ, 2001, कमलेश चतुर्वेदी प्रबंधक, आदर्श साहित्य संघ, 210, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली
125. महावीर का पुनर्जन्म, युवाचार्य महाप्रज्ञ मुनि दुलहराज/धनंजय कुमार, अप्रैल-1993, जैन विश्व भारती, लाडनूं
126. मज्झिम निकाय (हिन्दी अनुवाद), राहुल सांकृत्यायन, 1933, महाबोधि सभा, सारनाथ
127. माउंट बेटन और भारत का विभाजन, डौमिनीक लापियर तथा लैरी कॉलिन्स, प्रथम अक्टूबर 1982, सरस्वती विहार जी.टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-32
128. मुक्त भोग की समस्या और ब्रह्मचर्य, आचार्य महाप्रज्ञ मुनि धनंजय कुमार, 1999, आदर्श साहित्य संघ, चूरू
129. मेरी मां, आचार्य महाप्रज्ञ मुनि धनंजयकुमार/सा.विश्रुत विभा, प्रथम-2003, जै. श्वे. तेरापंथी महासभा कोलकाता-गंगाशहर
130. मेरे जीवन के रहस्य, आचार्य महाप्रज्ञ, 2005, जै. श्वे. तेरापंथी महासभा 3, पार्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता
131. मेरी दृष्टि : मेरी सृष्टि, युवा. महाप्रज्ञ/मु.दुलहराज, तृतीय, आदर्श साहित्य संघ चूरू
132. मैं हूं अपने भाग्य का निर्माता, आचार्य महाप्रज्ञ मुनि दुलहराज, आदर्श साहित्य संघ चूरू
133. मैं : मेरा मन : मेरी शान्ति, युवाचार्य महाप्रज्ञ मुनि दुलहराज, छठा, मई 1991 (दूसरा-1970) तुलसी अध्यात्म नीडम् जैन विश्व भारती, लाडनूं
134. मैं कुछ होना चाहता हूं, आचार्य महाप्रज्ञ, 2001, जैन विश्व भारती, लाडनूं
135. यजुर्वेद, पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, पंचम-1969, संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब (वेदनगर) बरेली (उत्तर-प्रदेश)
136. युगीन समस्या और अहिंसा, आचार्य महाप्रज्ञ मुनि धनंजय कुमार, 2003, कमलेश चतुर्वेदी प्रबन्धक 210, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-02
137. योग शास्त्र, आचार्य हेमचन्द्र, 1926, जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर
138. योग दृष्टि समुच्चय, महर्षि श्री हरिभद्र आचार्य, वि.सं. 2006, मनसुखलाल ताराचन्द मेहता, नेपूचुन बिल्डिंग, हार्नजी रोड, मुम्बई
139. लोकतंत्र : नया व्यक्ति नया समाज, आचार्य महाप्रज्ञ मु. दुलहाराज/धनंजय कुमार, तृतीय, नवम्बर 1996-2002, जैन विश्व भारती, लाडनूं
140. विचार को बदलना सीखे, आचार्य महाप्रज्ञ, 2000, कमलेश चतुर्वेदी, प्रबंधक, आदर्श साहित्य संघ, 210. दीनद.उ. मार्ग नई दिल्ली
141. विश्व संस्कृत सूक्ति कोश भाग-1, महोपाध्यायललित प्रभसागर, द्वितीय जनवरी, 2000, जीतयशा फाउण्डेशन, 9-सी. एसप्लानेड से ईस्ट रूप नं. 28 कलकत्ता
142. विश्व शान्ति और अहिंसा, आचार्य महाप्रज्ञ मुनि धर्मेश, प्रथम सितम्बर, 1995, जैन विश्व भारती, लाडनूं

143. विज्ञान के सन्दर्भ में जैन धर्म, मुनि सुखलाल, द्वितीय 1985, आदर्श साहित्य संघ, चूरू
144. वैकल्पिक समाज रचना, सिद्धराज ढ्ढा, नवबंर, 1993, सर्व सेवासंघ, महादेवभाई भवन, सेवाग्राम (वर्धा)
145. संक्षिप्त महाभारत (प्र.खंड-द्वि.खण्ड) (महाभारत का सरल और संक्षिप्त हिंदी अनुवाद), जयदयाल गोयन्दका, बारवां, 2046, गीता प्रेस, गोरखपुर
146. संक्षिप्त आत्म-कथा, महादेव देसाई, हरिभाऊ उपाध्याय, 2.10.1969
147. संस्कृति के दो प्रवाह, युवाचार्य महाप्रज्ञ मुनि दुलहराज, प्रथम सितम्बर, 1991, जैन विश्व भारती, लाडनूं
148. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, 1956, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली
149. स्वस्थ्य की त्रिवेणी, आचार्य महाप्रज्ञ, 2005, आदर्श साहित्य संघ, नई दिल्ली
150. समझा सुत्तं, पं. कैलाशचन्द्रजी शास्त्री मुनिश्री नथमलजी, द्वितीय, मई, 1975, सर्व-सेवा-संघ, राणाघाट, वाराणसी-1
151. समवाओ, युवाचार्य महाप्रज्ञ, प्रथम-1989, जैन विश्व भारती, लाडनूं
152. समवायांगसूत्र, युवाचार्य श्री मधुकर मुनि, द्वितीय वि.सं. 2048, श्री आगम प्रकाशन समिति श्रीब्रजमधुकर स्मृति भवन पीपलिया बाजार, ब्यावर
153. सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, एम.के.गांधी, अप्रैल, 1999, जितेन्द्र ढाकोरभाई देसाई नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद
154. सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड-6 फरवरी-1962, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद
155. सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड-9, सितम्बर-1963, सूचना और प्रसार मन्त्रालय भारत सरकार, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद
156. सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय, खण्ड-11, सूचना और प्रसार मन्त्रालय भारत सरकार, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद
158. सर्वोदय (रस्किन की 'अन्टुदिस लास्ट' का सार), महात्मा गांधी, 1991, यशपाल जैन, मंत्री सस्ता साहित्य मण्डल, एन 77, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली
159. साधन और सिद्धि, आचार्य महाप्रज्ञ, 2001, सांखला प्रिण्टर्स, सुगम निवास, बीकानेर
160. सूयगडो-1, आचार्य/तुलसी युवा. महाप्रज्ञ/मु.दुलहराज, प्रथम, 1984, जैन विश्व भारती, लाडनूं
161. सूयगडो-2, आचार्य तुलसी युवाचार्य महाप्रज्ञ, 1986, अनेकान्त शोधपीठ, जैन विश्व भारती, लाडनूं
162. हिन्दी स्वराज्य, गांधी अमृतलाल, कोरदास नाणावटी, अक्टूबर-1982, सर्व-सेवा-संघ, राजघाट, वाराणसी
163. Hindu Swaraj of Indian Home Rule, M.K. Gandhi, 11.11.1938, Jivanji dahyabhai desai New Jivan Place Ahmedabad
164. ऋग्वेद (द्वितीय खण्ड), पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, चतुर्थ-1967, संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब, (वेदनगर) बरेली (उत्तर-प्रदेश)

165. ऋग्वेद (तृतीय खण्ड), पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, चतुर्थ-1967, संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब, (वेदनगर) बरेली (उत्तर-प्रदेश)
166. ऋषभ और महावीर, आचार्य महाप्रज्ञ मुनि दुलहराज/धनंजयकुमार, पंचम-2001, जैन विश्व भारती, लाडनूं
167. ऋषि विनोबा, श्री मन्नारायण, पहला फरवरी, 1972, मन्त्री, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी
168. श्रावक-संबोध, गणाधिपति तुलसी साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा, द्वितीय-1997, आदर्श साहित्य संघ, चूरू
169. श्री अभियान राजेन्द्र कोष श्रीमद् विजय राजेन्द्र सूरीश्वर, वि.सं. 1913, श्री जैन प्रभाकर प्रिटिंग प्रेस, रतलाम
170. श्री रामचरितमानस—रामायण (आठों काण्ड सहित), गोस्वामी तुलसीदासजी गोविन्दजी, तिहत्तरवा सं. 2046, गोविन्दभवन-कार्यालय, गीता प्रेस, गोरखपुर
171. श्री मद्भागवगीता शांकरभाष्य-हिंदी अनुवाद-सहित, श्री हरिकृष्णदास गोयन्दका, 14वां, गोविन्द भवन-कार्यालय गीताप्रेस, गोरखपुर
172. श्री श्रीविष्णु पुराण, श्री मुनि लालगुप्ता, 1993, गीता प्रेस, गोरखपुर

साप्ताहिक पत्र

173. अखिल भारतीय तेरापंथ टाईम्स, पदमचन्द पटावरी सुखराज सेठिया 210, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली
174. विज्ञप्ति (तेरापंथ की केन्द्रीय गतिविधियों का लोकप्रिय साप्ताहिक मुखपत्र), कमलेश चतुर्वेदी, प्रबन्धक आदर्श साहित्य संघ, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली
175. राजस्थान पत्रिका
176. अणुव्रत (अहिंसा-विशेषांक), विनोदकुमार मिश्र, 1-3 अप्रैल, 2002, अणुव्रत महासमिति, अणुव्रत भवन, 210, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली
177. अध्यात्म योग, एन.के.जैन/नगेन्द्र प्रसाद जैन, अध्यात्म साधना केन्द्र, छत्तरपुर, नई दिल्ली
178. कल्याण (अग्निपुराण), हनुमान प्रसाद पौद्दार
179. जैन भारती (अनेकान्त विशेष), शुभू पटवा, बच्छराज दूगड़, वर्ष-50, अंक-3-45, मार्च-2002, मई-2004, जै.श्वे.तेरापंथी महासभा, तेरांपथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर बीकानेर
180. युवादृष्टि, कमलेश चतुर्वेदी/पुखराज सेठिया, अ.भा.तेरा.युवक परिषद् युवालोक, लाडनूं

❑❑❑

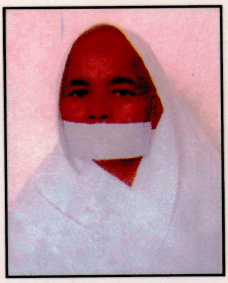

नाम : डॉ. साध्वी सरलयशा

शिष्या : आचार्य श्री महाश्रमण जी

जन्म : 30.11.1959, मोमासर– सेठिया परिवार

विलक्षण-समणदीक्षा : 9.11.1980 लाडनूँ, आचार्य श्री तुलसी के कर-कमलों से।

मुनि-दीक्षा : 24.1.1996, लाडनूँ, आचार्य श्री महाप्रज्ञ के कर-कमलों से

शिक्षा : एम.ए., पी-एच.डी.

अर्हता : प्रेक्षा प्रशिक्षिका, कार्यशाला संचालन, वक्तृत्व, लेखन-संपादन आदि।

यात्रा अनुभव : असम, आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, गुजरात, छत्तीसगढ़, तमिलनाडु, तुरा, नागालैंड, नेपाल, पंजाब, बंगाल, बिहार, भूटान, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मणिपुर, मेघालय, राजस्थान, सौराष्ट्र, हरियाणा।